॥ ओ३म् ॥

संस्कारविधिः

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्त्येष्टिपर्य्यन्तैः

षोडशसंस्कारैः समन्वितः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना

निर्मितः

सर्वथा राजनियमे नियोजितः

अजमेरनगरे

वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः

श्रीमद्दयानन्दाब्द २३

छठीबार ५००० } संवत् १९६२ वि० चैत्रशुक्ल { मूल्य ॥) डाकव्यय -)

॥ ओ३म् ॥

अथ संस्कारविधिः ॥

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्त्येष्टिपर्य्यन्तैः षोडशसंस्कारैः

समन्वितः

आर्य्यभाषया प्रकटीकृतः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना

निर्मितः

सर्वथा राजनियमे नियोजित.

(अजमेर)

वैदिकयन्त्रालये

मुद्रितः

संवत १९६१

२६६—२६७

२६८—२७८

इति

(वाणीप्रवेशसंस्कार | १८

संस्कारविधेर्विषयसूचीपत्रम् ॥

इति

भूमिका ।

सब सज्जन लोगों को विदित होवे कि मैंने वहुत सज्जनों के अनुरोध करने से श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९३२ कार्त्तिक कृष्णपक्ष ३० शनिवार के दिन संस्कारविधिका प्रथमारम्भ किया था उस में संस्कृतपाठ एकत्र और भाषापाठ एकत्र लिखा था । इस कारण संस्कार करने वाले मनुष्यों को संस्कृत और भाषा दूर दूर होने से कठिनता पड़ती थी । और जो १००० एक हजार पुस्तक छपे थे उन में से अव एक भी नहीं रहा; इसलिये श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९४० आषाढ वदि १३ रविवार के दिन पुनः संशोधन करके छपवाने के लिये विचार किया अव की वार जिस २ संस्कार का उपदेशार्थ प्रमाण वचन और प्रयोजन है वह २ संस्कार के पूर्व लिखा जायगा तत्पश्चात् जो २ संस्कार में कर्त्तव्य विधि है उस २ को क्रम से लिख कर पुनः उस संस्कार का शेष विषय जो कि दूसरे संस्कार तक करना चाहिये वह लिखा है और (जो विषय प्रथम अधिक लिखा था उसमें से अत्यन्त उपयोगी न जान कर छोड़ भी दिया है और अबकी वार जो २ अत्यन्त उपयोगी विषय है वह २ अधिक भी लिखा है) इस में यह न समझा जावे कि प्रथम विषय युक्त न था और युक्त छूट गया था उस का संशोधन किया है किन्तु उन विषयों का यथावत् क्रमबद्ध संस्कृत के सूत्रों में प्रथम लेख किया था उस में सब लोगों की बुद्धि कृतकारी नहीं होती थी इसलिये अब सुगम कर दिया है क्योंकि संस्कृतस्थ विषय विद्वान् लोग समझ सकते थे साधारण नहीं । इस में सामान्य विषय जोकि सब संस्कारों के आदि और उचित समय तथा स्थान में अवश्य करना चाहिये वह प्रथम सामान्यप्रकरण में लिख दिया है और जो मन्त्र वा क्रिया सामान्यप्रकरण की संस्कारों में अपेक्षित है उस के पृष्ठ पंक्ति की प्रतीक उन कर्त्तव्य संस्कारों में लिखी है कि जिसको देख के सामान्यविधि की क्रिया वहां सुगमता से कर सकें और सामा-

न्यप्रकरण का विधि भी सामान्यप्रकरण में लिख दिया है अर्थात् वहां का विधि कर के संस्कार का कर्त्तव्य कर्म करे और जो सामान्यप्रकरण का विधि लिखा है वह एक स्थान से अनेक स्थलों में अनेक वार करना होगा जैसे अग्न्याधान प्रत्येक संस्कार में कर्त्तव्य है वैसे वह सामान्यप्रकरण में एकत्र लिखने से सब संस्कारों में वारंवार न लिखना पड़ेगा इस में प्रथम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, पुनः स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ तदनन्तर सामान्यप्रकरण पश्चात् गर्भाधानादि अन्त्येष्टि पर्यन्त सोलह संस्कार क्रमशः लिखे हैं और यहां सब मन्त्रों का अर्थ नहीं लिखा है क्योंकि इस में कर्मकाण्ड का विधान है इसलिये विशेष कर क्रिया विधान लिखा है और जहां २ अर्थ करना आवश्यक है वहां २ अर्थ भी कर दिया है और मन्त्रों के यथार्थ अर्थ मेरे किये वेदभाष्य में लिखे ही हैं जो देखना चाहैं वहां से देख लेवें यहां तो केवल क्रिया करनी ही मुख्य है जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है ॥

इति भूमिका ॥

स्वामी दयानन्दसरस्वती
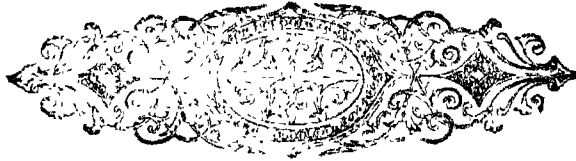
ओ३म् नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय

अथ संस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

ओं सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ तैत्तिरीय आरण्यके । अष्टमप्रपाठके । प्रथमानुवाके ॥

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद्विभुः ।
भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः ॥ १ ॥
गर्भाद्या मृत्युपर्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि ।
वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परेश्वरम् ॥ २ ॥
वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात् ।
आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये ॥ ३ ॥
संस्कारैस्संस्कृतंयद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते ।
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते ॥ ४ ॥
अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः ।
शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥
कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः ।
वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः ॥ ६ ॥

ममाशीस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः ।
जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः ॥ ७ ॥
बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ्मानवप्रियकारकैः ।
प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजितः ॥ ८ ॥
दयाया आनन्दो विलसति परो ब्रह्मविदितः,
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया ।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा हीशशरणाऽ-
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः ॥ ९ ॥
चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यासिते दले ।
अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥१०॥
विन्दुवेदाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुचौ मासेऽसिते दले ।
त्रयोदश्यां रवौ वारे पुनः संस्करणं कृतम् ॥११॥

सब संस्कारों की आदि में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करे और सब लोग उस में ध्यान लगा कर सुनें और विचारें ॥

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रन्तन्न॒ आसु॑व ॥ १ ॥ यजुः० अ० ३० । मं० ३॥

अर्थः—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त (देव) शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) संपूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा,सुव) दूर कर दीजिये

(यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है (तत्) वह सब हम को (आ, सुव) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ यजुः० अ० १३ । मं०४ ॥

अर्थः-जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिस ने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए संपूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था (सः) सो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥ य० अ०२५ मं०१३ ॥

अर्थः-(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिस की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिस का (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिस का न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥ ३ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥ य० अ० २३ मं० ३ ॥

अर्थः–(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक, इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥ ४ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥ य० अ० ३२ मं० ६ ॥

अर्थः–(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्णस्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेषमानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥ ५ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ ऋ० मं० १० सू० १२१ । मं० १० ॥

अर्थः—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आप का (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस२ की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ ६ ॥

स नो॒ बन्धु॑र्जनि॒ता स वि॑धा॒ता धामा॑नि वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑। यत्र॑ दे॒वा अ॒मृत॑मानशा॒नास्तृ॒तीये॒ धाम॑न्न॒ध्यैर॑यन्त ॥ ७ ॥ य० अ० ३२ मं १० ॥ ११८६

अर्थः—हे मनुष्यो (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) संपूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिल के सदा उस की भक्ति किया करें ॥ ७ ॥

अग्ने॒ नय॑ सु॒पथा॑ रा॒ये अ॒स्मान् विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्। यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठान्ते॒ नम॑ उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥ य० अ० ४० मं० १६ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर आप जिस से (विद्वान्) संपूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा कर के (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति

के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) संपूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये इस कारण हम लोग (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नमउक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ॥

अथ स्वस्तिवाचनम् ॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥ ऋग्वेद मं० १ सू० १ । मं० १ । ९ ॥ स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ३ ॥ स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ ४ ॥ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ ५ ॥ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ ६ ॥ स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥ ७ ॥ ऋ० मण्ड० ५ सू० ५१ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥ ऋ० मं० ७ सू० ३५ ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥ ९ ॥ नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥ १० ॥ सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥ ११ ॥ को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ १२ ॥ येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ १३ ॥ य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥ भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽंहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्नि

मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥ विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥ अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥ अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासोनयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९ ॥ यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥ स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥२१॥ स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ २२ ॥ ऋ० मं० १० सू० ६३ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु

श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥ यजु० अ० १ मं० १ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद् वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ २४ ॥ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानांꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥ यजुः अ० २५ मं० १४ । १५ । १८ । १९ । २१ ॥

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि

होता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥ त्वमग्ने यज्ञानाᳪ होता विश्वेषाᳪ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥ सा० छन्द आ० प्रपा० १ मंत्र १।२ ॥

ये त्रिषप्ताः परि यन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥ अथर्व० कां० १ । सू० १ । वर्ग १ । अनु० १ । प्रपा० १ । मं० १ ॥

इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिप्रकरणम् ॥

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥ शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥ शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥ शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना

शम् । शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥ ४ ॥ शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥ शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शंनो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥ शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः । शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥ १० ॥ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शन्नो अप्याः ॥ ११ ॥ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु

गावः । शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥ शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥ ऋ० मं० ७ सू० ३५ मं० १-१३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति शंनोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥ शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्य्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ॥१५॥ अहानि शं भवन्तु नः शꣳरात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥ १६ ॥ शं नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम

शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १६ ॥ यजु० अ० ३६ मं० ८ । १० । ११ । १२ । १७ । २४ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २० ॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २१ ॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २२ ॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२३॥ यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२४॥ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २५ ॥ य० अ० ३४ । मं० १–६ ॥

स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते । शꣳराजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥ साम० उत्तरार्चिके० प्रपा०१मं०३॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २८ ॥ अथर्व० कां० १९ सू० १५ मं० ५। ६ ॥

इतिशान्तिकरणम् * ॥

अथ सामान्यप्रकरणम् ॥

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये। परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना कर दी जायगी कि यहां पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना और इतना अधिक करना स्थान २ में जना दिया जायगा ॥

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो किसी प्रकार का उपद्रव न हो ॥

यज्ञशाला—इसी को यज्ञमण्डप भी कहते हैं यह अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ सम चौरस चौकोण और न्यून से न्यून ८ आठ हाथ की हो यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथिवी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी दो २ हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उसमें शुद्ध मट्टी भरें। यदि १६ सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारों ओर २० बीस खम्भे और जो ८ आठ हाथ की हो तो १२ बारह खम्भे लगा कर उन पर छाया करें वह छाया की छत वेदी की मेखला से १० दश हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा पताका पल्लव आदि बांधें नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम हलदी मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें। मनुष्यों को योग्य

* इस स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण को सर्वत्र जहां २ प्रतीक धरें वहां २ करना होगा।

है कि सब मङ्गलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञद्वारा ईश्वरोपासना करें इसीलिये निम्न लिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें ॥

→⁂ यज्ञकुण्ड का परिमाण ⁂←

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार २ हाथ का चारों ओर सम चौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहिरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में १ एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहै इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहिरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो २ हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और सम चौरस कुण्ड बनाना, और जो पचास हजार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा चौड़ा समचौरस और पौन हाथ नीचे तथा पच्चीस हजार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे दश हजार आहुति तक इतना ही अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे रखना, पांच हजार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहिरा सम चौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहै यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है, यदि इस में २५०० ढाई हजार आहुति मोहनभोग खीर और २५०० ढाई हजार घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहिरा सम चौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खे. चाहे घृत की हजार आहुति देनी हों तथापि सवाहाथ से न्यून चौड़ा गहिरा सम चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ पन्द्रह अंगुल की मेखला अर्थात् पांच २ अंगुल की ऊंची ३ तीन बनावे। और ये तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें ॥

→⁂ यज्ञसमिधा ⁂←

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आंब, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें। परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर कर बीच में चुनें।

—॥ होम के द्रव्य चारप्रकार । ॥—

(प्रथम—सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, आदि (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेंहू, उड़द, आदि (तीसरे—मिष्ट) शक्कर, सहत, छुहारे, दाख आदि (चौथे—रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि ओषधियां ॥

—॥ स्थालीपाक । ॥—

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावे इसका प्रमाणः—

ओ३म् । देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत शुद्ध कर लेना अवश्य चाहिये अर्थात् सब को यथावत् शोध छान देख भाल सुधार कर करें इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा सब डाल कर, मोहनभोग बनाना इसी प्रकार अन्य—मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक, आदि होम के लिये बनावें । चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने का विधि (ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि) अर्थात् जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार २ मूठी चावल आदि ले के (ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे, जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रक्खें, और उस पर घृत सेचन करें ।

—॥ यज्ञपात्र । ॥—

विशेष कर चांदी अथवा काष्ठ के पात्र होने चाहियें निम्नलिखित प्रमाणे ,

अथ पात्रलक्षणान्युच्यन्ते ।

बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः । षडङ्गुलखाता-स्त्वग्विलाहंसमुखप्रसेकाः । मूलदण्डाश्चतस्रः स्रुचो भवन्ति । तत्र पालाशी जुहूः । आश्वत्थ्युपभृत् । वैकङ्कती ध्रुवा । अग्निहोत्रहवणी च । अरत्निमात्रः खादिरः स्रुवः । अङ्गुष्ठपर्वमात्रपुष्करः । तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः । वारणं बाहुमात्रं मकराकारमग्निहोत्रहवणीनिधानार्थं कूर्चम् । अरत्निमात्रं खादिरं खड्गाकृति वज्रम् । वारणान्यहोमसंयुक्तानि तत्रोलूखलं नाभिमात्रम् । मुसलं शिरोमात्रम् । अथवा मुसलोलूखले वार्क्षे सारदारुमये शुभे इच्छाप्रमाणे भवतः । तथा—खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः । यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ । शूर्पं वैणवमेव वा । ऐशीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम् । प्रादेशमात्री वारणी शम्या । कृष्णाजिनमखण्डम् । दृषदुपले अश्ममये । वारणीं २४ हस्तमात्रीं २२ अरत्निमात्रीं वा खातमध्यां मध्यसंगृहीतामिडापात्रीम् । अरत्निमात्राणि ब्रह्मयजमानहोतृपत्न्यासनानि । मुञ्जमयं त्रिवृतं व्याममात्रं योक्त्रम् । प्रादेश दीर्घे अष्टाङ्गुलायते षडङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ । प्रादेशमात्रं द्व्यङ्गुलपरीणाहन्तीक्ष्णा-

ग्रं श्रितावदानम् । आदर्शाकारे चतुरस्रे वा प्राशित्रहरणे । तयोरेकमीषत्खातमध्यम् । षडङ्गुलकङ्कतिकाकारमुभयतः खातं षडवदानम् । द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्सेधमन्तर्द्धानकटम् । उपवेशोऽरत्निमात्रः । मुञ्जमयी रज्जुः । खादिरान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गुलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शङ्कून् । यजमानपूर्णपात्रं पत्नीपूर्णपात्रं च द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलखातम् । तथा प्रणीतापात्रञ्च । आज्यस्थाली द्वादशाङ्गुलविस्तृता प्रादेशोच्चा । तथैव चरुस्थाली । अन्वाहार्यपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तं समिदिध्मार्थं पलाशशाखामयं कौशं बर्हिः । ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि । पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम् । अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपञ्चाशद् गावः । द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः । षट्पक्षे त्रयोदश , सर्वेषु पक्षेषु आदित्येऽष्टौ धेनवः । वरार्थं चतस्रो गावः ॥

समिध पलाश की १८ हस्त ३ इध्म परिधि ३ पलाश की बाहुमात्र सामिधेनी समित् प्रादेशमात्र समीक्षण लेर ५ शाटी १ दृषदुपल १ दीर्घ अङ्गुल १२ पृ० १७ उपल अं० ६ नेतु व्यास हाथ ४ त्रिवृत्तृण वा गोवाल का ॥

स्रुवः ४ अंगुल २४ शम्याप्रादेश १। अन्तर्धान १ अं० १२। खांडा अंगुल २४
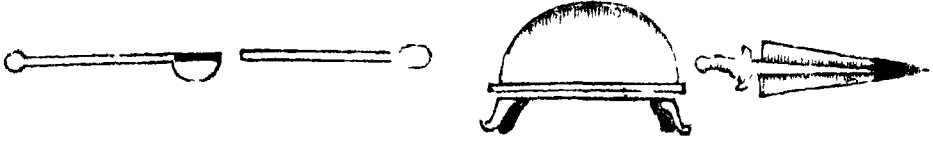
शृतावदानप्रादेश मात्र कूर्च बाहुमात्र १ स्रुच् सर्व ४ बाहुमात्र।

उलूखल नाभिमात्र मुसल पाटला ४ लम्बा २४ अंगुल
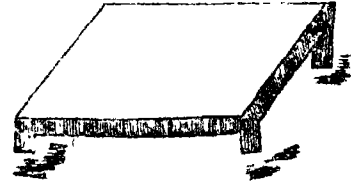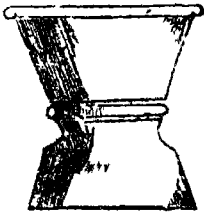
उपवेश १ अं० २४ पूर्णपात्र अं० १२ चौड़ा अंगुल ६ अभ्रि० १ अं० २४।
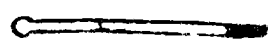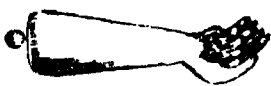
प्राशित्रहरणे दर्पणाकार
पिष्टपात्री
षडवत्त अंगुल १२
पुरोडाश पात्री
प्रणीता अं० १२।
प्रोक्षणी अं० १२।
अंगोछा २४ अंगुल लम्बा
अरणी ४।
अंगुल ६ पोली अंगुल ४ ऊंची अधरारणी
उत्तरारणी टुकड़ा १८
ओबली अं० १२
चात्र अंगुल १२।
मूलेखात दृषद्
उपल
शूर्प
इडा अंगुल १२
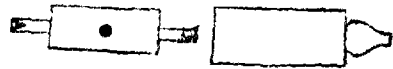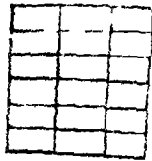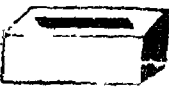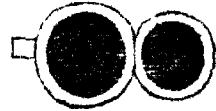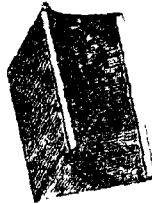
अथ ऋत्विग्वरणम् ॥

यजमानोक्तिः (ओमावसोः सदने सीद) इस मन्त्र का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे (ऋत्विगुक्तिः) ओं सीदामि । ऐसा कह के जो उस के लिये आसन बिछाया हो उस पर बैठे (यजमानोक्तिः) अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे (ऋत्विगुक्तिः) वृतोऽस्मि । ऋत्विजों का लक्षण । अच्छे विद्वान् धार्मिक जितेन्द्रिय कर्म करने में कुशल निर्लोभ परोपकारी दुर्व्यसनों से रहित कुलीन सुशील वैदिक मत वाले वेदवित् एक दो तीन अथवा चार का वर्ण करें, जो एक हो तो उस का पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक् पुरोहित और ३ हों तो ऋत्विक् पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, इन का आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख, और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहै और इन ऋत्विजों को सत्कार पूर्वक आसन पर बैठाना, और वे प्रसन्नता पूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के विना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें और अपने २ जलपात्र से सब जने जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे इन मन्त्रों से तीन २ आचमन करें अर्थात् एक २ से एक २ वार आचमन करें वे मन्त्र ये हैं:—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ इस से एक,

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ इस से दूसरा,

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

इस से तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से जल करके अङ्गों का स्पर्श करे ।

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ॥ इस मन्त्र से मुख,

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आंखें.

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान,

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु,

ओं ऊर्वोर्मऽ ओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा और

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना, पूर्वोक्त समिधाचयन वेदी में करें पुनः—

ओं भूर्भुवः स्वः ॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उस से कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उस में छोटी २ लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे वह मन्त्र यह है:—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ १ ॥ यजु० अ० ३ मं० ५ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे २ काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे ॥

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ यजु० अ० १५ मं० ५४ ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में डुबा उन में से एक २ नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ समिधा को अग्नि में चढ़ावें । वे मन्त्र ये हैं:—

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम ॥१॥

इस मन्त्र से एक ।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन, स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ २ ॥ इस से और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अग्नये जातवेदसे, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ ३ ॥ इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचायविष्ठ्य, स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम॥४॥ यजु० अ० ३ मं० १ । २ । ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे ।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ पात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें पश्चात् उपरि लिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिला कर पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो) में से कम से कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे यही आहुति का प्रमाण है । उस घृत में से चमसा कि जिस में छः मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो भर के नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुति देनी॥

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥१॥

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि और अञ्जलि में जल लेके चारों ओर छिड़कावे उस के ये मन्त्र हैं:—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ इस मन्त्र से पूर्व,

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इस से पश्चिम,

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इस से उत्तर, और

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ यजु० अ० ३० मं० १ ॥

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है उन में से यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है उस का नाम "आघारावाज्याहुति" कहते हैं और जो कुण्ड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं उन को "आज्यभागाहुति" कहते हैं सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में

ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी तत्पश्चात्

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय-इदन्न मम ॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी उस के पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति देके जब प्रधान होम अर्थात् जिस २ कर्म में जितना २ होम करना हो, करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवें पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय-इदन्न मम ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः, इदन्न मम ॥

ये चार घी की आहुति दे कर स्विष्टकृत होमाहुति एक ही है यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये उस का मन्त्रः—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते, इदन्न मम ॥

इस से एक आहुति करके प्राजापत्याहुति करे नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये ।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

इस से मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवे परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल समावर्त्तन और विवाह में मुख्य हैं वे चार मन्त्र ये हैं—

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्ज्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ६६ । मं० १९ । २० । २१ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥४॥ ऋ०मं०१०सू०१२१मं०१० ॥

इन से घृत की ४ आहुति करके "अष्टाज्याहुति" ये निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गल कार्यों में ८ आठ आहुति देवें परन्तु किस २ संस्कार में कहां २ देनी चाहिये यह विशेष बात उस २ संस्कार में लिखेंगे वे आठ आहुतिमन्त्र ये हैं ॥

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठोवन्हितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्यां-इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४ । ५ ॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥ ॥३॥ ऋ० मं० १ । सू २५ मं० १९ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नोऽ अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः । इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं अयाश्चाग्नेऽस्यन-भिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च । इदन्न मम ॥ ऋ० मं० १ सू० २४ । मं० १५ ॥

ओं भवतन्नः स मनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्यां—इदन्न मम ॥ यजु० अ० ५ । मं० ३ ॥

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे, न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है करे यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मंदमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करे और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करे स्रुवा को घृत से भर के—

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥

इस मन्त्र से एक आहुति देवे एवं दूसरी और तीसरी आहुति दे के जिसको दक्षिणा देनी हो देवे वा जिस को जिमाना हो जिमा, दक्षिणा देके सब को विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम जीम के पश्चात् रुचि पूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें ॥

मङ्गलकार्य ।

अर्थात् गर्भाधानादि संन्यास संस्कार पर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करें वे मन्त्र ये हैं ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । कस्त्वा सत्योमदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । अभीषुणः सखीनामविता जरितृणाम् । शतम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥ महावामदेव्यम् ॥ काऽ५या । नश्चा३ इत्रा३ आभुवात् । ऊ । ती सदावृधः सखा । औ३ होहाइ । कया२३ शचाई । ष्ठयौहो३ हुम्मा२ । वा२ तों३ऽ५हाइ ॥ (१) ॥ काऽ५स्त्वा । सत्यो३मा३दानाम् । मा । हिष्ठोमात्सादन्ध । सा । औ३होहाइ । दृढा२३ चिदा । रुजौहो३ । हुम्मा२ । वाऽ३सो३ऽ५हायि ॥ (२) आऽ५-

र्भा । षुणाा३ः सा३र्खीनाम् । आ । विता जरायितृ । णाम् । औ२३ हो हायि । शता२३ म्भवा । सियौ-हो३ । हुम्मा२ । ता५२ यो३५५हायि ॥ (३) ॥ साम० उत्तरार्चिके । अध्याये १ । खं० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ वर्त्तने वाले हों उनको नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों उन को भी सत्कारपूर्वक विदा कर दें अथवा जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक् २ मौन करके बैठे रहें कोई बात चीत हल्ला गुल्ला न करने पावें सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें विशेष कर्मकर्ता और कर्म कराने वाले शान्ति धीरज और विचारपूर्वक, क्रम से कर्म करें और करावें ॥ यह सामान्य विधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्त्तव्य है ॥

इति सामान्यप्रकरणम् ॥

(१२)

अथ गर्भाधानविधिं वक्ष्यामः ॥
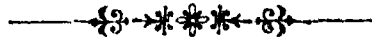
निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
मनुस्मृति द्वितीयाध्याये श्लोक १६ ॥

अर्थः—मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं उन में से प्रथम गर्भाधान संस्कार है ॥

गर्भाधान उस को कहते हैं कि जो "गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्" गर्भ का धारण, अर्थात् वीर्य का स्थापन गर्भाशय में स्थिर करना जिस से होता है। जैसे वीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम वलवान् स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इस से पूर्णयुवावस्था यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून १६ सोलह वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य हो और इस से अधिक वय वाले होने से अधिक उत्तमता होती है क्योंकि विना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में वालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता, और २५ पच्चीस वर्ष के विना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता, इस में यह प्रमाण है ॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे ॥
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥
सुश्रुते सूत्रस्थाने । अध्याय ३५ ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ २ ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ३ ॥
सुश्रुते शारीरस्थाने अ० १० ॥

ये सुश्रुत के श्लोक हैं शरीर की उन्नति वा अवनति की विधि जैसी वैद्यक शास्त्र में है वैसी अन्यत्र नहीं जो उस का मूल विधान है आगे वेदारम्भ में लिखा जायगा अर्थात् किस २ वर्ष में कौन २ धातु किस २ प्रकार का कच्चा वा पक्का वृद्धि वा क्षय को प्राप्त होता है यह सब वैद्यकशास्त्र में विधान है इसलिये गर्भाधानादि संस्कारों के करने में वैद्यकशास्त्र का आश्रय विशेष लेना चाहिये अब देखिये सुश्रुतकार परमवैद्य कि जिनका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं वे विवाह और गर्भाधान का समय न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे यह लिखते हैं जितना सामर्थ्य पच्चीसवें २५ वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य १६ सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है इसलिये वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जानें ॥ १ ॥ सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में पच्चीस २५ वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है ॥ २ ॥ और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे अथवा कदाचित् जीवे भी तो उस के अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों इसलिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति । आषोडशाद्वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः संपूर्णता ततः किंचित्परिहाणिश्चेति ॥

अर्थः—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पच्चीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं की पूर्णपुष्टि और उस से आगे किंचित् २ धातु वीर्य की हानि होती है अर्थात् ४० चालीसवें वर्ष सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं पुनः खान पान से जो उत्पन्न वीर्य धातु होता है वह कुछ २ क्षीण होने लगता है इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो कन्या १६ सोलह वर्ष की और पुरुष २५ पच्चीस वर्ष का अवश्य होना चाहिये मध्यम समय कन्या का २० बीस वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० चालीसवां वर्ष और उत्तम समय कन्या का २४ चौबीस वर्ष और पुरुष का अड़तालीस वर्ष पर्यन्त का है जो अपने कुल की उत्तमता उत्तम सन्तान दीर्घायु सुशील बुद्धि बल पराक्रम युक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे १६ सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और २५ पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें यही सब सुधार का सुधार सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवें ॥

ऋतुदान का काल ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतस्सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ १ ॥

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ २ ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ३ ॥

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ ४ ॥

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥ ५ ॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ६ ॥
मनुस्मृतौ अ० ३ ।

अर्थः—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इसप्रकार से किया है, कि सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री का समागम करे और अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री का सर्बदा त्याग रक्खे वैसे स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सर्वैव पृथक् रहै जो स्त्रीव्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती वह पुरुष जब ऋतुदान देना हो तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतु दान के १६ सोलह दिनों में पौर्णमासी अमावास्या चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उस को छोड़ देवे इन में स्त्रीपुरुष रतिक्रिया कभी न करें ॥ १ ॥ स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ सोलह रात्रि का है अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके १६ सोलहवें दिन तक ऋतु समय है उन में प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से ले चार दिन निन्दित हैं प्रथम, द्वितीय तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकान्त में बैठी रहै क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है । रजः अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े में से पीव वा रुधिर निकलता है वैसा है ॥ २ और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित है और बाकी रहीं दश रात्रि सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ जिन को पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं ये छः रात्री ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इन में भी उत्तर २ श्रेष्ठ हैं और जिन को कन्या की इच्छा हो वे

पांचवी', सातवी' नवी', और पन्द्रहवी' ये चार रात्रि उत्तम समझें * इस से पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे ॥४॥ पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रह कर गिर जाना होता है ॥ ५ ॥ जो पूर्व निन्दित ८ आठ रात्रि कह आये हैं उन में जो स्त्री का संग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में वसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ॥ ६ ॥

उपनिषदि गर्भलम्भनम् ॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का वचन है जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन विधि लिखा है वैसा करना चाहिये अर्थात् पूर्वोक्त समय विवाह करके जैसा कि १६ सोलहवें और २५ पचीसवें वर्ष विवाह करके ऋतुदान लिखा है वही उपनिषद् से भी विधान है ॥

अथ गर्भाधानꣳस्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वꣳ स्नात्वा विरुजायास्तस्मिन्नेव दिवा "आदित्यं गर्भमिति" ॥

यह पारस्कर गृह्यसूत्र का वचन है—ऐसा ही गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी विधान है इसके अनन्तर स्त्री जब रजस्वला होकर चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान कर रजरोग रहित हो उसी दिन (आदित्यं गर्भमिति) इत्यादि मन्त्रों से जैसा जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने की इच्छा हो उस से पूर्व दिन में सुगन्धादि पदार्थों सहित पूर्व सामान्यप्रकरण के लिखित प्रमाणे हवन करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देनी यहां पत्नी पति के वामभाग में बैठे और पति वेदी से पश्चिमाभिमुख पूर्व दक्षिण वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठे और ऋत्विज् भी चारों दिशाओं में यथासुख बैठें ॥

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा—इदमग्नये—इदन्न

* रात्रिगणना इसलिये की है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है ॥

मम ॥ १ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे—इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं अग्निवायुश्चन्द्रसूर्य्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इद मग्नये—इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे—इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उप-

धावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं सूर्य प्रा-यश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा ना-थकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं अग्निवायुश्चन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावा-मि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे—इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्रा-ह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्त-नूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥१२॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्ति-रसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपु-त्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ १३ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्राय-श्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि या-स्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा। इदं सू-र्याय—इदन्न मम ॥ १४ ॥ ओं अग्निवायुश्चन्द्र-

सूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ १५ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदमग्नये—इदन्न मम ॥ १६ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं वायवे—इदन्न मम ॥ १७ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ १८ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ १९ ॥ ओं अग्निवायुश्चन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ २० ॥

इन बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी * । और बीस आहुति करने से यत्किंचित् घृत बचे वह कांसे के पात्र में ढांक के रख देवें इस के पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना अर्थात् एक चांदी वा कांसे के पात्र में भात रख के उस में घी दूध और शक्कर मिला के कुछ थोड़ी देर रख के जब घृत आदि भात में एक रस हो जाय पश्चात् नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ आहुति अग्नि में देवें और स्रुवा में का शेष आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे ॥

ओं अग्नये पवमानाय स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय–इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अग्नये पावकाय स्वाहा ॥ इदमग्नये पावकाय–इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं अग्नये शुचये स्वाहा ॥ इदमग्नये शुचये–इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं अदित्यै स्वाहा । इदमदित्यै–इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये–इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते–इदन्न मम ॥ ६ ॥

इन छः मन्त्रों से उस भात की आहुति देवें तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त २६—२७ पृष्ठ लिखित आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देनी उन ८ आठ मन्त्रों से ८ आठ तथा निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्याहुति देवें ॥

---

* इन बीस आहुति देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ-सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥१॥ गर्भं-धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा स्वाहा ॥ २ ॥ हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो ऽअश्विना। तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८४ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना ॥ ऋतेन सत्य-मिन्द्रियं विपानंशुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयो-ऽमृतं मधु स्वाहा ॥ ४ ॥ यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् ॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूय-श्च शरदः शतात् स्वाहा ॥ ५ ॥ यजुर्वेदे ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ॥ एवा ते ध्रियतां गर्भोऽअनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ६ ॥ य-थेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् एवा ते ध्रि-यतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ७ ॥ यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ८ ॥ यथेयं पृथि-

वी मही दाधार विष्ठितं जगत् । एवा ते ध्रियतां गर्भोऽअनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ९ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० १७ ॥

इन ९ मन्त्रों से नव आज्य और मोहन भोग की आहुति दे के नीचे लिखे मन्त्रों से भी चार घृताहुति देवे ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भुवर्वायवे स्वाहा । इदं वायवे । इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय । इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओम् अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः । इदन्न मम ॥ ४ ॥

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से घृत की दो आहुति देनी ॥

ओम् अपास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा । इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये । इदन्न मम ॥ २ ॥

इन कर्म और आहुतियों के पश्चात् पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे "ओं यदस्य कर्मणोत्यरीरिचं०" इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे जो इन मन्त्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में इकट्ठा करते गये हों जब आहुति हो चुकें तब उस आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नान के घर में जाकर उस घी का पग के नख से लेके शिर पर्यन्त सब अङ्गों पर मर्दन कर के स्नान करे । तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ शुद्ध वस्त्र धारण करके कुण्ड के समीप आवे तब दोनों वधू वर कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य्य का दर्शन करें उस समय—

ओं आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्धि हरसा माभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ १ ॥ सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥ २ ॥ ज्योषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति । पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥ ३ ॥ चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ ४ ॥ चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । सं चेदं वि च पश्येम ॥ ५ ॥ सुसंदृशं त्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य । विपश्येम नृचक्षसः ॥ ६ ॥

इन मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करके वधू—

ओं (अमुक (१) गोत्रा शुभदा, अमुक (२) दा अहं भो भवन्तमभिवादयामि)

ऐसा वाक्य बोलके अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और जो वहां अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियां हों उन को भी इसीप्रकार वन्दन करे इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुए अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुए पश्चात् दोनों पति पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिम भाग में बैठ के वामदेव्यगान करें तत्पश्चात् यथोक्त (३) भोजन दोनों

(१) इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे ॥

(२) इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे ॥

(३) उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है इसलिये पति पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि

जने करें और पुरोहितादि सब मण्डली को सन्मानार्थ यथा शक्ति भोजन करा के आदर सत्कार पूर्वक सब को विदा करें ॥

इस के पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी, गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर रात्री के गये पश्चात् प्रहर रात्री रहे तक है जब वीर्य गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों स्थिर शरीर, प्रसन्न वदन, मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिकादि, सब सूधा शरीर रक्खें। वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रिय को ऊपर सङ्कोच और वीर्य को खेंच कर स्त्री गर्भाशय में स्थित करे तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे यदि शीतकाल हो तो प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफर, जावित्री,

की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें ॥ सर्वौषधि ये हैं—दो खण्ड आंबाहलदी, दूसरी खाने की हलदी " चन्दन " मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है) कुष्ठ, जटामांसी, मोरबेल, (यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है) शिलाजीत, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ, इन सब ओषधियों का चूर्ण करके सब सम भाग लेके उदुम्बर के काष्ठ पात्र में गाय के दूध के साथ मिला उनका दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़े की मंथनी से मंथन करके उसमें से मक्खन निकाल उस को ताय, घृत करके उस में सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफर, इलायची, जावित्री, मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्ध कर घी हुए पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक २ मासा जायफलादि भी मिला के नित्य प्रातः काल उस घी में से २५ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और पृष्ठ २४ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि ७ सात मंत्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो उस के दिन में होम करके उसी घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें इस प्रकार गर्भ स्थापन करें तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और निरोग पुत्र उत्पन्न होवे यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के एक पात्र में जमाए हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि—"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः"

छोटी इलायची, डाल गर्म कर रक्खे हुए शीतल दूध का यथेष्ठ पान करके पश्चात् पृथक् २ शयन करें यदि स्त्रीपुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय कि गर्भ स्थिर हो गया, तो उस के दूसरे दिन और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एकमहीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय, स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित हो गया है। अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवें * ॥

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः। एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा ॥ १ ॥ यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति। एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा ॥ २ ॥ दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि। निरैतु जीवो अक्षत-

यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात् शुद्ध आहार जो कि मद्यमांसादि रहित घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है इसलिये पूर्ण युवावस्था में विवाह कर इसप्रकार विधि कर प्रेम पूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल नित्यप्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते जायें जब रजस्वला होने के समय में १२-१३ दिन शेष रहें तब शुक्लपक्ष में ११ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला के इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें और मिताहारी होकर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम सन्तान होवे जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है ॥

* यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जांय अर्थात् दो वार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाय गर्भस्थिति न होवे तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा और यव के दाणों को सेक के पीस के दो मासा ले के इन

तो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं ५ सू० ७८ मं० ७ । ८ । ९ ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायु रेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा ॥ १ ॥ यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥ २ ॥ यजुः० अ० ८ । मं० २८ । २९ ॥

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ । पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा ॥ १ ॥ पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः । पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायतां स्वाहा ॥ २ ॥ सामवेदे ॥

इन मन्त्रों से आहुति देकर पूर्व लिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति दे के पुनः २८ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे पूर्णाहुति देवे पुनः स्त्री के भोजन छादन का

दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में दे के उस से पति पूछे " किं पिबसि " इस प्रकार तीन वार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" इस वाक्य को तीन वार बोल के उत्तर देवे और उस का प्राशन करे इसी रीति से पुनः पुनः तीन वार विधि करना तत्पश्चात सङ्खाहूली व भटकटाई ओषधि को जल में महीन पीस के उस का रस कपड़े में छान के पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिंचन करे और पति ।

ओ३म् यमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती ।
अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् ॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करे यह सूत्रकार का मत है ॥

सुनियम करे। कोई मादक मद्य आदि, रेचक हरीतकी आदि, क्षारअति लवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्ची आदि, स्त्री कभी न खावे किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता, अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट, दधि, गेहूं, उर्द, मूंग, तुअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें उस में ऋतु २ के मसाले गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और शरदी में केशर कस्तूरी आदि डाल कर खाया करें। युक्ताहार विहार सदा किया करें। दधि में सुंठी और ब्राह्मी ओषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे जिस से सन्तान अतिबुद्धिमान् रोगरहित शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला होवे ॥

इति गर्भाधानविधिः समाप्तः ॥

अथ पुंसवनम् ॥
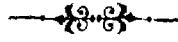
पुंसवन संस्कार का समय गर्भस्थिति ज्ञान हुए समय से दूसरे वा तीसरे महीने में है उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिये जिस से पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे यावत् बालक के जन्म हुये पश्चात् दो महीने न बीत जावें तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रह कर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे भोजन, छादन, शयन, जागरणादि व्यवहार उसी प्रकार से करे जिससे वीर्य स्थिर रहे और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे ॥

अथ प्रमाणानि ॥

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे ॥ १ ॥
पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः ।
पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताम् ॥ २ ॥ सामवेद

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम् ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि ॥ १ ॥
पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनु षिच्यते ।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत् ।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह ॥ ३ ॥
अथर्व० कां० ६ सू० ॥ ११ ॥

इन मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिये इस में आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रमाणः—

अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति ॥ १ ॥

प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके ॥ २ ॥

गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने में वट वृक्ष की जटा वा उस की पत्ती लेके स्त्री को दक्षिण नासापुट से सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गुड़च जो गिलोय वा ब्राह्मी औषधि खिलावे ऐसा ही पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण है ॥

अथ पुꣳसवनं पुरास्यन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा ॥ १ ॥

इस के अनन्तर, पुंसवन उस को कहते हैं जो पूर्व ऋतुदान देकर गर्भस्थिति से दूसरे वा तीसरे महीने में पुंसवनसंस्कार किया जाता है इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी लिखा है ॥

अथ क्रियारम्भः ॥

पृष्ठ ४ से १६ वें पृष्ठ के शान्तिकरण पर्यन्त कहे प्रमाणे (विश्वानि देव०) इत्यादि चारों वेदों के मन्त्रों से यजमान और पुरोहितादि ईश्वरोपासना करें और जितने पुरुष वहां उपस्थित हों वे भी परमेश्वरोपासना में चित्त लगावें और पृष्ठ ८ में कहे प्रमाणे स्वस्तिवाचन तथा पृष्ठ १२ में लिखे प्रमाणे शान्तिकरण करके १६ में लिखे प्रमाणे यज्ञदेश, यज्ञशाला, तथा पृष्ठ १७ वें में यज्ञकुण्ड, १७-१८ में यज्ञसमिधा, होम के द्रव्य और पाकस्थाली आदि करके और पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे (अयन्त इध्म०) इत्यादि (ओं अदिते०) इत्यादि ४ चार मन्त्रोक्त कर्म, और आघारावाज्यभागाहुति ४ चार तथा व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २६ में (ओं प्रजापतये स्वाहा) ॥ १ ॥ पृष्ठ २७ में (ओं यदस्य कर्मणो०) ॥ २ ॥ लिखे प्रमाणे, २ दो आहुति देकर नीचे लिखे हुए दोनों मन्त्रों से दो आहुति घृत की देवे ॥

ओं आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान्बाण इवेषुधिम्। आवीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा ॥ १ ॥
ओं अग्निरेतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोल के दो आहुति किये पश्चात् एकान्त में पत्नी के हृदय पर हाथ धर के यह निम्नलिखित मन्त्र पति बोले ॥

ओं यत्ते सुसीमे हृदये हितवन्तः प्रजापतौ। मन्येऽहं मां तद्विद्वांसमाह पौत्रमघन्नियाम् ॥

तत्पश्चात् पृष्ठ ३० में लिखे प्रमाणे सामवेद आर्चिक और महावामदेव्यगान गा के जो २, पुरुष वा स्त्री संस्कार समय पर आये हों उन को विदा करके पुनः बट वृक्ष के कोमल कूपल और गिलोय को महीन बांट कपड़े में छान, गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासापुट में सुंघावे। तत्पश्चात्:—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥ य० अ० १३। मं० ४ ॥

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ २ ॥ य० अ० ३१। मं० १७ ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय पर हाथ धर के यह मन्त्र बोले।

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छन्दाᳬंस्यङ्गानि यजूं-

श्वषि नाम॑ । साम॑ ते त॒नूर्वा॑मदे॒व्यं य॑ज्ञा य॒ज्ञियं॒ पुच्छं॒ धिष्ण्या॑ः श॒फाः । सु॒प॒र्णो॒ऽसि ग॒रुत्मा॒न्दिवं॑ गच्छ॒ स्वः॒ पत ॥ १ ॥ य० अ० १२ । मं० ४ ॥

इस के पश्चात् स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे विशेष कर गिलोय ब्राह्मी औषधी और सूंठी को दूध के साथ थोड़ी २ खाया करे और अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक, हरड़ें आदि न खावे सूक्ष्म आहार करे क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे इत्यादि शुभाचरण करे ॥

इति पुंसवनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

(३)

अथ सीमन्तोन्नयनम् ॥

अब तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन कहते हैं जिस से गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य गर्भ स्थिर उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे । इस में आगे प्रमाण लिखते हैं ॥

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम् ॥ १ ॥ आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् ॥ २ ॥ अथास्यै युग्मेन शलाटुग्रप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः । चतुर्वा ॥ यह आश्वलायनगृह्यसूत्र।

पुंसवनवत्प्रथमे गर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा ॥

यह पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण इसी प्रकार गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्र में भी लिखा है ॥

गर्भमास से चौथे महीने में शुक्लपक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो उसी दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करे और पुंसवन संस्कार के तुल्य छठे आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करें इस में प्रथम ४—३१ पृष्ठ तक का विधि करके (अदितेऽनुमन्यस्व) इत्यादि पृष्ठ २८ में लिखे प्रमाणे वेदी से पूर्वादि दिशाओं में जल सेचन करके—

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु स्वाहा ॥१॥ य० अ० ११ मं० ७ ॥

इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल सेचन करके आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार मिल के ८ आठ आहुति पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे करके—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥

अर्थात् चावल, तिल, मूंग इन तीनों को सम भाग ले के—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥

अर्थात् धो के इन की खिचड़ी बना, उस में पुष्कल घी डाल के निम्नलिखित मन्त्रों से ८ आठ आहुति देवें ॥

ओं धाता दंदातु दाशुषे प्राचीं जीवातु मुक्षितम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवति स्वाहा ॥ इदं धात्रे । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं धाता प्रजानामुत रायऽईशे धात्रेदं विश्वं भुवनं जजान । धाता कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे धात्रऽइद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा ॥ इदं धात्रे । इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना । सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा ॥ इदं राकायै । इदन्न मम ॥ ३ ॥ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि । ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा स्वाहा ॥ इदं राकायै । इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० २ सू० ३२ । मं० ४ । ५ ॥ नेजमेष परापत सुपुत्रः पुनरापत अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमाधेहि यः पुमान्स्वाहा ॥ ५ ॥ यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भमादधे एवं तं गर्भमाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ६ ॥ विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्याम् । पुमांसं पुत्रानाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ७ ॥

इन सात मन्त्रों से खिचड़ी की सात आहुति दे के पुनः (प्रजापते न त्व०) पृष्ठ २८ में लिखित इससे एक, सब मिला के ८ आठ आहुति देवे और पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे (ओं प्रजापतये०) मन्त्र से एक भात की और पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे (ओं यदस्यकर्मणो०) मन्त्र से एक खिचड़ी की आहुति देवे। तत्पश्चात् "ओं त्वन्नो अग्ने०" पृष्ठ २८—२९ में लिखे प्रमाणे ८ आठ घृत की आहुति और "ओं भूरग्नये०" पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे ४ चार व्याहृति मन्त्रों से चार आज्याहुति देकर पति और पत्नी एकान्त में जा के उत्तमासनपर बैठ पति पत्नी के पश्चात् पृष्ठ की ओर बैठ—

ओं सुमित्रिया नऽ आप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १ ॥ यजु० अ० ६ मं० २२ ॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआ जातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥ य० अ० ७ मं० २४ ॥ ओं अयमूर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनी भव। पर्णं वनस्पते नु त्वा नु त्वा सूयताꣳ रयिः ॥३॥ ओं येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय। तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि ॥४॥ ओं राकामहꣳ सुहवाꣳ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु। उपार्गाहि सहस्रपोषꣳ सुभग रराणा ॥५॥ ओं किंपतत्मना सीव्यत्वपः सूच्या छिद्यमानया ददातु वीरꣳ शतदायमुक्थ्यम् ॥६॥ ओं यास्ते राके

सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि । ताभिर्नो अद्य सुमनाऽइयसि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः ॥ ७ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पति अपने हाथ से स्वपत्नी के केशों में सुगन्ध तैल डाल कंघे से सुधार हाथ में उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छीपी वा शाही पशु के कांटे से अपनी पत्नी के केशों को स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछे की ओर जूड़ा सुन्दर बांध कर यज्ञशाला में आवें—उस समय वीणा आदि बाजे बजवावे, तत्पश्चात् पृष्ठ ३०—३१ में लिखे प्रमाणे सामवेद का गान करें, पश्चात्-

ओं सोमऽएव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः । अविमुक्त चक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यं असौ * ॥

आरम्भ में इस मन्त्र का गान करके पश्चात् अन्य मन्त्रों का गान करें तत्पश्चात् पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डाल के गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे उस समय पति स्त्री से पूछे "किं पश्यसि" स्त्री उत्तर देवे "प्रजां पश्यामि" तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध कुलीन सौभाग्यवती पुत्रवती गर्भिणी अपने कुल की और ब्राह्मणों की स्त्रियां बैठें प्रसन्नवदन और प्रसन्नता की बातें करें और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे और वे वृद्ध समीप बैठी हुई उत्तम स्त्री लोग ऐसा आशीर्वाद देवें ॥

ओं वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव ॥

ऐसे शुभ माङ्गलिक वचन बोलें तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथायोग्य सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को विदा करें ॥

इति सीमन्तोन्नयनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

* यहां किसी नदी का नामोच्चारण करे ॥

(८) # अथ जातकर्मसंस्कारविधिः ॥

इस का समय और प्रमाण और कर्मविधि इस प्रकार करें ॥

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति ॥

इत्यादि पारस्कर गृह्यसूत्र का प्रमाण है इसीप्रकार आश्वलायन, गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी लिखा है ॥

जब प्रसव होने का समय आवे तब निम्नलिखित मन्त्र से गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करे—

ओं एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥ य० अ० ८ । मं०२८ ॥

इस से मार्जन करने के पश्चात् ।

ओं अवैतु पृश्निशेवलꣳशुने जराय्वत्तवे । नैव माꣳसेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमव जरायु पद्यताम् ॥ इस मन्त्र का जप करके पुनः मार्जन करे ।

कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्मयेन प्राशयेत् ॥

जब पुत्र का जन्म होवे तब प्रथम दायी आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, आंख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर पिता के गोद में बालक को देवे पिता जहां वायु और शीत का प्रवेश न हो वहां बैठ के एक बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांध के उस बंधन के ऊपर से नाड़ी छेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा शुद्ध वस्त्र से पूंछ नवीन शुद्ध वस्त्र पहिना, जो प्रसूताघर के बाहर पूर्वोक्त प्रकार कुण्ड कर रक्खा हो अथवा तांबे के कुंड में समिधा पूर्वलिखित प्रमाणे

चयन कर पूर्वोक्त सामान्यविध्युक्त पृष्ठ २४—२५ में कहे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करके सुगन्धित घृतादि वेदी के पास रखके हाथ पग धोके एक पीठासन अर्थात् शुभासन पुरोहित * के लिये कुण्डके दक्षिणभाग में रक्खे उस पर उत्तराभिमुख बैठे और यजमान अर्थात् बालक का पिता हाथ पग धोके वेदी के पश्चिम भाग में आसन बिछा उस पर उपवस्त्र ओढ़ के पूर्वाभिमुख बैठे तथा सब सामग्री अपने और पुरोहित के पास रख के पुरोहित पद के स्वीकार के लिये बोले:—

ओम् आ वसोः सदने सीद ॥ तत्पश्चात् पुरोहितः—

ओं सीदामि ॥

बोल के आसन पर बैठ के पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे "अयन्त इध्म०" ३ मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिदाधान करे और प्रदीप्त समिधा पर पूर्वोक्त सिद्ध किये घी की पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति देनी तत्पश्चात्:—

ओं या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति । तां त्वा घृतस्य धारया यजे सꣳराधनीमहम् । सꣳराधिन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा । इदं संराधिन्यै । इदन्न मम। ओं विपश्चित्पुच्छमभरत्तद्धाता पुनराहरत् । परे हि त्वं विपश्चित्पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा । इदं धात्रे । इदन्न मम ॥

इन दोनों मन्त्रों से दो आज्याहुति करके पृष्ठ ३०–३१ में लिखे प्रमाणे वामदेव्य गान करके ४–८ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करे तत्पश्चात् घी और मधु दोनों बराबर मिला के जो प्रथम सोने की शलाका कर रक्खी हो उससे बालक की जीभ पर ॥

---

* धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि को पूर्ण रीति से जानने हारा विद्वान् सद्धर्मी कुलीन निर्व्यसनी सुशील वेदप्रिय पूजनीय सर्वोपकारी गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है ।

"ओ३म्"

यह अक्षर लिख के उस के दक्षिण कान में "वेदोसीति" तेरा गुप्त नाम वेद है ऐसा सुना के पूर्व मिलाये हुए घी और मधु को उस सोने की शलाका से बालक को नीचे लिखे मन्त्र से थोड़ा २ चटावे:—

ओं प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूतं मघोनाम् । आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन् ॥ १ ॥ मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते । मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ २ ॥ ओं भूस्त्वयि दधामि ॥ ३ ॥ ओं भुवस्त्वयि दधामि ॥४॥ ओं स्वस्त्वयि दधामि॥५॥ ओं भूर्भुवः स्वस्सर्वं त्वयि दधामि ॥६॥ ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषꣳस्वाहा ॥ ७ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से सात बार घृत मधु प्राशन कराके तत्पश्चात् चावल और जव को शुद्ध कर पानी से पीस वस्त्र से छान एक पात्र में रख के हाथ के अंगूठा और अनामिका से थोड़ा सा लेके:—

ओम् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम् ।

इस मन्त्र को बोल के बालक के मुख में एक विन्दु छोड़ देवे यह एक गोभिलीय गृह्यसूत्र का मत है सब का नहीं पश्चात् बालक का पिता बालक के दक्षिण कान में मुख लगा के निम्नलिखित मन्त्र बोले:—

ओं मेधान्ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती । मेधान्ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ १ ॥ ओं अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥ २ ॥ ओं सोमऽआयु-

ष्मान् स ओषधीभिरायुष्माँस्तेन० * ॥ ३ ॥ ओं ब्रह्मऽआयुष्मत् तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन०॥४॥ ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्यन्तस्तेन०॥५॥ ओं ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन० ॥६॥ ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन०॥७॥ ओं यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन० ॥८॥ ओं समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ९ ॥

इन नव मन्त्रों का जप करे इसी प्रकार बायें कान पर मुख धर ये ही नव मन्त्र पुनः जपे इसके पीछे बालक के कन्धों पर कोमल स्पर्श से हाथ धर अर्थात् बालक के स्कन्धों पर हाथ का बोझ न पड़े धर के निम्नलिखित मन्त्र बोलेः-

ओं इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ १ ॥ अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः । अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥२॥ ओं अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव । वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों को बोले तत्पश्चात्:-

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥

* यहां पूर्व मन्त्र का शेषभाग (त्वा०) इत्यादि उत्तर मन्त्रों के पश्चात् बोले ।

इस मन्त्र का तीन वार जप करे तत्पश्चात् बालक के स्कन्धों पर से हाथ उठा, ले और जिस जगह पर बालक का जन्म हुआ हो वहां जा के:-

ओं वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र का जप करे तथाः-

यत्ते सुसीमे हृदयꣳ हितमन्तः प्रजापतौ । वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ २ ॥ यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदामृतस्येह नाममाहं पौत्रमघꣳरिषम् ॥ ३ ॥ इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती । यथायन्न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि ॥ ४ ॥ यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳश्रितम् । तदहं विद्वाꣳस्तत्पश्यन् माहं पौत्रमघꣳ रुदम् ॥ ५ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ सुगन्धित जल से प्रसूता के शरीर का मार्जन करे॥

कोसि कतमोस्येषोस्यमृतोसि । आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥ ६ ॥ स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रेत्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ ॥ ७ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के बालक को आशीर्वाद देवे पुनः—

अङ्गादङ्गात्सꣳस्रवासि हृदयादधिजायसे । प्राणान्ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम् ॥ ८ ॥

(अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्)॥ ९ ॥ अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। आत्मासि पुत्र मामृथाः सजीव शरदः शतम्॥ १० ॥ पशूनां त्वा हिंकारेणाभिजिघ्राम्यसौ ॥ ११ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पुत्र के शिरका आघ्राण करे अर्थात् सूंघे इसी प्रकार जब परदेश से आवे वा जावे तब २ भी इस क्रिया को करे जिससे पुत्र और पिता माता में अतिप्रेम बढ़े ॥

ओं इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः।
सा त्वं वीरवती भव यास्मान्वीरवतोऽकरत् ॥१॥

इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करके प्रसूता स्त्री को प्रसन्न करके पश्चात् स्त्री के दोनों स्तन किञ्चित् उष्ण सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर पोंछ केः—

ओं इम ꣳ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने शरीरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमा विशस्व ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवे इस के पश्चात्ः—

ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वती तमिह धातवे कः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के वाम स्तन बालक के मुख में देवे तत्पश्चात्—

ओं आपो देवेषु जागृथ यथा देवेषु जागृथ। एवमस्याꣳसूतिकायाꣳसपुत्रिकायां जागृथ ॥ १ ॥

इस मन्त्र से प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भर के दश रात्रि तक वहीं धर रक्खे तथा प्रसूता स्त्री प्रसूतस्थान में दश दिन तक रहे वहां नित्य सायं और प्रातःकाल सन्धि वेला में निम्नलिखित दो मन्त्रों से भात और सरसों मिला के दश दिन तक बराबर आहुतियां देवे ॥

ओं शण्डामर्काउपवीरः शौण्डिकेयऽउलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्चवनो नश्यतादितः स्वाहा। इदं शण्डामर्काउपवीराय, शौण्डिकेयायोलूखलाय, मलिम्लुचो द्रोणासश्चवनोनश्यतादितेभ्यश्च। इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं आलिखन्ननिमिषः किं वदन्त उपश्रुतिः। हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्चवनो नश्यतादितः स्वाहा। इदमालिखन्ननिमिषाय किंवदन्त्यः उपश्रुत हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणाय। इदन्न मम ॥ २ ॥

इन मन्त्रों से १० दिन तक होम करके पश्चात् अच्छे २ विद्वान् धार्मिक वैदिक मतवाले बाहर खड़े रह कर और बालक का पिता भीतर रह कर आशीर्वादरूपी नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ आनन्दित हो के करें।

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः। अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ अथर्व० कां० ६। अनु० ४। सू० ४१ ॥ इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्। शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १२। अ० २। मं० २३ ॥ विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः। इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ३ ॥ अथर्व० कां० १८। अनु० ३। मं० ६१ ॥

इति जातकर्मसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ नामकरणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥
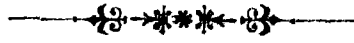
अत्र प्रमाणम् । नाम चास्मै दद्युः ॥ १ ॥ घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम् ॥ २ ॥ चतुरक्षरं वा ॥ ३ ॥ द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ४ ॥ युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥ ५ ॥ अयुजानि स्त्रीणाम् ॥ ६ ॥ अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विदध्यातामोपनयनात् ॥ ७ ॥ इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु ॥

दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं कुर्यान्न तद्धितमयुजाक्षरमाकारान्तꣳस्त्रियै शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥

इसीप्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रमें भी लिखा है:—

नामकरण अर्थात् जन्मे हुये बालक का सुन्दर नाम धरे नामकरण का काल जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ११ में वा १०१ एकसो एकवें अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट मित्र हितैषी लोगों को बुला यथावत् सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान बालक का पिता और ऋत्विज करें पुनः पृष्ठ ४—३१ में लिखे प्रमाणे सब मनुष्य ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण और सामान्यप्रकरणस्थ संपूर्ण विधि करके आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २८—२९ में लिखे प्रमाणे (त्वन्नोअग्ने०) इत्यादि आठ मन्त्रों से ८ आठ आहुति अर्थात् सब मिला के १६ घृताहुती करें तत्पश्चात् बालक को शुद्ध स्नान करा शुद्ध वस्त्र पहिना के उसकी माता कुण्ड के समीप बालक

के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा में रख के बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे होकर उत्तर भाग में पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग कर के अपनी पत्नी को देवे पश्चात् जो उसी संस्कार के लिये कर्त्तव्य हो उस प्रथम प्रधान होम को करें पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब साकल्य सिद्ध कर रक्खे उस में से प्रथम घी का चमसा भर के—

(ओं प्रजापतये स्वाहा)

इस मन्त्र से एक आहुति देकर पीछे जिस तिथि जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके, उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से ४ चार आहुती देनी अर्थात् एक तिथि दूसरी तिथि के देवता तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से अर्थात् तिथि नक्षत्र और उन के देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोल-के ४ चार घी की आहुति देवे, जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तो:—

ओं प्रतिपदे स्वाहा । ओं ब्रह्मणे स्वाहा । ओं अश्विन्यै स्वाहा । ओं अश्विभ्यां स्वाहा ॥ *

---

* **तिथि देवताः**—१—ब्रह्मन् । २—त्वष्टृ । ३—विष्णु । ४—यम । ५—सोम । ६—कुमार । ७—मुनि । ८—वसु । ९—शिव । १०—धर्म । ११—रुद्र । १२—वायु । १३—काम । १४—अनन्त । १५—विश्वेदेव । ३०—पितर ॥

नक्षत्र देवताः—अश्विनी—अश्वी । भरणी—यम । कृत्तिका—अग्नि । रोहिणी—प्रजापति । मृगशीर्ष—सोम । आर्द्रा—रुद्र । पुनर्वसु—अदिति । पुष्य—बृहस्पति । आश्लेषा-सर्प । मघा—पितृ । पूर्वाफल्गुनी—भग । उत्तराफल्गुनी—अर्यमन् । हस्त—सवितृ । चि-त्रा—त्वष्टृ । स्वाति—वायु । विशाखा—इन्द्राग्नी । अनुराधा—मित्र । ज्येष्ठा—इन्द्र । मूल—निर्ऋति । पूर्वाषाढा—अप् । उत्तराषाढा—विश्वेदेव । श्रवण—विष्णु । धनिष्ठा—वसु । शतभि-षज्—वरुण । पूर्वाभाद्रपदा—अजपाद । उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य । रेवती—पूषन् ॥

तत्पश्चात् पृष्ठ २७ में लिखी हुई स्विष्टकृत मन्त्र से एक आहुति और पृष्ठ २७-२८ में लिखे प्रमाणे ४ चार व्याहृति आहुति दोनों मिल के ५ आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसन पर बैठे और पिता बालक के नासिका द्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि यस्य ते नामामन्महि यन्त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ यजु० अ० ७ । मं० २९ ॥

(ओं कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि । आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ)

जो यह " असौ " पद है इस के पीछे बालक का ठहराया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षर का वा चार अक्षर का घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो २ अक्षर छोड़ के तीसरा, चौथा, पांचवां और य, र, ल, व, ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें * जैसे देव अथवा जयदेव ब्राह्मण

---

* ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ म, ये स्पर्श और य, र ल, व, ये चार अन्तःस्थ और ह एक ऊष्मा, इतने अक्षर नाम में होने चाहिये और स्वरों में से कोई भी स्वर हो। जैसे (भद्रः, भद्रसेनः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः) इत्यादि पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिये, तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खे अन्त्य में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त भी होवे, जैसे (श्रीः, ह्रीः, यशोदा, सुखदा. गान्धारी, सौभाग्यवती, कल्याणक्रीडा) इत्यादि परन्तु स्त्रियों के इस प्रकार के नाम कभी न रक्खे इस में प्रमाण (नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ १ ॥ मनुस्मृतौ । (ऋक्ष) रोहिणी, रेवती इत्यादि (वृक्ष) चम्पा, तुलसी इत्यादि (नदी) गंगा, यमुना, सरस्वती इत्यादि (अन्त्य) चांडाली इत्यादि (पर्वत) विन्ध्याचला, हिमालया इत्यादि (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि "अहि" सर्पिणी, नागी इत्यादि "प्रेष्य" दासी, किंकरी इत्यादि "भयंकर" भीमा, भयंकरी चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं ॥

हो तो देवशर्मा क्षत्रिय हो तो देववर्मा वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि नामों को प्रसिद्ध बोल के पुनः "असौ" पद के स्थान में बालक का नाम धर के पुनः "ओं कोसि०" ऊपर लिखित मन्त्र बोलना—

ओं स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्त्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु, असौ ॥

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवे इस प्रमाणे बालक का नाम रख के संस्कार में आये हुए मनुष्यों को वह नाम सुना के पृष्ठ ३०—३१ में लिखे प्रमाणे महावामदेव्यगान करे तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पृष्ठ ४—७ में लिखे प्रमाणे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करके बालक को आशीर्वाद देवें कि—

"हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्च्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः,,

हे बालक ! आयुष्मान् विद्यावान् धर्मात्मा यशस्वी पुरुषार्थी प्रतापी परोपकारी श्रीमान् हो ॥

इति नामकरणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ निष्क्रमणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

निष्क्रमण संस्कार उस को कहते हैं कि जो बालक को घर से जहां का वायुस्थान शुद्ध हो वहां भ्रमण कराना होता है उस का समय जब अच्छा देखें तभी बालक को बाहर घुमावें अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें इस में प्रमाणः—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति ॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है ॥

जननाद्यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तस्य तृतीयायाम् ॥

यह पारस्करगृह्यसूत्र में भी है ॥

अर्थः—निष्क्रमण संस्कार के काल के दो भेद हैं एक बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्लपक्ष की तृतीया और दूसरा चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि में यह संस्कार करे—

उस संस्कार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिनावे पश्चात् बालक को यज्ञशाला में बालक की माता ले आ के पति के दक्षिण पार्श्व में हो कर पति के सामने आकर बालक का मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रख के पति के हाथ में देवे पुनः पति के पीछे की ओर घूम के बायें पार्श्व में पश्चिमाभिमुख खड़ी रहे—

ओं यत्ते सुसीमे हृदयꣳहितमन्तः प्रजापतौ । वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ १ ॥ ओं यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदामृतस्याहं नाममाहं पौत्रमघꣳ रिषम् ॥ २ ॥ ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजापती । यथायन्न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करके पृष्ठ ४-३१ में लिखे प्रमाणे परमेश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण आदि सामान्य प्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्र को देख के इन निम्नलिखित तीन मन्त्रों से पुत्र के शिर को स्पर्श करे ॥

ओं अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ १ ॥ ओं प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ २ ॥ गवां त्वा हिंकारेणावजिघ्रामि । सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥

तथा निम्नलिखित मन्त्र बालक के दक्षिण कान में जपे—

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः । अस्मे शतꣳ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १ ॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे । पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ २ ॥

इस मन्त्र को वाम कान में जप के पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके स्त्री के शिर का स्पर्श करे तत्पश्चात् आनन्द पूर्वक उठ के बालक को सूर्य का दर्शन करावे और निम्नलिखित मन्त्र वहां बोले—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के थोड़ासा शुद्ध वायु में भ्रमण करा के यज्ञशाला में ला, सब लोग—

त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ॥

इस वचन को बोल के आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुए स्त्रियों और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब बालक की माता लड़के को शुद्ध वस्त्र पहिना दाहिनी ओर से आगे आके पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे और बालक की माता दाहिनी ओर से लौट कर बाईं ओर आ अञ्जलि भर के चन्द्रमा के सन्मुख खड़ी रह के—

ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳश्रितम् ।
तदहं विद्वांꣳस्तत्पश्यन्माहं पौत्रमघꣳरुदम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे तत्पश्चात् बालक की माता पुनः पति के पृष्ठ की ओर से पति के दाहिने पार्श्व से सन्मुख आ के पति से पुत्र को लेके पुनः पति के पीछे होकर बाईं ओर आ बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रख के खड़ी रहै और बालक का पिता जल की अञ्जलि भर (ओं यददश्च०) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ के दोनों प्रसन्न हो कर घर में आवें ॥

इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथान्नप्राशनविधिं वक्ष्यामः ॥

अन्नप्राशन संस्कार तभी करे जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे। इस में आश्वलायनगृह्यसूत्र का प्रमाण—

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् ॥१॥ घृतौदनं तेजस्कामः ॥२॥ दधिमधुघृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत् ॥३॥

इसी प्रकार पारस्करगृह्यसूत्रादि में भी है ॥

छठे महीने बालक को अन्नप्राशन करावे जिस को तेजस्वी बालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दही सहत और घृत तीनों भात के साथ मिला के निम्न-लिखित विधि से अन्नप्राशन करावे अर्थात् पूर्वोक्त पृष्ठ ४—३१ में कहे हुए संपूर्ण विधि को करके जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उसी दिन यह संस्कार करे और निम्न लिखे प्रमाणे भात सिद्ध करे ॥

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । ओं अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० । ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥

इन पांच मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि चावलों को धो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डाल देना जब अच्छे प्रकार पक जावें तब उतार थोड़े ठण्डे हुए पश्चात् होमस्थाली में—

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि । ओम् अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० । ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥ ५ ॥

इन पांच मन्त्रों से कार्यकर्त्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों को पात्र में पृथक् २ देके पृष्ठ २४—२५ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधानादि करके प्रथम आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार मिल के ८ आठ

घृत की आहुति देके पुनः उस पकाये हुए भात की आहुति नीचे लिखे हुए मन्त्रों से देवे ॥

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्ज्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहा । इदं वाचे । इदन्न मम ॥१॥ वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयᳯ स्वाहा। इदं वाचे वाजाय। इदन्न मम ॥ २ ॥

इन दो मन्त्रों से दो आहुति देवे तत्पश्चात् उसी भात में और घृत डालके-

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा । इदं प्राणाय इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अपानेन गन्धानमशीय स्वाहा । इदमपानाय इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा । इदं चक्षुषे । इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा। इदं श्रोत्राय। इदन्न मम ।४।

इन मन्त्रों से चार आहुति देके (ओं यदस्य कर्मणो०) पृष्ठ २७ में लि० स्विष्टकृत् आहुति एक देवे तत्पश्चात् पृष्ठ २६ में लि० व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २८—२९ में लिखे (ओं त्वन्नो०) इत्यादि से ८ आठ आज्याहुति मिल के १२ बारह आहुति देवे । उस के पीछे आहुति से बचे हुए भात में दही मधु और उस में घी यथायोग्य किंचित् २ मिला के और सुगन्धियुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़े से मिला के बालक के रुचि प्रमाण—

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्रप्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥१॥

इस मन्त्र को पढ़ के थोड़ा २ पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे यथारुचि खिला बालक का मुख धो और अपने हाथ धोके पृष्ठ ३०—३१ में लि० महावामदेव्य गान करके जो बालक के माता पिता और अन्य वृद्ध स्त्री पुरुष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना करके—

त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूयाः ।

इस वाक्य से बालक को आशीर्वाद देके पश्चात् संस्कार में आये हुए पुरुषों का सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का सत्कार बालक की माता करके सब को प्रसन्नतापूर्वक विदा करें ॥

इत्यन्नप्राशनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ चूड़ाकर्मसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

यह आठवां संस्कार चूड़ाकर्म है जिस को केशछेदन संस्कार भी कहते हैं। इस में आश्वलायन गृह्यसूत्र का मत ऐसा हैः—

तृतीये वर्षे चौलम् ॥ १ ॥ उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां शरावाणि निदधाति ॥ २ ॥

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादि में भी है ॥

सांवत्सरिकस्य चूड़ाकरणम् ॥

इसी प्रकार गोभिलीय गृह्यसूत्र का भी मत है, यह चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन बालक के जन्म से तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना उत्तरायणकाल शुक्ल पक्ष में जिस दिन आनन्द मङ्गल हो उस दिन यह संस्कार करें। विधिः—

आरम्भ में पृष्ठ ४–२८ में लिखित विधि करके चार शराबे ले एक में चावल दूसरे में यव, तीसरे में उर्द और चौथे शरावे में तिल भर के वेदी के उत्तर में धर देवे, धर के पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे "ओं अदितेऽनुमन्यस्व०" इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीन बाजू और पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे "ओं देव सवितः प्रसुव०" इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका के पूर्व पृष्ठ २४—२५ में लिखित अग्न्याधान समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करके जो समिधा प्रदीप्त हुई हो उस पर लक्ष देकर पृष्ठ २६ में आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २८–२९ में लि० आठ आज्याहुति सब मिल के सोलह १६ आहुति देके पृष्ठ २७–२८ में लिखे प्रमाणे " ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि० " इत्यादि मन्त्रों से चार आज्याहुति प्रधान होम की देके पश्चात् पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ और स्विष्टकृदग्नि मन्त्र से एक आहुति मिल के पांच घृत की आहुति देवे इतनी क्रिया करके कर्मकर्ता परमात्मा का ध्यान करके नाई की ओर प्रथम देख के—

ओं आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि।

आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१॥ अथर्व० कां०६ । सू०६८ ॥

इस मन्त्र का जप करके पिता बालक के पृष्ठभाग में बैठ के किञ्चित् उष्ण और किञ्चित् ठण्डा जल दोनों पात्रों में लेके (उष्णेनवायउदकेनेधि) इस मन्त्र को बोल के दोनों पात्र का जल एक पात्र में मिला देवे पश्चात् थोड़ा जल, थोड़ा माखन अथवा दही की मलाई ले के—

ओं अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा । चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥ १ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६८ ॥

ओं सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु । ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को बोल के बालक के शिर के बालों में तीन बार हाथ फेर के केशों को भिगोवे तत्पश्चात् कंगा लेके केशों को सुधार के इकट्ठा करे अर्थात् बिखरे न रहैं तत्पश्चात् (ओं ओषधे त्रायस्वैनꣳ मनꣳ हिꣳसीः) इस मन्त्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबा के (ओं विष्णोर्दꣳष्ट्रोसि) इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के—

ओं शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मामा हिꣳसीः ॥

इस मन्त्र को बोल के छुरे को दाहिने हाथ में लेवे तत्पश्चात्—

ओं स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः ॥

ओं निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननायरायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के उस छुरे और उन कुशाओं को केशों के समीप लेजाके—

ओं येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ॥ अथर्व० कां० ६। सू० ६८ ॥

इस मन्त्र को बोल के कुशसहित उन केशों को काटे * और वे काटे हुए केश और दर्भ शमी वृक्ष के पत्र सहित अर्थात् यहां शमी वृक्ष के पत्र भी प्रथम से रखने चाहिये उन सब को लड़के का पिता और लड़के की मा एक शरावा में रक्खे और कोई केश छेदन करते समय उड़ा हो उस को गोबर से उठा के शरावा में अथवा उस के पास रक्खे तत्पश्चात् इसी प्रकार—

ओं येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत्। तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥

इस मन्त्र से दूसरी बार केश का समूह दूसरी ओर का काट के उसी प्रकार शरावा में रक्खे तत्पश्चात्—

ओं येन भूयश्च रात्र्यां ज्योक् च पश्याति सूर्यम्। तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥

इस मन्त्र से तीसरी बार उसी प्रकार केशसमूह को काट के उपरि उक्त तीन मन्त्रों अर्थात् "ओं येनावपत्०" "ओं येन धाता०" "ओं येन भूयश्च०" और—

येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय ॥

इस एक, इन चार मन्त्रों को बोलके चौथी बार इसी प्रकार केशों के समूहों को काटे अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने का विधि पूर्ण हुए पश्चात् बाईं ओर

---

* केशछेदन की रीति ऐसी है कि दर्भ और केश दोनों युक्ति से पकड़ कर अर्थात् दोनों ओर से पकड़ के बीच में से केशों को छुरे से काटे यदि छुरे के बदले कैंची से काटें तो भी ठीक है॥

के केश काटने का विधि करे तत्पश्चात् उस के पीछे आगे के केश काटे परन्तु चौथी बार काटने में "येन पूषा०" इस मन्त्र के बदले—

ओं येन भूरिश्चरादिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥ १ ॥ यह मन्त्र बोल छेदन करे, तत्पश्चात्—

ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ १ ॥

इस एक मन्त्र को बोल के शिर के पीछे के केश एक बार काट के इसी (ओं त्र्यायुष०) मन्त्र को बोलते जाना और औंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेर के मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में दे के—

ओं यत् क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान् । शुन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः ॥

इस मन्त्र को बोल के नापित से पथरी पर छुरे की धार तेज करा के नापित से बालक का पिता कहै कि इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजो सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर कर कहीं छुरा न लगने पावे इतना कह के कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को ले जा, उस के सन्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठा के जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे परन्तु पांचों ओर थोड़ा २ केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे अथवा एक वार सब कटवा देवे पश्चात् दूसरी वार के केश रखने अच्छे होते हैं जब क्षौर हो चुके तब कुण्ड के पास पड़ा वा धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ वा शरावा आदि कि जिन में प्रथम अन्न भरा था नापित को देवे और मुण्डन किये हुए सब केश दर्भ शमीपत्र और गोबर नाई को देवे, यथायोग्य उसको धन वा वस्त्र भी देवे और नाई, केश दर्भ शमीपत्र और गोबर को जंगल में ले जा गढ़ा खोद के उस में सब डाल ऊपर से मट्टी से दाब देवे अथवा गोशाला नदी वा तालाब के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाड़ देवे ऐसा नापित से कह के अथवा किसी को साथ भेज देवे वह उससे उक्त प्रकार

करा लेवे। क्षौर हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तम वस्त्र पहिना के बालक को पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ ३०-३१ में० सामवेद का महावामदेव्य-गान करके बालक की माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ॥

इस मन्त्र को बोल बालक को आशीर्वाद दे के अपने २ घर को पधारें और बालक के माता पिता प्रसन्न होकर बालक को प्रसन्न रक्खें ॥

इति चूडाकर्म्मसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ कर्णवेधसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥
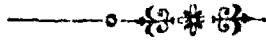
अत्र प्रमाणम्—कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा ॥१॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है। बालक के कर्ण वा नासिका के वेध का समय जन्म से तीसरे वा पांचवे वर्ष का उचित है जो दिन कर्ण वा नासिका के वेध का ठहराया हो उसी दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालंकार धारण करा के बालक की माता यज्ञशाला में लावे पृष्ठ ४–२९ तक में लिखा हुआ सब विधि करे और उस बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धर के–

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

इस मन्त्र को पढ़ के चरक, सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से कर्ण वा नासिका वेध करावें कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान और—

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियᳬसखायं परिषस्वजाना। योषेव सिङ्क्ते वितताधिधन्वञ्ज्याऽइयᳬसमने पारयन्ति ॥

इस मन्त्र को पढ़ के दूसरे वाम कर्ण का वेध करे तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे कि जिस से छिद्र पूर न जावें और ऐसी ओषधी उस पर लगावे जिस से कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें ॥

इति कर्णवेधसंस्कारविधिः समाप्तः ॥ ९ ॥

(५१०)

अथोपनयन * संस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

अत्र प्रमाणानि—अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥१॥ गर्भाष्टमे वा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥३॥ द्वादशे वैश्यम् ॥ ४ ॥ आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतःकालः ॥ ५ ॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥ ६ ॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रमाण है इसी प्रकार पारस्करादि गृह्यसूत्रों का भी प्रमाण है ॥

अर्थः—जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उस से ८ आठवें वर्ष में ब्राह्मण के, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें, तथा ब्राह्मण के १६ सोलह क्षत्रिय के २२ बाईस और वैश्य के बालक का २४ चौबीस से पूर्व २ यज्ञोपवीत चाहिये यदि पूर्वोक्त काल में इन का यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित माने जावें ॥

श्लोकः—ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ १ ॥

यह मनुस्मृति का वचन है कि जिस को शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पांचवें क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें, परन्तु यह बात तब सम्भव है कि जब बालक की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे, उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठबुद्धि और शीघ्र समर्थ बढ़ने वाले होते हैं जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब यह पढ़ने के योग्य हुआ, तभी यज्ञोपवीत करा देवें—

* उप नाम समीप, नयन अर्थात् प्राप्त करना वा होना ॥

यज्ञोपवीत का समय—उत्तरायण सूर्य और—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत् । ग्रीष्मे राजन्यम् । शरदि वैश्यम् । सार्वकालमेके ॥ यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ।

अर्थः—ब्राह्मण का वसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करें अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है और इस का प्रातःकाल ही समय है ॥

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः । यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है—

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उस से तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक बार वा अनेकवार दुग्धपान, क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कि कढ़ी होती है वैसी बना कर पिलावें और (आमिक्षा) अर्थात् जिस को श्रीखण्ड वा सिखण्ड कहते हैं जो दही चौगुना दूध एकगुना तथा यथायोग्य खांड केशर डाल के कपड़े में छान कर बनाया जाता है उस को वैश्य का लड़का पी के व्रत करे अर्थात् जब २ लड़कों को भूख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीयें ॥

विधिः—अब जिस दिन उपनयन करना हो उस के पूर्व दिन में सब सामग्री इकट्ठी कर याथातथ्य शोधन आदि कर लेवें और उस दिन पृष्ठ ४—३१ वें तक सब कुण्ड के समीप सामग्री धर प्रातःकाल बालक का क्षौर करा शुद्ध जल से स्नान करा के उत्तम वस्त्र पहिना यज्ञमण्डप में पिता वा आचार्य्य बालक को मिष्टान्नादि का भोजन करा के वेदी के पश्चिम भाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावे और बालक का पिता और पृष्ठ २३ में लि० ऋत्विज् लोग भी पूर्वोक्त प्रकार अपने २ आसन पर बैठ यथावत् आचमनादि क्रिया करें ॥

पश्चात् कार्य्यकर्त्ता बालक के मुख से:—

ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्मचार्यसानि,

ये वचन बुलवा के * आचार्य्य:—

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम् । तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे ॥१॥

इस मन्त्र को बोल के बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनावे पश्चात् बालक आचार्य्य के सन्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ १ ॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को बोल के आचार्य बायें स्कन्ध के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल दहने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दहिने ओर साथ बैठा के ईश्वर की स्तुतिप्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण का पाठ करके समिदाधान, अग्न्याधान करके (ओं अदितेऽनुमन्यस्व०) इत्यादि पूर्वोक्त चार मन्त्रों से पूर्वोक्त रीति से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका पश्चात् आज्याहुति करने का आरम्भ करना ।

वेदी में प्रदीप्त हुई समिधा को लक्ष्य में धर [illegible] आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार तथा पृष्ठ [illegible] में आज्याहुति ८ तीनों मिल के १६ सोलह घृत की आहुति देके पश्चात् बालक के हाथ से प्रधान होम जो विशेष शाकल्य बनाया हो उस की आहुतियां निम्न

* आचार्य्य, उस को कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जानने हारा छल कपट रहित, अतिप्रेम से सब को विद्या का दाता, परोपकारी, तन मन और धन से सब को सुख बढ़ाने में तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सब का हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे ।

लिखित मन्त्रों से दिलानी. (ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि०) पृष्ठ २७-२८ में० ४ चार आज्याहुति देवे तत्पश्चात्—

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् । तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं वायो व्रतपते० * स्वाहा ॥ इदं वायवे, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं सूर्य व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं सूर्याय, इदन्न मम ॥३॥ ओं चन्द्र व्रतपते० स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय, इदन्न मम ॥४॥ ओं व्रतानां व्रतपते० स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये, इदन्न मम ॥ ५ ॥

इन पांच मन्त्रों से पांच आज्याहुति दिलानी उस के पीछे पृष्ठ २६—२७ में० व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २७ में० स्विष्टकृत आहुति १ एक और प्राजापत्याहुति १ एक, ये सब मिल के छः घृत की आहुति देनी. सब मिल के १५ पन्द्रह आहुति बालक के हाथ से दिलानी उस के पश्चात् आचार्य्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बालक आचार्य्य के सन्मुख पश्चिम में मुख करके बैठे तत्पश्चात् आचार्य्य बालक की ओर देख के:—

ओं आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमर्त्यं युयोतन । अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र का जप करे ॥

माणवकवाक्यम्—"ओं ब्रह्मचर्यमागामुपमानयस्व,,

आचार्योक्तिः—"को † नामासि,,

बालकोक्तिः "एतन्नामास्मि,, ‡ तत्पश्चात्—

* इस के आगे व्रतं चरिष्यामि इत्यादि संपूर्ण मन्त्र बोलना चाहिये ॥

† तेरा नाम क्या है ऐसा पूछना । ‡ मेरा यह नाम है ।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे ॥ १ ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों को पढ़ के बटुक की दक्षिण हस्ताञ्जलि शुद्धोदक से भरनी तत्पश्चात् आचार्य्य अपनी हस्ताञ्जलि भर के:—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमम् । तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ के बालक की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठसहित पकड़ के:—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ * ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के बालक की हस्ताञ्जलि का जल नीचे पात्र में छुड़ा देना इसी प्रकार दूसरी बार अर्थात् प्रथम आचार्य अपनी अञ्जलि भर बालक की अञ्जलि में अपनी अञ्जलि का जल भर के अङ्गुष्ठ सहित हाथ पकड़ के:—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ ॥ १ ॥

इस मन्त्र से पात्र में छुड़वा के पुनः इसी प्रकार तीसरी बार आचार्य अपने हाथ में जल भर पुनः बालक की अञ्जलि में भर अङ्गुष्ठसहित हाथ पकड़:—

ओं अग्निराचार्यस्तव, असौ ॥

तीसरी बार बालक की अञ्जलि का जल छुड़वा के बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह देख के आचार्य:—

* असौ इस पदके स्थानमें बालकका सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करनाचाहिये।

ओं देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय समामृत ।१।

इस एक और पृष्ठ ६८ में लि० (तन्त्र जु र्वेंवहितम्०) इस दूसरे मन्त्र को पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करा, बालकसहित आचार्य सभामण्डप में आ, यज्ञकुण्ड की उत्तरबाजू की ओर बैठ के:—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः । ओं सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व, * असौ ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सन्मुख बैठे पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण स्कन्धे पर अपने दक्षिण हाथ से स्पर्श और पश्चात् अपने हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके:—

ओं प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि: अमुम् ॥ १ ॥ इस मन्त्र को बोलने के पश्चात्

ओं अहुर इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ २ ॥

इस मन्त्र से उदर पर और:

ओं कृशन इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ ३ ॥

इस मन्त्र से हृदय:—

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि, असौ ॥ ४ ॥

इस मन्त्र को बोल के दक्षिण स्कन्ध और:—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ ॥ ५ ॥

इस मन्त्र को बोल के वाम हाथ से वाम स्कन्ध पर स्पर्श कर के बालक के हृदय पर हाथ धर के:—

* असौ और अमुम् इन दोनों पदों के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये।

ओं तं धीरा॑सः कुवय॒ उन्न॑यन्ति स्वा॒ध्यो३॒॑ मन॑सा देव॒यन्त॑ः ॥ ६ ॥

इस मन्त्र को बोल के आचार्य सन्मुख रह कर बालक के दक्षिण हृदय पर अपना हाथ रख के:—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं तेऽअस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ १ ॥

आचार्य इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले अर्थात् हे शिष्य ! बालक तेरे हृदय को मैं अपने आधीन करता हूं तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्र मन हो प्रीति से सुन कर उस के अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे । यह प्रतिज्ञा करावे इसीप्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि हे आचार्य आप के हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूं मेरे चित्त के अनुकूल आप का चित्त सदा रहे आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिये और परमात्मा मेरे लिये आप को सदा नियुक्त रक्खे इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके—

आचार्योक्तिः

को नामाऽसि ॥ तेरा नाम क्या है ?

बालकोक्तिः—अहम्भोः ॥

मेरा अमुक नाम है ऐसा उत्तर देवे । आचार्यः—

कस्य ब्रह्मचार्य्यसि ॥ तू किस का ब्रह्मचारी है । बालकः—

भवतः ॥ आप का । आचार्य बालक की रक्षा के लिये:—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव *असौ ॥ इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् ।

* असौ इस पद के स्थान में सर्वत्र बालक का नामोच्चारण करना चाहिये ।

ओं कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि ॥ १ ॥ ओं प्रजापतये त्वा परिददामि । देवाय त्वा सवित्रे परिददामि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि । द्यावापृथिवीभ्या त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि । सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ॥२॥

इन मन्त्रों को बोल, बालक को शिक्षा करे कि प्राण आदि की विद्या के लिये यत्नवान् हो ॥

यह उपनयन संस्कार पूरे हुए पश्चात् यदि उसी दिन वेदारम्भ करने का विचार पिता और आचार्य का हो तो उसी दिन करना और जो दूसरे दिन का विचार हो तो पृष्ठ ३०—३१ में लि० महावामदेव्य गान कर के संस्कार में आई हुई स्त्रियों का बालक की माता और पुरुषों का बालक का पिता सत्कार करके विदा करे और माता पिता आचार्य सम्बन्धी इष्ट मित्र सब मिल के—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः, आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः ।

इस प्रकार आशीर्वाद देके अपने २ घर को सिधारें ॥

इत्युपनयनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ वेदारम्भसंस्कारविधिर्विधीयते ॥
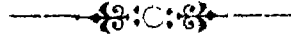
वेदारम्भ उस को कहते हैं जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग* चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना ॥

समयः—जो दिन उपनयन संस्कार का है वही वेदारम्भ का है यदि उस दिवस में न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करे यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे ॥

विधिः—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान करा के शुद्ध वस्त्र पहिना, पश्चात् कार्यकर्त्ता अर्थात् पिता यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पृष्ठ ४—१६ तक में ईश्वरस्तुति† प्रार्थनोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण करके पृष्ठ २४ में (भूर्भुवः स्वः०) इस मन्त्र से अग्न्याधान २४-२५ पृष्ठ में (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान, पृष्ठ २५—२६ में (ओं अदितेऽनुमन्यस्व०) इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीनों ओर और (ओं देव सवितः०) इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका के पृष्ठ २४ में (उद्बुध्यस्वाग्ने०) इस मन्त्र से अग्नि को प्रदीप्त करके प्रदीप्तसमिधा पर पृष्ठ २६-२७ में आघारावाज्यभागाहुति ४ चार, व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २८—२९ में आज्याहुति आठ मिल के १६ सोलह आज्याहुति देने के पश्चात् प्रधान‡ होमाहुति दिला के पश्चात् पृष्ठ २६—२७

---

* (अङ्ग) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, (उपाङ्ग) पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, साङ्ख्य और वेदान्त (उपवेद) आयुर्वेद, धनुर्वेद गान्धर्ववेद और अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र । (ब्राह्मण) ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ (वेद) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन सब को क्रम से पढ़े ॥

† जो उपनयन किये पश्चात् उसी दिन वेदारम्भ करे उस को पुनः वेदारम्भ के आदि में ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना और शान्तिकरण करना आवश्यक नहीं ॥

‡ प्रधान होम उस को कहते हैं जो संस्कार मुख्य करके किया जाता है ॥

में व्याहृति आहुति ४ चार और स्विष्टकृत् आहुति १ एक, प्राजापत्याहुति १ एक मिलकर छः आज्याहुति बालक के हाथ से दिलानी तत्पश्चात्:—

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु । ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि । ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु । ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि । ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र से वेदी के अग्नि को इकट्ठा करना तत्पश्चात् बालक, कुण्ड की प्रदक्षिणा करके २५-२६ पृष्ठ में लि० प्र० "अदितेऽनुमन्यस्व०" इत्यादि ४ चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसिञ्चन करके बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रह कर घृत में भिजो के एक समिधा हाथ में ले:—

ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस ऽएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳस्वाहा ॥ १ ॥

समिधा वेदिस्थ अग्नि के मध्य में छोड़ देना इसी प्रकार दूसरी और तीसरी समिधा छोड़ पुनः "ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०" इस मन्त्र से वेदिस्थ अग्नि को इकट्ठा करके पृष्ठ २५-२६ में लि० प्र० "ओं अदितेऽनुमन्यस्व०" इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसेचन करके बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदी के अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ा सा तपा के हाथ में जल लगा:—

ओं तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि ॥ १ ॥ ओं आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे मे देहि ॥ २ ॥ ओं वर्चोदा

अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥ ३ ॥ ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण ॥ ४ ॥ ओं मेधां मे सविता आ ददातु ॥ ५ ॥ ओं मेधां मे देवी सरस्वती आददातु ॥ ६ ॥ ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ ७ ॥

इन सात मन्त्रों से सात वार किञ्चित् हथेली उष्ण कर जल स्पर्श करके मुखस्पर्श करना तत्पश्चात् बालक—

ओं वाक् म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से मुख ॥

ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से नासिका द्वार ॥

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्र ॥

ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों कान ॥

ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे ॥

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु । यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् । यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥

इन मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान कर के कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जा के जानू को भूमि में टेक के पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के सन्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे ।

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीम् भो अनुब्रूहि ॥

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि हे आचार्य प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महाव्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक अर्थात् तीनों मिल के परमात्मा के वाचक मन्त्र को मुझे उपदेश कीजिये तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रखके अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन बार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे ॥

प्रथम बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्।

इतना टुकड़ा एक २ पद का शुद्ध उच्चारण बालक से करा के दूसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

एक २ पद से यथावत् धीरे २ उच्चारण करवा के, तीसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

धीरे २ इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप से इस का अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थः—(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का नाम है जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ानेहारा (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति करानेहारा है उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उस को हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्र, चोदयात्) प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और इससे भिन्न और किसी को उपास्य इष्टदेव उस के तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये इसप्रकार अर्थ सुनाये पश्चात्—

ओं मम व्रते हृदयं ते दधामि । मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा करके—

ओं इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात् । प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी शुभगा मेखलेयम् ॥ १ ॥

इस मन्त्र से आचार्य सुन्दर चिकनी प्रथम बना के रक्खी हुई मेखला * को बालक के कटि में बांध के—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् । स उ श्रेयान् भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कोपीन दो अंगोछे और एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे और उन में से एक कोपीन एक कटिवस्त्र और एक उपरना बालक को आचार्य धारण करावे तत्पश्चात् आचार्य दण्ड † हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

---

* ब्राह्मण को मुञ्ज वा दर्भ की क्षत्रिय को धनुष् संज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिये ॥

† ब्राह्मण के बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा बिल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को बट वा खदिर का ललाट भ्रूतक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्ष का नासिका के अग्रभाग तक दण्ड प्रमाण और वे दण्ड चिकने सूधे हों अग्नि में जले, टेढे, कीड़ों के खाये हुये न हों और एक २ मृगचर्म उन के बैठने के लिये एक २ जलपात्र एक २ उपपात्र और एक २ आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये ।

ओं यो मे दंडः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम् ।
तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के बालक आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ, * ॥ १ ॥ अपोऽशान ॥ २ ॥ कर्म कुरु ॥ ३ ॥ दिवा मा स्वाप्सीः ॥ ४ ॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥ ५ ॥ द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥ ६ ॥ आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥ ७ ॥ क्रोधानृते वर्जय ॥ ८ ॥ मैथुनं वर्जय ॥ ९ ॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥ १० ॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥ ११ ॥ अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥ १२ ॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर ॥ १३ ॥ क्षुरकृत्यं वर्जय ॥ १४ ॥ मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥ १५ ॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥ १६ ॥ अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय ॥ १७ ॥ अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥ १८ ॥ तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचन द्र-

* असौ इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम सर्वत्र उच्चारण करे ।

ण्याणि मा सेवस्व ॥ १९ ॥ नित्यं युक्ताहारविहार-वान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥ २० ॥ सुशी-लो मितभाषी सभ्यो भव ॥ २१ ॥ मेखलादण्डधा-रणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरण-प्रातः सायमभिवादनविद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥ २२ ॥

अर्थः—तू आज से ब्रह्मचारी है ॥ १ ॥ नित्यसन्ध्योपासन भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥ २ ॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर ॥ ३ ॥ दिन में शयन कभी मत कर ॥ ४ ॥ आचार्य के आधीन रह के नित्य साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर ॥ ५ ॥ एक २ साङ्गोपाङ्ग वेद के लिये बारह २ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जबतक साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पूरे होवें तब तक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥ ६ ॥ आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे उस को तू कभी मत मान और उस का आचरण मत कर ॥ ७ ॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ॥ आठ * प्रकार के मैथुन को छोड़ देना ॥ ९ ॥ भूमि में शयन करना पलंग आदि पर कभी न सोना ॥ १० ॥ कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अञ्जन का सेवन मत करे ॥ ११ ॥ अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक, का ग्रहण कभी मत कर ॥ १२ ॥ रात्रि के चौथे प्रहर में जाग आवश्यक शौचादि दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना योगाभ्यास, का आचरण नित्य किया कर ॥ १३ ॥ क्षौर मत करा ॥ १४ ॥ मांस, रूखा शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ॥ १५ ॥ बैल घोड़ा हाथी ऊंट आदि की स-

* स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम, यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है जो इन को छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी होता है ॥

चारी मत कर ॥ १६ ॥ गांव में निवास, और जूता और छत्र का धारण मत कर ॥ १७ ॥ लघुशङ्का के विना उपस्थ इन्द्रिय का स्पर्श से वीर्यस्खलन कभी न कर के वीर्य को शरीर में रखके निरन्तर ऊर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे इस प्रकार यत्न से वर्त्ता कर ॥ १८ ॥ तैलादि से अंगमर्दन उबटना अतिखट्टा, अमली आदि, अतितीखा लालमरिची आदि, कसैला, हरड़ आदि क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ॥ १९ ॥ नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो ॥ २० ॥ सुशील थोड़े बोलने वाला सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर ॥ २१ ॥ मेखला और दण्ड का धारण भिक्षाचरण अग्निहोत्र स्नान सन्ध्योपासन आचार्य का प्रियाचरण प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं ॥ २२ ॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़ के कहे कि जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूंगा तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रहके माता, पिता, बहिन, भाई, मामा, मौसी, चाचा आदि से ले के जो भिक्षा देने में नकार न करें उन से भिक्षा * मांगे और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देवे तत्पश्चात् आचार्य उस में से कुछ थोड़ासा अन्न ले के वह सब भिक्षा बालक को दे देवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिये रख छोड़े तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठा पृष्ठ ३०—३१ में लि० वामदेव्यगान को करना तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे पश्चात् सायंकाल तक विश्राम और गृहाश्रम संस्कार में लिखा सन्ध्योपासन आचार्य बालक के हाथ से करावे और पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य, कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और स्थालीपाक अर्थात् पृष्ठ १८ में लि० भात बना उस में घी डाल पात्र में रख पृष्ठ २४—२५

---

* ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो " भवान् भिक्षां ददातु " और जो स्त्री से मांगे तो " भवती भिक्षां ददातु " और क्षत्रिय का बालक " भिक्षां भवान् ददातु " और स्त्री से " भिक्षां भवती ददातु " वैश्य का बालक " भिक्षां ददातु भवान् " और "भिक्षां ददातु भवती" ऐसा वाक्य बोले ॥

में लि० समिदाधान कर पुनः समिधा प्रदीप्त कर आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति देनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा हो के पृष्ठ ८८ में "ओं अग्ने सुश्रवः०" इस मन्त्र से तीन समिधा की आहुति देवे तत्पश्चात् बालक बैठ के यज्ञकुण्ड के अग्नि से अपना हाथ तपा पृष्ठ २३-२४ में पूर्ववत् मुख का स्पर्श करके अङ्गस्पर्श करना तत्पश्चात् पृष्ठ १८ में लि० प्र० बनाये हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेके उस में घी मिला:—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषꣳस्वाहा । इदं सदसस्पतये—इदन्न मम ॥ १ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ इदं सवित्रे—इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं ऋषिभ्यः—स्वाहा ॥ इदं ऋषिभ्यः—इदन्न मम ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से तीन और पृष्ठ २७ में लि० (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से चौथी आहुति देवें तत्पश्चात् पृष्ठ २६-२७ में लि० व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २८-२९ में (ओं त्वन्नो०) इन ८ आठ मन्त्रों से आज्याहुति ८ आठ मिल के १२ बारह आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ ३०-३१ में लि० वामदेव्यगान आचार्य के साथ करके—

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये ॥

ऐसा वाक्य बोल के आचार्य्य का वन्दन करे और आचार्य्य—

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य ॥

ऐसा आशीर्वाद देके पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक् २ बैठ के करें तत्पश्चात् हस्त मुख प्रक्षालन करके संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों उनको यथायोग्य भोजन करा

तत्पश्चात् स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जने बालक को निम्नलिखितः—

हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

ऐसा आशीर्वाद दे के अपने २ घर को चले जायें तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ३ तीन दिन तक भूमि में शयन प्रातः सायं पृ० ८८ लि० (ओमग्ने सुश्रवः०) इस मन्त्र से समिधा होम और पृष्ठ २३—२४ में लि० मुख आदि अङ्गस्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिन तक (सदसस्पति०) इत्यादि पृष्ठ ९५ में लि० ४ चार स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करवावे और ३ तीन दिन तक क्षार लवण रहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य्य भी करे ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ १ ॥ इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति । ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकाँस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥ ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ॥ स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति । आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ ४ ॥ ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः । प्राणापानौ जनयन्नाद्व्यानं

वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ११ । सू० ५ ॥

संक्षेप से भावार्थ—आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञा पूर्वक समीप रख के ३ तीन रात्रि पर्यन्त गृहाश्रम के प्रकरण में लिखे सन्ध्योपासनादि सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर उस के आत्मा के भीतर गर्भरूप विद्यास्थापन करने के लिये उसको धारण कर और उसको पूर्ण विद्वान् कर देता और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है तब उस को देखने के लिये सब विद्वान् लोग सन्मुख आकर बड़ा मान्य करते हैं ॥ १ ॥

जो यह ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय तीन समिधा अग्नि में होमकर ब्रह्मचर्य के व्रत का नियम पूर्वक सेवन करके विद्या पूर्ण करने को दृढोत्साही होता है वह जानो पृथिवी सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सब का पालन करता है क्योंकि वह समिदाधान मेखलादि चिन्हों का धारण और परिश्रम से विद्या पूर्ण करके इस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप तप से सब लोगों को सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है ॥ २ ॥

जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण कर दीक्षित हो के (दीर्घश्मश्रुः) ४० चालीस वर्ष तक डाढ़ी मूंछ आदि पञ्च केशों का धारण करने वाला ब्रह्मचारी होता है वह पूर्व समुद्ररूप ब्रह्मचर्यानुष्ठान को पूर्ण करके गुरुकुल से उत्तर समुद्र अर्थात् गृहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है वह सब लोगों का संग्रह करके वारंवार पुरुषार्थ और जगत् को सत्योपदेश से आनन्दित कर देता है ॥ ३ ॥

वही राजा उत्तम होता है जो पूर्ण ब्रह्मचर्यरूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान् सुशिक्षित सुशील जितेन्द्रिय हो कर राज्य का विविध प्रकार से पालन करता है और वही विद्वान् ब्रह्मचारी की इच्छा करता और आचार्य हो सकता है जो यथावत् ब्रह्मचर्य से संपूर्ण विद्याओं को पढ़ता है ॥ ४ ॥

जैसे लड़के पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण ज्वान हो के अपने सदृश कन्या से विवाह करें वैसे कन्या भी अखण्ड ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ पूर्णयुवति हो अपने तुल्य पूर्ण युवावस्था वाले पति को प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

जब ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों को शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक धारण करता है तभी प्रकाशमान होता उस में सम्पूर्ण दिव्यगुण निवास करते और सब विद्वान् उससे मित्रता करते हैं वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य ही से प्राण, दीर्घजीवन, दुःख क्लेशों का नाश, संपूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम वाणी, पवित्र आत्मा, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठाऽऽज्ञा को धारण करके सब मनुष्यों के हित के लिये सब विद्याओं का प्रकाश करता है ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्यकालः ॥

इसमें छान्दोग्योपनिषद् के तृतीय प्रपाठक के सोलहवें खण्ड का प्रमाण ।

मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेद ॥ १ ॥ पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानिचतुर्विंᳬशतिवर्षाणि तत् प्रातःसवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदᳬ सर्वं वासयन्ति ॥ २ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनᳬ सवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ३ ॥ अथ यानि चतुश्चत्वारिᳬशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनᳬ सवनं चतुश्चत्वारिᳬशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनᳬ सवनं तदस्य रुद्राः अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदᳬ सर्वᳬ रोदयन्ति ॥ ४ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनᳬ सवनं

तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहम्प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥५॥अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षराजगतीजागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥ ६ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ७ ॥

अर्थः—जो बालक को ५ पांच वर्ष की आयुतक माता पांच से ८ आठ तक पिता ८ आठ से ४८ अड़तालीस ४४ चवालीस ४० चालीस ३६ छत्तीस ३० तीस तक अथवा २५ पच्चीस वर्ष तक तथा कन्या को ८ आठ से २४ चौबीस २२ बाईस २० बीस १८ अठारह अथवा १६ सोलह वर्ष तक आचार्य की शिक्षा प्राप्त हो तभी पुरुष वा स्त्री विद्यावान् होकर धर्मार्थ काम मोक्ष के व्यवहारों में अतिचातुर होते हैं ॥ १ ॥ यह मनुष्य देह यज्ञ अर्थात् अच्छे प्रकार इसको आयु बल आदि से संपन्न करने के लिये छोटे से छोटा यह पक्ष है कि २४ चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पुरुष और १६ सोलह वर्ष तक स्त्री ब्रह्मचर्याश्रम यथावत् पूर्ण जैसे २४ चौबीस अक्षर का गायत्री छन्द होता है वैसे करे वह प्रातःसवन कहाता है जिससे इस मनुष्य देह के मध्य वसुरूप प्राण प्राप्त होते हैं जो बलवान् होकर सब शुभ गुणों को शरीर आत्मा और मन के बीच में वास कराते हैं ॥ २ ॥ जो कोई इस २५ पच्चीस वर्ष के आयु से पूर्व ब्रह्मचारी को विवाह वा विषय भोग करने का उपदेश करे उसको वह ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि देख, यदि मेरे प्राण मन और इन्द्रिय २५ पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य से बलवान् न हुए तो मध्यम सवन जो कि आगे ४४ चवालीस वर्ष

तक का ब्रह्मचर्य कहा है उसको पूर्ण करने के लिये मुझ में सामर्थ्य न हो सकेगा किन्तु प्रथम कोटि का ब्रह्मचर्य मध्यम कोटि के ब्रह्मचर्य को सिद्ध करता है इसलिये क्या मैं तुम्हारे सदृश मूर्ख हूं कि जो इस शरीर प्राण अन्तःकरण और आत्मा के संयोगरूप सब शुभ गुण कर्म और स्वभाव के साधन करने वाले इस संघात को शीघ्र नष्ट करके अपने मनुष्य देह धारण के फल से विमुख रहूं और सब आश्रमों के मूल सब उत्तम कर्मों में उत्तम कर्म और सब मुख्य कारण ब्रह्मचर्य को खण्डित करके महादुःखसागर में कभी डूबूं किन्तु जो प्रथम आयु में ब्रह्मचर्य करता है वह ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त होके निश्चित रोगरहित होता है इसलिये तुम मूर्ख लोगों के कहने से ब्रह्मचर्य का लोप मैं कभी न करूंगा ॥ ३ ॥ और जो ४४ चवालीस वर्ष तक अर्थात् जैसा ४४ चवालीस अक्षर का त्रिष्टुप् छन्द होता है तद्वत् जो मध्यम ब्रह्मचर्य करता है वह ब्रह्मचारी रुद्ररूप प्राणों को प्राप्त होता है कि जिसके आगे किसी दुष्ट की दुष्टता नहीं चलती और वह सब दुष्ट कर्म करने वालों को सदा रुलाता रहता है ॥ ४ ॥ यदि मध्यम ब्रह्मचर्य के सेवन करने वाले से कोई कहे कि तू इस ब्रह्मचर्य को छोड़ विवाह करके आनन्द को प्राप्त हो उसको ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि जो सुख अधिक ब्रह्मचर्याश्रम के सेवन से होता और विषयसम्बन्धी भी अधिक आनन्द होता है वह ब्रह्मचर्य को न करने से स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होता क्योंकि सांसारिक व्यवहार विषय और परमार्थ सम्बन्धी पूर्ण सुख को ब्रह्मचारी ही प्राप्त होता है अन्य कोई नहीं इसलिये मैं इस सर्वोत्तम सुख प्राप्ति के साधन ब्रह्मचर्य का लोप न करके विद्वान् बलवान् आयुष्मान् धर्मात्मा हो के संपूर्ण आनन्द को प्राप्त होऊंगा। तुम्हारे निर्बुद्धियों के कहने से शीघ्र विवाह करके स्वयं और अपने कुल को नष्ट भ्रष्ट कभी न करूंगा ॥ ४ ॥ अब ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त जैसा कि ४८ अड़तालीस अक्षर का जगती छन्द होता है वैसे इस उत्तम ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या, पूर्णबल, पूर्णप्रज्ञा, पूर्णशुभगुण, कर्म, स्वभावयुक्त सूर्यवत् प्रकाशमान होकर ब्रह्मचारी सब विद्याओं को ग्रहण करता है ॥ ५ ॥ यदि कोई इस सर्वोत्तम धर्म से गिराना चाहे उसको ब्रह्मचारी उत्तर देवे कि अरे! छोकरों के छोकरे मुझ से दूर रहो तुम्हारे दुर्गन्ध रूप भ्रष्ट वचनों से मैं दूर रहता हूं मैं इस

उत्तम ब्रह्मचर्य का लोप कभी न करूंगा इसको पूर्ण करके सर्वरोगों से रहित सर्वविद्यादि शुभ गुण कर्म स्वभाव सहित होऊंगा इस मेरी शुभ प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करे जिससे मैं तुम निर्बुद्धियों का उपदेश और विद्या पढ़ा के विशेष तुम्हारे बालकों को आनन्द युक्त कर सकूं ॥ ६ ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति । तत्राषोडशाद् वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनम् । आचत्वारिंशतस्सम्पूर्णता । ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोड़शे ।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥१॥

यह धन्वन्तरिजी कृत सुश्रुतग्रन्थ का प्रमाण है।

अर्थः—इस मनुष्य देह की ४ अवस्था हैं एक वृद्धि दूसरी यौवन तीसरी संपूर्णता चौथी किञ्चित्परिहाणि करने हारी अवस्था है इन में १६ सोहलवें वर्ष आरम्भ २५ पच्चीसवें वर्ष में पूर्त्ति वाली वृद्धि की अवस्था है जो कोई इस वृद्धि की अवस्था में वीर्यादि धातुओं का नाश करेगा वह कुल्हाड़े से काटे वृक्ष वा दंडे से फूटे घड़े के समान अपने सर्वस्व का नाश कर के पश्चात्ताप करेगा पुनः उस के हाथ में सुधार कुछ भी न रहेगा और दूसरी जो युवावस्था उस का आरम्भ २५ पच्चीसवें वर्ष से और पूर्त्ति ४० चालीसवें वर्ष में होती है जो कोई इस को यथावत् संरक्षित न कर रक्खेगा वह अपनी भाग्यशालीनता को नष्ट कर देवेगा और तीसरी पूर्ण युवावस्था ४० चालीसवें वर्ष में होती है जो कोई ब्रह्मचारी हो कर पुनः ऋतुगामी परस्त्रीत्यागी एकस्त्रीव्रत गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचारी न रहेगा वह भी बना बनाया धूल में मिल जायगा और चौथी ४० चालीसवें वर्ष से यावत् निर्वीर्य न हो तावत् किञ्चित् हानिरूप अवस्था है यदि किञ्चित् हानि के बदले वीर्य्य की अधिक हानि करेगा वह भी राजयक्ष्मा और भगन्दरादि रोगों से पीड़ित हो जायगा और जो इन चारों अवस्थाओं को यथोक्त सुरक्षित

रक्खेगा वह सर्वदा आनन्दित होकर सब संसार को सुखी कर सकेगा ॥

अब इस में इतना विशेष समझना चाहिये कि स्त्री और पुरुष के शरीर में पूर्वोक्त चारों अवस्थाओं का एकसा समय नहीं है किन्तु जितना सामर्थ्य २५ पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना सामर्थ्य स्त्री के शरीर में १६ सोलहवें वर्ष में होजाता है यदि बहुत शीघ्र विवाह करना चाहें तो २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष और १६ सोलह वर्ष की स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्य वाले होते हैं इस कारण इस अवस्था में जो विवाह करना वह अधम विवाह है और जो १७ सत्रहवें वर्ष की स्त्री और ३० तीस वर्ष का पुरुष १८ अठारह वर्ष की स्त्री और छत्तीस वर्ष का पुरुष १९ उन्नीस वर्ष की स्त्री ३८ अड़तीस वर्ष का पुरुष विवाह करे तो इस को मध्यम समय जानो और जो २० बीस २१ इक्कीस २२ बाईस वा २४ चौबीस वर्ष की स्त्री और ४० चालीस ४२ बयालीस ४६ छयालीस और ४८ अड़तालीस वर्ष का पुरुष होकर विवाह करे वह सर्वोत्तम है हे ब्रह्मचारिन् इन वाक्यों को तू ध्यान में रख जो कि तुझ को आगे के आश्रमों में काम आवेंगी जो मनुष्य अपने सन्तान कुल सम्बन्धी और देश की उन्नति करना चाहें वे इन पूर्वोक्त और आगे कही हुई बातों का यथावत् आचरण करें ॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ॥ १ ॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥ २ ॥
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ३ ॥
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ ४ ॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिन्नियच्छति ॥ ५ ॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ६ ॥
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥ ७ ॥
यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥८॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ९ ॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ १० ॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ ११ ॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥ १२ ॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ १३ ॥
संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १४ ॥
वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ १५ ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ १६ ॥
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १७ ॥
श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ १८ ॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥१९॥ मनु०

अर्थः—कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, गुदा, उपस्थ (मूत्र का मार्ग) हाथ, पग, वाणी ये दश १० इन्द्रिय इस शरीर में हैं ॥ १ ॥ इन में कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पांच कर्मेन्द्रिय कहाते हैं ॥ २ ॥ ग्यारहवां इन्द्रिय मन है वह अपने स्मृति आदि गुणों से दोनों प्रकार के इन्द्रियों से सम्बन्ध करता है कि जिस मन के जीतने में ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों जीत लिये जाते हैं ॥ ३ ॥ जैसे सारथि घोड़े का कुपथ में नहीं जाने देता वैसे विद्वान् ब्रह्मचारी आकर्षण करने वाले विषयों में जाते हुए इन्द्रियों के रोकने में सदा प्रयत्न किया करे ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी इन्द्रियों के साथ मन लगाने से निःसन्देह दोषी हो जाता है और उन पूर्वोक्त दश इन्द्रियों को वश में करके ही पश्चात् सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जिस का ब्राह्मण पन (संमान नहीं चाहना वा इन्द्रियों को वश में रखना आदि) बिगड़ा वा जिस का विशेष प्रभाव (वर्णाश्रम के गुण कर्म) बिगड़े हैं उस पुरुष के वेद पढ़ना, त्याग (संन्यास) लेना, यज्ञ (अग्निहोत्रादि) करना, नियम (ब्रह्मचर्याश्रम आदि) करना, तप (निन्दा, स्तुति और हानि, लाभ आदि द्वन्द्व का सहन) करना आदि कर्म कदापि सिद्ध नहीं हो सकते इसलिये ब्रह्मचारी को चाहिये कि अपने नियम धर्मों को यथावत् पालन करके सिद्धि को प्राप्त होवे ॥ ६ ॥ ब्रह्मचारी पुरुष सब इन्द्रियों को वश में कर और आत्मा के साथ मन को संयुक्त करके योगाभ्यास से शरीर को किञ्चित् २ पीड़ा देता हुआ अपने सब प्रयोजनों को

सिद्ध करे ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् ब्रह्मचारी को चाहिये कि यमों का सेवन नित्य करे केवल नियमों का नहीं क्योंकि यमों * को न करता हुआ और केवल नियमों † का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है इसलिये यमसेवन-पूर्वक नियमसेवन नित्य किया करे ॥ ८ ॥ अभिवादन करने का जिस का स्वभाव और विद्या वा अवस्था में वृद्ध पुरुषों का जो नित्य सेवन करता है उस की अवस्था, विद्या, कीर्त्ति और बल इन चारों की नित्य उन्नति हुआ करती है इसलिये ब्रह्मचारी को चाहिये कि आचार्य माता, पिता, अतिथि, महात्मा आदि अपने बड़ों को नित्य नमस्कार और सेवन किया करे ॥ ९ ॥ अज्ञ अर्थात् जो कुछ नहीं पढ़ा, वह निश्चय करके बालक होता और जो मन्त्रद अर्थात् दूसरे को विचार देनेवाला विद्या पढ़ा विद्याविचार में निपुण है वह पिता स्थानीय होता है क्योंकि जिस कारण सत्पुरुषों ने अज्ञ जन को बालक कहा और मन्त्रद को पिता ही कहा है इस से प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न हो कर ज्ञानवान् विद्यावान् अवश्य होना चाहिये ॥१०॥ धर्मवेत्ता ऋषि जनों ने न वर्षों न पके केशों वा झूलते हुए अङ्गों न धन और न बन्धु जनों से बड़प्पन माना किन्तु यही धर्म निश्चय किया कि जो हम लोगों में वाद विवाद में उत्तर देने वाला अर्थात् वक्ता हो वह बड़ा है इस से ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर विद्यावान् होना चाहिये जिस से कि संसार में बड़प्पन प्रतिष्ठा पावें और दूसरों को उत्तर देने में अति निपुण हों ॥११॥ उस कारण से वृद्ध नहीं होता कि जिससे इस का शिर झूल जाय केश पक जावें किन्तु जो ज्वान भी पढ़ा हुआ विद्वान् है उस को विद्वानों ने वृद्ध जाना और माना है इस से ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये ॥ १२ ॥ जैसे काठ का कठपूतला हाथी वा जैसे चमड़े का बनाया हुआ मृग हो वैसे विना पढ़ा हुआ विप्र अर्थात् ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन होता है उक्त

* अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥

निर्वैरिता, सत्य बोलना, चोरी त्याग, वीर्यरक्षण और विषय भोग में तृणा ये ५ यम हैं ॥

† शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

शौच, सन्तोष, तपः (हानि लाभ आदि द्वन्द्व का सहना) स्वाध्याय, वेद का पढ़ना ईश्वर प्रणिधान (सर्वस्व ईश्वरार्पण) ये ५ नियम कहाते हैं ॥

वे हाथी मृग और विप्र तीनों नाममात्र धारण करते हैं इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये ॥ १३ ॥ ब्राह्मण विष के समान उत्तम मान से नित्य उदासीनता रक्खे और अमृत के समान अपमान की आकांक्षा सर्वदा करे अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के लिये भिक्षा मात्र मांगते भी कभी मान की इच्छा न करे ॥ १४ ॥ द्विजोत्तम अर्थात् ब्राह्मणादि कों में उत्तम सज्जन पुरुष सर्वकाल तपश्चर्या करता हुआ वेद ही का अभ्यास करे जिस कारण ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन को वेदाभ्यास करना इस संसार में परम तप कहा है इस से ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर अवश्य वेदविद्याध्ययन करे ॥ १५ ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़ कर अन्य शास्त्र में श्रम करता है वह जीवता ही अपने वंश के सहित शूद्रपन को प्राप्त होजाता है इस से ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर वेदविद्या अवश्य पढ़े ॥ १६ ॥ जैसे फावड़ा से खोदता हुआ मनुष्य जल को प्राप्त होता है वैसे गुरु की सेवा करनेवाला पुरुष गुरुजनों ने जो प्राप्त हुई विद्या है उस को प्राप्त होता है इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर गुरुजन की सेवा कर उन से सुने और वेद पढ़े ॥ १७ ॥ उत्तम विद्या की श्रद्धा करता हुआ पुरुष अपने से न्यून से भी विद्या पावे तो ग्रहण करे । नीच जाति से भी उत्तम धर्म का ग्रहण करे और निन्द्य कुल से भी स्त्रियों में उत्तम स्त्री जन का ग्रहण करे यह नीति है इससे गृहस्थाश्रम से पूर्व २ ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर कहीं से न कहीं से उत्तम विद्या पढ़े उत्तम धर्म सीखे और ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहाश्रम में उत्तम स्त्री से विवाह करे क्योंकि ॥ १८ ॥ विष से भी अमृत का ग्रहण करना, बालक से भी उत्तम वचन को लेना और नाना प्रकार के शिल्प काम सब से अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहिये इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर देश २ पर्यटन कर उत्तम गुण सीखे ॥ १९ ॥

यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि । नो इतराणि । एके चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् ॥ १ ॥ तैत्तिरी० प्रपा० ७ । अनु० ११ ॥

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपश्श-
मस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो ब्रह्मभूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतदुपा-
स्वैतत्तपः ॥ २ ॥ तैत्तिरी० प्रपा० १० । अनु० ८ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! जो आनन्दित पापरहित अर्थात् अन्याय अधर्माचरण रहित न्याय धर्माचरण सहित कर्म हैं उन्ही का सेवन तू किया करना इन से विरुद्ध अधर्माचरण कभी मत करना । हे शिष्य ! जो तेरे माता पिता आचार्य आदि हम लोगों के अच्छे धर्म युक्त उत्तम कर्म हैं उन्हीं का आचरण तू कर और जो हमारे दुष्ट कर्म हों उन का आचरण कभी मत कर । हे ब्रह्मचारिन् ! जो हमारे मध्य में धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्रह्मवित् विद्वान् हैं उन्हीं के समीप बैठना संग करना और उन्हीं का विश्वास किया कर ॥ १ ॥ हे शिष्य ! तू जो यथार्थ का ग्रहण सत्य मानना, सत्य बोलना, वेदादि सत्य शास्त्रों का सुनना, अपने मन को अधर्माचरण में न जाने देना, श्रोत्रादि इन्द्रियों को दुष्टाचार से रोक श्रेष्ठाचार में लगाना, क्रोधादि के त्याग से शान्त रहना, विद्या आदि शुभ गुणों का दान करना, अग्निहोत्रादि और विद्वानों का सङ्ग कर जितने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यादि लोकों में पदार्थ हैं उन का यथाशक्ति ज्ञान कर और योगाभ्यास प्राणायाम एक ब्रह्म परमात्मा की उपासना कर, ये सब कर्म करना ही तप कहाता है ॥ २ ॥

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यञ्चस्वाध्याय
प्रवचने च । तपश्च स्वाध्या० । दमश्च स्वाध्या० ।
शमश्च स्वाध्या० । अग्नयश्च स्वाध्या० । अग्निहो-
त्रंच स्वाध्या० । सत्यमिति सत्यवचाराथीतरः । तप
इति तपो नित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवे-
ति नाकोमौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ ३ ॥
तैत्तिरी० प्रपा० ७ । अनु० ९ ॥

अर्थः—हे ब्रह्मचारिन् ! तू सत्य धारण कर, पढ़ और पढ़ाया कर, सत्योपदेश करना कभी मत छोड़ सदा सत्य बोल, पढ़ और पढ़ायाकर। हर्ष शोकादि छोड़ प्राणायाम योगाभ्यास कर तथा पढ़ और पढ़ाया भी कर। अपने इन्द्रियों को बुरे कामों से हटा अच्छे कामों में चला विद्या का ग्रहण कर और कराया कर। अपने अन्तःकरण और आत्मा को अन्यायाचरण से हटा न्यायाचरण में प्रवृत्त कर और कराया कर तथा पढ़ और सदा पढ़ाया कर। अग्नि विद्या के सेवन पूर्वक विद्या को पढ़ और पढ़ाया कर। अग्निहोत्र करता हुआ पढ़ और पढ़ाया कर, सत्यवादी होना तप सत्यवचा राथीतर आचार्य, न्यायाचरण. में कष्ट सहना तप नित्य पौरुशिष्टि आचार्य और धर्म में चल के पढ़ना पढ़ाना और सत्योपदेश करना ही तप है यह नाकोमौद्गल्य आचार्य का मत है और सब आचार्यों के मत में यही पूर्वोक्त तप यही पूर्वोक्त तप है ऐसा तू जान ॥ ३॥ इत्यादि उपदेश तीन दिन के भीतर आचार्य वा बालक का पिता करे॥

तत्पश्चात् घर को छोड़ गुरुकुल में जावें यदि पुत्र हो तो पुरुषों की पाठशाला और कन्या हो तो स्त्रियों की पाठशाला में भेजें यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत् न हुई हो तो आचार्य बालकों को और कन्याओं को स्त्री, पाणिनिमुनिकृत वर्णोच्चारण शिक्षा १ एक महीने के भीतर पढ़ा देवें पुनः पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी का पाठ पदच्छेद अर्थसहित ८ आठ महीने में अथवा १ एक वर्ष में पढ़ाकर धातुपाठ और १० दश लकारों के रूप सधवाना तथा दश प्रक्रिया भी सधवानी पुनः पाणिनिमुनिकृत लिङ्गानुशासन और उणादि, गणपाठ तथा अष्टाध्यायीस्थ ण्वुल् और तृच् प्रत्ययाद्यन्त सुबन्तरूप ६ छः महीने के भीतर सधवा देवें पुनः दूसरी बार अष्टाध्यायी पदार्थोक्ति समास शंकासमाधान उत्सर्ग अपवाद* अन्वय पूर्वक पढ़ावें और संस्कृत भाषण का भी अभ्यास कराते जांय ८ महीने के भीतर इतना पढ़ना पढ़ाना चाहिये।

तत्पश्चात् पतञ्जलिमुनिकृत महाभाष्य जिसमें वर्णोच्चारणशिक्षा अष्टाध्यायी धातु-

*जिस सूत्र का अधिक विषय हो वह उत्सर्ग और जो किसी सूत्र के बड़े विषय में से थोड़े विषय में प्रवृत्त हो वह अपवाद कहाता है॥

पाठ, गणपाठ, उणादिगण, लिङ्गानुशासन इन ६ छः ग्रन्थों की व्याख्या यथावत् लिखी है डेढ़ वर्ष में अर्थात् १८ अठारह महीने में इसको पढ़ना पढ़ाना इसप्रकार शिक्षा और व्याकरणशास्त्र को ३ तीन वर्ष ५ पांच महीने वा ९ नौ महीने अथवा ४ चार वर्ष के भीतर पूरा कर सब संस्कृत विद्या के मर्मस्थलों को समझने के योग्य होवे तत्पश्चात् यास्कमुनिकृत निघण्टु निरुक्त तथा कात्यायनादि मुनिकृत कोश १॥ डेढ़ वर्ष के भीतर पढ़ के अव्ययार्थ आप्तमुनिकृत वाच्यवाचकसम्बन्धरूप * यौगिक योगरूढि और रूढि तीन प्रकार के शब्दों के अर्थ यथावत् जानें तत्पश्चात् पिङ्गलाचार्यकृत पिङ्गलसूत्र छान्दोग्रन्थ भाष्यसहित ३ तीन महीने में पढ़ और ३ तीन महीने में श्लोकादिरचनविद्या को सीखे पुनः यास्कमुनिकृत काव्यालङ्कारसूत्र वात्स्यायनमुनिकृत भाष्यसहित आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्यार्थ, अन्वयसहित पढ़ के इसी के साथ मनुस्मृति विदुरनीति और किसी प्रकरण में के १० सर्ग वाल्मीकीय रामायण के ये सब १ एक वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें तथा १ एक वर्ष में सूर्यसिद्धान्तादि में से कोई १ एक सिद्धान्त से गणितविद्या जिस में बीजगणित रेखागणित और पाटीगणित जिस को अङ्कगणित भी कहते हैं पढ़ें और पढ़ावें। निघण्टु से ले के ज्योतिष पर्यन्त वेदाङ्गों को चार वर्ष के भीतर पढ़ें। तत्पश्चात् जैमिनिमुनिकृत सूत्र पूर्वमीमांसा को व्यासमुनिकृत व्याख्यासहित, कणादमुनिकृत वैशेषिकसूत्ररूप शास्त्र को गौतममुनिकृत प्रशस्तपाद भाष्यसहित, वात्स्यायनमुनिकृत भाष्यसहित गोतममुनिकृत सूत्ररूप न्यायशास्त्र, व्यासमुनिकृत भाष्यसहित पतञ्जलिमुनिकृत योगसूत्र योगशास्त्र, भागुरिमुनिकृत भाष्ययुक्त कपिलाचार्यकृत सूत्रस्वरूप साङ्ख्यशास्त्र, जैमिनि वा बौद्धायन आदि मुनिकृत व्याख्यासहित व्यासमुनिकृत शारीरकसूत्र तथा ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक १० दश उपनिषद् व्यासादिमुनिकृत व्याख्यासहित वेदान्तशास्त्र। इन ६ छः शास्त्रों को २ दो वर्ष के भीतर पढ़ लेवें। तत्पश्चात् बह्वृचा ऐतरेय ऋग्वेद का ब्राह्मण। आश्वलायनकृत श्रौत तथा गृह्य-

* यौगिक—जो क्रिया के साथ सम्बन्ध रक्खे जैसे पाचक याजकादि। योगरूढि जैसे पङ्कजादि। रूढि जैसे धन वन इत्यादि॥

सूत्र † और कल्पसूत्रपदक्रम और व्याकरणादि के सहाय से छन्दः स्वर पदार्थ अन्वय भावार्थ सहित ऋग्वेद का पठन ३ वर्ष के भीतर करे, इसी प्रकार यजुर्वेद को शतपथब्राह्मण और पदादि के सहित २ दो वर्ष तथा सामब्राह्मण और पदादि तथा गान सहित सामवेद को २ दो वर्ष तथा गोपथ ब्राह्मण और पदादि के सहित अथर्ववेद २ दो वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें सब मिल के ९ नौ वर्षों के भीतर ४ चारों वेदों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिये। पुनः ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद जिस को वैद्यकशास्त्र कहते हैं जिस में धन्वन्तरिजी कृत सुश्रुत और निघण्टु तथा पतञ्जलि ऋषिकृत चरक आदि आर्षग्रन्थ हैं इन को ३ तीन वर्ष के भीतर पढ़ें जैसे सुश्रुत में शस्त्र लिखे हैं बना कर शरीर के सब अवयवों को चीर के देखें तथा जो उस में शारीरकादि विद्या लिखी है साक्षात् करें।

तत्पश्चात् यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद जिस को शस्त्रास्त्रविद्या कहते हैं जिस में अङ्गिरा आदि ऋषिकृतग्रन्थ हैं जो इस समय बहुधा नहीं मिलते ३ तीन वर्ष में पढ़ें और पढ़ावें। पुनः सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद जिस में नारदसंहितादि ग्रन्थ हैं उन को पढ़ के स्वर, राग, रागिणी, समय, वादित्र, ग्राम, ताल, मूर्च्छना आदि का अभ्यास यथावत् ३ तीन वर्ष के भीतर करे।

तत्पश्चात् अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद जिस को शिल्पशास्त्र कहते हैं जिस में विश्वकर्मा त्वष्टा और मयकृत संहिता ग्रन्थ हैं उन को ६ छः वर्ष के भीतर पढ़ के विमान, तार, भूगर्भादि विद्याओं को साक्षात् करें। ये शिक्षा से ले के आयुर्वेद तक १४ चौदह विद्याओं को ३१ इकत्तीस वर्षों में पढ़ के महाविद्वान् होकर अपने और सब जगत् के कल्याण और उन्नति करने में सदा प्रयत्न किया करें॥

इति वेदारम्भसंस्कारविधिः समाप्तः॥

---

† जो ब्राह्मण वा सूत्र वेदविरुद्ध हिंसापरक हो उस का प्रमाण न करना॥

अथ समावर्त्तनसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

समावर्त्तन संस्कार उसको कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य्यव्रत, साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या, उत्तमशिक्षा और पदार्थविज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त होके विवाह विधानपूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय छोड़ के घर की ओर आना। इसमें प्रमाणः—

वेदसमाप्तिं वाचयीत। कल्याणैः सह सम्प्रयोगः। स्नातकायोपस्थिताय। राज्ञे च। आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च। दधनि मध्वानीय। सर्पिर्वा मध्वलाभे। विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कः।

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र। तथा पारस्करगृह्यसूत्रः—

वेदꣳ समाप्य स्नायाद् ब्रह्मचर्यं वाष्टचत्वारिꣳशकम्। त्रय एव स्नातका भवन्ति। विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति।

जब वेदों की समाप्ति हो तब समावर्त्तनसंस्कार करे। सदा पुण्यात्मा पुरुषों के सब व्यवहारों में साझा रक्खे। राजा आचार्य श्वशुर चाचा और मामा आदि का अपूर्वागमन जब हो और स्नातक अर्थात् जब विद्या और ब्रह्मचर्य पूरण करके ब्रह्मचारी घर को आवे तब प्रथम (पाद्यम्) पग धोने का जल (अर्घ्यम्) मुखप्रक्षालन के लिये जल और आचमन के लिये जल दे के शुभासन पर बैठा दही में मधु अथवा सहत, न मिले तो घी मिला के एक अच्छे पात्र में धर इनको मधुपर्क देना होता है और विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्याव्रतस्नातक ये तीन* प्रकार के स्नातक

* जो केवल विद्या को समाप्त तथा ब्रह्मचर्य व्रत को न समाप्त करके स्नान करता है वह विद्यास्नातक जो ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त तथा विद्या को न समाप्त करके स्नान करता है वह व्रतस्नातक और जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य व्रत दोनों को समाप्त करके स्नान करता है वह विद्याव्रतस्नातक कहाता है।

होते हैं इस कारण वेद की समाप्ति और ४८ अड़तालीस वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्याव्रतस्नान करे ॥

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे । स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ अथर्व० कां० ११ । प्रपा० २४ । व० १६ । मं० २६ ॥

अर्थः—जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास कर महातप को करता हुआ वेदपठन, वीर्य्यनिग्रह आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर पश्चात् पृ० ११३ में लिखे अनुसार स्नानविधि करके पूर्ण विद्याओं को धरता सुन्दर वर्णयुक्त हो के पृथिवी में अनेक शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है वही धन्यवाद के योग्य है ॥

इस का समय०—पृ० ९८-१०२ तक में लिखे प्रमाणे जानना परन्तु जब विद्या हस्तक्रिया ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें। विवाह के स्थान दो हैं एक आचार्य का घर दूसरा अपना घर दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने आगे विवाह में लिखे प्रमाणे सब विधि करे। इस संस्कार का विधि पूरा करके पश्चात् विवाह करे।

विधिः—जो शुभ दिन समावर्त्तन का नियत करे उस दिन आचार्य्य के घर में पृ० १५ में लिखे यज्ञकुण्ड आदि बना के सब साकल्य और सामग्री संस्कार दिन से पूर्व दिन में जोड़ रक्खे और स्थाली * पाक बना के तथा घृतादि और पात्रादि यज्ञशाला में वेदी के समीप रक्खे पुनः पृ० २३ में लिखे० यथावत् ४ चारों दिशाओं में आसन बिछा बैठ पृ० ४ चार से पृ० १६ तक में ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करें और जितने वहां पुरुष आये हों वे भी एकाग्रचित्त हो के ईश्वर के ध्यान में मग्न होवें तत्पश्चात् पृ० २४—२५ में अग्न्याधान समिदाधान करके पृ० २५-२६ में० वेदी के चारों ओर उदकसेचन करके आसन पर पूर्वाभिमुख

* जो कि पूर्व पृ० १८ में लिखे प्रमाणे भात आदि बना कर रक्खा—

आचार्य बैठ के पृ० २६ में० आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और पृ० २६, २७ में व्याहृति आहुति ४ चार और पृ० २८–२९ में० अष्टाज्याहुति ८ आठ और पृ० २७ में० स्विष्टकृत् आहुति १ एक और प्राजापत्याहुति १ एक ये सब मिलके १८ अठारह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी पृ० ८८ में० (ओं अग्ने सुश्रवः०) इस मन्त्र से कुण्ड का अग्नि कुण्ड के मध्य में इकट्ठा करे तत्पश्चात् पृ० ८८ में० (ओं अग्नये समिध०) इस मन्त्र से कुण्ड में ३ तीन समिधा होम कर पृ० ८८—८९ में० (ओं तनूपा०) इत्यादि ७ सात मन्त्रों से दक्षिण हस्ताञ्जलि आगी पर थोड़ी सी तपा उस जल से मुखस्पर्श और तत्पश्चात पृ० २३—२४ में० (ओं वाङ्म०) इत्यादि मन्त्रों से उक्त प्रमाणे अङ्गस्पर्श करे पुनः सुगन्धादि औषधयुक्त जल से भरे हुए ८ आठ घड़े वेदी के उत्तरभाग में जो पूर्व से रक्खे हुए हों उन में से:—

ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहातान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि ॥

इस मन्त्र को पढ़, एक घड़े का ग्रहण करके उस घड़े में से जल ले के:—

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् उपरि कथित (ओं ये अप्स्वन्तर०) इस मन्त्र को बोल के दूसरे घड़े को ले उस में से लोटे में जल ले के—

ओं येन श्रियमकृणुतां येनावमृशताᳪं सुराम् ।
येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः ॥

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् पूर्ववत् ऊपर के (ओं ये अप्स्वन्तर०) इसी मन्त्र का पाठ बोल के वेदी के उत्तर में रक्खे घड़ों में से ३ तीन घड़ों को ले के पृ० ८३ में० लिखे हुए (आपो हि ष्ठा०) इन ३ तीन मन्त्रों को बोल के उन घड़ों के जल से स्नान करना तत्पश्चात् ८ आठ घड़ों में से रहे हुए ३

तीन घड़ों को ले के (ओं आपो हि०) इन्हीं ३ तीन मन्त्रों को मन में बोलके स्नान करे पुनः—

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमᳫं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ॥

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दण्ड को छोड़े तत्पश्चात् वह स्नातक ब्रह्मचारी सूर्य के सन्मुख खड़ा रह कर ॥

ओं उद्यन् भ्राजि भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मागमय । उद्यन् भ्राजि भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवा यावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन् मागमय । उद्यन् भ्राजि भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायं यावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय ॥

इस मन्त्र से परमात्मा का उपस्थान स्तुति कर के तत्पश्चात् दही वा तिल माशन करके जटा लोम और नख वपन अर्थात् छेदन करा केः—

ओं अन्नाद्याय व्यूहध्वᳫं सोमो राजा यमागमत् । स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च ॥

इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी उदुम्बर की लकड़ी से दन्तधावन करे । तत्पश्चात् सुगन्धि द्रव्य शरीर पर मल के शुद्ध जल से स्नान कर शरीर को पोंछ अधोवस्त्र अर्थात् धोती वा पीताम्बर धारण करके सुगन्धयुक्त चन्दनादि का अनुलेपन करे तत्पश्चात् चक्षु मुख और नासिका के छिद्रों काः—

ओं प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय ॥

इस मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल ले, अपसव्य और दक्षिणमुख होके ।

ओं पितरः शुन्धध्वम् ॥

इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ के सव्य होके:—

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासꣳसुवर्चा मुखेन। सुश्रुतकर्णाभ्यां भूयासम् ॥

इस मन्त्र का जप करके:—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥

इस मन्त्र से सुन्दर अतिश्रेष्ठ वस्त्रधारण करके:—

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती। यशो भगश्च माविदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करके:—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै कामायेन्द्रियाय। ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥

इस मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला लेके:—

ओं यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु। तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ॥

इस मन्त्र से धारण करनी, पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी दुपट्टा और टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में ले के पृष्ठ ८४ में लि० "युवा सुवासाः०" इस मन्त्र से धारण करे उस के पश्चात् अलंकार ले के:—

ओं अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात् ॥

इस मन्त्र से धारण करे और—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥

इस मन्त्र से आंख में अंजन करना तत्पश्चात्ः—

ओं रोचिष्णुरसि ॥

इस मन्त्र से दर्पण में मुख अवलोकन करे तत्पश्चात्ः—

ओं बृहस्पते छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्धेहि ॥

इस मन्त्र से छत्रधारण करे पुनः—

ओं प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् ॥

इस मन्त्र से उपानह् पादवेष्टन पगरखा और जिस को जोड़ा भी कहते हैं धारण करे तत्पश्चात्ः—

ओं विश्वाभ्यो माष्ट्राभ्यस्परि पाहि सर्वतः ॥

इस मन्त्र से बांस आदि की एक सुन्दर लकड़ी हाथ में धारण करनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के माता पिता आदि जब वह आचार्यकुल से अपना पुत्र घर को आवे उस को बड़े मान्य प्रतिष्ठा उत्सव उत्साह से अपने घर पर ले आवें, घर पर ला के उन के पिता माता सम्बन्धी बन्धु आदि ब्रह्मचारी का सत्कार पृष्ठ १०१-१०२ में लिखे प्र० करें पुनः उस संस्कार में आये हुए आचार्य आदि को उत्तम अन्नपानादि से सत्कार पूर्वक भोजन करा के और वह ब्रह्मचारी और उस के माता पितादि आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा पूर्वोक्त प्रकार मधुपर्क कर सुन्दर पुष्पमाला वस्त्र गोदान धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति दे के सब के सामने आचार्य के जोकि उत्तम गुण हों उनकी प्रशंसा कर और विद्यादान की कृतज्ञता सब को सुनावे सुनो भद्र जनो ! इन महाशय आचार्य ने मेरे पर बड़ा उपकार किया है जिससे मुझ को पशुता से छुड़ा उत्तम विद्वान् बनाया है उसका प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता इस के बदले में अपने आचार्य को अनेक धन्यवाद दे नमस्कार कर प्रार्थना करता हूं कि जैसे आप ने मुझ को उत्तम शिक्षा और विद्यादान दे के कृतकृत्य किया उसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों को भी कृतकृत्य करेंगे और जैसे आपने मुझ को

विद्या दे के आनन्दित किया है वैसे मैं भी अन्य विद्यार्थियों को कृतकृत्य और आनन्दित करता रहूंगा और आप के किये उपकार को कभी न भूलूंगा सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर आप मुझ और सब पढ़ने पढ़ाने हारे तथा सब संसार पर अपनी कृपादृष्टि से सब को सभ्य, विद्वान्, शरीर और आत्मा के बल से युक्त और परोपकारादि शुभ कर्मों की सिद्धि करने कराने में चिरायु स्वस्थ पुरुषार्थी उत्साही करे कि जिस से इस परमात्मा की सृष्टि में उस के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभावों को कर के धर्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि कर करा के सदा आनन्द में रहैं ॥

इति समावर्तनसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

१२३

अथ विवाहसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

विवाह उस को कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत विद्या बलको प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त हो के निम्नलिखित प्रमाणे सन्तानोत्पत्ति और अपने २ वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है। इस में प्रमाणः—

उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे * चौलकर्मोपनयन गोदानविवाहाः ॥ १ ॥ सार्वकालमेके विवाहम् ॥ २ ॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र, और—

आवसथ्याधानं दारकाले ॥ ३ ॥

इत्यादि पारस्कर, और—

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥ ४ ॥ लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन ॥ ५ ॥

इत्यादि गोभिलीय गृह्यसूत्र और इसी प्रकार शौनक गृह्यसूत्र में भी है ॥

अर्थः—उत्तरायण शुक्ल पक्ष अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाह करना चाहिये ॥१॥ और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये ॥ २ ॥ जिस अग्नि का स्थापन विवाह में होता है उस का आवसथ्य नाम है ॥ ३ ॥ प्रसन्नता के दिन स्त्री का पाणिग्रहण जो कि स्त्री सर्वथा शुभ गुणादि से उत्तम हो करना चाहिये ॥ ४ ॥

इस का समयः—पृष्ठ ९७–१०२ तक में जानना चाहिये वधू और वर का आयु, कुल, वास्तव स्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें अर्थात् दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी और अधिक से अधिक दूनी होवे परस्पर कुल की परीक्षा भी करनी चाहिये। इस में प्रमाणः—

* यह नक्षत्रादि का विचार कल्पना युक्त है इस से प्रमाण नहीं।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ १ ॥
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥२॥
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ३ ॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ५ ॥
नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥६॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥७॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥ ८ ॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ९ ॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्त्तितः ॥१०॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ ११ ॥

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ १२ ॥
सह नौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥१३॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते ॥ १४ ॥
इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥१५॥
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ १६ ॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१७॥
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥ १८ ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥१९॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ २० ॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत् ।२१।

अर्थः—ब्रह्मचर्य से ४ चार ३ तीन २ दो अथवा १ एक वेद को यथावत् पढ़, अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहाश्रम का धारण करे ॥ १ ॥ यथावत् उत्तम

रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से स्नान कर के ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षणयुक्त स्त्री से विवाह करे ॥ २ ॥ जो स्त्री माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो वही द्विजों के लिये विवाह करने में उत्तम है ॥ ३ ॥ विवाह में नीचे लिखे हुए दश कुल चाहें वे गाय आदि पशु धन और धान्य से कितने ही बड़े हों उन कुलों की कन्या के साथ विवाह न करे ॥ ४ ॥ वे दश कुल ये हैं १ एक-जिस कुल में उत्तम क्रिया न हो। २ दूसरा-जिस कुल में कोई भी उत्तम पुरुष न हो। ३ तीसरा-जिस कुल में कोई विद्वान् न हो। ४ चौथा- जिस कुल में शरीर के ऊपर बड़े २ लोम हों। ५ पांचवां- जिस कुल में बवासीर हो। ६ छठा-जिस कुल में क्षयी (राजयक्ष्मा) रोग हो। ७ सातवां-जिस कुल में अग्निमन्दता से आमाशय रोग हो। ८ आठवां जिस कुल में मृगी रोग हो। ९ नववां-जिस कुल में श्वेत कुष्ठ। और १० दशवां-जिस कुल में गलित कुष्ठ आदि रोग हों। उन कुलों की कन्या अथवा उन कुलों के पुरुषों से विवाह कभी न करे ॥ ५ ॥ पीले वर्ण वाली, अधिक अङ्गवाली जैसी छंगुली आदि, रोगवती, जिस के शरीर पर कुछ भी लोम न हों और जिस के शरीर पर बड़े २ लोम हों, व्यर्थ अधिक बोलने हारी और जिस के पीले बिल्ली के सदृश नेत्र हों ॥ ६ ॥ तथा जिस कन्या का (ऋक्ष) नक्षत्र पर नाम अर्थात् रेवती रोहिणी इत्यादि (नदी) जिस का गङ्गा, यमुना इत्यादि (पर्वत) जिस का विन्ध्याचला इत्यादि (पक्षी) पक्षी पर अर्थात् कोकिला हंसा इत्यादि (अहि) अर्थात् उरगा भोगिनी इत्यादि (प्रेष्य) दासी इत्यादि और जिस कन्या का (भीषण) कालिका, चण्डिका इत्यादि नाम हो उस से विवाह न करे ॥ ७ ॥ किन्तु जिस के सुन्दर अङ्ग उत्तम नाम हंस और हस्तिनी के सदृश चाल वाली जिस के सूक्ष्म लोम सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दांत हों जिस के सब अङ्ग कोमल हों उस स्त्री से विवाह करे ॥ ८ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये विवाह आठ प्रकार के होते हैं ॥ ९ ॥ ब्राह्म, कन्या के योग्य सुशील विद्वान् पुरुष का सत्कार कर के कन्या को वस्त्रादि से अलंकृत कर के उत्तम पुरुष को बुला अर्थात् जिस को कन्या ने प्रसन्न भी किया हो उसको कन्या देना वह ब्राह्म

विवाह कहाता है ॥ १० ॥ विस्तृत यज्ञ में बड़े २ विद्वानों का वर्ण कर उस में कर्म करने वाले विद्वान् को वस्त्र आभूषण आदि से कन्या को सुशोभित करके देना वह दैव विवाह ॥ ११ ॥ ३ तीसरा १ एक गाय बैल का जोड़ा अथवा २ दो जोड़े * वर से लेके धर्म पूर्वक कन्यादान करना वह आर्ष विवाह ॥ १२ ॥ और ४ चौथा कन्या और वर को यज्ञशाला में विधि करके सब के सामने तुम दोनों मिल के गृहाश्रम के कर्मों को यथावत् करो ऐसा कह कर दोनों की प्रसन्नता पूर्वक पाणिग्रहण होना वह प्राजापत्य विवाह कहाता है। ये ४ चार विवाह उत्तम हैं ॥ १३ ॥ और ५ पांचवां वर की जाति वालों और कन्या को यथाशक्ति धन देके होम आदि विधि कर कन्या देना आसुर विवाह कहाता है ॥ १४ ॥ ६ छःठा वर और कन्या की इच्छा से दोनों का संयोग होना और अपने मन में मान लेना कि हम दोनों स्त्री पुरुष हैं यह काम से हुआ गान्धर्व विवाह कहाता है ॥ १५ ॥ और ७ सातवां हनन छेदन अर्थात् कन्या के रोकने वालों का विदारण कर क्रोशती रोती कंपती और भयभीत हुई कन्या को बलात्कार हरण करके विवाह करना वह राक्षस विवाह ॥ १६ ॥ और जो सोती पागल हुई वा नशा पीकर उन्मत्त हुई कन्या को एकान्त पाकर दूषित कर देना, यह सब विवाहों में नीच से नीच महानीच दुष्ट अतिदुष्ट पैशाच विवाह है ॥ १७ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य इन ४ चार विवाहों में पाणिग्रहण किये हुए स्त्री पुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे वेदादिविद्या से तेजस्वी आप्त पुरुषों के संमत अत्युत्तम होते हैं ॥ १८ ॥ वे पुत्र वा कन्या सुन्दर रूप बल पराक्रम शुद्ध बुद्ध्यादि उत्तम गुण युक्त बहुधनयुक्त पुण्यकीर्त्तिमान् और पूर्ण भोग के भोक्ता अतिशय धर्मात्मा होकर १०० सौ वर्ष तक जीते हैं ॥ १९ ॥ इन चार विवाहों से जो बाकी रहे ४ चार आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच, इन ४ चार दुष्ट विवाहों से उत्पन्न हुए सन्तान निन्दित कर्म कर्त्ता मिथ्यावादी वेद धर्म के द्वेषी बड़े नीच स्वभाव वाले होते हैं ॥ २० ॥ इसलिये मनुष्यों को योग्य

* यह बात मिथ्या है क्योंकि आगे मनुस्मृति में निषेध किया है और युक्ति विरुद्ध भी है इसलिये कुछ भी न ले देकर दोनों की प्रसन्नता से पाणिग्रहण होना आर्ष विवाह है।

है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती हैं उन का त्याग और जिन उत्तम विवाहों से उत्तम प्रजा होती हैं उनका वर्त्ताव किया करें ॥ २१ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः ॥१॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि ।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥ २ ॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ ३ ॥

यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अति उत्कृष्ट शुभगुण कर्म स्वभाव वाला कन्या के सदृश रूपलावण्यादि गुणयुक्त वर ही को चाहें वह कन्या माता की छः पीढ़ी के भीतर भी हो तथापि उसी को कन्या देना अन्य को कभी न देना कि जिस से दोनों अतिप्रसन्न होकर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों की उत्पत्ति करें ॥ १ ॥ चाहे मरण पर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन असदृश दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें॥२॥ जब कन्या विवाह करने की इच्छा करे तब रजस्वला होने के दिन से ३ तीन वर्ष को छोड़ के ४ चौथे वर्ष में विवाह करे ॥ ३ ॥

(प्रश्न) "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी" इत्यादि श्लोकों की क्या गति होगी (उत्तर) इन श्लोकों और इनके मानने वालों की दुर्गति अर्थात् जो इन श्लोकों की रीति से बाल्यावस्था में अपने सन्तानों का विवाह कर करा उनको नष्ट भ्रष्ट रोगी अल्पायु करते हैं वे अपने कुल का जानो सत्यानाश कर रहे हैं इसलिये यदि शीघ्र विवाह करें तो वेदारम्भ में लिखे हुए १६ सोलह वर्ष से न्यून कन्या और २५ पच्चीस वर्ष से न्यून पुरुष का विवाह कभी न करें करावें। इस के आगे जितना अधिक ब्रह्मचर्य रक्खेंगे उतना ही उन को आनन्द अधिक होगा ॥

(प्रश्न) विवाह निकटवासियों से अथवा दूरवासियों से करना चाहिये (उत्तर)

दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति ॥

यह निरुक्त का प्रमाण है कि जितना दूर देश में विवाह होगा उतना ही उन को अधिक लाभ होगा (प्रश्न) अपने गोत्र वा भाई बहिनों का परस्पर विवाह क्यों नहीं होता (उत्तर) एक दोष यह है कि इन के विवाह होने में प्रीति कभी नहीं होती क्योंकि जितनी प्रीति परोक्ष पदार्थ में होती है उतनी प्रत्यक्ष में नहीं और बाल्यावस्था के गुण दोष भी विदित रहते हैं तथा भयादि भी अधिक नहीं रहते दूसरा जब तक दूरस्थ एक दूसरे कुल के साथ सम्बन्ध नहीं होता तबतक शरीर आदि की पुष्टि भी पूर्ण नहीं होती तीसरा दूर सम्बन्ध होने से परस्पर प्रीति उन्नति ऐश्वर्य बढ़ता है निकट से नहीं, युवावस्था ही में विवाह का प्रमाण—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः । स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ १ ॥ अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् । कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ २ ॥ अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन् । आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो विनशन्नानृतानि ॥ ३ ॥ ऋ० मं० २ सू० ३५ मं० ४–६ ॥ वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् । आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्त्तयाते ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ३७ । मं० ३ ॥

उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः । उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ५ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ४१ मं० ७ ॥

अर्थः-जो (मर्मृज्यमानाः) उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त (युवतयः) २० वीसवें वर्ष से २४ चौवीसवें वर्ष वाली हैं वे कन्या लोग जैसे (आपः) जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) हम को प्राप्त होने वाली अपने २ प्रसन्न अपने २ से ड्योढ़े वा दूने आयु वाले (तम्) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभलक्षणयुक्त (युवानम्) जवान पति को (परियन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (सः) वह ब्रह्मचारी (शुक्रेभिः) शुद्ध गुण और (शिक्वभिः) वीर्यादि से युक्त हो के (अस्मे) हमारे मध्य में (रेवत्) अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और (दीदाय) अपने तुल्य युवति स्त्री को प्राप्त होवे जैसे (अप्सु) अन्तरिक्ष वा समुद्र में (घृतनिर्णिक्) जल को शोधन करने हारा (अनिध्मः) आप प्रकाशित विद्युत् अग्नि है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान भीतर सुप्रकाशित रह कर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें ॥ १ ॥ हे स्त्रीपुरुषो ! जैसे (तिस्रः) उत्तम मध्यम तथा निकृष्ट स्वभावयुक्त (देवीः, नारीः) विद्वान् नरों की विदुषी स्त्रियां (अस्मै) इस (अव्यथ्याय) पीड़ा से रहित (देवाय) काम के लिये (अन्नम्) अन्नादि उत्तम पदार्थों को (दिधिषन्ति) धारण करती हैं (कृता इव) की हुई शिक्षायुक्त के समान (अप्सु) प्राणवत् प्रीति आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होने के लिये स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री (उप, प्रसर्स्रे) सम्बन्ध को प्राप्त होती है (स, हि) वही पुरुष और स्त्री आनन्द को प्राप्त होती है जैसे जलों में (पीयूषम्) अमृतरूप रस को (पूर्वसूनाम्) प्रथम प्रसूत हुई स्त्रियों का बालक (धयति) दुग्ध पी के बढ़ता है वैसे इन ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सन्तान यथावत् बढ़ते हैं ॥ २ ॥ जैसे राजादि सब लोग (पूर्षु) अपने नगरों और (आमासु) अपने घर में उत्पन्न हुए पुत्र और कन्या रूप प्रजाओं में उत्तम शिक्षाओं को (परः) उत्तम विद्वान् (अप्रमृष्यम्) शत्रुओं को सहने के अयोग्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुए शरीरात्मबलयुक्त देह को (अरातयः) शत्रु लोग (न) नहीं (विनशन्) विनाश कर सकते और (अनृतानि) मिथ्याभाषणादि दुष्ट दुर्व्यसनों को प्राप्त (न) नहीं होते वैसे उत्तम स्त्री पुरुषों को (द्रुहः) द्रोह आदि दुर्गुण और (रिषः) हिंसा

आदि पाप (न, सम्पृचः) सम्बन्ध नहीं करते किन्तु जो युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नतापूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं इन के (अस्य) इस (अश्वस्य) महान् गृहाश्रम के मध्यम में उत्तम बालकों का (जनिम) जन्म होता है इस लिये हे स्त्रि वा पुरुष ! तू (सूरीन्) विद्वानों की (पाहि) रक्षा कर (च) और ऐसे गृहस्थों को (अत्र) इस गृहाश्रम में सदैव (स्वः) सुख बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! (यः) जो पूर्वोक्त लक्षण युक्त पूर्ण जवान (ईम्) सब प्रकार की परीक्षा करके (महिषीम्) उत्तम कुल में उत्पन्न हुई विद्या शुभ गुण रूप सुशीलतादि युक्त (इषिराम्) वर की इच्छा करने हारी हृदय को प्रिय स्त्री को (एति) प्राप्त होता है और जो (पतिम्) विवाह से अपने स्वामी की (इच्छन्ती) इच्छा करती हुई (इयम्) यह (वधूः) स्त्री अपने सदृश, हृदय को प्रिय पति को (एति) प्राप्त होती है वह पुरुष वा स्त्री (अस्य) इस गृहाश्रम के मध्य (आश्रवस्यात्) अत्यन्त विद्या धन धान्य युक्त सब ओर से होवे और वे दोनों (रथः) रथ के समान (आघोषात्) परस्पर प्रिय वचन बोलें (च) और सब गृहाश्रम के भार को (वहाते) उठा सकते हैं तथा वे दोनों (पुरु) बहुत (सहस्रा) असङ्ख्य उत्तम कार्यों को (परिवर्तयाते) सब ओर से सिद्ध कर सकते हैं ॥४॥ हे मनुष्यो ! यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य से सुशिक्षित विद्या युक्त अपने सन्तानों को करा के स्वयंवर विवाह कराओ तो वे (वन्द्येभिः) कामना के योग्य (चितयद्भिः) सब सत्य विद्याओं को जनाने हारे (अर्कैः) सत्कार के योग्य (शूषैः) शरीरात्मबलों से युक्त हो के (नः) तुम्हारे लिये (एवं) सब सुख प्राप्त कराने को समर्थ होवें और वे (उपासानक्ता) जैसे दिन और रात तथा जैसे (विदुषीव) विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (विश्वम्) गृहाश्रम के संपूर्ण व्यवहार को (आवहतः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (ह) वैसे ही इस (यज्ञम्) संगत रूप गृहाश्रम के व्यवहार को वे स्त्री पुरुष पूर्ण कर सकते हैं और (मर्त्याय) मनुष्यों के लिये यही पूर्वोक्त विवाह पूर्ण सुखदायक है और (यह्वी) बड़े ही शुभगुणकर्मस्वभाव वाले स्त्री पुरुष दोनों (दिवः) कामनाओं को (उप, प्र, वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

जैसे ब्रह्मचर्य में कन्या का ब्रह्मचर्य वेदोक्त है वैसे ही सब पुरुषों को ब्रह्मचर्य से

विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो परस्पर परीक्षा करके जिस से जिस की विवाह करने में पूर्ण प्रीति हो उसी से उस का विवाह होना अत्युत्तम है। जो कोई युवावस्था में विवाह न करा के बाल्यावस्था में अनिच्छित अयोग्य वर कन्या का विवाह करावेंगे वे वेदोक्त ईश्वराज्ञा के विरोधी होकर महादुःखसागर में क्यों कर न डूबेंगे और जो पूर्वोक्त विधि से विवाह करते कराते हैं वे ईश्वराज्ञा के अनुकूल होने से पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं (प्रश्न) विवाह अपने २ वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्ण में भी (उत्तर) अपने २ वर्ण में। परन्तु वर्ण व्यवस्था गुण कर्मों के अनुसार होनी चाहिये जन्ममात्र से नहीं जो पूर्ण विद्वान् धर्मात्मा परोपकारी जितेन्द्रिय मिथ्याभाषणादि दोषरहित विद्या और धर्म प्रचार में तत्पर रहे इत्यादि उत्तम गुण जिस में हों वह ब्राह्मण ब्राह्मणी। विद्या बल शौर्य न्यायकारित्वादि गुण जिस में हों वह क्षत्रिय क्षत्रिया। और विद्वान् हो के कृषि पशुपालन व्यापार देशभाषाओं में चतुरादि गुण जिस में हों वह वैश्य वैश्या। और जो विद्याहीन मूर्ख हो वह शूद्र शूद्रा कहावे। इसी क्रम से विवाह होना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में आनन्द होता है अन्यथा नहीं ॥ इस वर्णव्यवस्था में प्रमाणः—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वंपूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥ अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥२॥ आपस्तम्भे ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ३ ॥
मनुस्मृतौ ॥

अर्थः—धर्माचरण से नीच वर्ण उत्तम २ वर्ण को प्राप्त होता है और उस वर्ण में जो २ कर्त्तव्य अधिकार रूप कर्म हैं वे सब गुण कर्म उस पुरुष और स्त्री को प्राप्त

होवें ॥ १ ॥ वैसे ही अधर्माचरण से उत्तम २ वर्ण नीचे २ के वर्ण को प्राप्त होवें और वे ही उस २ वर्ण के अधिकार और कर्मों के कर्त्ता होवें ॥ २ ॥ उत्तम गुण कर्म स्वभाव से जो शूद्र है वह वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण, और वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण, तथा क्षत्रिय ब्राह्मण, वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है वैसे ही नीच कर्म और गुणों से जो ब्राह्मण है वह क्षत्रिय वैश्य शूद्र, और क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा वैश्य शूद्र वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था होने से पक्षपात न होकर सब वर्ण उत्तम बने रहते और उत्तम बनने में प्रयत्न करते और उत्तम वर्ण के भय से कि मैं नीच वर्ण न हो जाऊं इसलिये बुरे कर्म छोड़ उत्तम कर्मों ही को किया करते हैं इस मे संसार की बड़ी उन्नति है । आर्यावर्त्त देश में जबतक ऐसी वर्णव्यवस्था पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहण उत्तमता से स्वयंवर विवाह होता था तभी देश की उन्नति थी, अब भी ऐसा ही होना चाहिये जिस से आर्यावर्त्त देश अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होकर आनन्दित होवे ॥

अब वधू वर एक दूसरे के गुण कर्म और स्वभाव की परीक्षा इसप्रकार करें:— दोनों का तुल्य शील, समान बुद्धि, समान आचार, समान रूपादि गुण, अहिंसकता, सत्य मधुरभाषण, कृतज्ञता, दयालुता, अहंकार, मत्सर, ईर्ष्या, काम, क्रोध, निर्लोभता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, कपट, द्यूत, चोरी, मद्य, मांसाहारादि दोषों का त्याग गृह कामों में अतिचतुरता हो जब २ प्रातः सायं वा परदेश से आकर मिलें तब २ नमस्ते इस वाक्य से परस्पर नमस्कार कर स्त्री पति के चरणस्पर्श पादप्रक्षालन आसन दान करे तथा दोनों परस्पर प्रेम बढ़ाने हारे वचनादि व्यवहारों से वर्त कर आनन्द भोगें वर के शरीर से स्त्री का शरीर पतला और पुरुष के स्कन्धे के तुल्य स्त्री का शिर होना चाहिये तत्पश्चात् भीतर की परीक्षा स्त्री पुरुष वचनादि व्यवहारों से करें ॥

ओं ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
यदियं कुमार्य्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम् ।
यत्सत्यं तद्दृश्यताम् ॥

अर्थः—जब विवाह करने का समय निश्चय होचुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावे पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा करके दोनों परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष इस जगत् के पूर्व ऋत यथार्थ स्वरूप महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्त्व में सत्य त्रिगुणात्मक नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है जैसे पुरुष और प्रकृति के योग से सब विश्व उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी और मैं कुमार पुरुष इस समय दोनों में विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं उस को यह कन्या और मैं वर प्राप्त होवें और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढोत्साही रहें ॥

विधिः—जब कन्या रजस्वला होकर पृष्ठ ३६ में लिखे प्रमाणे शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्री निश्चित की हो उस रात्रि में विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये और १६-२३ पृष्ठ में लि० यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य आदि सब सामग्री शुद्ध कर के रखनी उचित है पश्चात् एक * घंटे मात्र रात्रि जाने पर ॥

ओं कामवेद ते नाममदो नामासि समानयामुꣳ सुराते अभवत् । परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥ १ ॥ ओं इमं त उपस्थं मधुना सꣳसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद् द्वितीयम् तेन पुꣳसोऽभिभवासि सर्वानवशान्वशिन्यसि राज्ञि स्वाहा ॥ २ ॥ ओं अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः । तेनाज्यमकृण्वꣳस्त्रैशृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा ॥ ३ ॥

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेके वधू वर स्नान कर पश्चात् वधू उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे

---

* यदि आधी रात तक विधि पूरा न हो सके तो मध्याह्नोत्तर आरम्भ कर देवे कि जिस से मध्यरात्रि तक विवाह विधि पूरा हो जावे ॥

तत्पश्चात् पृष्ठ ४ से १६ तक लि० प्र० ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करें तत्पश्चात् पृष्ठ २४-२५ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान पृष्ठ १८ में लि० स्थालीपाक आदि यथोक्त कर वेदी के समीप रक्खे वैसेही वर भी एकान्त अपने घर में जाके उत्तम वस्त्रालंकार करके यज्ञशाला में आ उत्तमासनपर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ ४-८ में लि० पृ० ईश्वरस्तुति * प्रार्थनोपासना कर वधू के घर को जाने का ढंग करे तत्पश्चात् कन्या के और वर पक्ष के पुरुष बड़े सामान से वर को घर ले जावें जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करे उसी समय वधू और कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर सत्कार करें उस की रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्त्ता—

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ॥

इस वाक्य को बोले उस पर वर—

ओं अर्चय ॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवें पुनः जो वधू और कार्यकर्त्ता ने वर के लिये उत्तम आसन सिद्ध कर रक्खा हो उस को वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रहे ॥

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम् ॥

यह उत्तम आसन है आप ग्रहण कीजिये वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के वधू के हाथ से आसन ले बिछा उस पर सभा मंडप में पूर्वाभिमुख बैठ के वर—

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः । इमन्तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥

---

* विवाह में आये हुये भी स्त्रीपुरुष एकाग्र चित्त ध्यानावस्थित हो के इन तीन कर्मों के अनुसार ईश्वर का चिन्तन किया करें ॥

इन मन्त्र को बोले तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भर के कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के आगे धरे पुनः वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से उदक ले पग * प्रक्षालन करे और उस समय—

ओं विराजो दोहोऽसि विराजो दोहमशीय मयि पाद्यायै विराजो दोहः ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् फिर भी कार्यकर्त्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे पुनः कन्या—

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जलपात्र ले के उस से मुखप्रक्षालन करे और उसी समय वर मुख धोके—

ओं आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि ।
ओं समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत। अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचिमत्पयः ॥

इन मन्त्रों को बोले तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उस में आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

---

* यदि घर का प्रवेशक द्वार पूर्वाभिमुख हो तो वर उत्तराभिमुख और वधू तथा कार्यकर्त्ता पूर्वाभिमुख खड़े रह के यदि ब्राह्मण वर्ण हों तो प्रथम दक्षिण पग पश्चात् बायां और अन्य क्षत्रियादि वर्ण हों तो प्रथम बायां पग धोवे पश्चात् दहना ।

ओं आचमनीयमाचमनीयमाचनीयम्प्रतिगृह्यताम् ॥

इस वाक्य को बोल के वर के सामने करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ में से जलपात्र को ले सामने धर उस में से दहिने हाथ में जल जितना अङ्गुलियों के मूल तक पहुंचे उतना ले के वर—

ओं आमागन् यशसा सꣳसृज वर्चसा । तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥

इस मन्त्र से एक आचमन इसी प्रकार दूसरी और तीसरी बार इसी मन्त्र को पढ़ के दूसरा और तीसरा आचमन करे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क * का पात्र कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥

ऐसी विनती वर से करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ।

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले और उस समय—

ओं मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे ॥

इस मन्त्रस्थवाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देखे औरः—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥

इस मन्त्र को बोल के मधुपर्क के पात्र को वाम हाथ में लेवे औरः—

---

* मधुपर्क उस को कहते हैं जो दही में घी वा सहत मिलाया जाता है उस का परिमाण १२ बारह तोले दही में ४ चार तोले सहत अथवा ४ चार तोले घी मिलाना चाहिये और यह मधुपर्क कांसे के पात्र में होना उचित है ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे—

ओं नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि ॥

इस मन्त्र को पढ़, दहिने हाथ की अनामिका और अङ्गुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार विलोवे और उस मधुपर्क में से वर—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से पूर्व दिशा ।

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा ।

ओं आदित्यास्त्वा जागतेनच्छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से पश्चिम दिशा और—

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा २ छोड़े अर्थात् छींटे देवे ।

ओं भूतेभ्यस्त्वा परिगृह्णामि ॥

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के पात्र के मध्य भाग में से लेके ऊपर की ओर

तीन बार फेंकना तत्पश्चात् उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में धर भूमि में अपने सन्मुख तीनों पात्र रक्खे, रख के—

ओं यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽन्नादोऽसानि ॥

इस मन्त्र को एक २ वार बोल के एक २ भाग में से वर थोड़ा २ प्राशन करे वा सब प्राशन करे जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक को देवे वा जल में डाल देवे तत्पश्चात्—

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे तत्पश्चात् वर पृष्ठ २३-२४ में लि० प्र० चक्षुरादि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे पश्चात् कन्या—

ओं गौर्गौर्गौः प्रतिगृह्यताम् ।

इस वाक्य से वर को विनती करके अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य जो कि वर के योग्य हो अर्पण करे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य से उस को ग्रहण करे इस प्रकार मधुपर्कविधि यथावत् करके वधू और कार्यकर्त्ता वर को सभामण्डपस्थान * से घर में लेजा के शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को बैठावे और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठ के—

* यदि सभामण्डप स्थापन न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो उस से दूसरे घर में वर को ले जावे ॥

ओं अमुक * गोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नी † मलङ्कृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान् ॥

इस प्रकार बोल के वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रख के उस के हाथ में वधू का दक्षिण हाथ चत्ता ही रखना और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ।

ऐसा बोल के—

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्ति पावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को उत्तम वस्त्र देवे तत्पश्चात्—

ओं या अकृतन्न वयं या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ । तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को वर उपवस्त्र देवे वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे ।

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥

इस मन्त्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और:—

---

* अमुक इस पद के स्थान में जिस गोत्र और कुल में वधू उत्पन्न हुई हो उस का उच्चारण अर्थात् उस का नाम लेना ॥

† "अमुकनाम्नीम्" इस स्थान पर वधू का नाम द्वितीया विभक्ति के एकवचन से बोलना ॥

ओं यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगश्च मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥

इस मन्त्र को पढ़ के द्विपट्टा धारण करे। इस प्रकार वधू वस्त्र परिधान करके जब तक सम्हले तब इक कार्यकर्त्ता अथवा दूसरा कोई यज्ञमण्डप में जा कुण्ड के समीपस्थ हो पृष्ठ २४–२५ में लि० इन्धन और कर्पूर वा घृत से कुण्ड के अग्नि को प्रदीप्त करे और आहुति के लिये सुगन्ध डाला हुआ घी बटलोई में कर के कुण्ड के अग्नि पर गरम कर कांसे के पात्र में रक्खे और स्रुवादि होम के पात्र तथा शुद्ध जलपात्र इत्यादि सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे और वर पक्ष का एक पुरुष शुद्धवस्त्रधारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को ले के यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिणभाग में उत्तराभिमुख हो कलशस्थापन अर्थात् भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे धर के जब तक विवाह का कृत्य पूरण न हो जाय तब तक उत्तराभिमुख बैठा रहे और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड ले के कुण्ड के दक्षिणभाग में कार्य समाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे और इसी प्रकार सहोदर वधू का भाई अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई मामा का पुत्र अथवा मौसी का लड़का हो वह चावल वा जुआर की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमीपत्रयुक्त धाणी की ४ चार अञ्जली एक शुद्ध सूप में रख के धाणी सहित सूप ले के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सपाट शिला जोकि सुन्दर चीकनी हो उस को तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञीय तृणासन अथवा यज्ञीय वृक्ष की छाल के जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों उन आसनों को रखवावे तत्पश्चात् वस्त्रधारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के सम्मुख लावे और उस समय वर और कन्या—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।

सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ*॥१॥

इस मन्त्र को बोलें तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़ के:—

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा। हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु † असौ॥२॥

इस मन्त्र को बोल के उस को लेके घर के बाहर मण्डपस्थान में कुण्ड के समीप हाथ पकड़े हुए दोनों आवें और वधू तथा वर—

ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवकामा स्योना

---

* वर और कन्या बोले कि हे (विश्वे, देवाः) इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगो आप हम दोनों को (समञ्जन्तु) निश्चय करके जानें कि अपनी प्रसन्नता पूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे का स्वीकार करते हैं कि (नौ) हमारे दोनों के (हृदयानि) हृदय (आप) जल के समान (सम्) शान्त और मिले हुए रहेंगे जैसे (मातरिश्वा) प्राणवायु हम को प्रिय है वैसे (सम्) हम दोनों एक दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे जैसे (धाता) धारण करने हारा परमात्मा सब में (सम्) मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे जैसे (समुदेष्ट्री) उपदेश करने हारा श्रोताओं से प्रीति करता है वैसे (नौ) हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को (दधातु) धारण करे॥

† (असौ) इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करना हे वरानने वा हे वरानन (यत्) जो तू (मनसा) अपनी इच्छा से मुझ को जैसे (पवमानः) पवित्र वायु (वा) जैसे (हिरण्यपर्णो, वैकर्णः) तेजोमय जल आदि को किरणों से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ पदार्थों और (दिशोनु) दिशाओं को प्राप्त होता है वैसे तू प्रेमपूर्वक अपनी इच्छा से मुझ को प्राप्त होती वा होता है उस (त्वा) तुझ को (सः) वह परमेश्वर (मन्मनसाम्) मेरे मन के अनुकूल (करोतु) करे और हे (वीर) जो आप मन से मुझ को (एषि) प्राप्त होते हो उस आप को जगदीश्वर मेरे मन के अनुकूल सदा रक्खे।

शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे*॥३॥ ओं भूर्भुवः स्वः। सा नः पूषा शिवतमामैरयसा न ऊरू उशति विहर। यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामुकामा बहवो निविष्ट्यै ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को वर बोल के दोनों वर वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिणभाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के वधूः—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पताᳬशिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् पृष्ठ १७ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करनी तत्पश्चात् पृ० २३ में लिखे०—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र से एक २ आचमन वैसे तीन आचमन वर वधू और पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके हस्त और मुख प्रक्षालन एक शुद्धपात्र में करके

---

* हे वरानन (अपतिघ्नि) पति से विरोध न करने हारी तू जिस के (ओम्) अर्थात् रक्षा करने वाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों के दाता आदि नाम हैं उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से हे (अघोरचक्षुः) प्रियदृष्टि (एधि) हो (शिवा) मंगल करने हारी (पशुभ्यः) सब पशुओं को सुखदाता (सुमनाः) पवित्रान्तःकरण युक्त प्रसन्नचित्त (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करने हारी (देवृकामा) देवर की कामना करती हुई अर्थात् नियोग की भी इच्छा करने हारी (स्योना) सुखयुक्त हो के (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिये (शम्) सुख करने हारी (भव) सदा हो और (चतुष्पदे) गाय आदि पशुओं की भी (शम्) सुख देने हारी हो वैसे ही मैं तेरा पति भी वर्त्ता करूं ॥

दूर रखवा दे हाथ और मुख पोंछ के पृ० २४ में लि० यज्ञकुण्ड में (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव०) इस मन्त्र से अग्न्याधान पृ० २४-२५ में लिखे० (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान और पृ० २५ में लिखे०—

ओं अदितेनुमन्यस्व ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड की तीन ओर और (ओं देव सवितः प्रसुव०) इस मन्त्र से कुण्ड की चारों ओर दक्षिण हाथ की अञ्जली से शुद्ध जलसेचन करके कुण्ड में डाली हुई समिधा प्रदीप्त हुए पश्चात् पृ० २६ में लि०वधू वर पुरोहित और कार्यकर्त्ता आघारावाज्यभागाहुति ४ चार घी की देवे तत्पश्चात् पृ० २६-२७ में लि० व्याहृति आहुति ४ चार घी की और पृ० २८—२९ में लि० अष्टाज्याहुति ८ आठ ये सब मिल के १६ सोलह आज्याहुति दे के प्रधान होम का आरम्भ करे प्रधान होम के समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्धे पर स्पर्श करके पृ० २७-२८ में लि० (ओं भूर्भुवः स्वः अग्न आयूंषि०) इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात् एक २ से एक २ मिल के ४ चार आज्याहुति क्रम से करें और—

ओं भूर्भुवः स्वः। त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि । अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा ॥ इदमग्नये, इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के ५ पांचवीं आज्याहुति देनी तत्पश्चात्—

ओं ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः । स नं इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदमृतासाहे ऋतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुद्भ्यः, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं सꣳहितो विश्वसामा

सूर्यो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ताभ्यस्स्वाहा । इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये, चन्द्रमसे, गन्धर्वाय; इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । ताभ्यः स्वाहा इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः, इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऊर्जो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमद्भ्यो अप्सरोभ्यऽ ऊग्भ्यः, इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥९॥ ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम । ताभ्यः स्वाहा ।

इदं वह्निणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः; इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे मनसे गन्धर्वाय, इदन्न मम ॥११॥ ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽ ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम । ताभ्यः स्वाहा । इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्य एष्टिभ्यः; इदन्न मम ॥ १२ ॥

इन बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् (जयाहोम) करना ॥

ओं चित्तं च स्वाहा । इदं चित्ताय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं चित्तिश्च स्वाहा । इदं चित्त्यै, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं आकूतं च स्वाहा । इदमाकूताय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं आकूतिश्च स्वाहा । इदमाकूत्यै इदन्न मम ॥४॥ ओं विज्ञातञ्च स्वाहा । इदं विज्ञाताय, इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं विज्ञातिश्च स्वाहा । इदं विज्ञात्यै, इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं मनश्च स्वाहा । इदं मनसे, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं शक्करीश्च स्वाहा । इदं शक्वरीभ्यः, इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं दर्शश्च स्वाहा । इदं दर्शाय, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं पौर्णमासं च स्वाहा । इदं पौर्णमासाय, इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं बृहच्च स्वाहा । इदं बृहते, इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं रथन्तरञ्च स्वाहा । इदं रथन्तराय, इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतना

जयेषु तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स इहव्यो बभूव स्वाहा। इदं प्रजापतये जयानिन्द्राय, इदन्न मम॥ १३॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके जयाहोम की १३ तेरह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् अभ्यातन होम करना-इस के मन्त्र ये हैं:—

ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा॥ इदमग्नये भूतानामधिपतये, इदन्न मम॥ १॥ ओं इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा॥ इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये, इदन्न मम॥ २॥ ओं यमः पृथिव्याऽअधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा॥ इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये इदन्न मम॥ ३॥ ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं स्वाहा॥ इदं वायवे, अन्तरिक्षस्याधिपतये, इदन्न मम॥ ४॥ ओं सूर्यो दिवोधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳫं

स्वाहा ॥ इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये, इदन्न मम ॥५॥ ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं चन्द्रमसे नक्षत्राणामधिपतये, इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोऽधिपतये इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं मित्रः सत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳस्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये. इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं वरुणायापामधिपतये, इदन्न मम ॥ ९ ॥ ओं समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १० ॥ ओं अन्नꣳ साम्राज्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदमन्नाय साम्राज्या-

नामधिपतिये, इदन्न मम ॥११॥ ओं सोमऽओषधी-
नामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्या-
माशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या
ꣳ स्वाहा ॥ इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतये, इदन्न
मम ॥ १२ ॥ ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स मा-
वत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरो-
धायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं स-
वित्रे प्रसवानामधिपतये, इदन्न मम ॥ १३ ॥ ओं
रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्
क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां
देवहूत्याꣳस्वाहा । इदं रुद्राय पशूनामधिपतये इदन्न
मम ॥ १४ ॥ ओं त्वष्टा रूपाणामधिपतिः स मावत्व-
स्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-
यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳस्वाहा । इदं त्वष्ट्रे
रूपाणामधिपतये, इदन्न मम ॥ १५ ॥ ओं विष्णुः
पर्वतानामधिपति स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रे-
ऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहू-
त्याꣳ स्वाहा ॥ इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये, इदन्न
मम ॥ १६ ॥ ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मा-
वन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पु-
रोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याꣳ स्वाहा ॥ इदं
मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः, इदन्न मम ॥ १७ ॥

ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे तातास्ततामहाः इह मावन्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याᳬं स्वाहा । इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च, इदन्न मम ॥ १८ ॥

इस प्रकार अभ्यातन होम की १८ अठारह आज्याहुति दिये पीछे पुनः—

ओं अग्निरैतु प्रथमो देवतानाᳬं सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् । तदयᳬं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयᳬं स्त्री पौत्रमघन्नरोदात् स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥१॥ ओं इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः । अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामियᳬं स्वाहा ॥ इदमग्नये, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वस्ति नोऽग्ने दिवा पृथिव्या विश्वानि धेह्ययथा यजत्र । यदस्यां मयि दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रᳬं स्वाहा ॥ इदमग्नये । इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सुगन्नु पन्थां प्रदिशन् न एहि ज्योतिष्मध्ये ह्यजरन्नऽ आयुः । अपैतु मृत्युरमृतं म आगाद्वैवस्वतो नोऽअभयं कृणोतु स्वाहा ॥ इदं वैवस्वताय । इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं परं मृत्योऽअनुपरे हि पन्थां यत्र नोऽअन्य इतरो देवयानात् । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳬं रीरिषो

मोत वीरान्त्स्वाहा ॥ इदं मृत्यवे, इदन्न मम ॥ ५ ॥ ओं द्यौस्ते पृष्ठꣳ रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च । स्तनन्धयस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्त्वावाससः परिधाद्बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा ॥ इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः । इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्रत्वद्रुदत्यः संविशन्तु मा त्वꣳ रुदत्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजाꣳ सुमनस्यमानाꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये, इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यपाप्मानमुत वा अघम् । शीर्ष्णस्रजमिवोन्मुच्यद्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशꣳस्वाहा ॥ इदमग्नये, इदन्न मम ॥८॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ आहुति करके आठ आज्याहुति दीजिये तत्पश्चात् २६ पृष्ठ में लि० प्र०—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से ४ चार आज्याहुती दीजिये ऐसे होम करके वर आसन से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू के सन्मुख पश्चिमाभिमुख खड़ा रहकर अपने वामहस्त से वधू का दहना हाथ चत्ता धर के ऊपर को उठाना और अपने दक्षिण हाथ से वधू के उठाये हुए दक्षिण हस्ताञ्जलि अंगुष्ठा सहित चत्ती ग्रहण करके वर—

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः * ॥ १ ॥

* हे वरानने ! जैसे मैं (सौभगत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं तू (मया) मुझ

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत् । पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव * ॥ २ ॥ ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः । मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् † ॥ ३ ॥

(पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरावस्था को प्राप्त सुखपूर्वक (आसः) हो तथा हे वीर ! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आप के हस्त को ग्रहण करती हूं आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिये आप को मैं और मुझ को आप आज से पति पत्नी भाव करके प्राप्त हुए हैं (भगः) सकल ऐश्वर्ययुक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति का कर्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रमकर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं आज से मैं आप के हस्ते और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे ॥

* हे प्रिये ! (भगः) ऐश्वर्ययुक्त मैं (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण करता हूं तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण कर चुका हूं (त्वम्) तू (धर्मणा) धर्म से मेरी पत्नी भार्या (असि) है और (अहम्) मैं धर्म से (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति हूं अपने दोनों मिल के घर के कामों की सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है उस को कभी न करें जिस से घर के सब काम सिद्ध उत्तम सन्तान ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे ॥

† हे अनघे ! (बृहस्पतिः) सब जगत् का पालन करने हारे परमात्मा ने जिस (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है (इयम्) यही तू जगत् भर में मेरी (पोष्या) पोषण करने योग्य पत्नी (अस्तु) हो हे (प्रजावति) तू (मया, पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त (शं, जीव) सुखपूर्वक जीवन धारण कर । वैसे ही वधू भी वर से प्रतिज्ञा करावे ।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् । तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया * ॥ ४ ॥ इन्द्राग्नीद्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु † ॥५॥

हे भद्र वीर परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो मेरे लिये आप के बिना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी पालन करने हारा सेव्य इष्टदेव कोई नहीं है न मैं आप से अन्य दूसरे किसी को मानूंगी जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करोगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वर्त्ता करूंगी आप मेरे साथ सौ वर्षपर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिये ॥

* हे शुभानने जैसे (बृहस्पतेः) इस परमात्मा की सृष्टि में और उस की तथा (कवीनाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दोषी होते हैं (त्वष्टा) जैसे बिजुली सब को व्याप्त हो रही है वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिये (वासः) सुन्दर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम्) म में सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध करे जैसे (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने हारा परमात्मा (च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमाम्) इस तुझ (नारीम्) मुझ नर की स्त्री को (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करे, वैसे मैं (तेन) इस मन्त्र से (सूर्यामिव) सूर्य की किरण के समान तुझ को वस्त्र और भूषणादि से सुशोभित सदा रक्खूंगा तथा हे प्रिय ! आप को मैं इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण करके (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रक्खूंगी ॥

† हे मेरे सम्बन्धी लोगो ! जैसे (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणा) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (उभा) दोनों (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजा का पालन करने हारा राजा (मरुतः)

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसा कुलायम्। न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् ✻ ॥ ६ ॥

इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोल के पश्चात् वर वधू की हस्ताञ्जली पकड़ के उठावे और उस को साथ ले के जो कुंड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था उस को वही पुरुष जो कलश के पास बैठा था वर वधू के साथ २ उसी कलश को ले चले यज्ञकुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करके:—

ओं अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहं सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहा-

---

सभ्य मनुष्य (नक्ष) सब से बड़ा परमात्मा और (सोम) चन्द्रमा तथा सोमलतादि ओषधी गण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं वैसे (इमां, नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी (वर्धयन्तु) बढ़ाया करो जैसे मैं इस स्त्री को प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूंगा वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस मेरे पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और प्रजा से बढ़ाया करूंगी जैसे ये दोनों मिल के प्र० बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिल के गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें॥

✻ हे कल्याणक्रोड़े जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः) इस तेरे (रूपम्) रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त और इस में प्रेमद्वारा व्याप्त होता हूं वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझ में प्रेम से व्याप्त हो के अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होवे जैसे मैं (मनसा) मन से भी इस तुझ वधू के साथ (स्तेयम्) चोरी को (उदमुच्ये) छोड़ देता हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (नाद्मि) भोग नहीं करता रहूं (स्वयम्) आप (श्रन्थानः) पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी (वरुणस्य) उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता हूं वैसे (इत्) ही यह वधू भी किया करे इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि मैं भी इसी प्रकार आप से वर्त्ता करूंगी ॥

वहै सह रेतो दधावहै । प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान् विन्दावहै बहून् । ते सन्तु जरदष्टयः सं प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् ※ ॥ १७ ॥

इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके पश्चात् वर वधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रह के वधू की दक्षिणाञ्जली अपनी दक्षिणाञ्जली से पकड़ के दोनों खड़े रहें और वह पुरुष पुनः कुण्ड के दक्षिण में कलश ले के बैठे बैसे तत्पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम चावल और ज्वार की धाणी सूप में रक्खी थी उस को वायें हाथ में लेके दहिने हाथ से वधूका दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर-

※ हे वधू जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञान पूर्वक तेरा ग्रहण करने वाला (अस्मि) होता हूं वैसे (सा) सो (त्वम्) तू भी ज्ञान पूर्वक मेरा ग्रहण करने हारी (असि) है जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुझ को (अमः) ग्रहण करता हूं वैसे (सा) सो मैंने ग्रहण की हुई (त्वम्) तू मुझ को भी ग्रहण करती है (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूं हे वधू तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है (त्वम्) तू (पृथिवी) पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने हारी है और मैं (द्यौः) वर्षा करने हारे सूर्य के समान हूं वह तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें (सह) साथ मिल के (रेतः) वीर्य को (दधावहै) धारण करें (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (प्रजनयावहै) उत्पन्न करें (बहून्) बहुत (पुत्रान्) पुत्रों को (विन्दावहै) प्राप्त होवें (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) जरावस्था के अन्त तक जीवन युक्त (सन्तु) रहें (संप्रियौ) अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णू) दूसरे में रुचियुक्त एक (सुमनस्यमानौ) अच्छे प्रकार विचार करते हुए (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से (पश्येम) देखते रहें (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से (जीवेम) जीते रहें और (शतं, शरदः) सौ वर्षपर्यन्त प्रिय वचनों को (शृणुयाम) सुनते रहें ॥

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वᳬ स्थिरा भव ।
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर कुण्ड के समीप आ के पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहैं और यहां वधू दक्षिण ओर रह के अपनी हस्ताञ्जली को वर की हस्ताञ्जली पर रक्खे तत्पश्चात् वधू की मा वा भाई जो दायें हाथ में धाणी का सूपड़ा पकड़ के खड़ा रहा हो वह धाणी का सूपड़ा भूमि पर धर अथवा किसी के हाथ में देके जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्ताञ्जली है उस में प्रथम थोड़ा घृत सिंचन करके पश्चात् प्रथम सूप में से दहिने हाथ की अञ्जली से दो वार ले के वर वधू की एकत्र की हुई अञ्जली में धाणी डाले पश्चात् उस अञ्जलीस्थ धाणी पर थोड़ा सा घी सिंचन करे पश्चात् वधू वर की हस्ताञ्जली सहित अपनी हस्ताञ्जली को आगे से नमा के—

ओं अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत । स नोऽर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा । इदमर्यम्णे अग्नये । इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव मम तुभ्यं च संवदनं तदग्निरनुमन्यतामियᳬ स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों में एक २ मन्त्र से एक २ बार थोड़ी २ धाणी की आहुति तीन वार प्रज्वलित इन्धन पर दे के घर—

ओं सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति । यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः । यस्यां भू-

तᳪ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोल के अपने जमणे हाथ की हस्ताञ्जली से वधू की हस्ताञ्जली पकड़ के वर–

ओं तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । पुनः पतिभ्यो जायां दाग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥ ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमपदीक्षामयष्ट । कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवातिगाहे महिद्विषः ॥ २ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहैं–तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार कलश सहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर पुनः दोवार इसी प्रकार अर्थात् सब मिल के ४ चार परिक्रमा करके अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में थोड़ा ठड़े रह के उक्त रीति से तीन बार क्रिया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख वधू वर खड़े रहें पश्चात् वधू की मा अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उस में बाकी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जली में डाल देवे पश्चात् वधू–

ओं भगाय स्वाहा ॥ इदं भगाय । इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे पश्चात् वर वधू को दक्षिणभाग में रख के कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के:–

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये, इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे तत्पश्चात् एकान्त में जा के वधू के बंधे हुए केशों को वर–

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येनस्त्वा बध्नात्सविता सुशेवः । ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरि-

ष्टान्त्वा सह पत्या दधामि ॥ १ ॥ प्रेतो मुञ्चामि नामतस्सुबद्धाममुतस्करम् । यथेमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सती ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोल के प्रथम वधू के केशों को छोड़ना तत्पश्चात् सभामण्डप में आ के सप्तपदी विधि का आरम्भ करे इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी इसे जोड़ा कहते हैं वधू वर दोनों जने आसन पर से उठ के वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जली पकड़ के यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में जावें तत्पश्चात् वर अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख के दोनों समीप २ उत्तराभिमुख खड़े रहें तत्पश्चात् वरः

मासव्येन दक्षिणमतिक्राम ।

ऐसा बोल के वधू को उस का दक्षिण पग उठवा के चलने के लिये आज्ञा देनी और—

ओं इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः ॥१॥

इस मन्त्र को बोल के वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान दिशा में एक पग* चले और चलावे ।

ओं ऊर्ज्जे द्विपदी भव० † ॥ इस मन्त्र से दूसरा ॥

---

* इस पग धरने की विधि ऐसी है कि वधू प्रथम अपना जमणा पग उठा के ईशानकोण ओर बढ़ा के धरे तत्पश्चात् दूसरे बायें पग को उठा के जमणे पग की पटली तक धरे अर्थात् जमणे पग के थोड़ा सा पीछे बाया पग रक्खे इसी को एक पगला गिणना इसी प्रकार अगले छः मन्त्रों से भी क्रिया करनी अर्थात् एक २ मन्त्र से एक २ पग ईशान दिशा की ओर धरना ॥

† जो भव के आगे मन्त्र में पाठ है सो छः मन्त्रों के इस भव पद के आगे पूरा बोल के पग धरने की क्रिया करनी ॥

ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव० ॥ इस मन्त्र से तीसरा ॥

ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव० ॥ इस मन्त्र से चौथा ॥

ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव० ॥ इस मन्त्र से पांचवां ॥

ओं ऋतुभ्यः षट्पदी भव० ॥ इस मन्त्र से छठा और—

ओं सखे सप्तपदी भव० ॥

इस मन्त्र से सातवां पगला चलना इस रीति से इन सात मन्त्रों से सात पग ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बन्धे हुए शुभासन पर बैठें तत्पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को ले के यज्ञकुण्ड की दक्षिण की ओर में बैठाया था वह पुरुष उस पूर्वस्थापित जलकुम्भ को ले के वधू वर के समीप आवे और उस में से थोड़ासा जल ले के वधू वर के मस्तक पर छिटकावे और वर—

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नं ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे ॥ १ ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्मा ऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ओं आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को बोलें तत्पश्चात् वधू वर वहां से उठ के—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के सूर्य का अवलोकन करें तत्पश्चात् वर वधू के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ ले के उस से वधू का हृदय स्पर्श करके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् * ॥

इस मन्त्र को बोले और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले † ॥

तत्पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ धर के:—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

इस मन्त्र को बोल के कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करना और इस समय सब लोग ॥

ओं सौभाग्यमस्तु । ओं शुभं भवतु ॥

---

* हे वधू ! (ते) तेरे (हृदयम्) अन्तःकरण और आत्मा को (मम) मेरे (व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि) धारण करता हूं (मम) मेरे (चित्तमनु) चित्त के अनुकूल (ते) तेरा (चित्तम्) चित्त सदा (अस्तु) रहे (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तू (एकमनाः) एकाग्र चित्त से (जुषस्व) सेवन किया कर (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मेरे लिये (नियुनक्तु) नियुक्त करे ॥

† वैसे ही हे प्रिय वीर स्वामिन् ! आप का हृदय आत्मा और अन्तःकरण मेरे प्रियाचरण कर्म में धारण करती हूं मेरे चित्त के अनुकूल आप का चित्त सदा रहे आप एकाग्र हो के मेरी वाणी का जो कुछ मैं आप से कहूं उस का सेवन सदा किया कीजिये क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आप को मेरे आधीन किया है जैसे मुझ को आप के आधीन किया है अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों वर्ता करें जिससे सर्वदा आनन्दित और कीर्तिमान् पतिव्रता और स्त्रीव्रत होके सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणादि को छोड़ के परस्पर प्रीतियुक्त रहें ॥

इस वाक्य से आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वधू वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठ के पुनः पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे दोनों (ओं यदस्य कर्मणो०) इस स्विष्टकृत् मन्त्र से होमाहुति अर्थात् एक आज्याहुति और पृष्ठ २६ में लिखे—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से एक२ से एक२ आहुति करके ४ चार आज्याहुति देवें और इसप्रमाणे विवाह के विधि पूरे हुए पश्चात् दोनों जने आराम अर्थात् विश्राम करें इस रीति से थोड़ासा विश्राम करके विवाह का उत्तर विधि करें। यह उत्तर विधि सब वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके एक घर प्रथम से बना रक्खा हो वहां जाके करनी तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय वधू वर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसान पर बैठें और पृष्ठ २४ में लि० अग्न्याधान (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से करें यदि प्रथम ही सभामण्डप ईशान दिशा में हुआ और प्रथम अग्न्याधान किया होतो अग्न्याधान न करें (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब पृ० २६ में लिखे प्रमाणे—

ओं अग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से ४ चार व्याहृति आहुति ये सब मिल के ८ आठ आज्याहुति देवें तत्पश्चात् प्रधान होम करें निम्नलिखित मन्त्रों से:—

ओं लेखा सन्धिषु पक्ष्मस्वावर्तेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥ ओं केशेषु यच्च पापक पापकमीक्षिते रुदिते च यत्। तानि० ॥ ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्। तानि० ॥

ओं आरोकेषु दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् । तानि० ॥ ओं ऊर्वोपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते । तानि० ॥ ओं यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन् । पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै, इदन्न मम ॥

ये छः मन्त्र हैं इन में से एक २ मन्त्र बोल एक २ से छः आज्याहुति देनी तत्पश्चात् पृ० २६ में लिखे ०—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ चार व्याहृति मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति दे के वधू वर वहां से उठ के सभामण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें तत्पश्चात् वर—

ध्रुवं पश्य ॥

ऐसा बोल के वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे * और वधू वर से बोले कि मैं

पश्यामि ॥

ध्रुव के तारे को देखती हूं तत्पश्चात् वधू बोले—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् (अमुष्य † असौ)

इस मन्त्र को बोल के तत्पश्चात्—

* हे वधू वा वर जैसे यह ध्रुव दृढ़ स्थिर है इसीप्रकार आप और मैं एक दूसरे के प्रियाचरणों में दृढ़ स्थिर रहें ॥

† (अमुष्य) इस पद के स्थान में षष्ठी विभक्त्यन्त पति का नाम बोलना जैसे शिवशर्मा पति का नाम हो तो "शिवशर्मणः" ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमा विभक्त्यन्त बोल के इस मन्त्र को पूरा बोले जैसे "भूयासं सौभाग्यदाहं शिवशर्मणस्ते" इस प्रकार दोनों पद जोड़ के बोले ॥

अरुन्धतीं पश्य ॥

ऐसा वाक्य बोल के वर वधू को अरुन्धती का तारा दिखलावे और वधू—

पश्यामि ॥

ऐसा कह के—

ओं अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मि (अमुष्य* असौ)

इस मन्त्र को बोल के वर वधू की ओर देख के वधू के मस्तक पर हाथ धरके

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् † ॥
ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि
मह्यं त्वादात्। बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव
शरदः शतम् ‡ ॥

---

* (अमुष्य) इस पद के स्थान में पति का नाम षष्ठ्यन्त और (असौ) इस के स्थान में वधू का प्रथमान्त नाम जोड़ कर बोले हे स्वामिन्! सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्मा की अर्धाङ्गी (पतिकुले) आप के कुल में (ध्रुवा) निश्चल जैसे कि आप (ध्रुवम्) दृढ़ निश्चय वाले मेरे स्थिर पति (असि) हैं वैसे मैं भी आप की स्थिर दृढ़ पत्नी (भूयासम्) हो ऊं ॥

† हे वरानने! जैसे (द्यौः) सूर्य की कान्ति वा विद्युत् (ध्रुवा) सूर्य लोक वा पृथिव्यादि में निश्चल जैसे (पृथिवी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाह स्वरूप में (ध्रुवम्) स्थिर है जैसे (इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम्) यह तू मेरी (स्त्री) (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवाः) सदा स्थिर रह ॥

‡ हे स्वामिन्! जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ सङ्कल्प करके स्थिर (असि) हैं या जैसे मैं (त्वा) आप को (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूं वैसे ही सदा के लिये मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आप को (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है वैसे मुझ पत्नी के साथ

इन दोनों मन्त्रों को बोले पश्चात् वधू और वर दोनों यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख हो के कुण्ड के समीप बैठें और पृ० २३ में लिखे०—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ आचमन करके तीन २ आचमन दोनों करें पश्चात् पृष्ठ २४-२५ में लिखी हुई समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त कर के पृष्ठ १८ में लिखे० घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावे पृष्ठ २४-२५ में लिखे० प्रमाणे "ओम् अयन्त इध्म०" इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों जने करके पश्चात् पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति चार दोनों मिल के ८ आठ आज्याहुति वर वधू देवें तत्पश्चात् जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात उस को एक पात्र में निकाल के उस के ऊपर स्रुवा से घृत सेचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा २ भात दोनों जने ले के—

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये, इदन्न मम ॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये, इदन्न मम ।
ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः, इदन्न मम । ओम् अनुमतये स्वाहा । इदमनुमतये, इदन्न मम ॥

इन में से प्रत्येक मन्त्र से एक २ करके ४ चार स्थालीपाक अर्थात् भात की आहुति देनी तत्पश्चात् पृष्ठ २७ में लिखे (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से १

उत्तम प्रजायुक्त हो के (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (सम्, जीव) जीविये तथा हे वरानने पत्नी (पोष्ये) धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझ पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रह (मह्यम्) मुझ को अपनी मनसा के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त आनन्दपूर्वक जीवन धारण कर । वधू वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिस से कभी उलटे विरोध में न चलें ॥

एक स्विष्टकृत् आहुति देनी तत्पश्चात् पृष्ठ २६ में लि० प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ चार और पृष्ठ २८—२९ में लि० अष्टाज्याहुति ८ आठ, दोनों मिल के १२ बारह आज्याहुति देनी तत्पश्चात् शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन और दक्षिण हाथ रख के:—

ओं अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना। बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते* ॥ १ ॥ ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम यदिदꣳ हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव † ॥ २ ॥ ओं अन्नं प्राणस्य षड्विꣳशस्तेन बध्नामि त्वा असौ ‡ ॥ ३ ॥

इन तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम थोड़ासा भक्षण कर के जो उच्छिष्ट शेष भात रहे वह अपनी वधू के लिये खाने को देवे और जब वधू उस को खा चुके तब वधू वर यज्ञमण्डप में सन्नद्ध हुए शुभासन पर नियम प्रमाणे पूर्वाभिमुख बैठें और पृष्ठ ३०-३१ में लि० प्रमाण सामवेदोक्त महावामदेव्यगान करें तत्पश्चात् पृष्ठ ४—१६ में लि० प्रमाणे ईश्वर की स्तुति, प्रार्थनोपासना,

---

* हे वधू वा वर ! जैसे अन्न के साथ प्राण प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है वैसे (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय (च) और (मनः) मन (च) और चित्त आदि को (सत्यग्रन्थिना) सत्यता की गांठ से (बध्नामि) बांधती वा बांधता हूं ॥

† हे वर हे स्वामिन् वा हे पत्नी ! (यदेतत्) जो यह (तव) तेरा (हृदयम्) आत्मा वा अन्तःकरण है (तत्) वह (मम) मेरा (हृदयम्) आत्मा अन्तःकरण के तुल्य प्रिय (अस्तु) हो, और (मम) मेरा (यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा प्राण और मन है (तत्) सो (तव) तेरे (हृदयम्) आत्मादि के तुल्य प्रिय (अस्तु) सदा रहे ॥

‡ (असौ) हे यशोदे ! जो (प्राणस्य) प्राण का पोषण करने हारा (षड्विंशः) २६ छब्बीसवां तत्त्व (अन्नम्) अन्न है (तेन) उस से (त्वा) तुझ को (बध्नामि) दृढ़ प्रीति से बांधता वा बांधती हूं ॥

स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण कर्म करके क्षार लवण रहित मिष्ट दुग्ध घृतादि सहित भोजन करें तत्पश्चात् पृष्ठ ०७ में लि० प्रमाणे पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सन्मानार्थ उत्तम भोजन कराना तत्पश्चात् यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार करके विदा कर देवें तत्पश्चात् (दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् २ स्थान में भूमि में बिछौना करके तीन रात्रिपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रह कर शयन करें और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधानसंस्कार करें यदि चौथे दिवस कोई अड़चल आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ कर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और पृष्ठ ४४ में लिखे प्रमाणे गर्भाधान की रात्रिभी हो उस रात्रिमें यथाविधि गर्भाधान करें तत्पश्चात् दूसरे वा तीसरे दिन प्रातःकाल वरपक्ष वाले लोग वधू और वर को रथ में बैठा के बड़े सन्मान से अपने घर में लावें) और जो वधू अपने माता पिता के घर को छोड़ते समय आंख में अश्रु भर लावे तो—

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः । वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥

इस मन्त्रको वर बोले और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे उस समय में वर—

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याऽश्विना त्वा प्र वहतां रथेन । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ १ ॥ सुकिंशुकꣳ शल्मलिं विश्वरूपꣳ हिरण्यवर्णꣳ सुवृतꣳ सुचक्रम् । आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकꣳ स्योनं पत्ये वहतुꣳ कृणुष्व ॥ २ ॥

इन दो मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे यदि वधू को वहां से अपनेघर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े तो इस निम्नलिखित मन्त्र को पूर्व बोल के नौका पर बैठे—

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।

और नाव से उतरते समय—

अत्रां जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरे माभिवाजान् ॥

इस उत्तरार्द्ध मन्त्र को बोल के नाव से उतरें पुनः इसी प्रकार मार्ग चार में मार्गों का संयोग, नदी, व्याघ्र, चोर आदि से भय वा भयंकर स्थान, ऊंचे, नीचे खाडा वाली पृथिवी बड़े २ वृक्षों का झुंड वा श्मशान भूमि आवे तो—

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ती दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर जिस रथ में बैठ के जाते हों उस रथ का कोई अंग टूट जाय अथवा किसी प्रकार का अकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खे हुए विवाहाग्नि को प्रगट करके उस में पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे ४ व्याहृति आज्याहुती देनी पश्चात् पृष्ठ ३०–३१ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करना पश्चात् जब वधू वर का रथ वर के घर के आगे आ पहुंचे तब कुलीन पुत्रवती सौभाग्यवती वा कोई ब्राह्मणी वा अपने कुल की स्त्री आगे सामने आ कर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ रथ से नीचे उतारे और वर के साथ सभामण्डप में ले जावे सभामण्डप द्वारे आते ही वर वहां कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करके—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वा । याथास्तं विपरेतन ॥ १ ॥

इस मन्त्र को बोले और आये हुए लोगः—

ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु ॥

इस प्रकार आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् वरः—

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधा जिव्री विदथमावदाथः ॥

इस मन्त्र को बोल के वधू को सभामण्डप में ले जावे तत्पश्चात् वधू वर पूर्व स्थापित यज्ञकुण्ड के समीप जावें उस समय वरः—

ओं इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्र दक्षिणोऽपि पूषा निषीदतु ॥

इस मन्त्र को बोल के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिणभाग में पूर्वाभिमुख बैठावे तत्पश्चात् पृ० २३ में लि०—

ओं अमृतोपस्तरणमसि ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ करके तीन २ आचमन करें तत्पश्चात् पृष्ठ २४ में लिखे प्रमाणे कुण्ड में यथाविधि समिधाचयन अग्न्याधान करे जब उसी कुण्ड में अग्निप्रज्वलित हो तब उस पर घृत सिक्तकरके पृष्ठ २४--२५ में लिखे प्रमाणे समिदाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि में पृष्ठ २६---२७ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्याभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार अष्टाज्याहुति ८ आठ सब मिल के १६ सोलह आज्याहुति वधू वर करके प्रधानहोम का आरम्भ निम्नलिखित मन्त्रों से करें ॥

ओं इह धृतिः स्वाहा । इदमिह धृत्यै । इदन्न मम ॥ ओं इह स्वधृतिस्स्वाहा । इदमिह स्वधृत्यै । इदन्न मम ॥ ओं इह रन्तिः स्वाहा । इदमिह रन्त्यै । इदन्न मम ॥ ओं इह रमस्व स्वाहा । इदमिह रमाय । इदन्न

मम ॥ ओं मयि धृतिः स्वाहा । इदं मयि धृत्यै, इदन्न मम ॥ ओं मयि स्वधृतिः स्वाहा । इदं मयि स्वधृत्यै इदन्न मम ॥ ओं मयि रमः स्वाहा । इदं मयि रमाय । इदन्न मम ॥ ओं मयि रमस्व स्वाहा । इदं मयि रमाय । इदन्न मम ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके ८ आठ आज्याहुति देके :—

ओं आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविश शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे * स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥१॥ ओं अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा † ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्राना-

* हे वरानने (अर्यमा) न्यायकारी दयालु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाय) जरावस्था पर्यन्त जीने के लिये (नः) हमारी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को शुभगुण कर्म और स्वभाव से (आजनयतु) प्रसिद्ध करे, समनक्तु) उस से उत्तम कुल को प्राप्त करे और वे शुभगुण युक्त (अदुः) जो लोग सब कुटुम्बियों को आनन्द (अदुः) देवें उन में से एक तू हे वरानने (पतिलोकम्) पति के घर वा सुख को (आविश) प्रवेश वा प्राप्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यों के लिये (शम्) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) गौ आदि को (शम्) सुखकर्त्री (भव) हो ॥

† इस मन्त्र का अर्थ पृष्ठ १३८ में लिखे प्रमाणे जानना ॥

धेहि पतिमेकादशं कृधि* स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव । ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु † स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै, इदन्न मम ॥ ४ ॥

---

* ईश्वर पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करने हारे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य युक्त इस वधू के स्वामिन् (त्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुन्दर सौभाग्य भोग वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों को (आ, धेहि) उत्पन्न कर अधिक नहीं और हे स्त्री ! तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दश पुत्र और (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पति को प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर यदि इस से आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त हो जाओगे इसलिये अधिक सन्तानोत्पत्ति न करना तथा (पतिमेकादशं कृधि) इस पद का अर्थ नियोग में दूसरा होगा अर्थात् जैसे पुरुष को विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा परमात्मा ने की है वैसी ही आज्ञा स्त्री को भी है कि दश पुत्र तक चाहे विवाहित पति से अथवा विधवा हुए पश्चात् नियोग से करे करावे वैसे ही एक स्त्री के लिये एक पति से एक बार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही वार विवाह करने की आज्ञा है जैसे विधवा हुए पश्चात् स्त्री नियोग से सन्तानोत्पत्ति करके पुत्रवती होवे वैसे पुरुष भी विगतस्त्री होवे तो नियोग से पुत्रवान् होवे ॥

† हे वरानने ! तू (श्वशुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वशुर है उस में प्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्त्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (भव) हो (श्वश्र्वाम्) मेरी माता जो कि तेरी सासु है उस में प्रेमयुक्त हो के उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर (ननान्दरि) जो मेरी बहिन और तेरी ननद है उस में भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु)

इन ४ चार मन्त्रों से एक २ से एक २ करके ४ चार आज्याहुति दे के पृष्ठ २६–२७ में लिखे प्रमाणे स्विष्टकृत होमाहुति १ एक व्याहृति आज्याहुति ४ चार और प्राजापत्याहुति १ एक ये सब मिल के ६ छः आज्याहुति दे कर—

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ *॥

इस मन्त्र को बोल के दोनों दधिप्राशन करें तत्पश्चात्—

अहं भो अभिवादयामि †॥

इस वाक्यको बोल के दोनों वधू वर, घर की माता पिता आदि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें पश्चात् सुभूषित होकर शुभासन पर बैठ के पृष्ठ ३०–३१ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करके उसी समय पृष्ठ ४—८ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करनी उस समय कार्यार्थ आए हुए सब स्त्री पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें तथा वधू वर पिता आचार्य और पुरोहित आदि को कहें कि-

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु॥

आप लोग स्वस्तिवाचन करें, तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित जो विद्वान् हों अथवा उन के अभाव में यदि वधू वर विद्वान् वेदवित् हों तो वे ही दोनों पृष्ठ ८–१६ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें पाठ हुए पश्चात् कार्यार्थ आए हुए स्त्री पुरुष सद्—

मेरे भाई जो तेरे देवर और ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उन में भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधि, भव) अधिकार युक्त हो अर्थात् सब से अविरोध पूर्वक प्रीति से वर्ता कर॥

* इस मन्त्र का अर्थ पृष्ठ १३७ में लि० समझ लेना।

† इस से उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये नित्यप्रति स्त्री पुरुष, पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि के लिये है प्रातः सायं अपूर्व समागम में जब २ मिलें तब २ इसी वाक्य से परस्पर वन्दन करें।

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ॥

इस वाक्य को बोलें तत्पश्चात् कार्य कर्त्ता पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को तथा माता, चाची, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत् सत्कार करके विदा करें तत्पश्चात् यदि किसी विशेष कारण से श्वशुर गृह में गर्भाधान संस्कार न हो सके तो वधू वर क्षार आहार और विषयतृष्णा रहित व्रतस्थ होकर पृ० ३२-४७ में लिखे प्रमाणे विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो किसी दूसरे दिन गर्भस्थापन करें और जो वर दूसरे देश से विवाह के लिये आया हो तो वह जहां जिस स्थान में विवाह करने के लिये जाकर उतरा हो उसी स्थान में गर्भाधान करे पुनः अपने घर आ के पति सासु श्वशुर ननन्द देवर देवराणी ज्येष्ठ जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्त्तें और मधुरवाणी वस्त्र आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रक्खें तथा वधू सब को प्रसन्न रक्खे, और वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्तें तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे तथा वर भी स्त्री की सेवा प्रसन्नता में तत्पर रहे ॥

इति विवाह संस्कार विधिः समाप्तः ॥
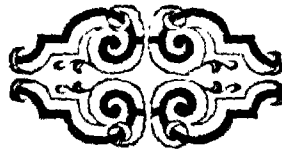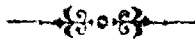
अथ गृहाश्रमसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥
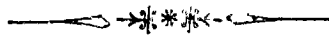
गृहाश्रम संस्कार उस को कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिये विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म में ही अपना तन मन धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करनी ॥

अत्र प्रमाणानि—सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा । सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात् ॥ १ ॥ इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् । क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २ ॥

अर्थः—(सोमः) सुकुमार शुभगुण युक्त (वधूयुः) वधू की कामना करने हारा पति तथा वधू पति की कामना करने हारी (अश्विना) दोनों ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त (अभवत्) होवें और (उभा) दोनों (वरा) श्रेष्ठ तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले (आस्ताम्) होवें ऐसी (यत्) जो (सूर्याम्) सूर्य की किरणवत् सौन्दर्य गुण युक्त (पत्ये) पति के लिये (मनसा) मन से (शंसन्तीम्) गुण कीर्त्तन करने वाली वधू है उस को पुरुष और इसी प्रकार के पुरुष को स्त्री (सविता) सकल जगत का उत्पादक परमात्मा (ददात्) देता है अर्थात् बड़े भाग्य से दोनों स्त्री पुरुषों का जो कि तुल्य गुण कर्म स्वभाव हों जोड़ा मिलता है ॥ १ ॥ हे स्त्री और पुरुष मैं परमेश्वर आज्ञा देता हूं कि जो तुम्हारे लिये पूर्व विवाह में प्रतिज्ञा हो चुकी है जिस को तुम दोनों ने स्वीकार किया है (इहैव) इसी में (स्तम्) तत्पर रहो (मा, वियौष्टम्) इस प्रतिज्ञा से वियुक्त मत होओ (विश्वमायुर्व्यश्नुतम्) ऋतुगामी होके वीर्य का अधिक नाश न कर के संपूर्ण आयु जो सौ वर्ष से कम नहीं है उस को प्राप्त होओ और पूर्वोक्त धर्म रीति से (पुत्रैः) पुत्रों और (नप्तृभिः)

नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) क्रीड़ा करते हुए (स्वस्तकौ) उत्तम गृह वाले (मोदमानौ) आनन्दित हो कर गृहाश्रम में प्रीतिपूर्वक वास करो ॥ २ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः । स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ ३ ॥ स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः । स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ ४ ॥ या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि । वर्चो न्वस्यै संदत्ताथास्तं विपरेतन ॥५॥ आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै । इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ६ ॥

अर्थः—हे वरानने! तू (सुमङ्गली) अच्छे मङ्गलाचरण करने तथा (प्रतरणी) दोष और शोकादि से पृथक् रहने हारी (गृहाणाम्) गृह कार्यों में चतुर और तत्पर रह कर (सुशेवा) उत्तम सुखयुक्त हो के (पत्ये) पति (श्वशुराय) श्वशुर और (श्वश्र्वै) सासु के लिये (शम्भूः) सुख कर्त्री और (स्योना) स्वयं प्रसन्न हुई (इमान्) इन (गृहान्) घरों में सुखपूर्वक (प्रविश) प्रवेश कर ॥ ३ ॥ हे वधू! तू (श्वशुरेभ्यः) श्वशुरादि के लिये (स्योना) सुखदाता (पत्ये) पति के लिये (स्योना) सुखदाता और (गृहेभ्यः) गृहस्थ सम्बन्धियों के लिये (स्योना) सुखदायक (भव) हो और (अस्यै) इस (सर्वस्यै) सब (विशे) प्रजा के अर्थ (स्योना) सुखप्रद और (एषाम्) इन के (पुष्टाय) पोषण के अर्थ तत्पर (भव) हो ॥४॥ (याः) जो (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाली अर्थात् दुष्टात्मा (युवतयः) ज्वान स्त्रियां (च) और (याः) जो (इह) इस स्थान में (जरतीः) बुड्ढी दुष्ट स्त्रियां हों वे (अपि) भी (अस्यै) इस वधू को (नु) शीघ्र (वर्चः) तेज (सं, दत्त) देवें (अथ) इस के पश्चात् (अस्तम्) अपने २ घर को (विपरेतन) चली जावें और फिर इस के पास कभी न आवें ॥ ५ ॥ हे वरानने! तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्त हो कर (तल्पम्) पर्यङ्क पर (आरोह) चढ़ के शयन कर और

(इह) इस गृहाश्रम में स्थिर रह कर (अस्मै) इस (पत्ये) पति के लिये (प्रजां, जनय) प्रजा को उत्पन्न कर (सुबुधा) सुन्दर ज्ञानी सुध्यमाना उत्तम शिक्षा को प्राप्त (इन्द्राणीव) सूर्य की कांति के समान तू (उषसः) उषःकाल से (अग्रा) पहिली (ज्योतिः) ज्योति के तुल्य (प्रति, जागरासि) प्रत्यक्ष सब कार्यों में जागती रह ॥ ६ ॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः । सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या संभवेह ॥ ७ ॥ संपितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः । मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ८ ॥ तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति । या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ९ ॥

अर्थः—हे सौभाग्यप्रदे! (नारि) तू जैसे (इह) इस गृहाश्रम में (अग्रे) प्रथम (देवाः) विद्वान् लोग (पत्नीः) उत्तम स्त्रियों को (न्यपद्यन्त) प्राप्त होते हैं और (तनूभिः) शरीरों से (तन्वः) शरीरों को (समस्पृशन्त) स्पर्श करते हैं वैसे (विश्वरूपा) विविध सुन्दर रूप को धारण करने हारी (महित्वा) सत्कार को प्राप्त हो के (सूर्येव) सूर्य की कान्ति के समान (पत्या) अपने स्वामी के साथ मिल के (प्रजावती) प्रजा को प्राप्त होने हारी (संभव) अच्छे प्रकार हो ॥ ७ ॥ हे स्त्री पुरुषो! तुम (पितरौ) बालकों के जनक (ऋत्विये) ऋतु समय में सन्तानों को (संसृजेथाम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो (माता) जननी (च) और (पिता) जनक दोनों (रेतसः) वीर्य को मिला कर गर्भाधान करने हारे (भवाथः) हूजिये । हे पुरुष (एनाम्) इस (योषाम्) अपनी स्त्री को (मर्य इव) प्राप्त होने वाले पति के समान (अधि, रोहय) सन्तानों से बढ़ा और दोनों (इह) इस गृहाश्रम में मिल के (प्रजाम्) प्रजा को (कृण्वाथाम्) उत्पन्न करो (पुष्यतम्) पालन पोषण करो

और पुरुषार्थ से (रयिम्) धन को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥ हे (पूषन्) पुष्टिकारक पुरुष! (यस्याम्) जिस में (मनुष्याः) मनुष्य लोग (बीजम्) वीर्य को (वपन्ति) बोते हैं (या) जो (नः) हमारी (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) ऊरू को सुन्दरता से (विश्रयाति) विशेष कर आश्रय करती है (यस्याम्) जिस में (उशन्तः) सन्तानों की कामना करते हुए हम (शेपः) उपस्थेन्द्रिय का (प्रहरेम) प्रहरण करते हैं (ताम्) उस (शिवतमाम्) अतिशय कल्याण करने हारी स्त्री को सन्तानोत्पत्ति के लिये (एरयस्व) प्रेम से प्रेरणा कर ॥ ९ ॥

स्योनाद्योनेरधिबुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ । सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥ १० ॥ इहेमाविन्द्र संनुद चक्रवाकेव दम्पती । प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥११॥ जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ १२ ॥

अर्थः–हे स्त्रि ! और पुरुष जैसे सूर्य (विभातीः) सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) प्रभात वेला को प्राप्त होता है वैसे (स्योनात्) सुख से (योनेः) घर के मध्य में (अधि, बुध्यमानौ) सन्तानोत्पत्ति आदि की क्रिया को अच्छे प्रकार जानने हारे सदा (हसामुदौ) हास्य और आनन्द युक्त (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) अत्यन्त प्रसन्न हुए (सुगू) उत्तम चाल चलने से धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छे प्रकार चलने हारे (सुपुत्रौ) उत्तम पुत्रवाले (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृहादि सामग्री युक्त (जीवौ) उत्तम प्रकार जीवों को धारण करते हुए (तराथः) गृहाश्रम के व्यवहारों के पार होओ ॥ १० ॥ हे (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त विद्वन् राजन् आप (इह) इस संसार में (इमौ) इन स्त्री पुरुषों को समय पर विवाह करने की आज्ञा और ऐसी व्यवस्था दीजिये कि जिससे कोई स्त्री पुरुष पृ० ९८–१०२ में लि० प्रमाण से पूर्व वा अन्यथा विवाह न कर सकें वैसे (संनुद) सब को प्रसिद्धि से प्रेरणा कीजिये जिस से ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा को पाके (दम्पती) जाया और पति (चक्रवाकेव) च-

कवा चकवी के समान एक दूसरे से प्रेमबद्ध रहें और गर्भाधानसंस्कारोक्तविधि से (प्रजया) उन्नत हुई प्रजा से (एनौ) ये दोनों (स्वस्तकौ) सुखयुक्त हो के (विश्वम्) संपूर्ण १०० वर्ष पर्यन्त (आयुः) आयु को (व्यश्नुताम्) प्राप्त होवें ॥११॥ हे मनुष्यो! जैसे (सुदानवः) विद्यादि उत्तम गुणों के दान करने हारे (अग्रवः) उत्तम स्त्री पुरुष (जनियन्ति) पुत्रोत्पत्ति करते और (पुत्रीयन्ति) पुत्र की कामना करते हैं वैसे (नौ) हमारे भी सन्तान उत्तम होवें तथा (अरिष्टासू) बल प्राण का नाश न करने हारे होकर (बृहते) बड़े (वाजसातये) परोपकार के अर्थ विज्ञान और अन्न आदि के दान के लिये (सचेवहि) कटिबद्ध सदा रहें जिस से हमारे सन्तान भी उत्तम होवें ॥ १२ ॥

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ १३ ॥ सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः । अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ १४ ॥

अर्थः—हे पत्नी ! तू (शतशारदाय) शतवर्ष पर्य्यन्त (दीर्घायुत्वाय) दीर्घकाल जीने के लिये (सुबुधा) उत्तम बुद्धियुक्त (बुध्यमाना) सज्ञान होकर (गृहान्) मेरे घरों को (गच्छ) प्राप्त हो और (गृहपत्नी) मुझ घर के स्वामी की स्त्री (यथा) जैसे (ते) तेरा (दीर्घम्) दीर्घकाल पर्य्यन्त (आयुः) जीवन (आसः) होवे वैसे (प्रबुध्यस्व) प्रकृष्टज्ञान और उत्तम व्यवहार को यथावत् जान इस अपनी आज्ञा को (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति और संपूर्ण ऐश्वर्य को देने हारा परमात्मा (कृणोतु) अपनी कृपा से सदा सिद्ध करे जिस से तू और मैं सदा उन्नतिशील होकर आनन्द में रहें ॥१३॥ हे गृहस्थो! मैं ईश्वर तुम को जैसी आज्ञा देता हूं वैसा ही वर्त्तमान करो जिस से तुम को अक्षय सुख हो अर्थात् (वः) तुम्हारा (सहृदयम्) जैसी अपने लिये सुख की इच्छा करते और दुःख नहीं चाहते हो वैसे माता पिता सन्तान स्त्री पुरुष भृत्य मित्र पड़ोसी और अन्य सब से समान हृदय रहो (सांमनस्यम्) मन से सम्यक् प्रसन्नता और (अविद्वेषम्) वैर विरोधादि रहित

व्यवहार को तुम्हारे लिये (कृणोमि) स्थिर करता हूं तुम (अघ्न्या) हनन न करने योग्य गाय (वत्सं, जातमिव) उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्यभाव से जैसे वर्तती है वैसे (अन्योऽन्यम्) एक दूसरे से (अभि, हर्यत) प्रेमपूर्वक कामना से वर्त्ता करो ॥ १४ ॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः । जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान् ॥१५॥ मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा । सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ १६ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो ! जैसे तुम्हारा (पुत्रः) पुत्र (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) प्रीतियुक्त मनवाला (अनुव्रतः) अनुकूल आचरणयुक्त (पितुः) और पिता के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का प्रेम वाला (भवतु) होवे वैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्ता करो जैसे (जाया) स्त्री (पत्ये) पति की प्रसन्नता के लिये (मधुमतीम्) माधुर्य गुणयुक्त (वाचम्) वाणी को (वदतु) कहे वैसे पति भी (शन्तिवान्) शान्त हो कर अपनी पत्नी से सदा मधुरभाषण किया करे ॥ १५ ॥ हे गृहस्थो तुम्हारे में (भ्राता) भाई (भ्रातरम्)भाई के साथ (मा, द्विक्षन्) द्वेष कभी न करे (उत) और (स्वसा) बहिन (स्वसारम्) बहिन से द्वेष कभी (मा) न करे तथा बहिन भाई भी परस्पर द्वेष मत करो किन्तु (सम्यञ्चः) सम्यक् प्रेमादि गुणों से युक्त (सव्रताः)समान गुणकर्म स्वभाव वाले (भूत्वा) होकर (भद्रया) मङ्गलकारक रीति से एक दूसरे के साथ (वाचम्) सुखदायक वाणी को (वदत)बोला करो॥१६॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः । तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ १७ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो ! मैं ईश्वर (येन) जिस प्रकार के व्यवहार से (देवाः) विद्वान् लोग (मिथः) परस्पर (न, वियन्ति) पृथक् भाव वाले नहीं होते (च) और (नो, विद्विषते) परस्पर में द्वेष कभी नहीं करते (तत्) वही कर्म (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (कृण्मः) निश्चित करता हूं (पुरुषेभ्यः) पुरुषों को (सं-

ज्ञानम्) अच्छे प्रकार चिताता हूं कि तुम लोग परस्पर प्रीति से वर्त्त कर बड़े (प्रज्ञा) धर्मैश्वर्य को प्राप्त होओ ॥ १७ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥ १८ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुम (ज्यायस्वन्तः) उत्तम विद्यादि गुणयुक्त (चित्तिनः) विद्वान् सज्ञान (सधुराः) धुरंधर होकर (चरन्तः) विचरते और (संराधयन्तः) परस्पर मिल के धन धान्य राज्य समृद्धि को प्राप्त होते हुए (मा, वियौष्ट) विरोधी वा पृथक् २ भाव मत करो (अन्यः) एक (अन्यस्मै) दूसरे के लिये (वल्गु) सत्य मधुर भाषण (वदन्तः) कहते हुए एक दूसरे को (एत) प्राप्त होओ इसी लिये (सध्रीचीनान्) समान लाभाऽलाभ से एक दूसरे के सहायक (संमनसः) ऐकमत्य वाले (वः) तुम को (कृणोमि) करता हूं अर्थात् मैं ईश्वर तुम को जो आज्ञा देता हूं इस को आलस्य छोड़ कर किया करो ॥ १८ ॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ १९ ॥ सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्सं वननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥ २० ॥ अथर्व कां० ३ । वर्ग ३० । मं० १ । ७ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मुझ ईश्वर की आज्ञा से तुम्हारा (प्रपा) जलपान स्नानादि का स्थान आदि व्यवहार (समानी) एकसा हो (वः) तुम्हारा (अन्नभागः) खान पान (सह) साथ हुआ करो (वः) तुम्हारे (समाने) एक से (योक्त्रे) अश्वादि यान के जोते (सह) संगी हों और तुम को मैं धर्म्मादि व्यवहार में भी एकीभूत करके (युनज्मि) नियुक्त करता हूं जैसे (आराः) चक्र के

आरे (अभितः) चारों ओर से (नाभिमिव) बीच के नालरूप काष्ठ में लगे रहते हैं अथवा जैसे ऋत्विज् लोग और यजमान यज्ञ में मिल के (अग्निम्) अग्नि आदि के सेवन से जगत् का उपकार करते हैं वैसे (सम्यञ्चः) सम्यक् प्राप्ति वाले तुम मिल के धर्मयुक्त कर्मों को (सपर्यत) एक दूसरे का हित सिद्ध किया करो ॥ १९ ॥ हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मैं ईश्वर (वः) तुम को (सध्रीचीनान्) सहवर्तमान (संमनसः) परस्पर के लिये हितैषी (एकश्नुष्टीन्) एक ही धर्मकृत्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाले (सर्वान्) सब को (संवननेन) धर्मकृत्य के सेवन के साथ एक दूसरे के उपकार में नियुक्त (कृणोमि) करता हूं तुम (देवाइव) विद्वानों के समान (अमृतम्) व्यावहारिक वा पारमार्थिक सुख की (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए (सायं प्रातः) संध्या और प्रातःकाल अर्थात् सब समय में एक दूसरे से प्रेमपूर्वक मिला करो वैसे करते हुए (वः) तुम्हारा (सौमनसः) मन का आनन्दयुक्त शुद्ध भाव (अस्तु) सदा बना रहे ॥ २० ॥

श्रमे॑ण॒ तप॑सा सृ॒ष्टा ब्रह्म॑णा वि॒त्त ऋ॒ते श्रि॒ताः ॥ २१ ॥ स॒त्येनावृ॑ताः श्रि॒या प्रावृ॑ता य॒शसा॒ परी॑वृताः ॥ २२ ॥ स्व॒धया॒ परि॑हिताः श्र॒द्धया॒ पर्यू॑ढा दी॒क्षया॑ गु॒प्ता य॒ज्ञे प्रति॑ष्ठिता लो॒को नि॒धन॑म् ॥२३॥

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो ! मैं ईश्वर तुम को आज्ञा देता हूं कि तुम सब गृहस्थ मनुष्य लोग (श्रमेण) परिश्रम तथा (तपसा) प्राणायाम से (सृष्टाः) संयुक्त (ब्रह्मणा) वेदविद्या परमात्मा और धनादि से (वित्ते) मांगने योग्य धनादि के प्रयत्न में और (ऋते) यथार्थ पक्षपातरहित न्यायरूप धर्म में (श्रिताः) चलने हारे सदा बने रहो ॥ २१ ॥ (सत्येन) सत्यभाषणादि कर्मों से (आवृताः) चारों ओर से युक्त (श्रिया) शोभा तथा लक्ष्मी से (प्रावृताः) युक्त (यशसा) कीर्त्ति और धर्म से (परीवृताः) सब ओर से संयुक्त रहा करो ॥२२॥ (स्वधया) अपने ही अन्नादि पदार्थ के धारण से (परिहिताः) सब के हितकारी (श्रद्धया) सत्य धारण में श्रद्धा से (पर्यूढाः) सब ओर से सब को सत्याचरण प्राप्त कराने हारे (दीक्षया) नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि व्रत धारण से (गुप्ताः) सुर-

शित (यज्ञे) विद्वानों के सत्कार, शिल्पविद्या और शुभ गुणों के दान में (प्रतिष्ठिताः) प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ करो और इन्हीं कर्मों से (निधनम्, लोकः) इस मनुष्य लोक को प्राप्त हो के मृत्यु पर्य्यन्त सदा आनन्द में रहो ॥ २३ ॥

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलञ्च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ २४ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! तुम जो (ओजः) पराक्रम (च) और इस की सामग्री (तेजः) तेजस्वीपन (च) और इस की सामग्री (सहः) स्तुति निन्दा हानि लाभ तथा शोकादि का सहन (च) और इस के साधन (बलञ्च) बल और इस के साधन (वाक्, च) सत्य प्रिय वाणी और इस के अनुकूल व्यवहार (इन्द्रियञ्च) शान्त धर्मयुक्त अन्तःकरण और शुद्धात्मा तथा जितेन्द्रियता (श्रीश्च) लक्ष्मी सम्पत्ति और इसकी प्राप्ति का धर्मयुक्त उद्योग (धर्मश्च) पक्षपात रहित न्यायाचरण वेदोक्तधर्म और जो इस के साधन वा लक्षण हैं उन को तुम प्राप्त हो के इन्हीं में सदा वर्त्ता करो ॥ २४ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ २५ ॥ आयुश्च रूपं च नाम च कीर्त्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रञ्च ॥ २६ ॥ पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्त्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ २७ ॥ अथर्व० कां० १२ । अ० ५ । व० १-२ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि (ब्रह्म, च) पूर्ण विद्यादि शुभ गुण युक्त मनुष्य और सब के उपकारक शम दमादि गुण युक्त ब्रह्मकुल (क्षत्रञ्च) विद्यादि उत्तम गुण युक्त तथा विनय और शौर्यादि गुणों से युक्त क्षत्रिय कुल (राष्ट्रञ्च) राज्य और उसका न्याय से पालन (विशश्च) उत्तम प्रजा और उस की उन्नति (त्विषिश्च) सद्विद्यादि से तेज आरोग्य शरीर और आत्मा के बल

से प्रकाशमान और इस की उन्नति से (यशश्च) कीर्त्ति युक्त तथा इस के साधनों को प्राप्त हुआ करो (वर्चश्च) पढ़ी हुई विद्या का विचार और उसका नित्य पढ़ना (द्रविणञ्च) द्रव्योपार्जन उसकी रक्षा और धर्मयुक्त परोपकार में व्यय करने आदि कर्मों को सदा किया करो ॥ २८ ॥ हे स्त्री पुरुषो ! तुम अपना (आयुः) जीवन बढ़ाओ, (च) और सब जीवन में धर्मयुक्त उत्तम कर्म ही किया करो (रूपञ्च) विषयासक्ति, कुपथ्य, रोग और अधर्माचरण को छोड़ के अपने स्वरूप को अच्छा रक्खो और वस्त्राभूषण भी धारण किया करो (नाम, च) नामकरण के पृष्ठ ६३-६६ में लिखे प्रमाणे शास्त्रोक्त संज्ञा धारण और उस के नियमों को भी (कीर्तिश्च) सत्याचरण से प्रशंसा का धारण और गुणों में दोषारोपण रूप निन्दा को छोड़ दो (प्राणश्च) चिरकालपर्यन्त जीवन का धारण और उस के युक्ताहार विहारादि साधन (अपानश्च) सब दुःख दूर करने का उपाय और उस की सामग्री (चक्षुश्च) प्रत्यक्ष और अनुमान उपमान (श्रोत्रञ्च) शब्द प्रमाण और उस की सामग्री का धारण किया करो॥२६॥ हे गृहस्थ लोगो ! (पयश्च) उत्तम जल दूध और इस का शोधन और युक्ति से सेवन (रसश्च) घृत दूध मधु आदि और इस का युक्ति से आहार विहार (अन्नञ्च) उत्तम चावल आदि अन्न और उसके उत्तम संस्कार किये (अन्नाद्यञ्च) खाने के योग्य पदार्थ और उस के साथ उत्तम दाल शाक कढ़ी आदि (ऋतञ्च) सत्यमानना और सत्य मनवाना (सत्यञ्च) सत्य बोलना और बुलवाना (इष्टञ्च) यज्ञ करना और कराना (पूर्त्तञ्च) यज्ञ की सामग्री पूर्ण करना तथा जलाशय और आराम वाटिका आदि का बनाना और बनवाना (प्रजा, च) प्रजा की उत्पत्ति पालन और उन्नति सदा करनी तथा करानी (पशवश्च) गाय आदि पशुओं का पालन और उन्नति सदा करनी तथा करानी चाहिये ॥ २७ ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥१॥
य० अ० ४० मं० २ ॥

अर्थः—मैं परमात्मा सब मनुष्यों के लिये आज्ञा देता हूं कि प्रत्येक मनुष्य (इह) इस संसार में शरीर से समर्थ हो के (कर्माणि) सत्कर्मों को (कुर्वन्नेव)

करता ही करता (शतं, समाः) १०० सौ वर्ष पर्यन्त (जिजीविषेत्) जीनेकी इच्छा करे आलसी और प्रमादी कभी न होवे (एवम्) इस प्रकार उत्तम कर्म करते हुए (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्य में (इतः) इस हेतु से (अन्यथा) उलटापनरूप (कर्म) दुःखद कर्म (न, लिप्यते) लिप्यमान कभी नहीं होता और तुम पापरूप कर्म में लिप्त कभी मत होओ इस उत्तम कर्म से कुछ भी दुःख (नास्ति) नहीं होता इसलिये तुम स्त्री पुरुष सदा पुरुषार्थी होकर उत्तम कर्मों से अपनी और दूसरों की सदा उन्नति किया करो ॥ १ ॥ पुनः स्त्री पुरुष सदा निम्नलिखित मन्त्रों के अनुकूल इच्छा और आचरण किया करें। वे मन्त्र ये हैं—

भूर्भुवः स्वः। सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳶ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्यं प्रजां मे पाहि शᳶस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥ २ ॥ गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि। ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ३ ॥ य० अ० ३। मं० ३७। ४१ ॥

अर्थः—हे स्त्री वा पुरुष ! मैं तेरा वा अपने के सम्बन्ध से (भूर्भुवः स्वः) शारीरिक वाचिक और मानस अर्थात् त्रिविध सुख से युक्त हो के (प्रजाभिः) मनुष्यादि उत्तम प्रजाओं के साथ (सुप्रजाः) उत्तम प्रजा युक्त (स्याम) होऊं (वीरैः) उत्तम पुत्र बन्धु सम्बन्धी और भृत्यों से सह वर्तमान (सुवीरः) उत्तम वीरों से सहित होऊं (पोषैः) उत्तम पुष्टि कारक व्यवहारों से (सुपोषः) उत्तम पुष्टियुक्त होऊं हे (नर्य) मनुष्यों में सज्जन वीर स्वामिन् ! (मे) मेरी (प्रजाम्) प्रजा की (पाहि) रक्षा कीजिये हे (शंस्य) प्रशंसा करने योग्य स्वामिन् ! आप (मे) मेरे (पशून्) पशुओं की (पाहि) रक्षा कीजिये हे (अथर्य) अहिंसक दयालो स्वामिन् ! (मे) मेरे (पितुम्) अन्न आदि की (पाहि) रक्षा कीजिये वैसे हे नारि प्रशंसनीय गुण युक्त तू मेरी प्रजा मेरे पशु और मेरे अन्न की सदा रक्षा किया कर ॥ २ ॥ हे (गृहाः) गृहस्थ लोगो ! तुम विधिपूर्वक गृहाश्रम में प्रवेश करने से

(मा, बिभीत) मत डरो (मा, वेपध्वम्) मत कंपायमान होओ (ऊर्जम्) अन्न, पराक्रम तथा विद्यादि शुभ गुण से युक्त होकर गृहाश्रम को (बिभ्रतः) धारण करते हुए तुम लोगों को हम सत्योपदेशक विद्वान् लोग (एममि) प्राप्त होते और सत्योपदेश करते हैं और अन्न पानाच्छादन स्थान से तुम्हीं हमारा निर्वाह करते हो इसलिये तुम्हारा गृहाश्रम व्यवहार में निवास सर्वोत्कृष्ट है। हे वरानने! जैसे मैं तेरा पति (मनसा) अन्तःकरण से (मोदमानः) आनन्दित (सुमनाः) प्रसन्न मन (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि से युक्त मुझ को और हे मेरे पूजनीयतम पिता आदि लोगो (वः) तुम्हारे लिये (ऊर्जम्) पराक्रम तथा अन्नादि ऐश्वर्य्य को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ तुम (गृहान्) गृहस्थों को (आ, एमि) सब प्रकार से प्राप्त होता हूं उसी प्रकार तुम लोग भी मुझ से प्रसन्न हो के वर्त्ता करो ॥ ३ ॥

एषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः । गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४ ॥ उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शं योः शं योः ॥ ५ ॥ यजु० अध्याय ३ मं० ४२ । ४३ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो (प्रवसन्) परदेश जो गया हुआ मनुष्य (एषाम्) इनका (अध्येति) स्मरण करता है (येषु) जिन गृहस्थों में (बहुः) बहुत (सौमनसः) प्रीति होती है उन (गृहान्) गृहस्थों की हम विद्वान् लोग (उप, ह्वयामहे) प्रशंसा करते और प्रीति से समीपस्थ बुलाते हैं (ते) वे गृहस्थ लोग (जानतः) उन को जानने वाले (नः) हम लोगों को (जानन्तु) सुहृद् जानें वैसे तुम गृहस्थ और हम संन्यासी लोग आपस में मिल के पुरुषार्थ से व्यवहार और परमार्थ की उन्नति सदा किया करें ॥ ४ ॥ हे गृहस्थो ! (नः) अपने (गृहेषु) घरों में जिस प्रकार (गावः) गौ आदि उत्तम पशु (उपहूताः) समीपस्थ हों तथा (अजावयः) बकरी भेड़ आदि

दूध देने वाले पशु (उपहूताः) समीपस्थ हों (अथो) इस के अनन्तर (अन्नस्य) अन्नादि पदार्थों के मध्य में उत्तम (कीलालः) अन्नादि पदार्थ (उपहूतः) प्राप्त होवें हम लोग वैसा प्रयत्न किया करें। हे गृहस्थो ! मैं उपदेशक वा राजा (इह) इस गृहाश्रम में (वः) तुम्हारे (क्षेमाय) रक्षण तथा (शान्त्यै) निरुपद्रवता करने के लिये (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं मैं और आप लोग प्रीति से मिल के (शिवम्) कल्याण (शग्मम्) व्यावहारिक सुख और (शंयोः, शंयोः) पारमार्थिक सुख को प्राप्त हो के अन्य सब लोगों को सदा सुख दिया करें ॥ ७ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥१॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥२॥ मनु०

अर्थः-हे गृहस्थो जिस कुल में भार्या से प्रसन्न पति और पति से भार्या सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है और दोनों परस्पर अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य कलह वास करता है ॥ १ ॥ यदि स्त्री पुरुष पर रुचि न रक्खे वा पुरुष को प्रहर्षित न करे तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में कामोत्पत्ति कभी न हो के सन्तान नहीं होते और यदि होते हैं तो दुष्ट होते हैं ॥ २ ॥

स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वन्तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥३॥ मनु०॥

अर्थः—और जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता तो उस स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल भर अप्रसन्न शोकातुर रहता है और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है तब सब कुल आनन्दरूप दीखता है ॥ ३ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥४॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५ ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ ६ ॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्या हतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥७॥ मनु० ॥

अर्थः-पिता, भ्राता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहिन स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण भोजन वस्त्र आभूषण आदि से प्रसन्न रक्खें जिन को कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को क्लेश कभी न देवें ॥ ४ ॥ जिस कुल में नारियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है उस कुल में दिव्य गुण दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती वहां जानों उनकी सब क्रिया निष्फल हैं ॥५॥ जिस कुल में स्त्री लोग अपने २ पुरुषों के वेश्यागमन वा व्यभिचारादि दोषों से शोकातुर रहती हैं वह कुल शीघ्र नाश को प्राप्त होजाता है और जिस कुल में स्त्रीजन पुरुषों के उत्तमाचरणों से प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ॥६॥ जिन कुल और घरों में अपूजित अर्थात् सत्कार को न प्राप्त होकर स्त्री लोग जिन गृहस्थों को शाप देती हैं वे कुल तथा गृहस्थ जैसे विष देकर बहुतों को एक बार नाश कर देवें वैसे चारों ओर से नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं ॥ ७ ।

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ८ ॥ मनु०

अर्थः-इस कारण ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले पुरुषों को योग्य है कि इन स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र, खान, पान आदि से सदा पूजा अर्थात् सत्कार युक्त प्रसन्न रक्खें ॥ ८ ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥९॥ मनु०॥

अर्थः—स्त्री को योग्य है कि सदा आनन्दित होके चतुरता से गृहकार्यों में वर्त्तमान रहे तथा अन्नादि के उत्तम संस्कार पात्र वस्त्र गृह आदि के संस्कार और घर के भोजनादि में जितना नित्य धन आदि लगे उस के यथायोग्य करने में सदा प्रसन्न रहे ॥ ९ ॥

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैःस्वैर्भर्तृगुणैःशुभैः ॥ १० ॥

अर्थः—यदि स्त्रियां दुष्टाचार युक्त भी हों तथापि इस संसार में बहुत स्त्रियां अपने २ पतियों के शुभ गुणों से उत्कृष्ट हो गई, होती हैं और होंगी भी इस लिये यदि पुरुष श्रेष्ठ हों तो स्त्रियां श्रेष्ठ और दुष्ट हों तो दुष्ट हो जाती हैं इस से प्रथम मनुष्यों को उत्तम हो के अपनी स्त्रियों को उत्तम करना चाहिये ॥ १० ॥

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ ११॥
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम् ॥१२॥
अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥ १३ ॥
यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥१४॥मनु:॥

अर्थः—हे पुरुषो ! सन्तानोत्पत्ति के लिये महाभाग्योदय करने हारी पूजा के योग्य गृहाश्रम को प्रकाश करती सन्तानोत्पत्ति करने कराने हारी घरों में स्त्रियां हैं वे श्री अर्थात् लक्ष्मी स्वरूप होती हैं क्योंकि लक्ष्मी शोभा धन और स्त्रियों में कुछ

भेद नहीं है ॥ ११ ॥ हे पुरुषो ! अपत्यों की उत्पत्ति उत्पन्न का पालन करने आदि लोकव्यवहार को नित्य प्रति जो कि गृहाश्रम का कार्य होता है उस का निबन्ध करने वाली प्रत्यक्ष स्त्री है ॥ १२ ॥ सन्तानोत्पत्ति धर्म कार्य उत्तम सेवा और रति तथा अपना और पितरों का जितना सुख है वह सब स्त्री ही के आधीन होता है ॥ १३ ॥ जैसे वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्तमान सिद्ध होता है वैसे ही गृहस्थ के आश्रय से ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात् सब आश्रमों का निर्वाह गृहस्थ के आश्रय से होता है ॥ १४ ॥

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥१५॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ १६ ॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृति विधानतः ।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ॥१७॥

अर्थः—जिस से ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीन आश्रमियों को अन्न वस्त्रादि दान से नित्यप्रति गृहस्थ धारण पोषण करता है इसलिये व्यवहार में गृहाश्रम सब से बड़ा है ॥ १५ ॥ हे स्त्री पुरुषो ! जो तुम अक्षय * मुक्ति सुख और इस संसार के सुख की इच्छा रखते हो तो जो दुर्बलेन्द्रिय और निर्बुद्धि पुरुषों के धारण करने योग्य नहीं है उस गृहाश्रम को नित्य प्रयत्न से धारण करो ॥१६॥ वेद और स्मृति के प्रमाण से सब आश्रमों के बीच में गृहाश्रम श्रेष्ठ है क्योंकि यही आश्रम ब्रह्मचारी आदि तीनों आश्रमों का धारण और पालन करता है ॥ १७ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥१८॥

* अक्षय इतना ही मात्र है कि जितना समय मुक्ति का है उतने समय में दुःख का संयोग जैसा विषयेन्द्रिय के संयोगजन्य सुख में होता है वैसा नहीं होता ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ १९ ॥
आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीनं हीने समे समम् ॥ २० ॥
पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥२१॥

अर्थः—हे मनुष्यो जैसे सब बड़े २ नद और नदी सागर में जाकर स्थिर होते हैं वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ ही को प्राप्त हो के स्थिर होते हैं ॥ १८ ॥ यदि गृहस्थ हो के पराये घर में भोजनादि की इच्छा करते हैं तो वे बुद्धिहीन गृहस्थ अन्य से प्रतिग्रहरूप पाप कर के जन्मान्तर में अन्नादि के दाताओं के पशु बनते हैं क्योंकि अन्य से अन्नादि का ग्रहण करना अतिथियों का काम है गृहस्थों का नहीं ॥१९॥ जब गृहस्थ के समीप अतिथि आवें तब आसन निवास शय्या पश्चात गमन और समीप में बैठना आदि सत्कार जैसे का वैसा अर्थात् उत्तम का उत्तम, मध्यम का मध्यम और निकृष्ट का निकृष्ट करे ऐसा न हो कि कभी न समझें ॥ २० ॥ (किन्तु जो पाखण्डी वेदनिन्दक नास्तिक ईश्वर वेद और धर्म को न मानें अधर्माचरण करने हारे हिंसक शठ मिथ्याभिमानी कुतर्की और बकवृत्ति अर्थात् पराये पदार्थ हरने वा बहकाने में बगुले के समान अतिथि वेषधारी बन के आवें उन का वचनमात्र से भी सत्कार गृहस्थ कभी न करे)॥ २१ ॥

दशसूना समं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमो वेषो दशवेषसमो नृपः ॥ २२ ॥
न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम् ॥२३॥
सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयुतः ॥२४ ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥२५॥ मनु०

अर्थः—दश हत्या के समान चक्र अर्थात् कुम्हार, गाड़ी से जीविका करने हारे, दश चक्र के समान ध्वज अर्थात् धोबी, मद्य को निकाल कर बेचने हारे, दशध्वज के समान वेष, अर्थात् वेश्या, भड़ुआ, भांड, दूसरे की नकल अर्थात् पाषाणमूर्तियों के पूजक (पूजारी) आदि और दशवेष के समान जो अन्यायकारी राजा होता है उन के अन्न आदि का ग्रहण अतिथि लोग कभी न करें ॥ २२ ॥ गृहस्थ जीविका के लिये भी कभी शास्त्रविरुद्ध लोकाचार का वर्त्ताव न वर्त्ते किन्तु जिस में किसी प्रकार की कुटिलता मूर्खता मिथ्यापन वा अधर्म न हो उस वेदोक्तकर्मसम्बन्धी जीविका को करे ॥ २३ ॥ किन्तु सत्य, धर्म, आर्य अर्थात आप्त पुरुषों के व्यवहार और शौच पवित्रता ही में सदा गृहस्थ लोग प्रवृत्त रहें और सत्यवाणी भोजनादि के लोभरहित हस्तपादादि की कुचेष्टा छोड़ कर धर्म से शिष्यों और सन्तानों को उत्तम शिक्षा सदा किया करें ॥ २४ ॥ यदि बहुतसा धन राज्य और अपनी कामना अधर्म से सिद्ध होती हो तो भी अधर्म सर्वथा छोड़ देवें और वेदविरुद्ध धर्माभास जिस के करने से उत्तर काल में दुःख और संसार की उन्नति का नाश हो वैसा नाममात्र धर्म और कर्म कभी न किया करें ॥ २५ ॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥ २६ ॥
क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥२७॥
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ २८ ॥
दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ २९ ॥

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ ३० ॥
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ ३१ ॥ मनु०

अर्थः—जो धर्म ही से पदार्थों का संचय करना है वही सब पवित्रताओं में उत्तम पवित्रता अर्थात् जो अन्याय से किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं करता वही पवित्र है किन्तु जल मृत्तिकादि से जो पवित्रता होती है वह धर्म के सदृश उत्तम नहीं है ॥ २६ ॥ विद्वान् लोग क्षमा से, दुष्टकर्मकारी सत्संग और विद्यादि शुभगुणों के दान से गुप्तपाप करने हारे विचार से त्याग कर और ब्रह्मचर्य तथा सत्यभाषणादि से वेदवित् उत्तम विद्वान् शुद्ध होते हैं ॥ २७ ॥ किन्तु जल से ऊपर के अङ्ग पवित्र होते हैं आत्मा और मन नहीं, मन तो सत्य मानने सत्य बोलने और सत्य करने से शुद्ध और जीवात्मा विद्या योगाभ्यास और धर्माचरण ही से पवित्र तथा बुद्धि ज्ञान से ही शुद्ध होती है जल मृत्तिकादि से नहीं ॥ २८ ॥ गृहस्थ लोग छोटों बड़ों वा राज कार्यों के सिद्ध करने में कम से कम १० अर्थात् ऋग्वेदज्ञ, यजुर्वेदज्ञ, सामवेदज्ञ, हैतुक, (नैयायिक) तर्ककर्त्ता, नैरुक्त निरुक्तशास्त्रज्ञ, धर्माध्यापक, ब्रह्मचारी, स्नातक और वानप्रस्थ विद्वानों अथवा अतिन्यूनता करें तो तीन वेदवित् (ऋग्वेदज्ञ, यजुर्वेदज्ञ, और सामवेदज्ञ, विद्वानों की सभा से कर्त्तव्याकर्त्तव्य धर्म और अधर्म का जैसा निश्चय हो वैसा ही आचरण किया करें ॥ २९ ॥ और जैसा विद्वान् लोग दण्ड ही को धर्म जानते हैं वैसा सब लोग जानें, क्योंकि दण्ड ही प्रजा का शासन अर्थात् नियम में रखने वाला, दण्ड ही सब का सब ओर से रक्षक और दण्ड ही सोते हुओं में जागता है चोरादि दुष्ट भी दण्ड ही के भय से पाप कर्म नहीं कर सकते ॥ ३० ॥ उस दण्ड को अच्छे प्रकार चलाने हारे उस राजा को कहते हैं कि जो सत्यवादी विचार ही करके कार्य का कर्त्ता बुद्धिमान् विद्वान् धर्म काम और अर्थ का यथावत् जानने हारा हो ॥ ३१ ॥

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ३२ ॥

शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा ।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३३ ॥
अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ ३४ ॥

अर्थः—जो राजा उत्तम सहाय रहित मूढ़, लोभी जिस ने ब्रह्मचर्यादि उत्तम कर्मों से विद्या और बुद्धि की उन्नति नहीं की विषयों में फंसा हुआ है उस से यह दण्ड कभी न्यायपूर्वक नहीं चल सकता॥३२॥ इसलिये जो पवित्र सत्पुरुषों का संगी राजनीति शास्त्र के अनुकूल चलने हारा, धार्मिक पुरुषों के सहाय से युक्त, बुद्धिमान् राजा हो वही इस दण्ड को धारण करके चला सकता है ॥ ३३ ॥ जो राजा अनपराधियों को दण्ड देता और अपराधियों को दंड नहीं देता है वह इस जन्म में बड़ी अपकीर्त्ति को प्राप्त होता और मरे पश्चात नरक अर्थात महादुःख को पाता है॥३४॥

मृगयाक्षा दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ३५ ॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः ॥ ३६ ॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ३७ ॥

अर्थः—मृगया अर्थात् शिकार खेलना, द्यूत और प्रसन्नता के लिये भी चौपड़ आदि खेलना, दिन में सोना, हंसी ठट्ठा मिथ्यावाद करना, स्त्रियों के साथ सदा अधिक निवास में मोहित होना, मद्यपानादि नशाओं का करना, गाना, बजाना, नाचना वा इन का देखना और वृथा इधर उधर घूमने फिरना ये दश दुर्गुण काम से होते हैं ॥ ३५ ॥ और चुगली खाना, विना विचारे काम कर बैठना, जिस किसी से वृथा वैर बांधना, दूसरे की स्तुति सुन वा बढ़ती देख के हृदय में जला करना, दूसरों के गुणों में दोष और दोषों में गुण स्थापन करना, बुरे कामों में धन

का लगाना, क्रूर वाणी और बिना विचारे पक्षपात से किसी को कड़ा दण्ड देना ये आठ दोष क्रोधी पुरुष में उत्पन्न होते हैं ये १८ अठारह दुर्गुण हैं इन को राजा अवश्य छोड़ देवे ॥३६॥ और जो इन कामज और क्रोधज १८ अठारह दोषों के मूल जिस लोभ को सब विद्वान् लोग जानते हैं उस को प्रयत्न से राजा जीते क्योंकि लोभ ही से पूर्वोक्त १८ अठारह और अन्य दोष भी बहुत से होते हैं इस लिये हे गृहस्थ लोगो ! चाहें वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र क्यों न हो परन्तु ऐसे दोष वाले मनुष्य को राजा कभी न करना यदि भूल से हुआ हो तो उस को राज्य से च्युत कर के किसी योग्य पुरुष को जो कि राजा के कुल का हो राज्याधिकारी करना तभी प्रजा में आनन्द मङ्गल सदा बना रहेगा ॥ ३७ ॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ३८ ॥
मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् ।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥३९॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान् सुपरीक्षितान् ॥ ४० ॥

अर्थः—जो वेद शास्त्रवित् धर्मात्मा जितेन्द्रिय न्यायकारी और आत्मा के बल से युक्त पुरुष होवे उसी को सेना, राज्य, दंडनीति और प्रधान पद का अधिकार देना अन्य क्षुद्राशयों को नहीं ॥ ३८ ॥ और जो अपने राज्य में उत्पन्न, शास्त्रों के जाननेहारे, शूरवीर, जिन का विचार निष्फल न होवे, कुलीन धर्मात्मा, स्वराज्य भक्त हों उन ७ सात वा आठ पुरुषों को अच्छी प्रकार परीक्षा करके मन्त्री करे और इन्हीं की सभा में आठवां वा नववां राजा हो ये सब मिल के कर्त्तव्याकर्त्तव्य कामों का विचार किया करें ॥ ३९ ॥ इसी प्रकार अन्य भी राज्य और सेना के अधिकारी जितने पुरुषों से राज्यकार्य सिद्ध हो सके उतने ही पवित्र धार्मिक विद्वान् चतुर स्थिरबुद्धि पुरुषों को राज्य सामग्री के वर्धक नियत करे ॥ ४० ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ४१ ॥
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥४२॥ मनु०

अर्थः—तथा जो सब शास्त्र में निपुण नेत्रादि के संकेत, स्वरूप तथा चेष्टा से दूसरे के हृदय की बात को जानने हारा शुद्ध, बड़ा स्मृतिमान् देशकाल जानने हारा सुन्दर जिसका स्वरूप बड़ा वक्ता और अपने कुल में मुख्य हो उस और स्वराज्य और परराज्य के समाचार देने हारे अन्य दूतों को भी नियत करे ॥ ४१ ॥ तथा राजादि राजपुरुष अलब्ध राज्य की इच्छा दण्ड से और प्राप्त राज्य की रक्षा संभाल से रक्षित राज्य और धन को व्यापार और व्याज से बढ़ा और सुपात्रों के द्वारा सत्य विद्या और सत्य धर्म के प्रचार आदि उत्तम व्यवहारों में बढ़े हुए धन आदि पदार्थों का व्यय करके सब की उन्नति सदा किया करें ॥ ४२ ॥

विधिः—सदा स्त्री पुरुष १० दश बजे शयन और रात्रि के पहिले प्रहर वा ४ बजे उठ के प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म और अर्थ का विचार किया करें और धर्म और अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्मयुक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिये युक्त आहार विहार औषध सेवन सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य कर्म की सिद्धि के लिये ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना भी किया करें कि जिस परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महा कठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सकें इसके लिये निम्नलिखित मन्त्र हैं:—

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम * ॥ १ ॥

* हे स्त्री पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभात वेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षी-
त्याह * ॥ २ ॥ भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां
धियमुदवा ददन्नः। भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग
प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम † ॥ ३ ॥ उतेदानीं भगवन्तः

(प्रातः) (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिस ने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं और (प्रातः) (भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः) (सोमम्) अन्तर्यामिप्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और सर्व रोगनाशक जगदीश्वर की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं वैसे प्रातः समय में तुम लोग भी किया करो ॥ १ ॥

* (प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करने हारे और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों का (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारण कर्त्ता (यं, चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरश्चित्) दुष्टों को भी दण्ड दाता और (राजा) सब का प्रकाशक है (यम्) जिस (भगम्) भजनीयस्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूं और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सब को (आह) उपदेश करता है कि तुम जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूं उस मेरी उपासना किया और मेरी आज्ञा में चला करो इस से (वयम्) हम लोग उस की (हुवेम) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

† हे (भग) भजनीयस्वरूप (प्रणेतः) सब के उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को देने हारे (भग) सत्याचरण करने हारों को ऐश्वर्य दाता आप परमेश्वर (नः) हम को (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा

स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम * ॥ ४ ॥ भगं एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह † ॥ ५ ॥ ऋ० मं० ७ । सू० ४१ ॥

को (ददत्) दीजिये और उस के दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को (नः) हमारे लिये (प्रजनय) प्रगट कीजिये हे (भग) आप की कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्य वाले (प्र, स्याम) अच्छे प्रकार होवें ॥ ३ ॥

* हे भगवन्! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इसी समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्य युक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देने हारे (सूर्यस्य) सूर्यलोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्म्मिक आप लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥ ४ ॥

† हे (भग) सकलैश्वर्यसंपन्न जगदीश्वर जिस से (तम्) उस (त्वा) आप की (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्यप्रद (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुरएता) अग्रगामी और आगे २ सत्य कर्मों में बढ़ाने हारे (भव) हूजिये और जिस से (भगएव) संपूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता के होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीय देव (अस्तु) हूजिये (तेन) उसी हेतु से (देवाः, वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्य संपन्न हो के सब संसार के उपकार में तन मन धन से प्रवृत्त (स्याम) होवें ॥ ५ ॥

इस प्रकार परमेश्वर की प्रार्थना उपासना करनी तत्पश्चात् शौच दन्तधावन मुखप्रक्षालन करके स्नान करें पश्चात् एक कोश वा डेढ़ कोश एकान्त जङ्गल में जा के योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना कर सूर्योदय पर्यन्त अथवा घड़ी आध घड़ी दिन चढ़े तक घर में आ के सन्ध्योपासनादि नित्य कर्म नीचे लिखे प्रमाणे यथाविधि उचित समय में किया करें इन नित्य करने के योग्य कर्मों में लिखे हुए मन्त्रों का अर्थ और प्रमाण पञ्चमहायज्ञविधि में देख लेवें। प्रथम शरीर शुद्धि अर्थात् स्नान पर्यन्त करके सन्ध्योपासन का आरम्भ करे आरम्भ में दक्षिण हस्त में जल ले के—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों में से एक २ से एक २ आचमन कर दोनों हाथ धो, कान आंख नासिका आदि का शुद्ध जल से स्पर्श करके शुद्ध देश पवित्रासन पर जिधर की ओर का वायु हो उधर को मुख करके नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के यथाशक्ति रोके पश्चात् धीरे २ भीतर थोड़ा सा रोके यह एक प्राणायाम हुआ इसी प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करे नासिका को हाथ से न पकड़े। इस समय परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना हृदय में करके—

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ यजुः० अ० ३६ ॥

इस मन्त्र को एक वार पढ़ के तीन आचमन करे पश्चात् पात्र में से मध्यमा अनामिका अंगुलियों से जलस्पर्श करके प्रथम दक्षिण और पश्चात् वाम निम्नलिखित मन्त्रों से स्पर्श करे—

ओं वाक् वाक् ॥ इस मन्त्र से मुख का दक्षिण और वाम पार्श्व ॥

ओं प्राणः प्राणः ॥ इस से दक्षिण और वाम नासिका के छिद्र ॥

ओं चक्षुश्चक्षुः ॥ इस से दक्षिण और वाम नेत्र ॥

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् ॥ इस से दक्षिण और वाम श्रोत्र ॥

ओं नाभिः ॥ इस से नाभि ॥

ओं हृदयम् ॥ इस से हृदय ॥

ओं कण्ठः ॥ इस से कण्ठ ॥

ओं शिरः ॥ इस से मस्तक ॥

ओं बाहुभ्यां यशोबलम् ॥

इस से दोनों भुजाओं के मूल स्कन्ध और ॥

ओं करतलकरपृष्ठे ॥

इस से दोनों हाथों के ऊपर तले स्पर्श करके मार्जन करे ॥

ओं भूः पुनातु शिरसि ॥ इस मन्त्र से शिर पर ॥

ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः ॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्रों पर ॥

ओं स्वः पुनातु कण्ठे ॥ इस मन्त्र से कण्ठ पर ॥

ओं महः पुनातु हृदये ॥ इस मन्त्र से हृदय पर ॥

ओं जनः पुनातु नाभ्याम् ॥ इस से नाभी पर ॥

ओं तपः पुनातु पादयोः ॥ इस से दोनों पगों पर ॥

ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ॥ इस से पुनः मस्तक पर ॥

ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

इस मन्त्र से सब अङ्गों पर छींटा देवे । पुनः पूर्वोक्त रीति से प्राणायाम की क्रिया करता जावे । और नीचे लिखे मन्त्र का जप भी करता जायः—

ओं भूः, भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम् ॥

इसी रीति से कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ इक्कीस प्राणायाम करे तत्पश्चात् सृष्टिकर्त्ता परमात्मा और सृष्टिक्रम का विचार नीचे लिखित मन्त्रों से करे और जगदीश्वर को सर्व व्यापक न्यायकारी सर्वत्र सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मान के पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने देवे किन्तु सदा धर्म युक्त कर्मों में वर्त्तमान रक्खे ॥

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १९० ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पुनः (शन्नो देवी०) इस मन्त्र से तीन आचमन कर के निम्न लिखित मन्त्रों से सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करे ॥

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो०। ० ॥ २ ॥ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो० । ० ॥ ३ ॥ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो० । ० ॥ ४ ॥ ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो० । ० ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधि-

पतिः श्वित्रोरक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो० । ० ॥ ६ ॥
अथर्व० कां० ३ । सू० २७ । मं० १-६ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहर भीतर परमात्मा को पूर्ण जान कर निर्भय निश्शङ्क उत्साही आनन्दित पुरुषार्थी रहना। तत्पश्चात् परमात्मा का उपस्थान अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे अति निकट परमात्मा है ऐसी बुद्धि कर के करे—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१॥ ऋ० मं० १ । सू० ९९ । मं०१॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आ प्राद्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षꣳ सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१॥ यजु० अ० १३ । मं० ४६ ॥ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥ यजु० अ० ३३ । मं० ३१ ॥ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ३ ॥ यजु० अ० ३५ । मं० १४ ॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥ यजु० अ० ३६ । मं०२४ ॥

इन मन्त्रों से परमात्मा का उपस्थान कर के पुनः (शन्नो देवी०) इस से तीन आचमन कर के पृष्ठ ९० में लिखे० अथवा पञ्चमहायज्ञविधि में लि० गायत्री मन्त्र का

अर्थ विचारपूर्वक परमात्मा की स्तुतिप्रार्थनोपासना करे। पुनः हे परमेश्वर दयानिधे! आप की कृपा से जपोपासनादि कर्मों को करके हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को शीघ्र प्राप्त होवें पुनः—

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ५ ॥ यजु० अ० १६ । मं० ४१ ॥

इस से परमात्मा को नमस्कार कर के (शन्नो देवी०) इस मन्त्र से तीन आचमन कर के अग्निहोत्र का आरम्भ करे ॥

इति संक्षेपतः सन्ध्योपासन विधिः समाप्तः ॥ १ ॥

अथाग्निहोत्रम् ॥

जैसे सायं प्रातः दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासन करें इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष *अग्निहोत्र भी दोनों समय में नित्य किया करें, पृष्ठ २४-२५ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान और पृ० २५ में लिखे—

ओंअदितेऽनुमन्यस्व ।

इत्यादि ४ चार मन्त्रों से यथाविधि कुण्ड के चारों ओर जल प्रोक्षण कर के शुद्ध किये हुये सुगन्ध्यादि युक्त घी को तपा के पात्र में ले के कुण्ड से पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ २६ में लिखे आघारावाज्यभागाहुति चार देके नीचे लिखे हुए मन्त्रों से प्रातःकाल अग्निहोत्र करें:—

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥ ओं ज्योतिः

* किसी विशेष कारण से स्त्री वा पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक ही स्त्री वा पुरुष दोनों की ओर का कृत्य कर लेवे अर्थात् एक २ मन्त्र को दो २ वार पढ़ के दो २ आहुति करे ।

सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ३ ॥ ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥४॥

अब नीचे लिखे हुए मन्त्र सायंकाल में अग्निहोत्र के जानो।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥ ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ ३ ॥

इस मन्त्र को मन से उच्चारण करकेतीसरी आहुति देनी ॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं आहुति देना चाहिये:—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये, प्राणाय, इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय, इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय, व्यानाय इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः, प्राणापानव्यानेभ्यः, इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥ ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ ६ ॥ यजु० अ० ३२। मं० १४ ॥ ओं विश्वानि देव सवितर्दुरि-

तारितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥ आ य० । अ० ३० । मं० ३ ॥ ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ८ ॥ य० अ० ४० मं० १६ ॥

इन आठ मन्त्रों से एक २ मन्त्र करके एक २ आहुति देके आठ आहुति देके—

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक २ बार पढ़ के एक २ कर के तीन आहुति देवे ॥

इत्यग्निहोत्रविधिः संक्षेपतः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ पितृयज्ञः ॥

अग्निहोत्रविधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे अर्थात् जीते हुए माता पिता आदि की यथावत् सेवा करनी पितृयज्ञ कहाता है ॥ ३ ॥

अथ बलिवैश्वदेवविधिः ॥

ओं अग्नये स्वाहा । ओं सोमाय स्वाहा । ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ओं धन्वन्तरये स्वाहा । ओं कुह्वै स्वाहा । ओ मनुमत्यै स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा । ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥

इन दश मन्त्रों से घृतमिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़ के जो कुछ पाक में बना हो उस की दश आहुति करे तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बलिदान करे—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ॥ इस से पूर्व ॥

ओं सानुगाय यमाय नमः ॥ इस से दक्षिण ॥

ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥ इस से पश्चिम ॥

ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥ इस से उत्तर ॥

ओं मरुद्भ्यो नमः ॥ इस से द्वार ॥

ओमद्भ्यो नमः ॥ इस से जल ॥

ओं वनस्पतिभ्यो नमः ॥ इस से मुसल और ऊखल ॥

ओं श्रियै नमः ॥ इस से ईशान ॥

ओं भद्रकाल्यै नमः ॥ इस से नैर्ऋत्य ॥

ओं ब्रह्मपतये नमः। ओं वास्तुपतये नमः। इन से मध्य।

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥ इन से ऊपर ॥

ओं सर्वात्मभूतये नमः ॥ इस से पृष्ठ ॥

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥

इस से दक्षिण। इन मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आजाय तो उसी को दे देना नहीं तो अग्नि में धर देना तत्पश्चात् घृतसहित लवणान्न लेके—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥ १ ॥

अर्थः—कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छः नामों से छः भाग पृथिवी में धरे और वे छः भाग जिस २ के नाम हैं उस २ को देना चाहिये ॥ ४ ॥

अथातिथियज्ञः ॥

पांचवां—जो धार्मिक परोपकारी सत्योपदेशक पक्षपातरहित शान्त सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा उन से प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त होना अतिथियज्ञ कहाता है उसको नित्य किया करें इस प्रकार पञ्चमहायज्ञों को स्त्री पुरुष प्रतिदिन करते रहैं ॥ ५ ॥

इसके पश्चात् पक्षयज्ञ अर्थात् पौर्णमासी और अमावास्या के दिन नैत्यिक अग्निहोत्र की आहुति दिये पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार पृष्ठ १८ में लिखे प्रमाणे स्थालीपाक बना के निम्नलिखित मन्त्रों से विशेष आहुति करें ॥

ओं अग्नये स्वाहा ॥ ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विष्णवे स्वाहा ॥

इन तीन मन्त्रों से स्थालीपाक की तीन आहुति देनी तत्पश्चात् पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आज्याहुति ४ देनी परन्तु इस में इतना भेद है कि अमावास्या के दिनः—

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ इस मन्त्र के बदले।

ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥

इस मन्त्र को बोल के स्थालीपाक की आहुति देवे। इस प्रकार पक्षयाग अर्थात् जिस के घर में अभाग्य से अग्निहोत्र न होता हो तो सर्वत्र पक्षयागादि में पृष्ठ १७, १८ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड, यज्ञसामग्री, यज्ञमण्डप, पृष्ठ २४—२५ में लिखे अग्न्याधान, समिदाधान पृष्ठ २६ में लि० आघारावाज्यभागाहुति और पृष्ठ २५ में लिखे प्रमाणे वेदी के चारों ओर जल सेचन करके पृष्ठ ४—१६ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शान्तिकरण भी यथायोग्य करें और जब २ नवान्न आवे तब २ नवशस्येष्टि और संवत्सर के आरम्भ में निम्नलिखित विधि करें, अर्थात् जब २ नवीन अन्न आवे तब २ शस्येष्टि करके नवीन अन्न के भोजन का आरम्भ करे—

नवसस्येष्टि और संवत्सरेष्टि करना हो तो जिस दिन प्रसन्नता हो वही शुभ दिन जाने, ग्राम और शहर के बाहर किसी शुद्ध खेत में यज्ञमण्डप करके पृष्ठ ४—३१ तक लिखे प्रमाणे सब विधि करके प्रथम आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार तथा अष्टाज्याहुति ८ आठ ये सोलह आज्याहुति करके कार्यकर्त्ता—

ओं पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः। तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सन्तु हेतयः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन्। तन्मे सर्वंसमृध्यतां जीवतः शरदः शतं स्वाहा ॥ २ ॥ ओं सम्पत्तिर्भूतिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा, इदमिन्द्राय, इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्। इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा, इदमिन्द्रपत्न्यै, इदन्न मम ॥४॥ ओं अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्त्ति या प्राणभृतो अतन्द्रिता। खलामालिनीमुर्वरामस्मिन् कर्मण्युपह्वये ध्रुवां सा मे त्वनपायिनी भूयात् स्वाहा, इदं सीतायै, इदन्न मम ॥ ५ ॥

इन मन्त्रों से प्रधान होम की ५ पांच आज्याहुति करके—

ओं सीतायै स्वाहा। ओं प्रजायै स्वाहा। ओं शमायै स्वाहा। ओं भूत्यै स्वाहा ॥

इन ४ चार मन्त्रों से ४ चार और पृष्ठ २७ में लिखे (यदस्य०) मन्त्र से स्विष्टकृत होमाहुति एक, ऐसे ५ पांच स्थालीपाक की आहुति देके पश्चात् पृष्ठ २७–२९

में लिखे प्रमाणे अष्टाज्याहुति व्याहृति आहुति ४ चार ऐसे १२ बारह आज्याहुति देके पृष्ठ ३०-३१ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण कर के यज्ञ की समाप्ति करें ॥

अथ शालाकर्मविधिं वक्ष्यामः ॥

शाला उस को कहते हैं जो मनुष्य और पश्वादि के रहने अथवा पदार्थ रखने के अर्थ गृह वा स्थानविशेष बनाते हैं। इस के दो विषय हैं एक प्रमाण और दूसरा विधि, उस में से प्रथम प्रमाण और पश्चात् विधि लिखेंगे ॥

अत्र प्रमाणानि–उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत। शालाया विश्ववाराया नद्धानि विचृतामसि ॥ १ ॥ हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले ॥ २ ॥

अर्थः–मनुष्यों को योग्य है कि जो कोई किसी प्रकार का घर बनावे तो वह (उपमिताम्) सब प्रकार की उत्तम उपमायुक्त कि जिस को देख के विद्वान् लोग सराहना करें (प्रतिमिताम्) प्रतिमान अर्थात् एक द्वार के सामने दूसरा द्वार कोणे और कक्षा भी सन्मुख हों (अथो) इस के अनन्तर (परिमिताम्) वह शाला चारों ओर के परिमाण से सम चौरस हो (उत) और (शालायाः) शाला (विश्ववारायाः) अर्थात् उस घर के द्वार चारों ओर के वायु को स्वीकार करने वाले हों (नद्धानि) उस के बन्धन और चिनाई दृढ़ हों हे मनुष्यो! ऐसी शाला को जैसे हम शिल्पीलोग (विचृतामसि) अच्छे प्रकार ग्रन्थित अर्थात् बन्धनयुक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ १ ॥ उस घर में एक (हविर्धानम्) होम करने के पदार्थ रखने का स्थान (अग्निशालम्) अग्निहोत्र का स्थान (पत्नीनाम्) स्त्रियों के (सदनम्) रहने का (सदः) स्थान और (देवानाम्) पुरुषों और विद्वानों के रहने, बैठने, मेलमिलाप करने और सभा का (सदः) स्थान तथा स्नान भोजन ध्यान आदि का भी पृथक् २ एक २

घर बनावे इस प्रकार की (वेवि) दिव्य कमनीय (शाले) बनाई हुई शाला (असि) सुखदायक होती है ॥ २ ॥

अन्तरा द्याञ्च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रतिगृह्णामि त इमाम् । यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः । तेन शालां प्रतिगृह्णामि तस्मै ॥ ३ ॥ ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता । विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ ४ ॥

अर्थ—उस शाला में (अन्तरा) भिन्न२ (पृथिवीम्) शुद्ध भूमि अर्थात् चारों ओर स्थान शुद्ध हों (च) और (द्याम्) जिस में सूर्य का प्रतिभास आवे वैसी प्रकाशस्वरूप भूमि के समान दृढ़ शाला बनावे (च) और (यत्) जो (व्यचः) उस की व्याप्ति अर्थात् विस्तार है स्त्री ! (ते) तेरे लिये है (तेन) उसी से युक्त (इमाम्) इस (शालाम्) घर को बनाता हूं तू इस में निवास कर और मैं भी निवास के लिये इस को (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं (यत्) जो उस के बीच में (अन्तरिक्षम्) पुष्कल अवकाश और (रजसः) उस घर का (विमानम्) विशेष मान परिमाण युक्त लंबी ऊंची छत्त और (उदरम्) भीतर का प्रसार विस्तार युक्त होवे (तत्) उस को (शेवधिभ्यः) सुख के आधार रूप अनेक कक्षाओं से सुशोभित (अहम्) मैं (कृण्वे) करता हूं (तेन) उस पूर्वोक्त लक्षणमात्र से युक्त (शालाम्) शाला को (तस्मै) उस गृहाश्रम के सब व्यवहारों के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ३ ॥ जो (शाले) शाला (ऊर्जस्वती) बहुत बलारोग्य पराक्रम को बढ़ाने वाली और धन धान्य से पूरित सम्बन्ध वाली (पयस्वती) जल दूध रसादि से परिपूर्ण (पृथिव्याम्) पृथिवी में (मिता) परिमाणयुक्त (निमिता) निर्मित की हुई (विश्वान्नम्) संपूर्ण अन्नादि ऐश्वर्य को (बिभ्रती) धारण करती हुई (प्रतिगृह्णतः) ग्रहण करने हारों को रोगादि से (मा, हिंसीः) पीड़ित न करे वैसा घर बनाना चाहिये ॥

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम्।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ ५ ॥

अर्थः-(अमृतौ) स्वरूप से नाश रहित (इन्द्राग्नी) वायु और पावक (कविभिः) उत्तम विद्वान् शिल्पियों ने (मिताम्) प्रमाणयुक्त अर्थात् माप में ठीक जैसी चाहिये वैसी (निमिताम्) बनाई हुई (शालाम्) शाला को और (ब्रह्मणा) चारों वेदों के जानने हारे विद्वान् ने सब ऋतुओं में सुख देने हारी (निमिताम्) बनाई (शालाम्) शाला को प्राप्त होकर रहने वालों की (रक्षताम्) रक्षा करें अर्थात् चारों ओर का शुद्ध वायु आ के अशुद्ध वायु को निकालता रहै और जिस में सुगन्धयादि घृत का होम किया जाय वह अग्नि दुर्गन्ध को निकाल सुगन्ध को स्थापन करे वह (सोम्यम्) ऐश्वर्य आरोग्य सर्वदा सुखदायक (सदः) रहने के लिये उत्तम घर है उसी को निवास के लिये ग्रहण करें ॥ ५ ॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवाशये ॥ ६ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! (या) जो (द्विपक्षा) दो पक्ष अर्थात् मध्य में एक और पूर्व पश्चिम में एक २ शालायुक्त घर अथवा (चतुष्पक्षा) जिस के पूर्व पश्चिम दक्षिण और उत्तर में एक २ शाला और इन के मध्य में पांचवीं बड़ी शाला वा (षट्पक्षा) एक बीच में बड़ी शाला और दो २ पूर्व पश्चिम तथा एक २ उत्तर दक्षिण में शाला हों (या) जो ऐसी शाला (निमीयते) बनाई जाती है वह उत्तम होती है और इस से भी जो (अष्टापक्षाम्) चारों ओर दो २ शाला और उन के बीच में एक नवमी शाला हो अथवा (दशपक्षाम्) जिस के मध्य में दो शाला और उन के चारों दिशाओं में, दो २ शाला हों उस (मानस्य) परिमाण के योग से बनाई हुई (शालाम्) शाला को जैसे (पत्नीम्) पत्नी को प्राप्त होके (अग्निः) अग्निरूप आर्त्तव और वीर्य (गर्भ इव) गर्भ रूप होके (आशये) गर्भाशय में ठहरता है वैसे सब शालाओं के द्वार दो २ हाथ पर सूधे बराबर हों और जिस की चारों ओर

को शालाओं का परिमाण तीन २ गज और मध्य की शालाओं का छः २ गज से परिमाण न्यून न हो, और चार २ गज चारों दिशाओं की ओर आठ २ गज मध्य की शालाओं का परिमाण हो अथवा मध्य की शालाओं का दश २ गज अर्थात् बीस २ हाथ से विस्तार अधिक न हो बना कर गृहस्थों को रहना चाहिये यदि वह सभा का स्थान हो तो बाहर की ओर द्वारों में चारों ओर कपाट और मध्य में गोल २ स्तम्भे बना कर चारों ओर खुला बनाना चाहिये कि जिस के कपाट खोलने से चारों ओर का वायु उस में आवे और सब घरों के चारों ओर वायु आने के लिये अवकाश तथा वृक्ष फल और पुष्करणी कुंड भी होने चाहिये वैसे घरों में सब लोग रहें ॥ ६ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् । अग्निर्ह्यन्तरापश्च ऋतस्य प्रथमा द्वाः ॥ ७ ॥

अर्थः—जो (शाले) शालागृह (प्रतीचीनः) पूर्वाभिमुख तथा जो गृह (प्रतीचीम्) पश्चिम द्वार युक्त (अहिंसतीम्) हिंसादि दोष रहित अर्थात् पश्चिम द्वार के संमुख पूर्व द्वार जिस में (हि) निश्चय कर (अन्तः) बीच में (अग्निः) अग्नि का घर (च) और (आपः) जल का स्थान (ऋतस्य) और सत्य के ध्यान के लिये एक स्थान (प्रथमा) प्रथम (द्वाः) द्वार है मैं (त्वा) उस शाला को (प्रैमि) प्रकर्षता से प्राप्त होता हूं ॥ ७ ॥

मा नः पाशं प्रतिमुचो गुरुर्भारो लघुर्भव । वधूमिव त्वा शाले यत्र कामं भरामसि ॥ ८ ॥ अथर्व० कां० ९ अ० २ । व० ३ ॥

अर्थः—हे शिल्पि लोगो ! जैसे (नः) हमारी (शाले) शाला अर्थात् गृह (पाशम्) बन्धन को (मा, प्रतिमुचः) कभी न छोड़े जिस में (गुरुर्भारः) बड़ा भार (लघुर्भव) छोटा होवे वैसी बनाओ (त्वा) उस शाला को (यत्र, कामम्) जहां जैसी कामना हो वहां वैसी हम लोग (वधूमिव) स्त्री के समान (भरामसि) स्वीकार करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ ८ ॥

इस प्रकार प्रमाणों के अनुसार जब घर बन चुके तब प्रवेश करते समय क्या२ विधि करना सो नीचे लिखे प्रमाणे जानो ॥

अथ विधिः— जब घर बन चुके तब उस की शुद्धि अच्छे प्रकार करा, चारों दिशाओं के बाहर ले द्वारों में चार वेदी और एक वेदी घर के मध्य बनावे अथवा तांबे का वेदी के समान कुण्ड बनवा लेवे कि जिस से सब ठिकाने एक कुण्ड ही में काम हो जावे सब प्रकार की सामग्री अर्थात् पृष्ठ १७-१८ में लिखे प्रमाणे समिधा घृत चावल मिष्ट सुगन्ध पुष्टिकारक द्रव्यों को ले के शोधन कर प्रथम दिन रख लेवे जिस दिन गृहपति का चित्त प्रसन्न होवे उसी शुभ दिन में गृहप्रतिष्ठा करे वहां ऋत्विज्, होता, अध्वर्यु और ब्रह्मा का वरण करे जो कि धर्मात्मा विद्वान् हों उन में से होता का आसन पश्चिम और उस पर वह पूर्वाभिमुख, अध्वर्यु का आसन उत्तर में उस पर वह दक्षिणाभिमुख, उद्गाता का पूर्व दिशा में आसन उस पर वह पश्चिमाभिमुख और ब्रह्मा का दक्षिण दिशा में उत्तमासन बिछा कर उत्तराभिमुख, इस प्रकार चारों आसनों पर चारों पुरुषों को बैठावे और गृहपति सर्वत्र पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठा करे वैसे ही घर के मध्य वेदी के चारों ओर दूसरे आसन बिछा रक्खे पश्चात् निष्क्रम्यद्वार जिस द्वार से मुख्य करके घर से निकलना और प्रवेश करना होवे अर्थात् जो मुख्य द्वार हो उसी द्वार के समीप ब्रह्मा सहित बाहर ठहर कर—

ओं अच्युताय भौमाय स्वाहा ॥

इस से एक आहुति देकर ध्वजा का स्तम्भ जिस में ध्वजा लगाई हो खड़ा करे और घर के ऊपर चारों कोणों पर चार ध्वजा खड़ी करे तथा कार्यकर्त्ता गृहपतिस्तम्भ खड़ा कर के उस के मूल में जल से सेचन करे जिस से वह दृढ़ रहे। पुनः द्वार के सामने बाहर जाकर नीचे लिखे चार मन्त्रों से जल सेचन करे ॥

ओं इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम्। इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुच्छ्रयमाणा ॥ १ ॥

इस मन्त्र से पूर्व द्वार के सामने जल छिटकावे।

अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय । आ त्वा शिशुराक्रन्दन्त्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः ॥ २ ॥ इस मन्त्र से दक्षिण द्वार ॥

आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह । आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ आदध्नः कलशैरुप क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासः रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम् ॥३॥

इस मन्त्र से पश्चिम द्वार ॥

अश्वावद्गोमदूर्जस्वत्पर्णं वनस्पतेरिव । अभि नः पूर्यतां रयिरिदमनुश्रेयो वसानः ॥ ४ ॥

इस मन्त्र से उत्तर द्वार के सामने जल छिटकावे तत्पश्चात् सब द्वारों पर पुष्प और पल्लव तथा कदली स्तम्भ वा कदली के पत्ते भी द्वारों की शोभा के लिये लगा कर पश्चात् गृहपति—

हे ब्रह्मन् ! प्रविशामीति ॥ ऐसा वाक्य बोले और ब्रह्मा ॥

वरं भवान् प्रविशतु ॥

ऐसा प्रत्युत्तर देवे और ब्रह्मा की अनुमति से—

ओं ऋचं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये ॥

इस वाक्य को बोल के भीतर प्रवेश करे और जो घृत गरम कर छान कर सुगन्ध मिला कर रक्खा हो उस को पात्र में ले के जिस द्वार से प्रथम प्रवेश करे उसी द्वार से प्रवेश करके पृष्ठ २४–२५ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान जलप्रोक्षण आचमन करके पृष्ठ २६–२७ में लिखे प्रमाणे घृत की आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार नवमी स्विष्टकृत् आज्याहुति एक अर्थात् दिशाओं की द्वारस्थ वेदियों में अग्न्याधान से ले के स्विष्टकृत आहुति पर्यन्त विधि करके पश्चात् पूर्वदिशाद्वारस्थ कुण्ड में—

ओं प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन मन्त्रों से पूर्व द्वारस्थ वेदी में दो घृताहुती देवे। वैसे ही—

ओं दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा ॥ ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दक्षिणद्वारस्थ वेदी में एक २ मन्त्र करके दो आज्याहुति और

ओं प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दो आज्याहुति पश्चिमदिशाद्वारस्थ कुण्ड में देवे ॥

ओं उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से उत्तर दिशास्थ वेदी में दो आज्याहुति देवे पुनः मध्यशालास्थ वेदी के समीप जा के स्व २ दिशा में बैठ के—

ओं ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से मध्य वेदी में दो आज्याहुति ॥

ओं ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से भी दो आहुति मध्यवेदी में और—

ओं दिशो दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः स्वाहा ॥

इन से भी दो आज्याहुति मध्यस्थ वेदी में देके पुनः पूर्व दिशास्थ द्वारस्थ वेदी में अग्नि को प्रज्वलित करके वेदी से दक्षिण भाग में ब्रह्मासन तथा होता

आदि के पूर्वोक्त प्रकार आसन बिछवा उसी वेदी के उत्तर भाग में एक कलश स्थापन कर पृष्ठ १७ में लिखे प्रमाणे स्थालीपाक बना के पृथक् निष्क्रम्यद्वार के समीप जा ठहर कर ब्रह्मादि सहित गृहपति मध्यशाला में प्रवेश करके ब्रह्मादि को दक्षिणादि आसन पर बैठा स्वयं पूर्वाभिमुख बैठ के संस्कृत घी अर्थात् जो गरम कर छान जिस में कस्तूरी आदि सुगन्ध मिलाया हो, पात्र में ले के सब के सामने एक २ पात्र भर के रक्खे और चमसा में ले के:—

ओं वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः । यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ॥ १ ॥ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति तन्नो जुषस्व स्वाहा ॥ २ ॥ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या । पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ७ सू० ५४ ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः स्वाहा ॥ ४ ॥ ऋ० । मं० ७ । सू० ५५ । मं० १ ॥

इन चार मन्त्रों से चार ४ आज्याहुति देके जो स्थालीपाक अर्थात् भात बनाया हो उस को दूसरे कांसे के पात्र में ले के उस पर यथायोग्य घृत सेचन करके अपने २ सामने रक्खे और पृथक् २ थोड़ा २ लेकर—

ओं अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वाँश्च देवानुपह्वये । सरस्वतीञ्च वाजीञ्च वास्तु मे दत्तवाजिनः स्वाहा ।

॥ १ ॥ सर्पदेवजनान्त्सर्वान्हिमवन्तं सुदर्शनम् । वसूँश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदैः सह । एतान्त्सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ २ ॥ पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ माध्यन्दिना सह । प्रदोषमर्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम् । एतान् सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ ३ ॥ ओं कर्तारञ्च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधीश्च वनस्पतीन् । एतान्त्सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ ४ ॥ धातारं च विधातारं निधीनां च पतिं सह । एतान् सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥ ५ ॥ स्योनꣳशिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती । सर्वाश्च देवताश्च स्वाहा ॥ ६ ॥

स्थालीपाक अर्थात् घृतयुक्त भातकी इन छः मन्त्रों से छः आहुति देकर कांस्यपात्र में उदुम्बर, गूलर, पलाश के पत्ते, शाड्वल, तृणविशेष, गोमय, दही, मधु, घृत, कुशा और यव को ले के उन सब वस्तुओं को मिला कर—

ओं श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे संधौ गोपायेताम् ॥

इस मन्त्र से पूर्व द्वार ॥

यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे संधौ गोपायेताम् ॥

इस से दक्षिण द्वार ॥

अन्नञ्च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे संधौ गोपायेताम् ॥

इस से पश्चिम द्वार ॥

ऊर्क् च त्वा सूनृता चोत्तरे संधौ गोपायेताम् ॥

इस से उत्तर द्वार के समीप उन को बखेरे और जल प्रोक्षण भी करे ॥

केता च मां सुकेता च पुरस्ताद् गोपायेतामित्यग्निर्वै केताऽऽदित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पुरस्ताद् गोपायेताम् ॥ १ ॥

इस से पूर्व दिशा में परमात्मा का उपस्थान करके दक्षिण द्वार के सामने दक्षिणाभिमुख होके—

दक्षिणतो गोपायमानं च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यहर्वै गोपायमानꣳ रात्री रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् ॥ २ ॥

इस प्रकार जगदीश का उपस्थान करके पश्चिम द्वार के सामने पश्चिमाभिमुख हो के—

दीदिविश्च मा जागृविश्च पश्चाद् गोपायेतामित्यन्नं वै दीदिविः प्राणो जागृविस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोस्तु तौ मा पश्चाद् गोपायेताम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार पश्चिम दिशा में सर्वरक्षक परमात्मा का उपस्थान करके उत्तर दिशा में उत्तर द्वार के सामने उत्तराभिमुख खड़े रह के—

अस्वप्नश्च मानवद्राणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अस्वप्नो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेतामिति ॥ धर्मस्थूणा राजꣳ श्रीसूर्य्यामहोरात्रे द्वारफलके इन्द्रस्य गृहा वसुमतो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिस्सह यन्मे किञ्चिदस्त्युपहूतः सर्वगणाः सखायः

साधुसंमतस्तां त्वा शाले अरिष्टवीरा गृहा नः सन्तु सर्वतः ॥

इस प्रकार उत्तर दिशा में सर्वाधिष्ठाता परमात्मा का उपस्थान करके सुपात्र वेदवित् धार्मिक होता आदि सपत्नीक ब्राह्मण तथा इष्ट मित्र और सम्बन्धियों को उत्तम भोजन करा के यथायोग्य सत्कार करके दक्षिणा दे पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्री प्रसन्नता पूर्वक विदा करें और वे जाते समय गृहपति और गृहपत्नी आदि को-

सर्वे भवन्तोऽआनन्दिताः सदा भूयासुः ॥

इस प्रकार आशीर्वाद दे के अपने २ घर को जावें। इसी प्रकार आराम आदि की भी प्रतिष्ठा करें इस में इतना ही विशेष है कि जिस ओर का वायु बगीचे को जावे उसी ओर होम करें कि जिस का सुगन्ध वृक्ष आदि को सुगन्धित करे यदि उस में घर बना हो तो शाला के समान उसकी भी प्रतिष्ठा करें ॥

इति शालादिसंस्कारविधिः ॥

इस प्रकार गृहादि की रचना कर के गृहाश्रम में जो २ अपने २ वर्ण के अनुकूल कर्त्तव्य कर्म हैं उन उन का यथावत करें ॥

अथ ब्राह्मणस्वरूपलक्षणम् ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।

दानं प्रतिग्रहञ्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥१॥ मनु०

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥२॥ गीता०

अर्थः—१ एक निष्कपट होके प्रीति से पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को पढ़ावें। २ दो—पूर्ण विद्या पढ़ें। ३ तीन—अग्निहोत्रादि यज्ञ करें। ४ चौथा—यज्ञ

करावें । ५ पांच—विद्या अथवा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देवें । ६ छठा—न्याय से धनोपार्जन करने वाले गृहस्थों से दान लेवे भी । इन में से ३ तीन कर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना * धर्म में, और तीन कर्म पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना, जीविका हैं परन्तु—

प्रतिग्रहः प्रत्यवरः ॥ मनु० ॥

जो दान लेना है वह नीच कर्म है किन्तु पढ़ा के और यज्ञ करा के जीविका करनी उत्तम है ॥ १ ॥ (शमः) मन को अधर्म में न जाने दे किन्तु अधर्म करने की इच्छा भी न उठने देवे (दमः) श्रोत्रादि इन्द्रियों को अधर्माचरण से सदा दूर रक्खे दूर रख के धर्म ही के बीच में प्रवृत्त रक्खे (तपः) ब्रह्मचर्य विद्या योगाभ्यास की सिद्धि के लिये शीत, उष्ण, निन्दा, स्तुति, क्षुधा, तृषा, मानापमान आदि द्वन्द्व का सहना (शौचम्) राग द्वेष मोहादि से मन और आत्मा को तथा जलादि से शरीर को सदा पवित्र रखना (क्षान्तिः) क्षमा अर्थात् कोई निन्दा स्तुति आदि से सतावें तो भी उनपर कृपालु रह कर क्रोधादि का न करना (आर्जवम्) निरभिमान रहना दम्भ स्वात्मश्लाघा अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करके नम्र सरल शुद्ध पवित्र भाव रखना (ज्ञानम्) सब शास्त्रों को पढ़ के विचार कर उनके शब्दार्थ सम्बन्धों को यथावत् जान कर पढ़ाने का पूर्ण सामर्थ्य करना (विज्ञानम्) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को जान और क्रियाकुशलता तथा योगाभ्यास से साक्षात् करके यथावत् उपकार ग्रहण करना कराना (आस्तिक्यम्) परमेश्वर, वेद, धर्म, परलोक परजन्म, पूर्व जन्म, कर्मफल और मुक्ति से विमुख कभी न होना ये नव कर्म और गुण धर्म में समझना सब से उत्तम गुण कर्म स्वभाव को धारण करना ये गुण कर्म जिन व्यक्तियों में हों वे ब्राह्मण और ब्राह्मणी होवें विवाह भी इन्हीं वर्ण के गुण कर्म स्वभावों को मिला ही के करें मनुष्यमात्र में से इन्हीं को ब्राह्मणवर्ण का अधिकार होवे ॥

* धर्म नाम न्यायाचरण न्याय पक्षपात छोड़ के वर्त्तना पक्षपात छोड़ना नाम सर्वदा अहिंसादि निर्वैरता सत्यभाषणादि में स्थिर रह कर हिंसा द्वेषादि और मिथ्याभाषणादि से सदा पृथक् रहना सब मनुष्यों का यही एक धर्म है किन्तु जो २ धर्मों के लक्षण वर्ण कर्मों में पृथक् २ आते हैं इसी से चार वर्ण पृथक् २ गिने जाते हैं ॥

अथ क्षत्रियस्वरूपलक्षणम ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥१॥ मनुः ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥२॥ गीता

अर्थः—दीर्घ ब्रह्मचर्य से (अध्ययनम्) साङ्गोपाङ्ग वेदादि शास्त्रों को यथावत् पढ़ना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (दानम्) सुपात्रों को विद्या सुवर्ण आदि और प्रजा को अभयदान देना (प्रजानां, रक्षणम्) प्रजाओं का सब प्रकार से सर्वदा यथावत् पालन करना यह धर्म क्षत्रियों के धर्म के लक्षणों में और शस्त्रविद्या का पढ़ाना न्यायघर और सेना में जीविका करना क्षत्रियों की जीविका है (विषयेष्वप्रसक्तिः) विषयों में अनासक्त हो के सदा जितेन्द्रिय रहना लोभ व्यभिचार मद्यपानादि नशा आदि दुर्व्यसनों से पृथक् रह कर विनय सुशीलतादि शुभ कर्मों में सदा प्रवृत्त रहना (शौर्यम्) शस्त्र संग्राम मृत्यु और शस्त्रप्रहारादि से न डरना (तेजः) प्रगल्भता उत्तम प्रतापी होकर किसी के सामने दीन वा भीरु न होना (धृतिः) चाहे कितनी ही आपत्, विपत्, क्लेश, दुःख प्राप्त हो तथापि धैर्य रख के कभी न घबराना (दाक्ष्यम्) संग्राम, वाग्युद्ध, दूतत्व, विचार आदि सब में अतिचतुर बुद्धिमान् होना (युद्धे, चाप्यपलायनम्) युद्ध में सदा उद्यत रहना युद्ध से घबरा कर शत्रु के वश में कभी न होना (दानम्) इस का अर्थ प्रथम श्लोक में आगया (ईश्वरभावः) जैसे परमेश्वर सब के ऊपर दया करके पितृवत् वर्तमान पक्षपात छोड़ कर धर्माऽधर्म करने वालों को यथायोग्य सुख दुःखरूप फल देता और अपने सर्वज्ञता आदि साधनों से सब का अन्तर्यामी होकर सब के अच्छे बुरे कर्मों को यथावत् देखता है वैसे प्रजा के साथ वर्त कर गुप्त दूत आदि से अपने को सब प्रजा वा राजपुरुषों के अच्छे बुरे कर्मों से सदा ज्ञात रखना रात दिन न्याय करने और प्रजा को यथावत् सुख देने श्रेष्ठों का मान और दुष्टों को दण्ड करने में सदा प्रवृत्त रहना और सब प्रकार से अपने शरीर को रोगरहित बलिष्ठ दृढ़ तेजस्वी

दीर्घायु रख के आत्मा को न्याय धर्म में चला कर कृतकृत्य करना आदि गुण कर्मों का योग जिस व्यक्ति में हो वह क्षत्रिय और क्षत्रिया होवे इन का भी इन्हीं गुण कर्मों के मेल से विवाह करना और जैसे ब्राह्मण पुरुषों और ब्राह्मणी स्त्रियों को पढ़ावें वैसे ही राजा पुरुषों और राणी स्त्रियों का न्याय तथा उन्नति सदा किया करे जो क्षत्रिय, राजा न हों वे भी राज में ही यथाधिकार से नौकरी किया करें ॥

अथ वैश्यस्वरूपलक्षणम् ॥

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥१॥ मनु० ॥

अर्थः—(अध्ययनम्) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (दानम्) अन्नादि का दान देना ये तीन धर्म के लक्षण और (पशूनां, रक्षणम्) गाय आदि पशुओं का पालन करना उन से दुग्धादि का बेचना (वणिक्पथम्) नाना देशों की भाषा, हिसाब, भूगर्भविद्या, भूमि, बीज आदि के गुण जानना और सब पदार्थों के भावाभाव समझना (कुसीदम्) व्याज का लेना * (कृषिमेव च) खेती की विद्या का जानना अन्न आदि की रक्षा खात और भूमि की परीक्षा जोतना बोना आदि व्यवहार का जानना ये चार कर्म वैश्य की जीविका, ये गुण कर्म जिस व्यक्ति में हों वह वैश्य, वैश्या । और इन्हीं की परस्पर परीक्षा और योग से विवाह होना चाहिये ॥ १ ॥

अथ शूद्रस्वरूपलक्षणम् ॥

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ १ ॥ मनु० ॥

* सवा रुपये सैकड़े से अधिक चार आने से न्यून व्याज न लेवे न देवे जब दूना धन आजाय उस से आगे कौड़ी न लेवे न देवे जितना न्यून व्याज लेवेगा उतना ही उस का धन बढ़ेगा और कभी धन का नाश और कुसन्तान उस के कुल में न होंगे ॥

अर्थः—(प्रभुः) परमेश्वर ने (शूद्रस्य) जो विद्याहीन जिस को पढ़ने से भी विद्या न आ सके शरीर से पुष्ट सेवा में कुशल हो उस शूद्र के लिये (एतेषामेव वर्णानाम्) इन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों की (अनसूयया) निन्दा से रहित प्रीति से सेवा करना (एकमेव कर्म) यही एक कर्म (समादिशत्) करने की आज्ञा दी है ये मूर्खत्वादि गुण और सेवा आदि कर्म जिस व्यक्ति में हों वह शूद्र और शूद्रा है। इन्हीं की परीक्षा से इन का विवाह और इन को अधिकार भी ऐसा ही होना चाहिये। इन गुण कर्मों के योग ही से चारों वर्ण होवें तो उस कुल देश और मनुष्य समुदाय की बड़ी उन्नति होवे और जिन का जन्म जिस वर्ण में हो उसी के सदृश गुण कर्म स्वभाव हों तो अतिविशेष है ॥ १ ॥

अब सब ब्राह्मणादि वर्ण वाले मनुष्य लोग अपने २ कर्मों में निम्नलिखित रीति से वर्त्तें ॥

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १ ॥
नेहेतार्थान् प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥ २ ॥

अर्थः—ब्राह्मणादि द्विज वेदोक्त अपने कर्म को आलस्य छोड़ के नित्य किया करें उस को अपने सामर्थ्य के अनुसार करते हुए, मुक्ति पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ गृहस्थ कभी किसी दुष्ट के प्रसंग से द्रव्यसंचय न करे न विरुद्ध कर्म से, न विद्यमान पदार्थ होते हुए उन को गुप्त रख के दूसरे से छल करके और चाहे कितना ही दुःख पड़े तदपि अधर्म से द्रव्यसञ्चय कभी न करे ॥ २ ॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा सन्निवर्त्तयेत् ॥ ३ ॥
सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथा तथाऽध्यापयंस्तु साह्यस्य कृतकृत्यता ॥ ४ ॥

अर्थः—इन्द्रियों के विषयों में काम से कभी न फंसें और विषयों की अत्यन्त प्रसक्ति अर्थात् प्रसंग को मन से अच्छे प्रकार दूर करता रहे ॥ ३ ॥ जो स्वाध्याय और धर्मविरोधी व्यवहार वा पदार्थ हैं उन सब को छोड़ देवे जिस किसी प्रकार से विद्या को पढ़ाते रहना ही गृहस्थ को कृतकृत्य होना है ॥ ४ ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ ५ ॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ ६ ॥
न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुक्कशैः ।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥ ७ ॥
नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः ।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥ ८ ॥
सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो! तुम जो धर्म धन और बुद्ध्यादि को अत्यन्त शीघ्र बढ़ाने हारे हितकारी शास्त्र हैं उन को और वेद के भागों की विद्याओं को नित्य देखा करो ॥५॥ मनुष्य जैसे २ शास्त्र का विचार कर उसके यथार्थ भाव को प्राप्त होता है वैसे २ अधिक २ जानता जाता है और इस की प्रीति विज्ञान ही में होती जाती है ॥६॥ सज्जन गृहस्थ लोगों को योग्य है कि जो पतित दुष्ट कर्म करने हारे हों न उन के न चांडाल न कंजर न मूर्ख न मिथ्याभिमानी और न नीच निश्चय वाले मनुष्यों के साथ कभी निवास करें ॥७॥ गृहस्थ लोग कभी प्रथम पुष्कल धनी हो के पश्चात् दरिद्र हो जायं उस से अपने आत्मा का अपमान न करें कि हाय हम निर्धनी हो गये इत्यादि विलाप भी न करें किन्तु मृत्युपर्यन्त लक्ष्मी की उन्नति में पुरुषार्थ किया करें और लक्ष्मी को दुर्लभ न समझें ॥८॥ मनुष्य सदैव सत्य बोलें और दूसरे का कल्याण

कारक उपदेश करें काणे को काणा मूर्ख को मूर्ख आदि अप्रिय वचन उन के सन्मुख कभी न बोलें और जिस मिथ्याभाषण से दूसरा प्रसन्न होता हो उस को भी न बोलें यह सनातन धर्म है ॥ ९ ॥

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १० ॥
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥ ११ ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १२ ॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ १३ ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १४ ॥

अर्थः—सदा विद्यावृद्धों और वयोवृद्धों को नमस्ते अर्थात् उन का मान्य किया करे जब वे अपने समीप आवें तब उठ कर मान्यपूर्वक ले अपने आसन पर बैठावे और हाथ जोड़ के आप समीप बैठे पूछे ते उत्तर देवें और जब जाने लगें तब थोड़ी दूर पीछे २ जाकर नमस्ते कर विदा किया करें और वृद्ध लोग हर बार निकम्मे जहां तहां न जाया करें ॥ १० ॥ गृहस्थ सदा आलस्य को छोड़ कर वेद और मनुस्मृति में वेदानुकूल कहे हुये अपने कर्मों में निबद्ध और धर्म का मूल सदाचार अर्थात् सत्य और सत्पुरुष आप्त धर्मात्माओं का आचरण है उस का सेवन सदा किया करें ॥ ११ ॥ धर्माचरण ही से दीर्घायु उत्तम प्रजा और अक्षयधन को मनुष्य प्राप्त होता है और धर्माचार बुरे अधर्मयुक्त लक्षणों का नाश कर देता है ॥ १२ ॥ और जो दुष्टाचारी पुरुष होता है वह सर्वत्र निन्दित दुःखभागी और व्याधि से अल्पायु सदा

होजाता है ॥ १३ ॥ जो सब अच्छे लक्षणों से हीन भी होकर सदाचार युक्त सत्य में श्रद्धा और निन्दा आदि दोष रहित होता है वह सुख से सौ वर्ष पर्यन्त जीता है ॥ १४ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १५ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६ ॥
अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥ १७ ॥

अर्थः—मनुष्य जो २ पराधीन कर्म हो उस २ को प्रयत्न से सदा छोड़े और जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २ का सेवन प्रयत्न से किया करे ॥ १५ ॥ क्योंकि जितना परवश होना है वह सब दुःख और जितना स्वाधीन रहना है वह सब सुख कहाता है यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानो ॥१६॥ जो अधार्म्मिक मनुष्य है और जिस का अधर्म से संचित किया हुआ धन है और जो सदा हिंसा में अर्थात् वैर में प्रवृत्त रहता है वह इस लोक और परलोक अर्थात् परजन्म में सुख को कभी नहीं प्राप्त हो सकता ॥ १७ ॥

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ १८ ॥
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ।
न त्वेवन्तु कृतोऽधर्मः कर्त्तुर्भवति निष्फलः ॥ १९ ॥
सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयुतः ॥ २० ॥

अर्थः— मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता वैसे ही किये हुए अधर्म का फल भी शीघ्र नहीं होता किन्तु धीरे २ अधर्म कर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है ॥१८॥ यदि अधर्म का फल कर्त्ता की विद्यमानता में न हो तो पुत्रों और पुत्रों के समय में न हो तो नातियों के समय में अवश्य प्राप्त होता है किन्तु यह कभी नहीं हो सकता कि कर्त्ता का किया हुआ कर्म निष्फल होवे ॥ १९ ॥ इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि सत्य धर्म और (आर्य) अर्थात् उत्तम पुरुषों के आचरणों और भीतर बाहर की पवित्रता में सदा रमण करें अपनी वाणी बाहू उदर को नियम और सत्यधर्म के साथ वर्त्तमान रख के शिष्यों को सदा शिक्षा किया करें ॥ २० ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ २१ ॥
धर्मं शनैस्संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २२ ॥
उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह ।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमाँस्त्यजेत् ॥ २३ ॥
वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।
तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २४ ॥
स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥२५॥ मनु०

अर्थः—जो धर्म से वर्जित धनादि पदार्थ और काम हों उनको सर्वथा शीघ्र छोड़ देवे और जो धर्माभास अर्थात् उत्तर काल में दुःखदायक कर्म हैं और जो लोगों को निन्दित कर्म में प्रवृत्त करने वाले कर्म हैं उन से भी दूर रहे ॥ २१ ॥ जैसे दीमक, धीरे २ बड़े भारी घर को बना लेती हैं वैसे मनुष्य परजन्म के सहाय के लिये सब

प्राणियों को पीड़ा न देकर धर्म का संचय धीरे २ किया करे ॥ २२ ॥ जो मनुष्य अपने कुल को उत्तम करना चाहे वह नीच २ पुरुषों का सम्बन्ध छोड़ कर नित्य अच्छे २ पुरुषों से सम्बन्ध बढ़ाता जावे ॥ २३ ॥ जिस वाणी में सब व्यवहार निश्चित वाणी ही जिन का मूल और जिस वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं जो मनुष्य उस वाणी को चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है वह जानो सब चोरी आदि पाप ही को करता है इसलिये मिथ्याभाषण को छोड़ के सदा सत्यभाषण ही किया करे ॥ २४ ॥ मनुष्यों को चाहिये कि धर्म से वेदादि शास्त्रों का पठन, पाठन, गायत्री प्रणवादि का अर्थ विचार, ध्यान, अग्निहोत्रादि होम कर्मोपासना, ज्ञान, विद्या, पौर्णमास्यादि इष्टि, पञ्चमहायज्ञ, अग्निष्टोम आदि, न्याय से राज्यपालन, सत्योपदेश और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से इस शरीर को (ब्राह्मी) अर्थात् ब्रह्मसम्बन्धी करें ॥ २५ ॥

अथ सभा०—जो २ विशेष बड़े २ काम हों जैसा कि राज्य, वे सब सभा से निश्चय करके किये जावें ॥

इस में प्रमाण०—तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १५ । सू० ९ । मं० २ ॥ सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ५५ । मं० ६ ॥ त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ३ । सू० ३८ । मं० ६ ॥

अर्थः— (तम्) जो कि संसार में धर्म के साथ राज्यपालनादि किया जाता है उस व्यवहार को सभा और संग्राम तथा सेना सब प्रकार संचित करे ॥ १ ॥ हे सभ्य सभा के योग्य सभापते राजन् ! तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की (पाहि) रक्षा और उन्नति किया कर (ये, च) और जो (सभ्याः) सभा के योग्य धार्मिक आप्त (सभासदः) सभासद् विद्वान् लोग हैं वे भी सभा की योजना रक्षा और उस से सब की उन्नति किया करें ॥ २ ॥ जो (राजाना) राजा और प्रजा

के भद्र पुरुषों के दोनों समुदाय हैं वे (विदथे) उत्तम ज्ञान और लाभदायक इस जगत् अथवा संग्रामादि कार्यों में (त्रीणि) राजसभा धर्मसभा और विद्यासभा अर्थात् विद्यादि व्यवहारों की वृद्धि के लिये ये तीन प्रकार की (सदांसि) सभा नियत कर इन्हीं से संसार की सब प्रकार उन्नति करें ॥ ३ ॥

अनाम्ना तेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुस्स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ १ ॥
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ २ ॥

अर्थः—हे गृहस्थ लोगो ! जो धर्मयुक्त व्यवहार मनुस्मृति आदि में प्रत्यक्ष न कहे हों यदि उन में शंका होवे तो तुम जिस को शिष्ट आप्त विद्वान् कहें उसी को शंकारहित कर्त्तव्य धर्म मानो ॥ १ ॥ शिष्ट सब मनुष्यमात्र नहीं होते किन्तु जिन्हों ने पूर्ण ब्रह्मचर्य और धर्म से सङ्गोपाङ्ग वेद पढ़े हों जो श्रुति प्रमाण और प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही से विधि वा निषेध करने में समर्थ धार्मिक परोपकारी हों वे ही शिष्ट पुरुष होते हैं ॥ २ ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ३ ॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ ४ ॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ५ ॥
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ६ ॥

अर्थः—वैसे शिष्ट न्यून से न्यून १० दश पुरुषोंकी सभा होवे अथवा बड़े विद्वान् तीनोंकी भी सभा हो सकती है जो सभा से धर्म कर्म निश्चित हों उनका भी आचरण

सब लोग करें ॥ ३ ॥ उन दशों में इस प्रकार के विद्वान् होवें ३ तीन वेदों के विद्वान् चौथा हैतुक अर्थात् कारण अकारण का ज्ञाता, पांचवां तर्की न्यायशास्त्रवित् छठा निरुक्त का जानने हारा, सातवां धर्मशास्त्रवित् आठवां ब्रह्मचारी नववां गृहस्थ और दशवां वानप्रस्थ इन महात्माओं की सभा होवे ॥४॥ तथा ऋग्वेदवित् यजुर्वेदवित् और सामवेदवित् इन तीनों विद्वानों की भी सभा धर्मसंशय अर्थात् सब व्यवहारों के निर्णय के लिये होनी चाहिये, और जितने सभा में अधिक पुरुष हों उतनी ही उत्तमता है ॥ ५ ॥ द्विजों में उत्तम अर्थात् चतुर्थाश्रमी संन्यासी अकेला भी जिस धर्म व्यवहार के करने का निश्चय करे वही परम धर्म समझना किन्तु अज्ञानियों के सहस्रों लाखों और क्रोड़ों पुरुषों का कहा हुआ, धर्मव्यवहार कभी न मानना चाहिये किन्तु धर्मात्मा विद्वानों और विशेष परमविद्वान् संन्यासी का वेदादि प्रमाणों से कहा हुआ धर्म सब को मानने योग्य है ॥ ६ ॥

यदि सभा में मतभेद हो तो बहुपक्षानुसार मानना और सम पक्ष में उत्तमों की बात स्वीकार करनी और दोनों पक्ष वाले बराबर उत्तम हों तो वहां संन्यासियों की सम्मति लेनी, जिधर पक्षपातरहित सर्वहितैषी संन्यासियों की सम्मति होवे वही उत्तम समझनी चाहिये—

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ।
दशलक्षणको धर्मस्सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ७ ॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥८॥ मनु०॥

अर्थः—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी आदि सब मनुष्यों को योग्य है कि निम्नलिखित धर्म का सेवन और उससे विरुद्ध अधर्म का त्याग प्रयत्न से किया करें ॥ ७॥ धर्म, न्याय नाम पक्षपात छोड़ कर सत्य ही का आचरण और असत्य का सर्वदा परित्याग रखना इस धर्म के ग्यारह लक्षण हैं (अहिंसा) किसी से वैर बुद्धि करके उसके अनिष्ट करने में कभी न वर्तना (धृतिः) सुख दुःख हानि लाभ में भी व्याकुल होकर धर्म को न छोड़ना किन्तु धैर्य से धर्म ही में स्थिर रहना (क्षमा) निन्दा

स्तुति मानापमान का सहन करके धर्म ही करना (दमः) मन को अधर्म से सदा हटाकर धर्म ही में प्रवृत्त रखना (अस्तेयम्) मन, कर्म, वचन से अन्याय और अधर्म से पराये द्रव्य का स्वीकार न करना (शौचम्) रागद्वेषादि त्याग से आत्मा और मन को पवित्र और जलादि से शरीर को शुद्ध रखना (इन्द्रियनिग्रहः) श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को अधर्म से हटा के धर्म ही में चलाना (धीः) वेदादि सत्यविद्या ब्रह्मचर्य सत्संग करने और कुसंग दुर्व्यसन मद्यपानादि त्याग से बुद्धि को सदा बढ़ाते रहना (विद्या) जिस से भूमि से ले के परमेश्वर पर्यन्त का यथार्थ बोध होता है उस विद्या को प्राप्त होना (सत्यम्) सत्य मानना सत्य बोलना सत्य करना (अक्रोधः) क्रोधादि दोषों को छोड़ कर शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना धर्म कहाता है इस का ग्रहण और अन्याय पक्षपात सहित आचरण अधर्म जोकि हिंसा वैरबुद्धि अधैर्य असहन मन को अधर्म में चलाना चोरी करना अपवित्र रहना इन्द्रियों को न जीत कर अधर्म में चलाना कुसंग दुर्व्यसन मद्यपानादि से बुद्धि का नाश करना अविद्या जोकि अधर्माचरण अज्ञान है उस में फसना असत्य मानना असत्य बोलना क्रोधादि दोषों में फस कर अधर्मी दुष्टाचारी होना ये ग्यारह अधर्म के लक्षण हैं, इन से सदा दूर रहना चाहिये ॥ ८ ॥

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् । नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥ महाभारते० ॥ ९ ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥ १० ॥

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥११॥

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥ १२ ॥

वह सभा नहीं है जिस में वृद्ध पुरुष न होवें वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्म ही की बात नहीं बोलते वह धर्म नहीं है जिस में सत्य नहीं और न वह सत्य है जो कि छल से युक्त हो ॥ ९ ॥ मनुष्य को योग्य है कि सभा में प्रवेश न करे यदि सभा में प्रवेश करे तो सत्य ही बोले यदि सभा में बैठा हुआ भी असत्य बात को सुन के मौन रहे अथवा सत्य के विरुद्ध बोले वह मनुष्य अति पापी है ॥ १० ॥ अधर्म से धर्म घायल होकर जिस सभा में प्राप्त होवे उस के घाव को यदि सभासद् न पूर देवें तो निश्चय जानों कि उस सभा में सब सभासद् ही घायल पड़े हैं ॥ ११ ॥ जिस-को सत्पुरुष रागद्वेषरहित विद्वान् अपने हृदय से अनुकूल जान कर सेवन करते हैं उसी पूर्वोक्त को तुम लोग धर्म जानो ॥ १२ ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥१३॥
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १४ ॥

जो पुरुष धर्म का नाश करता है उसी का नाश धर्म कर देता है और जो धर्म की रक्षा करता है उस की धर्म भी रक्षा करता है इसलिये मारा हुआ धर्म कभी हम को न मारडाले इस भय से धर्म का हनन अर्थात् त्याग कभी न करना चाहिये ॥ १३ ॥ जो सुख की वृष्टि करने हारा सब ऐश्वर्य का दाता धर्म है उसका जो लोप करता है उस को विद्वान् लोग वृषल अर्थात् नीच समझते हैं ॥ १४ ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः । धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ १५ ॥ महाभारते ॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥१६॥ मनु० ॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीस्समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥१७॥ भर्तृहरिः

अर्थः—मनुष्यों को योग्य है कि काम से अर्थात् झूठ से कामना सिद्धि होने के कारण से वा निन्दा स्तुति आदि के भय से भी धर्म का त्याग कभी न करें और न लोभ से, चाहे झूठ अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता हो तथापि धर्म को छोड़ कर चक्रवर्ती राज्य को भी ग्रहण न करें चाहे भोजन छादन जलपान आदि की जीविका भी अधर्म से हो सके वा प्राण जाते हों परन्तु जीविका के लिये भी धर्म को कभी न छोड़ें क्योंकि जीव और धर्म नित्य हैं तथा सुख दुःख दोनों अनित्य हैं अनित्य के लिये नित्य का छोड़ना अतीव दुष्ट कर्म है इस धर्म का हेतु कि जिस शरीर आदि से धर्म होना है वह भी अनित्य है धन्य वे मनुष्य हैं जो अनित्य शरीर और सुख दुःखादि के व्यवहार में वर्त्तमान होकर नित्य धर्म का त्याग कभी नहीं करते ॥ १८ ॥ जिस सभा में बैठे हुए सभासदों के सामने अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य का हनन होता है उस सभा में सब सभासद् मरे से ही हैं ॥१९॥ सब मनुष्यों को यह निश्चय जानना चाहिये कि चाहे सांसारिक अपने प्रयोजन की नीति में वर्त्तने हारे चतुर पुरुष निन्दा करें वा स्तुति करें लक्ष्मी प्राप्त होवे अथवा नष्ट होजाये आज ही मरण होवे अथवा वर्षान्तर में मृत्यु प्राप्त होवे तथापि जो मनुष्य धर्म युक्त मार्ग से एक पग भी विरुद्ध नहीं चलते वे ही धीर पुरुष धन्य हैं ॥ १७ ॥

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥१॥ ऋ० मं० १० । सू० १९१ । मं० २ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳसत्ये प्रजापतिः ॥ २ ॥ यजु० अ० १९ । मं० ७७ ॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः॥तै०अष्टमप्रपाठकः । प्रथमानुवाकः॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुम को मैं ईश्वर आज्ञा देता हूं कि (यथा) जैसे (पूर्वे) प्रथम अधीनविद्यायोगाभ्यासी (संजानानाः) सम्यक् जानने वाले (देवाः) विद्वान् लोग मिल के (भागम्) सत्य असत्य का निर्णय करके असत्य को छोड़ सत्य की (उपासते) उपासना करते हैं वैसे (सम्, जानताम्) आत्मा से धर्माऽधर्म प्रियाऽप्रिय को सम्यक् जानने हारे (वः) तुम्हारे (मनांसि) मन एक दूसरे से अविरोधी होकर एक पूर्वोक्त धर्म्म में सम्मत होवें और तुम उसी धर्म्म को (संगच्छध्वम्) सम्यक् मिल के प्राप्त होओ जिस में तुम्हारी एक सम्मति होती है और विरुद्ध वाद अधर्म को छोड़ के (संवदध्वम्) सम्यक् संवाद प्रश्नोत्तर प्रीति से कर के एक दूसरे की उन्नति किया करो ॥ १ ॥ (प्रजापतिः) सकल सृष्टि का उत्पत्ति और पालन करने हारा सर्वव्यापक सर्वज्ञ न्यायकारी अद्वितीय स्वामी परमात्मा (सत्यानृते) सत्य और अनृत (रूपे) भिन्न २ स्वरूप वाले धर्म अधर्म को (दृष्ट्वा) अपनी सर्वज्ञता से यथावत् देख के (व्याकरोत्) भिन्न २ निश्चित करता है (अनृते) मिथ्याभाषणादि अधर्म में (अश्रद्धाम्) अप्रीति करो और (प्रजापतिः) वही परमात्मा (सत्ये) सत्यभाषणादि लक्षणयुक्त न्याय पक्षपातरहित धर्म में तुम्हारी (श्रद्धाम्) प्रीति को (अदधात्) धारण कराता है वैसा ही तुम करो ॥ २ ॥ हम स्त्री पुरुष सेवक स्वामी मित्र २ पिता पुत्रादि (सह) मिल के (नौ) हम दोनों प्रीति से (अवतु) एक दूसरे की रक्षा किया करें और (सह) प्रीति से मिल के एक दूसरे के (वीर्यम्) पराक्रम की बढ़ती (करवावहै) सदा किया करें (नौ) हमारा (अधीतम्) पढ़ा पढ़ाया (तेजस्वि) अतिप्रकाशमान (अस्तु) होवे और

हम एक दूसरे से (मा, विद्विषावहै) कभी विद्वेष विरोधन करें किन्तु सदा मित्रभाव और एक दूसरे के साथ सत्य प्रेम से वर्त्त कर सब गृहस्थों के सद्व्यवहारों को बढ़ाते हुए सदा आनन्द में बढ़ते जावें जिस परमात्मा का यह " ओम् " नाम है उस की कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ से हमारे शरीर, मन और आत्मा का त्रिविध दुःख जो कि अपने दूसरे से होता है नष्ट हो जावे और हम लोग प्रीति से एक दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में सफल हो के सदैव स्वयं आनन्द में रह कर सब को आनन्द में रक्खें ॥

इति गृहाश्रमसंस्कारविधिः समाप्तः ॥
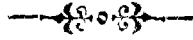
अथ वानप्रस्थसंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

वानप्रस्थसंस्कार उसको कहते हैं जो विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके पूर्ण ब्रह्मचर्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र का भी एक सन्तान हो जाय अर्थात् जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब पुरुष वानप्रस्थाश्रम अर्थात् वन में जाकर निम्नलिखित सब बातें करे ॥

अत्र प्रमाणानि–ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥१॥ शतपथब्राह्मणे ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ २ ॥ यजु० अ० १९ । मं० ३० ॥

अर्थः–मनुष्यों को चाहिये कि ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति करके गृहस्थ होवें गृहस्थ होके वनी अर्थात् वानप्रस्थ होवें, और वानप्रस्थ होके संन्यास ग्रहण करें ॥ १ ॥ जब मनुष्य ब्रह्मचर्यादि तथा सत्यभाषणादि व्रत अर्थात् नियम धारण करता है तब उस (व्रतेन) व्रत से उत्तम प्रतिष्ठारूप (दीक्षाम्) दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियम पालन से (दक्षिणाम्) सत्कार-पूर्वक धनादि को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस सत्कार से (श्रद्धाम्) सत्य धारण में प्रीति को (आप्नोति) प्राप्त होता है और (श्रद्धया) सत्यधार्मिक जनों में प्रीति से (सत्यम्) सत्यविज्ञान वा सत्य पदार्थ मनुष्य को (आप्यते) प्राप्त होता है इसलिये श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम का अनुष्ठान करके वान-प्रस्थ आश्रम अवश्य करना चाहिये ॥ २ ॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥ ३ ॥ यजु० अ० २० । मं० २४ ॥

आ न॑यैतमा र॑भस्व सुकृतां लोकमपि॑ गच्छतु प्रजानन् । तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकुमाक्र॑मतां तृतीय॑म् ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० ६ सू० ५ मं० ॥ १ ॥

अर्थः—हे (व्रतपतेऽग्ने) नियमपालकेश्वर ! (दीक्षितः) दीक्षा को प्राप्त होता हुआ (अहम्) मैं (त्वयि) तुझ में स्थिर होके (व्रतम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का धारण (च) और उस की सामग्री (श्रद्धाम्) सत्य की धारणा को (च) और उस के उपायों को (उपैमि) प्राप्त होता हूं इसीलिये अग्नि में जैसे (समिधम्) समिधा को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं वैसे विद्या और व्रत को धारण कर प्रज्वलित करता हूं और वैसे ही (त्वा) तुझ को अपने आत्मा में धारण करता और सदा (इन्धे) प्रकाशित करता हूं ॥ ३ ॥ हे गृहस्थ ! (प्रजानन्) प्रकर्षता से जानता हुआ तू (एतम्) इस वानप्रस्थाश्रम का (आरभस्व) आरम्भ कर (आनय) अपने मन को गृहाश्रम से इधर की ओर ला (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकमपि) देखने योग्य वानप्रस्थाश्रम को भी (गच्छतु) प्राप्त हो (बहुधा) बहुत प्रकार के (महान्ति) बड़े २ (तमांसि) अज्ञान दुःख आदि संसार के मोहों को (तीर्त्वा) तर के अर्थात् पृथक् होकर (अजः) अपने आत्मा को अजर अमर जान (तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) दुःख रहित वानप्रस्थाश्रम को (आक्रमताम्) आक्रमण अर्थात् रीतिपूर्वक आरूढ हो ॥ ४ ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयस्स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥ ५ ॥ अथर्व० कां० १९ सू० ४१ मं० १ ॥

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः । शिवा नस्सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० १९ सू० ४० मं० ३ ॥

अर्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त होने वाले (ऋषयः) विद्वान् लोग (अग्रे) प्रथम (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों की दीक्षा उपदेश ले के (तपः) प्राणायाम और विद्याध्ययन जितेन्द्रियत्वादि शुभ लक्षणों को (उप, निषेदुः) प्राप्त होकर अनुष्ठान करते हैं वैसे इस (भद्रम्) कल्याणकारक वानप्रस्थाश्रम की (इच्छन्तः) इच्छा करो जैसे राज कुमार ब्रह्मचर्याश्रमको कर के (ततः) तदनन्तर (ओजः) पराक्रम (च) और (बलम्) बल को प्राप्त हो के (जातम्) प्रसिद्ध, प्राप्त हुए (राष्ट्रम्) राज्य की इच्छा और रक्षा करते हैं और (अस्मै) न्यायकारी धार्मिक विद्वान् राजा को (देवाः) विद्वान् लोग नमन करते हैं (तत्) वैसे सब लोग वानप्रस्थाश्रम को किये हुए आप को (उप, सं, नमन्तु) समीप प्राप्त हो के नम्र होवें ॥ ५ ॥ सम्बन्धी जन (नः) हम वानप्रस्थाश्रमस्थों की (मेधाम्) प्रज्ञा को (मा, हिंसिष्ट) नष्ट मत करे (नः) हमारी (दीक्षाम्) दीक्षा को (मा) मत और (नः) हमारा (यत्) जो (तपः) प्राणायामादि उत्तम तप है उस को भी (मा) मत नाश करे (नः) हमारी दीक्षा और (आयुषे) जीवन के लिये सब प्रजा (शिवाः) कल्याण करने हारी (सन्तु) होवें जैसे हमारी (मातरः) माता पितामही प्रपितामही आदि (शिवाः) कल्याण करने हारी होती हैं वैसे सब लोग प्रसन्न होकर मुझ को वानप्रस्थाश्रम की अनुमति देने हारे (भवन्तु) होवें ॥ ६ ॥

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्त्या विद्वांसो भैक्ष्यचर्याञ्चरन्तः । सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ७ ॥ मुण्डकोपनि० खं० । मं० ७ ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (विद्वांसः) विद्वान् लोग (अरण्ये) जंगल में (शान्त्या) शान्ति के साथ (तपः श्रद्धे) योगाभ्यास और परमात्मा में प्रीति करके (उपवसन्ति) वनवासियों के समीप वसते हैं और (भैक्ष्यचर्याम्) भिक्षाचरण को (चरन्तः) करते हुए जंगल में निवास करते हैं (ते) वे (हि) ही (विरजाः) निर्दोष निष्पाप निर्मल होके (सूर्यद्वारेण) प्राण के द्वारा (यत्) जहां (सः) सो (अमृतः) मरण जन्म से पृथक् (अव्ययात्मा) नाश रहित (पुरुषः) पूर्ण पर-

मात्मा विराजमान है (हि) वही (प्रयान्ति) जाते हैं इसलिये वानप्रस्थाश्रम करना अति उत्तम है ॥ ७ ॥

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् बलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥
सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वञ्चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥

अर्थः—पूर्वोक्त प्रकार विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ के समावर्त्तन के समय स्नानविधि करने हारा द्विज ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जितेन्द्रिय जितात्मा होके यथावत् गृहाश्रम करके वन में वसे ॥ १ ॥ गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमड़ा ढीला और श्वेत केश होते हुए देखें और पुत्र का भी पुत्र हो जाय तब वन का आश्रय लेवें ॥ २ ॥ जब वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा लेवें तब ग्रामों में उत्पन्न हुए पदार्थों का आहार और घर के सब पदार्थों को छोड़ के पुत्रों में अपनी पत्नी को छोड़ अथवा संग में लेके वन को जावें ॥ ३ ॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥

अर्थः—जब गृहस्थ वानप्रस्थ होने की इच्छा करे तब अग्निहोत्र को सामग्री सहित ले के ग्राम से निकल जंगल में जितेन्द्रिय होकर निवास करे ॥ ४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ५ ॥
तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्ष्यमाहरेत् ।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ ६ ॥

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ ७ ॥
मनु० अ० ६ ॥

अर्थः—वहां जङ्गल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने पढ़ाने में नित्य युक्त मन और इन्द्रियों को जीत कर यदि स्वस्त्री भी समीप हो तथापि उस से सेवा के सिवाय विषय सेवन अर्थात् प्रसङ्ग कभी न करे सब से मित्रभाव सावधान, नित्य देनेहारा और किसी से कुछ भी न लेवे सब प्राणीमात्र पर अनुकम्पा—कृपा रखनेहारा होवे ॥ ५ ॥ जो जंगल में पढ़ाने और योगाभ्यास करने हारे तपस्वी धर्मात्मा विद्वान् लोग रहते हैं जो कि गृहस्थ वा वानप्रस्थ वनवासी हों उनके घरों में से भिक्षा ग्रहण करे ॥ ६ ॥ और इस प्रकार वन में बसता हुआ इन और अन्य दीक्षाओं का सेवन करे और आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के लिये नाना प्रकार की उपनिषद् अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार किया करे इसी प्रकार जब तक संन्यास करने की इच्छा न हो तब तक वानप्रस्थ ही रहे ॥ ७ ॥

अथ विधिः—वानप्रस्थाश्रम करने का समय ५० वर्ष के उपरान्त है जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, पुत्रवधू आदि को सब गृहाश्रम की शिक्षा करके वन की ओर यात्रा की तय्यारी करे यदि स्त्री चले तो साथ ले-जावे नहीं तो ज्येष्ठ पुत्र को सौंप जावे कि इसकी सेवा यथावत् किया करना और अपनी पत्नी को शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्रआदि को धर्ममार्ग में चलने के लिये और अधर्म से हटाने के लिये शिक्षा करती रहना तत्पश्चात् पृष्ठ १६—१७ में लिखे प्रमाणे यज्ञशाला वेदि आदि सब बनावे पृष्ठ १८ में लिखे घृत आदि सब सामग्री जोड़ के पृ० २४-२५ में लिखे प्रमाणे (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से अग्न्याधान और (अयन्तइध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान कर के पृ० २५-२६ में लिखे प्रमाणेः—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के चारों ओर जल प्रोक्षण करके आघारावाज्य-

भागाहुति ४ और व्याहृति आज्याहुति ४ चार कर के पृष्ठ ८-१६ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके स्थालीपाक बनाकर और उस पर घृत सेचन कर निम्न लिखित मन्त्रों से आहुति देवे ॥

ओं काय स्वाहा । कस्मै स्वाहा । कतमस्मै स्वाहा । आधिमाधीताय स्वाहा । मनः प्रजापतये स्वाहा । चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा । अदित्यै मह्यै स्वाहा । अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा । सरस्वत्यै स्वाहा । सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा । सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा । पूष्णे स्वाहा । पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा । पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा । त्वष्ट्रे स्वाहा । त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा । त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा *। भुवनस्य पतये स्वाहा । अधिपतये स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा †। ओं आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । अपानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । उदानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । समानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । वाग्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । मनो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । आत्मा यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । ज्योतिर्यज्ञेन

* यजु अ० २२ । मं० २० ॥

† यजु: अ० २२ । मं० ३२ ॥

कल्पताᳬ स्वाहा । स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा । पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा । यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा *। एकस्मै स्वाहा । द्वाभ्यां स्वाहा । शताय स्वाहा । एकशताय स्वाहा । व्युष्ट्यै स्वाहा । स्वर्गाय स्वाहा† ॥

इन मन्त्रों से एक २ करके ४३ स्थालीपाक की आज्याहुति देके पुनः पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ चार देकर पृ० ३०—३१ में लिखे प्रमाणे सामगान करके सब इष्टमित्रों से मिल पुत्रादिकों पर सब घर का भार धर के अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जाकर एकान्त में निवास कर योगाभ्यास शास्त्रों का विचार महात्माओं का संग करके स्वात्मा और परमात्मा को साक्षात् करने में प्रयत्न किया करे ॥

इति वानप्रस्थसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

* यजुः अ० २२ । मं० ३३ ॥

† यजुः अ० २२ । मं० ३४ ॥

(२५)

अथ संन्याससंस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

संन्यास संस्कार उस को कहते हैं कि जो मोहादि आवरण पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थ विचरे अर्थात्—

सम्यङ् न्यस्यन्त्यधर्माचरणानि येन वा सम्यङ् नित्यं सत्कर्मस्वास्त उपविशति स्थिरीभवति येन स संन्यासः, संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी ॥

कालः—प्रथम जो वानप्रस्थ की आदि में कह आये हैं कि ब्रह्मचर्य पूरा कर के गृहस्थ, और गृहस्थ होके वनस्थ, वनस्थ हो के संन्यासी होवे, यह क्रम संन्यास अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करता २ वृद्धावस्था में जो संन्यास लेना है उसी को क्रम संन्यास कहते हैं ॥

द्वितीय प्रकार ॥

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ॥

यह ब्राह्मण ग्रन्थ का वाक्य है—

अर्थः—जिस दिन दृढ़ वैराग्य प्राप्त होवे उसी दिन चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो अथवा वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान न करके गृहाश्रम मे ही संन्यासाश्रम ग्रहण करे क्योंकि संन्यास में दृढ़ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होना ही मुख्य कारण है ॥

तृतीय प्रकार ॥

ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् ॥

यह भी ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है। यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान विज्ञान को प्राप्त होकर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् उठ जावे पक्षपात रहित होकर सब के उपकार करने की इच्छा होवे और जिसको दृढ़ निश्चय हो जावे कि मैं मरण पर्यन्त यथावत् संन्यास धर्म का निर्वाह कर सकूंगा तो वह न गृहाश्रम करे न वानप्रस्थाश्रम, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण कर ही के संन्यासाश्रम को ग्रहण कर लेवे ॥

अत्र वेदप्रमाणानि ॥

शर्य्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा । बलन्दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥ आ पवस्व दिशांपत आर्जीकात् सोम मीढ्वः । ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

अर्थः—मैं ईश्वर संन्यास लेने हारे तुझ मनुष्य को उपदेश करता हूं कि जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाश करने हारा (इन्द्रः) सूर्य (शर्य्यणावति) हिंसनीय पदार्थों से युक्त भूमितल में स्थित (सोमम्) रस को पीता है वैसे सन्यास लेने वाला पुरुष उत्तम मूल फलों के रस को (पिबतु) पीवे और (आत्मनि) अपने आत्मा में (महत्) बड़े (वीर्यम्) सामर्थ्य को (करिष्यन्) करूंगा ऐसी इच्छा करता हुआ (बलं, दधानः) दिव्य बल को धारण करता हुआ (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये हे (इन्द्रो) चन्द्रमाके तुल्य सब को आनन्द करने हारे पूर्ण विद्वान् तू संन्यास लेके सब पर (परि, स्रव) सत्योपदेश की वृष्टि कर ॥ १ ॥ हे (सोम) सोम्य गुणसम्पन्न (मीढ्वः) सत्य से सब के अन्तःकरण को सींचने हारे (दिशांपते) सब दिशाओं में स्थित मनुष्यों को सच्चा ज्ञान दे के पालन करने हारे (इन्दो) शमादि गुण युक्त संन्यासिन् ! तू (ऋतवाकेन) यथार्थ बोलने (सत्येन) सत्य भाषण करने से (श्रद्धया) सत्य के धारण में सच्ची प्रीति और (तपसा) प्राणायाम योगाभ्यास से (आर्जीकात्) सरलता से (सुतः) निष्पन्न होता हुआ तू अपने शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि को (आ, पवस्व) पवित्र कर (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त परमात्मा के लिये (परि,स्रव) सब ओर से गमन कर ॥ २ ॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् । श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

अर्थः—हे (ऋतद्युम्न) सत्य धन और सत्य कीर्त्ति वाले यतिवर (ऋतं, वदन्) पक्षपात छोड़ के यथार्थ बोलता हुआ हे (सत्यकर्मन्) सत्य वेदोक्त कर्म वाले संन्यासिन् (सत्यं, वदन्) सत्य बोलता हुआ (श्रद्धाम्) सत्य धारण में प्रीति करने को (वदन्) उपदेश करता हुआ (सोम) सौम्यगुणसंपन्न (राजन्) सब से प्रकाशयुक्त आत्मा वाले (सोम) योगैश्वर्ययुक्त (इन्दो) सब को आनन्ददायक संन्यासिन् तू (धात्रा) सकल विश्व के धारण करने हारे परमात्मा से योगाभ्यास कर के (परिष्कृत) शुद्ध होता हुआ (इन्द्राय) योग से उत्पन्न हुए परमैश्वर्य की सिद्धि के लिये (परि, स्रव) यथार्थ पुरुषार्थ कर ॥ ३ ॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां३ वाचं वदन्। ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

अर्थः—हे (छन्दस्याम्) स्वतन्त्रतायुक्त (वाचम्) वाणी को (वदन्) कहते हुए (सोमेन) विद्या, योगाभ्यास और परमेश्वर की भक्ति से (आनन्दम्) सब के लिये आनन्द को (जनयन्) प्रगट करते हुए (इन्दो) आनन्दप्रद (पवमान) पवित्रात्मन् पवित्र करने हारे संन्यासिन् (यत्र) जिस (सोमे) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा में (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने हारा विद्वान् (महीयते) महत्व को प्राप्त हो कर सत्कार को प्राप्त होता है जैसे (ग्राव्णा) मेघ से सब जगत् को आनन्द होता है वैसे तू सब को (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त मोक्ष का आनन्द देने के लिये सब साधनों को (परिस्रव) सब प्रकार से प्राप्त करा ॥ ४ ॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ५ ॥

अर्थः—हे (पवमान) अविद्यादि क्लेशों के नाश करने हारे पवित्रस्वरूप (इन्दो) सर्वानन्ददायक परमात्मन् (यत्र) जहां तेरे स्वरूप में (अजस्रम्) निरन्तर व्यापक तेरा (ज्योतिः) तेज है (यस्मिन्) जिस (लोके) ज्ञान से देखने योग्य

तुझ में (स्वः) नित्य सुख (हितम्) स्थित है (तस्मिन्) उस (अमृते) जन्म मरण और (अक्षिते) नाश से रहित (लोके) द्रष्टव्य अपने स्वरूप में आप (मा) मुझ को (इन्द्राय) परमैश्वर्यप्राप्ति के लिये (धेहि) कृपा से धारण कीजिये और) ऊपर माता के समान कृपा भाव से (परिस्रव) आनन्द वर्षा कीजिये ॥ ५ ॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः। यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ६ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) आनन्दप्रद परमात्मन् (यत्र) जिस तुझ में (वैवस्वतः) सूर्य का प्रकाश (राजा) प्रकाशमान हो रहा है (यत्र) जिस आप में (दिवः) बिजुली अथवा बुरी कामना की (अवरोधनम्) रुकावट है (यत्र) जिस आप में (अमूः) वे कारण रूप (यह्वतीः) बड़े व्यापक आकाशस्थ (आपः) प्राणपद वायु हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (परिस्रव) आर्द्र भाव से आप मुझ को प्राप्त हूजिये ॥ ६ ॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः। लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ७ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) परमात्मन् (यत्र) जिस आप में (अनुकामम्) इच्छा के अनुकूल स्वतन्त्र (चरणम्) विहरना है (यत्र) जिस (त्रिनाके) त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख से रहित (त्रिदिवे) तीन सूर्य विद्युत् और भौम्य अग्नि से प्रकाशित सुखस्वरूप में (दिवः) कामना करने योग्य शुद्ध कामना वाले (लोकाः) यथार्थ ज्ञानयुक्त (ज्योतिष्मन्तः) शुद्ध विज्ञानयुक्त मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष विचरते हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये और (इन्द्राय) उस परम आनन्दैश्वर्य के लिये (परिस्रव) कृपा से प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्। स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ८ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) निष्कामानन्दप्रद सच्चिदानन्दस्वरूप! परमात्मन् (यत्र) जिस आप में (कामाः) सब कामना (निकामाः) और अभिलाषा छूट जाती हैं (च) और (यत्र) जिस आप में (ब्रध्नस्य) सब से बड़े प्रकाशमान सूर्य का (विष्टपम्) विशिष्ट सुख (च) और (यत्र) जिस आप में स्वधा अपना ही धारण (च) और जिस आप में (तृप्तिः) पूर्ण तृप्ति है (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) प्राप्त मुक्तिवाला (कृधिः) कीजिये तथा (इन्द्राय) सब दुःख विदारण के लिये आप मुझ पर (परिस्रव) करुणावृत्ति कीजिये ॥ ८ ॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते । कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ६ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर !(यत्र) जिस आप में (आनन्दाः) सम्पूर्ण समृद्धि (च) और (मोदाः) सम्पूर्ण हर्ष (मुदः) सम्पूर्ण प्रसन्नता (च) और (प्रमुदः) प्रकृष्ट प्रसन्नता (आसते) स्थित हैं (यत्र) जिस आप में (कामस्य) अभिलाषी पुरुष की (कामाः) सब कामना (आप्ताः) प्राप्त होती हैं तब उसी अपने स्वरूप में (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (माम्) मुझ को (अमृतम्) जन्म मृत्यु के दुःख से रहित मोक्षप्राप्तयुक्त कि जिस के मुक्ति के समय के मध्य में संसार में नहीं आना पड़ता उस मुक्ति की प्राप्ति वाला (कृधि) कीजिये और इसी प्रकार सब जीवों को (परिस्रव) सब ओर से प्राप्त हूजिये ॥ ९ ॥

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आगूढमासूर्य्यमजभर्त्तन ॥ १० ॥ ऋ० मं० १० । सू० ७२ । मं० ७ ।

अर्थः—हे (देवाः) पूर्ण विद्वान् (यतयः) संन्यासी लोगो तुम (यथा) जैसे (अत्र) इस (समुद्रे) आकाश में (गूढम्) गुप्त (आसूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सूर्यादि का प्रकाशक परमात्मा है उस को (आ, अजभर्त्तन) चारों ओर से अपने आत्माओं में धारण करो और आनन्दित होओ वैसे (यत्) जो (भुवनानि) सब भुवनस्थ गृहस्थादि मनुष्य हैं उन को सदा (अपिन्वत) विद्या और उपदेश से संयुक्त किया करो यही तुम्हारा परमधर्म है ॥ १० ॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुप निषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सन्नमन्तु ॥ ११ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४१ । मं० १ ॥

अर्थः—हे विद्वानो ! जो (ऋषयः) वेदार्थ विद्या को और (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त (अग्ने) प्रथम (तपः) ब्रह्मचर्य रूप आश्रम को पूर्णता से सेवन तथा यथावत् स्थिरता से प्राप्त होके (भद्रम्) कल्याण की (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (दीक्षाम्) संन्यास की दीक्षा को (उपनिषेदुः) ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त होवें उन का (देवाः) विद्वान् लोग (उप, सन्नमन्तु) यथावत् सत्कार किया करें (ततः) तदनन्तर (राष्ट्रम्) राज्य (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (जातम्) उत्पन्न होवे (तत्) उस से (अस्मै) इस संन्यासाश्रम के पालन के लिये यत्न किया करें ॥ ११ ॥

अथ मनुस्मृतेश्श्लोकाः ॥

वनेषु तु विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत् ॥ १ ॥
अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे नियोजयेत् ॥ २ ॥
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥३॥

यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥
आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ५ ॥
अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
उपेक्षकोऽसङ्कुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ६ ॥
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ ७ ॥
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ८ ॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ९ ॥
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ १० ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ११ ॥
दूषितोपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ १२ ॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ १३ ॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ १४ ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ १५ ॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥१६॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिरस्यान्तरात्मनः ॥ १७ ॥
सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥
अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥ १९ ॥
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ २० ॥
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ्शनैः शनैः ।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ २१ ॥
इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ।
इदमन्विच्छतां स्वर्ग्यमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ २२ ॥
अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २३ ॥

अर्थः—इस प्रकार जंगलों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् अधिक से अधिक २५ पच्चीस वर्ष अथवा न्यून से न्यून १२ वर्ष तक विहार करके आयु के चौथे भाग अर्थात् ७० वर्ष के पश्चात् सब मोहादि संगों को छोड़ कर संन्यासी होजावे ॥ १ ॥ विधिपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम से सब वेदों को पढ़ गृहाश्रमी होकर धर्म से पुत्रोत्पत्ति कर

वानप्रस्थ में सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ करके मोक्ष में अर्थात् संन्यासाश्रम में मन को लगावे ॥ २ ॥ प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त प्राजापत्येष्टि (कि जिस में यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग किया जाता है) कर आहवनीय गार्हपत्य और दाक्षिणात्य संज्ञक अग्नियों को आत्मा में समारोपित करके ब्राह्मण विद्वान् गृहाश्रम से ही संन्यास लेवे ॥ ३ ॥ जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान सत्योपदेश देकर गृहाश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर लेता है उस ब्रह्मवादी वेदोक्त सत्योपदेशक संन्यासी को मोक्ष लोक और सब लोक लोकान्तर तेजोमय (ज्ञान से प्रकाशमय) हो जाते हैं ॥ ४ ॥ जब सब कामों को जीत लेवे और उन की अपेक्षा न रहै पवित्रात्मा और पवित्रान्तःकरण मननशील हो जावे तभी गृहाश्रम से निकल कर संन्यासाश्रम का ग्रहण करे अथवा ब्रह्मचर्य ही से संन्यास का ग्रहण कर लेवे ॥ ५ ॥ वह संन्यासी (अनग्निः*) आहवनीयादि अग्नियों से रहित और कहीं अपना स्वाभिमत घर भी न बांधे और अन्न वस्त्रादि के लिये ग्राम का आश्रय लेवे बुरे मनुष्यों की उपेक्षा करता और स्थिर बुद्धि मननशील होकर परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरे ॥६॥ न तो अपने जीवन में आनन्द और न अपने मृत्यु में दुःख माने किन्तु जैसे क्षुद्र भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा की बाट देखता रहता है वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे ॥७॥ चलते समय आगे २ देख के पग धरे सदा वस्त्र से छान कर जल पीवे सब से सत्य वाणी बोले अर्थात् सत्योपदेश ही किया करे जो कुछ व्यवहार करे वह सब मन की पवित्रता से आचरण करे ॥८॥ इस संसार में आत्मनिष्ठा में स्थित सर्वथा अपेक्षारहित मांस मद्यादि का त्यागी आत्मा के सहाय से ही सुखार्थी होकर विचरा करे और सब को सत्योपदेश करता रहे ॥९॥ सब शिर के बाल डाढ़ी मूछ और नखों को समय २ छेदन कराता रहे पात्री दण्डी और कुसुंभ के रंगे हुये † वस्त्रों का धारण किया करे सब भूत प्राणीमात्र को पीड़ा न देता

* इसी पद से भ्रान्ति में पड़ के संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि को नहीं छूते यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया यहां आहवनीयादिसंज्ञक अग्नियों को छोड़ना है स्पर्श वा दाहकर्म छोड़ना नहीं है ॥

† अथवा गेरू से रंगे हुए वस्त्रों को पहिने ॥

हुआ दृढ़ात्मा होकर नित्य विचरा करे ॥ १० ॥ जो संन्यासी बुरे कामों से इन्द्रियों के निरोध राग द्वेषादि दोषों के क्षय और निर्वैरता सब प्राणियों का कल्याण करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ यदि संन्यासी को मूर्ख संसारी लोग निन्दा आदि से दूषित वा अपमान भी करें तथापि धर्म ही का आचरण करे ऐसे ही अन्य ब्रह्मचर्याश्रमादि के मनुष्यों को करना उचित है सब प्राणियों में पक्षपात रहित होकर सम बुद्धि रक्खे इत्यादि उत्तम काम करने ही के लिये संन्यासाश्रम का विधि है किन्तु केवल दण्डादि चिन्ह धारण करना ही धर्म का कारण नहीं है ॥१२॥ यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल जलको शुद्ध करने वाला है तथापि उसके नाम ग्रहणमात्र से शुद्ध नहीं होता किन्तु उस को ले पीस जल में डालने ही से उस मनुष्य का जल शुद्ध होता है वैसे नाममात्र आश्रम से कुछ भी नहीं होता किन्तु अपने २ आश्रम के धर्मयुक्त कर्म करने ही से आश्रम धारण सफल होता है अन्यथा नहीं ॥ १३ ॥ इस पवित्र आश्रम को सफल करने के लिये संन्यासी पुरुष विधिवत् योगशास्त्र की रीति से सात व्याहृतियों के पूर्व सात प्रणव लगा के जैसा कि पृ० १७८ में प्राणायाम का मन्त्र लिखा है उस को मन से जपता हुआ तीन भी प्राणायाम करे तो जानो अत्युत्कृष्ट तप करता है ॥ १४ ॥ क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल छूट जाते हैं वैसे ही प्राण के निग्रह से इन्द्रियों के दोष नष्ट होजाते हैं ॥१५॥ इसलिये संन्यासी लोग प्राणायामों से दोषों को धारणाओं से अन्तःकरण के मैल को प्रत्याहार से संग से हुए दोषों और ध्यान से अविद्या पक्षपात आदि अनीश्वरता के दोषों को छुड़ा के पक्षपात रहित आदि ईश्वर के गुणों को धारण कर सब दोषों को भस्म कर देवे ॥१६॥ बड़े छोटे प्राणी और अप्राणियों में जो अशुद्धात्माओं से देखने के योग्य नहीं है उस अन्तर्यामी परमात्मा की गति अर्थात् प्राप्ति को ध्यान योग से ही संन्यासी देखा करे ॥१७॥ जो संन्यासी यथार्थ ज्ञान वा षट्दर्शनों से युक्त है वह दुष्ट कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान विद्या योगाभ्यास सत्सङ्ग धर्मानुष्ठान वा षट्दर्शनों से रहित विज्ञान हीन होकर संन्यास लेता है वह संन्यास पदवी और मोक्ष को प्राप्त न होकर जन्ममरणरूप संसार को प्राप्त होता है और ऐसे मूर्ख अधर्मी को संन्यास का लेना व्यर्थ और धिक्कार देने के योग्य है ॥ १८ ॥

और जो निर्वैर इन्द्रियों के विषयों के बन्धन से पृथक् वैदिक कर्माचरणों और प्राणायाम सत्यभाषणादि उत्तम उग्र कर्मों से सहित संन्यासी लोग होते हैं वे इसी जन्म इसी वर्त्तमान समय में परमेश्वर की प्राप्तिरूप पद को प्राप्त होते हैं उन का संन्यास लेना सफल और धन्यवाद के योग्य है ॥ १९ ॥ जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भाव से निस्पृह होता है तभी इस लोक इस जन्म और मरण पाकर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त हो के निरन्तर * सुख को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ इस विधि से धीरे २ सब संग से हुए दोषों को छोड़ के सब हर्ष शोकादि द्वन्द्वों से विशेष कर निर्मुक्त हो के विद्वान् संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है ॥२१॥ और जो विविदिषा अर्थात् जानने की इच्छा करके गौण संन्यास लेवे वह भी विद्या का अभ्यास सत्पुरुषों का संग योगाभ्यास और ओंकार का जप और उस के अर्थ परमेश्वर का विचार भी किया करे यही अज्ञानियों का शरण अर्थात् गौण संन्यासियों और यही विद्वान् संन्यासियों का यही सुख का खोज करने हारे और यही अनन्त † सुख की इच्छा करने हारे मनुष्यों का आश्रय है ॥ २२ ॥ इस क्रमानुसार संन्यासयोग से जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य संन्यास ग्रहण करता है वह इस संसार और शरीर से सब पापों को छोड़ छुड़ा के परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥२३॥

विधिः—जो पुरुष संन्यास लेना चाहे वह जिस दिन सर्वथा प्रसन्नता हो उसी दिन नियम और व्रत अर्थात् तीन दिन तक दुग्ध पान करके उपवास और भूमि में शयन और प्राणायाम ध्यान तथा एकान्तदेश में ओंकार का जप किया करे और पृष्ठ १६–१८ में लि० सभामंडप, वेदी, समिधा, घृतादि शाकल्य, सामग्री एक दिन पूर्व कर रखनी पश्चात् जिस चौथे दिन संन्यास लेना हो प्रहर रात्रि से उठकर शौच स्नानादि आवश्यक कर्म करके प्राणायाम ध्यान और प्रणव का जप करता रहे सूर्योदय के समय उत्तम गृहस्थ धार्मिक विद्वानों का पृष्ठ २३ में लि० वरण कर पृष्ठ २४–२५ में लि० अग्न्याधान समिदाधान घृतप्रतपन और स्थालीपाक करके पृष्ठ

---

* निरन्तर शब्द का इतना ही अर्थ है कि मुक्ति के नियत समय के मध्य में दुःख आकर विघ्न नहीं कर सकता ॥

† अनन्त इतना ही है कि मुक्ति सुख के समय में अन्त अर्थात् जिसका नाश न होवे ।

८-१६ में लि० स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण का पाठ कर पृष्ठ २५ में लि० वेदी के चारों और जलप्रोक्षण आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार तथा-

ओं भुवनपतये स्वाहा । ओं भूतानां पतये स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

इन में से एक २ मन्त्र से एक २ करके ग्यारह आज्याहुति देके जो विधिपूर्वक भात बनाया हो उसमें घृत सेचन करके यजमान जो कि संन्यास का लेने वाला है और दो ऋत्विज् निम्नलिखित स्वाहान्त मन्त्रों से भात का होम और शेष दो ऋत्विज् भी साथ २ घृताहुति करते जावें ॥

ओं ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञो ब्रह्मणा स्वरवोमिताः । अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः, स्वाहा॥१॥ ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता । ब्रह्म यज्ञश्च सत्रं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ॥२॥ अंहोमुचे प्रभरे मनीषा मा सुत्राम्णे सुमतिमावृणानः । इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा ॥ ३ ॥ अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् । अपां नपातमश्विना हुवे धियेन्द्रेण म इन्द्रियं दत्तमोजः स्वाहा ॥ ४ ॥ यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये, इदन्न मम ॥ ५ ॥ यत्र० । वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे, इदन्न मम ॥ ६ ॥ यत्र० । सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुस्सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥ इदं सूर्याय, इदन्न मम

॥ ७ ॥ यत्र ० । चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो द-धातु मे । चन्द्राय स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय, इदन्न मम ॥८॥ यत्र ० । सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय, इदन्न मम ॥९॥ यत्र०। इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय, इदन्न मम ॥ १० ॥ यत्र ० । आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोपतिष्ठतु । अद्भ्यःस्वाहा॥ इदमद्भ्य, इदन्न मम ॥ ११ ॥ यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह । ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥ इदं ब्रह्मणे, इदन्न मम ॥ १२ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४२ । ४३ ॥

ओं प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥ १ ॥ वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंक-ल्पा मे शुध्यन्ताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भू-यासꣳ स्वाहा ॥ २॥ शिरः पाणिपादपृष्ठोरूदरजंघा-शिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ३ ॥

त्वक्चर्ममाꣳसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शु-ध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ४ ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ५ ॥ पृथिव्यप्तेजोवाय्वा-काशा मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ६ ॥ अन्नमय-

प्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमया मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥ ७ ॥ विविष्ट्यै स्वाहा ॥८॥ कषोत्काय स्वाहा ॥ ९ ॥ उत्तिष्ठ पुरुष हरित लोहित पिङ्गलाक्षि देहि देहि ददापयिता मे शुध्यताम् । ज्योति० ॥१०॥ ओं स्वाहा मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्ताम् । ज्योति० ॥११॥ अव्यक्तभावैरहङ्कारैर्ज्योति० ॥ १२ ॥ आत्मा मे शुध्यताम् । ज्योति० ॥१३॥ अन्तरात्मा मे शुध्यताम् । ज्योति० ॥१४॥ परमात्मा मे शुध्यताम् । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा* ॥१५॥

इन १५ मन्त्रों से एक २ करके भात की आहुति देनी पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से ३५ घृताहुति देवें ॥

ओमग्नये स्वाहा ॥ १६ ॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥ ओं ध्रुवाय भूमाय स्वाहा ॥ १८ ॥ ओं ध्रुवक्षितये स्वाहा ॥ १९ ॥ ओमच्युतक्षितये स्वाहा ॥ २० ॥ ओमग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ २१ ॥ ओं धर्माय स्वाहा ॥ २२ ॥ ओमधर्माय स्वाहा

* (प्राणापान) इत्यादि से ले के (परमात्मा मे शुध्यताम्) इत्यन्त मन्त्रों से संन्यासी के लिये उपदेश है । अर्थात् जो संन्यासाश्रम ग्रहण करे वह धर्माचरण सत्योपदेश योगाभ्यास शम दम शान्ति सुशीलतादि विद्याविज्ञानादि शुभ गुण कर्म स्वभावों से सहित होकर परमात्मा को अपना सहायक मान कर अत्यन्त पुरुषार्थ से शरीर प्राण मन इन्द्रियादि को अशुद्ध व्यवहार से हटा शुद्ध व्यवहार में चला के पक्षपात कपट अधर्म व्यवहारों को छोड़ अन्य के दोष छुड़ाने और उपदेश से छुड़ा कर स्वयं आनन्दित होके सब मनुष्यों को आनन्द पहुंचाता रहे ॥

॥ २३ ॥ ओमद्भ्यः स्वाहा ॥ २४ ॥ ओमोषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा ॥ २५ ॥ ओं रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा ॥ २६ ॥ ओं गृह्याभ्यः स्वाहा ॥ २७ ॥ ओमवसानेभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ ओमवसानपतिभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ ओं सर्वभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ ओं कामाय स्वाहा ॥ ३१ ॥ ओमन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३२ ॥ ओं पृथिव्यै स्वाहा ॥३३॥ ओं दिवे स्वाहा ॥ ३४ ॥ ओं सूर्याय स्वाहा ॥ ३५ ॥ ओं चन्द्रमसे स्वाहा ॥ ३६ ॥ ओं नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥ ३७ ॥ ओमिन्द्राय स्वाहा ॥ ३८ ॥ ओं बृहस्पतये स्वाहा ॥ ३९ ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ४० ॥ ओं ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ४१ ॥ ओं देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥ ओं परमेष्ठिने स्वाहा ॥ ४३ ॥ ओं तद् ब्रह्म ॥ ४४ ॥ ओं तद्वायुः ॥ ४५ ॥ ओं तदात्मा ॥ ४६ ॥ ओं तत्सत्यम् ॥ ४७ ॥ ओं तत्सर्वम् ॥ ४८ ॥ ओं तत्पुरोर्नमः ॥ ४९ ॥ अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वꣳ रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्म । त्वं प्रजापतिः । त्वं तदाप आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरों स्वाहा✻ ॥५०॥

✻ ये सब प्राणापानव्यान० आदि मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक दशम प्रपाठक । अनुवाक ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६६ ६७ । ६८ के हैं ॥

इन ५० मन्त्रों से आज्याहुति दे के तदनन्तर संन्यास लेने वाला है वह पांच वा छः केशों को छोड़ कर पृष्ठ (७५—७६) में लिखे डाढ़ी मूछ केश लोमों का छेदन अर्थात् क्षौर करा के यथावत् स्नान करे तदनन्तर संन्यास लेने वाला पुरुष अपने शिर पर पुरुषसूक्त के मन्त्रों से १०८ एक सौ आठ वार अभिषेक करे पुनः पृष्ठ २३ में लि० आचमन और प्राणायाम कर के हाथ जोड़ वेदी के सामने नेत्रोन्मीलन कर मन से—

ओं ब्रह्मणे नमः । ओमिन्द्राय नमः । ओं सूर्याय नमः । ओं सोमाय नमः । ओमात्मने नमः । ओमन्तरात्मने नमः ।

इन छः मन्त्रों को जप के:—

ओमात्मने स्वाहा । ओमन्तरात्मने स्वाहा । ओं परमात्मने स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

इन ४ चार मन्त्रों से ४ चार आज्याहुति देकर कार्यकर्ता संन्यास ग्रहण करने वाला पुरुष पृ० १३२ में लि० मधुपर्क की क्रिया करे तदनन्तर प्राणायाम करके:—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् । ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि । ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

इन मन्त्रों को मन से जपे ॥

ओमग्नये स्वाहा । ओं भूः प्रजापतये स्वाहा । ओमिन्द्राय स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा । ओं

विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ओं ब्रह्मणे स्वाहा । ओं प्राणाय स्वाहा । ओमपानाय स्वाहा । ओं व्यानाय स्वाहा । ओमुदानाय स्वाहा । ओं समानाय स्वाहा ॥

इन मन्त्रों से वेदी में आज्याहुति देके:

ओं भूः स्वाहा ॥

इस मन्त्र से पूर्णाहुति कर के:—

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्चो-त्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति * । श० कां० १४ ॥

पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया परित्यक्ता मत्तः सर्वभूतेभ्योऽभयमस्तु स्वाहा ॥

इस वाक्य को बोल के सब के सामने जल को भूमि में छोड़ देवे । पीछे नाभी मात्र जल में पूर्वाभिमुख खड़ा रह कर—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् ।
ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि ।
ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् ।
ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि परो रजसे सावदोम् ॥

---

* पुत्रादि के मोह, वित्तादि पदार्थों के मोह और लोकस्थ प्रतिष्ठा की इच्छा से मन को हटा कर परमात्मा में आत्मा को दृढ़ करके जो भिक्षाचरण करते हैं वे ही सब को सत्योपदेश से अभयदान देते हैं अर्थात् दहने हाथ में जल ले के मैंने आज से पुत्रादि का तथा वित्त का मोह और लोक में प्रतिष्ठा की इच्छा करने का त्याग कर दिया और मुझ से सब भूत प्राणिमात्र को अभय प्राप्त होवे यह मेरी सत्य वाणी है ॥

इस का मन से जप कर के प्रणवार्थ परमात्मा का ध्यान करके पूर्वोक्त (पुत्रैषणायाश्च०) इस समग्र कण्डिका को बोल के मध्य मन्त्रोच्चारण करे ॥

ओं भूः संन्यस्तं मया । ओं भुवः संन्यस्तं मया । ओं स्वः संन्यस्तं मया ॥

इस मन्त्र का मन से उच्चारण करे तत्पश्चात् जल से अञ्जली भर पूर्वाभिमुख होकर सन्यास लेने वाला ॥

ओं अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ॥

इस मन्त्र से दोनों हाथ की अञ्जली को पूर्वदिशा में छोड़ देवे ॥

येना॑ स॒ह॒स्रं॒ वह॑सि॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम् । तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ वह॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ※ ॥ १ ॥ अथर्व० कां० ९ । सू० ५ । मं० १७ ॥

और इसी पर स्मृति है ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥१॥

इस श्लोक का अर्थ पहिले लिख दिया है ॥

इस के पश्चात् मौन करके शिखा के लिये जो पांच वा सात केश रक्खे थे उन को एक २ उखाड़ और यज्ञोपवीत उतार कर हाथ में ले जल की अञ्जलि भरः—

※ हे (अग्ने) विद्वन् (येन) जिस से (सहस्रम्) सब संसार को अग्नि धारण करता है और (येन) जिस से तू (सर्ववेदसम्) गृहाश्रमस्थ पदार्थमोह यज्ञोपवीत और शिखा आदि को (वहसि) धारण करता है उन को छोड़ (तेन) उस त्याग से (नः) हम को (इमम्) यह संन्यासरूप (स्वाहा) सुख देनेहारे (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों में (गन्तवे) जाने को (वह) प्राप्त हो ॥

ओमापो वै सर्वा देवताः स्वाहा ॥ ओं भूः स्वाहा ॥

इन मन्त्रों से शिखा के बाल और यज्ञोपवीत सहित जलाञ्जली को जल में होम कर देवे उस के पश्चात् आचार्य शिष्य को जल से निकाल के काषाय वस्त्र की कोपीन कटिवस्त्र उपवस्त्र अङ्गोछा प्रीतिपूर्वक देवे और पृ० ९२ में लि० (यो मे दण्डः) इस मन्त्र से दण्ड धारण करके आत्मा में आहवनीयादि अग्नियों का आरोपण करे ॥

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्यं संभारा ऋचो यस्यांनूक्यम् (१) ॥ १ ॥ सामांनि यस्य लोमांनि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरंणमिद्धविः (२) ॥ २ ॥ यद्वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रति पश्यंति देवयजनं प्रेक्षते (३) ॥३॥ यदंभिवदंति दीक्षामुपैति

(१)-(यः) जो पुरुष (प्रत्यक्षम्) साक्षात्कारता से (ब्रह्म) परमात्मा को (विद्यात्) जाने (यस्य) जिस के (परूंषि) कठोर स्वभाव आदि (संभाराः) होम करने के शाकल्य और (यस्य) जिस के (ऋचः) यथार्थ सत्यभाषण सत्योपदेश और ऋग्वेद हों (अनूक्यम्) अनुकूलता से कहने के योग्य वचन है वही संन्यास ग्रहण करे ॥ १ ॥

(२)-(यस्य) जिस के (सामानि) सामवेद (लोमानि) लोम के समान (यजुः) यजुर्वेद जिस के (हृदयम्) हृदय के समान (उच्यते) कहा जाता है (परिस्तरणम्) जो सब ओर से शास्त्र आसन आदि सामग्री (हविरित्) होम करने योग्य के समान है वह संन्यास ग्रहण करने में योग्य होता है ॥ २ ॥

(३)-(वा) वा (यत्) जो (अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करने हारा (अतिथीन्) अतिथियों के प्रति (प्रतिपश्यति) देखता है वही विद्वान् संन्यासियों में (देवयजनम्) विद्वानों के यजन करने के समान (प्रेक्षते) ज्ञानदृष्टि से देखता और संन्यास लेने का अधिकारी होता है ॥ ३ ॥

यदुदकं याचत्यपः प्रणयति (४) ॥ ४ ॥ या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः (५) ॥ ५ ॥ यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति (६) ॥ ६ ॥ यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् (७) ॥ ७ ॥ तेषामासन्नानामतिथिरात्मं जुहोति (८) ॥ ८ ॥ स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण

(४)–और (यत्) जो संन्यासी (अभिवदति) दूसरे के साथ संवाद वा दूसरे को अभिवादन करता है वह जानो (दीक्षाम्) दीक्षा को (उपैति) प्राप्त होता है (यत्) जो (उदकम्) जल की (याचति) याचना करता है वह जानो (अपः) प्रणीता आदि में जल को (प्रणयति) डालता है ॥ ४ ॥

(५)–(यज्ञे) यज्ञ में (याः एव) जिन्हीं (आपः) जलों का (प्रणीयन्ते) प्रयोग किया जाता है (ताः एव) वे ही (ताः) पात्र में रक्खे जल संन्यासी की यज्ञस्थ जल क्रिया है ॥ ५ ॥

(६)–संन्यासी (यत्) जो (आवसथान्) निवास का स्थान (कल्पयन्ति) कल्पना करते हैं वे (सदः) यज्ञशाला (हविर्धानान्येव) हविष् के स्थापन करने के ही पात्र (तत्) वे (कल्पयन्ति) समर्थित करते हैं ॥ ६ ॥

(७)–और (यत्) जो संन्यासी लोग (उपस्तृणन्ति) बिछौने आदि करते हैं (बर्हिरेव, तत्) वह कुशपिंजूली के समान है ॥ ७ ॥

(८)–और जो (तेषाम्) उन (आसन्नानाम्) समीप बैठने हारों के निकट बैठा हुआ (अतिथिः) जिस की कोई नियत तिथी न हो वह भोजनादि करता है वह (आत्मने) जानो वेदस्थ अग्नि में होम करने के समान आत्मा में (जुहोति) आहुतियां देता है ॥ ८ ॥

वषट्कारेण (१) ॥ ९ ॥ एते वै प्रियाश्चाप्रिया-श्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः (२) ॥ १० ॥ प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति (३) ॥ ११ ॥ प्रजापतेर्वा एष विक्रमा-ननुविक्रमते यउपहरति (४) ॥ १२ ॥ योऽतिथी-नां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः (५) ॥ १३ ॥ इष्टं च वा

(१)—और जो संन्यासी (हस्तेन) हाथ से खाता है वह जानो (स्रुचा) चमसा आदि से वेदी में आहुति देता है जैसे (यूपे) स्तम्भ में अनेक प्रकार के पशु आदि को बांधते हैं वैसे वह संन्यासी (स्रुकारेण) स्रुचा के समान (वषट्कारेण) होम क्रिया के तुल्य (प्राणे) प्राण में मन और इन्द्रियों को बांधता है ॥ ९ ॥

(२)—(एते, वै) ये ही (ऋत्विजः) समय २ में प्राप्त होने वाले (प्रियाः च, अप्रियाः, च) प्रिय और अप्रिय भी संन्यासी जन (यत) जिस कारण (अतिथयः) अतिथिरूप हैं इस से गृहस्थ को (स्वर्गं, लोकम्) दर्शनीय अत्यन्त सुख को (गमयन्ति) प्राप्त कराते हैं ॥ १० ॥

(३)-(एतस्य) इस संन्यासी का (प्राजापत्य) प्रजापति परमात्मा को जानने का आश्रम धर्मानुष्ठानरूप (यज्ञः) अच्छे प्रकार करने योग्य यतिधर्म (वितत) व्यापक है अर्थात् (यः) जो इस को सर्वोपरि (उपहरति) स्वीकार करता है (वै) वही संन्यासी होता है ॥ ११ ॥

(४)—(यः) जो (एषः) यह संन्यासी (प्रजापतेः) परमेश्वर के जानने रूप सन्यासाश्रम के (विक्रमान्) सत्याचारों की (अनुविक्रमते) अनुकूलता से क्रिया करता है (वै) वही सब शुभगुणों का (उपहरति) स्वीकार करता है ॥ १२ ॥

(५)—(यः) जो (अतिथीनाम्) अतिथि अर्थात् उत्तम संन्यासियों का सङ्ग है (सः) वह संन्यासी के लिये (आहवनीयः) आहवनीय अग्नि अर्थात् जिस में

एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति (६) ॥ १४ ॥ अथर्व० कां० ६ । सू० ६ ॥

तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हिर्वेदः शिखा हृदयं यूपः काम आज्यं मन्युः पशुस्तपोऽग्निर्दमः शमयिता दक्षिणा वाग्घोता * प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्यु-

ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी होम करता है और (यः) जो संन्यासी का (वेश्मनि) घर में अर्थात् स्थान में निवास है (सः) वह उसके लिये (गार्हपत्यः) गृहस्थ सम्बन्धी अग्नि है और संन्यासी (यस्मिन्) जिस जाठराग्नि में अन्नादि को (पचन्ति) पकाते हैं (सः) वह (दक्षिणाग्निः) वानप्रस्थ सम्बन्धी अग्नि है इस प्रकार आत्मा में सब अग्नियों का आरोपण करे ॥ १३ ॥

(६)—(यः) जो गृहस्थ (अतिथेः) संन्यासी से (पूर्वः) प्रथम (अश्नाति) भोजन करता है (एषः) यह जानो (गृहाणाम्) गृहस्थों के (इष्टम्) इष्ट सुख (च) और उस की सामग्री (पूर्तम्) तथा जो ऐश्वर्यादि की पूर्णता (च) और उस के साधनों का (वै) निश्चय करके (अश्नाति) भक्षण अर्थात् नाश करता है इसलिये जिस गृहस्थ के समीप अतिथि उपस्थित होवे उसको पूर्व जिमा कर पश्चात् भोजन करना अत्युचित है ॥ १४ ॥

* इसके आगे तैत्तिरीय आरण्यक का अर्थ करते हैं—(एवम्) इस प्रकार संन्यास ग्रहण किये हुये (तस्य) उस (विदुष) विद्वान् संन्यासी के संन्यासाश्रम रूप (यज्ञस्य) अच्छे प्रकार अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ का (यजमानः) पति (आत्मा) स्वस्वरूप है और जो ईश्वर वेद और सत्य धर्माचरण परोपकार में (श्रद्धा) सत्य का धारण रूप दृढ़ प्रीति है वह उस की (पत्नी) स्त्री है और जो संन्यासी का (शरीरम्) शरीर है वह (इध्मम्) यज्ञ के लिये इन्धन है और जो उसका (उरः) वक्षःस्थल है वह (वेदिः) कुण्ड और जो उस के शरीर पर (लोमानि) रोम हैं वे (बर्हिः) कुशा हैं और जो (वेदः) वेद और उन का शब्दार्थ सम्बन्ध जान कर आचरण करना है

मनो ब्रह्मा श्रोत्रमग्नीत् । यावद् ध्रियते सा दीक्षा यदश्नाति तद्धविर्यत्पिबति तदस्य सोमपानम् । यद्रमते तदुपसदो यत्सञ्चरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च स प्रवर्ग्यो यन्मुखं तदाहवनीयो या व्याहृति राहुतिर्यदस्य

वह संन्यासी की (शिखा) चोटी है और जो संन्यासी का (हृदयम्) हृदय है वह (यूपः) यज्ञ का स्तम्भ है और जो इस के शरीर में (कामः) काम है वह (आज्यम्) ज्ञान अग्नि में होम करने का पदार्थ है और जो (मन्युः) संन्यासी में क्रोध है वह (पशुः) निवृत्त करने अर्थात् शरीर के मलवत् छोड़ने के योग्य है और जो संन्यासी (तपः) सत्यधर्मानुष्ठान प्राणायामादि योगाभ्यास करता है वह (अग्निः) जानों वेदों का अग्नि है जो संन्यासी (दमः) अधर्माचरण से इन्द्रियों को रोक के धर्माचरण में स्थिर रख के चलाता है वह (शमयिता) जानो दुष्टों को दण्ड देने वाला सभ्य है और जो संन्यासी की (वाक्) सत्योपदेश करने के लिये वाणी है वह जानो सब मनुष्यों को (दक्षिणा) अभय दान देना है जो संन्यासी के शरीर में (प्राणः) प्राण है वह (होता) होता के समान जो (चक्षुः) चक्षु है वह (उद्गाता) उद्गाता के तुल्य जो (मनः) मन है वह (अध्वर्युः) अध्वर्यु के समान जो (श्रोत्रम्) श्रोत्र है वह (ब्रह्मा) ब्रह्मा और (अग्नीत्) अग्नि लाने वाले के तुल्य (यावत्, ध्रियते) जितना कुछ संन्यासी धारण करता है (सा) वह (दीक्षा) दीक्षा ग्रहण और (यत्) जो संन्यासी (अश्नाति) खाता है (तद्धविः) वह घृतादि शाकल्य के समान (यत्, पिबति) और जो वह जल दुग्धादि पीता है (तदस्य, सोमपानम्) वह इस का सोमपान है और (यद्रमते) वह जो इधर उधर भ्रमण करता है (तदुपसदः) वह उपसद उपसामग्री (यत्संचरत्युपविशत्युत्तिष्ठते) जो वह गमन करता बैठता और उठता है (स, प्रवर्ग्यः) वह इस का प्रवर्ग्य है (यन्मुखम्) जो इस का मुख है (तदाहवनीयः) वह संन्यासी को आहवनीय अग्नि के समान (या व्याहृतिराहुतिर्यदस्य विज्ञानम्) जो संन्यासी का व्याहृति का उच्चारण करना वा जो इस का विज्ञान आहुतिरूप है (तज्जुहोति) वह जानो होम कर रहा है (यत्सायं प्रातरत्ति) संन्यासी जो सायं और प्रातःकाल भोजन करता है (तत्समिधम्) वे समिधा हैं

विज्ञानं तज्जुहोति यत्सायं प्रातरत्ति तत्समिधं यत्प्रातर्मध्यन्दिनꣳ सायं च तानि सवनानि। ये अहोरात्रे ते दर्शपौर्णमासौ येऽर्द्धमासाश्च मासाश्च ते चातुर्मास्यानि य ऋतवस्ते पशुबन्धा ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च तेऽहर्गणाः सर्ववेदसं वा एतत्सत्रं यन्मरणं तदवभृथः। एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रꣳ सत्रं य

(यत्प्रातर्मध्यन्दिनꣳ सायं च) जो संन्यासी प्रातः मध्यान्ह और सायंकाल में कर्म करता है (तानि सवनानि) ये तीन सवन (ये, अहोरात्रे) जो दिन और रात्रि हैं (ते दर्शपौर्णमासौ) वे संन्यासी के पौर्णमासेष्टि और अमावास्येष्टि हैं (येऽर्धमासाश्च, मासाश्च) जो कृष्ण शुक्ल पक्ष और महीने हैं (ते चातुर्मास्यानि) वे संन्यासी के चातुर्मास्य याग है (य ऋतवः) जो वसन्तादि ऋतु हैं (ते पशुबन्धः) वे जानो संन्यासी के पशुबन्ध अर्थात् ६ पशुओं का बांधना रखना है (ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च) जो संवत्सर और परिवत्सर अर्थात् वर्ष वर्षान्तर हैं (तेऽहर्गणा.) वे संन्यासी के अहर्गण दो रात्रि वा तीन रात्रि आदि के व्रत हैं जो (सर्ववेदसं वै) सर्वस्व दक्षिणा अर्थात् शिखा सूत्र यज्ञोपवीत आदि पूर्वाश्रम चिन्हों का त्याग करना है (एतत्सत्रम्) यह सब से बड़ा यज्ञ है (यन्मरणम्) जो संन्यासी का मृत्यु है (तदवभृथः) वह यज्ञान्तस्नान है (एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रꣳ सत्रम्) यही जरावस्था और मृत्यु पर्यन्त अर्थात् यावत् जीवन है तावत्सत्योपदेश योगाभ्यासादि संन्यास के धर्म का अनुष्ठान अग्निहोत्ररूप बड़ा दीर्घ यज्ञ है (य एवं विद्वानुदगयने०) जो इस प्रकार विद्वान् संन्यास लेकर विज्ञान योगाभ्यास करके शरीर छोड़ता है वह विद्वानों ही के महिमा को प्राप्त हो कर स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा के संग को प्राप्त होता है और जो योग विज्ञान से रहित है सो सांसारिक दक्षिणायनरूप व्यवहार में मृत्यु को प्राप्त होता है वह पुनः २ माता पिताओं ही के महिमा को प्राप्त हो कर चन्द्रलोक के समान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है और जो इन दोनों के महिमाओं को विद्वान् ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी जीत लेता है वह उस से परे परमात्मा के महिमा को प्राप्त होकर मुक्ति के समयपर्यन्त मोक्ष सुख को भोगता है ॥

एवं विद्वानुदगयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं गत्वा-दित्यस्य सायुज्यं गच्छत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितृणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः सायुज्यं सलोकतामाप्नोत्येतौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वानभिजयति) तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत् । तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० ६४ ॥

अथ संन्यासे पुनः प्रमाणानि ॥

न्यास*इत्याहुर्मनीषिणो ब्रह्माणम् । ब्रह्मा विश्वः

* (न्यास इत्याहुर्मनीषिणः) इस अनुवाक का अर्थ सुगम है इसलिये भावार्थ कहते हैं—न्यास अर्थात् जो संन्यास शब्द का अर्थ पूर्व कह आये उस रीति से जो संन्यासी होता है वह परमात्मा का उपासक है वह परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्याप्त और पूर्ण है कि जिस के प्रताप से सूर्य तपता है उस तपने से वर्षा, वर्षा से ओषधी, वनस्पति की उत्पत्ति, उन से अन्न, अन्न से प्राण, प्राण से बल, बल से तप अर्थात् प्राणायाम योगाभ्यास उस से श्रद्धा सत्यधारण में प्रीति उस से बुद्धि, बुद्धि से विचारशक्ति, उससे ज्ञान, ज्ञान से शान्ति, शान्ति से चेतनता, चित्त से स्मृति, स्मृति से पूर्वापर का ज्ञान, उस से विज्ञान और विज्ञान से आत्मा को संन्यासी जानता और जनाता है इसलिये अन्नदान श्रेष्ठ जिस से प्राण बल विज्ञानादि होते हैं जो प्राणों का आत्मा जिस से यह सब जगत् ओतप्रोत व्याप्त हो रहा है वह सब जगत् का कर्त्ता वही पूर्व कल्प और उत्तर कल्प में भी जगत् को बनाता है उस के जानने की इच्छा से उस को जान कर हे सन्यासिन् ! तू पुनः २ मृत्यु को प्राप्त मत हो किन्तु मुक्ति के पूर्ण सुख को प्राप्त हो इसलिये सब तपों का तप सब से पृथक् उत्तम संन्यास को कहते हैं । हे परमेश्वर ! जो तू सब में वास करता हुआ विभु है तू प्राण का प्राण सब का सन्धान करने हारा विश्व का स्रष्टा धर्त्ता सूर्यादि को तेज दाता है तू ही अग्नि से तेजस्वी तू

कतमः स्वयम्भूः प्रजापतिः संवत्सर इति । संवत्सरोऽसावादित्यो यऽएष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा ।(याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति पर्जन्येनौषधिवनस्पतयः प्रजायन्त ओषधिवनस्पतिभिरन्नं भवत्यन्नेन प्राणाः प्राणैर्बलं बलेन तपस्तपसा श्रद्धा श्रद्धया मेधा मेधया मनीषा मनीषया मनो मनसा शान्तिः शान्त्या चित्तं चित्तेन स्मृतिᳬ स्मृत्या स्मारᳬ स्मारेण विज्ञानं विज्ञानेनात्मानं वेदयति तस्मादन्नं ददन्त्सर्वाण्येतानि ददात्यन्नात् प्राणा भवन्ति भूतानाम् । प्राणैर्मनो मनसश्च विज्ञानं विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः । स वा एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवी चान्तरिक्षं च द्यौश्च दिशश्चावान्तरदिशाश्च स वै सर्वमिदं जगत् स भूतᳬ स भव्यं जिज्ञासक्लृप्त ऋतजा रयिष्ठाः श्रद्धा सत्यो महस्वांस्तमसो वरिष्ठात् । ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च भूयो न मृत्युमुपयाहि विद्वान् । तस्मान् न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः । वसुरण्वो विभूरसि प्राणे त्वमसि संधाता ब्रह्मंस्त्वमसि विश्वसृत्तेजोदास्त्वमस्यग्नेरसि

ही विद्यादाता तू ही सूर्य का कर्त्ता तू ही चन्द्रमा के प्रकाश का प्रकाशक है, वह सब से बड़ा पूजनीय देव है (ओम्) इस मन्त्र का मन से उच्चारण कर के परमात्मा में आत्मा को युक्त करे जो इस विद्वानों के प्राप्य महोत्तम विद्या को उक्त प्रकार से जानता है वह संन्यासी परमात्मा के महिमा को प्राप्त हो कर आनन्द में रहता है ॥

वर्चोदास्त्वमसि सूर्यस्य द्युम्नोदास्त्वमसि चन्द्रमस उपयामगृहीतोसि ब्रह्मणे त्वा महसे। ओमित्यात्मानं युञ्जीत। एतद्वै महोपनिषदं देवानां गुह्यम्। य एवं वेद ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद्ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत्। तैत्ति० प्रपा० १०। अनु० ६३॥

संन्यासी का कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १ ॥ यजु० अ० ३६। मं० १८॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ २ ॥ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ ३ ॥ यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाऽभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ४ ॥ यजु० अ० ४०। मं० १६। ६। ७॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥ ५ ॥ य०। अ० ३२। मं० ११॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ९ ॥ ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० ३९ ॥

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् । न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥ १७ ॥ कठवल्ली ॥

अर्थः—हे (दृते) सर्व दुःख विदारक परमात्मन् ! तू (मा) मुझको संन्यासमार्ग में (दृंह) बढ़ा । हे सर्व मित्र ! तू (मित्रस्य) सर्व सुहृद् आप्त पुरुष की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझ को सब का मित्र बना जिस से (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणिमात्र मुझ को मित्र की दृष्टि से (समीक्षन्ताम्) देखें और (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि, भूतानि) सब जीवों को (समीक्षे) देखूं इस प्रकार आप की कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग एक दूसरे को (मित्रस्य, चक्षुषा) सुहृद्भाव की दृष्टि से (समीक्षामहे) देखते रहें ॥ १ ॥ हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप सब दुःखों के दाहक (देव) सब सुखों के दाता परमेश्वर (विद्वान्) आप (राये) योग विज्ञानरूप धन की प्राप्ति के लिये (सुपथा) वेदोक्त धर्ममार्ग से (अस्मान्) हम को (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्मों को (नय) कृपा से प्राप्त कीजिये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल पक्षपात सहित (एनः) अपराध पाप कर्म को (युयोधि) दूर रखिये और इस अधर्माचरण से हम को सदा दूर रखिये इसी लिये (ते) आप ही की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार (नम उक्तिम्) नमस्कार पूर्वक प्रशंसा को नित्य (विधेम) किया करें ॥ २ ॥ (यः) जो संन्यासी (तु) पुनः (आत्मन्नेव) आत्मा अर्थात् परमेश्वर ही में तथा अपने आत्मा के तुल्य (सर्वाणि, भूतानि) सम्पूर्ण जीव और जगत्स्थ पदार्थों को (अनुपश्यति) अनुकूलता से देखता है (च) और (सर्वभूतेषु) संपूर्ण प्राणी अप्राणियों में (आत्मानम्) परमात्मा को देखता है (ततः) इस कारण वह

किसी व्यवहार में (न, विचिकित्सति) संशय को प्राप्त नहीं होता अर्थात् परमेश्वर को सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी सर्वसाक्षी जान के अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणिमात्र को हानि लाभ सुख दुःखादि व्यवस्था में देखे वही उत्तम संन्यासधर्म को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ (विजानतः) विज्ञानयुक्त संन्यासी का (यस्मिन्) जिस पक्षपात रहित धर्मयुक्त संन्यास में (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणीमात्र (आत्मैव) आत्मा ही के तुल्य जानना अर्थात् जैसा अपना आत्मा अपने को प्रिय है उसी प्रकार का निश्चय (अभूत्) होता है (तत्र) उस संन्यासाश्रम में (एकत्वमनुपश्यतः) आत्मा के एक भाव को देखने वाले संन्यासी को (को, मोहः) कौनसा मोह और (कः शोकः) कौनसा शोक होता है अर्थात् न उसको किसी से कभी मोह और न शोक होता है इसलिये संन्यासी मोहशोकादि दोषों से रहित होकर सदा सब का उपकार करता रहे ॥ ४ ॥ इस प्रकार परमात्मा की स्तुति प्रार्थना और धर्म में दृढ़ निष्ठा करके जो (भूतानि) सम्पूर्ण पृथिव्यादि भूतों में (परीत्य) व्याप्त (लोकान्) सम्पूर्ण लोकों में (परीत्य) पूर्ण हो और (सर्वाः) सब (प्रदिशो, दिशश्च) दिशा और उप दिशाओं में (परीत्य) व्यापक होके स्थित है (ऋतस्य) सत्यकारण के योग से(प्रथमजाम्) सब महत्तत्त्वादि सृष्टि को धारण कर के पालन कर रहा है उस (आत्मानम्) परमात्मा को संन्यासी (आत्मना) स्वात्मा से (उपस्थाय) समीप स्थित होकर उस में (अभिसंविवेश) प्रतिदिन समाधियोग से प्रवेश किया करे ॥ ५ ॥ हे संन्यासी लोगो !(यस्मिन्) जिस (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) आकाशवत् व्यापक (अक्षरे) नाशरहित परमात्मा में (ऋचः) ऋग्वेदादि वेद और (विश्वे) सब (देवाः) पृथिव्यादि लोक और समस्त विद्वान् (अधिनिषेदुः) स्थित हुये और होते हैं (यः) जो जन (तत्) उस व्यापक परमात्मा को (न, वेद) नहीं जानता वह (ऋचा) वेदादि शास्त्र पढ़ने से (किं, करिष्यति) क्या सुख वा लाभ कर लेगा अर्थात् विद्या के विना परमेश्वर का ज्ञान कभी नहीं होता और विद्या पढ़ के भी जो परमेश्वर को नहीं जानता और न उस की आज्ञा में चलता है वह मनुष्य शरीरधारण करके निष्फल चला जाता है और (ये) जो विद्वान् लोग (तत्) उस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते, इमे, इत्) वे ये ही उस परमात्मा में (समासते) अच्छे प्रकार समाधियोग से स्थिर होते हैं ॥ ६ ॥ (समाधिनिधू -

तमलस्य) समाधियोग से निर्मल (चेतसः) चित्त के सम्बन्ध से (आत्मनि) परमात्मा में (निवेशितस्य) निश्चल प्रवेश कराये हुए जीव को (यत्) जो (सुखम्) सुख (भवेत्) होवे वह (गिरा) वाणी से (वर्णयितुम्, न, शक्यते) कहा नहीं जा सकता क्योंकि (तदा) तब वह समाधि में स्वयं स्थित जीवात्मा (तत्) उस ब्रह्म को (अन्तःकरणेन) शुद्ध अन्तःकरण से (गृह्यते) ग्रहण करता है वह वर्णन करने में पूर्णरीति से कभी नहीं आसकता इसलिये संन्यासी लोग परमात्मा में स्थित रहें और उस की आज्ञा अर्थात् पक्षपात रहित न्याय धर्म में स्थित होकर सत्योपदेश सत्यविद्या के प्रचार से सब मनुष्यों को सुख पहुंचाता रहे ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १ ॥
यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥२॥

अर्थः—संन्यासी जगत् के सन्मान से विष के तुल्य डरता रहे और अमृत के समान अपमान की चाहना करता रहे क्योंकि जो अपमान से डरता और मान की इच्छा करता है वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित होजाता है इसलिये चाहे निन्दा, चाहे प्रशंसा, चाहे मान, चाहे अपमान, चाहे जीना, चाहे मृत्यु, चाहे हानि, चाहे लाभ हो, चाहे कोई प्रीति करे, चाहे वैर बांधे, चाहे अन्न पान वस्त्र उत्तम स्थान न मिले वा मिले, चाहे शीत उष्ण कितना ही क्यों न हो इत्यादि सब का सहन करे और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता रहे इस से परे उत्तम धर्म दूसरे किसी को न माने परमेश्वर से भिन्न किसी की उपासना न करे न वेद विरुद्ध कुछ माने परमेश्वर के स्थान में सूक्ष्म वा स्थूल तथा जड़ और जीव को भी कभी न माने आप सदा परमेश्वर को अपना स्वामी माने और आप सेवक बना रहे वैसा ही उपदेश अन्य को भी किया करे जिस २ कर्म से गृहस्थों की उन्नति हो वा माता, पिता, पुत्र, स्त्री, पति, बन्धु, बहिन, मित्र, पड़ोसी, नौकर, बड़े और छोटों में विरोध छूट कर प्रेम बढ़े उस २ का उपदेश करे जो वेद से विरुद्ध मतमतान्तर

के ग्रन्थ बायबिल, कुरान, पुरान मिथ्याभिलाप तथा काव्यालङ्कार कि जिनके पढ़ने सुनने से मनुष्य विषयी और पतित हो जाते हैं उन सब का निषेध करता रहे विद्वानों और परमेश्वर से भिन्न न किसी को देव, तथा विद्या, योगाभ्यास, सत्सङ्ग और सत्यभाषणादि से भिन्न न किसी को तीर्थ और विद्वानों की मूर्त्तियों से भिन्न पाषाणादि मूर्त्तियों को न माने, न मनवावे वैसे ही गृहस्थों को माता, पिता, आचार्य, अतिथि, स्त्री के लिये विवाहित पुरुष और पुरुष के लिये विवाहित स्त्री की मूर्त्ति से भिन्न किसी की मूर्त्ति को पूज्य न समझावे किन्तु वैदिकमत की उन्नति और वेद विरुद्ध पाखण्डमतों के खण्डन करने में सदा तत्पर रहे वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और तद्विरुद्ध ग्रन्थों वा मतों में अश्रद्धा किया कराया करे आप शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त होकर सब को इसी प्रकार के करने में प्रयत्न किया करे और जो पूर्वोक्त उपदेश लिखे हैं उन २ अपने संन्यासाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों को किया करे खण्डनीय कर्मों का खण्डन करना कभी न छोड़े आसुर अर्थात् अपने को ईश्वर ब्रह्म मानने वालों का भी यथावत् खण्डन करता रहे, परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव और न्याय आदि गुणों का प्रकाश करता रहे इस प्रकार कर्म करता हुआ स्वयं आनन्द में रह कर सब को आनन्द में रक्खे, सर्वदा (अहिंसा) निर्वैरता (सत्यम्) सत्य बोलना सत्य मानना सत्य करना (अस्तेयम्) मन कर्म वचन से अन्याय कर के पर पदार्थ का ग्रहण न करना चाहिये न किसी को करनेका उपदेश करे (ब्रह्मचर्यम्) सदा जितेन्द्रिय होकर अष्टविध मैथुन का त्याग रख के वीर्य की रक्षा और उन्नति कर के चिरञ्जीवी होकर सब का उपकार करता रहे (अपरिग्रहः) अभिमानादि दोष रहित किसी संसार के धनादि पदार्थों में मोहित होकर कभी न फंसे इन ५ पांच यमों का सेवन सदा किया करे और इन के साथ ५ पांच नियम अर्थात् (शौच) बाहर भीतर से पवित्र रहना (सन्तोष) पुरुषार्थ करते जाना और हानि लाभ में प्रसन्न और अप्रसन्न न होना (तपः) सदा पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म का सेवन प्राणायामादि योगाभ्यास करना (स्वाध्याय) सदा प्रणव का जप अर्थात् मन में चिन्तन और उस के अर्थ ईश्वर का विचार करते रहना (ईश्वरप्रणिधान) अर्थात् अपने आत्मा को वेदोक्त परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित कर के परमानन्द परमेश्वर

के सुख को जीता हुआ भोग कर शरीर छोड़ के सर्वानन्द युक्त मोक्ष को प्राप्त होना संन्यासियों के मुख्य कर्म हैं। हे जगदीश्वर सर्वशक्तिमन् सर्वान्तर्यामिन् दयालो न्यायकारिन् सच्चिदानन्दानन्त नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव अजर अमर पवित्र परमात्मन् आप अपनी कृपा से संन्यासियों को पूर्वोक्त कर्मों में प्रवृत्त रख के परम मुक्ति सुख को प्राप्त कराते रहिये ॥

इति संन्याससंस्कारविधिः समाप्तः ॥

(२७)

अथान्त्येष्टिकर्मविधिं वक्ष्यामः ॥

अन्त्येष्टि कर्म उस को कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है जिस के आगे उस शरीर के लिये कोई भी अन्य संस्कार नहीं है इसी को नरमेध पुरुषमेध नरयाग पुरुषयाग भी कहते हैं ॥

भस्मान्तꣳ शरीरम् ॥ यजु० अ० ४० मं० १५ ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः॥मनु०

इस शरीर का संस्कार (भस्मान्तम्) अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है ॥ १ ॥ शरीर का आरम्भ ऋतुदान और अन्त में श्मशान अर्थात् मृतक कर्म है ॥ २॥ (प्रश्न) जो गरुड़पुराण आदि में दशगात्र एकादशाह द्वादशाह सपिण्डी कर्म मासिक वार्षिक गयाश्राद्ध आदि क्रिया लिखी हैं क्या ये सब असत्य हैं (उत्तर) हां अवश्य मिथ्या हैं क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है इसलिये अकर्त्तव्य हैं और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और इन जीते हुए सम्बन्धियों का, वह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है (प्रश्न) मरण के पीछे जीव कहां जाता है (उत्तर) यमालय को (प्रश्न) यमालय किस को कहते हैं (उत्तर) वाय्वालय को (प्रश्न) वाय्वालय किस को कहते हैं (उत्तर) अन्तरिक्ष को जो कि यह पोल है (प्रश्न) क्या गरुड़पुराण आदि में यमलोक लिखा है वह झूठा है ? (उत्तर) अवश्य मिथ्या है (प्रश्न) पुनः संसार क्यों मानता है (उत्तर) वेद के अज्ञान और उपदेश के न होने से जो यम की कथा लिख रक्खी है वह सब मिथ्या है क्योंकि यम इतने पदार्थों का नाम है ॥

षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति ॥ ऋ० मं०१ सू० १६४ मं० १५॥

शकेम वाजिनो यमम्। ऋ० मं०२ सू० ५ मं० १॥

यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ ऋ० मं० १० सू० १४ मं० १३ ॥

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः ॥ यजु० अ० ८ । मं० ५७ ॥

वाजिनं यमम् ॥ ऋ० मं०८ सू० २४ मं० २२ ॥

यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋ०मं०१ सू०१६ मं०४६॥

यहां ऋतुओं का यम नाम है ॥ १ ॥ यहां परमेश्वर का नाम ॥ २ ॥ यहां अग्नि का नाम ॥३ ॥ यहां वायु, विद्युत्, सूर्य के यम नाम हैं ॥४॥ यहां भी वेग वाला होने से वायु का नाम यम है ॥ ५ ॥ यहां परमेश्वर का नाम यम है। इत्यादि पदार्थों का नाम यम है इसलिये पुराण आदि की सब कल्पना झूठी हैं ॥ ६ ॥

विधिः-संस्थिते भूमिभागं खानयेद्दक्षिणापूर्वस्यां दिशि दक्षिणापरस्यां वा ॥ १ ॥ दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणमित्येके ॥२॥ यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदायामम् ॥३॥ वितस्त्यर्वाक् ॥४॥ केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्तं पुरस्तात् ॥५॥ द्विगुल्फं बर्हिराज्यं च ॥ ६ ॥ दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत् पित्र्यं पृषदाज्यम् ॥ ७ ॥ अथैतां दिशमग्नीन्नयन्ति यज्ञपात्राणि च ॥ ८ ॥

जब कोई मर जावे तब यदि पुरुष हो तो पुरुष और स्त्री हो तो स्त्रियां उसको स्नान करावें चन्दनादि सुगन्धलेपन और नवीनवस्त्र धारण करावें जितना उस के शरीर का भार हो उतना घृत यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक लेवे और जो महादरिद्र भिक्षुक हो कि जिस के पास कुछ भी नहीं है उसको कोई श्रीमान् वा पंच बन के आधमन से कम घी न देवें और श्रीमान् लोग शरीर के बराबर तोल के चन्दन, सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, एक २ मण घी के साथ

सेर २ भर अगर तगर और घृत में चन्दन का चूरा भी यथाशक्ति डाल कपूर पलाश आदि के पूर्ण काष्ठ शरीर के भार से दूनी सामग्री श्मशान में पहुंचावे तत्पश्चात् मृतक को वहां श्मशान में लेजाय यदि प्राचीन वेदी बनी हुई न हो तो नवीन वेदी भूमि में खोवे वह श्मशान का स्थान बस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैऋत्य कोण में हो वहां भूमि को खोवे मृतक के पग दक्षिण नैर्ऋत्य अथवा आग्नेय कोण में रहें शिर उत्तर ईशान वा वायव्य कोण में रहे ॥ १ ॥ मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊंचा रहे ॥ २ ॥ उस वेदी का परिमाण पुरुष खड़ा होकर ऊपरको हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को लंबे उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे ॥ ३ ॥ और नीचे आध हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे उस वेदी में थोड़ा २ जल छिड़कावे यदि गोमय उपस्थित हो तो लेपन भी करवे उस में नीचे से आधी वेदी तक लकड़ियां चिने जैसे कि भित्ती में ईंटें चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमा कर लकड़ियां धरे लकड़ियों के बीच में थोड़ा २ कपूर थोड़ी २ दूर पर रक्खे उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे अर्थात् चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे और पश्चात् चारों ओर और ऊपर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियां चिने जबतक यह क्रिया होवे तब तक अलग चूल्हा बना अग्नि जला घृत तपा और छान कर पात्रों में रक्खे उस में कस्तूरी आदि सब पदार्थ मिलावे लम्बी २ लकड़ियों में चार चमसों को चाहे वे लकड़ी के हों वा चांदी सोने के अथवा लोहे के हों जिस चमसा में एक छटांक भर से अधिक और आधी छटांक भर से न्यून घृत न आवे खूब दृढ़बन्धनों से डण्डों के साथ बांधे पश्चात् घृतका दीपक कर के कपूर में लगा कर शिर से आरम्भ कर पाद पर्यन्त मध्य २ में अग्नि प्रवेश करावे अग्निप्रवेश करा के:—

ओमग्नये स्वाहा। ओं सोमाय स्वाहा। ओं लोकाय स्वाहा। ओमनुमतये स्वाहा। ओं स्वर्गाय लोकाय स्वाहा।

इन पांच मन्त्रों से आहुतियां देके अग्नि को प्रदीप्त होने देवे तत्पश्चात् चार मनुष्य पृथक् २ खड़े रह कर वेदों के मन्त्रों से आहुति देते जांय जहां स्वाहा आवे वहां आहुति छोड़ देवे ॥

अथ वेदमन्त्राः ॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा । अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः । यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकं स्वाहा ॥ २ ॥ अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः । आयुर्वसान उपवेतु शेषः संगच्छतां तन्वा जातवेदः स्वाहा ॥ ३ ॥ अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सम्प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च । नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते स्वाहा ॥ ४ ॥ यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः । कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा स्वाहा ॥ ५ ॥ ऋ० मं० १० सू० १६ मं० ३।४।५।७।१३॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् । वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य स्वाहा ॥ ६ ॥ यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ । यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनुस्वाः स्वाहा ॥ ७ ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्कभिर्वावृधानः। यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति स्वाहा॥ ८॥ इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः। आत्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व स्वाहा॥ ९॥ अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व। विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्यानिषद्य स्वाहा॥ १०॥ प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः। उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा॥ ११॥ संगच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्। हि त्वायावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा॥ १२॥ अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्। अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै स्वाहा॥ १३॥ यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः स्वाहा॥ १४॥ यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत। स नो देवेष्वायमद्दीर्घमायुः प्रजीवसे स्वाहा॥ १५॥ यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन। इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः स्वाहा॥ १६॥ ऋ० मंड० १० सू० १४॥ कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र

उतशोणो यशस्वान् । हिरण्यरूपं जनिता जजान स्वाहा ॥ १७ ॥ ऋ० मं० १० सू० २० मं० ६ ॥

इन ऋग्वेद के मन्त्रों से चारों जने १७ सत्रह २ आज्याहुति देकर निम्नलिखित मन्त्रों से उसी प्रकार आहुति देवें ॥

प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः स्वाहा ॥ १ ॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥ २ ॥ अग्नये स्वाहा ॥ ३ ॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥ वायवे स्वाहा ॥ ५ ॥ दिवे स्वाहा ॥ ६ ॥ सूर्याय स्वाहा ॥ ७ ॥ दिग्भ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥ चन्द्राय स्वाहा ॥ ९ ॥ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥ अद्भ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ वरुणाय स्वाहा ॥ १२ ॥ नाभ्यै स्वाहा ॥ १३ ॥ पूताय स्वाहा ॥ १४ ॥ वाचे स्वाहा ॥ १५ ॥ प्राणाय स्वाहा ॥ १६ ॥ प्राणाय स्वाहा ॥ १७ ॥ चक्षुषे स्वाहा ॥१८॥ चक्षुषे स्वाहा ॥ १९ ॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥ २० ॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥ २१ ॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥ २२ ॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥ त्वचे स्वाहा ॥ २४ ॥ त्वचे स्वाहा ॥ २५ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २६ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २७ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ माꣳसेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ माꣳसेभ्यः स्वाहा ॥ ३१ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३२ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३३ ॥ अस्थभ्यः स्वाहा ॥ ३४ ॥ अस्थभ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥ मज्जभ्यः

स्वाहा ॥ ३७ रेतसे स्वाहा ॥ ३८ ॥ पायवे स्वाहा ॥ ३९ ॥ आयासाय स्वाहा ॥ ४० ॥ प्रायासाय स्वाहा ॥ ४१ ॥ संयासाय स्वाहा ॥४२॥ वियासाय स्वाहा ॥ ४३ ॥ उद्यासाय स्वाहा ॥ ४४ ॥ शुचे स्वाहा ॥ ४५ ॥ शोचते स्वाहा ॥ ४६ ॥ शोचमानाय स्वाहा ॥ ४७ ॥ शोकाय स्वाहा ॥ ४८ ॥ तपसे स्वाहा ॥ ४९ ॥ तप्यते स्वाहा ॥ ५० ॥ तप्यमानाय स्वाहा ॥ ५१ ॥ तप्ताय स्वाहा ॥५२॥ घर्माय स्वाहा ॥ ५३ ॥ निष्कृत्यै स्वाहा ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्यै स्वाहा ॥५५॥ भेषजाय स्वाहा ॥५६॥ यमाय स्वाहा ॥५७॥ अन्तकाय स्वाहा ॥ ५८ ॥ मृत्यवे स्वाहा ॥ ५९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥ ६१ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥६२॥ द्यावापृथिवीभ्याᳪ स्वाहा ॥ ६३ ॥ यजु० अ० ३९ ॥

इन ६३ तिरसठ मन्त्रों से तिरसठ आहुति पृथक् पृथक् देके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवें ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः । अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते । येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ २ ॥ ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः । ऋषीँस्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् स्वाहा ॥ ३ ॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः । तपो ये च-क्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ ४ ॥ ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः । ये वा सहस्रद-क्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ ५ ॥ स्योना-स्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म स प्रथाः स्वाहा ॥ ६ ॥ अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामादितः । मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार स्वाहा ॥ ७ ॥ यमः परोवरो विवस्वांस्ततः परं नातिपश्यामि किञ्चन । यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वा ततान स्वाहा ॥ ८ ॥ अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते । उताश्विनावभरद्यत्तदा-सीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः स्वाहा ॥ ९ ॥ इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे । ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चावगच्छतात् स्वाहा ॥ १० ॥ अथर्व० कां० १८ । सू० २ ॥

इन दश मन्त्रों से दश आहुति देकर:—

अग्नये रयिमते स्वाहा ॥ १ ॥ पुरुषस्य सयाव-र्यपेदघानि मृज्महे । यथा नो अत्र नापरः पुरा ज-रस आयति स्वाहा ॥ २ ॥ य एतस्य पथो गोप्तार-स्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ य एतस्य पथो रक्षितारस्ते-भ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्तेभ्यः

स्वाहा ॥ ५ ॥ रूपात्रे स्वाहा ॥ ६ ॥ अपारूपात्रे स्वाहा ॥ ७ ॥ अभिलालपते स्वाहा ॥ ८ ॥ अपलालपते स्वाहा ॥ ९ ॥ अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥ १० ॥ यमत्र नाधीमस्तस्मै स्वाहा ॥ ११ ॥ अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ १२ ॥ आयातु देवः सुमनाभिरूतिभिर्यमो ह वेह प्रयताभिरक्ता । आसीदताꣳसुप्रयते ह बर्हिष्यूर्जाय जात्यै मम शत्रुहत्यै स्वाहा ॥ १३ ॥ योऽस्य कौष्ठ्य जगतः पार्थिवस्यैक इद्वशी । यमं भङ्ग्यश्रवो गाय यो राजाऽनपरोध्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ यमं गाय भङ्ग्यश्रवो यो राजाऽनपरोध्यः । येनापो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढा स्वाहा ॥ १५ ॥ हिरण्यकक्ष्यान्त्सुधुरान् हिरण्याक्षानयः शफान् । अश्वाननश्नतो दानं यमो राजाभितिष्ठति स्वाहा ॥ १६ ॥ यमो दाधार पृथिवीं यमो विश्वमिदं जगत् । यमाय सर्वमित्तस्थे यत् प्राणद्वायुरक्षितं स्वाहा ॥ १७ ॥ यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्चदशर्षयः । यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यथैक ऋषिर्विजानते स्वाहा ॥१८॥ त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद्बृहत् । गायत्री त्रिष्टुप्छन्दाꣳसि सर्वा ता यम आहिता स्वाहा ॥१९॥ अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत् । वैवस्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यमः स्वाहा ॥ २० ॥ वैवस्वते

विविच्यन्ते यमे राजनि ते जनाः । ये चेह सत्ये ने-च्छन्ते य उ चानृतवादिनः स्वाहा ॥ २१ ॥ ते राज-न्निह विविच्यन्तेथा यन्ति त्वामुप । देवांश्च ये नम-स्यन्ति ब्राह्मणांश्चापचित्यति स्वाहा ॥ २२ ॥ य-स्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः । अत्रा नो विश्पतिः पि[illegible] ा अनुवेनति स्वाहा ॥ २३ ॥ उत्ते तभ्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अ-हꣳरिषम् । एताꣳस्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादनात्ते मिनोतु स्वाहा ॥ २४ ॥ यथाऽहान्य-नुपूर्वं भवन्ति यथर्त्तव ऋतुभिर्यन्ति क्लृप्ताः । यथा नः पूर्वमपरो जहात्येवाधा तरायूꣳषि कल्पयैषां स्वाहा ॥ २५ ॥ न हि ते अग्ने तनुवै क्रूरं चकार मर्त्यः । कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायुर्गौरिव । अप नः शो-शुचदघमग्ने शुशुध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघं मृत्यवे स्वाहा ॥२६॥ तैत्ति० प्रपा० ६ अनु० १-१०॥

इन छब्बीस आहुतियों को करके ये सब (ओं अग्नये स्वाहा) इस मन्त्र से लेके (मनवे स्वाहा) तक एक सौ इक्कीस आहुति हुईं अर्थात् ४ जनों की मिल के [illegible]रसो चौरासी और जो दो जने आहुति देवें तो २४२ दोसौ बयालीस [illegible]ेष होतो पुनः इन्हीं एक सौ इक्कीस मन्त्रों से आहुति देते जायं या-[illegible] भस्म न हो जाय तावत् देवें जब शरीर भस्म होजावे पुनः सब जने वए [illegible] करके जिस के घर में मृत्यु हुआ हो उस के घर की मार्जन लेपन प्र-[illegible]शुद्धि करके पृ० ८-१६ में लि० प्रमाणे स्वस्तिवाचन शान्तिकरण

का पाठ और पृ० ४—८ में लि० ईश्वरोपासना कर के इन्हीं स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से जहां अङ्क अर्थात् मन्त्र पूरा हो वहां स्वाहा शब्द का उच्चारण कर के सुगन्ध्यादि मिले हुए घृत की आहुति घर में देवें कि जिस से मृतक का वायु घर से निकल जाय और शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे और सब का चित्त प्रसन्न रहे यदि उस दिन रात्रि होजाय तो थोड़ी सी देकर दूसरे दिन प्रातःकाल उसी प्रकार स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से आहुति देवें तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो तब मृतक का कोई सम्बन्धी [illegible] जाकर चिता से अस्थि उठा के उस श्मशान भूमि में कहीं पृथक् रख देवे बस इस के आगे मृतक के लिये कुछ भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है क्योंकि पूर्व (भस्मान्त०, शरीरम्) यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थिसंचयन से पृथक् मृतक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है हां यदि वह संपन्न हों तो अपने जीते जी वा मरे पीछे उन के सम्बन्धी वेदविद्या वेदोक्तधर्म का प्रचार अनाथपालन वेदोक्त धर्मोपदेशक प्रवृत्ति के लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है ॥

इतिमृतक संस्कारविधिः समाप्तः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्यस्य वेदविहिताचारधर्मनिरूपकस्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिनः कृतो संस्कारविधिर्ग्रन्थः पूर्त्तिमगात् ॥

नगयुगनवचन्द्रे विक्रमार्कस्य वर्षे,
ससितदलसहस्ये सोमयुग्युग्मतिथ्याम् ।
निगमपथशरण्येभ्य एवात्र यन्त्रे,
विधिविहितकृतीनां पद्धतिर्मुद्रिताऽभूत् ॥

* वन्देजिनवरम् *

॥ आर्यमतलीला ॥

(जैनगजटसे उद्धृत)

सिरसावा निवासी बा० जुगलकिशोर जैन, मुख्तार अदालत
देवबन्द जिला सहारनपुर द्वारा सम्पादित ।

ट्रेक्ट नं० ८

जिसको

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मंत्री

श्री जैनतत्व प्रकाशिनी सभा इटावा ने सर्व साधारण के हितार्थ छपाकर प्रकाशित की ।

प्रथमावृत्ति २००० } श्री वीरनिर्वाण सम्वत् २४३७ { कीमत ।=) आ० सैकड़ा २४) रु०

Printed by P. Brahmdeo Sharma at the Brahm Press Etawah.

७६]

]

ार पृ०
ा के
ासुगा
वर से
यदि
ार
रा
उस
ी कर्म
ण से
कोई
ोछे
वेयक

ति
नन्द
ता

* वन्देजिनवरम् *

आर्यमत लीला।

[क-भाग]

सत्यार्थ प्रकाश

और

वेद

(१)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीने सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक के तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत खंडन करते हुवे ईसाई मत की पुस्तक मत्ती रचित पुस्तक का लेख इस प्रकार दिया है:-

"यीशुखीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ कि उसकी माता मरियम की यूसफ से मंगनी हुई थी पर उनके इकट्ठे होनेके पहिलेही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है। देखो परमेश्वर के एक दूतने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा-हे दाऊद के सन्तान यूसफ तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लानेसे मत डर क्योंकि उस को जो गर्भ रहा है सो पवित्र आत्मा से है-"

इस प्रकार लिख कर स्वामी दयानन्द जीने इसका खंडन इस प्रकार दिया है:-

"इन बातों को कोई विद्वान नहीं मान सकता है कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टि क्रमसे विरुद्ध हैं इन बातोंका मानना मूर्ख मनुष्य जंगलियों का काम है सभ्य विद्वानों का नहीं। भला जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है? जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पुलटा करे तो उस की आज्ञा को कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम है। ऐसे तो जिस २ कुमारिका के गर्भ रह जाय तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है और झूंठ मूंठ कह दे कि परमेश्वर के दूतने मुझको स्वप्न में कह दिया है कि यह गर्भ परमात्माकी ओरसे है-जैसा यह असम्भव प्रपंच रचा है वैसा ही सूर्य से कुंती का गर्भवती होना भी पुराणोंमें असंभव लिखा है-ऐसी २ बातों को आंख के अंधे गांठ के पूरे लोग मान कर भ्रमजाल में गिरते हैं-"

इसही प्रकार स्वामी दयानंदजी आठवें समुल्लास में लिखते हैं।

"जैसे कोई कहे कि मेरे माता पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं ऐसी असंभव बात पागल लोगों की हैं"।

स्वामी जी महाराज दूसरे मतों के खंडन में तो ऐसा कह गये परंतु शोक है कि स्वामीजी को अपने नवीन मत में भी ऐसी ही वरन इससे भी अधिक असम्भव बातें लिखनी पड़ी हैं-स्वामीजी इसही तरह आठवें स-

मुल्लास में लिखते हैं कि परमेश्वर ने सृष्टि की आदि में सैकड़ों और हजारों जवान मनुष्य पैदाकर दिये - हंसी आती है स्वामी जीके इस लेख को पढ़कर और दया आती है उन भोले मनुष्यों की बुद्धिपर जो स्वामी जी के मतको ग्रहण करते हैं क्योंकि सृष्टि नियम और प्रत्यक्षादि प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध होता है और स्वामी जी स्वयं मानते हैं कि बिना माता पिताके मनुष्य उत्पन्न नहीं होसक्ता है। ईसाईयों ने इस सृष्टि नियम को आधा तोड़ा अर्थात् बिना पिता के केवल माता से ही ईसामसीह की पैदायश बयान की, जिस पर स्वामी दयानन्द जी इतने क्रोधित हुवे कि ऐसी बात मानने वालोंको मूर्ख और जंगली बताया परन्तु आपने सृष्टि नियम के सम्पूर्ण विरुद्ध बिना माता और बिना पिता के सृष्टिकी आदि में सैकड़ों और हजारों मनुष्यों के पैदा होने का सिद्धान्त स्थापित कर दिया और किंचित् भी न लजाये नहीं मालूम यहां स्वामी जी प्रत्यक्षादि प्रमाणों को किस प्रकार भूल गये और क्यों उनको अपनी बुद्धि पर क्रोध न आया और क्यों उन्हों ने ऐसे वेदों को झूठा न ठहराया जिसमें ऐसे गपोड़े लिखे हुवे हैं। स्वामी जी ने कुन्ती को सूर्य्य से गर्भ रहने के इस पौराणिक कथन को तो असम्भव लिख दिया और ऐसी बातों के मानने वालों को आंख के अंधे बता दिया परन्तु इससे भी अधिक बिना माता पिता के और बिना गर्भ के ही सैकड़ों और हजारों मनुष्यों की उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वयं अपने चेलों को सिखाया। आश्चर्य है कि स्वामी जी ने अपने चेलों को जिन्हों ने स्वामीजी की ऐसी असम्भव बातें मानलीं आंखका अंधा क्यों न कहा ? स्वामीजी अपने दिल में तो हंसते होंगे कि जगत् के लोग कैसे मूर्ख हैं कि उनको कैसी ही असम्भव और पूर्वापर विरोधकी बातें सिखा दी जावें वह सब बातों को स्वीकार करने के वास्ते तय्यार हैं—

कैसे तमाशे की बात है कि सृष्टि की आदि में बिना माता पिता के सैकड़ों जवान मनुष्य आपसे आप पैदा होकर कूदने लगे होंगे। जवान पैदा होनेका कारण स्वामीजी ने यह लिखा है कि यदि बालक पैदा होते तो उनको दूध कौन पिलाता कौन उनका पालन करता ? क्योंकि कोई माता तो उनकी थी ही नहीं परन्तु स्वामी जी को यह खयाल न आया कि जब उनकी उत्पत्ति बिना माता के एक असम्भव रीति से हुई है तो उनका पालन पोषण भी असम्भव

रीतिसे होना क्यों मुशकिल है? अर्थात् लिख देते कि बालक ही पैदा हुवे थे और जवान होने तक बिना खाने पीने के बढ़ते रहे थे उनको माता के दूध आदिक की कुछ आवश्यकता नहीं थी—

स्वामी जी ने यह भी सिखाया है कि जीव प्रकृति और ईश्वर यह तीन वस्तु अनादि हैं इनको किसीने नहीं बनाया है और उन लोगों के खंडन में जो उपादान कारण के बिदून जगत् की उत्पत्ति मानते हैं स्वामी जी ने लिखा है कि यद्यपि ईश्वर सर्व शक्तिमान् है परन्तु सर्व शक्तिमान् का यह अर्थ नहीं है कि जो असम्भव बात को करसके. कोई वस्तु बिना उपादान के बनती हुई नहीं देखी जाती है इस हेतु उपादान का बनाना असम्भव है अर्थात् ईश्वर उपादान को नहीं बना सक्ता है। अब हम स्वामी जीके चेलोंसे पूछते हैं कि सृष्टि की आदिमें जब ईश्वर ने एक असम्भव कार्य कर दिया अर्थात् बिना मा बाप के जवान मनुष्य कूदते फांदते पैदा कर दिये तो क्या उनका शरीर भी बिना उपादान के बनादिया? इस के उत्तरमें स्वामी जीके इस सिद्धान्त को लेकर कि बिना उपादान के कोई वस्तु नहीं बन सक्ती है आपको यह ही कहना पड़ेगा कि उपादान से ही बनाया। तो कृपा करके यह भी कह दीजिये कि ईश्वर ने सृष्टि की आदि में पहले मिट्टी के पुतले जवान मनुष्यों के आकार बनाये होंगे वा लकड़ी वा पत्थर वा किसी अन्य धातुकी मूर्ति घड़ी होंगी और फिर उन मूर्तियों के अवयवों को हड्डी चमड़ा मांस रुधिर आदिक के रूप में बदल दिया होगा? परन्तु यहां फिर आप को मुशकिल पड़ैगी क्योंकि स्वामी जी यह भी लिखते हैं कि "जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण जल शीतल और पृथिव्यादिक सब जड़ों को विपरीत गुण वाले ईश्वर भी नहीं कर सक्ता।" तब ईश्वर ने उन पुतलों को कैसे परिवर्तन किया होगा। गरज स्वामी जी की एक असम्भव बात मानकर आप हज़ार मुशकिलों में पड़ जावेंगे और एक असम्भव बातके सिद्ध करने के वास्ते हज़ार असम्भव बात मानकर भी पीछा नहीं छुटैगा—

स्वामीजी ने ईसामसीह की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि यदि बिना पिता के ईसामसीह की उत्पत्ति मानली जावै तो बहुत सी कुमारियों को बहाना मिलैगा कि वह गर्भ रहने पर यह कह देवैं कि यह गर्भ हम को ईश्वर से है-हम कहते हैं कि यदि यह माना जावै कि

सृष्टि की आदि में ईश्वर ने माता पिता के बिदून मनुष्य उत्पन्न कर दिये तो बहुत सी स्त्रियों को यह मौका मिलेगा कि वह कुत्सित गर्भ रहने पर परदेश में चली जाया करें और बच्चा पैदा होने के पश्चात प्रसूति क्रिया समाप्त होने पर बालक को गोद में लेकर घर आजाया करें और कहदिया करें कि परमेश्वर ने यह बच्चा आप से आप बनाकर हमारी गोदी में देदिया इसके अतिरिक्त यह बड़ा भारी उपद्रव पैदा हो सक्ता है कि जो स्त्रियां अपना व्यभिचार छिपानेके वास्ते उत्पन्न हुये बालक को बाहर जंगलमें फिंकवा देती हैं और उस बालक की सूचना होने पर पुलिस बड़ी भारी तहक़ीक़ात करती है कि यह बालक किसका है? स्वामी जी का सिद्धान्त मानने पर पुलिस को कोई भी तहक़ीक़ात की ज़रूरत न रहै और यह ही लिख देना पड़ा करैगा कि एक बालक बिना माबाप के ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ अमुक जंगल में मिला-इसही प्रकार के और सैकड़ों उपद्रव उठ खड़े होंगे। यह तो उसही समय तक कुशल है जब तक राजा और प्रजा गण इस प्रकार के असम्भव धार्मिक सिद्धान्तों को अपने सांसारिक और व्यावहारिक कार्यों में असम्भव ही मानते हैं नहीं तो मत के घड़ने वालों ने तो मन माना जो चाहा घड़ दिया है-

स्वामीजी ईसाई मत को खंडन करते हुए ईसामसीहकी उत्पत्ति बिना पिताके होने पर तो लिख गये कि "जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पलटा करे तो उस की आज्ञा को कोई न माने" परन्तु स्वयं नियमके विरुद्ध बिना माता और पिता के मनुष्यकी उत्पत्तिको स्थापित करते समय स्वामीजी को विचार न हुआ कि ऐसे नियम को तोड़ने वाले परमेश्वर के वाक्यों को जो वेदमें लिखे हैं कौन मानेगा? पर स्वामीजीने तो जांच लिया था कि संसारके मनुष्यों की प्रकृति ही ऐसी है कि वह न सिद्धान्तोंको जांचते हैं और न समझने और सीखने की कोशिश करते हैं वरन जिसकी दो चार वाह्यबातें अपने मन लगती मालूम हुई उसही के पीछे हो लेते हैं और उसकी सब बातों में 'हांमेंहां' मिलानेको तैयार होजातेहैं-स्वामीजी ग्यारहवें समुल्लास में लिखते हैं "यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोलमें दूसरा कोई देश नहीं है इसी लिये इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नोंको उत्पन्न करती है इसी लिये सृष्टिकी आदिमें आर्य

लोग इसी देशमें आकर बसे इस लिये हम सृष्टि विषयमें कह आये हैं कि आर्य नाम उत्तम पुरुषोंका है और आर्योंसे भिन्न मनुष्योंका नाम दस्यु है जितने भूगोलमें देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं । पारस मणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूंठ है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारस मणि है कि जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूनेके साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं-"

स्वामीजीने यह तो सब ठीक लिखा। यह हिंदुस्तान देश ऐसा ही प्रशंसनीय है परन्तु आश्चर्यकी बात है कि स्वामी जी अष्टम समुल्लासमें इस प्रकार लिखते हैं-" मनुष्यों को आदि में तिब्बत देशमें ही ईश्वरने पैदा किये-" " पहले एक मनुष्य जाति थी पश्चात् श्रेष्ठोंका नाम आर्य और दुष्टोंका दस्यु नाम होनेसे आर्य और दस्यु दो नाम हुए जब आर्य और दस्युओं में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इस भूमिके खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे इसीसे इस देशका नाम "आर्यावर्त" हुआ इसके पूर्व इस देशका नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्योंके पूर्व इस देश में बसते थे क्योंकि आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ कालके पश्चात् तिब्बतसे सूधे इसी देशमें आकर बसे थे-जो आर्यावर्त्त देशसे भिन्न देश हैं वे दस्यु देश और म्लेच्छ देश कहाते हैं।"

हम स्वामीजीके चेलोंसे पूछते हैं कि आर्यावर्त्त देशको ईश्वरने सब देशों से उत्तम बनाया परन्तु उस को खाली छोड़दिया और मनुष्योंको तिब्बत देशमें उत्पन्न किया क्या यह असंगत बात नहीं है ? जब यह आर्यावर्त देश सबसे उत्तम देश बनाया था तो इसही में मनुष्योंकी उत्पत्ति करता-स्वामीजीने जो यह लिखा है कि मनुष्योंको प्रथम तिब्बत देश में उत्पन्न किया उसका कारण यह मालूम होता है कि सर्कारी स्कूलोंमें जो इतिहास की पुस्तक पढ़ाई जाती हैं उनमें अंगरेज विद्वानोंने ऐसा लिखा था कि इस आर्यावर्त देशसे उत्तरकी तरफ जो देश था वहांके रहने वाले लोग अन्य देशोंके मनुष्योंकी अपेक्षा कुछ बुद्धिमान् हो गये थे पशु समान वहशी नहीं रहते थे वरन आग जलाना अन्न पकाकर खाना और खेती करना सीखगये थे वह कुछ तो हिन्दुस्तानमें आकर बसे और कुछ अन्य देशोंको चले गये-स्वामीजीके चेलों के हृदयमें स्कूलकी किताबोंमें पढ़ीहुई यह बात पूरी तरहसे समाई हुई थी

इस कारण स्वामी जीने अपने चेलों के हृदयमें यह बात और भी दृढ़ करनेके वास्ते ऐसा लिख दिया कि सृष्टि की आदिमें मनुष्य प्रथम तिब्बत देश में उत्पन्न कियेगये क्योंकि हिमालय से परे हिन्दुस्तान के उत्तरमें तिब्बत ही देश है—और यह कहकर अपने चेलोंको खुश करदिया कि जो लोग तिब्बत से हिन्दुस्तानमें आकर बसे वह विद्वान् और धर्मात्मा थे इस ही हेतु इस देशका नाम आर्यावर्त्त देश हुआ है—

अंगरेज इतिहासकारोंकी इतनी बात तो स्वामी जी ने मानली परन्तु यह बात न मानी कि तिब्बत से आर्य लोग जिस प्रकार हिन्दुस्तानमें आये इस ही प्रकार अन्य देशोंमें भी गए वरन हिन्दुस्तान वासियोंकी बड़ाई करनेके वास्ते यह लिखदिया कि अन्य सब देश दस्यु देश ही हैं अर्थात् अन्य सब देशमें दस्यु ही आकर बसे और दस्युका अर्थ चोर डाकू आदिक किया है यह कैसे पक्षपात की बात है?—इस प्रकार अपनी बड़ाई और अन्य पुरुषोंकी निन्दा करना बुद्धिमानोंका काम नहीं हो सकता—परन्तु अपने चेलोंको खुश करनेके वास्ते स्वामीजीको सब कुछ करना पड़ा—

अंगरेज इतिहासकारों ने यह भी लिखा था कि आर्योंके हिन्दुस्तानमें आने से पहिले इस देश में भील संथाल आदिक जंगली मनुष्य रहते थे जिन को खेती करना आदिक नहीं आताथा । जब आर्य लोग उत्तरकी तरफसे प्रथम पंजाब देशमें आए तो उन्होंने इन भील आदिक वहशी लोगोंसे युद्ध किया बहुतोंको मारदिया और बाकीको दक्षिणकी तरफ भगा दिया और पंजाब देशमें बसगए फिर इस ही प्रकार कुछ और भी आगे बढ़े यह ही कारण है कि पंजाब और उसके समीपस्थ देशमें भील आदिक वहशी जातियोंका नाम भी नहीं पाया जाता है और यह लोग प्रायः दक्षिण ही में मिलते हैं—इस कथन में उत्तरसे आने वाले आर्योंपर एक प्रकार का दोष आता है कि उन्होंने हिन्दुस्तानके प्राचीन रहने वालोंको मारकर निकाल दिया और स्वयम् इस देशमें बसगये—

ऐसा विचार कर स्वामी जीने यह ही लिखना उचित समझा कि जब आर्य लोग तिब्बतसे इस देशमें आये तो उस समय यह देश खालीथा कोई नहीं रहता था वरण तिब्बत देशके दस्यु लोगोंसे लड़ाईमें हार मानकर और तङ्ग आकर यह आर्य लोग इस हिन्दुस्तानमें भाग आयेथे और खाली देश देखकर यहीं आ बसे थे—स्वामी जीको यह भी प्रसिद्ध करना था कि

मनुष्य मात्रको जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह वेदोंसे ही हुआ है बिना वेदों के किसी मनुष्यको कोई ज्ञान नहीं हो सकता है और वेदोंको सृष्टिके आदि ही में ईश्वरने मनुष्योंको दिये इस कारण यदि वह यह मानते कि आर्योंके हिन्दुस्तान में आने से पहिले भील आदिक वहशी लोग रहते थे तो सृष्टिके आदिमें ईश्वरका वेदोंका देना असिद्ध हो जाता इस कारण भी स्वामीजीको यह कहना पड़ा कि तिब्बतसे आर्योंके आनेसे पहिले हिन्दुस्तानमें कोई नहीं रहता था—यह बात तो हम आगे दिखावेंगे कि वेदोंसे कदाचित् भी मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि स्वामीजीके अर्थों के अनुसार वेद कोई उपदेश या ज्ञान की पुस्तक नहीं है वरण वह गीतोंका संग्रह है और गीत भी प्रायः राजाकी प्रशंसामें हैं कि हे शस्त्रधारी राजा तू हमारी रक्षा कर, हमारे शत्रुओंको विनाश कर, उनको जानसे मारडाल, उनके नगर ग्राम विध्वंस करदे, हम भी तेरे साथ संग्राममें लड़ें और तू हमको धन दे अन्न दे,—और तमाशा यह कि प्रायः सब गीत इस एक ही विषयके हैं—जो गीत निकालो जो पत्रा खोल कर देखो उस में प्रायः वही विषय और वही मजमून मिलेगा यहां तक कि एक ही विषयको बार २ पढ़ते पढ़ते तबियत उकता जाती है और नाकमें दम आ जाता है और पढ़ते २ वेद समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि इस एकबात को हजारों बार कैसे कोई पढ़े और हम एक ही बातको हजारों बार पढ़नेमें किस प्रकार कोई अपना चित्त लगावे? जिससे स्पष्ट विदित होता है कि हजारों कवियोंने एक ही विषय पर कविता की है और इन कविताओंका संग्रह होकर वेद नाम हो गया है—यह सब बात तो हम आगामी लेखोंमें स्वामीजीके ही अर्थोंसे स्पष्ट सिद्ध करेंगे परन्तु इस समय तो हमको यह ही विचार करना है कि क्या सृष्टिकी आदिमें मनुष्य तिब्बतमें पैदा हुए और तिब्बत से आनेसे पहिले हिन्दुस्तानमें कोई मनुष्य नहीं रहता था? हमको शोक है कि स्वामीजी ने यह न बताया कि यह बात उनको कहांसे मालूम हुई कि सृष्टिकी आदिमें सब मनुष्य तिब्बतमें पैदा किये गये थे॥

स्वामीजीने अपने चेलोंको खुश करनेके वास्ते ऐसा लिख तो दिया परन्तु उनको यह विचार न हुआ कि भील आदिक जङ्गली जाति जो इस समय हिन्दुस्तानमें रहती हैं उनकी बाबत यदि कोई पूछैगा कि कहांसे आई तो क्या जवाब दिया जावेगा?

आर्यावर्त देश जहां तिब्बतसे आकर आर्योंका बास करना स्वामीजीने बताया है उसकी सीमा इस प्रकार वर्णन की है कि, उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें बिन्ध्याचल, पश्चिममें सरस्वती और पूर्वमें अटक नदी--और इस ही पर स्वामीजीने लिखा है कि आर्यावर्त से भिन्न पूर्व देशसे लेकर ईशान उत्तर वायव्य, और पश्चिम देशोंमें रहने वालोंका नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है और नैर्ऋत दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओंमें आर्यावर्त देशसे भिन्न रहने वाले मनुष्योंका नाम राक्षस है। स्वामीजी लिखते हैं कि अब भी देखलो हबशी लोगोंका स्वरूप भयङ्कर जैसा राक्षसोंका वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है। हम स्वामीजीके चेलोंसे पूछते हैं कि यह भील वा राक्षस या वहशी लोग कहींसे आकर बसे वा पहलेसे रहते हैं वा जो आर्या लोग यहां आये उन्होंमेंसे राक्षस बनगये? इसका उत्तर कुछ भी न बन पड़ेगा क्योंकि यह तो स्वामीजी ने कहीं कथन किया ही नहीं है कि दस्यु लोग भी हिन्दुस्तानमें आये और इस बातका स्पष्ट निषेध ही किया है पहिले इस हिन्दुस्तानमें कोई बसता था तब लाचार यह ही मानना पड़ेगा कि आर्योंओं में से ही भील आदिक वहशी और भयङ्कर राक्षस बन गये--परन्तु यह तो बड़ी छोटी बात होगई-स्वामी जी ने तो उत्तरसे आने वालों के शिरसे यह कलंक हटाने के वास्ते कि उन्हों ने इस देश के प्राचीन भील आदिक वहशी जातियों को मारकर भगा दिया और उनका देश छीन लिया इतिहास कारों के बिरुद्ध यह सिद्धान्त बनाया था कि हिन्दुस्तान में पहले कोई नहीं रहता था बरण यह देश खाली था परन्तु इस सिद्धान्तसे तो इससे भी बढ़िया दोष लगगया अर्थात् यह मानना पड़ा कि भील आदिक वहशी जातियां जो इस समय हिन्दुस्तान में मौजूद हैं वह विद्वान् आर्याओं से ही बनी हैं।

प्यारे आर्यसमाजियो! आप घबराइये नहीं स्वामी जी स्वयम् लिखते हैं कि सृष्टिकी आदिमें प्रथम एकही मनुष्य जाति थी पश्चात् तिब्बत ही देश में उन आदि मनुष्यों की संतान में जो २ मनुष्य श्रेष्ठ हुवा वह आर्य्य कहलाने लगा और जो दुष्ट हुवा उसका दस्यु नाम पड़गया इस कारण हे आर्यसमाजियो! सब आर्या अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष अपने दुष्ट भाइयों से डर कर हिन्दुस्तान में तो आगये परन्तु जो हिन्दुस्तान में आये उनकी संतान में भी बहुत से तो श्रेष्ट ही रहे होंगे और बहुत से तो दुष्ट हो गये होंगे क्योंकि यह नियम तो

है ही नहीं कि जैसा पिता हो उनकी संतान भी वैसीही हो। यदि ऐसा होता तो जब सृष्टिकी आदि में एक जाति के मनुष्य उत्पन्न किये थे तो फिर उनकी संतान श्रेष्ठ और दुष्ट दो प्रकार की क्यों हो जाती और वर्ण आश्रम भी जन्म पर ही रहता अर्थात् ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण और शूद्रका पुत्र शूद्र ही रहता स्वामीजीके कथनानुसार मनुष्य की उच्चता वा नीचता उनके कर्म पर न रहती परन्तु स्वामी जी तो पुकार पुकार कहते हैं कि ब्राह्मण का पुत्र शूद्र और शूद्रका पुत्र ब्राह्मण हो जाताहै। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि यद्यपि सब श्रेष्ठ मनुष्य तिब्बतसे हिन्दुस्तान में चलेआये परंतु यहां आकर उन कीसंतान फिर श्रेष्ठ और दुष्ट होती रही होगी और यहां तक दुष्ट हुई कि भील आदिक जंगली और राक्षस आदिक भयङ्कर जाति भी इनही आर्य्योंकी की संतान में से होगई। इसही प्रकार जो दुष्ट अर्थात् दस्यु लोग तिब्बत में रहगये और हिन्दुस्तान के सिवाय भूगोल के सर्व देशोंमें जाकर बसे उन की संतान में भी श्रेष्ठ और दुष्ट होते रहेहोंगे अर्थात् इस विषयमें हिन्दुस्तान और अन्य सर्व देश एकसां होगये सर्वही देशोंमें श्रेष्ठ और सर्व ही देशों में दुष्ट सिद्ध हुवे। स्वामी जी के कथनानुसार श्रेष्ठ लोग आर्य्या कहलाते हैं और दुष्ट लोग दस्यु अर्थात् पृथ्वी के सर्व ही देशों में आर्य्य और दस्यु बसते हैं और बसते रहे हैं देखिये स्वामी जी के मन घड़न्त कथन का क्या उलटासार निकल गया और आर्य्या भाइयोंका यह कहना ठीक न रहा कि हिन्दुस्तानके रहने वालोंको चाहिये कि वह अपने आपको आर्य्या कहा करें क्योंकि उन्हीं के कथनानुसार सब ही देशोंमें आर्य्या हैं सब ही देशोंमें दस्यु.

अङ्गरेजीमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि संग्राम में और इश्क में सब प्रकारके झूठ और धोके उचित होते हैं परंतु धर्मके विषय में असत्य और मायाचार को किसी ने उचित नहीं कहा है परन्तु हमको शोक है कि स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास में लिखते हैं—

"अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शङ्कराचार्य्य का निज मतथा तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खंडन के लिये उस मत को स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है"

अर्थात स्वामीजी लिखते हैं कि यदि शंकराचार्य्य जी ने जैनियोंके मतके खंडन करने के वास्ते झूठा मत स्थापन किया हो तो अच्छा किया अर्थात् दूसरे के मतको खंडन करने के वास्ते स्वामी जी झूठा मत स्थापन करने को भी पसन्द करते हैं जिससे स्पष्ट विदित होता है कि चाहे झूठा

मत मनुष्यों में प्रचलित करना पड़े परन्तु जिस तरह होसके दूसरे की बात को खण्डन करनी चाहिये अर्थात् अपना नाक कटै सो कटै परन्तु दूसरे का अपशगुन करदेना ही उचित है इस से पूर्ण रूप से सिद्ध होगया कि स्वामी जी का कोई एक मत नहीं था बरण जिसमें उनके चेले खुश हों वही उनका मतथा यह ही कारण है कि प्रथम बार सत्यार्थप्रकाश पुस्तक छपने और उसके चेलोंके पास पहुंचनेपर जब उनके चेले नाराज हुवे और उस सत्यार्थ प्रकाश में लिखी बातें उनको स्वीकार न हुईं तब यह जानकर तुरत ही स्वामी जी ने उस सत्यार्थप्रकाश को मंसूख कर दिया और दूसरी सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक बनाकर प्रकाश करदी जिसमें उन सब बातों को रद्द कर दिया जो उनके चेलों को पसन्द नहीं हुई थीं वरण उन प्रथम लेखों के विरुद्ध सिद्धान्त स्थापन कर दिये। इसके सिवाय वेदोंका अर्थ जो स्वामी जी ने किया है वह भी बिलकुल मनमाना किया है और जहां तक उनसे हो सका है उन्होंने वेदके अर्थों में वहही बातें भरदी हैं जो उनके चेलों को पसन्द थीं-वरण शायद इस ख़याल से कि नहीं मालूम हमारे चेलोंको कौन बात पसन्द हो कहीं २ दो दो और तीन तीन प्रकार के अर्थ करके दिखला दिये हैं जिससे सिवाय इसके और क्या प्रयोजन हो सक्ता है? कि यह दिखाया जावे कि वेदों की भाषा इस समय ऐसी भाषा होगई है कि उसके जो चाहो अर्थ लिखे जा सकते हैं इस हेतु यदि हमारे चेलों को हमारे किये हुवे अर्थ अप्रिय हों तो सत्यार्थ प्रकाशकी तरह इन अर्थों को रद्द करके दूसरे अर्थ लिख दिये जावें-देखिये स्वामी जी ऋग्वेद के प्रथम मंडल के छठे अध्यायके सूक्त ९१ में पांचवीं ऋचाके दो अर्थ इस प्रकार करते हैं।

प्रथम अर्थ-"हे समस्त संसारके उत्पन्न करने वा सब विद्याओंके देनेवाले परमेश्वर! वा पाठशाला आदि व्यवहारोंके स्वामी विद्वान् आप अविनाशी जो जगत् कारण वा विद्यमान कार्य जगत् है उसके पालने हारे हैं और आप दुःख देने वाले दुष्टों के विनाश करने हारे सबके स्वामी विद्या के अध्यक्ष हैं वा जिस कारण आप अत्यन्त सुख करने वाले हैं वा समस्त बुद्धि युक्त वा बुद्धि देने वाले हैं इसीसे आप सब विद्वानोंके सेवने योग्य हैं"

दूसरा अर्थ-"सब औषधियोंका गुणदाता सोम औषधि यह औषधियों में उत्तम ठीक२ पथ्य करनेवाले जनों की पालना करने हारा है। और यह सोम मेघके समान दोषोंका नाशक रोगोंके विनाश करनेके गुणोंका प्रकाश करनेवाला है वा जिस कारण यह सेवने योग्य वा उत्तम बुद्धिका हेतु है इसीसे वह सब विद्वानोंके सेवनेके योग्य है"

इन तमाम बातोंसे यह ही विदित होता है कि स्वामीजीकी इच्छा और कोशिश अपने चेलोंको खुश करने ही की रही है वास्तविक सिद्धान्तसे उन को कुछ मतलब नहीं रहा है। परन्तु इससे हमें क्या गरज़ स्वामीजीने जो सिद्धान्त लिखे हैं वह अपने मनसे सच समझ कर लिखे हों वा अपने चेलोंको बहकानेके वास्ते, हमको तो यह देखना है और जांच करनी है कि उनके स्थापित किये हुए सिद्धान्त कहां तक पूर्वापर विरोधसे रहित और सत्य सिद्ध होते हैं और स्वामीजीके प्रकाश किये अर्थोंके अनुसार वेदोंका मज़मून ईश्वरका वाक्य है वा राजाओंकी प्रशंसाके गीतोंका संग्रह। इस ही जांच में सबका उपकार है और सबको सब मतों को इस ही प्रकार जांच करनी चाहिये ॥

॥ आर्यमत लीला ॥

(२)

स्वामीजी ने यह बात तो लिखदी कि सृष्टि की आदि में सृष्टि नियम के विरुद्ध ईश्वरने बिना मा बापके सकड़ों और हज़ारों मनुष्य उत्पन्न कर दिये परन्तु यह न बताया कि उन्होंने पैदा होकर किस प्रकार अपना पेट भरा और पेट भरना उनको किसने सिखाया? घर बनाना उनको किस तरह आया और कब तक वह बे घर रहे? कपड़ा उनको कब मिला और कहां से मिला और कब तक वह नंगे रहे? कपड़ा बनाना उन्होंने कहां से सीखा? अनाज बोना उनको किसने सिखाया? इत्यादिक अन्य हज़ारों वस्तु बनानी उनको किस प्रकार आई और कब आई? ॥

इन प्रश्नों को पढ़कर हमारे विद्वान् भाई हम पर हंसेंगे क्योंकि पशुओं को पेट भरना कौन सिखाता है? इस के अतिरिक्त बहुत से पक्षी बय्या आदिक अद्भुत२ घोंसला बनाते हैं, मकड़ी सुन्दर जाला पूरती है और बतखका अंडा यदि मुर्गी के नीचे सेया जाकर बच्चा पैदा कराया जावे और वह बच्चा मुर्गी ही के साथ पाला जावे तौभी पानी को देखते ही स्वयम् तैरने लग जावेगा—यह तो पशुपक्षियों की दशा है परन्तु पशुपक्षियों में इतना प्रबल ज्ञान नहीं होता है कि वह अपनी जातिके अनुसार पशुज्ञान से अतिरिक्त कोई कार्य कर सकें अर्थात् बय्या जैसा घोंसला बनाता है वैसा ही बनावेगा उसमें उन्नति नहीं कर सक्ता है परन्तु मनुष्य में पशु से विशेष ज्ञान इस ही बात से सिद्ध होता है कि वह संसार की अनेक वस्तुओं और उनके गुण और स्वभाव को देखकर अनुमान ज्ञान पैदा करता है और वस्तुओं के गुणों का प्रयोग करता है-इस अपनी ज्ञान शक्ति के द्वारा आहिस्ता आहिस्ता मनुष्य बहुत उन्नति कर जाता है और करता रहता है—इस मनुष्य जाति को उन-

ति करने में एक यह भी सुबीता है कि इस में वार्त्तालाप करने की शक्ति है यदि प्रत्येक मनुष्य एक एक बहुत मोटी मोटी बातका भी अनुमान करैं तो हज़ार मनुष्य एक दूसरे से अपनी बातको कहकर सहज ही में हज़ार २ बात जान लेते हैं और उन बातोंकी जांच करके नवीन ही बारीक बात पैदा कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त आज कल भी वहशी मनुष्य अफ़रीका आदिक देशोंमें मौजूद हैं जो पशु के समान नंगे विचरते हैं और पशु के ही समान उनका खाना पीना और रात दिन का व्यवहार है उनमें से बहुत से स्थान के वहशियों ने बहुत कुछ उन्नति भी करली है और बहुत कुछ उन्नति करते जाते हैं और सभ्यता को प्राप्त होते जाते हैं-उनकी उन्नति के क्रम को देखकर विद्वान इतिहासकारों ने इस विषय में बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। वह लिखते हैं कि किसी समय में जब उन में कोई ज़रा समझदार होता है वह पत्थरके नोकदार वा धारदार टुकड़ों को धरती के खोदने वा लकड़ी आदिक वस्तुओं के काटने का औज़ार बनालेता है और उसके देखा देखी अन्यभी सब लोग पत्थरों को काम में लाने लगते हैं-किसी समय में किसी गहन बन को देखकर उनमें से किसी को ऐसा ध्यान आजाता है कि यदि वृक्षों की शाखा किसी स्थान पर चारों तरफ चिनकी गाड़ कर और ऊपर भी शाखाएं डालकर ऊपर पत्ते डाल दिये जावैंतो शीत और वर्षासे बच सकें हैं ऐसा समझकर उनही पत्थरोंके औज़ार से शाखा काटता है और एक बहुत खराब सा घर बना लेता है किसी को किसी समय उनमें से ऐसा सूझता है कि यदि वृक्षोंके चौड़े पत्तों से शरीर ढांका जावै तो गर्मी आदिकसे आराम मिलता है और इस प्रकार बदन ढांपने का प्रचार होजाता है। पक्षियों के घोंसलों और मकड़ी के जालों को देखकर किसी के ध्यान में यह आजाता है कि यदि वृक्षों की बेलको आपुस में उलझा लिया जावै अर्थात् बुन लिया जावै तो अच्छा ओढ़ने का वस्त्र बन जावै फिर कोई बड़ खजूर, सन, कुंवारा आदिक के बड़े २ रेशोंको बुनने लगजाता है। जंगल में हज़ारों प्रकार की बनस्पति और फल फूल होते हैं सबको खाते २ उनको यह भी समझ आने लगती है कि कौन वृक्ष गुणकारी है और कौन खाने में दुखदाई-जो गुणकारी होता है उसकी रक्षा करने लगते हैं और दुखदाई को त्याग देते हैं-जंगलमें बांस के बीड़ोंमें आपुसमें रगड़ खाकर आग लग जाया करती है इस आगसे यह वहशी लोग बहुत डरते हैं परन्तु कालान्तर में किसी समय कोई इनके खानेकी वस्तु यदि इस आग में भुन

जाती है और जलती नहीं है और उसको इनमें से कोई खालेता है तो वह बहुत स्वाद मालूम होती है और तब यह विचार होता है कि आग को किसी प्रकार काबू करना चाहिये और इससे खाने के पदार्थ भून लिये जाया करें। कालान्तर में कोई ज़रा समझदार या निडर मनुष्य आग को अपने समीप भी ले आता है और लकड़ी में लगाकर उसको रखा करता है और उस में डालकर खानेकी वस्तु भून लेता है। क्रम २ पत्थर को सिल वा पत्थर के गोले आदिक से खाने आदिककी वस्तुका चूरा करना सीख जाते हैं फिर जब कभी कहींसे उनको लोहे आदिककी खान मिलजाती है तो उसको पत्थरों से कूट पीटकर कोई औज़ार बनालेते हैं इसही प्रकार सब काम बुद्धिसे निकालते चलेजाते हैं जब २ उनमें कोई विशेष बुद्धिवाला पैदा होता रहता है तब तब अधिक बात प्राप्त होजाती है यह एक साधारण बात है कि सब मनुष्य एकसी बुद्धिके नहीं होते हैं कभी २ कोई मनुष्य बहुत विशेष बुद्धिका भी पैदा होजाया करता है और उससे बहुत कुछ चमत्कार होजाता है जैसा कि आर्य्य भाइयोंके कथनानुसार स्वामी दयानन्द सरस्वती भी एक अद्भुत बुद्धि के मनुष्य पैदाहुवे और अपने ज्ञान के प्रकाश से सारे भारतके मनुष्यों में उजियाला कर दिया।

भाईयो! यद्यपि मनुष्यकी उन्नति इस प्रकार हो सक्ती है और इस ही कारण किसी प्रश्नके करनेकी आवश्यकता नहीं थी परन्तु हम इन प्रश्नोंके करने पर इस कारण मजबूर हुवे हैं कि श्री स्वामी दयानन्दजीने अपने चेलोंको इस प्रकार मनुष्यकी उन्नति होने की प्रतीत सिखादी है-स्वामी जी को वेदों को ईश्वरका वाक्य और प्राचीन सिद्ध करने के वास्ते इनकी उत्पत्ति सृष्टिकी आदि में वर्णन करनी पड़ी और उस समय इनके प्रगट करने की ज़रूरत को इस प्रकार ज़ाहिर करना पड़ा कि मनुष्य बिना सिखाये कुछ सीख ही नहीं सक्ता है। स्वामीजी इस विषयमें इसप्रकार लिखते हैं:-

"जब ईश्वरने प्रथम वेद रचे हैं उन को पढ़ने के पश्चात् ग्रन्थ रचने की सामर्थ्य किसी मनुष्यको हो सक्ती है। उसके पढ़ने और ज्ञानके बिना कोई भी मनुष्य विद्वान नहीं हो सक्ता जैसे इस समयमें किसी शास्त्रको पढ़के किसीका उपदेश सुनके और मनुष्यों के परस्पर व्यवहारोंको देखके ही मनुष्योंको ज्ञान होता है। अन्यथा कभी नहीं होता। जैसे किसी मनुष्यके बालकको जन्म से एकांतमें रखके उसको अन्न और जल युक्तिसे देवे, उसकेसाथ भाषणादि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे कि जब तक उसका मरण न हो तब तक उसको इसी प्र-

कारसे रक्खे तो मनुष्य पनेका भी ज्ञान नहीं हो सक्ता तथा जैसे बच्चे बन में मनुष्योंको बिना उपदेशके यथार्थज्ञान नहीं होता है किन्तु पशुओंकी भांति उनकी प्रवृत्ति देखनेमें आती है वैसे ही वेदोंके उपदेशके बिना भी सब मनुष्योंकी प्रवृत्ति होजाती"

इस विषयमें श्रीबाबूराम शर्मा एक आर्यसमाजी महाशय "भारतका प्राचीन इतिहास" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि:—

"युरोपके अनेक विद्वानोंने यह सिद्ध करने की चेष्टाकी है कि ज्ञान और भाषा ईश्वर प्रदत्त नहीं है प्रत्युत मनुष्यों ने ही इन्हें बनाया है, परन्तु युक्ति और प्रमाण शून्य होनेसे उनका यह कथन कदापि माननीय नहीं हो सकता"।

"अतएव सिद्ध है कि मनुष्योंको उत्पन्न करते ही उस परमपिता परमात्माने अपना ज्ञान भी प्रदान किया था जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव एक दूसरे पर प्रगट कर सकें और सृष्टि की समस्त वस्तुओं के गुणागुणों का अनुभव करके उसको धन्यवाद देते हुए अपने जीवन को सुख और शान्ति पूर्वक बितावें।"

"यदि जेम्सवाटने पकती हुई खिचड़ी के ऊपर खड़कते हुए ढकने का कारण भाप की शक्ति को अनुभव किया तो भाप के गुण जानने पर भी वह स्टीम एंजिन तब तक नहीं बना सका जब तक कि उसे न्यूकोमन के बनाये हुए एंजिन की मरम्मत करने का अवसर न मिला।"

इसही प्रकार अन्य बहुत बातें करके हमारे आर्या भाई वेदों की बड़ाई यहां तक करना चाहते हैं कि दुनिया भर में जो कुछ भी किसी प्रकार की विद्या मौजूद है या जो कुछ नवीन २ कल बनाई जाती हैं या आगे को बनाई जावेंगीं उन सबका ज्ञान वेदों के ही द्वारा मनुष्यों को हुआ है। सृष्टि की आदि में जो कुछ भी ज्ञान मनुष्य को हो सकता है वह सब ज्ञान वेदों के द्वारा तिब्बत देशमें मनुष्यों के पैदा करते ही ईश्वर ने दे दिया था और पृथिवी भर में सब देशों में तिब्बत से ही मनुष्य जाकर बसे हैं। इस कारण उस ही वेदोक्त ज्ञान के द्वारा सब प्रकार की विद्या के कार्य करते हैं। यदि ईश्वर वेदोंके द्वारा सर्व प्रकार का ज्ञान न देता तो मनुष्य जाति भी पशु समानही रहती।

प्यारे पाठको! यह हिन्दुस्तान किसी समय में अत्यन्त उन्नति शिखर को पहुंच चुका है और अनेक प्रकार की विद्या इस हिन्दुस्तान में होचुकी है कि जिसका एक अंश भी अभी तक अंगरेज आदिक विद्वानोंको प्राप्त नहीं हुआ है परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जब इस हिन्दुस्तान के अभाग्य का उदय आया उस समयमें ही किसी ऐसे मनुष्य ने जो स्वामी दयानन्द

जैसी बुद्धि रखता था। हिन्दुस्तानियों को ऐसी शिक्षा दी कि मनुष्य अपने विचार से पदार्थों के गुणों का प्रयोग करके नवीन कार्य उत्पादन नहीं कर सकता है। ऐसी शिक्षा के प्रचार का यह प्रभाव हुआ कि विद्या की जो उन्नति हिन्दुस्तान में हो रही थी वह बन्द हो गई और जो विज्ञानकी बातें पैदा करली थीं आहिस्ता २ उन को भी भूल गये क्योंकि विचार शक्ति को काम में लाये बिदून विज्ञान की बातों का प्रचार रहना असम्भव ही हो जाता है। यह भी मालूम होता है कि अभाग्य के उदयसे हिन्दुस्तान में नशेकी चीजके पीने का भी प्रचार उस समय में बहुत हो गया था जिस को सोम कहते थे। इस से रहा सहा ज्ञान बिलकुल ही नष्ट होगया और इस देश के मनुष्य अत्यंत मूर्ख और आलसी हो गये।

यदि वेदों के अर्थ जो स्वामी जी ने किये हैं वह ठीक हैं तो इन अर्थोंसे यह ही ज्ञात होता है कि इस मूर्खता के समय में ही वेदों के गीत बनाये गये क्योंकि स्वामी जी के अर्थों के अनुसार वेदों में सिवाय ग्रामीण मनुष्यों के गीत के और कुछ नहीं है। खैर वेदों में कुछ भी हो हमको तो शोक इस बात का है कि स्वामी जी इस वर्तमान समय में जब कि हिन्दुस्तानमें अविद्या अन्धकार फैला हुआ है जब कि हिन्दुस्तानी लोग पदार्थ विद्या और कारीगरी की बातों में अपना विचार लगाना नहीं चाहते हैं, जब कि सब लोग निरुद्यमी और आलसी हो रहे हैं और एक कपड़ा सीने की सुई तक के वास्ते विदेशियोंके आश्रित हो रहे हैं ऐसे नाजुक समय में स्वामी जी की यह शिक्षा कि मनुष्य अपने विचार से कुछ भी विज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है हिन्दुस्तानियों के वास्ते जहर का काम देती है। यदि स्वामी जी के अर्थोंके अनुसार वेदों में पदार्थ विद्या और कारीगरी आदिककी आरम्भिक शिक्षा भी होती तौ भी ऐसी शिक्षा कुछ विशेष हानि न करती परन्तु वेदों में तो कुछ भी नहीं है सिवाय प्रशंसा और स्तुति के गीतों के और वह भी इस प्रकार कि एक २ विषय के एक ही मजमून के सैकड़ों गीत जिनको पढ़ता २ आदमी उकताजावे और बात एक भी प्राप्त न हो। खैर यह तो हम आगामी दिखावेंगे कि वेदों में क्या लिखा है? परन्तु इस स्थानपर तो हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यदि कोई बालक जो मनुष्यों से अलग रक्खा जावे। केवल एक वेदपाठी गुरू उसके पास रहै और उसको स्वामी जीके अर्थके अनुसार सब वेद पढ़ा देवे तो वह बालक इतना भी विज्ञान प्राप्त न कर सकेगा कि छोटीसे छोटी कोई वस्तु जो गांवके गंवार बनालेते हैं बनालेवे। गांवके खाती बर्खा बनालेते

हैं गांव के जुलाहे मोटा कपड़ा बुन लेते हैं । गांवके फ़ीवर चटाई और टोकरे बनालेते हैं गंवार लोग खेत बो लेते हैं परन्तु वह बालक सर्व वि ज्ञान तो क्या प्राप्त करैगा मामूली गं- वार बालकों के बराबर भी ज्ञान र- खने वाला नहीं होगा । ऐसी दशामें हिन्दुस्तानियोंको स्वामीजी का यह उपदेश कि विचार और तजरुबा क- रने से कोई विज्ञान मनुष्यको प्राप्त नहीं हो सक्ता है वरण जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है वह वेदों से ही होता है क्या यह अभागे हिन्दुस्तानियोंके साथ दुश्मनी करना नहीं है ?।

यदि सर्वविज्ञान जो कुछ संसार में है वेदों ही से प्राप्त होता है तो जब कि स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का भाषा से सरल अर्थ कर दिया है ह- मारे आर्य्य भाई इन वेदोंको पढ़कर क्यों नाना प्रकारकी ऐसी कल नहीं बनालेते हैं जो अंगरेजों और जापा- नियोंको भी चकित करदें परन्तु शब्दों में जो चाहे प्रशंसा करदी जावे पर स्वामीजीके बनाये वेदोंके अर्थको प- ढ़कर तो खाट बुनना वा मिट्टीके ब- र्तन बनाना आदिक बहुत छोटे २ काम भी नहीं सीखे जा सक्ते हैं । जा- पानियों ने आजकल थोड़े ही दिनों में बड़ी भारी उन्नति करली है और अनेक प्रकार की कल और औजार बनाकर अनेक अद्भुत और सस्ती वस्तु बनाने लगे हैं परन्तु यदि जा- पानमें भी कोई ऐसा उपदेशक उत्प- न्न होजाता जो इस बातकी शिक्षा देता कि मनुष्य बिना दूसरेके सिखा- ये अपने विचारसे कुछ भी विज्ञान प्राप्त नहीं कर सक्ता है तो जापान भी बेचारा अभागा ही रहता । पर- न्तु यह तो अभागा हिन्दुस्तान ही है जो स्वयम् निरुद्यमी हो रहा है और निरुत्साही होने का इस ही को उपदेश भी मिलता है । हे प्यारे आर्य भाईयो ! जरा विचारकी आंखें खोलो और अपनी और अपने देशकी दशा पर ध्यान दो और उद्योगमें लगाकर इस देशकी उन्नति करो--हम आपको धन्यवाद देते हैं कि आप परोपकार स्वयम् भी करते हैं और अन्य मनु- ष्योंको भी परोपकारका उपदेश देते हैं परन्तु कृपा कर ऐसा उपदेश मत दीजिये जिससे इनकी उन्नतिमें बाधा पड़े बरण मनुष्यके ज्ञानकी शक्तिको प्रकट करो विचार करना, वस्तु स्व- भाव खोजना और वस्तु स्वभाव जा- नकर उनसे नवीन २ काम बनाना सिखाओ--वेदोंके भरोसे पर मत रहो उसमें कुछ नहीं रक्खा है । यदि इस बातका आप को यकीन न आवे तो कृपाकर एकबार स्वामीजीके अर्थ स- हित वेदोंको पढ़ जाइये तब आप पर सब कलई खुल जावेगी--दूरकी ही प्र- शंसा पर मत रहो कुछ जांच पड़ताल से भी काम लो--फारसी और उर्दू के

शाइरों अर्थात् कविताओं की बाबत तो यह बात प्रसिद्ध थी कि वह अपनी कविताई में असंभव गप्प मार दिया करते हैं--जैसा कि एक उर्दू कविने लिखा है--"नातवानीने बचाया आज मुझको हिज्र में ढूंढती फिरती क़ज़ा थी मैं न था "--अर्थात् प्रीतम की जुदाईमें मैं ऐसा दुबला और कृष शरीर हो गया कि मृत्यु मुझको मारनेके वास्ते आई परन्तु अपने कृष शरीर होनेके कारण मैं मृत्युको दृष्टि ही न पड़ा और मृत्युसे बचगया। प्यारे पाठको! विचार कीजिये कविने कैसी गप्प मारी है कहीं शरीर इतना भी कृष हो सकता है कि मृत्युको भी दृष्टिगोचर न हो--इस प्रकार उर्दूके कवियोंकी गप्प तो प्रसिद्ध थी परन्तु स्वामीजीने यह गप्प इससे भी बढ़िया उड़ाई है कि सर्व प्रकारका विज्ञान मनुष्य को वेदों से ही प्राप्त होता है--बड़े २ विज्ञान की बातें जो आजकल अमरीका और जापान आदि देश के विद्वानों को मालूम हैं वह तो भला वेदोंमें कहां हैं? परन्तु यदि मोटी २ शिक्षा भी वेदों में मिलती, जो सृष्टि की आदिमें विना मा बापके उत्पन्न हुए मनुष्य को मनुष्य बनने के वास्ते जरूरी है, तो भी यह कहना किसी प्रकार उचित हो जाता कि मनुष्यको सर्व शिक्षायें वेदोंही से प्राप्त हुई हैं परन्तु वेदोंमें तो इस प्रकारकी कुछ भी शिक्षा नहीं है वरन वेद शिक्षाकी पुस्तक ही नहीं है-वेद तो गीतोंका संग्रहहै और स्वामीजीने जो अर्थ इन गीतोंके किये हैं उनसे मालूम होता है कि जो गीत इमभाट लोगोंने प्रधान पुरुषोंकी बड़ाई करके उन से दान लेनेके वास्ते जोड़ रक्खे थे वा जो गीत भंग धतूरा आदिक कोई नशेकी वस्तु पीनेके समय जिसको सोम कहते थे उस समय के लोग गाते थे वा अग्निमें होम करनेके समय गाये जाते थे वा जो गीत ग्रामीण लोग लड़ाई झगड़ेके समय लड़ाई की उत्तेजना देने और शत्रुओं को मारनेके वास्ते उकसाने के वास्ते गाते थे वा और प्रकारके गीत जो साधारण मनुष्य गाया करते थे उनका संग्रह होकर वेद बने हैं--इसी कारण एक एक विषयके सैंकड़ों गीत वेद में मौजूद हैं--यहां तक कि एक विषयके सैंकड़ों गीतोंमें विषय भी वह ही और दृष्टान्त भी वह ही और बहुतसे गीतोंमें शब्द भी वही हैं। आज कल अनेक समाचार पत्रोंमें स्वदेशीके प्रचारके वास्ते अनेक कविता छपती हैं और समाचार पत्रोंसे अलग भी स्वदेशी प्रचार पर अनेक कवितायें बनाई जाती हैं यदि इन सब कविताओंको संग्रह करके एक पुस्तक बनाई जावे तो सर्व पुस्तकमें गीत तो सैकड़ों और हजारों होकर बहुत मोटी पुस्तक बन जावैगी परन्तु विषय सारी पुस्तकमें इतना ही निकलेगा कि अन्यदेशकी वस्तु खरीदनेसे देशका धन विदेशको जाता है और यह देश निर्धन होता

जाता है इस कारण देशकी ही वस्तु लेनी चाहिये चाहे वह अधिक मूल्य की मिले और विदेशी के मुकाबले में सुन्दर भी न हो । यही दशा वेदों के गीतोंकी है । हमको आश्चर्य है कि इस प्रकार के पुस्तककी बाबत स्वामी जीने किस प्रकार लिखदिया कि वह ईश्वर वाक्य है और मनुष्यों को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह इन ही के द्वारा हुआ है ? क्या स्वामीजी यह जानते थे कि कोई इनको पढ़कर नहीं देखेगा और दूरकी ही प्रशंसासे श्रद्धान ले आवेगा ।

परन्तु हमारा आश्चर्य दूर हो जाता है जब हम देखते हैं कि स्वामी जी सारी ही बातें उलटी पुलटी और बेसिर पैरकी करते हैं । देखिये स्वामी जीको यह सिद्ध करना था कि सृष्टि की आदिमें ईश्वरने उन मनुष्योंको वेदोंके द्वारा ज्ञान दिया जो बिना मा बापके उत्पन्न किये गये थे । आजकल जो बालक पैदा होता है वह पैदा होने पर मकान-दूकान बाजार-खाट पीढ़ा बरतन-अन्न और अनेक वस्तु और मनुष्योंके अनेक प्रकारके काम देखता है परन्तु वह मनुष्य जो बिना मा बाप के पैदा हुए होंगे वह तो बिल्कुल ऐसी ही दशामें होंगे जैसा कि जंगल में पशु, इस कारण स्वामी जीको चाहिये था कि ऐसे मनुष्यको जिन जिन बातोंकी शिक्षाकी जरूरत होती है वह बातें वेदोंमें दिखलाते परन्तु उन्होंने ऐसा न करके और शेखीमें आकर अपने चेलोंको बहकानेके वास्ते इस बात के सिद्ध करनेकी कोशिश की कि उस समयमें रेल भी चलती थी और समुद्रमें जहाज भी जारी थे जिनमें ऐंजिन जुड़ते थे और आगके जोरसे विमान भी आकाशमें उड़ते थे । वाह स्वामी जी वाह ! आपको शाबाश है आप क्या सिद्ध करना चाहते थे और उस की सिद्धिमें कहगये वह बात जो अपनी ही बातको खण्डन करे—

इस लेखमें हम यह सिद्ध करना नहीं चाहते हैं कि स्वामीजीने किसी प्रकार वेदोंका अर्थ बदल कर उनमें रेल ऐंजिन जहाज और बिमान आदि का वर्णन दिखाया है क्योंकि हमको तो इस सारे लेखमें यही सिद्ध करना है कि स्वामीजीके अर्थोंके अनुसार भी वेदोंसे शिक्षा मिलती है और वेद ईश्वरका वाक्य सिद्ध होते हैं वा नहीं और वह सृष्टिकी आदिमें दिये गये वा नहीं ? हम जो कुछ लेख लिखरहे हैं वह स्वामीजीके अर्थोंको सत्य मान कर ही लिखरहे हैं और स्वामीजीके अर्थोंके अनुसार सब बातें सिद्ध करेंगे—

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त ४६ की क्रमशः ऋचा ३—७—८ के अर्थ में इस प्रकार लिखा है—

"हे कारीगरो जो वृद्धावस्थामें वर्तमान बड़े विद्वान् तुम शिल्प विद्या पढ़ने पढ़ाने वालोंको विद्याओंका उपदेश करो तो आप लोगोंका बनाया हुआ

रथ अर्थात् विमानादि सवारी पक्षियोंके तुल्य अन्तरिक्षमें ऊपर चलें "
" हे व्यवहार करने वाले कारीगरो ! जो आप मनुष्योंकी नौकासे पार जाने के लिये हमारे लिये विमान आदि यान समूहोंको युक्त कर चलाइये"

" हे कारीगरो ! जो आप लोगोंका यानसमूह अर्थात् अनेक विधि सवारी हैं उनको समुद्रोंके तराने वाले में यान रोकने और बहुत जलके थाह गहवार्थ लोहे का साधन प्रकाशमान बिजली अग्न्यादि और जलादि को आप युक्त कीजिये--"

इस सूक्तसे विदित होता है कि जिस समय यह सूक्त बनाया उस समय आकाशमें चलने वाले विमान और समुद्रमें चलने वाले जहाजके बनानेवाले मौजूद थे । परन्तु ऐसे विद्वान् कारीगर अर्थात् बड़े इञ्जिनियर किस महान् कालिजमें कलोंकी विद्या को पढ़े यह मालूम नहीं होता है । इस सूक्तका यह मन गढ़न्त अर्थ तो कर दिया परन्तु स्वामीजीने यह न विचारी कि इससे हमारा सारा ही कथन असत्य होजावेगा क्योंकि जब कि वेदोंमें कलोंके बनानेकी विद्या नहीं बताई गई है और न विमान और जहाज़ के कल पुर्जे बताये गये हैं तो यह सहज ही में सिद्ध हो जावेगा कि यह सब विद्या मनुष्योंने बिना वेदों के ही सीखी और वेद सृष्टिकी आदि में नहीं बने बरन वेद उस समय बने हैं जब कि मनुष्य विमान और जहाज़ बनाना जानते थे और ऐसे महान् विद्वान् हो गये थे कि केवल इतनी बातका उपदेश देने पर कि जहाजमें आग पानी और बिजली और लोहा लगाओ वह तुरत्तानी जहाज बनासकें--

स्वामीजीने रेल जहाज़ तार बरकी विमान आदि का चलना अग्नि जल और बिजली आदिकसे सुनलिया था इस कारण इतने ही शब्द वह वेदोंके अर्थोंमें ला सके परन्तु शोक इस बातका रहगया कि कलों की विद्याको स्वामीजी कुछ भी नहीं जानते थे यहां तक कि उनको यह भी मालूम नहीं था कि किस २ कल में क्या २ पुर्जे हैं और उन के क्या २ नाम हैं? नहीं तो कुछ न कुछ कल पुर्जों का जिकर भी वेदों में जरूर मिलता और उस समय शायद कुछ सिलसिला भी ठीक बैठजाता परन्तु अब तो रेलतार और विमान आदिकका ज़िकर आने से उनका सारा कथन ही झूठा हो गया और वेद ही ईश्वरके वाक्य न रहे

स्वामी जी ने आग और पानीसे सवारी चलाने अर्थात् रेल बनानेका वर्णन और भी कई बार वेदोंमें दिखाया है परंतु उपरोक्त शब्दोंके सिवाय और विशेष बात नहीं लिख सके हैं--

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ८१ सूक्तकी ऋचा २ के अर्थमें वह लिखते हैं--

"जो तुम्हारे रथ मेघोंके समान आकाशमें चलते हैं उन में मधुर और

निर्मल जल को अच्छे प्रकार उपसिक्त करो अर्थात् उन रथोंके आग और पवनके कल घरोंके समीप अच्छे प्रकार छिड़को—"

सूक्त ८८ की ऋ० २ के अर्थमें लिखते हैं—

"जैसे कारीगरीको जानने वाले विद्वान् लोग उत्तम व्यवहारके लिये अच्छे प्रकार अग्निके तापसे लाल वा अग्नि और जलके संयोगकी उठी हुई भाफोंसे कुछेक श्वेत जोकि विमान आदि रथोंको चलाने वाले अर्थात् अतिशीघ्र उनको पहुंचाने के कारण आग और पानी की कलोंके घररूपी घोड़े हैं उनके साथ विमान आदि रथकी वज्रके तुल्य पहियोंकी धारसे प्रशंसित वज्रसे अन्तरिक्ष वायुको काटने और उत्तेजना रखने वाले शूरता धीरता बुद्धिमत्ता आदि गुणोंसे अद्भुत मनुष्यके समान मार्गको हनन करते और देश देशान्तरको जाते आते हैं वे उत्तम सुखको चारों ओरसे प्राप्त होते हैं वैसे हम भी इसको करके आनन्दित होवें—"

इस अर्थके पढ़नेसे मालूम होता है कि स्वामीजीको अंगरेजोंके रेल जहाज विमान आदिकका वर्णन सुनकर उत्तेजना होती थी कि हम भी ऐसी ही कलें बनावें। वही भाव स्वामीजी का वेदोंका अर्थ करते हुये वेदों में आगया। परन्तु शोक है कि इससे यह स्पष्ट सिद्ध होगया कि वेद सृष्टि की आदिमें नहीं बने। बेशक वेदोंका इस प्रकारका अर्थ इस बातको सिद्ध करने के वास्ते काम में आ सकता है कि हिन्दुस्तानमें भी किसी समय में सर्व प्रकार की विद्या थी और रेल और जहाज आदिक जारी थे परन्तु स्वामी जी तो यह कहते हैं कि वेदों में सर्व प्रकार के विज्ञान की शिक्षा है जो सृष्टि की आदि में ईश्वर ने उन मनुष्यों को दी थी जो बिना मा बापके पैदा हुये थे और जिन्हों ने मकान वस्त्र बर्तन आदिक भी कोई वस्तु नहीं देखी वरन उनकी दशा बिलकुल ऐसी थी जैसी जङ्गली जानवरों की हुआ करती है।

स्वामी जी ने और भी कई सूक्तों में इस का वर्णन किया है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १०० ऋ० १६ के अर्थमें वह इस प्रकार लिखते हैं:—

"जिसका प्रकाश ही निवास है वह नीचे लाल ऊपर से काली अग्नि की ज्वाला लोह की अच्छी २ बनी हुई कलाओं में प्रयुक्त की गई वेग वाले विमान आदि यान समूह को धारण करती हुई आनन्द की देने हारी मनुष्यों के इन सन्तानोंके निमित्त धन की प्राप्ति के लिये वर्तमान है उसको जो अच्छे प्रकार जाने वह धनी होता है।"

इस अर्थ से यह मालूम होता है कि जिनको यह उपदेश दिया गया है वह कल बनाना तो जानते थे परन्तु उस अग्नी को नहीं जानते थे जो ऊपर से

काली और नीचे से लाल होती है। परन्तु इतना ही इशारा करने पर रेल और जहाज बनाना सीख गये।

सूक्त १११ के अर्थ में ऐसा आशय भी लिखा है। "अग्नि और जलसे कला बनावें"

"हे शिल्प कारियो हमारे लिये विमान आदिक बनाओ"

इससे तो स्पष्ट सिद्ध होगया कि पहलेसे कारीगर लोग विमान बनाना जानते थे। वेदों में कहीं विमान बनाने की तरकीब लिखी तो गई ही नहीं है इस हेतु वेद कदाचित् भी सृष्टि की आदि में नहीं हो सकते हैं वरण उस समय के पश्चात बने हैं जब कि विमान आदिक बनाना जान गये थे। और यदि कुल वेद उस समय में नहीं बना है तो यह सूक्त तो अवश्य ऐसेही समय का बना हुआ है।

इस ही प्रकार उक्त प्रथम मंडल के सूक्त ११६ की ऋचा १ ली और तीसरी के अर्थ में लिखा है:—

"हे मनुष्यो जैसे सच्चे पुण्यात्मा शिल्पी अर्थात् कारीगरों ने जोड़े हुवे विमान आदि रथसे जो···की के समान पदार्थों को निरन्तर एक देश से दूसरे देशको पहुंचाते हैं वैसे अच्छा यत्न करता हुआ मैं मार्ग···वैसे एक देश को जाता हूं"

"हे पवन···तुम शत्रुओंको मारने वाले सेनापति उन नावोंसे एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाओ।"

इससे भी सिद्ध होता है कि इस सूक्त के बनने से पहले विमान और नाव काम में लाये जाते थे परन्तु वेदों में कहीं इनके बनाने की तरकीब नहीं मिलती है।

इसही प्रकार सूक्त ११८ के अर्थों में ऐसा आशय प्रगट किया है—

"विमान से नीचे उतरो" विमान जिसमें ऊपर नीचे और बीच में तीन बन्धन हैं और बाज पखेरू की समान जिसका रूप है वह तुमको देश देशान्तर को पहुंचाते हैं।

लो साहब! इस में तो विमान बनाने की तरकीब लिखदी और हमारे आर्य्या भाई इससे विमान बनाना सीख भी गये होंगे इसके अतिरिक्त और भी कहीं २ इस ही प्रकार ऐंजन बनाना सिखाया गया है। देखिये नीचे लिखे सूक्त में जब यह बता दिया कि अग्निलाल २ होती है और रथके अगले भागमें उसको लगानी चाहिये तब रेलगाड़ी चलाना सिखाने में क्या कसर छोड़दी।

ऋग्वेद के पांचवें मंडल के सूक्त ५६ की छठी ऋचाका अर्थ इस प्रकार लिखा है—

"हे विद्वान् कारीगरो! आप लोग वाहन में रक्त गुणों से विशिष्ट घोड़ियोंके सदृश ज्वालाओंको युक्त कीजिये रथों में लाल गुण वाले पदार्थों को युक्त कीजिये और अग्रभाग में प्राप्त करने के लिये जाने वाले धारण और

आकर्षण को तथा अग्रभाग में स्थानान्तर में प्राप्त होने के लिये अत्यन्त पहुंचाने वाले निश्चय अग्नि और पवन को युक्त कीजिये ।"

गरज कहां तक लिखें यदि स्वामी जी के अर्थ ठीक हैं तो वेदों से कदाचित् यह सिद्ध नहीं होता है कि वेद सृष्टि की आदिमें बिना मा बाप के उत्पन्न हुये जंगली मनुष्यों को सर्व प्रकार का विज्ञान देनेके वास्ते ईश्वर ने प्रकाशे या इन वेदों से कुछ विज्ञान प्राप्त हो सकता है । हां यहां वेदों में ऐसी मंत्र शक्ति है कि रेलका नाम लेने से रेल बनाना आजावे और जहाज का नाम लेने से जहाज बनाना आजावे तो सब कुछ ठीक है । परन्तु इस में भी बहुत मुश्किल पड़ेगी क्योंकि कलों की विद्या के जानने वाले विद्वानों ने हजारों प्रकार की अद्भुत कलें बनाई हैं और नित्य नवीन कलें बनाते जाते हैं और वेदों में रेल और तार और जहाज और विमान को ही नाम स्वामी जी के अर्थों के अनुसार मिलता है तब यह अनेक प्रकार की कल कहां से बनगई ? समय देखनेकी घड़ी, कपड़ा सीने की चरखी, कुए में से पानी निकालने का पम्प, फोटोकी तसवीर बनाने का केमरा आदिक बहुत सी कलेंतो हिन्दुस्तानी सबही मनुष्यों ने देखी होंगीं और फोनो ग्राफ का बाजाभी सुना होगा जिस में गाने वालों के गीत भर लिये जाते हैं और वह गीत उस बाजे में उसही प्रकार गाये जाते हैं इत्यादिक बहुत प्रकार की अद्भुत कलें हैं जिनमें आग पानी, भाप, और बिजलीकी शक्ति नहीं लगाई जाती है इस प्रकार की हजारों कल हैं जिन का हम लोगोंने नाम भी सुना है और इस ही कारण स्वामी जी के अर्थ किये हुये वेदों में भी उन का नाम नहीं मिलता है । सुतरां यदि वेदों में किसी कल का नाम आने से ही उस कल के बनाने की विद्या वेद पढ़ने वाले को प्राप्त हो जाती है तो यह हजारों प्रकार की कलें जिनका वेदों में नाम नहीं है कहां से बनगईं और सब वेदपाठी पूरे इन्जिनियर क्यों नहीं बन जाते हैं ? प्यारे भाइयो कितनी ही बातें बनाई जावैं परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि मनुष्य अपने बुद्धिविचार से वस्तुओं के गुणों की परीक्षा करके उन वस्तुओं को उनके गुण के अनुसार काममें लाकर बहुत कुछ विज्ञान निकाल लेता है और अनेक अद्भुत वस्तु बनालेता है वेदों ही के आकाश से उतरनेकी आवश्यकता नहीं है ।

हमें आश्चर्य इस बात का है कि किस मुंह से स्वामीजी ने कह दिया और उनके चेलों ने मान लिया कि कुल विज्ञान जो मनुष्य प्राप्तकर सका है वह वेदों के ही द्वारा हो सकता है और बिना वेदों के कोई ज्ञान नहीं

हो सकता है क्योंकि संसार में अनेक विद्या वर्तमान है किस किस विद्या का वर्णन हमारे आर्य भाई वेदों में दिखावेंगे। एक गणित विद्या कोही देखिये कि यह कितनी बड़ी विद्या है। साधारण गणित, बीजगणित, रेखा गणित और तृकोण गणित आदिक जिसकी बहुत शाखा है। इस विद्याके हजारों महान् ग्रन्थ हैं जिनको पढ़ते २ मनुष्य की आयु व्यतीत होजावे और विद्या पढ़ना बाकी रहजावे। हमारे पाठकों में से जो भाई सरकारी मदरसों में पढ़ चुके हैं उन्हों उकलैदस (Euclid) और जबर मुकाबला (Algebra) पढ़ा होगा और उस ही से उन्हों ने जांच लिया होगा कि यह कैसा गहन बन है। परन्तु जो रेखा गणित स्कूलों में पढ़ाई जाती है वह तो बच्चों के वास्ते आरम्भिक विद्या है इससे अधिक यह विद्या कालिजों में बी. ए. और एम, ए. के विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती है और उससे भी अधिक यह विद्या एम. ए पास करने के पश्चात् वह पढ़ते हैं जो चांद सूर्य और तारों को और उन की चालको जांचते और भापते हैं। यह गणित विद्या इतनी भारी होने पर भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इस गणित विद्या को वेदों से इस प्रकार सिद्ध करतेहैं।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में स्वामी जी ने गणितविद्या विषय जिस प्रकार लिखा है उस सबके भावार्थ की हम यहां नकल करते हैं।

स्वामी जी ने वेद की ऋचा लिख कर उनका भावार्थ इस प्रकार लिखाहै।

"(एकाच मे०) इन मन्त्रों में यही प्रयोजन है कि अङ्क बीज और रेखा भेद से जो तीन प्रकारकी गणित विद्या सिद्ध की है उनमें से प्रथम अंक जो संख्या है (१) सो दो वार गिनने से दो की वाचक होती है जैसे १+१=२ ऐसे ही एक के आगे एक तथा एक के आगे दो वा दो के आगे एक आदि जोड़ने से भी समझ लेना, इसी प्रकार एक के साथ तीन जोड़ने से चार तथा तीन को तीन ३ के साथ जोड़ने से (६) अथवा तीन को तीन से गुणने से ३×३ =९ हुए ॥ १ ॥

इसी प्रकार चार के साथ चार पांच के साथ पांच छः के साथ छः आठ के साथ आठ इत्यादि जोड़ने वा गुणने तथा सब मन्त्रों के आशय को फैलाने से सब गणित विद्या निकलती है जैसे पांच के साथ पांच (५५) वैसे ही पांच २ छः २ (५५) (६६) इत्यादि जान लेना चाहिये। ऐसे ही इन मन्त्रों के अर्थों को आगे योजना करने से अंकों से अनेक प्रकारकी गणित विद्या सिद्ध होती है क्योंकि इन मन्त्रोंके अर्थ और अनेक प्रकार के प्रयोगों से मनुष्यों को अनेक प्रकार की गणित विद्या अवश्य जाननी चाहिये और जो कि वेदों का अंग ज्योतिष शास्त्र कहाता है उसमें भी इसी प्रकार के मन्त्रों के अभिप्राय

से गणित विद्या सिद्धकी है और अंकों से जो गणित विद्या निकलती है वह निश्चित और असंख्यात पदार्थोंमें नियुक्त होती है और अज्ञात पदार्थों की सख्या जानने के लिए जो बीजगणित होता है सो भी (एकाच मे:) इत्यादि मन्त्रों ही से सिद्ध होता है जैसे (अ+क) (अ−क) (क÷अ) इत्यादि संकेत से निकलता है यह भी वेदों ही से ऋषि मुनियों ने निकाला है और इसी प्रकार से तीसरा भाग जो रेखा गणित है सो भी वेदों ही से सिद्ध होता है (अ ग्न आ) इस मन्त्रके संकेतों से भी बीज गणित निकलता है।

(इयंवेदि:० अभि प्र०) इन मन्त्रों से रेखागणित का प्रकाश किया है क्यों कि वेदी की रचना में रेखागणित का भी उपदेश है जैसे तिकोन चौकोन सेन पक्षी के आकार और गोल आदि जो वेदी का आकार किया जाता है सो आर्यों ने रेखागणित ही का दृष्टान्त माना था क्योंकि (परोअन्तः पृ०) पृथिवी का जो चारों ओर घेरा है उन को परिधि और ऊपर से जो अन्त तक जो पृथिवी की रेखा है उसको व्यास कहते हैं। इसी प्रकार से इन मन्त्रों में आदि, मध्य और अन्त आदि रेखाओं को भी जानना चाहिये इसी रीति से तिर्यक् विषवत् रेखा आदि भी निकलती है -॥३॥ (कासी अं०) अर्थात् यथार्थ ज्ञान क्या है (प्रतिमा) जिस पदार्थों का तोल किया जाय सो क्या चीज़ है (निदानम्) अर्थात् कारण जिस से कार्य उत्पन्न होता है वह क्या चीज है (आज्यं) जगतमें जानने के योग्य सार भूत क्या है (परिधिः) परिधि किसको कहते हैं (छन्दः) स्वतंत्र वस्तु क्या है (प्र ३०) प्रयोग और शब्दों से स्तुति करने योग्य क्या है इन सात प्रश्नों का उत्तर यथावत् दिया जाता है (यद्देवा देव०) जिस को सब विद्वान् लोग पूजते हैं वही परमेश्वर प्रमा आदि नाम वाला है। इन मंत्रों में भी प्रमा और परिधि आदि शब्दों से रेखा गणित साधने का उपदेश परमात्मा ने किया है सो यह तीन प्रकार की गणित विद्या आर्यों ने वेदों से ही सिद्ध की है और इसी आर्यवर्त देश से सर्वत्र भूगोल में गई है-

वाह स्वामी जी वाह ! आपने खूब सिद्ध कर दिया कि गणितकी सब विद्या संसार भर में वेदों से ही गई है-अब जिसको इस विषयमें संदेह रहै समझना चाहिये कि वह गणित विद्या को ही नहीं जानता है-परन्तु स्वामी जी हम को तो एक संदेह है कि गणित विद्या के सिखानेके वास्ते आपके परमात्माने उपरोक्त तीनचार मंत्र वेदोंमें क्यों लिखे सारी गणित विद्या के सीखनेके वास्ते तो एक ही मंत्र बहुत था और आपके कथनानुसार एक भी मंत्र की आवश्यकता नहीं थी वरन एक और एक दो इतना ही शब्द कह देना बहुत था इस ही से सारी गणित विद्या आजाती

हमारी समझ में तो जो लोग बी. ए. और एम. ए. तक पचासों पुस्तक गणित विद्या की पढ़ते हैं और फिर भी यह कहते हैं कि गणित विद्यामें हमने अभी कुछ नहीं सीखा उनको बड़ी भूल है उनको उपरोक्त यह तीनचार वेदके मंत्र सुनलेने चाहिये बस इसहीसे सब गणितविद्या आजावेगी और परिपूर्ण हो जावेंगे इसही प्रकार जो विद्यार्थी स्कूल में अंक गणित (Arithmetic) बीज गणित अर्थात् जबर मुकाबला (Algebra) और रेखागणित अर्थात् उकलैदस (Euclid) पर रात दिन वर्षों टक्कर मारते हैं उनको शायद यह खबर नहीं होगी कि वेदोंके तीन चार ही मंत्रोंके सुननेसे सारी गणित विद्या आजाती है--यदि उनको यह खबर होजावे तो वेशक वह महान् परिश्रम से बचजावें--और इन मंत्रोंको देखकर वेशक सबको निश्चय और श्रद्धान करलेना चाहिये कि सर्व विज्ञान और सर्व विद्या वेदों ही में है और वेदों ही से अन्य देशों में गई है--मनुष्यने अपनी बुद्धि विचारसे कुछ नहीं किया है-धन्य है ऐसे वेदको जिसमें इस प्रकार संसारका सर्व विज्ञान भरा हुआ है। और धन्य है स्वामीजीको जिन्हों ने ऐसे वेदोंका प्रकाश किया ।

क्यों स्वामीजी ! यद्यपि लोगोंने चांद सूर्य और तारागणकी विद्याको अर्थात् गणित ज्योतिषको बड़ा विस्तार दे रक्खा है और इनकी चाल जाननेकी बाबत बड़े २ महान् हज़ारों ग्रन्थ रच दिये हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष पंचांग अर्थात् जंत्री बनादेते हैं कि अमुक दिन अमुक तारा निकलेगा और अमुक दिन अस्त होगा और अमुक दिन अमुक समय चान्द सूर्य्यका ग्रहण होगा और इतना ग्रसेगा । परन्तु आप तो यह ही कहेंगे कि जब वेदोंमें चान्द और सूर्यकानाम आगया तो सर्व ज्योतिष विद्या वेदों में गर्भित होगई और वेदों हीसे सर्व संसार में इस विद्याका प्रकाश हुआ । धन्य है हजार वार धन्य है ऐसे वेदों को और स्वामी दयानन्दजी को ।

क्यों स्वामीजी संसारमें हजारों और लाखों औषधि हैं और इन औषधियों के गुण के विचार पर अनेक महान् पुस्तकें रची हुई हैं और रोग भी हजारों प्रकारके हैं और उनके निदानके हेतु भी अनेक पुस्तकें हैं परन्तु यह विद्या भी तो वेदोंमे ही निकलीहोगी यद्यपि वेदोंमें किसी औषधिका नाम और उसका गुण और एक भी बीमारी का नाम और उसका निदान वर्णन नहीं किया गया है परन्तु क्यों स्वामीजी कहना तो यह ही चाहिये कि औषधि विद्या जितनी संसारमें है वह सबवेदों में मौजूद है और ऐसा कहने के वास्ते हेतु भी तो प्रबल है जिसका कुछ जबाव ही नहीं होसक्ता है अर्थात् जिस प्रकार वेदों में एक और एक दो लिखा हुआ मिलनेसे सर्व गणित विद्या वेदों में सिद्ध होती है इसही प्रकार वेदों

में सोम पदार्थका नाम आने से जिस का अर्थ स्वामी जीने किसी किसी स्थान में औषधियोंका समूह किया है सर्वही औषधियोंका वर्णन वेदोंमें सिद्ध होगया और यह भी सिद्ध होगया कि औषधि की सब विद्या वेदोंसे ही सर्व संसार में फैली है ?

इसही प्रकार यद्यपि अन्य अनेक विद्याओं का नाम भी वेदों में नहीं है जो संसार में प्रचलित हैं परन्तु वेदों में ऐसा शब्द तो आया है कि सर्व विद्या पढ़ो या सीखो फिर कौन सी विद्या रह गई जो वेदोंमें नहीं है और कौन कहसक्ता है कि वेदों की शिक्षाके विदून कोई विद्या किसी मनुष्यने अपनी विचार बुद्धिसे पैदा करली? इस प्रबल युक्ति से तो हम भी कायल हो गये—

आर्य भाइयो ! हिन्दुस्तान में अनेक देवी देवता पूजे जाते हैं जिन की बाबत स्वामी जी ने लिखा है और आप भी कहते हैं कि इस में अविद्या अंधकार होजानेके कारण मूर्ख लोगों को जिसने जिस प्रकार चाहा बहका लिया और पेटार्थू लोगों ने देवी देवता स्थापन करके और उनमें अनेक शक्तियां वर्णन करके जगतके मनुष्यों को अपने काबू में करलिया । एक तो वह लोग मूर्ख जो इस प्रकार बहकाये में आये और दूसरे यदि कोई देवी देवता की शक्तिकी परीक्षा करना चाहे तो पूजारियों को यह कहने का मौका कि यह देवी देवता उसही का मनोर्थ सिद्ध करते हैं जो सच्चे श्रद्धान से इनकी भक्ति और पूजाकरे तुम्हारी श्रद्धा में कुछ फरक रहा होगा जिससे कार्य सिद्ध नहीं हुआ । परन्तु हे आर्य भाइयो तुम विद्यावान और लिखे पढ़े होकर किस प्रकार इन स्वामी जी के अर्थके किये हुये वेदों पर श्रद्धा ले आये और यह कहने लगे कि संसारकी सर्व विद्या वेदों हीमें भरी है तुम्हारी परीक्षाके वास्ते तो कोई देवी देवता नहीं हैं जिसकी परीक्षाके लिये प्रथम ही श्रद्धान लानेकी अवश्यक्ता हो वरण तुमको तो वेदों अर्थात् पुस्तकके मज़मून की परीक्षा करनी है जिसकी परीक्षा के वास्ते सहज उपाय उस पुस्तकका पढ़ना और उस पर विचार करना है फिर तुम क्यों परीक्षा नहीं करते हो जिससे वेदोंकी बिलकुल बेतुकी प्रशंसा जैसी अब कर रहे हो न करनी पड़। वेदों में क्या विषय है ? यह तो हम आगे चलकर दिखावगे परन्तु यदि आप ज़रा भी परीक्षा करना चाहते हैं तो हम वेदोंके बनाने वालेका ज्ञान आपको दिखाते हैं:—

ऋग्वेदके पांचवें मंडलके सूक्त ४५ की सातवीं ऋचाके अर्थमें स्वामी जी ने इस प्रकार लिखा है:—

"जिस से इस संसारमें नवीन गमन वाले दश चैत्र आदि महीने वर्त्तमान हैं" फिर इसही सूक्त का ११ वीं ऋचा के अर्थ में आप लिखते हैं:—

"हे मनुष्यो जिससे नवीन गमनवाले

दश महीने पार होते हैं इस बुद्धि से हम लोग विद्वानों के रक्षक होवें और इस बुद्धिसे पाप वा पापसे उत्पन्न दुःख का अत्यन्त विनाश करें आपकी सुख का विभाग करता है जिससे उस बुद्धि को प्राणों में मैं धारण करूं"

इसके पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेदका बनाने वाला और विशेष कर इस सूक्त का बनाने वाला वर्षके दस ही महीने जानता था—इसको पढ़ कर तो हमारे आर्या भाई बहुत चौंकेंगे और वेदोंको पढ़कर देखना अवश्य जरूरी समझेंगे—हम आगे चलकरवेदों से ही साफ तौर पर यह सिद्धकर देवेंगे कि वे ऐसे ही अविद्या अंधकारके समय में बने हैं और उनमें खेती करने वाले और गांव के गंवारोंके मामूली गीतके सिवाय और कुछ भी नहीं है। इस समय तो हमको केवल यह दिखाना है कि वेद ईश्वर वाक्य हो सक्ते हैं वा नहीं।

आर्य मत लीला।

(३)

भ्रातृगण हो! अविद्या अन्धकार के कारण आजकल इस भारतवर्षमें अनेक ऐसी प्रवृत्ति हो रही हैं जिनसे भोले मनुष्य ठगे जाकर बहुत दुख उठाते हैं दृष्टान्त रूप विचारिये कि भंगी, चमार, कहार और जुलाहा आदिक छोटी जातियोंमें कोई २ स्त्री पुरुष ऐसा कहदिया करते हैं कि हमको किसी देवी वा देवताका इष्ट है, वह हम पर प्रसन्न है, और हम उसके भक्त हैं इस कारण जब हम उस देवी देवता का ध्यान करते हैं तो वह हमको जो पूछते हैं, सो बतादेता है-वा कोई २ ऐसा कह देते हैं कि देवी वा देवता हमारे सिर आता है और उस समय जो कोई कुछ पूछै तो वह ठीक २ बता देता है--भारतवर्ष के मूर्ख और भोले मनुष्य और विशेष कर कुपढ़ स्त्रियें ऐसे लोगोंके बहकाये में आ जाती हैं और अपने बच्चों के रोगका कारण वा अपने और कुटुम्बियों के किसी कष्ट का हेतु और उनका उपाय पूछते हैं जिस को पूछा लेना कहते हैं और बहुत कुछ भेंट देते हैं और सेवा करते हैं और वह भंगी आदिक देवी देवताके भक्त अटकलपच्चू मन घड़न्त बातें बताकर उनको खूब ठगते हैं--

दुनियांके लोग जो उनसे पूछा पूछने के वास्ते आते हैं जानते हैं कि यह भक्त लोग साधारण और छोटे मनुष्यों में हैं और अपने नित्यके व्यवहार में ऐसे ही मूर्ख हैं जैसे इनके अन्य भाई बन्धु और आचरण भी इन के ऐसे ही हैं जैसे इनके अन्य भाई बन्दोंके, परन्तु उन पर श्रद्धा रखने वाले लोग कहते हैं कि हम को इनकी बुद्धि और आचरणकी जांच तो तब करनी होती जब यह भक्त लोग यह कहते कि हमको इतना ज्ञान हो गया है कि गुप्त बात बतासकें—पर यह तो ऐसा नहीं कहते हैं वह तो यह ही कहते हैं कि हम को तो कुछ भी ज्ञान

नहीं है, जो कुछ गुप्त वार्ता हम बताते हैं वह तो हमारे इष्टदेवी देवताका ज्ञान है अर्थात् वह देवी देवता इन अपने भक्तो के द्वारा गुप्त वार्ता बता देता है--इस हेतु चाहे यह भक्त लोग हम से भी अधिक मूर्ख हों यहां तक कि चाहे वह पागल और जंगली पशुओं के समान अज्ञान हों तो भी हम को क्या ? वह गुप्त शक्ति अर्थात् देवी देवता जो इनके द्वारा हमारी गुप्त बात बताते हैं उन को तो तीन काल का ज्ञान है--यह भक्त लोग तो हम से वार्तालाप होनेके वास्ते एक निमित्त मात्र के समान हैं--इस कारण हम को इन भक्तोंकी किसी प्रकार की परीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है--चाहे यह कैसे ही पापी और अधम हों और चाहे कैसे ही मूर्ख हों इससे हमारे प्रयोजन में कुछ फ़रक़ नहीं आता है--

प्यारे भाइयो ! यह सब अन्धकार जो भारतमें फैला हुआ है जिसके कारण हमारे भोले भाई और भोली बहनें ठगी जाती हैं और जिससे अनेक उपद्रव पैदा होते हैं--जिस के कारण बच्चोंके रोगोंकी औषधि नहीं होती है, योग्य वैद्यों और हकीमोंसे उनका इलाज नहीं होता है, जिस के कारण अनेक बच्चे मृत्यु को प्राप्त होते हैं--जिस के कारण भक्तों की बनाई हुई बातोंसे घरोंमें भारी कलह और बड़े बड़े द्वेष फैल जाते हैं--जिस के कारण उत्तम कुलकी स्त्रियों को बड़े बड़े नीच और अधम कार्य करने पड़ते हैं उस का हेतु एक यह ही है कि भारत के लोगोंके चित्तमें यह श्रद्धान घुसा हुआ है कि भूत भविष्यत और वर्त्तमानका ज्ञान रखने वाली शक्ति किसी मनुष्य के द्वारा अपना ज्ञान किसी विषय में प्रकट कर सक्ती है। यदि यह श्रद्धान हमारे भाइयों के हृदयमेंसे हटजावे तो भारतवर्ष में से यह सब अंधकार मिट जावे और इन भक्तों की कुछ भी पूछ न रहे। क्योंकि फिर जो कोई गुप्त वार्ता बताने का दावा करे वह अपने ही ज्ञानके आश्रय पर करै और किसी गुप्त शक्ति के आश्रय पर कोई बात न हो सके और जब कोई यह कहे कि मुझको इतना ज्ञान हो गया है कि मैं गुप्त बात बता सक्ता हूं तो उसकी परीक्षा बहुत आसानी से हो सके क्योंकि अपने नित्यके व्यवहारमें भी उस को अपने आपको इतना ही ज्ञानवान दिखाना पड़े कि जिससे उसका तीन काल की बातका जानना सिद्ध होता हो अर्थात् फिर धोका न चल सके।

प्यारे भाइयो ! सच पूछिये तो इस सिद्धान्त ने कि तीन काल की बात जानने वाली गुप्त शक्ति अपने ज्ञानको किसी मनुष्यके द्वारा प्रकट कर सक्ती है, केवल यही अंधकार नहीं फैलाया है बरण संसार के सैकड़ों जितने मत मतांतर फैले हैं वह सब इस ही सिद्धान्त के सहारे फैले हैं, क्योंकि जब जब कोई किसी नवीन मत का स्थापन क-

रने वाला हुआ है उसने यहां कहा है कि मैं अपने ज्ञान से कुछ नहीं कहता हूं वरण मुझको यह सब शिक्षा जिस का मैं उपदेश करता हूं परमेश्वरसे प्राप्त हुई है।

मुसलमानी मतके स्थापन करनेवाले मुहम्मद साहब की निस्बत कहा जाता है कि वह बिना पढ़े लिखे साधारण बुद्धिके आदमी थे परन्तु उनके पास परमेश्वरका दूत परमेश्वरके वाक्य लाता था जिसका संग्रह होकर कुरान बना है--परमेश्वर के इन ही वाक्योंका उप देश मुहम्मद साहब अरब के लोगोंको दिया करते थे--ईसामसीह और इनसे पहले जो पैगम्बर हुये हैं उनके पास भी परमेश्वर की ही आज्ञा आया करती थी इस ही प्रकार अन्य मत मतांतरों का हाल है--हाल में भी पंजाबदेश के कादियान नगरमें एक मुसलमान महाशय मौजूद हैं जिनके पास परमेश्वरकी आज्ञा आती है और इस ही कारण भारत वर्षके हजारों हिन्दू मुसलमान उन पर श्रद्धा रखते हैं-

प्यारे आर्य भाइयो! उपर्युक्त लेखसे आपको पूर्णतया विदित हो गया कि यह सिद्धान्त कि तीन काल का ज्ञान रखने वाली शक्ति अपना ज्ञान किसी मनुष्यके द्वारा प्रकट कर सकती है, कैसा भयंकर और अंधकार फैलाने वाला है और इसके कारण अनेक मत मतान्तर फैलानेसे संसारमें कैसा उपद्रव मचा है! परन्तु कृपाकर विचार कीजिये कि यह सिद्धान्त पैदा कहांसे हुआ? इस प्रश्नके उत्तरमें प्यारे भाइयो आपको यह ही कहना पड़ैगा कि **वेदोंसे** क्योंकि सब मत मतान्तरोंके स्थापित होनेसे पहले वेदों हीका प्रकाश होना बयान किया जाता है और वेदोंकी ही उत्पत्तिमें यह सिद्धान्त स्थापित किया जाता है कि परमेश्वरने सृष्टिकी आदि में हजारों मनुष्यों को बिना मा बाप के पैदा करनेके पश्चात् उनमेंसे चार मनुष्योंको जिनका नाम अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा था एक एक वेद का ज्ञान दिया और उन्होंने उस ईश्वरके ज्ञान को मनुष्यों पर प्रकट करदिया-प्यारे भाइयो! आप जैसे बुद्धिमानोंको जो भारतवर्षका अंधकार दूर करना चाहते हैं ऐसा सिद्धान्त मानना योग्य नहीं है वरन आपको इस का निषेध करना चाहिये जिससे इस देशके बहुत उपद्रव दूर हो जावें-

इस स्थान पर हम बड़े गौरबके साथ यह प्रकट करते हैं कि यह केवलमात्र

जैनमत के ही तीर्थंकर हुए हैं

जिन्होंने इस सिद्धान्तका आश्रय नहीं लिया है जिन्होंने तप और ध्यान के बलसे अपनी आत्मासे मोह आदिक मैल को धोकर आत्माकी निज शक्ति अर्थात् पूर्णज्ञानको प्राप्त किया है और अपनेकेवल ज्ञानके द्वारा चराचर सर्व वस्तुओंको पूर्णरूप जानकर अपनी ही सर्वज्ञताका नाम लेकर सत्यधर्मका प्रकाश किया है--और किसी दूसरेके ज्ञानका आश्रय

नहीं बताया है--अर्थात् उन्होंने मनुष्योंको मौका दिया है कि वह उनकी सर्वज्ञताकी सर्व प्रकार परीक्षा करलेवें और तब उनके उपदेश पर श्रद्धा लावें अन्य मत स्थापन करने वालोंकी तरहसे उन्होंने यह नहीं कहा कि मैं जो कुछ कहता हूं वह ईश्वरके वाक्य हैं मैं स्वयम् कुछ नहीं जानता हूं इस कारण इन ईश्वर वाक्योंके सिवाय मेरी अन्य बातोंकी परीक्षा मत करो क्योंकि मैं तुम्हारे ही जैसा साधारण मनुष्य हूं--

भाइयो! जैनधर्म में जो तत्वार्थ वर्णन किया गया है वह इस ही कारण वस्तु स्वभावके अनुकूल है कि वह सर्वज्ञ का कहा हुआ है--आत्मीक ज्ञान, कर्मोंके ज्ञान, कर्मों के भेद, उन की उत्पत्ति बिनाश और फल देनेकी फिलासफी अर्थात सिद्धान्त इस ही हेतु जैन धर्ममें बड़े भारी विस्तार के साथ मिलता है कि यह ज्ञान सर्वज्ञको ही हो सकता है न कि गुप्त शक्तिके ज्ञान पर आश्रय करने वालेको--

हे प्यारे आर्य भाइयो! यह भयंकर और अन्धकार फैलाने वाला सिद्धान्त कि, कोई ज्ञानवान गुप्त शक्ति अपना ज्ञान किसी मनुष्यके द्वारा प्रकाश कर सकती है, यदि आपको मानना भी था तो किसी कार्यकारी बातके ऊपर माना होता परन्तु वेदोंको ईश्वरके वाक्य सिद्ध करनेके वास्ते ऐसे सिद्धान्तका स्थापित करना तो ईश्वरकी निन्दा करना है क्योंकि वेद तो गीतोंका संग्रह हैं वह शिक्षाकी पुस्तक कदाचित नहीं हो सकती है। कृपाकर आप इस सिद्धान्त को स्थापित करनेसे पहले स्वामी जीके अर्थ किये हुये वेदों को पढ़ तो लेवें और उन की ज़रा जांच तो कर लेवें कि ऐसे गीत ईश्वर वाक्य हो भी सकते हैं या नहीं--प्यारे भाइयो! जब आप ज़रा भी वेदोंको देखेंगे तो आप को मालूम हो जावेगा कि वेदोंमें साधारण सांसारिक मनुष्यों के गीतों के सिवाय और कुछ भी नहीं है वेदोंमें धार्मिक और सिद्धान्तका कथन तो क्या मिलैगा उसमें तो साधारण ऐसी भी शिक्षा नहीं मिलती है जैसी मनुस्मृति आदिक पुस्तकोंमें मिलती है देखिये क्या निम्न लिखित वाक्य ईश्वरके हो सकते हैं?॥

ऋग्वेद मंडल सातवां सूक्त २४ ऋचा २

"हे परमैश्वर्यके देनेवाले जो नाना प्रकारकी विद्या युक्त वाणी और सुन्दर चालढाल जिसकी ऐसी यह प्रिया स्त्री परमैश्वर्य देनेवाले पुरुषको निरन्तर बुलाती है उसको धारण करती है जिसने तेरा मन ग्रहण किया तथा जो दो से अर्थात् विद्या और पुरुषार्थसे बढ़ता वह उत्पन्न किया हुआ (सोम) औषधियोंका रस है [सोमकी बाबत् हम आगे सिद्ध करेंगे कि यह भंग आदिक नशोंकी कोई वस्तु होती थी जिसके पीनेका उपदेश वेदोंमें बहुत मिलता है] और जहां सब ओरसे सींचे हुये दाख वा शहत आदि पदार्थ हैं उन्हें सेवो--"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३२ ऋचा ६-८

"हे सोत्री ? अंगुलियों वाली जो प्र-

तिप्रेमसे विद्वानों की बहन है सो तू मैंने जो सब ओरसे होमा है उस देने योग्य द्रव्यको प्रीतिसे सेवन कर—"

"हे पुरुषो जैसे मैं जो गुरू मुरू बोले वा जो प्रेमास्पदको प्राप्त हुई जो पौर्णमासीके समान वर्त्तमान अर्थात् जैसे चन्द्रमाकी पूर्णकान्तिसे युक्त पौर्णमासी होती है वैसी पूर्ण कान्तिमती और जो विद्या तथा सुन्दर शिक्षा सहित वाणीसे युक्त वर्त्तमान है उस परमैश्वर्य युक्तको रक्षा आदिके लिये बुलाता हूं उस श्रेष्ठकी स्त्रीको सुखके लिये बुलाता हूं वैसे तुम भी अपनी २ स्त्री को बुलाओ—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२३ ऋचा १०-१३

"हे कामना करने हारी कुमारी जो तूं शरीर से कन्या के समान वर्त्तमान व्यवहारोंमें अतितेजी दिखाती हुई अत्यंत संग करते हुए विद्वान् पति को प्राप्त होती और सम्मुख अनेक प्रकार सद्गुणोंसे प्रकाशमान जवानीको प्राप्त हुई मन्द मन्द हंसती हुई छाती आदि अंगोंको प्रसिद्ध करती है सो तू प्रभात बेलाकी उपमाको प्राप्त होती है—"

"हे प्रातः समय की बेला सी अलबेली स्त्री तूं आज जैसे जलकी किरणको प्रभात समयकी वेला स्वीकार करती वैसे मनसे प्यारे पतिको अनुकूलताको प्राप्त हुई हम लोगोंमें अच्छी २ बुद्धि व अच्छे अच्छे कामको धर और उत्तम सुख देने वाली होती हुई हम लोगों को ठहरा जिससे प्रशंसित धन वाले हम लोगों में शोभा भी हो—"

ऋग्वेद प्रथम मंडलसूक्त १७९ ऋचा ४

"इधर से वा उधर से वा कहीं से सब ओर से प्रसिद्ध वीर्य रोकने वा अव्यक्त शब्द करने वाले वृषभ आदि का काम मुझ को प्राप्त होता है अर्थात् उनके सदृश काम देव उत्पन्न होता है और धीरज से रहित वा लोप हो जाना लुकि जाना ही प्रतीत का चिन्ह है जिसका सो यह स्त्री वीर्यवान धीरज युक्त श्वासें लेते हुए अर्थात् शयनादि दशा में निमग्न पुरुषको निरन्तर प्राप्त होती और उससे गमन भी करती है—"

प्यारे पाठको ! वेदों में कोई कथा नहीं है किसी एक स्त्री वा पुरुष का वर्णन नहीं है वरण अनेक पृथक् पृथक् गीत हैं तब किसी विशेष स्त्रीका कथन क्यों आया कथारूप पुस्तकों में तो इस प्रकार के कथन आने सम्भव हैं परन्तु ऐसी पुस्तकमें जिसकी बाबत यह कहा जाता है कि उस पुस्तक को ईश्वर ने सर्व मनुष्यों को ज्ञान और शिक्षा देने के वास्ते बनाया ऐसा कथन आना असम्भव ही है--यदि हमारे भाई वेदों को पढ़कर इस प्रकार के कथनों की संगति मिला कर दिखा देवें तब बेशक हमारा यह ऐतराज हट जावे नहीं तो स्पष्ट विदित है कि जिस बात पर कविताई करते समय कवियोंका ध्यान गया उस ही बात का गीत जोड़ दिया इस प्रकार वेदों के गीतों में कवियोंने अनेक कविताई की है। कविताओं के धनुषकी तारीफमें इसप्रकार गीत हैं:—

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ७५ ऋचा ३
"हे शूरवीर जो यह प्रत्यञ्चा अर्थात् धनुष को तांति जैसे विदुषी (विद्वान् स्त्री) कहने वाली होती वैसे अपने प्यारे मित्र के समान वर्तमान पतिको सब ओर से संग किये हुए पती स्त्री कामको निरंतर प्राप्त होती है वैसे धनुष के ऊपर विस्तारी हुई तांति संग्राम में पार को पहुंचाती हुई गूंजती है उसको तुम यथावत् जानकर उसका प्रयोग करो— ऋचा ५

हे मनुष्यो बहुत बालों की पालना करने वाले के समान इसके बहुत पुत्रके समान वाण संग्रामों को प्राप्त होकर धनुष चींचीं शब्द करता है तथा पीठ पर नित्य बंधा और उत्पन्न होता हुआ समस्त संग्रामस्थ वैरियोंकी टोली और सेनाओंको जीतता है वह तुम लोगों को यथावत् बनाकर धारण करना चाहिये—"

प्रभात वेला अर्थात् सुबहके समयकी प्रशंसामें वेदोंके कवियों ने इस प्रकार गीत बनाये हैं—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२४ ऋचा ७-९
"यह प्रातः समय की वेला प्रत्येक स्थान को पहुंचती हुई बिन भाई की कन्या जैसे पुरुषको प्राप्त हो उसके समान वा जैसे दुःखरूपी गढ़ेमें पड़ा हुआ जन धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिये राजगृह को प्राप्त हो वैसे सब ऊंचे नीचे पदार्थोंको पहुंचती तथा अपने पतिके लिये कामना करती हुई और सुन्दर वस्त्रों वाली विवाहिता स्त्री के समान पदार्थोंका सेवन करती और हंसती हुई स्त्री के तुल्य रूप को निरन्तर प्राप्त होती है"

"जैसे इन प्रथम उत्पन्न जेठी बहिनियों में अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन किन्हीं दिनों में अपनी जेठी बहिन के आगे जावे और पीछे अपने घर को चली जावे वैसे जिन से अच्छे अच्छे दिन होते वे प्रातः समय की वेला हम लोगोंके लिये निश्चय युक्त जिसमें पुरानी धन की धरोहर है उस प्रशंसित पदार्थ युक्त धनको प्रतिदिन अत्यन्त नवीन होती हुई प्रकाश को करें व अन्धकारको निराला करें—"

पवनकी प्रशंसा में कविताई

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६८ ऋचा ८ "हे विद्वानों जब पवन मेघोंमें हुई गर्जना रूपवाणीको प्रेरणा देते अर्थात् बद्दलों को गर्जाते हैं तब नदियां वज्र तुल्य किरणों से अर्थात् बिजुलीकी लपट झपटोंसे सोभित होती हैं और जब पवन मेघोंके जल वर्षाते हैं तब बिजुलियां भूमि पर मुसुकियाती सी जान पड़ती हैं वैसे तुम होओ ।"

प्रिय पाठको ! हम इस समय इस बातको बहस नहीं करते हैं कि वेदों में क्या २ विषय और क्या क्या मज़मून हैं इस को हम आगामी लेख में प्रकट करेंगे इस समय तो हम केवल इतना कहना चाहते हैं कि यदि परमेश्वर उन पुरुषोंको जो बिना मा बापके जंगल बयाबान में उत्पन्न हुये थे, जो

किसी प्रकार की भी भाषा नहीं जान ते थे कुछ ज्ञान वा शिक्षा देता सो क्या कबिताई में शिक्षा देता और कविताई भी सिलसिले वार नहीं वरन पृथक २ गीतों में, और गीत भी एक एक ही विषय के सैकड़ों और गीतोंका भी सिलसिला नहीं कि एक बातकी शिक्षा देकर उस बात के उपरान्त जो दूसरी बात सिखाने योग्य हो दूसरा गीत उस दूसरी बातका हो वरण वेदों में तो स्वामीजी के अर्थोंके अनुसार यह गीत ऐसे बिना सिलसिले के हैं कि यदि एक गीत अग्नि की प्रशंसा में है तो दूसरा स्त्रीके विषय में और तीसरा राजाकी स्तुति में और चौथा वायुकी प्रशंसा में और पांचवां संग्राम करने और शस्त्रोंसे वैरीको मारने काटनेके विषय में और छठा सोम पीने के उपदेश में और फिर राजा की स्तुति में और फिर अग्नि की प्रशंसा में और फिर सोमपान के विषय में और फिर वायु की प्रशंसा में गरज इसही प्रकार हजारों गीतोंका बेतुका सिलसिला चला गया है और जिस विषय का जो गीत मिलता है उसमें बहुधा कर वह ही बात होती है जो उस विषयके पहले गीतों में थी यहां तक कि एक विषय के बहुत से गीतों में एक ही दृष्टान्त और एक ही प्रकार के शब्द मिलते हैं–हमको शोक है तो यह है कि हमारे आर्या भाई वेदोंको पढ़कर नहीं देखते हैं वरण वेदोंके नामसे ही तृप्त हो जाते हैं और उनको ईश्वर वाक्य कहते हैं–यदि वह वेदोंको पढ़ैं तो अवश्य उनको ज्ञान प्राप्त हो और अवश्य उनके हृदय का यह अंधकार दूर हो।

॥ आर्यमत लीला ॥

(४)

वेदोंके प्रत्येक गीतको सूक्त कहते हैं और इन गीतोंकी प्रत्येक कलीको ऋचा कहते हैं-स्वामीजीके अर्थके अनुसार वेदोंका मज़मून इतना असंगत है कि प्रत्येक सूक्त अर्थात् गीतके मज़मूनका ही सिलसिला मिलता हुआ नहीं है वरण एक सूक्तकी ऋचाओंका भी मज़मून सिलसिलेवार नहीं मिलता है अर्थात् एक ऋचा एक विषयकी है तो दूसरी ऋचा बिलकुल दूसरे बिषय की, फ़ारसी व उर्दू में जो कबि लोग ग़ज़ल बनाया करते हैं उन ग़ज़लोंमें तो बेशक यह देखने में आता है कि कवि को इस बातका ध्यान नहीं होता है कि एक ग़ज़ल की सब शेरें एक ही विषय की हों बरन उसका ध्यान इस ही बात पर होता है कि एक ग़ज़ल की सब शेरोंकी एकही तुक हो अर्थात् रदीफ़ और क़ाफ़िया एक हो परन्तु संस्कृत और हिन्दीकी कविताईमें ऐसी बात देखने में नहीं आई--वह बात स्वामी जी के अर्थ किये हुये वेदों ही में मिलती है कि एक ही राग अर्थात् एक ही सूक्तकी प्रत्येक ऋचा अर्थात् कली का एक दूसरेसे बिलकुल ही विषय है॥

हमारे आर्या भाइयोंका यह श्रद्धान है कि वेदोंमें मुक्ति आदिक धर्मके विषय तो अवश्य कथन किये होंगे। यद्यपि वेदोंमें ऐसा कथन तो वास्तव में नहीं है परन्तु हमने ढूंडढांड कर एक सूक्त की ऐसी ऋचा तलाशकी है जिसमें मुक्ति शब्द को, अर्थ लिखते हुये जिस तिस प्रकार लिख ही दिया है उसका अर्थ स्पष्ट खुलनेके वास्ते हम वेदोंके शब्दों सहित उसको स्वामीजीके वेदभाष्यसे लिखते हैं-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४० ऋचा ५

"(यत्) जो (कृष्णम्) काले वर्ण के (अभ्वम्) न होने वाले (महि) बड़े (वर्पः) रूप को (ध्वस्मयन्तः) विनाश करते हुए से (करिक्रतः) अत्यंत कार्य करने वाले जन (वृथा) मिथ्या (प्रेरते) प्रेरणा करते हैं (ते) वे (अस्य) इस मोक्ष की प्राप्ति को नहीं योग्य हैं जो (महीम्) बड़ी (अवनिम्) पृथिवी को (अभि, मर्मृशत्) सब ओर से अत्यन्त सहता (अभिश्वसन्) सब ओर से श्वास लेता (नानदत्) अत्यंत बोलता और (स्तनयन्) बिजुली के समान गर्जना करता हुआ अच्छे गुणों को (सीम्) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है (आत्) इसके अनन्तर वह मुक्ति को प्राप्त होताहै-"

वाह वाह क्या विलक्षण सिद्धान्त स्वामी जी ने वेदों में दिखाया है कि जो मनुष्य काले रंगका है उसकी मुक्ति नहीं हो सकती है और जो बहुत बोलता और गरजता है उसकी मुक्तिहो जाती है-सारे वेद में ढूंड ढांडकर एक तो ऋचा मिली पर उस में भी अनोखाही मुक्तिका स्वरूप स्थापित किया गया परन्तु इस समय हम लेख में तो हमको यह नहीं दिखाना है कि मुक्ति का स्वरूप क्या होना चाहिये था वरण इस समय तो यह कथन आरहा है कि वेदों की एक सूक्तकी प्रत्येक ऋचा का भी विषय नहीं मिलता है वरण एकही सूक्त की एक ऋचा में कुछ है और दूसरी में कुछ और इस ही सूक्त की छठी ऋचा को स्वामी जी के अर्थ के अनुसार देखिये वह इस प्रकार है:-

"जो अलंकृत करता हुआ साधर्म्य की धारणा करने वालियोंमें अधिक नम्र होता वा दक्ष संबंध करने वाली स्त्रियों को अत्यन्त बात चीत कह सुनाता वा बैल के समान बलको और दुख से पकड़ने योग्य भयंकर सिंह सींगों को जैसे वैसे बलके समान आचरण करता हुआ शरीर को भी सुन्दर शोभायमान करता वा निरन्तर चलाता अर्थात् उनसे चेष्टा करता वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है-"

इस ही सूक्त नं० १४० की सातवीं ऋचा के अर्थ को देखिये वह इस प्रकार है:-

"हे मनुष्यो जैसे वह अच्छा ढांपने वा सुख फैलाने वाला विद्वान् सुन्दरता से अच्छे पदार्थों का ग्रहण करता वैसे जानता हुवा नित्य मैं ज्ञानवती उत्तम स्त्रियों के ही पास सोता हूं। जो माता

पिता के और विद्वानों में प्रसिद्ध रूप को निश्चयसे प्राप्त होते हैं वे बार बार बढ़ते हैं और उत्तम उत्तम कार्यों को भी करते हैं वैसे तुम भी मिला हुआ काम किया करो"-

प्यारे भाइयो ! विचार कीजिये कि इस सूक्त अर्थात् गीत को उपर्युक्त पांचवीं छठी और सातवीं ऋचा अर्थात् कली का विषय मिलता है वा नहीं ? बुद्धिमानो ! यदि आप स्वामी जी के अर्थों के अनुसार वेदको पढ़ेंगे तो आप को विदित हो जावेगा कि इस उपर्युक्त ऋचाओं का विषय तो शायद कुछ मिलता भी है परन्तु ऐसे सूक्त बहुत हैं जिन की ऋचाओं का विषय बिल्कुल नहीं मिलता है-इस कारण वेद कदाचित् ईश्वर वाक्य नहीं हो सकते हैं-

वेदों के पढ़नेसे यह भी प्रतीत होता है कि वेदोंके प्रत्येक सूक्त अर्थात् गीत अलग अलग मनुष्यों के बनाये हुये हैं। यदि एक ही मनुष्य इन गीतों को बनाता तो एक एक विषय के सैकड़ों गीत न बनाता और वेदों का कथन भी सिलसिलेवार होता-स्वामी जी के लेख से भी जो उन्हों ने सत्यार्थप्रकाशमें दिया है यह विदित होता है कि वेदका प्रत्येक गीत पृथक् पृथक् ऋषिके नामसे प्रसिद्ध है-और प्रत्येक मंत्र अर्थात् गीतके साथ उस गीतके बनाने वाले का नाम भी लिखा चला आता है इस विषय में स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाशके सातवें समुल्लासमें इस प्रकार लिखते हैं:-

"जिस मंत्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था किया और दूसरों को पढ़ाया भी इस लिये अद्यावधि उस उस मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है जो कोई ऋषियों को मंत्र कर्त्ता बतलावें उनको मिथ्यावादी समझें वे तो मंत्रों के अर्थ प्रकाशक हैं-"

हम को शोक है कि इस लेख को लिखते समय स्वामी जी को पूर्वापर का कुछ भी ध्यान न रहा यह बात भूल गये कि हम क्या सिद्ध करना चाहते हैं? स्वामी जी आप ही तो यह कहते हैं कि वेदों को ईश्वर ने सृष्टिकी आदि में उन मनुष्योंके ज्ञान के वास्ते प्रकाश किया जो सृष्टि की आदिमें बिना मा बाप के जंगल बयाबान में पैदा किये गये थे और जो किसी बात का भी ज्ञान नहीं रखते थे-क्या ऐसे मनुष्यों की शिक्षा के वास्ते ईश्वर ने ऐसा कठिन वेद दिया जिस का अर्थ सब लोग नहीं समझ सकते थे ? वरण वह यहां तक कठिन थे कि उस वेदके एक एक मंत्र का अर्थ समझने के वास्ते कोई कोई ऋषि पैदा होता रहा और जिस किसी ऋषि ने एक मंत्र का अर्थ भी प्रकाश कर दिया वह वेद का मंत्र उस ही ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हो गया स्वामी जी का यह कथन वेदों के

मानने वाले पुरुषों को कदाचित् भी माननीय नहीं हो सकता है क्योंकि इस से वेदों का सृष्टि की आदि में उत्पन्न होना खंडित होता है इस कारण यह प्राचीन लेख ही सत्य है कि वेदके प्रत्येक मंत्र अर्थात् गीतको प्रत्येक ऋषि ने बनाया है और इन सब गीतोंका संग्रह होकर वेद बन गया है इन ऋषियों को यदि हम धार्मिक ऋषि न कहें वरण कवि कहें तो कुछ अनुचित नहीं है क्योंकि कवि लोग साधारण मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान् समझे जाया करते हैं आज कल भी जो लोग स्वांग बनाने की कविता करते हैं वह उस्ताद कहलाये जाते हैं और स्वांग बनाने वालों के चेले स्वांग बनाने वाले उस्तादोंकी बहुत प्रशंसा किया करतेहैं-

हे आर्य भाइयो ! स्वामी जी ने यह तो कह दिया कि ईश्वरने मनुष्योंको सृष्टि की आदिमें वेदोंके द्वारा ज्ञानदिया परन्तु यह न बताया कि वेदोंकी भाषा समझनेके वास्ते उन मनुष्योंको वेदोंकी भाषा किसने सिखाई ? स्वामीजीका तो यह ही कथन है कि भाषा मनुष्य अपने आप नहीं बना सकता है वरण ईश्वर ही उन को भाषा सिखाता है तब वेदों के प्रकाश से पहले ईश्वर ने किसी मनुष्य का रूप धारण करके ही उन मनुष्योंको भाषा सिखाई होगी। क्योंकि वेदों में तो भाषा सीखने की कोई विधि नहीं है वरण वेदोंमें तो प्रारम्भ से अन्ततक गीत ही गीत हैं- प्यारे भाइयो ! स्वामीजीका कोई भी कथन इस विषय में सत्य नहीं होता है क्योंकि आप जानते हैं कि संसारमें हजारों और लाखों प्रकार के वृक्ष हैं और मनुष्यों द्वारा पृथक् २ वृक्ष का पृथक् २ नाम रक्खा हुआ है परन्तु वेदोंमें दश पांच ही वृक्षोंका नाम मिलेगा-संसारमें हजारों और लाखों प्रकारके पशु और पक्षी हैं और अलग अलग सबका नाम मनुष्योंकी भाषामें है परन्तु वेदोंमें दस बीसका ही नाम मिलेगा। संसार में हजारों प्रकार की औषधि हजारों प्रकार के औजार हजारों प्रकारकी वस्तु हैं और मनुष्यों ने सब के नाम रख रक्खे हैं और जो नवीन वस्तु बनाते जाते हैं उसका भी नाम अपनी पहचान के वास्ते रखते जाते हैं। परन्तु इनमेंसे बीस तीस ही वस्तुके नाम वेदमें मिलते हैं। तो क्या अनेक वस्तुओं के नाम मनुष्यों ने अपने आप नहीं रख लिये हैं और क्या इस ही प्रकार मनुष्य अपनी भाषा नहीं बना लेते हैं। यदि ऐसा है तो फिर आप क्यों स्वामी जी के इस कथन को मानते हैं कि बिना वेदों के मनुष्य अपनी भाषा भी नहीं बना सकता है ?

हम अपने आर्य भाइयों से पूछते हैं कि संस्कृत भाषा सब से श्रेष्ठ और उत्तम भाषा है या नहीं और गंवारू भाषा का संस्कार करके अर्थात् शुद्ध करके ऋषियों ने इसको बनाया है वा

नहीं ? । इन बातों के सिद्ध करने के वास्ते तो आप को किसी भी हेतु की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि आप स्वयम् संस्कृत भाषा की प्रशंसा किया करते हैं और संस्कृत शब्द काही वह अर्थ होता है कि वह संस्कारकी हुई है अर्थात् शुद्ध की हुई है । परन्तु प्यारे भाइयो आप यह भी जानते हैं कि वेदोंकी भाषा संस्कृत भाषा नहीं है वरण संस्कृत से बहुत मिलती जुलती है और यह भी आप मानेंगे कि वेदोंकी भाषा पहली है और संस्कृत भाषा उसके पश्चात् बनी है अर्थात् वेदोंकी भाषा कोही संस्कार करने अर्थात् शुद्ध करने से संस्कृत नाम पड़ा है । अर्थात् संस्कृतसे पहले भाषा गंवारूथी जिसको शुद्ध करके ऋषियों ने मनोहर और सुन्दर संस्कृत भाषा बनाई है । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदों की भाषा गंवारू है और वेद की भाषा और संस्कृत भाषा में इतना ही अन्तर है जितना गांवके मनुष्यों की और किसी बड़े शहर की भाषा में अंतर होता है । यदि वेदोंकी भाषा गंवारू भाषा न होती तो वह ऋषि जन जिनको शुद्ध मनोहर संस्कृत भाषा बनाने की आवश्यक्ता हुई वह संस्कृत भाषा सुन्दर और मनोहर होती तो वेदों की ही भाषाका प्रचार करते परन्तु स्वामी जीके कथनानुसार वेदकी भाषा को तो ईश्वर की भाषा कहना चाहिये तो क्या मनुष्य ईश्वर से भी उत्तम भाषा बना सक्ता है यदि नहीं बना सक्ता है तो ऋषियोंने क्यों संस्कृत बनाई और क्यों आप लोग संस्कृत भाषा की प्रशंसा करते हैं ? वरण उन ऋषियों को मूर्ख और ईश्वर विरोधी कहना चाहिये जिन्होंने ईश्वर की भाषा को नापसन्द करके और उसका संस्कार करके अर्थात् उसमें कुछ अलट पलट करके संस्कृत भाषा बनाई । परन्तु ऐसा न कह कर यह ही कहना पड़ैगा कि वेद ईश्वर का वाक्य नहीं है और वेदों की भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है । हम यह नहीं कहते हैं कि गंवारों और मूर्खोंको समझानेके वास्ते विद्वान् लोग उन मूर्खों की भाषा में उपदेश नहीं कर सकते हैं वरण हमतो इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मूर्खों और गंवारों को उन की ही गंवारू बोली में उपदेश देना चाहिये जिससे वह उपदेश को अच्छे प्रकार समझ सकैं परन्तु जिस समय स्वामी जी के कथनानुसार ईश्वर ने वेदप्रकाश किए उस समय तो कोई भाषा प्रचलित नहीं थी जिस में अपना ज्ञान प्रकाश करने के वास्ते ईश्वर मजबूर होता वरण उस समय तो सृष्टि की आदि थी और आर्या भाइयों के कथन के अनुसार उस समय के मनुष्य कोई भाषा नहीं बना सकते थे इस कारण उन को जो भाषा सिखाई वह ईश्वने ही सिखाई । वह भाषा जो इस प्रकार सृष्टिकी आदिमें सिखाई वह वेदों

की ही भाषा हो सकती है नकि कोई और भाषा। परन्तु वेदों की भाषाको तो विद्वान् ऋषियोंने नापसन्द किया और उस को शुद्ध करके संस्कृत बनाई। तब क्यों ईश्वर ने सृष्टिकी आदि में ऐसी भाषा दी जिसको शुद्ध करना पड़ा। इससे स्पष्ट सिद्ध होगया है कि वेदोंकी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है बरण ग्रामीण कवियोंने अपनी गंवारू भाषामें कविता की है जिसका संग्रह होकर वेद बन गये हैं ॥

वेदकी भाषाके विषयमें स्वामीजीने एक अद्भुत प्रपंच रचा है वह सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासमें लिखते हैं॥

"(प्रश्न) किसी देश भाषामें वेदों का प्रकाश न करके संस्कृतमें क्यों किया?"

"(उत्तर) जो किसी देश भाषामें प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता क्योंकि जिस देशकी भाषामें प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियोंको कठिनता वेदोंके पढ़ने पढ़ानेकी होती इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया जो किसी देशकी भाषा नहीं और वेदभाषा अन्य सब भाषाओंका कारण है उसीमें वेदोंका प्रकाश किया। जैसे ईश्वरकी पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालोंके लिये एकसी और सब शिल्पविद्याका कारण है वैसे परमेश्वरकी विद्याकी भाषा भी एक सी होनी चाहिये कि सब देशवालोंको पढ़ने पढ़ानेमें तुल्य परिश्रम होनेसे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता और सब भाषाओंका कारण भी है॥"

वाह! स्वामी दयानन्दजी! धन्य है आपको! क्या आपका यह आशय है कि जिस समय ईश्वरने वेदोंको प्रकाश किया उस समय पृथिवीके सब देशोंमें इस ही प्रकार भिन्न भिन्न भाषा थी जिस प्रकार इस समय अनेक प्रकारकी भाषायें प्रचलित हो रही हैं? यद्यपि इस स्थानपर आप ऐसा ही प्रगट करना चाहते हैं परन्तु दूसरे स्थान पर आप तो वेदोंका प्रकाश होना उस समय सिद्ध करते हैं जब कि सृष्टिकी आदिमें ईश्वरने तिब्बत देशमें मनुष्योंको बिना मा बाप के पैदा किया था और जब कि पृथिवीमें अन्य किसी स्थान पर कोई मनुष्य नहीं रहता था और जो मनुष्य तिब्बतमें उत्पन्न किये गये थे उनकी भी कोई भाषा नहीं थी!

मालूम पड़ता है कि स्वामीजीको सत्यार्थप्रकाश में यह लेख लिखते समय उस समयका ध्यान नहीं रहा जब सृष्टिकी आदि में ईश्वर को वेदोंका प्रकाश करने वाला बताया जाता है बरण स्वामीजीको अपने समयका ध्यान रहा और यह ही समझा कि हम ही इस समय वेदोंको प्रकाश करते हैं अर्थात् बनाते हैं क्योंकि स्वामी जीके समयमें बेशक पृथिवीके प्रत्येक देशकी पृथक् २ भाषा है और संस्कृत भाषा जिसमें वेदों का प्रकाश स्वामी जी ने किया स्वामीजीके समयमें किसी देश की प्रचलित भाषा भी नहीं थी। इस

ही कारण स्वामी जी लिखते हैं कि "इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया जो किसी देश की भाषा नहीं" और फिर आगे चलकर इस ही लेखमें इस ही को पुष्ट करते हुए स्वामीजी लिखते हैं "कि सब देशवालों को पढ़ने पढ़ानेमें तुल्य परिश्रम होनेसे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता" स्वामीजीका यह कथन बिल्कुल सत्य होता यदि वह अपने आपको वेदों का बनाने वाला कहते परन्तु वह तो ईश्वरको वेदों का प्रकाश करने वाला बताते हैं तब स्वामीजीका यह लेख कैसे संगत हो सकता है क्या स्वामीजीका यह आशय है कि सृष्टि की आदि में जिन मनुष्यों में वेद प्रकाश किये गये वह कोई अन्य भाषा बोलते थे और ईश्वर ने उस प्रचलित भाषा से भिन्न भाषा में अर्थात् संस्कृत भाषा में वेदों का प्रकाश किया? ऐसी दशा में वेदों के प्रकाश होने के समय सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुवे मनुष्य जो भाषा बोलते थे वह भाषा उन को किसने सिखाई और किस रीतिसे सिखाई? क्या उन्होंने अपने बोलने के वास्ते अपने आप भाषा बनाली? परन्तु आप तो यह कहते हैं कि मनुष्य बिना सिखाये कोई काम कर ही नहीं सकता है और अपने बोलने के वास्ते भाषा भी नहीं बना सकता है इस हेतु लाचार आप को यह ही कहना पड़ेगा कि वेदों के प्रकाश होने से पहले कोई भाषा मनुष्यों की नहीं थी उन्होंने जो भाषा सीखी वह वेदों से ही सीखी। इसके अतिरिक्त यदि वह आदि में उत्पन्न हुवे मनुष्य कोई और बोली बोलते थे और वेद जिसके बिदून मनुष्य को कोई ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है वह संस्कृत में दिया गया तो उन मनुष्यों में ईश्वर ने वेद को प्रकाश किस तरह किया होगा।? वह लोग तो पशु समान जंगली और अज्ञानी थे अपनी कोई जंगली भाषा बोलते होंगे परन्तु उन मूर्खों को छोटी मोटी सब बात सीखने के वास्ते उपदेश मिला संस्कृत में जो उन की बोली नहीं थी तो इससे उनको क्या लाभ हुआ होगा? वेदोंका उपदेश प्राप्त करने से पहले उनको संस्कृत भाषा पढ़नी पड़ी होगी परन्तु पढ़ाया किसने और उन्होंने पढ़ा कैसे? इससे विदित होता है कि वेदोंके प्रकाश करनेसे पहले ईश्वरने संस्कृत व्याकरण और संस्कृत कोष और संस्कृत की अन्य बहुत सी पुस्तकें किसी विधि प्रकाश की होंगी जिनसे इतनी विद्या प्राप्त हो सके कि वेदों के अर्थ समझ में आ सकें और वेदों के प्रकाश करने से पहले सृष्टि की आदि में पैदा हुये अज्ञान मनुष्यों के पढ़ने तथा संस्कृत भाषा पढ़ाने के वास्ते अनेक पाठशालायें भी खोली होंगी और सर्व मनुष्यों को उन पाठशालाओं में संस्कृत पढ़ाई होगी। परन्तु इतनी संस्कृत पढ़ने के वास्ते जिससे वेदों का अर्थ समझमें

आकाश कम से कम १५ वा २० वर्ष लगते हैं आश्चर्य है कि इतने लम्बे समय तक वह लोग जीवित किस तरह रहे होंगे ! क्योंकि जब तक मनुष्य संस्कृत भाषा न सीख लेवें तब तक उनको वेद शिक्षा किस प्रकार दीजावे और स्वामी जी के कथनानुसार मनुष्य बिना वेदोंके कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है न उसको भोजन बनाना आ सकता है और न कपड़ा पहनना और न घर बना कर रहना। इस कारण जब तक वह संस्कृत पढ़ते रहे होंगे तब तक पशु की ही समान विचरते रहे होंगे और डंगरों की तरह घास ही चरते होंगे और ऐसी दशा में उन की भाषा ही क्या होगी क्योंकि जब तक कोई पदार्थ जिनको मनुष्य काम में लाते हैं बना ही नहीं तब तक उन पदार्थों का नाम ही क्या रक्खा जा सकता है और पदार्थों के नाम रक्खे बिदून भाषा ही क्या बन सकती है? इस कारण हमारे आर्य भाइयों को लाचार यह ही मानना पड़ैगा कि वेदों के प्रकाश होने के समय वह ही भाषा बोली जाती थी जिस भाषा में वेदों का मज़मून है और कम से कम यह कहना पड़ैगा कि वेदोंके प्रकाश होने से पहले कोई भाषा नहीं थी बरण वेदों ही के द्वारा ईश्वर ने मनुष्योंको वह भाषा बोलनी सिखाई जो वेदों में है। नतीजा इन सब बातों का यह हुआ कि वेदों के समय वेद की भाषा मनुष्यों की बोलीथी परन्तु यदि वेदों को ईश्वरकृत कहा जावे तो यह भी मानना पड़ैगा कि ईश्वर ने मनुष्यों को वह भाषा बोलने के वास्ते दी जो वेदों में है। परन्तु वेदों की भाषा वह भाषा नहीं है जो संस्कृत भाषा कहलाती है बरण वेदों की भाषा को संशोधन करके ऋषि लोगों ने संस्कृत भाषा बनाई है अर्थात् ईश्वर की भाषा को संशोधन किया अर्थात् चाहे वह वेदों की भाषा ईश्वर की दी हुई थी वा ईश्वर की भाषा थी वा जो कुछ थी परन्तु थी वह गंवारू भाषा जिस का संस्कार करके सुन्दर संस्कृत बनाई गई। इस हेतु यदि वह ईश्वरकी भाषा थी तो ऋषिजन जिन्होंने संस्कृत बनाई वह ईश्वरसे भी अधिक ज्ञानवान और ईश्वर से अधिक सुन्दर वस्तु बनाने वाले थे॥

आर्यमत लीला।

[ख–भाग]

ऋग्वेद

(५)

आज कल अफ़रीका देश में हबशी रहते हैं यह लोग अग्नि जलाना नहीं जानते थे बरण जिस प्रकार शेर व हाथी अग्नि से डरते हैं इस ही प्रकार वे भी डरा करते थे। अंगरेजों ने इन

के देशों में जाकर बड़ी कठिनाई से इनको अग्नि जलाना, अनाज भूनना और भोजन पकाकर खाना आदिक बहुत क्रियायें सिखाई हैं परन्तु अब तक भी वह ऐसे नहीं हुये हैं जैसे हिन्दुस्तान के ग्रामीण मनुष्य होते हैं। हमारे ग्रामीण मनुष्य अब भी इनसे बहुत ज्यादा होशियार और सभ्य हैं अंग्रेज़ों की एक पुस्तक में एक समय का वर्णन लिखा है कि जिन हबशियों को अंगरेज़ोंने बहुत कुछ सभ्यता सिखादी थी और वह बहुत कुछ होशियार होगये थे उनके देशमें एक अंग्रेज एक नदी का पुल बनवा रहा था, हबशी लोग मज़दूरी कर रहे थे, अंगरेज को पुलके काम में गुणिया की ज़रूरत हुई, रहनेका मकान दूर था इस कारण साहबने एक ईंटपर चिट्ठी लिखकर एक हबशी को दी और कहा कि यह ईंट हमारे मकान पर जाकर हमारी मेमसाहबको देदो-हबशी ईंट लेगया मेमने पढ़कर गुणिया हबशीको देदिया कि लेजाओ। हबशीको बहुत अचम्भा हुआ और मेमसाहब का हाथ पकड़ कर कहने लगा कि सच बता तुझे किसने कहा कि साहबको गुणिया दरकार है। मेमने हबशीको बहुत कुछ समझाया कि जो ईंट तू लाया था उस पर लिखा हुआ था परन्तु वह कुछ भी न समझ सका क्योंकि वह लिखने पढ़नेकी विद्याको कुछ भी नहीं जानता था। वह गुणिया लेकर साहबके पास आया और उससे भी यह ही बात पूछी। साहब ने भी बहुत कुछ समझाया परन्तु उसकी कुछ समझमें न आया वह तुरन्त वहांसे चलागया और उस ईंटमें, जिस पर साहब ने चिट्ठी लिखी थी, एक सूराख करके और रस्सी डालकर उसको गलेमें लटकाकर ढोल बजाता हुआ गांव गांव यह कहता हुआ फिरने लगा कि अंग्रेज लोग जादूगर हैं जो ईंटके द्वारा बात चीत करते हैं। देखो इस ईंट ने मेमसाहब को यह कहदिया कि साहब गुणिया मांगता है॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने जो वेदोंके अर्थ किये हैं उनके पढ़नेसे भी यह मालूम होता है कि किसी देशमें हबशी लोग रहते थे उन हबशियों ने जिस समय अग्नि जलाना और अग्निमें भोजन आदिक बनाना जान लिया उस समय उनको बहुत अचम्भा हुआ और उन्होंने ही अग्निकी प्रशंसा और अन्य मनुष्योंको अग्नि जलाना सीखनेकी प्रेरणा आदिक में वेदों के गीत बनाये हैं। इस प्रकारके सैकड़ों गीत वेदोंमें मौजूद हैं परन्तु हम कुछ वाक्य स्वामी दयानन्दजीके वेद भाष्य के हिंदी अर्थोंमेंसे नीचे लिखते हैं:—

ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त ४ ऋचा १ "जैसे-मैं अग्नि को तुम लोगोंके लिये प्रशंसा करता हूं वैसे हम लोगोंके लिये तुम अग्नि की प्रशंसा करो—"

ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त ६ ऋचा २ "हे शोभन गुणोंमें प्रसिद्ध घोड़के

इच्छा करने और बल को न पतन कराने वाले अग्नि के समान प्रकाशमान आपके सम्बंध में जो अग्नि है उसकी इस समिधा से और उत्तमतासे कहे हुए सूक्त से हम लोग सेवनकरें-"

ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त २१ ऋचा १

"संसारी पदार्थोंकी निरन्तर रक्षा करने वाले वायु और अग्नि हैं उन को और मैं अपने समीपकामकी सिद्धि के लिये वशमें लाता हूं। और उनके और गुणोंके प्रकाश करनेको हम लोग इच्छा करते हैं।"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ८ ऋ० ४

"जो बिजली रूप चित्र विचित्र अद्भुत अग्नि अविनाशी पदार्थोंसे सब और से सब पदार्थों को प्रकट करता हुआ अग्नि प्रशंसनीय प्रकाशसेआदित्यके समान अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है वह सब को ढूंढने योग्य है।"

ऋग्वेद मंडल सात सूक्त १ ऋ० १

"हे विद्वान् मनुष्यो जैसे आप उत्तेजित क्रियाओंसे हाथोंसे प्रकट होने वाली घुमाने रूप क्रियासे (अरण्योः) अरणी नामक ऊपर नीचेके दो काष्ठों में दूर में देखने योग्य अग्नि को प्रकट करें-"

ऋग्वेद मंडल सात सूक्त १५ ऋ० ८

"हे राजन् हम को चाहने वाले सुन्दर और पुरुषों से युक्त आप रात्रियों और किरण युक्त दिनों में हमको प्रकाशित कीजिये आप के साथ सुन्दर अग्नियों वाले हम लोग प्रति दिन प्रकाशितहों"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १

हम अग्नि की वारम्वार इच्छा करते हैं-यह अग्नि नित्य खोजने योग्यहै अग्नि ही को संयुक्त करने से धन प्राप्त होता है

अग्नि ही से यज्ञ होता है

अग्नि दिव्य गुणवाली है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२

"हम अग्नि को स्वीकार करते हैं"

"जैसे हम ग्रहण करते वैसे ही तुम लोग भी करो"

"अग्नि होम किये हुए पदार्थ को ग्रहण करने वाली है और खोज करने योग्य है"

"अग्नि की ठीक २ परीक्षा करके प्रयोग करना चाहिये"

अग्नि बहुत कार्यकारी है जो लाल लाल मुख वाली है

"हे मनुष्य सब सुखोंकी दाता अग्नि को सब के समीप सदा प्रकाशित कर जो प्रकाश और दाह गुण वाले अग्नि का सेवन करता है उसकी अग्नि नाना प्रकार के सुखोंसे रक्षा करने वाला है-"

अग्नि की स्तुति विद्वान् करते हैं--

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ९ ऋ० ५

"अग्नि को आत्मा से तुम लोग विशेष कर जानो"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २९ ऋ० २

"जिन्होंने अग्नि उत्तम प्रकार धारण किया उन पुरुषों को भाग्य शाली जानना चाहिये—"

ऋ० मं० ३ सू० २९ ऋ० ५ का भावार्थ

"जो मनुष्य मथकर अग्निको उत्पन्न

करके कार्यों को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य युक्त होते हैं

(नोट) उस समय दीवासलाई तो थी नहीं इसी कारण दो वस्तुओं को रगड़ कर वा टकराकर अग्नि पैदा करते थे—

ऋग्वेद पंचममंडल सूक्त ३ ऋ० ४

अग्नि को विस्तारते हुए विद्वान मनुष्य चिल्ला चिल्ला उसका उपदेश दे रहे हैं वे मृत्यु रहित पदवी को प्राप्त होवें—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६ ऋ० २

"जिसकी मैं प्रशंसा करता हूं वह अग्नि है उसके प्रयोग से अध्यापकों के लिये अन्न को सब प्रकार धारण कीजिये,,—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १७ ऋ० ४

"हे विद्वान् जिन की संपूर्ण प्रजाओंमें ग्रहण करने योग्य अग्नि प्रशंसा को प्राप्त होता है—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४८ ऋ०१

"विद्वान्जन मनुष्य सम्बन्धिनी प्रजाओं में सूर्यके समान अद्भुत और रूप के लिये विशेषतासे भावना करनेवाले जिस अग्नि को सब ओर से निरंतर धारण करते हैं उस अग्निको तुम लोग धारण करो—"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १५ ऋ० ६

"हे मनुष्यो! वह अत्यन्त यज्ञकर्ता देने योग्य पदार्थों को प्राप्त होनेवाला पावक अग्नि हमारी इस शुद्ध क्रिया को और आशियों को प्राप्त हो उसको तुम लोग सेवन करो।"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३५ ऋ० ११

"हे मनुष्यो जो इस अग्नि का सुंदर सैन्यके समान तेज और अपने गुणोंसे निश्चित आख्या अर्थात् कथन प्राणोंके पौत्रके समान वर्तमान व्यवहारसे बढ़ता है वा जिसको प्रबल यौवनवती स्त्री इस हेतु से अच्छे प्रकार प्रदीप्त करती हैं वा जो तेजोमय शोभन शुद्ध स्वरूप जल वा घी और अच्छा शोधा हुआ खाने योग्य अन्न इस अग्निके संबंधमें वर्तमान है उसको तुम जानो—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३ ऋ० ३

मैं अग्नि जलाता हूं जो यज्ञमें जलाई जाती है और काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरूपी जिसकी जीभ हैं अग्नि की सात जीभ हैं॥

वेदोंके पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि उस समयके वहशी लोगोंने अग्निको पाकर और उससे भोजन आदिक अनेक प्रकारकी सिद्धि को देखकर अग्नि पूजना प्रारम्भ किया और अग्नि को जलाकर उसमें घी दूध आदिक वह द्रव्य जिनको वह सबसे उत्तम समझते थे अग्निमें चढ़ाने लगे--इस प्रकार की पूजाको वह लोग यज्ञ कहते थे फिर कुछ सभ्यता पाकर यज्ञके संबंधके अनेक गीत उन लोगों ने बना लिये। वेदोंमें ऐसे गीत बहुत ही ज्यादा मिलते हैं:-

स्वामी दयानन्द सरस्वतीके वेदभाष्य

के हिन्दी अर्थोंमें से हम कुछ वाक्य इस विषयके नीचे लिखते हैं:-

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त २ ऋचा ४

हे मनुष्यों जैसे विद्वानों के समीप पग पीछे करके सन्मुख घोटूं जिनके हों वे विद्यार्थी विद्वान होकर सत्य का सेवन करते और विद्याको धारण करते हुए अन्न के साथ उत्तम घृत आदि को अग्निमें छोड़ते हैं "

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२ ऋ० ५-११

जिसमें घी छोड़ा जाता है वह अग्नि राक्षसोंको विनाश करती है--"भौतिक अग्नि अच्छी प्रकार मन्त्रोंके नवीन २ पाठ तथा गान युक्त स्तुति और गायत्री छन्द वाले प्रगाथोंसे गुणोंके साथ ग्रहण किया हुआ उक्त प्रकारका धन और उक्त गुण वाली उत्तम क्रियाको अच्छी प्रकार धारण करता है--"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३ ऋ० ६-८

" हे विद्वानो ! आज यज्ञ करने के लिये घर आदिके अलग २ सत्य सुख और जल के वृद्धि करने वाले तथा प्रकाशित दरवाजोंका सेवन करो अर्थात् अच्छी रचनासे उनको बनाओ मैं इस घर में जो हमारे प्रत्यक्ष यज्ञको प्राप्त करते हैं उन सुन्दर पूर्वोक्त सात जीभ, पदार्थोंका ग्रहण करने, तीव्र दर्शन देने और दिव्य पदार्थोंमें रहने वाले प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अग्नियों को उपकारमें लाता हूं ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २१ ऋ० २

" हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो ! तुम जिस पूर्वोक्त वायु और अग्निके गुणों को प्रकाशित तथा सब जगह कामोंमें प्रदीप्त करते हो उन को गायत्री छन्द वाले वेदके स्तोत्रोंमें षड्ज आदि स्वरोंमें गाओ--"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४१ ऋ० १९

" हे स्त्री पुरुषो जो सुख की सम्भावना कराने वाले दोनों स्त्री पुरुष यज्ञ की विद्याओंको प्राप्त होते और हव्य द्रव्यको पहुंचाने वाले अग्नि को प्राप्त होते उन्हींको हम लोग अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं--"

वेदोंके गीत बनाने वालों ने केवल अग्नि ही की प्रशंसा में गीत नहीं बनाये हैं बरण जो जो वस्तु उन को उपकारी ज्ञात होती रही हैं उस ही को पूजने लगे हैं और उस ही के विषयमें गीत जोड़ दिया है। दृष्टान्तरूप जलकी स्तुतिका एक गीत हम स्वामी दयानन्दजीके वेद भाष्यके हिन्दी अनुवादसे लिखते हैं--//

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ४९ ऋचा २

" हे मनुष्य जो शुद्ध जल चूते हैं अथवा खोदनेसे उत्पन्न होते हैं वा जो आप स्वयम्भू उत्पन्न हुए हैं अथवा समुद्रके लिये हैं वा जो पवित्र करने वाले हैं वह देदीप्यमान जल इस संसारमें मेरी रक्षा करें--"

नदी की प्रशंसा वेदों में इस प्रकार की गई है--

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५० ऋ० ४

" जो जाने योग्य नीचे वा ऊपरले देशोंको जाती हैं और जो जलसे भरी

वा जल रहित हैं वे सब नदियां ह-मारे लिये जलसे सींचती हुईं वा तृप्त करती हुईं भोजनादि व्यवहारों के लिये प्राप्त होती हुईं आनन्द देने और सुख करने वाली हों और भोजनादि स्नेह करने वाली हों—"

बादल की स्तुति वेदोंमें इस प्रकार की गई है—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १४

" हे स्तुति करने वाले आप जो मेघोंसे युक्त और बहुत जल वाला अन्तरिक्ष और पृथिवी को सींचता हुआ बिजुलीके साथ प्राप्त होता है और जो उत्तम प्रशंसा युक्त है उस गर्जना करते हुए को निश्चय से प्राप्त होओ और आप शब्द करते हुए पृथिवीके पालन करनेवालेको उत्तम प्रकार जनाइये।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १६

" हे विद्वन् ...... और दाता आप और जो यह प्रशंसा करने योग्य मेघ वा वन्हि धन के लिये भूमि आकाश और यव आदि ओषधियों तथा वट और अश्वत्थ आदि वनस्पतियों को प्राप्त होता है उस को आप अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये वह मेरेलिये सुख कारक होवे जिससे यह पृथिवी (माता) माताके सदृश पालन करने वाली हम लोगोंको दुष्ट बुद्धिमें नहीं धारण करे-"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ८३ ऋ० ३

" हे विद्वन् जो मेघ मारने के लिये रस्सी अर्थात् कोड़ेसे घोड़ों के सन्मुख लाता हुआ प्रमुख रथवालेके सदृश वर्षाओंमें श्रेष्ठ दूतों को प्रकट करता है परतन्त्र करनेमें वे दूरसे सिंहके सदृश कम्पाते वा चलते हैं और पर्जन्य वर्षाओंमें हुए अन्तरिक्षको करता अर्थात् प्रगट करता है उसको आप पुकारिये भावार्थ—जैसे सारथी घोड़ों को यथेष्ट स्थानमें लेजानेको समर्थ होता है वैसे ही मेघ जलोंको इधर उधर लेजाता है

जिस प्रकार वेदोंके कवियोंने अग्नि जल आदिक अनेक वस्तुओंसे प्रार्थना की है इस ही प्रकार सर्प आदि भय कारी जीवोंसे भी प्रार्थना की है हम स्वामी दयानन्दजी के अर्थोंके अनुसार कुछ वाक्य यहां लिखते हैं ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सू०१९१ ऋ०५--६

" वे ही पूर्वोक्त विषधर वा विष रात्रिके आरम्भमें जैसे चोर वैसे प्रतीतिसे दिखाई देते हैं। हे दृष्टि पथ न आने वाले वा सबके देखे हुए विषधारियो तुम प्रतीत ज्ञानसे अर्थात ठीक समयसे युक्त होओ ,,--

" हे दृष्टि गोचर न होने वाले और सबके देखे हुए विषधारियो जिन का सूर्यके समान सन्ताप करने वाला तुम्हारा पिता पृथ्वीके समान माता चन्द्रमाके समान भ्राता और विद्वानोंकी अदीन माताके समान बहन है वे तुम उत्तम सुख जैसे हो ठहरो और अपने स्थानको जाओ--,,

जिस प्रकार कविलोग स्त्रियोंका वर्णन किया करते हैं उस ही प्रकार वेदोंके कवियों ने भी स्त्रियों का वर्णन किया है हम कुछ वाक्य स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके वेदभाष्यसे लिखते हैं

ऋग्वेद मण्डल सात सूक्त १ ऋ० ६

" जैसे युवावस्था को प्राप्त कन्या-रात्रि दिन अच्छे यत्न युक्त निज पति को समीपसे प्राप्त होती है······वैसे अग्नि विद्याको प्राप्त होके तुम लोग आनन्दित होओ--„

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५६ ऋ० ५

" हे सभापति शत्रुओंको मार अपने राज्यको धारण कर अपनी स्त्रीको आनन्द दियाकर । "

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८२ ऋ० ५

आप के जो सुशिक्षित घोड़े हैं उन को रथमें युक्त कर जिस तेरे रथके एक घोड़ा दाहिने और बांई ओर हो उस रथपर बैठ शत्रुओंको जीतके अतिप्रिय स्त्रीको साथ बैठा आप प्रसन्न और उस को प्रसन्न करताहुआ अन्नादि सामग्रीके समीपस्थ होके तू दोनों शत्रुओं को जीतने के अर्थ जाया करो ।

ऋग्वेद चौथामंडल सूक्त ३ ऋ० २

"हे राजन् हम लोग आप के जिस गृह को बनावैं सो यह गृह स्वामी के लिये कामना करती हुई सुन्दर वस्त्रोंसे शोभित मन की प्यारी स्त्री के सदृश इस वर्तमान काल में हुआ सब प्रकार व्याप्त उत्तम गुण जिस में ऐसा हो उस में आप निवास करो-

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १४ ऋ० ३

हे विद्या युक्त और उत्तम गुण वाली स्त्री तू जैसे उत्तम प्रकार जोड़ते हैं घोड़ों को जिस में उस वाहन के सदृश अपने किरणों से प्राणियों को जगाती हुई और ऐश्वर्य के लिये जगाती हुई प्रकाशसे अद्भुत स्वरूप वाली किंचित् लाल आभा युक्त कान्तियों को सब प्रकार प्राप्त कराती हुई बड़ी अत्यन्त प्रकाशमान प्रातःकाल की वेला जाती और आती है वैसे आप हूजिये—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८२ ऋ० ६

"हे उत्तम शस्त्र युक्त सेनाध्यक्ष जैसे मैं तेरे अन्नादि से युक्त नौकारथ में सूर्य की किरण के समान प्रकाश मान घोड़ों को जोड़ता हूं जिस में बैठके तू हाथों में घोड़ों की रस्सी को धारण करता है उस रथ से और शत्रुओं की शक्तियोंको रोकने हारा तू अपनी स्त्री के साथ अच्छेप्रकार आनंदको प्राप्त हो--

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३ ऋ० ५

"हे पुरुषो आप अन्नादिको वा पृथिवी के साथ वर्तमान द्वारों के समान शोभावती हुई और ग्रहण की हुई जिनकी सुन्दर चाल ज्वर रहित मनुष्यों में उपमा को प्राप्त उत्तम वीरोंसे युक्त यश और अपने रूपको पवित्र करती हुई समस्त गुणों में व्याप्ति रखने वाली देदीप्यमान अर्थात् चमकती दमकती हुई स्त्रियों को विशेषता से आश्रय करो और उनके साथ शास्त्र वा सुखों को विशेषता से कहो सुनो,,

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २९ ऋ० १

हे सूर्य के तुल्य विद्याके प्रकाशक न्याययुक्त नियमों को धारण किये हुए विद्वान् लोगो तुम मेरे दूर वा समीप में सत्य को प्रवृत्त करो एकांतमें अपने

वाली व्यभिचारिणी के तुल्य अपराध को मत करो—

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३२ ऋ० ४ ५

"मैं आत्मा से उस रात्रि के जो पूर्ण प्रकाशित चंद्रमा से युक्त है समान वर्त्तमान सुन्दर स्पर्द्धा करने योग्य जिस स्त्री की शोभन स्तुति के साथ स्पर्द्धा करता हूं वह उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली हम लोगों को सुने और जाने न छेदन करने योग्य सूई से कर्म सीने का करे (शतदायम्) असंख्य दाय भाग वाले को सींवे (उक्थ्यम्) और प्रशंसा के योग्य असंख्य दाय भागी उत्तम संतान को देवे--

हे रात्रि के समान सुख देने वाली जो आप की सुन्दर रूपवाली दीप्ति और उत्तम बुद्धि हैं जिनसे आप देने वाले पति के लिये धनों को देती हो उन से हम लोगों को आज प्रसन्न चित्त हुई समीप आओ। हे सौभाग्य युक्त स्त्री उत्तम देने वाली होती हुई हम लोगों के लिये असंख्य प्रकार से पुष्टि को देओ—"

आर्य मत लीला।

(६)

(स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने जिस प्रकार वेदोंका अर्थ किया है उन अर्थों के पढ़नेसे मालूम होता है कि वेदोंके गीत डूमवा भाटोंके बनाये हुए हैं जो मनुष्योंकी स्तुति करके और स्तुतिके अनेक कवित्त सुनाकर दान मांगा करते हैं--ग्रामीण लोग ऐसे स्तुति करने वालोंको बहुत दान दिया करते हैं। (हम स्वामी जीके वेदभाष्यसे कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं जो इस बातको सिद्ध करते हैं:-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७१ ऋचा ३

"हे बलवान विद्वानो हम लोगोंसे स्तुति किये हुए आप हमको सुखी करो और प्रशंसाको प्राप्त होता हुआ सत्कार करने योग्य पुरुष अतीव सुखकी भावना करने वाला हो।"

ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त १६९ ऋचा ४

हे बहुत पदार्थोंके देनेवाले आपतो हमारे लिये अतीव बलवती दक्षिणाके साथ दान जैसे दिया जाय वैसे दान को तथा इस दुग्धादि धनको दीजिये कि जिससे आपकी और पवनकी भी जो स्तुति करने वाली हैं वे मधुर उत्तम दूधके भरे हुए स्तनके समान चाहती और अन्नादिकोंके साथ बछड़ों को पिलाती हैं —"

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त २५ ऋ० ४

'हे--सेनापति--आप के सदृश रक्षा करने वालेके दानके निमित्त उद्यत हूं उस मेरे लिये तेजस्वी आप घर सिद्ध करो बनाओ"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३० ऋ० ४

"हमलोग आप की प्रशंसा करें आप हम लोगों के लिये धनों को देओ-"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३१ ऋ० ५

"हे सद्गुण और हरणशील घोड़ों वाले हम लोग आप के जिन पदार्थों को मांगते हैं उनको आश्चर्य है आप हम लोगोंके लिये कब देओगे--"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ४६ ऋ० १

हे विद्वानो जिस स्थिर धनुष वाले शीघ्र जाने वाले शस्त्र अस्त्रों वाले तथा अपनी ही वस्तु और अपनी धार्मिक क्रिया को धारण करने वाले शत्रुओं से न सहे जाते हुए शत्रुओं के सहने को समर्थ तीव्र आयुध शस्त्र युक्त मेधावी शत्रुओं को रुलाने वाले शूरवीर न्याय की कामना करते हुए विद्वान के लिये इन वाणियों को धारण करो वह हम लोगों की इन वाणियों को सुनो ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ११ ऋ० ६

हे अनेक सेनाओं से युक्त दान करने वाले बलवान के सन्तान आप⋯हम लोगों के लिये धनों को देते हैं—

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६८ ऋ० ८

हे सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान हम लोगोंको प्रशंसा करने और देनेवाले राज प्रजा जनो ! जैसे तुम दोनों उत्तम यश होने के लिये धन का संबन्ध करो ऐसे बड़े के बलकी प्रशंसा करते हुए हम लोग नावसे जलोंको जैसे वैसे दुख से उल्लंघन करने योग्य कष्टों को शीघ्र तरें—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १०

हे मनुष्य लोगो जैसे हम लोग (सूक्तैः) वेदोक्त स्तोत्रों से सभा और सेनाध्यक्ष को गुण गान पूर्वक स्तुति करते हैं शत्रु को मारते हैं उत्तम वस्तुओं को याचना करते हैं और आपसमें द्वेष कभी नहीं करते वैसे तुम भी किया करो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४६ ऋ० ६

हे सभा सेनाध्यक्षो हमको अन्नादि दिया करो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५१ ऋ० १

हे मनुष्यो तुम⋯⋯शत्रुओं को विदारण करने वाले राजाको वाणियोंसे हर्षित करो उस धनके देने वाले विद्वान्का सत्कार करो--„

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५२ ऋ० २-१०

"हे राज प्रजा जन जैसे......वैसे जो तू शत्रुओंको मार असंख्यात रक्षा करने हारे बलों में बार २ हर्षको प्राप्त करता हुआ अन्नादि के साथ वर्तमान बराबर बढ़ता रह" "आनन्दकारी व्यवहारमें वर्तमान शत्रु का शिर काटते हैं सो आप हम लोगोंका पालन कीजिये । „

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ०१--२

"हे राजन् आपके होते जो हमारे ऋतुओं के समान पालना करने वाले और स्तुति कर्ताजन समस्त प्रशंसा करने योग्य पदार्थोंकी याचना करते हैं आपके होते सुन्दर कामना पूरने वाली गौयें हैं उनको मांगते हैं आप ही के होते जो बड़े २ घोड़े हैं उनको मांगते हैं जो आप कामना करने वालेकेलिये अतीव पदार्थों को अलग करने वाले होते हुए धन देते हैं सो आप सबको सेवा करने योग्य हैं–„

"हे ऐश्वर्यवान् विद्वान् जो आप उत्पन्न हुई प्रजाओंसे जैसे राजा वैसे धेनु और घोड़ोंसे धनके लिये तुम्हारी कामना करते हुए हम लोगोंको तेज बुद्धि

वाले करो । जो विद्वान् कविताई करनेमें चतुर होते हुए रूपसे वाणियों को तीक्ष्ण करो दिनोंसे ही सब ओर से निरन्तर निवास करते हो उन्हीं आपको हम लोग निरन्तर उत्साहित करें--"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १९ ऋ० ९

" हे विद्वान् आप हमारे लिये प्रभावको मत नष्ट करो और जो आप की ऐश्वर्यवती दक्षिणा दानकी स्तुति करने वालेके उत्तम पदार्थको पूर्ण करे वह जैसे हम लोगों के लिये प्राप्त हो वैसे हम को विद्या की कामना करने वालोंके लिये सिखाइये जिससे उत्तम वीरों वाले हम लोग निश्चयसे संग्राम में बहुत कहें-"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २७ ऋ० १

"हे विद्वन् ! जैसे मैं महीलोंके तुल्य राजपुरुषों के लिये जिन इन प्रत्यक्ष घृत को शुद्ध कराने वाली शुद्ध की हुई सत्य वाणियोंका जिह्वारूप साधनसे होम करता अर्थात् निवेदन करता हूं उन हमारी वाणियोंको यह मित्र बुद्धि सेवने योग्य बलादि गुणोंसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ चतुर दुष्टोंके सम्यक् विनाशक न्यायाधीश आप सदैव सुनिये-"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३४ ऋ० ९-१५

" हे क्रोधसे युक्त मनुष्यो ! तुम हम लोगोंके लिये धनोंको सिद्ध करो चोरोंके समान रात्रि में वाणी को प्राप्त होओ मनुष्योंकी जैसे स्तुति वैसे ऐश्वर्योंको प्राप्त होओ स्तुति करने वाले के लिये विज्ञानका जिसमें रूप विद्यमान उस उत्तम बुद्धिको सिद्ध करो-"

"हे मरण धर्मा मनुष्यो ! जो रक्षा और सुन्दर बुद्धि प्रज्ञाओंमें तुम लोगोंकी मनोहरके समान प्रशंसा करें वा जिस से अच्छे प्रकार को नौकाको अतीव पार पहुंचाओ और अपराधको निवृत्त करो वा जिससे निन्दाओंको मोचो अर्थात् छोड़ो वह घोड़ों को प्राप्त होने वाली कोई क्रिया वन्दना करने वालेको प्राप्त हो ।"

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३२ ऋ० १८-१९

"हे धन के ईश ! आप का धन हम लोगों में प्राप्त हो और आप की गौके हजारों और सैकड़ों समूहको हम लोग प्राप्त कराते हैं--"

"हे शत्रुओंके नाश करने वाले ! जिस से आप बहुतों के देने वाले हो इससे आप के सुवर्ण के बने हुए घटोंके दश सख्या युक्त समूह को हम लोग प्राप्त होवें--"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६ ऋचा ७

हे विद्वन्...स्तुति करने वालोंके लिये अन्नको अच्छे प्रकार धारण कीजिये-"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १० ऋ० ७

"हे दाता...तथा स्तुति करने वालो ! और स्तुति करने वाले के लिये हम लोगोंको धारण कीजिये और संग्रामोंमें वृद्धिके लिये हम लोगोंको प्राप्त हूजिये-"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३६ ऋ० १

"हे मनुष्यो जो दाता द्रव्योंके ईशको जानता और धनोंकी देने वालियोंको

कामना है वह पिपासासे व्याकुल के सदृश और अन्तरिक्षमें चलने वाले के सदृश सत्य और असत्यके विभाग कर ने वालोंको प्राप्त होने वाला और काम ना करता हुआ हम लोगोंको सब प्रकार से प्राप्त होवे और प्राणों के देने वाले दुग्ध का पान करै भावार्थ उसी को राजा मानो—"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६५ ऋ० ६

"वेदार्थ के जानने वाले हम लोगों का गौओं के पीने योग्य दुग्ध आदि में नहीं निरादर करिये-"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५५ ऋ० ७

हे स्तुति को सुनने वाले ! सोम को पीने वाले सभाध्यक्ष !

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५७ ऋ० ५

हे सेनादि बल वाले सभाध्यक्ष आप इस स्तुति करता के कामना को परिपूर्ण करें-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४१ ऋ० १२

"जो प्रशंसा युक्त जिसके रथमें चांदी सोना विद्यमान जो उत्तम प्रकाश वाला जिस के वेगवान बहुत घोड़े वह दान शील जन हम लोगों को सुने और जो गमन शील निवास करने योग्य अग्नि के समान प्रकाशमान जन उत्पन्न किये हुवे अच्छे रूप को अतीव प्राप्ति कराने वाले गुणों से अच्छा प्राप्त करे वह हम लोगोंके बीच प्रशंसित होता है।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४२ ऋ० १०

"हे विद्वान् हम लोगों की कामना करने वाले विद्या और धन से प्रकाश मान आप हम लोगों के बहुत पोषण करने के लिये और धन होने के लिये नाभि में प्राण के समान प्राप्त होवें और आत्मा से जो तुरन्त रक्षा करने वाला अद्भुत आश्चर्य रूप बहुत बड़ा पूरा धन है उस को हम लोगोंके लिये प्राप्त कीजिये"—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८४ ऋ० ४

हे अच्छे देने वालो ! जो तुम दोनों की मधुरादि गुण युक्त देनि वर्त्तमान है वह हम लोगों के लिये हो। और तुम प्रशंसा के योग्यकार करने वालेकी प्रशंसाको प्राप्त हो ओ और अपनेको सुननेकी इच्छासे जिन तुमको उत्तम पराक्रमके लिये साधारण मनुष्य अनुमोदन देते हैं तुम्हारी कामना करते हैं उनको हमभी अनुमोदन देवें—"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १४ ऋ० १२

"हे धन देने वाले परम ऐश्वर्य युक्त सुन्दर वीरों वाले हम लोग जो तुम्हारा बहुत अद्भुत पृथिवी आदि वसुओं से सिद्ध हुए बहुत समृद्धि करने वाले धनको अन्नोंके लिये हित करने वाली पृथिवीके बीच प्रति दिन विज्ञानरूपी संग्राम यज्ञमें कहैं उसको हमारे लिये देनेको आप समर्थ करो--"

आर्य्यमत लीला ।

(७)

प्यारे आर्य्य समाजी भाइयो ! तुम को स्वामी दयानन्द सरस्वती जीने यह यक़ीन दिलाया है कि, परमेश्वर के

सृष्टि के आदि में प्रथम पृथिवी उत्पन्न की और फिर बिना मा बापके इस पृथिवी पर कूदते फांदते जवान मनुष्य उत्पन्न कर दिये। वह मनुष्य अज्ञानी थे और बिना सिखाये उनको कुछ नहीं आ सकता था। इस कारण परमेश्वर ने चार वेदों के द्वारा उनको सर्व प्रकार का ज्ञान दिया।

शोक है कि स्वामीजी ने इस प्रकार कथन तो किया परन्तु यह न बताया कि उनकी इस बात का प्रमाण क्या है? और इस बात का बोध उन को कहां से हुवा कि सृष्टि की आदि में बिना मा बाप से उत्पन्न मनुष्यों को वेदों के द्वारा शिक्षा दी गई? स्वामी जी ने ऋग्वेद का अर्थ प्रकाश किया है जिस से स्पष्ट विदित होता है कि सृष्टि की आदि में बिना मा बाप के उत्पन्न हुवे मनुष्यों को वेदों के द्वारा उपदेश नहीं दिया गया है बरन स्वामी जी ने जो अर्थ वेदोंके किये हैं उन ही अर्थों से ज्ञात होता है कि वेद के द्वारा उन मनुष्यों से सम्बोधन है जो मा बाप से उत्पन्न हुवे थे, और जिनसे पहले बहुत विद्वान् लोग हो चुके हैं और उन पूर्वज विद्वानों के अनुकूल वेद के गीतों का बनाने वाला गीत बना रहा है-हम इस विषय में विशेष न लिखकर स्वामी दयानन्द जी के अर्थों के अनुसार वेदों के कुछ वाक्य नीचे लिखतेहैं और यह हम पहले लिख चुके हैं कि वेदों का मजमून सिलसिले वार नहीं है बरण पृथक पृथक गीत हैं जो सूक्त कहलाते हैं—

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २९ ऋचा ४।

"आप हमारे पिता के समान उत्तम बुद्धि वाले हैं।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ ऋचा २२

"हे राजन्‌ ... जो यह आनन्द कारक अपने पिता के शस्त्र और अस्त्रों को स्थिर करता है—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३२ ऋ० १

"अगले महाशयों ने किये धन के निमित्त मनुष्यों के समान आचरण करते हुए मनुष्यों को निरंतर सहें।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३४ ऋ० १

"सोम को अगले सज्जनों के पीने के समान जो पीता है।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३९ ऋ० ८

"हे ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानो तुम्हारे वे सनातन पुरुषोंमें उत्तम बल हम लोगोंसे मत तिरस्कृतहों

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २ ऋ० ९

"हे पूर्वज विद्वानोंने विद्या पढ़ा कर किये विद्वान आप"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २० ऋ० ५

"पूर्वाचार्यों ने किई हुई स्तुतियों को बढ़ावे वह पुरुषार्थी जन हमारा रक्षक हो।"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २२ ऋ० ४

"वह प्रथम पूर्वाचार्यों ने किया उत्तमता से कहने योग्य प्रसिद्ध मनुष्यों में सिद्ध पदार्थ"।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८० ऋ० ३
"जो युवावस्था को नहीं प्राप्त हुई उस गौ में अवस्थासे परिपक्व भाग गौका पूर्वज लोगोंने प्रसिद्ध किया हुआहै"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १९६ ऋ० ६
हे योग के ऐश्वर्य का ज्ञान चाहते हुए जन जैसे योग जानने की इच्छा वाले किया है योगाभ्यास जिन्हों ने उन प्राचीन योग गुण सिद्धियों के जानने वाले विद्वानों से योग को पाकर और सिद्ध कर सिद्ध होते अर्थात् योग सम्पन्न होते हैं वैसे होकर॥"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १९१ ऋ० ५
"जिस बलसे वर्तमान सनातन नाना प्रकारकी बस्तियोंमें मूल राज्यमें परम्परासे निवास करते हुए विचारवान विद्वानजन प्रजाजनोंको चैतन्य करते हैं ?"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६३ ऋ०३।४
"उस अग्निके दिव्यपदार्थ में तीन प्रयोजन अगले लोगों ने कहे हैं उस को तुम लोग जानो"—तीन प्रकाशमान अग्नि में भी बन्धन अगले लोगोंने कहे हैं उसीके समान मेरे भी हैं—"

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त ६ ऋ० २
"हे राजन अग्निके समान जिन आपकी वाणियोंसे मेघ के तुल्य वर्तमान शत्रुओं के नगरोंको विदीर्ण करने वाले राजा के बड़े पूर्वजराजाओं ने किये कर्मों को—"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५३ ऋचा १
"उन सूर्य और भूमिको अगले विद्वानजन स्तुति करते हुए धारणकरते हैं उन्हीं को अच्छे प्रकारसे प्रशंसा करता हूं—,,

ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ११४ ऋ० ७
"हे सभापति हम लोगोंमें से बुड्ढे वा पढ़े लिखे मनुष्यों को मत मारो और हमारे बालक को मत मारो हमारे जवानोंको मत मारो हमारे गर्भ को मत मारो हमारे पिता को मत मारो माता और स्त्री को मत मारो और अन्याय कारी दुष्टों को मारो ।

ऋग्वेद तीसरा मण्डल सूक्त ५५ ऋ० ३
"उन पूर्वजनों से सिद्ध किये गये कर्मों का मैं उत्तम प्रकार विशेष करके प्रकाश करूं ।"

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त ३
हे बलवान् के सन्तान

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त ५
हे बलवान् के पुत्र

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त १२
हे बलिष्ठ के पुत्र ।

ऋग्वेद छठामण्डल सूक्त १५
हे बलवानके सन्तान ।

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १
हेबलवान केपुत्र—हेबलवान विद्वानकेपुत्र

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त ४
हे बलवान के पुत्र

ऋग्वेद सप्तमंडल सूक्त ८
हे अतिबलवान्के सत्यपुत्र

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १५
हे अति बलवानके पुत्र राजन् ।

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १९
हे बलवान्के पुत्र विद्वान्
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ४८
हे पूर्ण बलयुक्तके पुत्र
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ७९
हे प्रकाश युक्त विद्वान् बलयुक्त पुरुषके पुत्र
ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २४
हे राजधर्मके निर्वाहक बलवान्के पुत्र
ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १८
हे राजा क्षमा शील रखने वालेके पुत्र
ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२१
हे बुद्धिमान्के पुत्र
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त १२२
विद्याकी कामना करते हुए का पुत्र मैं

प्यारे आर्य्यो भाइयो! वेदोंके इन उपर्युक्त वाक्योंको पढ़कर आपको अवश्य आश्चर्य हुआ होगा और विशेष आश्चर्य इस बातका होगा कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने आप ही वेदों के ऐसे अर्थ किये और फिर आप ही सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्य भूमिका में लिखते हैं कि सृष्टि की आदिमें बिना मा बाप के उत्पन्न हुए मनुष्यों में वेदप्रकाश किये गये। परन्तु प्यारे भाइयो! आपने हमारे प्रथम लेखोंके द्वारा पूरे तौर से जान लिया है कि स्वामीजी के कथन अधिकतर पूर्वापर विरोधी होते हैं। इस कारण आपको उचित है कि आप सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्य भूमिका पर निर्भर न रहैं, बरण स्वामी जी के बनाये वेद भाष्य को, जिस में सुगम हिन्दी भाषा में भी वेदों के अर्थ प्रकाश किये गये हैं और जो वैदिक यंत्रालय अजमेर से मिलते हैं पढ़ें और वेदों के मजमून को जांचें।

स्वामी जी कहते हैं कि वह ईश्वर कृत हैं हम कहते हैं कि वह ग्रामीण कवियों के बनाये हुवे हैं-स्वामी जी कहते हैं कि उनमें सर्व प्रकारका ज्ञान है हम कहते हैं कि वह धार्मिक वा लौकिक ज्ञान की पुस्तक नहीं हैं बल्कि ग्राम के किसान लोग जैसे अपनी साधारण बुद्धि से गीत जोड़ लिया करते हैं वैसे गीत वेदों में हैं और एक एक विषय के सैकड़ों गीत हैं बिल्कुल बेतरतीब और बे सिल सिला संग्रह किये हुवे हैं। आप को हमारे इस सब कथन पर अचम्भा आता होगा और सम्भव है कि कोई २ भाई हमारा कथन पक्षपात से भरा हुआ समझता हो परन्तु हम जो कुछ भी लिखते हैं वह इस ही कारण लिखते कि आप लोगों को वेदों के पढ़ने की उत्तेजना हो। स्वामी जी के वेद भाष्य में जो अर्थ हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं वह बहुत सुगम हैं आप की समझ में बहुत आसानी से आसक्ते हैं। इस हेतु आप अवश्य उनको पढ़ें। जिससे यह सब बातें आप पर विदित हो जावें। यद्यपि हम भी स्वामी जी के भाष्य में से कुछ कुछ वाक्य लिखकर अपने सब कथन को सिद्ध करेंगे। परन्तु हम कहां तक लिखेंगे? आप को फिर भी यह

ही संदेह रहैगा कि वेदों में और भी सर्व प्रकार के विषय होंगे जो इन्होंने नहीं लिखे हैं। इस कारण आप हमारे कहने से अवश्य वेदों को पढ़ें।

अब हम यह बात कहते हैं कि वेद गंवारों के गीत हैं तो आप को अच-म्भा होता है क्योंकि स्वामी जी ने इस के विपरीत आप को यह निश्चय कराया है कि संसार भर का जो ज्ञान है और जो कुछ विद्या धार्मिक वा लौकिक संसार भर में है वा आगे को होने वाली है वह सब वेदों में है और वेदों से ही मनुष्यों ने सीखी हैं।

परन्तु यदि आप ज़रा भी विचार करेंगे तो आप को हमारी बातका कुछ भी अचम्भा नहीं रहैगा क्योंकि स्वामीजी यह भी कहते हैं कि सृष्टिकी आदिमें जो मनुष्य बिना मा बाप के ईश्वरने उत्पन्न किये थे, वह पशु समान अज्ञानी और जंगली वहशियोंकी समान अनजान रहते यदि उनको वेदों के द्वारा ज्ञान न दिया जाता। अब आप विचार कीजिये कि ऐसे पशु समान मनुष्योंको क्या शिक्षा दी जासकती है? यदि किसी अनपढ़ को पढ़ाया जावे तो क्या उसको वह विद्या पढ़ाई जावेगी जो कालिजोंमें एम० ए० वा बी० ए० वालोंको पढ़ाई जाती है? वा प्रथम अ आ वगैरह अक्षर सिखाये जावेंगे? यदि किसीको सुन्दर तसवीर बनाना सिखाया जावे तो उसको प्रथम ही सुन्दर तसवीर खेंचनी बताई जावेगी वा प्रथम लकीर खेंचनी सिखाई जावेगी? यदि किसीको होशयार बढ़ईका काम सिखाना हो तो उसको प्रथम मेज़ कुर्सी व सुन्दर सन्दूकची आदि बनाना और लकड़ी पर खुदाईका काम करना सिखाया जावेगा वा प्रथम कुल्हाड़ेसे लकड़ी फाड़ना! इस ही प्रकार आप स्वयं विचार करलेवें कि यदि वेदोंमें उन जंगली मनुष्योंके वास्ते शिक्षा होती तो कैसी मोटी और गंवारू शिक्षा होती।

इस के उत्तर में आप यह ही कहैंगे कि उनके वास्ते प्रथम शिक्षा बहुत ही मोटी मोटी बातोंकी होती और क्रम २ से कुछ कुछ बारीक बातोंकी शिक्षा बढ़ती रहती परन्तु यदि आप वेदोंको पढ़ें तो आप को मालूम हो जावे कि स्वामी दयानन्दजीके अर्थोंके अनुसार वेदोंका सब मज़मून प्रारम्भसे अन्त तक एक ही प्रकार का है। यद्यपि उस में कोई शिक्षाकी बात नहीं है बल्कि साधारण कवियोंके गीत हैं, परन्तु यदि आप उन गीतोंको शिक्षाका ही मज़मून कहैं तो भी जिस प्रकार और जिस विषयका गीत प्रारम्भ में है अन्ततक वैसा ही चलागया है। आप जानते हैं कि ग्रामीण लोग जो खेती करते और पशु पालते हैं वह वहशी जंगली लोगोंसे बहुत होशयार हैं क्योंकि कमसे कम घर बनाकर रहना, आगसे पकाकर रोटीका खाना, वस्त्र पहनना, आदिक बहुत काम जानते हैं, और वहशी लोग इन कामों

में ही कोई काम भी नहीं जानते।

स्वामीजी के कथनानुसार जो मनुष्य सृष्टिके आदिमें बिना मा बापके पैदा किये गये थे वह तो वहशियोंसे भी अज्ञान होंगे क्योंकि उन्होंने तो अपनेसे पहले किसी मनुष्यको या मनुष्यके किसी कर्त्तव्यको देखा ही नहीं है। इस कारण जो शिक्षा ग्रामीण लोगोंको दी जा सकती है उससे भी बहुत मोटी २ बातोंकी शिक्षा वहशी लोगों को दी जा सकती है और सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुए मनुष्योंके वास्ते तो बहुत ही ज्यादा मोटी शिक्षाकी जरूरत है-- इस कारण यदि हम यह कहते हैं कि वेदोंका मज़मून ग्रामीण लोगोंके विषयका है तो हम वेदोंकी प्रशंसा करते हैं और जो लोग यह कहते हैं कि वेदोंकी शिक्षा सृष्टिके आदिमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको दी गई थी जो जंगली पशुके समान थे अर्थात् ग्रामीण लोगों से भी मूर्ख थे तो वह वेदोंकी निन्दा करते हैं -

खैर! निन्दा हो वा स्तुति हम को वेदोंके ही मज़मूनों से देखना चाहिये कि उनका मज़मून किन लोगोंके प्रति मालूम होता है-इस बात की जांचके वास्ते हम स्वामी दयानन्द सरस्वती जीके वेदभाष्य अर्थात् स्वामीजीके बनाये वेदोंके अर्थोंसे कुछ वाक्य लिखते हैं जिससे यह सब बात स्पष्ट विदित हो जावेगी। और यह भी मालूम हो जावेगा कि वेदोंके द्वारा ईश्वर शिक्षा देरहा है वा संसारके मनुष्य अपनी अवस्था के अनुसार कथन कर रहे हैं--

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६१ ऋ० ११

" हे नेता अग्रगन्ता जनो तुम अपने को उत्तम कामको इच्छासे इस गवादि पशुके लिये नीचे और ऊंचे प्रदेशों में काटने योग्य घासको और जलोंको उत्पन्न करो। „

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ५७ ऋ०४-५-८

"हे खेती करने वाले जन! जैसे बैल आदि पशु सुख को प्राप्त हों, मुखिया कृषीवल सुखको करैं, हलका अवयव सुख जैसे हो वैसे पृथिवीमें प्रविष्ट हो और बैलको रस्सी सुख पूर्वक बांधी जाय, वैसे खेतीके साधन के अवयव को सुख पूर्वक ऊपर चलाओ। „

" हे क्षेत्र के स्वामी और भृत्य आप दोनों जिस इस कृषिविद्याको प्रकाश करने वाली वाणी और जल को कृषि विद्याके प्रकाशमें करते हैं उनकी सेवा करो इस से इस भूमिको सींचो। जैसे भूमि खोदने की फाल बैल आदिकोंके द्वारा हम लोगों के लिये भूमिको सुख पूर्वक खोदैं किसान सुख को प्राप्त हों मेघ मधुर आदि गुण से और जलों से सुखको वर्षावै वैसे सुख देनेवाले स्वामी और भृत्य कृषिकर्म करनेवाले तुम दोनों हम लोगोंमें सुखको धारण करो। „

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त २७ ऋ० २

" हे सबमें प्रकाशमान विद्वन् जो उत्तम प्रकार प्रशंसा किया गया अत्यंत बढ़ता अर्थात् वृद्धिको प्राप्त होता हुआ

मेरे गौओंके सैकड़ों और बीसों संख्या वाले समूह को और युक्त उत्तम धुरा जिनमें उन ले चलने वाले घोड़ोंको भी देता है उस तीन गुणों वाले पुरुष के लिये आप गृह वा सुखको दीजिये ।„

ऋग्वेद प्रथम मडल सूक्त १२० ऋ० ८

"आपकी रक्षासे हम लोगोंको दूध भरे थनों से अपने बछड़ों समेत मनुष्यादिकों पालती हुई गौयें बछड़ोंसे रहित अर्थात् बन्ध्या मत हों और वे हमारे घरोंसे विदेशमें मत पहुंचें ।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५ ऋ० ९-१०

"हे सब ओरसे पशुविद्याके प्रकाश करने वाले जो आप की व्याप्त होने वाली, जिस में गौएं परस्पर सोतीं हैं और जिससे पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्तमान है उस से आपके सुखको हम लोग मांगते हैं ।„

"हे पशु पालने वाले विद्वन् आप हम लोगोंके लिये प्राप्तिके अर्थ गौओंको अलग करनेवाली और घोड़ोंका विभाग करने वाली और अन्नादि पदार्थ का विभाग करने वाली उत्तम बुद्धिको मनुष्यों के तुल्य करो ।„

ऋग्वेद छठा मडल सूक्त ५८ ऋ० २

"हे मनुष्यो जो भद्र बकरी और घोड़ों को रखने वाला जो पशुओंकी रक्षा करने वाला तथा घर में अन्नोंको रखने वाला बुद्धिको तृप्त करता है वह समग्र संसार में स्थापन किया हुआ पुष्टि करनेवाला शिथि और पदार्थों में व्याप्त बुद्धि और गृहों की अच्छे प्रकार कामना वा उनका उपदेश करता हुआ विद्वान् प्राप्त होता वा जाता है तथा उत्तमता से वर्त्तता है उसका तुम लोग सेवन करो ।"

(दूध दुहनेवाले ग्वालेकागीत)

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६४ ऋ० २६

"जैसे सुन्दर जिसके हाथ और गौ को दुहता हुआ मैं इस अच्छे दुहाती अर्थात् कामोंको पूरा करती हुई दूध देने वाली गौ रूप विद्याको स्वीकार करूं"

ऋग्वेद मडल छठा सूक्त १ ऋ० १२

"हे यमने वाले आप हम लोगोंमें क- और पुत्रके लिये पशु गौ आदिको तथा ...गृह और... अन्न आदि सामग्रियोंको बहुत धारण कीजिये जिससे हम लोगों के लिये ही मनुष्योंके सदृश कल्यान कारक उत्तम प्रकार संस्कारसे युक्त अन्न में हुए पदार्थ हों ।„

ऋगवेद पंचम मण्डल सू० ४१ ऋ०१

"यज्ञ की कामना करते हुए के लिये हम लोगोंकी रक्षा कीजिये वा प ओं और अन्नोंके सदृश हम लोगोंके लिये भोगोंको प्राप्त कराइये ।„

ऋगवेद प्रथम मंडल सू० २८ ऋ० १-२ ३-८

"हे (इन्द्र) ऐश्वर्य युक्त कर्मके करने वाले मनुष्य तुम जिन यज्ञ आदि व्यवहारोंमें बड़ी जड़का जो कि भूमिसे कुछ ऊंचे रहनेवाले पत्थर और मूसलको आदि कूटनेके लिये युक्त करते हो उनमें उखली मूसलके कूटे हुए पदार्थोंको ग्रहण

करके उनकी सदा उत्तमताके साथ रक्षा करो और अच्छे विचारोंसे युक्तिके साथ पदार्थसिद्ध होने के लिये इसको नित्य ही चलाया करो-भावार्थ-भारी से पत्थर में गड्ढा करके भूमि में गाड़ो जो भूमिसे कुछ ऊंचा रहे उसमें अन्न स्थापन करके मूसल से उसको कूटो।"

"हे ऐश्वर्यवाले विद्वान् मनुष्य तुम दो जंघों के समान जिस व्यवहार में अच्छे प्रकार वा असार अलग २ करने के पात्र अर्थात् शिल बट्टे होते हैं उन को अच्छे प्रकार सिद्ध करके शिलबट्टे से शुद्ध किये हुए पदार्थों के सकाश से सारको प्राप्त हो और उत्तम विचार से उसी को बार बार पदार्थों पर चला। भावार्थ। एक तो पत्थरकी शिला नीचे रक्खे और दूसरी ऊपर से पीसने के लिये बट्टा जिसको हाथ में लेकर पदार्थ पीसे जाय इनसे औषधि आदि पदार्थ पीसकर खावे यह भी दूसरा साधन उखली मूसल के समान बनना चाहिये।"

हे (इन्द्र) इन्द्रियोंके स्वामी जीव तू जिस कर्म में घर के बीच स्त्रियां अपनी संगि स्त्रियों के लिये उक्त उखूखलों से सिद्ध की हुई विद्या को जैसे डालना निकलनादि क्रिया करती होती है वैसे उस विद्या को शिक्षासे ग्रहण करती और कराती हैं उस को अनेक तर्कों के साथ सुनो और इस का उपदेश करो।"

जो रस खींचने में चतुर बड़े विद्वानों ने अतिस्थूल काठ के उखली मूसल सिद्ध किये हों जो हमारे ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले व्यवहार के लिये अन्न मधुर आदि प्रशंसनीय गुणवाले पदार्थों का सिद्ध करने के हेतु होते होवें सब मनुष्यों को साधने योग्य हैं।,,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६१ ऋ०८ " हे उत्तम धनुषवालो में कुशल अच्छे वेद्यो तुम पथ्य भोजन चाहनेवालों से इस जलको पिओ इस मूंज के तृणों से शुद्ध किये हुए जलको पिओ अथवा नहीं पिओ इस प्रकार से ही कहो औरों को उपदेश देओ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२४ ऋ० ११ "जैसे यह प्रभात वेला लालों लिये हुए सूर्यकी किरणोंके सेनाके समान समूहको जोड़ती और पहले बढ़ती है वैसे पूरी चौवीस (२४) वर्ष की जवान-स्त्री लाल रंगके गौ आदि पशुओंके समूहको जोड़ती पीछे उन्नति को प्राप्त होती-,,

(नोट) किसी गावके रहने वाले कवि ने यह उपरोक्त प्रशंसा पशु चराने वाली स्त्री की की है ॥

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३९ ऋ० २

" वस्त्रों को ओढ़ती हुई सुन्दर स्त्री के तुल्य ॥ "

(नोट) इससे विदित होता है कि उस समय वस्त्र पहननेका प्रचार बहुत नहीं हुआ था जो स्त्री वस्त्र पहनती थी वह प्रशंसा योग्य होती थी ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २८ ऋ० १

" हे बल पराक्रम और अन्नादि पदार्थोंका पालन करने और कराने वाले विद्वान् तू वस्त्रोंको धारण कर ही। हम लोगोंके इस प्रत्यक्ष तीन प्रकारके यज्ञको सिद्ध कर।"

[नोट] इससे विदित होता है कि उस समय में मनुष्य वस्त्र नहीं पहनते थे इस ही कारण यज्ञके समय वस्त्र पहन कर आने पर जोर दिया गया है॥

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २८ ऋ० ६

" उत्तम प्रतीत कराने वाले द्वार आदि जिस में उस कल्यान करने शुद्ध वायु जल और वृक्ष वाले गृहको करिये।"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५५ ऋ० ५-८

" जो मनुष्य जैसे मेरे घरमें मेरी माता सब ओरसे सोवे पिता सोवे कुत्ता सोवे प्रजापति सोवे सब संबन्धी सब ओरसे सोवें यह उत्तम विद्वान् सोवे वैसे तुम्हारे घरमें भी सोवें।"

" हे मनुष्यो! जैसे हम लोग जो अतीव सब प्रकार उत्तम सुखोंकी प्राप्ति कराने वाले घरमें सोती हैं वा जो प्राप्ति कराने वाले घरमें सोती वा जो पलंग सोने वाली उत्तम स्त्री विवाहित तथा जिन का शुद्ध गन्ध हो उन सबों को हम लोग उत्तम घरमें सुलावें वैसे तुम भी उत्तम घरमें सुलाओ "

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ ऋ० ६-८-१४

" जो खम्भेके लिये काष्ठ काटने वाले और भी जो खम्भेको प्राप्त कराने वाले उन घोड़ोंके बांधनेके लिये किसी विशेष वृक्षको काटते हैं और जो घोड़ेके लिये पकानेको धारण करते और पुष्टि करते हैं। जो उनके बीच निश्चयसे सब ओरसे उद्यमी है वह हम लोगोंको प्राप्त होवे"

"हे विद्वान् इस शीघ्र दूसरे स्थानको पहुंचाने वाले बलवान् घोड़की जो अच्छे प्रकार दी जाती है और घोड़ोंको दमन करती अर्थात् उनके बलको दबाती हुई लगाम है जो शिरमें उत्तम व्याप्त होने वाली रस्सी है अथवा जो इसोंके मुखमें तृण औषध घास अच्छे प्रकार भी होवे समस्त तुम्हारे पदार्थ विद्वानोंमें भी हों।"

" हे घोड़ेके सिखाने वाले शीघ्र जाने वाले घोड़ोंका जो निश्चित चलना निश्चित बैठना नाना प्रकार से चलाना फिराना और पिछाड़ी बांधना तथा उनको उढ़ाना है और यह घोड़ा जो पीता और जो घासको खाता है वे समस्त उक्त काम तुम्हारे हों और यह समस्त विद्वानोंमे भी हों।"

(नोट) इससे विदित होता है कि घोड़ेकी साईसीका काम उस समय बहुत अद्भुत समझा जाता था।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० १४

" हे विद्वान्! आपके अनार्यदेशोंमें बसने वालोंमें गायोंसे नहीं दुग्ध आदिको दुहते हैं दिनको नहीं तपाते हैं वे क्या करते वा करेंगे।"

(नोट) इससे विदित होता है कि उस समय ऐसे भी देश थे जहांके रहने

वालोंको दूधको दुहना आदिक भी न-हीं आता था ।

(जिस प्रकार खेती करने वाले ग्रामीण लोग आज कल अपना उठना बैठना उस ही मकानमें रखते हैं जिस में डंगर (पशु) बांधे जाते हैं और वहीं पर अपने संबन्धके गीत भी गाते रहते हैं इस ही प्रकार वेदों के बनाने वाले करते थे-"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १५३ ऋ० १

"जो सुख सम्बन्धी वा सुखोत्पादक अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त आकाशके बीचमें साधु अर्थात् गगन मंडलमें व्याप्त साम गान को विद्वान् आप जैसे स्वीकार करें वैसे गावें और अन्तरिक्षमें जो करणें उन के समान जो न हिंसा करने योग्य दूध देने वाली गायें मनोहर जिनमें स्थित होते हैं उस घरको अच्छे प्रकार सेवन करें उस सामगान और उन गौओंको हम लोग सराहें उन का सत्कार करें ॥"

आर्यमत लीला ।

(८)

प्यारे आर्या भाईयो ! हमने स्वामी दयानन्द सरस्वतीके अर्थोंके अनुसार वेदोंके वाक्योंसे स्पष्ट सिद्ध करदिया है कि वेदोंके गीतोंमें ग्रामीण लोगों ने अपने नित्यके व्यवहारके गीतगाये हैं इससे आपको,वेदोंको स्वयम् पढ़कर देखने और जांच करनेका शौक अवश्य पैदा होगया होगा जिन भाइयोंको अब भी वेदोंकी जांचकरनेकी उत्तेजना नहीं हुई है, उनके वास्ते हम यहां तक लिखना चाहते हैं कि वेदोंके गीतों के ग्रामीण मनुष्य अपने ग्रामके मुखिया वा चौधरी वा मुकद्दम वा पटलको ही राजा कहते थे । वेदोंमें राजाका बहुत वर्णन है और राजाकी प्रशंसा में ही बहुधा कर वेद भरा हुआ है परन्तु जिस प्रकार अधिक खेती और अधिक पशु रखने वाले ग्रामीणोंको वेदों में राजा माना गया है ऐसा ही वेदों में उनकी ग्रामीण आलोंकी प्रशंसा की गई है। इस विषयमें हम स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके वेद भाष्यके हिन्दी अर्थोंसे कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ११७ ऋचा५

"हे दुःखका नाश करनेवाले कृषि कर्म की विद्यामें परिपूर्ण सभा सेनाधीशो तुम दोनों प्रशंसा करनेके लिये भूमिके ऊपर रात्रिमें निवास करते और सुख से सोते हुए के समानवा सूर्यके समान और शोभाके लिये सुवर्णके समान देखने योग्य रूप फारेसे बोते हुए खेत को ऊपरसे बोओ ।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४७ ऋचा२२

"हे सूर्यके सदृश अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जो आपके बहुत अन्नोंसे युक्त धन की दश कोशों खजानोंको प्राप्त होनेवाली भूमियों की स्तुति करनेवाला ।"

(नोट) आजकल रेलोंद्वारा करोड़ों रुपयाका अन्न हिन्दुस्तानसे विलायत को लेजाता है परन्तु वेदोंमें उनको सबसे ज्यादा ऐश्वर्यवान माना गया है

जिसके दस खार्ती अनाज हो ।

ऋग्वेद चोथा मंडल सूक्त २४ ऋ० ७
"जो राजा आज...ऐश्वर्य युक्तके लिये (सोमम्) ऐश्वर्यको उत्पन्न करें पाकों को पकावें और यवों को भूंजे......बल युक्त मनुष्य का धारण करै वह बहुत जीतने वाली सेनाको प्राप्त होवे ।"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २१ ऋ० १
"हे राजा जो शत्रुओंकी हिंसा करने वाले बलसे कामना करते हुए आप मनुष्य जिस में बैठने वा गौयें जिसमें विद्यमान ऐसे जाने के स्थान में हम लोगों को अच्छे प्रकार सेविये ।"

(नोट) ग्रामीण लोगोंके बैठनेका वह ही मकान होता है जिस में गौ आदि पशु बांधे जाते हैं ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त १५ ऋ० १६
"हे सुन्दर सेना वाले विद्वान् राजन् प्रसिद्ध आप सम्पूर्ण विद्वानों वा और पुरुषोंके साथ बहुत ऊर्णाके वस्त्रों से युक्त गृहमें वर्तमान हो ।"

(नोट) यह हमने पहले सिद्धकिया है कि वेदोंके समय में वस्त्र पहननेका प्रचार बहुत कम था और राजा आदिक बड़े आदमी जो वस्त्र पहनते थे उनकी बहुत प्रशंसा होती थी औरऐसा मालूम होता है कि रूईका कपड़ा बुनने की विद्या उनको मालूम नहीं थी वरण ऊनसे ही कम्बल आदिक बना-लेते थे ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २४ ऋ० ४
"हे बहुत सामर्थ्यवान् दुःखके नाश करने वाले बुद्धि और प्रज्ञासे युक्त आप की गौओं की गतियोंके सदृश अच्छे प्रकार चलने वाली भूमियां और सामर्थ्य वाली वस्तुओंकी विस्तृत पंक्तियों के सदृश आपकी प्रजा हैं ।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २९ ऋ० ४
"हे विद्वानोंमें अग्रणी जनों, जिसराजा के होने पर पाक पकाया जाता है भूंजे हुए अन्न हैं चारों ओर से अत्यंत सना हुआ उत्पन्न (सोम) ऐश्वर्यका योग वा ओषधिका रस होता है......वह आप हम लोग के राजा हूजिये।"

(नोट) यह हम अगले लेखोंमें सिद्ध करेंगे कि भंगको सोमरस कहते थे देखो वेदोंके समय में जिस राजाके राज्य होनेके समयमें भोजन पकाया जावे और भुना हुआ अनाज और भंगघोटी जावे उसकी प्रशंसा होती थी

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४५ ऋ० २४
जो दुष्ट चोरोंको मारने वाला राजा शुद्धि वाले कर्मोंसे अत्यंत विभाग करने वालेके प्रशंसित गौवें विद्यमान और बसते हैं जिस में उसको प्राप्त होता है वह ही हम लोगों को स्वीकार करे

(नोट) जिस राजाके यहां गऊ और चढ़नेके वास्ते सवारी उसकी प्रशंसा की गई है ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३४ ऋ०६
"हे परम बलवान...जो आपकी समस्त गौएं ही भोगनेके कान्तियुक्त घृतको पूरा करतीं और अच्छे प्रकार भोजन करने योग्य दुग्धादि पदार्थ को पूरा करतीं ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १११ ऋ० २
"हे सूर्यके समान वर्तमान राजन् आप के जो प्रबल जवान वृषभ उत्तम अन्न का योग करने वाले शक्ति बन्धक और रमण साधन रथ और निरन्तर गमन शील घोड़े हैं उनको बलवान करो अर्थात् उन पर चढ़ो उन्हें कार्य कारी करो।"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ० १६
"जो ऐश्वर्य युक्त शत्रुओंको विदीर्णकर ने वाला शुभ गुणोंमें व्याप्त राजा पके हुए दूधको पीने वा वर्षने वा बल करने वाले सेनापतिको पाकर अनैश्वर्य को दूर करता है ,,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४२ ऋ० ८
" हे सभाध्यक्ष......उत्तम यव आदि औषधि होने वाले देश को प्राप्त कीजिये।,,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६० ऋ० ७
"हे सुखको भावना कराने वाले सूर्य्य और बिजलीके समान सभा सेनाधीशो आप दोनों जो ये प्रशंसा यें प्रशंसा करती हैं उनसे सब ओर से उत्पन्न किये हुए दूध आदि रसको पिओ।"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३१ ऋ० १
"सेनाका ईश गौओंका पालन करने वाला।,,

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २७ ऋ० १३
"जो पवित्र हिंसा अर्थात् किसीसे दुख को न प्राप्त हुआ राजा जिनसे अच्छे जौ आदि अन्न उत्पन्न हों उन जलों के निकट बसता है। ,,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३८ ऋ० ४
"हे पुष्टि करने वाले जिनके छेरी (बकरी) और घोड़े विद्यमान हैं ऐसे।,,

(ग्रामीण लोगोंमें जैसे खेती आदिका काम अन्य मनुष्यों से कुछ अधिक जानने वाला बुद्धिमान गिना जाता है। इस ही प्रकार वेदोंमें जिनको विद्वान् वर्णन किया गया है वह ऐसे ही ग्रामीण लोगथे यथा:-)

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५३ ऋ० २
विद्वानोंकी पूजा स्तुति करते हैं जो कृषि शिक्षा दें मित्रोंके मित्रहों दूध देने वाली गौके सुख देने वाले द्वारों को जाने उत्तम यव आदि अन्न और उत्तम धनके देने वाले हैं।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४४ ऋ० ६
"हे सूर्यके समान प्रकाशमान विद्वान् आप ही पशुओंकी पालना करने वाले के समान अपने से अन्तरिक्ष में हुई वृष्टि आदि के विज्ञान को प्रकाशित करते हो। .. ऋ० ५ ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ७ " हे सब विषयों को धारण करने वाले विद्वान् जो मनोहर गौओं से वा बैलों से वा जिन में आठ सत्यासत्यके निर्णय करने वाले चरण हैं, उन वाणियों से बुलाये हुये आप हम लोगोंके लिये सुख दियेहुए हैं सो हम लोगोंसे सत्कार पाने योग्य हैं।,. ऋ० ६ ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त

२७ " हे विद्वान लोगो ! हमको—उपदेश करो और जो यह बड़ी कठिनता से टूट फूटे ऐसे विद्याभ्यासादि के लिये बना हुवा घर है वह हमारे लिये देओ ।,'

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४२ ऋ० ३ " कल्यान के कहने वाले होते हुवे आप उत्तम घरों के दाहिनी ओर से शब्द करो अर्थात उपदेश करो जिसमें चोर हम लोगों को कष्ट देने को मत समर्थ हो ।„

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २१ ऋ० १ "हे संपूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता चिकने घृत और छोटे पदार्थों के दाता विद्वान !„

आर्यमत लीला ।

(९)

राजपूताने के पुराने राजाओं की कथाओं के पढ़ने से मालूम होता है कि राजा लोग लड़ाई में भाटों को अपने साथ ले जाया करते थे जो लड़ाई के कवित्त सुना कर बीरों को लड़ने को उत्तेजना दिया करते थे । इस प्रकार के गीत वेदों में बहुत मिलते हैं हम स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य से कुछ वाक्य इस विषय के नीचे लिखते हैं॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १९५ ऋचा ३

"हे सेनापति जिस कारण शूरवीर निडर सेना को संविभाग करने अर्थात पद्मादि व्यूह रचना से बांटने वाले आप मनुष्यों और युद्ध के लिये प्रयुक्त किये हुए रथ को प्रेरणा दें अर्थात् युद्ध समय में आगे को बढ़ावें और बलवान आप दीपते हुए अग्नि की लपट से जैसे काष्ठ आदि के पात्र को वैसे दुःशील दुराचारी दस्यु को जलाओ इस से भाग्यभागी होओ ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५२ ऋ० ५ ८-१० „ जो सूर्य के समान अपने शस्त्रों की वृष्टि करता हुवा शत्रुओं को प्रगल्भतादि खाने हारा शत्रुओं को छेदन करने वाले शस्त्र समूह से युक्त सभाध्यक्ष हर्ष में इस युद्ध करते हुए शत्रु के ऊपर मध्य टेढ़ी तीन रेखाओं से सब प्रकार ऊपर की गोल रेखा समान उनको सब प्रकार भेदन करता है„-हे सभापति भुजाओं के मध्य लोहे के शस्त्रों को धारण कीजिये बीरों को कराइये ॥

"धनकारी वज्र के शब्दों से और भयसे उनके साथ शत्रु लोग भागते हैं॥"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ६३ ऋचा २-६-७

"हे सभाध्यक्ष जिस वज्र से शत्रुओं को मारते तथा जिस से उनके बहुत नगरों का जीतने के लिये इच्छा करते और शत्रुओं के पराजय और अपने विजय के लिये प्रतिक्षण के जाते हो इससे सब विद्वानों की स्तुति करने वाला मनुष्य आप के भुजाओं के बल के आश्रय से वज्र को धारण करता है।

हे सभाध्यक्ष संग्राम में आप को निश्चय करके पुकारते हैं ।,

हे उत्तम शस्त्रों से युक्त सभा के अधिपति शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुवे

जिस कारण तुम बन २ शत्रुओं के नगरों को विदारण करते हो""इस कारण आप हम सब लोगों को सत्कार करने योग्य हो।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८० ऋचा १३

अपनी सभाओंका शत्रुओंके साथ अच्छे प्रकार युद्ध करा शत्रुओं को मारनेवाले ""आप का यश बढ़ेगा।"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४६ ऋ० २

प्रसिद्ध वीरों को लड़ाइये शत्रुओंको पराजय को पहुंचाइये।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ ऋचा १

ऋतु २ में यज्ञ करने हारे हम लोग संग्राम, में जिस वेगवान विद्वानों से वा दिव्य गुणों से प्रगट हुए घोड़े के पराक्रमों को कहेंगे उस हमारे घोड़े के पराक्रमों को मित्र श्रेष्ठ न्यायाधीश ज्ञाता ऐश्वर्यवान बुद्धिमान और ऋत्विज् लोग छोड़के मत कहें और उसके अनुकूल उसकी प्रशंसा करें।

ऋग्वेद चौथामंडलसूक्त१८ऋ०६का भावार्थ

जैसे नदियां अलल अरोती हुई उच्चस्वर करती हुई तटों को तोड़ती हुई जाती हैं वैसेही सेना शत्रुओं के सन्मुख प्राप्त होवे।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १९ ऋ० ८

सेना से शत्रुओं का नाश करो जैसे नदी तटको तोड़ती है।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४१ ऋचा २

वह महाशयों के साथ संग्रामों में शत्रुओं की सेनाओं और शत्रुओं का नाश करता है उसको यशस्वी सुनता हूं।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ६ ऋचा ४

हे मनुष्यो जो मनुष्योंमें उत्तम २ वाणियों से बरा चलना जिसमें हो उस अन्धकारमें आनन्द करती हुई पूर्वको चलने वाली सेनाओं को करता है... उसका हम लोग सत्कार करें।"

वेदोंमें बहुत से गीत ऐसे मिलते हैं जो योधा लोग अपनी शूरवीरता की प्रशंसामें और लड़ाई की उत्तेजना में गाया करते थे तथाः—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६५ ऋ० ६-८

"जो बलवान् तीव्र स्वभाव वाला मैं जो बलवान् समग्र शत्रुके वधमें नहवाने वाले शस्त्र उनके साथ नमता हूं उसी मुझको तुम सुखसे धारण करो।"

"हे प्राणके समान प्रिय विद्वानो! जिसके हाथमें वज्र है ऐसा होने वाला मैं जैसे सूर्य मेघको मार जलों को सुन्दर जाने वाले करता है वैसे अपने क्रोधसे और मन से बलसे शत्रुओंको मारता हूं।"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३१ ऋ० १

"हे सेना के अधीश जैसे हम लोग मेघके नाश करनेके लिये जो बल उस के लिये सूर्यके समान संग्राम के सहने वाले बलके लिये आपका आश्रय करते हैं वैसे आप भी हम लोगोंको इस बल के लिये वर्तो।"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४ ऋ० १

"आपके साथ संग्रामको करते वा कराते हुए हम लोग मरण धर्म वाले शत्रुओंकी सेनाओं को सब ओरसे जीतें इससे धन, और यशसे युक्त होवें,"

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके वेदों के अर्थोंसे यह मालूम होता है कि वेदों के गीतोंके बनानेके समय में एक ग्राम वासियोंका दूसरे ग्राम वासियोंसे नित्य युद्ध रहा करता था और बहुत कुछ मार धाड़ रहती थी—आज कल भी देखनेमें आता है कि एक ग्राम वाले दूसरे ग्राम वाले की खेती काट लेते हैं पशु चुरा लेजाते हैं वा सीमापर झगड़ा हो जाता है परन्तु सब ग्राम वाले एक राज्यके आधीन होनेके कारण आज कल लड़ाई नहीं बढ़ती है वरण अदालतमें मुकद्दमा चलाया जाता है परन्तु उस समय जैसा हमने गत लेखमें सिद्ध किया है ग्रामका चौधरी वा मुखिया हो उस ग्रामका जमीन्दार वा राजा होताथा इस कारण ग्राम के सब लोग उसहीके साथ होकर दूसरे ग्राम वालों से लड़ा करते थे और मनुष्य बध किया करते थे--उस समय कोई कोई राजा ऐसा भी होता था जो दो चार वा अधिक ग्रामोंका राजा हो और लड़ाई में कई २ ग्राम के राजा भी सम्मिलत होजाया करते थे (वेदोंमें शत्रुओं को जान से मारडालने और उनके नगरोंको विध्वंस करने की प्रेरणा के विषयमें बहुत अधिक गीत भरे हुए हैं) स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके अर्थों के अनुसार तो हमारे अनुमान में प्रायः एक तिहाई वेद शत्रुओंके मारने का ही चर्चामें भरा हुआ है

ऐसा भी मालूम होता है कि संग्राम लूटके वास्ते भी होता था अर्थात् शत्रुओंको पराजय करके उनको लूटलेते थे और लूटको योद्धा लोग आपस में बांट लेते थे हम स्वामी दयानन्द के वेद भाष्यके हिन्दी अर्थोंसे कुछ वाक्य इस विषयमें नीचे लिखते हैं—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३१ ऋ० ५

" जिस प्रकार सेना का अधीशमैं-- शत्रुके नाशके लिये तथा संग्रामोंमें धन आदि को बांटनेके लिये राजाको समीप मैं कहता हूं वैसे आप लोग भी इसके समीप कहो--„

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६२ ऋ० ९

" जिनसे हम लोग विभाग करने हुए शत्रुओंके धनोंकी जीतनेकी इच्छा करने वाले होवें-„

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २० ऋचा १०

" आप के रक्षण आदि से हम लोग सात नगरियोंका विभाग करें। „

वेदोंके गीतोंके बनाने वाले कवियों का ऐसा विचार था कि मेघ अर्थात् बादल पानीकी पोट बाध लेता है और पानी को भूमि पर नहीं गिरने देता है-सूर्य्य जो मनुष्यों का बहुत उपकारी है वह बादल से युद्ध करता है और मार मार कर बादलोंको तोड़ डालता है तब पानी बरसता है वेदों के कवियों ने बादलोंको मार डालनेके का-

रण सूर्य्य को महान योद्धा और साहसी माना है वेदों के गीतों में वेदों के कवियों ने योद्धाओं और वीर पुरुषों की प्रशंसा करने समय वा उन को युद्ध की उत्तेजना करते समय यह ही दृष्टान्त दिया है कि जिस प्रकार सूर्य्य मेघों को मारता है इस प्रकार तुम शत्रुओं को मारो हमारे अनुमान में तो वेदों में एक हजार बार वा इस से भी अधिक बार यह ही दृष्टान्त दिया गया है बरण ऐसा मालूम होता है कि वेद बनाने वाले कवियोंके पास इस दृष्टान्त के सिवाय कोई और दृष्टान्त ही नहीं था-इस प्रकार वेदों से हज़ारों बार कहे हुवे एक दृष्टान्त के हम पांच सात वाक्य नमूने के तौर पर लिखते हैं—

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त १७ ऋचा १

हे शस्त्र हैं हस्त में जिनके ऐसे-

मेघोंको सूर्य्य जैसे वैसे सम्पूर्ण शत्रुओं को आप विशेष करके नाश करिये।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३२ ऋ०१-६-१०

हे विद्वान् मनुष्यो तुम लोग जैसे सूर्य्य के जिन प्रसिद्ध पराक्रमोंको कहो उनको मैं भी शीघ्र कहूं जैसे वह सब पदार्थों के छेदन करनेवाले किरणोंसे युक्त सूर्य्य मेघको हनन करके बर्षाता उस मेघ के अवयव रूप जलों को नीचे ऊपर करता उसको पृथिवी पर गिराता और उन मेघों के सकाश से नदियों को छिन्न भिन्न करके बहाता है मैं वैसे शत्रुओं का मारूं उनको इधर उधर फेंकू और उन को तथा किला आदि स्थानों से युद्ध करने के लिये आई सेनाओं को छिन्न भिन्न करूं।

दुष्ट अभिमानी युद्ध की इच्छा न करने वाले पुरुष के समान पदार्थों के रसको इकट्ठे करने और बहुत शत्रुओं को मारने हारे के तुल्य अत्यन्त बल युक्त शूरवीर के समान सूर्य्य लोक को ईर्षा से पुकारते हुए के सदृश बर्तता है जब उसको रोते हुए के सदृश सूर्य ने मारा तब वह मारा हुवा सूर्यका शत्रु मेघ सूर्य्य से पिस जाता है और वह इस सूर्य की ताड़नाओं के समूह को सह नहीं सका और निश्चय है कि इस मेघ के शरीर से उत्पन्न हुई नदियां पर्वत और पृथिवी के बड़े बड़े टीलों को छिन्न भिन्न करती हुई बहती हैं वैसे ही सेनाओंमें प्रकाशमान सेनाध्यक्ष शत्रुओं में चेष्टा किया करें॥

जल को मेघ रोके हुवे होते हैं ढके रखते हैं सूर्य्य मेघ को तोड़कर जल बरसाता है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ६२ ऋचा ४

जैसे सूर्य्य मेघ को हनन करता है वैसे शत्रुओं को विदारण करते हो।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८० ऋचा १३

सूरज मेघ को जिस प्रकार हनन करता है इस प्रकार शत्रु को मारनेवाले सभापति।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२१ को ऋ० ११ का आशय

जिसप्रकार सूर्य मेघको मारताहै

इस तरह शत्रुओंको मारकर ऐमी नींद सुलाओ कि वह फिर न जागे।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋचा ८

जसे सूर्य मेघको पीसता है वैसे आप शत्रुओं का नाश करो।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४५ ऋ० २

सूर्य्य जैसे मेघों को तोड़ता है वैसे हम लोग भी शत्रुओं के नगरोंके मध्य में वर्तमान वीरों को नाश करें।

"शत्रुओं को मारने के गीतों में तो साराही वेद भरा पड़ा है। परंतु उसमेंसे हम कुछ एक वाक्य स्वामी दयानन्दके वेद भाष्य से नीचे लिखते हैं।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३० ऋचा ३

हे सूर्यके समान वर्तमान इन संग्रामो में "उसहोम करने वाले के समान शत्रुओं को युद्ध की आग में होमते हुए अग्नि के समान।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २१ ऋचा ५

जिस अग्नि वायुसे शत्रुजन पुत्रादि रहित हों उनका उपयोग सब लोग क्यों न करें।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३२ ऋचा१२

आप शत्रुओंको बांध शस्त्रोंसे काटते हैं इस ही कारण यज्ञोंमें हम आपको अधिष्ठाता करते हैं॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३९ ऋचा३

जिस प्रकार वायु अपने बल से वृक्षादि को उखाड़ के तोड़ देती है वैसे शत्रुओंकी सेनाओंको नष्ट करो और निश्चयसे इन शत्रुओंको तोड़ फोड़ उलट पलट कर अपनी कीर्ति से दिशाओं को अनेक प्रकार व्याप्त करो॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ११७ ऋ०२१

"डाकू दुष्ट प्राणीको अग्नि से जलाते हुये अत्यन्त बड़े राज्यको करो।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३३ ऋ० २

"शत्रुओंके शिरोंको छिन्न भिन्न कर।"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त १८ ऋ० १

"उन प्रतिकूल वर्तमान शत्रुओंको भस्म करिये।"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ०६

"दूरस्थल में विराजमान शत्रुओं को हिंसा करो।"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ०१५

"जो मारनेके योग्य बहुत विशेष शस्त्रों वाले शत्रु मनुष्य हों उनका नाश करके बढ़िये।"

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४ ऋ०४-५

"शत्रुओंके प्रति निरन्तर दाह देओ।"

"शत्रुओंका अच्छे प्रकार नाश करिये और बार बार पीड़ा दीजिये।"

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १७ ऋ०३

"शस्त्र को प्राप्त होते हुए बलसे शत्रुओं की सेना का नाश करो और सेना से शत्रुओंका नाश करके रुधिरोंको बहाओ।"

स्वामी दयानन्दजीके अर्थों के अनुसार वेदोंके पढ़ने से यह भी मालूम होता है कि जिन ग्राम वासियों ने वेदके गीत बनाये हैं उनकी कुछ विशेष ग्राम वासियों से शत्रुता पूरी २

उभी हुई थी और उन शत्रुओंको और उनके नगरोंको सर्वथा नाश करना चाहते थे और बहुतसे ग्रामों वाले मिलकर इनके शत्रु हो गये थे । यथाः—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७४ ऋ० ८

"हे सूर्य के समान प्रतापवान राजन् आप युद्ध की निवृत्तिके लिये हिंसक शत्रुजनोंको मारते हो । आप जैसे प्राचीन शत्रुओं की नगरियों को छिन्न भिन्न करते हुए वैसे भिन्न अलग २ शत्रुगणोंकी दुष्ट नगरियोंको नमाते वहां से हो उससे राक्षस धन संचारने हुए शत्रुगणका नाश होता है यह जो आपके प्रसिद्ध शूरपनेके काम हैं उनको नवीन प्रजा जन प्राप्त होवें ।"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त१८ ऋ० १३

"जैसे परम ऐश्वर्य्यवान् राजा बल से इन शत्रुओं के सातों पुरों को विशेषता से छिन्न भिन्न करता ।,,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ३१ ऋचा ४

"हे राजन् आप शत्रुके सैकड़ों नगरों का नाश करते हो ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ७३ ऋचा २

शत्रुओंको मारता हुआ तथा धनोंको प्राप्त होता हुआ शत्रुओं के नगरोंको निरन्तर विदीर्ण करता है वह ही सेनापति होने योग्य है ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४१ ऋचा ३

"जो राजा लोग इन शत्रुओंके (दुर्ग) दुःखसे जाने योग्य प्रकोटों और नगर को छिन्न भिन्न करने और शत्रुओंको नष्ट करदेते हैं वे चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त होने को समर्थ होते हैं ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५३ ऋ० ७-८

आप इन शत्रुओंके नगर को नष्ट करते हो दुष्ट मनुष्यों के सकड़ों नगरों को भेदन करते हो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५४ ऋचा ६

आप दुष्टों के ९९ नगरों को नष्ट करते हो ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३० ऋ०७०

"आप शत्रुओं की नवीन नगरियोंको बिदारते नष्ट भ्रष्ट करते ।,,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त३४ ऋ० १

"हे राजपुरुष शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाले आप शत्रुओं का उल्लंघन करो ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३० ऋ० ३०

"जो तेजस्वी सूर्य के सदृश प्रकाशके सेवने वाले और देने वाले के लिये मेघों के समूहों के सदृश पाषाणों से बने हुए नगरों के सैकड़े को काटे वही विजयी होने के योग्य होवै ।"

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३२ ऋ० १०

"हे राजन् कामना करते हुए आप शत्रुओं की जो सेविकाओं (दासियों) के सदृश सब प्रकार रोग युक्त नगरियों को सब ओरसे प्राप्त हो कर जीतते हो उन आपके बल पराक्रमसे युक्त कर्मों का हम लोग उपदेश करें ।"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ०१४

"जिन्हों ने परमैश्वर्य युक्त राजाके समान ही पराक्रम उत्पन्न किये वे अपने

को भूमि चाहते और दुष्ट अधर्मी जनों को मारने की इच्छा करते हुए साठवां र अर्थात् शरीर और आत्माके बल और शूरता से युक्त मनुष्य छः सहस्र शत्रुओं को अधिकतासे जीतते हैं वे भी छासठ सैकड़े शत्रु जो सेवन की कामना करता है उसके लिये निरंतर सोते हैं।"

आर्यमत लीला ॥

(१०)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में लिखा है कि आदि सृष्टि में एक मनुष्य जाति थी पश्चात् श्रेष्ठों का नाम आर्य विद्वान देव और दुष्टों का दस्यु अर्थात् डाकू मूर्ख नाम होनेसे आर्य और दस्यु दो नाम हुए आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए-जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर उन में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग यहां आकर बसे और इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ—

वेदों के पढ़ने से भी यह मालूम होता है कि जिनके साथ वेदोंके गीत बनाने वालों की लड़ाई रहती थी और नित्य मनुष्यों को मारकर खून बहाया जाता था उन को बहुधाकर वेदों में दस्यु लिखा है-इस से भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेद सृष्टि की आदि में ईश्वर ने प्रकाश नहीं किये वरण जब कि दस्यु लोगोंके साथ लड़ाई हुआ करती थी और मकान और नगर और कोट और दुर्ग अर्थात् किले बन गए थे उस समय वेदों के गीत बनाये गये हैं वेदों में स्वामी जी के अर्थों के अनुसार दस्यु लोगों को कृष्ण वर्ण अर्थात् काले रंग के मनुष्य वर्णन किया है-जिस से मालूम होता है कि स्वामी जी ने जो दस्यु का अर्थ चोर डाकू किया है वह ठीक नहीं है क्योंकि सृष्टि की आदि में चोर डाकू हो जाने से क्या कोई मनुष्य काले रंग का हो जाता था इस से यह ही मालूम होता है कि जो लोग अपने को आर्य कहते थे वह अन्य देश के रहने वाले थे और काले रंग के दस्यु अन्य देश के रहने वाले थे अर्थात् अंग्रेजोंका कथन इस से सत्य होता मालूम होता है कि आर्य लोगों का हिन्दुस्तान में भील गौड़ संथाल आदि जंगली और काले वर्ण की जातियों से बहुत भारी युद्ध रहा-

स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि आर्य और दस्यु लोगों का जब बहुत उपद्रव रहने लगा तब लाचार होकर अर्थात् हारकर आर्य लोग तिब्बत से इस हिन्दुस्तान देशमें भाग आये परंतु आश्चर्य है कि वेदों को ईश्वर का

वाक्य बताया जाता है और ईश्वर ने वेदों में चिल्ला २ कर और बार बार बरण हजारों बार यह कहा है कि तुम्हारी जीत हो, तुम शत्रुओं को मारो और दस्युओं का नाश करो परंतु ईश्वर का एक भी वाक्य सच्चा न हुआ और आर्यों को ही भागना पड़ा-

स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में यह भी लिखा है कि आर्यावर्तदेश से दक्षिण देश में रहने वाले मनुष्यों का नाम राक्षस है, परन्तु वेदों में राक्षसों से भी युद्ध करने और उनका सत्यानाश करने का वर्णन है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि वेदों के गीतों के बनाने के समय आर्य्यावर्त देश से दक्षिण में रहने वाले मनुष्यों से भी लड़ाई होती थी। तिब्बत आर्य्यावर्त देश के उत्तर में है और राक्षस आर्य्यवर्त देश से दक्षिण में है इस हेतु राक्षसों से लड़ाई हो नहीं सक्ती जब तक लड़ने वाले आर्य्यावर्त में न बसते हों। इस से स्वामी जी का यह कथन सर्वथाही झूठ होता है कि तिब्बत देश में सृष्टि की आदि में वेदों का प्रकाश किया गया और तिब्बत से आने से पहले किसी देश में कोई मनुष्य नहीं रहता था क्योंकि यदि कोई मनुष्य नहीं रहता था तो आर्य्यावर्त देश के दक्षिण में राक्षस लोग कहां से उत्पन्न हो गये? अर्थात् तिब्बत देश में प्रथम मनुष्यों का उत्पन्न होनाही सर्वथा असंगत होता है और यह ही मालूम होता है कि सर्व ही देशों में मनुष्य रहते चले आये हैं।

दस्यु और राक्षसोंको विध्वंस करने के विषय में जो गीत वेदों में हैं उन में से कुछ वाक्य स्वामी जी के अर्थों के अनुसार नीचे लिखे जाते हैं।

ऋग्वेद चौथा मंडलसूक्त १६ ऋचा १२-१३

सहस्रों (दस्यून्) दुष्ट चोरों को शीघ्र नाश कीजिये समीप में छेदन कीजिये सहस्रों कृष्णवर्ण वाले सैन्य जनों का विस्तार करो और दुष्ट पुरुषों का नाश करो।

ऋग्वेद चौथा मंडलसूक्त २८ ऋचा ४

(दस्यून) दुष्टों को सबसे पीड़ा युक्त करैं

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३० ऋचा १५

पांचसौ वा सहस्रों दुष्टों का नाश करो

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३८ ऋचा १

हे राजन आप और सेनापति डरते हैं दस्यु जिससे ऐसे होते हुए।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ०४ ऋचा ६

हे बलवान के पुत्र-बध से (दस्यु) साहस कर्मकारी चोर का अत्यंत नाश करो।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त २९ ऋचा १०

मुख रहित (दस्यून्) दुष्ट चोरों का बध से नाश करिये।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७० ऋ० ३

जिससे हम लोग शरीरोंसे (दस्यूनके) दुष्ट चोरों का नाश करैं॥

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २३ ऋचा २

दस्युकानाश करिये

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५१ ऋचा ५

हे सभाध्यक्ष-(दस्यु हत्येषु) डाकुओं के हननरूप संग्रामों से उन को छिन्न भिन्न कर दीजिये।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३१ ऋ० २२

हे वीर पुरुषो जैसे हम लोग रक्षा आदिके लिये मेघोंकेअवयवों को सूर्य के समान इस वर्त्तमान पुष्ट करने के योग्य अन्न आदि के विभाग कारक संग्राम में धनों के उत्तम प्रकार जीतने वाले अति प्रधान संग्रामोंमें नाश करते और सुनते हुए तेजस्वी वृद्धि कर्ता अत्यंत धन से युक्त शत्रुओं के विदारने वाले का स्वीकार वा प्रशंसा करें वैसे इस पुरुष का आप लोग भी आह्वान कर—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३४ ऋ० ९

दस्यूका नाश करके आर्योंकी रक्षाकरे

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४९ ऋ० २

शत्रुओं को दुख देनेवाले वीरों के साथ दस्यु के आयुः अवस्था का शीघ्र नाश करे उसको सब का स्वामी करो-

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० ७

असुर का अर्थ शत्रु ॥

अनेक प्रकार के रूप वा विकारयुक्त रूप वाले शत्रु ॥

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४ऋ० १-१५

सन्ताप देने वाले शस्त्र आदिकों से (राक्षसः) दुष्टों को पीड़ा देओ—

(राक्षसः) दुष्टाचरणों को भस्म कीजिये

वेदों के पढ़ने से मालूम होता है कि वेदों के समय में प्रायः तीर और वज्र अर्थात् गुर्ज यह दोही हथियार थे। धनुष के द्वारा तीर चलाते थे और गुर्ज हाथ में लेकर शत्रु को मारते थे। और तीरों की आघात से बचने के वास्ते कवच जिसको फारसी में जरा बकतर कहते हैं पहनते थे। तीर और गुर्ज और कवच का कथन वेदों के अनेक गीतों में आया है। इन के सिवाय और किसी अस्त्र शस्त्र का नाम नहीं मिलता है। परन्तु आज कल तोप और बन्दूक जारी होगई हैं जिनके सामने तीर और वज्र सब हेच हो गये हैं और तोप बंदूक के गोले गोलियों के मुकाबिले में कवच से कुछ भी रक्षा नहीं हो सकती है। इसही कारण आज कल कोई फ़ौजी सिपाही कवच नहीं पहनता है। और आज कल तोप और बंदूक भी नित्य नई से नई और अद्भुत बनती जाती हैं। यद्यपि वेदों में तीर, वज्र और कवच के सिवाय और किसी हथियार का वर्णन नहीं है परन्तु जिस प्रकार वेदों के गंवारू गीतों में स्वामी जी ने कहीं कहीं रेल और रेल के ऐंजिन और दुखानी जहाज़ का नाम अपने अर्थों में ज़बरदस्ती घुसेड़ दिया है, इस ही प्रकार ऋग्वेद प्रथम मंडलके सूक्त ८ की ऋचा ३ के हिन्दी अर्थ में तोप बंदूक आदिक सब कुछ प्रकाश कराया है अर्थात् इस प्रकार लिखा है।

हम लोग धार्मिक और शूरवीर हो कर अपने विजय के लिये (वज्रं) शत्रुओं के बलका नाश करने का हेतु आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और (घना) श्रेष्ठ शस्त्रों का समूह जिनको कि भाषा में तोप बंदूक तलवार और धनुषवाण आदि कर के प्रसिद्ध करते हैं जो युद्ध की सिद्धि में हेतु हैं उन को ग्रहण करते हैं।

बुद्धिमान पुरुषो ! विचार करो कि **वज्र और घना** इन दो शब्दों के अर्थ में किस प्रकार तोप बंदूक आदिक अनेक हथियार घुसेड़ गये हैं ? परन्तु हमारा काम यह नहीं है कि हम स्वामी जी के अर्थों में गलती निकालें क्योंकि हम तो प्रारम्भ से वेदों के विषय में जो कुछ लिख रहे हैं वह स्वामी जी के ही अर्थों के अनुसार लिखरहे हैं और आगामी भी उनही के अर्थों के अनुसार लिखेंगे । इस कारण हमतो केवल इतनाही कहना चाहते हैं कि वेदों में कहीं भी तोप बंदूक के बनाने की विधि नहीं बताई गई है वरण तीर, कमान, वज्र वा घना के बनाने की भी विधि नहीं सिखाई है जिस से यह ही ज्ञात होता है कि वेदों के प्रकाश से पहले से मनुष्य तोप बंदूक आदिक का बनाना जानते थे **जिससे वेदों का सृष्टि की आदिमें उत्पन्न होना और वेदों के विना मनुष्यों का अज्ञानी रहना बिल्कुल अप्रमाण सिद्ध होजाता है** परन्तु जो कुछ भी हो उन का कथन कितना ही पूर्वापर विरुद्ध हो जावे और चाहे उन के सारे सिद्धान्त आप से आप खंडित होजावें परन्तु स्वामीजी को तो रेल तारबर्की, और तोप बन्दूक का नाम किसी न किसी स्थान पर लिख कर यह जाहिर करना था कि वेदों में सर्व प्रकारकी विद्या भरी हुई है । अब हम स्वामी दयानन्दजीके ही वेदों के अर्थोंको नीचे लिखकर दिखाते हैं कि किस प्रकार वेदोंमें तीर और गर्ज, और कवचकाही वर्णन किया है और उन की अवस्था ऐसे ही हथियारोंके धारण करनेकी थी । वेदोंके गीत बनाने वाले ग्रामीण लोग तोप बन्दूकको स्वप्न में भी नहीं जानते थे । और यदि उस समय तोप बन्दूक होते तो शरीर को कवचसे क्यों ढकते ? ॥

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १६ ऋ२२-५

" बिजुली के तुल्य बज्रको दुष्टों पर प्रहार कर-हे हाथमें वज्र रखने वाले "

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २२ ऋचा ९

" दाहिने हाथ में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्रको धारण करिये । "

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २३ ऋचा १

" भुजाओं में वज्र को धारण करते हुए जाते हो । "

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २७ ऋचा ६

"तीस सैकड़े कवच को धारण किये हुए।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ७५ ऋचा १-१६-१९

" हे वीर...कवचधारी होकर अनविध शरीरसे तुम शत्रुओं को जीतो सो कवचका महत्व तुम्हें पाले „

" हे बाणों को व्याप्त होने वालों में उत्तम मैं तेरे शरीरस्थ जीवन हेतु अंगोंको कवचसे ढांपता हूं । „

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ० १६

" इन शत्रुओंमें अतिशय तपते हुए वज्रको फकके इनको उत्तम प्रकार विनाश कीजिये । „

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० २४

" संग्राममें धनुषकी तांत के शब्दको नित्य सब प्रकार प्राप्त करते हैं उनको और उन की आप अपने आत्माके सदृश रक्षा करो । „

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३३ ऋचा ९

" संग्राममें त्वचाका आच्छादन करने और रक्षा करने वाले कवच को देते हुए । „

ऋ० पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋचा ११

" जो सुन्दर बाणोंसे युक्त उत्तम धनुष वाला । „

आर्यमत लीला ।

(११)

प्यारे आर्य भाइयो ! आधा वेद लड़ाई करने' शत्रुओं को मारने, मनुष्यों का खून करने और लूटमार आदिक की प्रेरणा और उत्तेजनामें वा राजासे रक्षा की प्रार्थना में भरा हुआ है । जिस का नमूना हम भली भांति पिछले लेख में स्वामी दयानन्द सरस्वती जीके अर्थों के अनुसार दिखा चुके हैं। अब हम सोमका वर्णन करते हैं जिसके कथन में भी अनुमान एक चौथाई वेद भरा हुआ है ! सोम एक मद करने वाली वस्तु थी जिसको उस समयके लोग इकट्ठे होकर पीते थे । वेदों में सोम पीने की बहुत अधिक प्रेरणाकी गई है सोम पीने के वास्ते मित्रों को बुलाने के बहुत गीत गाये गये हैं परन्तु यह नहीं बताया है कि सोम क्या वस्तु है ? स्वामी दयानन्द सरस्वती जीने वेदोंके अर्थ करने में सोम का अर्थ औषधिका रस वा बड़ी औषधिका रस वा औषधि समूह वा सोमलता वा सोमवल्ली किया है । परन्तु यह आपने भी नहीं बताया कि जिस सोम पीने की प्रेरणामें एक चौथाई वेद भरा हुआ है वह सोम क्या औषधि है । वेदोंमें सिवाय इस सोम के और किसी औषधिका वर्णन नहीं है और न किसी रोगका कथन है । इस कारण स्वामी जीको बताना चाहिये था कि यह क्या औषधि है और किस रोग के वास्ते है ।

केवल औषधि कह देनेसे कुछ काम नहीं चलता है क्योंकि जितनी खाने की वस्तु हैं वह सब ही औषधि हैं अन्न भी औषधि है और दूध भी, शराब भी औषधि है और संखिया भी ऐसा मालूम होता है कि स्वामी जी को यह सिद्ध करना था कि संसारभर में जो विद्या है चाहे वह किसी विषय की हो वह सब वेदोंमें है और वेदों

से ही संसार के मनुष्यों ने सीखी है वेदों से भिन्न मनुष्य को किसी प्रकार की भी विद्या नहीं हो सकती है।

स्वामी जी ने वेदभाष्य भूमिका में वेद की एक ऋचा लिखकर जिसमें यह विषय था कि एक और एक दो और दो और एक तीन होता है यह सिद्ध कर दिया है कि वेदों में सारी गणित विद्या भरी हुई है। और किसी किसी स्थान में ज़बरदस्ती रेल, तारबर्की और आग पानी के अंजिन का नाम घुसेड़ कर यह विदित कर दिया है कि वेदों में सर्व प्रकार की कलों की विद्या है। और एक सूक्त के अर्थ में ज़बरदस्ती तोप बंदूक का नाम इस बातके ज़ाहिर करने के वास्ते लिख दिया है कि सर्व प्रकार के शस्त्रों की विद्या भी वेदों में है। इसही प्रकार सोम का अर्थ औषधि का समूह करने का यह ही मंशा मालूम होती है कि यह सिद्ध होजावे कि वेदों में सर्व प्रकार की औषधियों का भी वर्णन है और है भी ठीक जब **औषधि समूह** का शब्द वेदों में आ गया तो अन्य कौन सी औषधि रही जो वेदों में नहीं है? बरन यही कहना चाहिये कि वैद्यक, यूनानी हिकमत, डाक्टरी आदिक जितनी विद्या इस समय संसार में प्रचलित हैं वा जो जो औषधि आगामी को निकाली जावेगी वह भी सब वेदों में मौजूद हैं—

"औषधि समूह" यह मंत्र लिखकर स्वामी जी ने तो सारी वैद्यक लिखा दी परंतु हम ऐसे अभागे हैं कि हम पर इस मंत्रका कुछ असर न हुआ और हम को किसी एक भी औषधि का नाम वा उस का गुण मालूम न हुआ इस कारण हम को इस बात के खोज करने की ज़रूरत हुई कि सोम क्या पदार्थ है?—इस हेतु हम इस की खोज वेदों ही से करते हैं—

वेदों में अनेक स्थान में सोम का पीना मद अर्थात् नशे के वास्ते वर्णन किया है स्वामी जी ने मद का अर्थ आनन्द किया है-इस अर्थ से भी नशे की पुष्टि होती है क्योंकि नशा आनंद के ही वास्ते किया जाता है-वेदों में स्थान स्थान पर सोम को मदके वास्ते ही पीने की प्रेरणा की है परंतु हम उसमें से कुछ वाक्य स्वामी जी के वेद भाष्यके हिन्दी अर्थोंसे नीचे लिखतेहैं।

ऋग्वेद छटा मंडल सूक्त ६८ ऋचा १०

(मद्यम्) जिससे जीव आनन्द को प्राप्त होता है उस सोम को पियो-

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४७ ऋ० १

सङ्ग्राम और (मदाय) आनन्द के लिये (सोम) श्रेष्ठ औषधि के रसका पान करो और पेट में मधुर की लहर को सेवन करो।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १४ ऋ० ४

हे स्त्री पुरुषो-ये जिस कारण आप दोनों के (सोमः) ऐश्वर्यके सहित पदार्थ इस मेल करने योग्य गृहाश्रम में मधुर गुणों से पीने योग्य के लिये होते हैं

इस कारण उन का इस संसार में सेवन करके पराक्रम वाले होते हुए आप दोनों (मादयेथाम) आनन्दित होवें ।

ऋग्वेद सप्तमसंडल सूक्त २६ ऋ० २

सोमरस "जीवात्मा को हर्षित करताहै

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४० ऋचा १

हे राजन् ! जो आप के लिये(मदाय) हर्ष के अर्थ उत्पन्न किया गया सोमलता का रस है उसको पीजिये ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ ऋचा ३

(मदः) आनन्द देने वाला वह (सोमः) औषधियों का रस उत्पन्न किया गया आप का है उसकी आप वृद्धि कीजिये

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४९ ऋचा २

हे राजा और उपदेशक विद्वान् जनो ! आप दोनों के मुख में (मदाय) आनन्द के लिये पान करने को अति उत्तम (सोमः) बड़ी औषधिका रस यह सब प्रकार से सींचा जाता है इस से आप समर्थ होवें ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४३ ऋचा ५

हे अत्यंत ऐश्वर्य से युक्त विद्वन् जिस से आप के बड़े प्रीति से सेवन किये गये प्रज्ञान तथा चातुर्य्य बल और (मदाय) आनंद के लिये (सोमः) बड़ी औषधियों का रस वा ऐश्वर्य्य उत्पन्न किया जाय ।

हम ऐसा सुनते हैं कि फिरंगी विद्वान् जिन्हों ने वेदों का अर्थ किया है और वेदों को पढ़ा है उन्होंने वेदों में यह कथन देखकर कि सोम मदके वास्ते पिया जाता था सोम को मदिरा समझा है और इस कारण कि सोम रस की उत्पत्ति वेदों में वनस्पति से लिखी है उन्होंने यह नतीजा निकाला है कि ताड़ी आदिक किसी विशेष वृक्ष का यह मद है जिस से नशा पैदा होता है उन का ऐसा समझना कुछ अचम्भे की भी बात नहीं है क्योंकि वेदों में मदिरा का भी वर्णन मिलता है इसकी सिद्धि के अर्थ हम कुछ वाक्य स्वामी दयानन्द जी के वेद भाष्य से लिखते हैं—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७५ ऋ० २

हे सभापति आप का जो सुख करने वाला स्वीकार करने योग्य वीर्य कारी जिसमें बहुत सहन शीलता विद्यमान जो अच्छे प्रकार रोगों का विभाग करने वाला जिससे मनुष्यों की सेना को सहते हैं और जो मनुष्यस्वभाव से विलक्षण (मदः) औषधियों का रस है वह हम लोगों को प्राप्त हो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६६ ऋ० ७

जो स्तम्भन देने वाले अर्थात् रोक देने वाले जिनका धन विनाशको नहीं प्राप्त हुआ पूर्ण शत्रुओं के मारने हारे अच्छी प्रशंसाको प्राप्त जन संग्रामों में शूरता आदि गुण युक्त युद्ध करने वाले के प्रथम पुरुषार्थी बलों को जानते हैं (मदिरस्य) आनन्द दायक रस के (पीतये) पीने को सत्कार करने योग्य विद्वान का अच्छा सत्कार करतेहैं।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २० ऋचा ६

(मदिरम्) मादक द्रव्य–

परन्तु वेदों में कुछ ही कथन होसोम कदापि मदिरा नहीं हो सकती है वरन वह भंग और धतूरा है जिसको वेदों के गीत बनने के समय पिया करते थे और जिस को अब भी वेदों के मानने वाले हिन्दू लोग बहुधा कर पीते हैं। यूरुप देश में भंग का प्रचार नहीं है वह लोग भंग को नहीं जानते हैं इस कारण भंग का अनुभव होना उन को असम्भव था इसही हेतु उन्हों ने यह गलती खाई है परन्तु हम स्वामी जी के अर्थों के अनुसार ही वेद वाक्यों से सोम को भंग और धतूरा सिद्ध करेंगे-सोम भंग और धतूरे के सिवाय और कोई वस्तु होही नहीं सक्ती-है-सोम का अर्थ वास्तव में चन्द्रमा है चन्द्रमा शीतल होता है और इसदेश के कवि लोग शीतल वस्तुको चन्द्रमा से उपमा दिया कहते हैं भंग पीनेवाले भंगको ठंढाई कहते हैं इस ही से ऐसा मालूम होता है कि कवियों ने भंग का नाम सोम रखलिया था—

भंग का पत्ता देखने पर मालूम हुवा कि उस परछोटे छोटे बहुत रोम होते हैं और पत्ते पर तिर्छी लकीर होती हैं ऐसा ही स्वरूप वेद में सोम का बयान किया है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३५ ऋ० ६

यज्ञ की चाहना करने वालों ने जलों में उत्पन्न किई (सोमः) बड़ी २ ओषधि पुष्टि करती हुई तुम दोनों को देवे और शुद्ध वे लेवें जो ये इकट्ठे होवें और तुम दोनों की इच्छा करती हुए (सोमासः) ऐश्वर्य युक्त नाश रहित (अतिरोमाणि) अतीवरोमा अर्थात् नारियलकी जटाओं के आकार सनातन सुखों के समान औरोंसे तिरछे शुद्धि करने वाले पदार्थों और तुम दोनों को चारों ओर से सिद्ध करें उन को तुम पिओ और अच्छे प्रकार प्राप्त होओ—

(नोट) वेद में अतिरोमाणि शब्द जिसका अर्थ है बहुत रोमवाला स्वामी जी ने भी अतीवरोमा अर्थ किया है परन्तु अर्थ को रलाने के वास्ते यह भी लिख दिया है कि अर्थात नारियल की जटाओं के आकार।

भंग सिल बट्टेपर रगड़ी जाती है जिसका बर्णन नीचे लिखे वाक्यों में है और रगड़ कर पानी मिलाने का कथन है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३० ऋ० २

हे सभापति अतीव प्यासे बैल के समान बलिष्ठ विभाग करने वाले आप शिलाखंडों से निकालनेके योग्य मेघसे बढ़े और संयुक्त किये हुवे के समान सोम को अच्छे प्रकार पिओ–

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३१ ऋ० ३

हे प्राण और उदान के समान सर्व मित्र और सर्वोत्तम सज्जनो हमारे अभिमुख होते हुए तुम तुम्हारी जिस निवास कराने वाली धेनु के समान पत्थरों से बढ़ी हुई सोम बल्ली को

दुहते जलादिसे पूर्ण करते मेघों से (सोमपीतये) उत्तम ओषधि रस जिस में पिये जाते उसके लिये ऐश्वर्य को परिपूर्ण करते उसको हमारे समीप पहुंचाओ जो यह मनुष्यों ने सोम रस सिद्ध किया है वह तुम्हारे लिये अच्छे प्रकार पीने को सिद्ध किया गया है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३५ ऋ० ५

अच्छे प्रकार पर्वत के टूक वा उखली मूसलों से सिद्ध किये अर्थात् कूट पीट बनाये हुये पदार्थों के रस को (मदाय) आनन्द के लिये तुम पीओ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३६ ऋ० २-६

सेचनों से मथे हुए बढ़ाने वाले रस का पान कीजिये।

जो राजा श्रेष्ठ पुरुष होता हुआ मभाओं को प्राप्त होवे इससे वह गुणों से पूर्ण औषधियों का सार भाग और (सोमः) औषधियों का समूह जल को जैसे प्राप्त होवे वैसे सम्पूर्ण प्राणियोंको सुख देता है।

भंगमें दूध मिलाया जाता है उसका भी वर्णन इस प्रकार है:—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५८ ऋ० ४

गौवों के दूध आदि से मिले हुए सोमलता रूप औषधियों के रसों को मित्र लोगों के सदृश देवें।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त २३ ऋचा १

उत्तम (सोमम्) दुग्ध आदि रसको पीता है।

दूध मिलाने से भंग सफेद दूधिया हो जाता है उसका वर्णन इस प्रकार है।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त २७ ऋचा ५

हे मनुष्यों जो बहुत श्रेष्ठ धन युक्त गौओंसे सम्बद्ध बढ़े हुए श्वेत वर्ण वाले घड़े जल और अन्नको पीनेके लिये (मदाय) आनन्दके लिये धारण करता है और जो (शूर) भयसे रहित अत्यन्त ऐश्वर्यवाला (मदाय) आनन्दके लिये अपने नहीं नाश होनेकी इच्छा करने वालोंके साथ मधुर आदि गुणोंके प्रथम प्रयत्नसे सिद्ध करने योग्य आनन्दके पीने को धारण करता है वह नहीं नष्ट होने वाले बलको प्राप्त होता है।"

भंगमें मीठा मिलाया जाता है उसका वर्णन निम्न प्रकार है और वेदोंके पढ़नेसे यह भी मालूम होता है कि वेदोंके समयमें शहदकी ही मिठाई थी और कोई मिठाई नहीं थी।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ ऋचा २१

"आप उत्तम सुखके वर्षाने वालेके लिये पानको स्वादसे युक्त सोमलताका रस (मधुपेयः) शहद के साथ पीने योग्य हो।"

भंग पाकर दही आदिक भोजन खाते हैं उसका वर्णन इस प्रकार है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३७ ऋचा २

"हे पढ़ने वा पढ़ाने वाले जो सुन्दर मित्रके लिये पीनेको और उत्तम जनके लिये सत्याचरण और पीनेको प्रभात

वेलाके प्रबोधमें सूर्य मंडलकी किरणों के साथ औषधियोंका रस सब ओरसे सिद्ध किया गया है उसको तुम प्राप्त हो तुम्हारे लिये ये गोले वा टपकते हुए (सोमासः) दिव्य औषधियोंके रस और जो पदार्थ दहीके साथ भोजन किये जाते उनके समान दही से मिले हुए भोजन सिद्ध किये गये हैं उन्हें भी प्राप्त होओ।,,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५२ ऋचा७

हे (शूर) दुष्ट पुरुषके नाश कर्त्ता उस आपके लिये दधि आदिसे युक्त भोजन करनेके पदार्थ विशेष और भुंजे अन्न तथा पुआको देवे उसको समूहके सहित वर्तमान आप उत्तम मनुष्योंके साथ भक्षण कीजिये और सोमकापान कीजिये।,,

धतूरेके बीज भी भंगमें मिलाये जाते हैं उसका वर्णन इस प्रकार है:—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८७ ऋचा ९

हे (सोम) यवादि औषधि रस व्यापी ईश्वर गौके रससे बनाये वा यवादि औषधियोंके संयोगसे बनाये हुए उस अन्नके जिस सेवनीय अंशको हम लोग सेवते हैं उससे हे (वातापे) पवन के समान सब पदार्थोंमें व्यापक परमेश्वर उत्तम वृद्धि करने वाले हूजिये।,,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३६ ऋचा८

" जिस पुरुषके दोनों ओरके उदर के अवयव (सोमधानाः) सोमरूप औषधियोंके बीजोंसे युक्त गम्भीर जलाशयोंके सदृश वर्तमान हैं।,,

आर्यमत लीला ॥

(१२)

वेदों में सोम पीने वाले की बड़ी तारीफ (प्रशंसा) की गई है यहां तक कि जो चोरी करके पीवे उसकी बहुत ही प्रशंसा है भंगड़ लोग भी भंग पीने वाले की इस ही प्रकार प्रशंसा किया करते हैं हम इस विषय में स्वामी जी के वेदभाष्य के हिन्दी अर्थों से कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४८ ऋ० ४

जो यह भक्षण करने वालो सेनाओं में साम की चोरी करके पीवे... वह राज्य करने के योग्य होवे—

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३१ ऋचा १

हे मित्रो तुम्हारे मनुष्य वा हरणशील घोड़े जिसके विद्यमान हैं उस सोम पीने वाले परम ऐश्वर्यवान्के लिये आनंद से तुम अच्छे प्रकार गाओ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४६ ऋ० १

हे वायु के सदृश बलयुक्त जिस से आप श्रेष्ठ क्रियाओंमें पूर्व वर्त्तमान जनों का पालन करने वाले हो इससे मधुर रसों के बीच में उत्तम उत्पन्न कियेगये रसको पान कीजिये।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त २९ ऋ० ५

जो सम्पूर्ण विद्वान् जन सोम औषधि पान करने योग्य रस को अनुकूल देते हैं वे बुद्धिसे विशेष ज्ञानी होते हैं।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४० ऋ० ४

जो सोमरसका पीने वाला दुष्ट शत्रुओंका नाश करने वाला हो उसही को अधिष्ठाता करो।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १२ ऋ० २

हे निश्चित रक्षण और यज्ञ कराते हुए जनों वाले मनुष्यो जो तुम धर्म के और धर्म युक्त कर्मके साथ वर्तमान होवै सोम पीने के लिये उत्तम व्यवहार में उपस्थित हूजिये,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५४ ऋचा ८

सोम के पीने वाले धार्मिक विद्वान पुरुष कर्म से वृद्ध शत्रुओं के बल नाशक... वे सब आप की सभा में बैठने योग्य सभासद और भृत्य होवें।

आज कल जिस प्रकार भंग पीने वाले भंगड़ भंग न पीने वालों की बुराई करते हैं और भंग की तरंग में गीत गाते हैं कि, बेटा होकर भंग न पीवै बेटा नहीं वह बेटी है।

इस ही प्रकार वेदों में भी न पीने वाले की बुराई की गई है, बरन उस पर क्रोध किया गया है यहां तक कि उसको मारने और लूट लेने का उपदेश किया है यथा—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७६ ऋ० ४

हे राजन् आप उस पदार्थों के सार खींचने आदि पुरुषार्थ से रहित और दुःख से बिनाशने योग्य समस्त आलसी जन को मारो दंडदेओ कि जो विद्वान् के समान व्यवहारों की प्राप्ति करता है और तुम्हारे सुख को नहीं पहुंचता तथा आप इस के धनको हमारे अर्थ धारण करो—

सोम की तरंग में इस प्रकार बेतुका गीत गाया गया है।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १८ ऋ० ४-५

हे परम ऐश्वर्य युक्त बुलाये हुए आप दो हरण शील पदार्थों के साथ यान से आइये चार हरण शील पदार्थों के साथ यान से आओ छः पदार्थों से युक्त यान से आओ आठ वा दश पदार्थों से युक्त यान से आओ जो यह उत्पन्न किया हुआ पदार्थों का पीने योग्य रस है उस पदार्थों के रस के पीनेके लिये आओ।

हे असंख्य ऐश्वर्य देने वाले युक्त होते हुए आप बीस और तीस हरने वाले पदार्थों से चलाये हुए यानसे जो नौ के को जाता है उस सोम आदि औषधियों में पीने योग्य रस को प्राप्त होओ आओ चालीस पदार्थों से युक्त रथसे आओ पचास हरणशील पदार्थों से युक्त सुन्दर रथों से आओ साठ वा सत्तर हरणशील पदार्थोंसे युक्त सुन्दर रथोंसे आओ--"

(इसही प्रकार आगेकी ऋचामें अस्सी और सौ भी कहते चलेगये हैं हम कहां तक लिखें)

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३० ऋचा ९

"हे मनुष्यो! जो मुझे तृप्त करे जो मुझको सुख देवे जो मुझ को निश्चित बोध करावे जो इन्द्रियों से यत्न करते हुए मुझ को अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होवे वह मुझ को सेवने योग्य है जो मुझको नहीं चाहता नहीं श्रम कराता और नहीं मोह करता हम लोग जिस को ऐसा नहीं कहैं उस (सोमम्) औ-

षधि रसको तुम लोग मत खींचो।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४७ ऋचा ३

"हे मनुष्यो! जैसे यह पान किया गया सोमलता का रस मेरी वाणी को कामना करती हुई बुद्धिको बढ़ाता है जिससे यह जन कामनाको प्राप्त होता है जिससे यह छः प्रकारकी भूमियोंको ध्यान करने वाला बुद्धिमान् जन जैसे निर्माण करता है और जिनसे दूर वा समीप में कभी भी संसारको रचता है यह वैद्यकशास्त्रकी रीतिसे बनाने योग्य है!"

सोमके नशेमें जो कोई अपराध हो जावै उसकी क्षमा इस प्रकार मांगी गई है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७६ ऋचा ५

"मैं जिस इस हृदयों में पिये हुए (सोमम्) ओषधियोंके रसको उपदेश पूर्वक कहता हूं तुम को बहुत कामना वाला पुरुष ही सुख संयुक्त करे अर्थात् अपने सुख में उसका संयोग करे जिस अपराधको हम लोग करें उसको शीघ्र सब ओरसे समीपसे सभी जन छोड़ें अर्थात् क्षमा करें—"

सोम पीकर कामदेव उत्पन्न होता था और भोजन की इच्छा होती थी जिस प्रकार भंगसे होती है। यथा—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६८ ऋ० ३

"मैं जो पवनोंके समान विद्वान् जिनसे सूर्य किरण आदि पदार्थ तृप्त होते और वे कूट पीट निकाले हुए सोमादि औषधि रस हृदयोंमें पिये हुए हों उनके समान वा सेवन करने वालोंके समान बैठते स्थिर होते इनके भुज स्कन्धोंमें जैसे प्रत्येक कामका आरम्भ करने वाली स्त्री संलग्न हो वैसे संलग्न होता हूं जिन्होंने हाथोंमें भोजन और क्रिया भी धारण किई है उनके साथ सब क्रियाओं को अच्छे प्रकार धारण करता हूं।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४८ ऋचा १२

"हे प्रभातके तुल्य स्त्री मैं सोम पीनेके लिये ऊपरसे अखिल दिव्य गुण युक्त पदार्थों और जिस तुझको प्राप्त होता हूं उन्हींको तू भी अच्छे प्रकार प्राप्त हो—"

सोम इकट्ठे होकर पिया जाता था जिस प्रकार भंग इकट्ठे होकर पीते हैं। यथा:—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४५ ऋचा ९

"हे—विद्वानो! मैं सज्जन...आज सोम रसके पीनेके लिये प्रातःकाल पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले विद्वानों... और उत्तम आसनको प्राप्त कर।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४७ ऋचा १०

"हे बहुत विद्वानोंमें वसने वाले... जहां विद्वानोंकी पियारी सभामें आप लोगोंको अतिशय श्रद्धा कर बुलाते हैं वहां तुम लोग पीछे सनातन सुख को प्राप्त होओ और निश्चय से सोम को पीओ।"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३७ ऋचा ३

"सब ओर से उद्यम कर और मेल कर प्राप्तिसे आप वसन्तादि ऋतुओंके साथ सोमको पीओ—"

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त १६ ऋ० ४४

"हे विद्वान्! आप हम लोगोंको उत्तम प्रकार सोम रसके पानके लिये सब ओर से प्राप्त होओ-"

किसीके राजा होनेपर सोम रस बांटा जाता था। यथा:-

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त २९ ऋ० ४

"हे विद्वानो में अग्रणी जनो! जिन राजाके होनेपर पाक पकाया जाता है भंजे हुए अन्न हैं चारों ओरसे अत्यन्त मिला हुआ उत्पन्न सोम रस होता है... वह आप हम लोगोंके राजा हूजिये-"

सोमको पेट भर कर पीने की प्रेरणा की जाती थी जिस प्रकार भंगड़ दो दो लोटे पी जाते हैं।" यथाः—

ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त १४ ऋ० ११

उस ऐश्वर्यवान को यव अन्न से जैसे मटका को वा छिद्दरा को वैसे (सोम भिः) सोमादि औषधियों से पूरो परिपूर्ण करो-

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त २२ ऋ० १

घोड़े के समान सोम को पीओ-

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४४ ऋ० ४

हे सत्याचरण वाले अध्यापक और उपदेशक जनो! आप दोनों इस यज्ञको प्राप्त होओ और मधुर आदि गुणों से युक्त सोमरस का पान करो।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४० ऋ०२-४-५

हे इन्द्र अत्यन्त तृप्ति करने और यज्ञ के सिद्ध करने वाले उत्तम संस्कारों से उत्पन्न सोमकी कामना और पान करो उससे बैल के सदृश बलिष्ठ होओ।

हे-इन्द्र जो ये आनन्दकारक गीले सोम आप के रहने के स्थान को प्राप्त होते हैं उनका आप सेवन करो।

जो आप के"स्नेह करने वाले होवें उनके समीप से भोग करने योग्य उत्तम प्रकार बनाया सोम को उत्पन्नहो सुख जिस में उस पेट में आप धरो।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७२ ऋ० १

हे अध्यापक और उपदेशक जनो"""

आप सोम रसका पान करने के लिये उत्तम गृह वा आसन में बैठिये।

वेदों में सोमरस पीनेके वास्ते मनुष्यों को बुलाने के बहुत गीत हैं जिस प्रकार भांग पीने वाले भंग घोटकर बुलाया करते हैं। यथाः-

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७८ ऋ० २

सोमलता के पश्चात् जैसे हरिण दौड़ते हैं वैसे और जैसे दो मृग दौड़ते हैं वैसे आइये।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६० ऋ० ९

हे नायक"सोमपान के लिये इस अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए जिनसे उत्पन्न करते हैं उस के समीप प्राप्त होओ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १०८ ऋ० ७-८

हे स्वामी और सेवको सुख की वर्षा करते हुवे आओ-सोम को पिओ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २४ ऋ० ३

सोम को पीने के लिये"हमारे इस वर्तमान उत्तम स्थान वा अवकाश को आओ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २९ ऋ० १

हे बहुधन और प्रशस्त मनुष्य युक्त दारिद्र्य विनाशने वाले जो यह सोम रस है जिसको मैं तो तुम्हारे लिये सींचता हूं उस को तुम पीओ वह श्रेष्ठ गृह जिसका है ऐसे होते हुए आओ हम सुन्दर निर्माण किये और सुन्दर जन के धनों को प्राप्त होते हुए हमारे लिये देओ ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४० व ४१ ऋ० क्रमः ४ व १

पीने योग्य सोमलता के रसको पीने के लिये समीप प्राप्त हूजिये ।

उत्पन्न किये गये सोमलता आदि के जल पवित्र करते हैं उनके समीप आइये।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५९ ऋ० १०

उत्तम शिक्षायुक्त वाणियोंके साथ तुम सोम के पीने को आओ ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४२ ऋ० ४

सोमरसके पीनेके वास्ते (जिस अत्यंत विद्या आदि ऐश्वर्य वालेको हम संसार में पुकारें वह हम लोगों के समीप बहुत बार आवे ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७१ ऋचा ३

हे मित्रश्रेष्ठ ! आप दोनों हम देने वाले के सोमरस को पीनेके लिये हम लोगों के उत्पन्न किये हुए पदार्थ के समीप में आइये ।

सोम की प्रशंसा और पीने की प्रेरणा में अनेक गीत गाये गये हैं उन में से कुछ हम यहां लिखते हैं ।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३६ ऋ० १-२

हे यज्ञपते आदि भूत आप उत्तम क्रिया के साथ ऋतुसमता से गृहीत दान के कारण क्रिया से सिद्ध किये हुए सोमरस को अच्छे प्रकार पिओ।

हे धारण करने वाले के पुत्रो नायक मनुष्यो जैसे अच्छे प्रकार मिले हुए श्वेत वर्ण प्यारे मन अच्छी क्रियाओं से युक्त प्राप्ति कराने वाली पवन की गतियों से प्राप्त हुए समय में और कामना करते हुओं में अन्तरिक्ष को पहुंच कर पवित्र व्यवहार से उत्पन्न हुए प्रकाश से सोमरस को पीते हैं वैसे तुम पिओ ।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४१ ऋ० ४

" हे...अध्यापको ! जो यह तुम दोनों में सोमरस उत्पन्न हुआ उसको पीके ही यहां मेरे आवाहनको सुनिये--,,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४३ ऋ० १

" यह (सोम) बुद्धि और अन्न का बढ़ाने वाला रस आपके लिये उत्पन्न किया गया है उसका आप पान करिये । ,,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३२ ऋ० ५

" निरन्तर अनादि सिद्ध बलके लिये सोम रसको पीयो--"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५१ ऋ० १०

" आप बलसे इसके बल सिद्ध किये गये सोमलता रूप रसका पान कीजिये निश्चयसे और पान करनेकी इच्छा से इस सोमलताका पान करो--"

ऋग्वेद मंडल चौथा सूक्त ४९ ऋ:५-६

" हे अध्यापक ! और उपदेशक आ-

नो जैसे हम लोग प्राणियोंसे इस (सोमस्य) ओषधियोंसे उत्पन्न हुए रसके पानके लिये आप दोनोंका स्वीकार करते हैं वैसे इस के उत्पन्न होने पर हम लोगोंका स्वीकार करो--"

" हे राजा और मन्त्री जनो ! आप दोनों दाता जनके स्थानमें (सोमम्) अति उत्तम रसका पान करो और हम लोगोंको निरन्तर (मादयेथाम्) आनन्द देओ ।"

सोम पीकर युद्धमें जानेकी प्रेरणा इस प्रकार की गई है--

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७७ ऋ० ३

" हे--बलिष्ठ राजन् ! हम लोगों को प्राप्त होते और रस आदिसे परिपूर्ण होते हुए आप जो अपने लिये सोम रस उत्पन्न किया गया है उसमें मीठे मीठे पदार्थ सब ओरसे सींचे हुए हैं उस रसको पीकर मनुष्योंके प्रबल हरण शील घोड़ोंसे दृढ़ रथको जोड़ युद्ध का यत्न करो वा युद्धकी प्रतिज्ञा पूर्ण करो नीचे मार्गसे समीप आओ । "

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५५ ऋ० २

" जो सभाध्यक्ष...सोम पीनेके लिये बैलके समान आचरण करता है वह युद्ध करने वाला पुरुष...राज्य और सत्कार करने योग्य है । "

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४१ ऋ०२-४

"सकल विद्याओंका जाननेवाला पुरुष सोमलता के रस को पीजिये और शत्रुओं को देश से बाहर करके नष्ट करिये ।

और पुरुषों के सहित सोमका पान कीजिये ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० ४-६

जब कब हम लोग सोमलता के रस संचित करें उसको आप शत्रुओंके संताप देने वाले बिजुली के समान प्राप्त होवें ।

सोमका पान करिये और पीकर श्रेष्ठ संग्राम जिससे उसको प्राप्त हो होइये ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १८ ऋ० ३

जैसे सेना का ईश प्रकाश के स्थान में "सोमको सेनाओंके मध्यमें पीता है।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४५ ऋ० ३-५

हे सेना के ईश "मधुर रसों को पीने वाले वीर पुरुषों के साथ मधुर आदि गुण से युक्त पदार्थ के मनोहर रसको पिओ जो मधुर आदि गुण युक्त सोम को उत्पन्न करता है उसको-सिद्धकरो।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४० ऋ० १

हे सोमपते "सोम को पान कीजिये और संग्राम को प्राप्त हूजिये ।

वेदों में सोम पीने का समय सुबह और दोपहर वर्णन किया है भंगड़ भी उस ही समय में भंग पीते हैं । यथा-

ऋग्वेद तीसरा मण्डल सूक्त ३२ ऋ० ३

वीर पुरुषों के साथ समूह के सहित वर्तमान आप मध्य दिन में "सोम लतादि औषधि का पान करो ।

ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त ३४ ऋ० ३

हे मनुष्यो जो हम के लिये दिन में

भी अथवा प्रभात समय में (सोमम्) जल का पान करता है ।

ऋग्वेद् पंचम मण्डल सूक्त ४४ ऋ० १४

जो (जागार) अविद्या रूप निद्रा से उठके जागने वाला उसको यह (सोमः) सोमलता आदि औषधियों का समूह वा ऐश्वर्यके सदृश निश्चित स्थान वाला मित्रत्व में आप का मैं हूं इस प्रकार कहता है ।

ऋग्वेद् पंचम मण्डल सूक्त ५१ ऋ० ३

हे बुद्धिमान आप प्रातकाल में जाने वाले विद्वानों के और बुद्धिमानों के साथ सोमलता नामक औषधि के रस के पीने के लिये प्राप्त हूजिये ।

आर्यमत लीला ॥

[ग-भाग]

यजुर्वेद ।

(१३)

वेद चार हैं जिन में से ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य स्वामी दयानन्दजी ने किया है बाकी दो वेदों का भाष्य नहीं किया है । स्वामी दयानन्दजीके अर्थों के अनुसार हमने ऋग्वेदके बहुतसे वाक्य लिखकर पिछले लेखोंमें यह सिद्ध किया है कि वेद कोई धर्मशिक्षा की पुस्तक नहीं है यहां तक कि वह साधारण शिक्षाकी भी पुस्तक नहीं है बरन ग्रामीण किसानोंके गीतोंका बेसिलसिले संग्रह है शायद हमारे पाठकों मेंसे कोई यह सन्देह करता हो कि ऋग्वेद में ही अनाड़ी किसानों के गंवारू गीत हैं परन्तु अन्य वेदों में नहीं मालूम क्या विषय होगा? इस कारण हमको यजुर्वेद के विषय का भी नमूना दिखानेकी जरूरत हुई है जिस से प्रगट हो जावे कि यजुर्वेदमें भी ऐसे ही गंवारू गीत हैं । हम अपने पाठकोंको यह भी निश्चय कराते हैं और आगामी सिद्ध भी करेंगे कि ऋग्वेद और यजुर्वेदके अतिरिक्त जो अन्य दो वेद हैं उन में भी वैसे ही गीत हैं जैसे ऋग्वेद में दिखाये गये हैं । बरन उन दो वेदों में तो बहुधा वह ही गीत हैं जो ऋग्वेद में हैं और यह ही कारण है कि स्वामी दयानन्द जी ने उन दो वेदों का अर्थ प्रकाश करना व्यर्थ समझा है

यजुर्वेद के मजमून को सिलसिलेवार तो हम आगामी लेखों में दिखावेंगे—परन्तु इससे पहले हम बानगीके तौर पर कुछ ऋचाओं का अर्थ स्वामी दयानन्द जी के भाष्य में से लिखते हैं जिससे मालूम हो जावेगा कि यजुर्वेद में किस प्रकार के गंवारू गीत हैं:—

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा १२

"मेरे चावल और साठीके धान मेरे जौ और अरहर मेरे उरद और मटर मेरा तिल और नारियल मेरे मूंग और उसका बनाना मेरे चने और उसका सिद्ध करना मेरी कंगुनी और उसका बनाना मेरे सूक्ष्म चावल और उन का पाक मेरा समा (श्यामाकाः) और महुआ पटेरा चेना आदि छोटे अन्न मेरा पसाई के चावल जो कि बिना बोए उत्पन्न होते हैं और इन

का पाक मेरे गेहूं और उनका पकाना तथा मेरी मसूर और इनका संबन्धी अन्य अन्न ये सब अन्नोंके दाता परमेश्वर से समर्थ हों"

(नोट) "यज्ञेन कल्पन्ताम्"-इस वाक्यका अर्थ स्वामीजीने यह किया है सब अन्नोंके दाता परमेश्वरसे समर्थहों।

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा १४

"मेरा अग्नि और बिजुली आदि ['च' शब्द का अर्थ बिजुली आदि किया है] मेरे जल और जलमें होने वाले रत्न मोती आदि ['च, शब्दका अर्थ जलमें होने वाले रत्न मोती आदि किया है] मेरे लता गुच्छा और शाक आदि मेरी सोमलता आदि औषधि और फल पुष्पादि मेरे खेतों में पकते हुए अन्न आदि और उत्तम अन्न मेरे जो जंगल में पकते हैं वे अन्न और जो पर्वत आदि स्थानों में पकने योग्य हैं वे अन्न मेरे गांव में हुए गौ आदि और नगर में ठहरे हुए ['च, शब्द का अर्थ नगर में ठहरे हुये किया है] तथा मेरे बन में होनेहारे मृग आदि और सिंह आदि पशु मेरा पाया हुआ पदार्थ और सब धन मेरी प्राप्ति और पाने योग्य मेरा रूप और नाना प्रकार का पदार्थ तथा मेरा ऐश्वर्य्य और उसका साधन ये सब पदार्थ मेल करने योग शिल्पविद्या से समर्थ हों [यज्ञेन कल्पन्ताम्] इस वाक्य का अर्थ मेल करने योग्य शिल्पविद्या से समर्थ हों किया है]

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा २६

मेरा तीन प्रकारका भेड़ों वाला और इससे भिन्न सामग्री मेरी तीन प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री और इनसे उत्पन्न हुए घृतादि मेरे खंडित क्रियाओंमें हुए छिद्रों को पृथक् करने वाला और इसके संबन्धी मेरी उन्हीं क्रियाओं को प्राप्त कराने हारी गाय आदि और उसकी रक्षा मेरा पांच प्रकार की भेड़ों वाला और उसके घृतादि मेरी पांच प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री और इसके उद्योग आदि मेरा तीन बछड़े वाला और उसके बछड़े आदि मेरी तीन बछड़े वाली गौ और उस के घृतादि मेरा चौथे वर्ष को प्राप्त हुवा बैल आदि इसको काम में लाना मेरी चौथे वर्ष को प्राप्त गौ और इस की शिक्षा यह सब पदार्थ पशुओं के पालन के विधान से समर्थ होवें [यज्ञेन कल्पन्ताम] इस वाक्य का अर्थ-पशुओं के पालन के विधानसे समर्थ होवें कियाहै]

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा २७

मेरे पीठ से भार उठाने हारे हाथी ऊंट आदि और उन के संबंधी मेरी पीठसे भार उठाने हारी घोड़ी ऊंटनी और उनसे उठाये गये पदार्थ मेरा वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ और वीर्य धारण करने वाली गौ आदि मेरी बंध्या गौ और वीर्य्यहीन बैल मेरा समर्थ बैल और बलवती गौ मेरी गर्भ गिराने वाली और सामर्थ्य हीन गौ मेरा हल और गाड़ी आदि को चलाने

में समर्थ बैल और गाड़ीवान आदि सेरी नवीन ब्याती दूध देने हारी गाय और उसकी दोहने वाला जन ये सब पशुशिक्षा रूप यज्ञकर्म से समर्थ होवें। [यज्ञेन कल्पन्ताम्] का अर्थ पशु शिक्षा रूप यज्ञ कर्म से समर्थ होवें किया है]

यजुर्वेद अध्याय १४ ऋचा १२

जो ऐसे हैं कि जिनकी तीन भेड़े वे गाते हुओं की रक्षा करने वाली के लिये जिनके पांच भेड़े हैं वे तीन अर्थात् शरीर वाणी और मनसंबन्धी सुखों के स्थिर करनेके लिये जो विनाश में न प्रसिद्ध हों उन की प्राप्ति कराने वाले संसार की रक्षा करने की जो क्रिया उसके लिये जिन के तीन बछड़ा वा जिनके तीन स्थानोंमें निवास वे पीछे से रोकने की क्रियाके लिये और जो अपने पशुओं में चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं वे जिस क्रिया से उत्तमताके साथ प्रसन्न हों उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें वे सुखी हों।

यजुर्वेद प्रथम अध्याय ऋचा १४

हे मनुष्यो तुम्हारा घर सुख देनेवाला हो। उस घर से दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी अलग करो और दान आदि धर्म रहित शत्रु दूर हों। उक्त गृह पृथिवी की त्वचा के तुल्य हो। ज्ञान स्वरूप ईश्वर ही से उस घर को सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो बनस्पती के निमित्त से उत्पन्न होने अति विस्तार युक्त अंतरिक्ष से रहने तथा जलका ग्रहण करनेवाला मेघ है उस और इस विद्या को जगदीश्वर तुम्हारे लिये कृपा करके जनावें। विद्वान् पुरुष भी पृथिवी की त्वचा के समान उक्त घरकी रचना को जानें।

(नोट) इस से मालूम होता है कि उस समय सब लोग घर बनाकर नहीं रहते थे वरन गंवारों से भी अधिक गंवार थे।

यजुर्वेद तीसरा अध्याय ऋ० ४४

हम लोग अविद्या रूपी दुःख होने से अलग होके बराबर प्रीति के सेवन करने और पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को सत्कार पूर्वक नित्यप्रति बुलाते रहें।

(नोट) इससे मालूम होता है कि उस समय के लोग ऐसे गंवार थे कि सब भोजन को पकाकर नहीं खाते थे वरन जो कोई २ भोजन पकाकर खाता था वह बड़ा गिना जाता था।

यजुर्वेद छठा अध्याय ऋ० २८

हे वैश्यजन! तू हल जोतने योग्य है तुझे अन्तरिक्ष के परिपूर्ण होने के लिये अच्छे प्रकार उत्कर्ष देता हूं तुम सब लोग यज्ञ शोधित जलों से जल और औषधियों से औषधियों को प्राप्त होओ।

यजुर्वेद १९ वां अध्याय ऋ० २१

हे मनुष्यो तुम लोग होम करने योग्य यंत्र द्वारा खींचने योग्य औषधि रूप

इमके रूपको भुने हुए अन्न सत्तन का साधन सत्तू सब ओरसे बीजका बोना दूधदही दही दूध मीठे का मिलाया हुआ प्रशस्त अन्नों की सम्बन्धी सार वस्तु और शहत के गुण को जानो।"

यजुर्वेद १९ वां अध्याय श्लो० २२

"हे मनुष्यो तुम लोग भुंजे हुए जौआदि अन्नोंका कोमल बेर सा रूप पिसान आदि का गेहूं रूप सत्तुओं का बेर फलके समान रूप दही मिले सत्तू का समीप प्राप्त औ रूप है ऐसा जाना करो।"

यजुर्वेद १९ वां अध्याय श्लो० २३

"हे मनुष्यो तुम लोग जो यव हैं उन को पानी वा दूध के रूप मोटे पके हुये बेरी के फलोंके समान दही के स्वरूप बहुत अन्न के सार के समान सोम औषधि के स्वरूप और दूध दही के संयोगसे बने पदार्थके समान सोमादि औषधियोंके सार होवे के स्वरूप को सिद्ध किया करें।"

यजुर्वेद बीसवां अध्याय श्लो० ७८

"हे विद्वन्! घोड़े और उत्तम बैल तथा अतिबली वीर्यके सेचन करने हारे बैल बंध्यागायें और मेढ़ा अच्छे प्रकार शिक्षा पाये और सब ओर से ग्रहण किये हुए जिस व्यवहार में काम करने हारे हों उस में तू अन्तःकरण से सोम विद्या को पूछने और उत्तम अन्न के रस को पीने हारे बुद्धिमान अग्नि के समान प्रकाश मान जन के लिये अति उत्तम बुद्धि को प्रगट कर।"

यजुर्वेद २१ वां अध्याय श्लो० ४१

"हे (होतः) देने हारे तू जैसे (होता) और देने हारा अनेक प्रकार के व्यवहारोंकी संगति करे पशु पालने वा खेती करने वाले (छागस्य) बकरा गौ भैंस आदि पशु संबन्धी वा (वपायाः) बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और (मेदसः) चिकने पदार्थ के लेने देने योग्य व्यवहार का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) व्यवहारों की संगति कर। हे देने हारे जन तू जैसे (होता) लेने हारा मेंढ़ाके (वपायाः) बीज को बढ़ाने वाली क्रिया और चिकने पदार्थसंबंधी अग्नि आदिमेंछोड़ने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और विशेष ज्ञान वाली वाणीका (जुषतां) सेवन करे वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करे वैसे सब पदार्थोंका यथायोग्य मेल कर। हे देने हारे तू! जैसे लेने हारा बैलको (वपायाः) बढ़ाने वाली रीति और चिकने पदार्थ संबन्धी (हविः) देने योग्य पदार्थ और परम ऐश्वर्य करने वाले का सेवन करे वा यथायोग्य उक्त पदार्थोंका मेल करे वैसे (यज) यथायोग्य पदार्थोंका मेल कर--"

यजुर्वेद २३ वां अध्याय श्लो० १३

"हे विद्यार्थीजन! अच्छे प्रकार पाकोंसे स्थूल कार्यरूप पवन काटने की क्रियाओं से काली चोटियों वाला अग्नि और मेघोंसे वट वृक्ष उत्तमिके साथ सेंवर वृक्ष तुझको पाले--"

यजुर्वेद २३ वां अध्याय ऋचा २३

' हे यज्ञके समान आचरण करने हारे राजा तू इन लोगों के प्रति झूठ मत बोलो और बहुत गप्प सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान तेरा मुख मत हो यदि इस प्रकार जो यह राजा गप्प सप्प करेगा तो निर्बल पखेरूके समान भलीभांति उच्छिन्न जैसे हो इस प्रकार ठगा जायगा । "

यजुर्वेद २३ वां अध्याय ऋ० ३८

"हे मित्र ! बहुत विज्ञानयुक्त तू इस व्यवहार में इन मनुष्यों से जिनसे बहुत से जौ आदि अनाज के समूह को भुस आदि से पृथक् कर और क्रम से छेदन करते हैं उन के और जो जल वा अन्न सम्बन्धी वचनको कहकर सत्कार करते हैं उनके भोजनोंको करो । "

आर्यमत लीला ।

(१४)

इससे पूर्वके लेखमें जो ऋचाएं यजुर्वेदकी हमने स्वामी दयानन्दके भाष्य के अनुसार लिखी हैं उनसे हमारे पाठक भलीभांति समझ जावेंगे कि भेड़ बकरियों के चराने वाले गंवार लोगों के गीत यजुर्वेद में भी इस ही प्रकार हैं जिस प्रकार ऋग्वेदमें हैं । इस प्रकार नमूना दिखाकर अब हम सबसे पहले यजुर्वेदके २४ वें अध्यायको स्वामी दयानन्द जी के भाष्यसे हिन्दी अर्थों के अनुसार दिखाते हैं और अपने आर्य्य भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वह कृपा कर अपने विद्वान् पण्डितों से पूछ कर हमको बतावें कि इस २४ वें अध्याय के मजमूनका क्या आशय है ? क्या सोम पीकर भंगकी तरंगमें वेदके गीत बनाने वालोंमें से किसीने यह बरड़ हांकी है ? वा वास्तवमें परमेश्वरने वेदके द्वारा आर्य भाइयोंको कोई अद्भुत शिक्षा दी है जिसको कोई दूसरा नहीं समझ सकता है और हमारे आर्य्य भाई उन देवताओं का पूजन करते हैं वा नहीं जिन का वर्णन इस अध्याय में आया है और इन देवताओं का पशु पक्षियों से क्या सम्बन्ध है ? और कौन कौन पशु पक्षी किस२ देवताके निमित्त हैं ?

यजुर्वेद अध्याय २४ ऋचा १

"हे मनुष्यो तुम ! जो शीघ्र चलनेहारा घोड़ा हिंसा करने वाला पशु और गौके समान वर्त्तमान नीलगाय है वे प्रजा पालक सूर्य देवता वाले अर्थात सूर्य मंडलके गुणों से युक्त जिसकी काली गर्दन वह पशु अग्नि देवतावाला प्रथमसे ललाट के निमित्त भेड़ी सरस्वती देवता वाली नीचे से ठोड़ी वाम दक्षिण भागों के और भुजाओं के निमित्त नीचे रमण करने वाले जिन का अश्वदेवता वे पशु सोम और पूषा देवता वाला काले रंग से युक्त पशु तुन्दी के निमित्त और बांई दाहनी ओर के नियम सुफेद रंग और काला रंग वाला और सूर्य वा यम सम्बन्धी पशु वा पैरोंकी गांठियों के पास के भागों के निमित्त जिसके बहुत रोम विद्यमान ऐसे गां-

ठियों के पास के भाग से युक्त त्वष्टा देवता वाले पशु वा पूंछ के निमित्त सुफेद रंग वाला वायु जिसका देवता है वह वा जो कामोद्दीपन समय के बिना बैल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गौ वा विष्णु देवता वाला और नाटा शरीर से कुछ टेढ़े अंग वाला पशु इन सभों को जिस के सुन्दर २ कर्म उस ऐश्वर्य युक्त पुरुष के लिये सयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अंगके आनंद निमित्तक उक्त गुण वाले पशुओं को नियत करो ।

(नोट) कृपाकर हमारे आर्य भाई बतावें कि शरीरके पृथक् २ अवयव जैसे ललाट, ठोढ़ी, भुजा, तुर्दी पैरों की गठियां, आदिक के निमित्त पृथक् पृथक् पशु पक्षी क्यों वर्णन किये गये हैं–

ऋचा २

हे मनुष्यो तुमको जो सामान्य लाल धुमैला लाल और पके बेर के समान लाल पशु हैं वे सोम देवता अर्थात् सोम गुण वाले जो न्योला के समान धुमैला ललामी लिये हुए न्योले के समान रंग वाला और शुग्गा की समता को लिये हुए के समान रंग युक्त पशु हैं वे सब वरुण देवता वाले अर्थात् श्रेष्ठ जो शिति रन्ध्र अर्थात् जिस के मर्म स्थान आदिमें सुफेदी जो और अंग में छेद से हो वैसा जिनके जहां तहां सुफेदी और जिनके सब ओर से छदों के समान सुफेदी के चिन्ह हैं वे सब सविता देवता वाले जिस के अगले भुजाओं में सुफेदी के चिन्ह जिस के और अंग से और अंगमें सुफेदी के चिन्ह और जिसके सब ओरसे अगले गोडों में सुफदी के चिन्ह हैं ऐसे जो पशु हैं वे बृहस्पति देवता वाले तथा जो सब अंगोंसे अच्छी छिटकी बुंदे सी जिस के छोटे २ रंग बिरंग छींटें और जिस के मोटे २ छींटे हैं वे सब प्राण और उदान देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये–„

ऋचा ३

" हे मनुष्यो ! तुम को जो जिस के शुद्ध वाल वा शुद्ध छोटे छोटे अंग जिसके समस्त शुद्ध वाल और जिसके सभिके समान बिलकते हुए बाल हैं ऐसे जो पशु वे सब सूर्य चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य्य चन्द्रमा के समान दिव्य गुण वाले जो सुफेद रंग युक्त जिनकी सुफेद आंखें और जो लाल रंग वाला है व पशुओं की रक्षा करने और दुष्टों को रुलाने हारेके लिये जो ऐसे हैं कि जिनसे काम करते हैं वे वायु देवता वाले जिनके उन्नति युक्त अंग अर्थात् स्थूल शरीर हैं वे प्राण वायु आदि देवता वाले तथा जिनका आकाशके समान नीलारूप है ऐसे जो पशु हैं वे सब मेघ देवता वाले जानने चाहिये ।„

ऋचा ४ ॥

" हे मनुष्यो ! जो पूछने योग्य जिसका तिरछा स्पर्श और जिसका ऊंचा वा उत्तम स्पर्श है वे वायु देवता वाले जो फलोंको प्राप्त हों जिनकी लाल अर्थात् देह के वाल और जिन को चंचल चपल आंखें ऐसे जो पशु हैं वे स-

रस्वती देवता वाले जिसके कानमें छी-द्रा रोग के आकार चिन्ह हों जिसके सूखे कान और जिसके अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं वे सब त्वष्टा देवता वाले जो काले गले वाले जिनके पांजरकी ओर सुपेद अंग और जिन की प्रसिद्ध जंघा अर्थात् स्थूल होनेसे अलग विदित हो ऐसे जो पशु हैं वे सब पवन और विजुली देवता वाले तथा जिनकी करोदी हुई चाल जिनकी थोड़ी चाल और जिन की बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं वे सब उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये । ” ऋचा ५

“ हे मनुष्यो ! तुमको जो सुन्दर रूपवान् और शिल्प कार्योंकी सिद्धि करने वाली विश्वे देव देवता वाले वाणी के लिये नीचे से ऊपर को चढ़ने योग्य जो तीन प्रकारकी भेड़ें पृथिवीके लिये विशेष कर न जानी हुई भेड़ आदि धारण करने के लिये एकसे रूप वाली तथा दिव्य गुण वाले विद्वानोंकी स्त्रियोंके लिये अतीव छोटी २ थोड़ी अवस्था वाली बछिया जाननी चाहिये ।„

(नोट) हम नहीं समझते कि विद्वानोंकी स्त्रियां थोड़ी अवस्था वाली छोटी २ बछियाओंसे क्या कारज सिद्ध कर सकती हैं और यदि स्त्रियोंका कोई कार्य इन से सिद्ध होता है तो विशेष कर विद्वानोंकी ही स्त्रियोंके वास्ते ही क्यों यह छोटी २ बछिया वर्णन की गई हैं । ऋचा ६

“ हे मनुष्यो ! जो ऐसे हैं कि जिन की खिंची हुई गर्दन वा खिंचा हुआ खाना निगलना वे अग्नि देवता वाले जिनकी सुपेद भौंहें हैं वे पृथिवी आदि वसुओं के जो लाल रंगके हैं वे प्राण आदि ग्यारह रुद्रोंके जो सुपेद रंगके और अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं वे सूर्य सम्बन्धी महीनोंके और जो ऐसे हैं कि जिन का जलके समान रूप है वे जीव मेघ देवता वाले अर्थात् मेघ के सदृश गुणों वाले जानने चाहिये । ”

ऋचा ७

“ हे मनुष्यो ! तुमको जो ऊंचा और श्रेष्ठ टेढ़े अंगों वाले नाटा पशु हैं वे बिजुली और पवन देवता वाले जो ऊंचा जिसका दूसरे पदार्थको काटती छांटती हुई भुजाओं के समान बल और जिसकी सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु हैं वे वायु और सूर्य देवता वाले जिनका मुर्गोंके समान रूप और वेग वाले कबरे भी हैं वे अग्नि और पवन देवता वाले तथा जो कालरंग के हैं वे पुष्टि निमित्तिक मेघ देवता वाले जानने चाहिये । ” ऋचा ८

“ हे मनुष्यो ! तुमको ये पूर्वोक्त द्विरूप पशु अर्थात् जिनके दो दो रूप हैं वे वायु और विजुली के संगी जो टेढ़े अंगों वाले व नाटे और बैल हैं वे सोम और अग्नि देवता वाले तथा अग्नि और वायु देवता वाले जो वन्ध्या गौ हैं वे प्राण और उदान देवता वाली और जो कहीं से प्राप्त हों वे मित्र के प्रिय व्यवहारमें जानने चाहिये । ”

ऋचा ९

"हे मनुष्यो ! तुमको जो काले गलेके हैं वे अग्निदेवता वाले जो न्योले के रंग के समान रंग वाले हैं वे सोमदेवता वाले जो सुपेद हैं वे वायु देवता वाले जो विशेष चिन्ह से कुछ न जाने गये वे जो कभी नाश नहीं होती उस उत्पत्ति रूप क्रिया के लिये जो ऐसे हैं कि जिनका एकसा रूप है वे धारण करने हारे पवन के लिये और जो छोटी २ बछिया हैं व सूर्य आदि लोकों की पालना करने वाली क्रियाओं के जानने चाहिये।"

(नोट) आश्चर्य है कि छोटी २ बछिया सूर्य लोक में क्या काम देसक्ती हैं और सूर्य लोक का उपकार उनसे किस विधि से लेना चाहिये ?॥

ऋचा १०

"हे मनुष्यो ! तुमको जो काले रंग के वा खेत आदि के जताने वाले हैं वे भूमि देवता वाले जो धूमेले हैं वे अन्तरिक्ष देवता वाले जो दिव्य गुण कर्म स्वभाव युक्त बढ़ते हुए और थोड़े सुपेद हैं वे बिजुली देवतावाले और जो मंगल करानेहारे हैं वे दुख के पार उतारने वाले जानने चाहिये।"

ऋचा १४

"हे मनुष्यो ! तुम को जो काले गले वाले हैं वे अग्नि देवता वाले जो सब का धारण पोषण करने वाले हैं वे सोम देवता वाले जो नीचे के समीप गिरे हुए हैं वे सविता देवता वाले जो छोटी २ बछिया हैं वे वाणी देवता वाली जो काले वर्ण के हैं वे पुष्टि करने हारे मेघ देवता वाले जो पूछने योग्य हैं वे मनुष्य देवता वाले जो बहुरूपी अर्थात् जिनके अनेक रूप हैं वे समस्त विद्वान् देवता वाले और जो निरन्तर चिलकते हुए हैं वे आकाश पृथिवी देवता वाले जानने चाहिये।"

ऋचा १५

"हे मनुष्यो ! तुमको ये कहे हुए जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं वे इन्द्र और अग्नि देवता वाले जो सींचने वा जोतने हारे हैं वे वरुण देवता वाले और जो चित्र विचित्र चिन्ह युक्त मनुष्य कैसे स्वभाव वाले हिंसक हैं वे प्रजापति देवता वाले हैं यह जानना चाहिये।"

ऋचा १७

"हे मनुष्यो ! तुमको जो ये वायु और जिष्णु देवता वाले वा जिन के उत्तम सींग हैं वे महेन्द्र देवता वाले वा बहुत रंग युक्त विश्व कर्म देवता वाले जिनमें अच्छे प्रकार आते जाते हैं वे मार्ग निरूपण किये उनमें जाना आना चाहिये।" ऋचा १९

"हे मनुष्यो ! तुम जो ये शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेतीकी सिद्धि करने वाले आने जाने हारे पवन के समान दिव्य गुण युक्त सुपेद रंग वाले वा सूर्यके समान प्रकाशमान सुपेद रंग के पशु कहे हैं उन को अपने कार्योंमें अच्छे प्रकार निरन्तर नियुक्त करे।"

ऋचा २० ।

"हे मनुष्यो ! पक्षियोंको जानने वाला जन वसन्त ऋतुके लिये जिन कपिंजल नामके विशेष पक्षियों ग्रीष्म ऋतु के लिये चिरौटा नामके पक्षियों वर्षा ऋतुके लिये तीतरों शरद् ऋतुके लिये बतकों हेमन्त ऋतुके लिये ककर नाम के पक्षियों और शिशिर ऋतु के अर्थ विककर नाम के पक्षियों को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उन को तुम जानो ।" ऋचा २१

"हे मनुष्यो ! जैसे जलके जीवोंकी पालना करनेको जानने वाला जन महा जलाशय समुद्र के लिये जो अपने बालकों को मार डालते हैं उन शिशुमारों मेघके लिये मेडुकों जलोंके लिये मछलियों मित्रके समान सुख देते हुए सूर्यके लिये कुलीपन नामके जंगली पशुओं और वरुण के लिये नाके मगर जल जन्तुओंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ।"

ऋचा २२

"हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियोंके गुणका विशेष ज्ञान रखने वाला पुरुष चन्द्रमा वा ओषधियों में उत्तम सोम के लिये हंसों पवनके लिये बगलियों इन्द्र और अग्निके लिये सारसों मित्रके लिये जल के कव्वों वा जलमुर्गों और वरुणके लिये चकई चकवोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ।"

ऋचा २३

"हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियोंके गुण जानने वाला जन अग्निके लिये मुर्गों वनस्पति अर्थात् विना पुष्प फल देने वाले वृक्षोंके लिये उल्लू पक्षियों अग्नि और सोमके लिये नीलकंठ पक्षियों सूर्य चन्द्रमाके लिये मयूरों तथा मित्र और वरुणके लिये कबूतरोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ।"

ऋचा २४ प्रजु

"हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों का काम जान ने वाला जन ऐश्वर्य के लिये बटेरों प्रकाश के लिये कौलीक नामके पक्षियों विद्वानों की स्त्रियों के लिये जो गौओंको मारती हैं उन पखेरियों विद्वानों की बहिनियोंके लिये कुलीक नामक पखेरियों और जो अग्निके समान वर्त्तमान गृह पालन करनेवाला उसके लिये पारुष्ण पक्षियों को प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ।,,

(नोट) समझ में नहीं आया कि विद्वानों की स्त्रियों के वास्ते गौओं का मारने वाला कौन सा पक्षी बताया है और है और किस कार्यके अर्थ? और विद्वानों की बहनोंके वास्ते कौन सा पक्षी नियत किया गया है और किस काम के वास्ते ? ॥

ऋचा० २५

"हे मनुष्यो ! जैसे काल का जानने वाला दिवस के लिये कोमल शब्द करने वाले कबूतरों रात्रि के लिये सीचापू नामक पक्षियों दिन रात्रि के सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकालके लिये जतू नामक पक्षियों महीनोंके लिये

वाले कौओं और वर्षके लिये बड़े २ सुन्दर २ पंखों वाले पक्षियोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी इनको प्राप्त होओ ।,,

ऋचा २६

"हे मनुष्यो ! जैसे भूमि के जंतुओंके गुण जानने वाला पुरुष भूमि के लिये मूषों अन्तरिक्ष के लिये पंक्ति रूपके चलने वाले विशेष पक्षियों प्रकाश के लिये कश नाम के पक्षियों पूर्वआदि दिशाओं के लिये नेउलों और अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओंके लिये भूरे भूरे विशेष नेउलों को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ

ऋचा २७

"हे मनुष्यो ! जैसे पशुओं के गुणोंका जानने वाला जन अग्नि आदि वसुओं के लिये ऋश्य जातिके हरिणों प्राण आदि रुद्रों के लिये रोज नामी जंतुओं बारह महीनों के लिये न्यङ्कु नामक पशुओं समस्त दिव्य पदार्थों वा विद्वानोंके लिये पृषत् जाति के मृग विशेषों और सिद्ध करने के योग्य हैं उनके लिये कलङ्ग नाम के पशु विशेषों को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ।,,

(नोट) क्या बारह महीनोंको भी अग्नि वायु आदि के समान देवता माना है ? और बारह महीने के वास्ते न्यङ्कु नाम का पशु किस कारण से नियत किया है ? उस पशु को बारह महीने वाले देवता के नाम पर अर्पण कर देना चाहिये और यदि करना चाहिये तो किस प्रकार ? ॥

ऋचा ३१

"हे मनुष्यो ! तुमको प्रजापति देवता वाला किंनर निन्दित मनुष्य और जो छोटा कीड़ा विशेष सिंह और बिलार हैं वह धारणा करने वाले के लिये उजली चीलह दिशाओंके हेतु धुङ्क्षा नामकी पक्षिणी अग्नि देवता वाली जो चिरौंटा लाल सांप और तालाब में रहने वाला है वे सब त्वष्टा देवता वाले तथा वाणी के लिये सारस जानना चाहिये ।,,

ऋचा ३२

"हे मनुष्यो ! यदि तुमने सोम के लिये जो कुलंग नामक पशु वा बनैला बकरा न्योला और सामर्थ्य वाला विशेष पशु हैं वे पुष्टि करने वालेके सम्बन्धी वा विशेष सियार के हेतु सामान्य सियार वा ऐश्वर्य युक्त पुरुष के अर्थ गोरा हिरण वा जो विशेष मृग किसी और जातिका हरिण और ककुट नाम का मृग है वे अनुमति के लिये तथा सुने पीछे सुनाने वाली के लिये चकई चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्ति किये जावें तो बहुत काम करने को समर्थ हो सकें ।,,

(नोट) सोमको ऋग्वेद में एक प्रकार की वनस्पति वर्णन किया है जिस को सिल बट्टे से पीसकर और पानी और दूध और मिठाई मिलाकर मद

के वास्ते पीते थे जिसको स्वामी जीने औषधि लिखा है और हमने अपने पिछले लेखों में भंग सिद्ध किया है उस सोमके साथ कलंग नामका पशु वा जंगली बकरा किस प्रकार युक्त किया जा सक्ता है औरउससे क्या कार्य सिद्ध होता है हमारी समझमें नहीं आया ?।

ऋचा ३५

"हे मनुष्यो ! तुमको जिसका सूर्य देवता है वह बगुलिया तथा जो पपीहा पक्षी सृजय नामवाला और शयांड पक्षी हैं वे प्राण देवता वाले शुग्गी पुरुष के समान बोलने द्वारा शुग्गा नदी के लिये सेही भूमि देवता वाली जो केशरी सिंह भेड़िया और सांप हैं वे क्रोध के लिये तथा शुद्धि करने द्वारा शुआ पक्षि और जिसकी मनुष्य की बोली के समान बोली है वह पक्षी समुद्रके लिये जानना चाहिये।,,

ऋचा ३६

"हे मनुष्यो ! तुमको जो हरिणी है वह दिन के अर्थ जो मेंडुका मूषटी और तीतरि पक्षी हैं वे सर्पों के अर्थ जो कोई जनचर विशेष पशु वह अश्व देवता वाला जो काले रंगका हरिण आदि है वह रात्रि के लिये जो रीछ जतू नाम वाला और सुषिली का पक्षी है वे और मनुष्यों के अर्थ और अंगोंका संकोच करने हारी पक्षिणी विष्णु देवता वाली जानना चाहिये।,,

ऋचा ३७

"हे मनुष्यो ! तुमको जो कोकिला पक्षी है वह पखवाड़ोंके अर्थ जो ऋश्यजाति का मृग मयूर और अच्छे पंखों वाला विशेष पक्षी है वे गाने वालों के और जलोंके अर्थ जो जलचर सिंगचा है वह महीनों के अर्थ जो कछुआ विशेष मृग कुंडृणाची नामकी वनमें रहने वाली और गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशु जाति है वह किरण, आदि पदार्थों के अर्थ और जो काले गुण वाला विशेष पशु है वह मृत्यु के लिये जानना चाहिये।

(नोट) अफसोस है कि परमेश्वर ने जिसको वेदका बनाने वाला कहा जाता है मृत्यु के लिये जो पशु है उस का कुछ भी पता न दिया केवल इतना ही कह कर छोड़ दिया कि काले गुण वाला विशेष पशु। स्वामी दयानन्द जी के कथनानुसार वेद तो मनुष्योंको उस समय दिये गये जब वह कुछ नहीं जानते थे और जो विद्यावेद में नहीं है उसको कोई मनुष्य जान नहीं सकता है। यदि ऐसा है तो वेद के बनाने वाले परमेश्वर को यह न सूझी कि जगत् के मनुष्य मृत्यु के पशु को किस तरह पहचानेंगे ? और वह परमेश्वर वेद में यह भी लिखना भूल गया कि उस पशु का मृत्यु से क्या सम्बंध है मृत्यु के लिये उस पशु से क्या और किस प्रकार काम लेना चाहिये ?॥

ऋचा ३८

"हे मनुष्यो ! तुम को जो वर्षा को बुलाती है वह मेंडुकी वसन्त आदि ऋ-

तुओं के अर्थ मूषा सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और मान्थाल नामी विशेष जन्तु हैं वे पालना करने वालों के अर्थ बल के लिये बड़ा सांप अग्नि आदि वसुओं के अर्थ कपिंजल नामक जो कबूतर उल्लू और खरहा हैं वे निर्ऋति के लिये और वरुण के लिये अकेला मेढ़ा जानना चाहिये ।,,

(नोट) यह बात हमको वेदों से ही मालूम हुई कि वर्षा को मेंडक ही बुलाता है, यदि मेंडक न बुलावे तो शायद वर्षा न आवे । यदि ऐसा है तो मेंडक को अवश्य पूजना चाहिये क्यों कि वर्षा के विदून जगत के सर्व मनुष्यों का नाश हो जावे । वर्षा ही मनुष्य की पालना करती है और वर्षा आती है मेंडकों के बुलाने से तबतो मेंडक ही सारे जगत के प्रतिपालक हुये भाईयो ! जितना २ आप विचार करेंगे आप को यह ही सिद्ध होगा कि यह गंवारों के गीत हैं ? ग्रामीण बुद्धि हीन अनाड़ी लोगों का जैसा विचार था वैसे बेतुके और बे मतलब गीत उन्होंने जोड़ लिये । बेचारे भेड़ बकरी चराने वाले गंवार इससे अच्छे और क्या गीत जोड़ सकते थे ? ॥

ऋचा ३९

"हे मनुष्यों तुमको जो चित्र विचित्र रंगवाला पशु विशेष वह समय के अवयवों के अर्थ जो ऊंट तेजस्वि विशेष पशु और (कंठ में जिसके थन ऐसा बड़ा बकरा) है वे सब बुद्धि के लिये जो नीलगाय वह बल के लिये जो मृग विशेष है वह रुद्र देवता वाला जो कृयि नामका पक्षी मुर्गा और कौआ हैं वे घोड़ों के अर्थ और जो कोकिला है वह कामके लिये अच्छे प्रकार जानने चाहिये ।,,

(नोट) अफसोस है कि न तो वेद बनाने वाले परमेश्वरने ही वेदमें लिखा और न स्वामी दयानन्द जीने अपनेअर्थों में जाहिर किया कि बड़ा बकरा जिस के कंठ में थन है बुद्धि के वास्ते किस प्रकार कार्यकारी हो सक्ता है ? शायद आर्य भाइयों के कान में स्वामी जी इसकी तरकीब बता गये हों और आर्य भाइयोंने ऐसी कोई तरकीब की भी हो । यह ही कारण मालूम होता है कि वह ऐसे बड़े बुद्धिमान् होगये हैं कि वेदों के गंवारू गीतों को ईश्वरका वाक्य कहते हैं क्योंजी बुद्धिमान् आर्य भाइयो ! स्वामी दयानन्दजीने तो वेदों को प्रकाश करके उनका भाष्य बनाकर जगत्‌का उपकार किया है आप कृपा कर इतना ही बता दीजिये कि मुर्गे और कव्वे घोड़ों के अर्थ किस प्रकार हैं ? ॥

ऋचा ४०

"हे मनुष्यो तुम को जो ऊंचे और पैने सींगों वाला गेंडा है वह सब विद्वानोंका जो काले रंग वाला कुत्ता बड़े कानों वाला गदहा और व्याघ्र हैं वह वे सब राक्षस दुष्ट हिंसक प्राणियों के अर्थ जो सूअर है वह मनुओं को

विदारने वाले राजाके लिये जो सिंह है वह मरुत देवता वाला जो गिर गिटान पिप्पका नाम की पक्षिणी और पक्षिमात्र हैं वे सब जो शरखियों में कुशल उत्तम है उसके लिये और जो पृषज्जाति के हरिण हैं वे सब वि द्वानोंके अर्थ जानना चाहिये ।"

(नोट) प्रिय पाठको अब आप स- मझ गये होंगे कि इस अध्याय में कैसे गीत हैं ? इसही प्रकारका वर्णन सारे अध्याय में है परन्तु भेड़ बकरी चराने वाले गंवारों की जैसी बुद्धि होती है वैसा ही उन विचारों ने गीतोंमें अ- टकलपच्चू वर्णन किया है ॥

आर्यमत लीला ।

(१५)

(वेदोंमें मांसका भी वर्णन मिलता है स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके अर्थोंके अनुसार हम कुछ वेद मंत्र लिखते हैं और अपने उन आर्या भाइयोंसे जो मांसका निषेध करते हैं प्रार्थना करते हैं कि वह कृपा कर इन मंत्रोंको पढ़ें और विचार करें कि-वेदोंमें मांसका वर्णन किस कारण आया है ?) और यदि भले प्रकार विचारके पश्चात् भी उनकी यह ही सम्मति हो कि वेद ई- श्वर वाक्य हैं और अवश्य माननेयोग्य हैं तो परोपकार बुद्धिसे वह इन मंत्रों का आशय प्रकाशित कर देवें ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ ऋ० १३

"जो मांसाहारी जिसमें मांस पकाते हैं उस पाक सिद्ध करने वाली बटलोई का निरन्तर देखना करते उसमें वैमन- स्य कर जो रसके अच्छे प्रकार सेचनके आधार का पात्र वा गरमपन उत्तम पदार्थ बटलोइयोंके मुख ढांपनेकी ढ- कनियां अन्न आदिके पकानेके आधार बटलोई कड़ाही आदि बर्तनोंके लक्षण हैं उनको अच्छे जानते और घोड़ोंको सुशोभित करते हैं वे प्रत्येक काममें प्रेरित होते हैं ॥"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३४ ऋ० २

"हे मनुष्यो जो कामना करता हुआ बहुत धनसे युक्त जन सोमलतासे उ- त्पन्न रससे उदरकी अग्निको अच्छे प्र- कार पूर्ण करे और मधुर आदि गुणोंसे युक्त अन्न आदिका भोग करके आनन्द करे और जो अत्यन्त नाश करने वाला (मृगाय) हरिणको मारनेके लिये ह- जारों दहन जिससे उस वधको सब प्रकारसे देवै वह सब सुखको प्राप्त होता है ॥"

यजुर्वेद २१वां अध्याय ऋ० ५९

"हे मनुष्यो जैसे यह पचानेके प्रकारों को पचाता अर्थात् सिद्ध करता और यज्ञ आदि कर्ममें प्रसिद्ध पाकोंको प- चाता हुआ यज्ञ करने हारा सुखोंके देने वाले प्राणको स्वीकार वा जैसे प्रा- ण और अपान के लिये छेरी (बकरी का बच्चा) विशेष ज्ञान युक्त वाणीके लिये भेड़ और परम ऐश्वर्यके लिये बैल को बांधते हुए वा प्राण अपान विशेष

प्राण युक्त वाणी और भली भांति र-
क्षा करने हारे राजाके लिये उत्तम रस
युक्त पदार्थोंका सार निकालते हैं वैसे
तुम प्राप्त करो-"

यजुर्वेद २१ वां अध्याय म० ६०

"हे मनुष्यो जैसे प्राण भली भांति
समीप स्थिर होने वाले और दिव्य गुण
वाला पुरुष वट वृक्ष आदिके समान
जिस२ प्राण और अपानके लिये दुःख
विनाश करने वाले छेरी आदि पशुसे
वाणीके लिये मेढ़ासे परम ऐश्वर्यके लिये
बैलसे भोग करें उन सुन्दर चिकने
पशुओंके प्रति पचाने योग्य वस्तुओंका
ग्रहण करें प्रथम उत्तम संस्कार किये
हुए विशेष अन्नोंसे वृद्धिको प्राप्त हों प्राण
अपान प्रशंसित वाणी भलीभांति रक्षा
करने हारा परम ऐश्वर्यवान राजा को
अरक खींचनेसे उत्पन्न हों उन औषधि
रसोंको पीवें वैसे आप होवो-"

यजुर्वेद २५ वां अध्याय म० २९

" जो यज्ञ खंभाके छेदने बनाने और
जो यज्ञस्तम्भ को पहुंचाने वाले घोड़ा
के बांधनेके लिये खम्भाके खंडको का-
टते छांटते और जो घोड़ाके लिये जि-
समें पाक किया जाय उस कामको अ-
च्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते
और जो उत्तम यत्न करते हैं उन का
सब प्रकारसे उद्यम हम लोगोंको व्याप्त
और प्राप्त होवे-"

यजुर्वेद २५ वां अध्याय म० ३१-३२

" हे विद्वन् ! प्रशस्त वेग वाले उस
बलवान् घोड़ेका जो उदर बन्धन अ-
र्थात् तंगी और अगाड़ी पिछाड़ी पर
आदिमें बांधनेकी रस्सी वा जो शिर
में होने वाली मुंहमें व्याप्त रस्सी मु-
हेरा आदि अथवा जो इस घोड़ेके मुख
में घास दूब आदि विशेष तृण उत्तम-
तासे धरी हो वे सब पदार्थ तेरे हों
और यह उक्त समस्त वस्तु ही विद्वा-
नोंमें भी हो-" यजु॰ २५-३२

" हे मनुष्यो ! जो मक्खी चलते हुए
शीघ्र जाने वाले घोड़ेका भोजन करती
अर्थात् कुछ मल रुधिर आदि खाती
अथवा जो स्वरु वज्रके समान वर्तमान
हैं वा यज्ञ करने हारेके हाथोंमें जो वस्तु
प्राप्त और जो नखों में प्राप्त है वे सब
पदार्थ तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्य-
वहार विद्वानोंमें भी होवें । "

यजुर्वेद २५ वां अध्याय म० ३५

" जो घोड़ेके मांसके मांगनेकी उपा-
सना करते और जो घोड़ा को पाया
हुआ मारने योग्य कहते हैं उनको नि-
रन्तर हरो दूर पहुंचाओ--जो वेगवान्
घोड़ोंको पक्का सिखाके सब ओरसे दे-
खते हैं और उनका अच्छा सुगन्ध और
सब ओर से उद्यम हम लोगों को प्राप्त
हो उनके अच्छे काम हम को प्राप्त हैं
इस प्रकार दूर पहुंचाओ । "

यजुर्वेद २५ वां अध्याय म० ३६

' जो नरकियोंमें उत्तम डांवने और
सिचाने हारे पात्र वा जो मांस जिस
में पकाया जाय उस बटलोई का नि-
कृष्ट देखना वा पात्रोंके सबथा छिपेहुए
प्रसिद्ध पदार्थ तथा बढ़ाने वालेके घो-

हेको सब ओरसे सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य हैं।"

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ३१

"हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन जिस चाहे हुये प्राप्त चारों ओरसे जिसमें उद्यम किया गया ऐसे क्रियासे सिद्ध हुए वेगवान् घोड़ेको प्रति प्रतीतिसे ग्रहण करते उसको तुम सब ओरसे जानो उसको धुआंमें गन्ध जिसका वह अग्नि मत शब्द करे वा उसको जिससे किसी वस्तुकी सूंघते हैं वह चमकती वटलोई मत हिमवावे।,,

यजुर्वेद २८ वां अध्याय ऋ० ४६

"हे मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान पुरुष ! जैसे यज्ञ करने द्वारा इस समय नाना प्रकार के पाकोंको पकाता और यज्ञमें होमनेके पदार्थको पकाता हुआ तेजस्वी होता को आज स्वीकार करे वैसे सबके जीवन को बढ़ाने हारे उत्तम ऐश्वर्यके लिये छेद न करने वाले बकरी आदि पशुको बांधते हुए स्वीकार कीजिये--,,

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ४२

"हे मनुष्यो ! जैसे अकेला वसन्ति आदि ऋतु शोभायमान घोड़ेका विशेष करके रूपादिका भेद करने वाला होता है वा जो दो नियम करने वाले होते हैं वैसे जिन तुम्हारे अंगों वा पिण्डोंके ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं करता हूं उन २ को आगमें होमता हूं-,,

(नोट) अंगों वा पिण्डोंके ऋतु सम्बन्धी पदार्थ क्या वेही पशु पक्षी आदि हैं जिनका वर्णन यजुर्वेद अध्याय २४ वें में किया है?

आर्यमत लीला।

[घ—भाग]

आर्योंका मुक्ति सिद्धान्त।

(१६)

भेड़ बकरी चराने वाले गंवारोंके जो गीत वेदोंसे उद्धृत कर हम स्वामी दयानन्दजी के अर्थों के अनुसार जैनगजट में [पिछले लेखों में] लिखते रहे हैं उस को पढ़ते पढ़ते हमारे भाई उकता गये होंगे-हमने बहुत सा भाग वेदोंका जैनगजट में छाप दिया है शेष जो छपने से रह गया है उस में भी प्रायः इसही प्रकार के गंवारू गीत हैं इस कारण यदि आगामी भी हम वेदों के वाक्य छापते रहेंगे तो हमारे पाठकों को अरुचि हो जावैगी—

अतः अब हम वेद वाक्योंका लिखना छोड़कर आर्य्यमतके सिद्धान्तों और स्वामी दयानंद जी की करतूत को दिखाना चाहते हैं—

हमारे पाठक जानते हैं कि पृथ्वी पर अनेक देश हैं परन्तु हिन्दुस्तानके अतिरिक्त अन्य किसी देश वासियों को जीवात्मा के गुण स्वभाव और कर्म का ज्ञान नहीं है-आजकल अंगरेज लोग बहुत बुद्धिमान कहलाते हैं और पदार्थ विद्या में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने अनेक ऐसी कलें व-

ताई हैं जिन को देखकर हिंदुस्तानी आश्चर्य मानते हैं परंतु उनका सब ज्ञान जड़ अर्थात् अचेतन-पुद्गल पदार्थ के विषयमें है जीवात्मा के विषय को वह कुछ भी नहीं जानते हैं और वह यह मानते भी हैं कि जीवात्मा के विषय में जो कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है वह हिंदुस्तानसे ही हो सकता है--यह ही कारण है कि वह हिंदुस्तान के शास्त्रों की बहुत खोज करते हैं और हिंदुस्तान का जो कोई धार्मिक विद्वान् उनके देशमें जाता है उसका वह आदर सत्कार करते हैं और उसके व्याख्यान को ध्यानसे सुनतेहैं।

जीवात्मा के विषय को जानने वाले हिन्दुस्तानियों का यह सिद्धांत सर्व मान्य है कि जीव नित्य है, अनादि है, अनन्त है, जड़ अर्थात् अचेतन पदार्थ से भिन्न है, कर्मवश बंध में फंसा है इसी से दुःख भोगता है परंतु कर्मों को दूर कर बंधन से मुक्त हो सकता है जिस को मुक्ति कहते हैं और मुक्ति दशा को प्राप्त होकर सदा परमानन्द में मग्न रहता है। यह गूढ़ बात हिन्दुस्तान के ही शास्त्रों में मिलती है कि जीव का पुरुषार्थ सुख की प्राप्ति और दुःख का वियोग करना ही है। दुःख प्राप्त होता है इच्छा से और सुख नाम है इच्छा के न होने का इस कारण परम आनन्द जिस को मुक्ति कहते हैं वह इच्छाके सम्पूर्ण अभाव होने से ही होती है। इस ही हेतु इच्छा वा राग द्वेष के दूर करनेके साधनोंका नाम धर्म है। इसही साधन के गृहस्थ और सन्यास आदिक अनेक दर्जे महर्षियों ने बांधे हैं और इस ही के साधनों के वर्णन में अनेक शास्त्र रचे हैं इन ही शास्त्रोंके कारण हिन्दुस्तानका गौरव है और सत्य धर्म की प्रवृत्ति है

यद्यपि इस कलिकाल में इस धर्मपर चलने वाले विरले ही रह गये हैं विशेष कर बाह्य आडम्बर के ही धर्मात्मा दिखाई देते हैं परन्तु ऋषि प्रणीत शास्त्रोंका विद्यमान रहना और मनुष्यों को उन पर श्रद्धा होना भी गनीमत था और इसनेही से धर्म की बहुत कुछ स्थिति थी। परन्तु इस कलिकाल को इतना भी मंजूर नहीं है और कुछ न हुवा तो इस काल के प्रभाव से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज पैदा होगये जिन्हों ने धर्म का सर्वथा निर्मूल करदेना ही अपना कर्तव्य समझा और धर्मको एक बच्चों का खेल बनाकर हजारों भोले भाईयों की मति (बुद्धि) पर अज्ञान का पर्दा डाल दिया और उस हिन्दुस्तान में जो जीवात्मा और धर्म के ज्ञान में जगत् प्रसिद्ध है ऐसा विषका बीज बोकर चलदिये कि जिससे सत्य धर्म बिल्कुल ही नष्ट भ्रष्ट हो जावे वह अपने चेलों को यह विलक्षण सिद्धान्त सिखा गये हैं कि जीवात्मा कभी कर्मों से रहित हो ही नहीं सकता है बरन इच्छा द्वेष आदिक उपाधि इस के सदा बनी ही रहती हैं।

प्यारे आर्य्य भाइयो ! यदि आप धर्म के सिद्धान्त और उन के लक्षणों पर ध्यान देंगे तो आप को मालूम होजावेगा कि स्वामी जी का यह नवीन सिद्धान्त धर्म की जड़ पूरी तौर पर उखाड़कर फेंक देने वाला है परन्तु क्या किया जाय आप तो धर्मकी तरफ ध्यान ही नहीं देते हैं ? आप ने अपना सारा पुरुषार्थ संसार की ही वृद्धि में लगा रक्खा है। प्यारे आर्य्य भाइयो ! संसार में अनेक प्रकार के अनन्त जीव हैं परन्तु धर्म को समझने और धर्म साधन करने की शक्ति एक मात्र मनुष्य को ही है नहीं मालूम आपका और हमारा कौन पुण्य उदय है जो यह मनुष्य जन्म प्राप्त हो गया है और नहीं मालूम कितने काल मनुष्य शरीर के अतिरिक्त अन्य कीड़ी मकौड़ी कुत्ता बिल्ली आदिक जीवों के शरीर धारण करते हुवे रुलते फिरते रहे हैं ? हमारा यह ही अहो भाग्य नहीं है है कि हमने मनुष्य जन्म पाया बरण इससे भी अधिक हमारा यह अहो भाग्य है कि हम ने हिन्दुस्तान में जन्म लिया जहां ऋषि प्रणीत अनेक सत् शास्त्र जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त कराने वाले हमको प्राप्त हो सकते हैं इस कारण हमको यह समय बहुत गनीमत समझना चाहिये और अपने कल्याण में अवश्य ध्यान देना चाहिये और सत्य सिद्धान्तोंकी खोज करनी चाहिये।

ज्यादा मुशकिल यह है कि आप लोग स्वामी दयानन्द जी से विरुद्ध कुछ सुनना नहीं चाहते हैं क्योंकि आप के हृदय में यह दृढ़ प्रतीति है कि स्वामी जी ने हिन्दुस्तान का बहुत उपकार किया है और जो कुछ धर्म का आन्दोलन हो रहा है वह उनही की कृपा का फल है। प्यारे भाइयो ! यह आप का ख्याल एक प्रकार बिल्कुल सच्चा है और हम भी ऐसा ही मानते हैं परन्तु जरा ध्यान देकर विचारिये कि संसार में जो हजारों मत फैल रहे हैं वा जो लाखों मत फैलते रहे हैं उन मतों के चलाने वाले क्या परोपकारी नहीं थे ? और क्या उस समय उनसे संसार का उपकार नहीं हुवा है ? परंतु बहुतसे धर्म के चलाने वाले परोपकारियों का परोपकार उस समय के अनुकूल होने से थोड़े ही दिनों तक रहा है पश्चात् यहही उनके सिद्धांत विषके समान हानिकारक हो गये हैं-दृष्टान्त रूप विचारिये कि आपके ही कथनानुसार उस समय में जब कि यवन लोग हिंदुओं की कन्याओंको जबरदस्ती निकाह में लेने (विवाहने) लगेतो काशीनाथजी इस आशय का श्लोक घड़के कि दश वर्ष की कन्या का विवाह कर देना चाहिये हिन्दुओं का कितना बड़ा भारी उपकार किया परन्तु वास्तव में वह उपकार नहीं था अपकार था और पूरी दुश्मनी की थी क्योंकि काशीनाथ जी ने सत्य रीति और सत्य शिक्षा से

काम नहीं लिया वरन धोके से काम लिया और उस समय के मनुष्यों को बहकाया कि दश वर्ष की कन्या का विवाह कर देना चाहिये इसके उपरांत विवाह न करने से पाप होता है -यद्यपि उस समय के लोगों को उनका यह कृत्य उपकार नजर आया परंतु उसका यह जहर खिला (फैला) कि इस ही के कारण सारा हिंदुस्तान निर्बल और शक्ति शून्य हो गया और इसही के प्रचारके कारण बाल विवाह के रोकनेमें जो कठिनाई प्राप्त हो रही है वह आप का मन ही जानता है।

प्यारे आर्यभाइयो ! जितने मत मतान्तरोंका स्वामी जीने खण्डन किया है और आप खण्डन कर रहे हैं उनके चलाने वाले उसही प्रकार परोपकारी थे जिस प्रकार स्वामी दयानन्द जी और उस समयके लोगोंने उन को ऐसा ही परोपकारी मानाथा जैसा कि स्वामी दयानन्द जी माने जाते हैं परन्तु जिन परोपकारियों ने सत्य से काम लिया यद्यपि उन के परोपकार का प्रचार कम हुआ परंतु वह सदा के वास्ते परोपकारी रहेंगे और जिन्होंने काशीनाथ की तरह बनावट से काम लिया और समय की जरूरत के अनुसार मनघड़ंत सिद्धांत स्थापित करके काम निकाला उन्होंने यद्यपि उस समय के वास्ते उपकार किया परंतु वे सदा के वास्ते अधर्म रूपी विष फैला गये हैं।

मेरे प्यारे भाइयो ! यदि आपने स्वामी दयानंद जी के वेदों के भाष्य को पढ़ा होगा और यदि नहीं पढ़ा तो जैनगजट में जो वेदों के विषय में लेख छपे हैं उनसे जान गये होंगे कि वेद कदाचित् भी ईश्वर कृत नहीं कहे जा सकते हैं बरण वह किसी विद्वान् मनुष्य के बनाये हुये भी नहीं हैं वह केवल भेड़ बकरी चराने वाले मूर्ख गंवारों के गीत हैं। उनमें कोई विद्या की बात नहीं है परन्तु सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जीने वेदों को ईश्वरकृत समझाया है और दुनियां भरकी विद्या का भण्डार उनको बताया है। इसका कारण क्या ? स्वामी दयानन्द जी जिन्हों ने स्वयम् वेदों का अर्थ किया है क्या इस बात को जानते नहीं थे कि वे कोई ज्ञान की पुस्तक नहीं है? वह सब कुछ जानते थे परन्तु सीधे सच्चे रास्ते पर चलना उनका उद्देश नहीं था वह अपना परम धर्म इस ही में समझते थे कि जिस विधि हो अपना मतलब निकाला जावे। वह जानते थे कि हिन्दुस्तान के प्रायः सर्व ही मनुष्य वेदों पर श्रद्धा रखते हैं इस कारण उनको भय था कि वेदों के निषेध करने में कोई भी उनकी न सुनैगा इस कारण उन्हों ने वेदों की प्रशंसा की। परंतु सच पूछो तो इस काम में उन्हों ने आर्य्य समाज के साथ दुश्मनी की क्योंकि आज कल हिन्दी भाषा और संस्कृत विद्या का

प्रचार अधिक होता जाता है लोग पहले की तरह ब्राह्मणों वा उपदेशकों के वाक्यों पर निर्भर नहीं है वरण स्वयम् शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं इस कारण जब आर्य्य लोगों में वेदों के पढ़ने का प्रचार होगा तब ही उन को आर्य्यमत झूठा प्रतीत हो जावेगा।

प्यारे आर्य्य भाइयो! आपको संदेह होगा और आप प्रश्न करेंगे कि स्वामी जी को आर्य्य मत स्थापन करने और झूठ सच बातें बनाकर हिन्दुस्तान के लोगों को अपने झंडे तले लाने की क्या आवश्यकता थी? इस का उत्तर यदि आप विचार करेंगे तो आप को स्वयम् ही मिल जावेगा कि स्वामी जी एक प्रकार से परोपकारी थे-उनके समय में बहुत हिंदू लोग ईसाई होने लगे और अंगरेजी लिखे पढ़ों को हिन्दू धर्म से घृणा होने लगी थी। स्वामी जी को इस का बड़ा दुःख था उन्हों ने जिस तिस प्रकार अंगरेजी पढ़ने वाले हिन्दुओं को ईसाई होने से बचाया और जो २ बातें उन लोगों को प्रिय थीं वह सब प्राचीन हिंदू ग्रन्थों में सिद्ध करके दिखाईं--और वेद जो सब से प्राचीन प्रसिद्ध थे उन को नवीन सिद्धान्तों का आश्रय बनालिया। अंगरेजी पढ़े लिखे हिंदू भाई जिन्हों ने अंगरेजी फ़िलासफ़ी में अचेतनपदार्थ का ही वर्णन पढ़ा था उनकी समझ में जीवात्मा का कर्म रहित होकर मुक्ति में नित्य के लिए रहने का सिद्धांत कब आने लगा था? इस कारण स्वामी जी को उस समयके अंगरेजी पढ़े हिन्दुओंकी रुचिके वास्ते जहां अन्य अनेक नवीन सिद्धान्त घड़ने पड़े वहां मुक्तिके विषयमें भी धर्मका बिल्कुल विध्वंस करने वाला यह सिद्धान्त नियत करना पड़ा कि जीवात्मा कभी कर्मोंसे रहित होही नहीं सकता है और इच्छा द्वेष इससे कभी दूर होही नहीं सकते हैं॥

प्यारे आर्य भाइयो! हमारा यह अनुमान ही नहीं है वरण हम सत्यार्थप्रकाशसे स्पष्ट दिखाना चाहते हैं कि स्वामी जी अपने हृदयमें मानते थे कि इच्छाके दूर होनेसे ही सुख होता है। इच्छा द्वेषके पूर्ण अभावसे ही परमानन्द प्राप्त होता है। परमानन्द हीका नाम मुक्ति होता है और मुक्ति प्राप्त होकर फिर जीव कर्मोंके बंधनमें नहीं पड़ता है—परन्तु ऐसा मानते हुए भी स्वामीजीने इन सब सिद्धान्तोंके विरुद्ध कहना पसन्द किया। देखिये—

(१) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५० पर स्वामीजी लिखते हैं--

"सब जीव स्वभावसे सुख प्राप्तिकी इच्छा और दुःखका वियोग होना चाहते हैं--।"

(२) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८८ पर स्वामीजी लिखते हैं:—

"जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देशमें जाकर आसन लगा प्राणायाम कर बाह्य विषयोंसे इन्द्रि-

योंको रोक.........अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवें „

"वैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे **सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण स्वभाव पवित्र होजाते हैं"**

(३) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५७ पर स्वामीजी लिखते हैं-

"मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होनेसे **पूर्णज्ञानी होकर** उसको सब सन्निहित पदार्थोंका भान यथावत् होता है„

(४) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३६ पर स्वामीजी प्रश्नोत्तररूपमें लिखते हैं:-

"(प्रश्न) मुक्ति किसको कहते हैं ? (उत्तर) " मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः" जिसमें छूटजाना हो उसका नाम मुक्ति है (प्रश्न) किससे छूटजाना ? (उत्तर) जिससे छूटनेकी इच्छा सब जीव करते हैं ? (प्रश्न) किससे छूटनेकी इच्छा करते हैं (उत्तर) जिससे छूटना चाहते हैं (प्रश्न) किस से छूटना चाहते हैं ? (उत्तर) दुःखसे (प्रश्न) छूटकर किसको प्राप्त हों और कहां रहते हैं ? (उत्तर) सुखको प्राप्त होते **हैं और ब्रह्ममें रहते हैं"**

(५) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३७ पर स्वामीजी लिखते हैं:—

"मोक्षमें भौतिक शरीर वा इन्द्रियोंके गोलक जीवात्माके साथ नहीं रहते किन्तु **अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं"**

(६) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३८ पर स्वामी जी लिखते हैं:—

" क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःखसे रहित नहीं हो सकते जैसे इन्द्रसे प्रजापतिने कहा है कि हे परम पूजित धनयुक्त पुरुष ! यह स्थूल शरीर मरण धर्मा है और जैसे सिंहके मुखमें बकरी होवे यह शरीर मृत्युके मुखके बीच है सो शरीर इस मरण और शरीर रहित जीवात्माका निवासस्थान इसीलिये यह जीव सुख और दुःखसे सदा ग्रस्त रहता है क्योंकि शरीर सहित जीवके सांसारिक प्रसन्नता की निवृत्ति होती है और जो शरीर **रहित मुक्ति जीवात्मा ब्रह्ममें रहता है उसको सांसारिक सुख दुःखका स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्दमें रहता है"**

स्वामीजीके उपर्युक्त वाक्योंसे स्पष्ट विदित होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी सत्य सिद्धान्तकी झलकको समझते और जानते थे परन्तु अपने चेलोंको बहकाने और राजी रखने के वास्ते उन्होंने इसही सत्यार्थप्रकाशमें ऐसी अनहोनी बातें कहीं हैं जिनको पढ़कर यह ही कहना पड़ता है कि वह कुछ भी नहीं जानते थे और बिलकुल अज्ञान ही थे ।

देखिये इस बातके सिद्ध करनेमें कि मुक्तिसे लौटकर फिर जीव संसारके बंधनमें आता है स्वामीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४०—२४१ पर लिखते हैं:-

" दुःखके अनुभवके विना सुख कुछ भी नहीं हो सकता जैसे कटु न हो तो मधुर क्या जो मधुर नहो तो कटु क्या कहावे? क्योंकि एक स्वादके एक रसके विरुद्ध होनेसे दोनोंकी परीक्षा होती है जैसे कोई मनुष्य मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकारके रसोंको भोगने वालोंको होता है—और जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जावे जो जितना भार उठासके उतना उस पर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसा एक मनभर उठाने वाले के शिर पर दशमन धरनेसे भार धरने वालेकी निन्दा होती है। वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं"

पाठकगण! क्या उपरोक्त लेखको पढ़कर यह ही कहना नहीं पड़ेगा कि या तो स्वामीदयानन्दजी निरे मूर्ख थे और मुक्ति विषयको कुछ भी समझ नहीं सकते थे, अथवा जान बूझकर उन्होंने उलटी अधर्मकी बातें सिखानेकी कोशिश की है—हमारी समझमें तो नादान बालक भी ऐसी उलटी बातें न करेंगे ऐसी उलटी पुलटी बातें तो बावला ही किया करता है जिसके दिमागमें फरक आगया हो—

मालूम पड़ता है कि स्वामीजीको इन्द्रियोंके विषयकी अत्यन्त लोलुपता थी और विषय भोगको ही वह परम सुख मानते थे नहीं तो वह मुक्ति सुखके निषेधमें लिखते हैं कि "कि जैसे कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकार के रसों को भोगने वालेको होता है „—वाह! स्वामीजी वाह!! धन्य है आपको! बेशक मुक्तिके स्वरूप को आपके सिवाय और कौन समझ सकता है? इस प्रकार मुक्तिका स्वरूप न किसीने समझा और न आगेको कोई समझैगा! क्योंजी! मुक्तिको प्राप्त होकर और **ईश्वरसदृश गुण, कर्म, स्वभाव धारण कर** जीवात्मा को मुक्तिका आनन्द भोगते २ उकता जाना चाहिये और सांसारिक विषय भोगों के वास्ते संसारमें फंसना चाहिये? वाह स्वामीजी! क्या कहने हैं आपकी बुद्धिके! आपका तो अवश्य यह भी सिद्धान्त होगा कि जिस प्रकार एक मीठा ही खाता हुआ मनुष्य उतना सुख प्राप्त नहीं कर सकता है जितना सर्वप्रकारके रसोंको भोगने वालेको होता है। इस ही प्रकार एक पुरुषसे सन्तुष्ट विवाहिता स्त्री को इतना सुख प्राप्त नहीं होता है जितना वेश्याओंको होता है जो अनेक पुरुषोंसे रमण करती हैं और आपका तो शायद यह ही उपदेश होगा कि जिस प्रकार इन्द्रियोंके नाना भोग भोगनेके वास्ते मुक्त जीवको संसारमें

फिर जन्म लेना चाहिये इस ही प्रकार विवाहिता स्त्रीको भी चाहिये कि वह निज भरतारको छोड़कर वेश्या बनकर अनेक पुरुषोंसे रमण करे—?

क्यों स्वामीजी ! ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर भी तो एकही स्वरूप है जब जीवात्माको मुक्तिदशा में **ब्रह्मके गुण कर्म स्वभाव के सदृश होकर** एक स्वरूपमें रहनेसे उतना सुख प्राप्त नहीं हो सकता जितना संसारमें जन्म लेकर इन्द्रियोंके अनेक विषय भोगोंके भोगनेसे होता है। तो अवश्य आपके कथनानुसार ईश्वर तो अवश्य दुखी रहता होगा और संसारी जीवोंकी नाई अनेक जन्म लेकर संसारकी सर्वप्रकार की अवस्था भोगनेकी इच्छामें तड़फता रहता होगा कि मैंभी जीव क्यों न हो गया जोसंसारके सर्वप्रकारके रस चखता?

पहले यह लिखकर भी कि " मुक्ति में जीव ब्रह्म में रहता है और ब्रह्मके सदृश उसके गुण कर्म स्वभाव होजाते हैं," मुक्ति जीवको संसारमें लानेकी आवश्यकता को सिद्ध करनेमें स्वामी जी ! आपको यह दृष्टान्त देते हुए कुछ भी लज्जा न आई कि एक मीठा मीठा ही खाते हुए को उतना सुख नहीं होता है जितना सर्वरसोंके चखने वालेको होता है। क्यों स्वामी जी ! आपके कथनानुसार तो सत्य ही बोलने वालेको उतना सुख नहीं होता होगा जितना उस को होता होगा जो कभी सत्य बोले और कभी झूठ ? इस कारण झूठ भी अवश्य बोलना चाहिये—

धर्मात्मा पुण्यवान् जीवोंको जब ही पूर्णसुख मिलता होगा जब वह साथ २ पाप भी करते रहैं। मनुष्य जन्म पाकर धर्मात्मा बनना और इस बातका यत्न करना मूर्खता होगा कि आगामी को भी मैं मनुष्य जन्म ही लेता रहूं बरण आपने तो मनुष्य जन्मके सुख से उकताकर इस ही बातकी कोशिश की होगी कि आगामीको मनुष्यजन्म प्राप्त नहो बरण कीड़ो मकोड़ा कुत्ता बिल्ली आदिक अनेक सर्वप्रकारके जन्मोंके भोग भोगनेको मिलैं ?॥

स्वामी जी ! आप मुक्तिके साधनके वास्ते स्वयम् लिखते हैं कि, " बाह्य विषयोंसे इन्द्रियोंको रोक अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मामें मग्न हो संयमी होवें, " जिस से स्पष्ट विदित है कि इच्छा और द्वेष से रहित होने से ही मुक्ति होती है जितना जितना इच्छा द्वेष दूर होता जावेगा उतना ही अन्तःकरण निर्मल होता जायगा अन्तःकरणकी ही सफाई को धर्म कहते हैं इस ही के अनेक साधन ऋषियोंने वर्णन किये हैं और इच्छा द्वेषके ही सर्वथा छूटजानेका नाम मुक्ति है परन्तु फिर भी आप जीवात्माको इतना अधिक विषयासक्त बनाना चाहते हैं कि मुक्तिसे भी लौट आनेका लालच दिलाते हैं और कहते हैं कि एक स्वरूपमें रहनेसे आनन्द नहीं

मिलेगा वरण मुक्तिसे लौटकर और संसार में भ्रमण कर संसारके सर्व विषय भोगोंसे ही आनन्द आवैगा ।

प्यारे आर्य्य भाइयो ! क्या उपरोक्त स्वामीजीके सिद्धान्तसे सत्यधर्मका नाश और अधर्मकी प्रवृत्ति नहीं होती है ? अवश्य होती है क्योंकि धर्म वह ही हो सकता है जो जीवको रागद्वेषके कम करने वा दूर करनेकी विधि बतावै और अधर्म वह ही है जो रागद्वेषमें फंसावै वाममार्ग इस ही कारण तो निन्दनीय है कि वह विषयाशक्त बनाता है—इस ही हेतु जो सिद्धान्त रागद्वेष और संसारके विषयभोगकी प्रेरणा करे वह अवश्य निन्दनीय होना चाहिये ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी अपने नवीन सिद्धान्तको सिद्ध करनेके वास्ते यह भी भय दिखाते हैं कि "जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट होजाय जो जितना भार उठासकै उतना उस पर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसे एक मन भार उठाने वालेके शिर पर दश मन धरनेसे भार धरने वालेकी निन्दा होती है वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुखका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं"—

प्यारे पाठको ! इस हेतुसे भी स्वामी जीकी बुद्धिमानी टपकती है क्योंकि प्रथम यह लिखकर कि "परमेश्वरके गुण कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं और जो शरीर रहित मुक्ति जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख दुःख का स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्दमें रहता है" फिर यह लिखना कि परमेश्वर फिर जीवात्माको मुक्तिसे लौटाकर संसारमें भ्रमाता है परमेश्वर को साक्षात् अन्यायी बनाना है—जीवात्मा ने तो अपने आप को निर्मल और पवित्र करके मुक्ति में पहुंचाया यहां तक कि उसको स्थान भी ब्रह्ममें ही वास करने का मिला परन्तु स्वामीजीके कथनानुसार ईश्वरने फिर उस की निर्मलताको बिगाड़ा और संसार के पापोंमें फंसानेके वास्ते मुक्तिसे बाहर निकाला—

स्वामीजी ! यदि आपको यह सिद्ध करना था कि जीवात्मामें मुक्ति प्राप्त करने की शक्ति ही नहीं है—आप की अद्भुत समझके अनुसार यदि उसको निर्मल होना उस पर अधिक बोझ लादना है तो आपने यह क्यों लिखा कि "जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव ईश्वरके गुण कर्म स्वभावके अनुसार पवित्र हो जाते हैं और वह सदा आनन्दमें रहता है"—आपको तो यह ही लिखना था कि जीवात्मा कभी इन्द्रियोंके विषय भोगसे विरक्त हो ही नहीं सकता है वरण सदा संसार के ही मज़े उड़ाता रहता है परन्तु स्वामी जी क्या करें ऋषियों ने तो सर्व ग्रन्थों में यह ही लिखदिया कि जीवात्मा रागद्वेषसे रहित होकर स्वच्छ और निर्मल हो-

जाता है और इस मुक्त दशा में वह परम आनन्द भोगता है जो कदाचित् भी संसारमें प्राप्त नहीं हो सकता है इस कारण उनको ऋषियोंके वाक्य लिखने ही पड़े परन्तु जिस तिस प्रकार उन को रद्द करने और संसार बढ़ानेका उपदेश देनेकी भी कोशिश की गई।

आर्यमत लीला।

(१७)

यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि एक असत्य बात को संभालने के वास्ते हजार झूठ बोलने पड़ते हैं और फिर भी वह बात नहीं बनती है-यह ही मुशकिल स्वामी दयानन्द को पेशआई है-स्वामी जी ने अपने अंगरेजी पढ़े चेलों के राजी करने के वास्ते यह स्थापन तो कर दिया कि मुक्ति से जीव लौट कर फिर संसार में रुलता है परन्तु इस अद्भुत सिद्धांत के स्थिर रखने में उनको अनेक ऊट पटांग बातें बनानी पड़ी हैं-

स्वामी जी को यह तो लाचार मानना पड़ा कि जीवात्मा स्वच्छ और निर्मल होकर मुक्ति को प्राप्त होकर ब्रह्म में वास करता है परन्तु मुक्ति में भी जीव को इच्छा के वश में फंसाने के वास्ते स्वामी जी ने अनेक बातें बनाई हैं। यथाः-

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३६

"(प्रश्न) मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है? (उत्तर) विद्यमान रहता है (प्रश्न) कहां रहता है? (उत्तर) ब्रह्म में (प्रश्न) ब्रह्म कहां है और वह मुक्तजीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र बिचरता है? (उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्तजीव अव्याहत गति अर्थात् उस को कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतंत्र बिचरता है-"

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३८

"उस से उन को सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात् जो जो संकल्प करते हैं वह वह लोक और वह वह काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़ कर संकल्प मय शरीर से आकाशमें परमेश्वरमें विचरते हैं-"

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४५

"मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां बिचरे"

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४९

"अर्थात् जिस जिस आनंद की कामना करता है उस २ आनन्द को प्राप्त होता है यही मुक्ति कहाती है-"

पाठक वृंद! विचार कीजिये कि जीव को इच्छा में फंसाने के वास्ते स्वामी जी ने मुक्ति को कैसा बालकों का खेल बनाया है?-स्वामी जी को इतनी भी समझ न हुई कि जहां इच्छा है वहां आनंद कहां? जब तक जीव में इच्छा बनी हुई है तब तक वह शुद्ध और निर्मल ही कहां हुआ है?-इच्छा ही के तो दूर करनेके वास्ते संयम सन्यास और योगाभ्यास

आदि साधन किये जाते हैं—मुक्ति तो बहुत दूर बात है संसार में भी साधारण साधु की निन्दा की जाती है और वह बहुरूपिया गिना जाता है यदि वह इच्छाके वश होता है-संसार के सर्व जीव इच्छा ही के तो बंधनमें फंसे हुवे भटकते फिरते हैं परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने जीवात्माको सदा के लिये भटकने के वास्ते मुक्ति दशा में भी उस को इच्छा का गुलाम बना दिया! स्वामी जी को इतनी भी सूझ न हुई कि इच्छा ही का तो नाम दुःख है जहां इच्छा है वहीं दुःख है और जहां इच्छा नहीं है वहीं सुख है परन्तु स्वामी जी को यह बात सूझती कैसे? उन का तो उद्देश्य ही यह था कि वैराग्य धर्म का लोप करके संसार वृद्धिकी शिक्षा मनुष्यमात्र को दीजावे-

स्वामी जी महाराज! हम आप से पूछते हैं कि मुक्ति दशा में जीवात्मा ब्रह्म में वास करता है ऐसा जो आप ने लिखा है इस का अर्थ क्या है? क्या ब्रह्म कोई मकान वाले सेत्र हैं जिसमें मुक्ति जीव जा बसता है? आप तो ब्रह्म को निराकार मानते हैं उस में कोई दूसरी वस्तु वास कैसे कर सक्ती है? यदि आप यह कहैं कि जिस प्रकार ब्रह्म निराकार है उस ही प्रकार जीव भी निराकार है इस कारण निराकार वस्तु निराकार में वास कर सकती है। परंतु स्वामीजी महाराज! जरा अपनी कही हुई बात को याद भी रखना चाहिये आप तो यह भी कहते हैं कि जीवात्मा मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् संकल्प मय शरीर से इच्छानुसार विचरता रहता है शरीर संकल्प मय हो वा स्थूल हो परन्तु शरीर तब ही कहलावेगा जब कि आकार होगा और जब कि मुक्ति दशा में भी जीव का शरीर रहता है तो जीव को आप निराकार कह ही नहीं सकते हैं। आप ने तो अपना मुंह आप बन्द कर लिया। आप को तो जीव को स्वाभाविक साकार मानना पड़ गया। यदि आप यह कहैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक है कोई स्थान ब्रह्म से खाली नहीं है और सर्व जगत् उस ही में वास करता है तो यह कहना बिलकुल व्यर्थ हुआ कि मुक्ति दशा को प्राप्त होकर जीवात्मा ब्रह्म में वास करता है क्योंकि इस प्रकार तो जीव सदा ही ब्रह्म में वास करता है वह चाहे मुक्त हो चाहे संसारी चाहे पुन्यवान हो वा पापी वरण कुत्ता बिल्ली ईंट पत्थर सब ही ब्रह्म में वास कर रहा है मुक्त जीवके वास्ते ब्रह्म में वास करनेकी कोई विशेषता न हुई---

पाठक गणो! स्वामी जी स्वयम् एक स्थान पर यह लिखते हैं कि **मुक्त होकर जीवात्माके गुण कर्म और स्वभाव ब्रह्मके समान हो जाते हैं** और स्वामीजी को यह भी लिखना पड़ा है कि

मुक्त जीव ब्रह्म में रहकर सदा आनन्द में रहता है

स्वामी जी के इन वाक्योंके साथ अब आप इस वाक्य पर ध्यान देंगे कि, मुक्ति जीव ब्रह्म मे वास करता है तो इस का अर्थ स्पष्ट आप को यहही प्रतीत होगा कि मुक्त जीव ब्रह्म ही हो जाता है—परन्तु स्वामी जी ने इस बात को दवाने के वास्ते ऐसी ऐसी बेतुकी बातें लिखाई हैं कि मुक्त जीव इच्छा के अनुसार संकल्प मय शरीर बनाकर ब्रह्ममें विचरता रहताहै।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी यह तो मानते हैं कि मनुष्य का जीव जन्मान्तर में अन्य पशु पक्षी का शरीर धारण कर लेता है परन्तु हाथी का शरीर बहुत बड़ा है और चींवटी का बहुत छोटा और बहुतसे ऐसे भी कीड़े हैं जो चींवटी से भी बहुत छोटे हैं और मनुष्य का मंझला शरीर है इस कारण हम स्वामी जी से पूछते हैं कि जीवात्मा स्वाभाविक कितना लम्बा चौड़ा है? क्या जीव की लम्बाई चौड़ाई परिमाणवद् है और छोटी बड़ी नहीं हो सकती? यदि ऐसा है तो जीव चींवटी आदिक छोटे जीवों का जन्म धारण करके शरीर से बाहर निकला रहता होगा और हाथी आदिक बड़े जीवों का जन्म धारण करके जीवात्मा शरीर के किसी एक ही अंग में रहता होगा और शेष अंग जीव से रहित ही रहता होगा परंतु ऐसी दशा में वह कौन से अंग में रहता है और शेष अंग किस प्रकार जीवित रहता है? इन बातों के उत्तर देने में आप को बहुत कठिनाई प्राप्त होगी। इस कारण आप को निश्चय रूप यह ही मानना पड़ैगा कि जीवात्मा में संकोच विस्तार की शक्ति है उस की परिमाणवद् कोई लम्बाई चौड़ाई नहीं है वरण जैसा शरीर उस को मिलता है उस हीके परिमाण जीव लम्बा चौड़ा हो जाता है और बालक अवस्था से वृद्धावस्था तक ज्यों ज्यों शरीर बढ़ता वा घटता रहता है उसही प्रकार जीवकी लम्बाई चौड़ाई भी घटती बढ़ती रहती है और यदि शरीर का कोई अंग कट जाता है तो जीव संकोच कर शेष शरीर में रहजाता है इस प्रकार समझाने के पश्चात हम स्वामी दयानन्द जी से पूछते हैं कि जीव मुक्ति पाकर कितना लम्बा चौड़ा रहता है? जिस प्रकार संसार में अनेक जीवों के शरीर का परिमाण है कि हाथी का शरीर बड़ा और चींवटी का शरीर बहुत छोटा इसही प्रकार क्या मुक्त जीव का कोई परिमाण है वा जिस शरीर से मुक्ति होती है उतना परिमाण मुक्त जीव का होता है?

इस के उत्तर में यह ही कहना पड़ैगा कि मुक्ति जीव की मुक्ति होनेके समय वह ही लम्बाई चौड़ाई होगी जो उस मनुष्य शरीर की थी जिसको

त्यागकर मुक्ति प्राप्त की और यह न माना जावे और मुक्ति जीव का कोई नियमित शरीर माना जावे तो भी स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज मुक्तजीव में इच्छा का दोष पैदा करने के वास्ते यह ही कहेंगे कि मुक्ति होते समय जीव का कुछ ही शरीर हो परन्तु मुक्ति अवस्था में मुक्त जीव अपनी कल्पना अर्थात् इच्छाके अनुसार अपना शरीर घटाता बढ़ाता रहता है।

इस पर हम यह पूछते हैं कि मुक्त जीव अपने आपको अपनी कल्पना के अनुसार इतना भी बढ़ासकता है वा नहीं कि वह सर्व ब्रह्माण्ड में फैल जावे अर्थात् ईश्वर की नाईं सर्व व्यापक हो जावे? यदि यह कहा जावे कि वह ऐसा कर सकता है तो सर्वमुक्त जीव मुक्ति पाते ही सर्वव्यापक क्यों नहीं हो जाते हैं जिस से उन को नाना प्रकार के संकल्पी रूप धारण करने और जगह जगह विचरने अर्थात सुख की प्राप्ति में भटकते फिरने की आवश्यकता न रहै वरण एक ही समय में सुखों का मज़ा स्वामी जी के कथनानुसार उड़ाते रहैं।

यदि यह कहो कि मुक्ति जीव सर्व व्यापक नहीं हो सकता वरण आकाश और परमेश्वर यह दोही सर्वव्यापक हैं और हो सकते हैं तो यह क्यों कहते हो कि **मुक्त जीवन के गुण कर्म स्वभाव ब्रह्मके सदृश होकर वह परमानन्द भोगता है?** क्योंकि जब मुक्त जीव में भी स्वामी दयानन्द के कथनानुसार इच्छा है और वह अपनी इच्छा के अनुसार आनन्द भोगता फिरता रहता है तो क्या उस को ऐसी इच्छा होनी असम्भव है कि सर्व स्थानों का आनन्द एक ही बार भोगलूं? और जब उसको ऐसी इच्छा हो सकती है और उस इच्छा की पूर्ति न हो सके तो उस इच्छा के विपरीत कार्य होने ही का तो नाम दुःख है-दुःख इसके सिवाय और तो कोई वस्तु नहीं है फिर परमानंद कहां रहा?

गरज़ स्वामी जी की यह असत्यबात कि मुक्ति जीव में इच्छा रहती है, किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सकी है वरण असम्भवही है।

क्यों प्यारे आर्य भाइयो! हम आप से पूछते हैं कि स्वामी दयानन्दके इस सिद्धान्त पर कभी आपने ध्यान भी दिया है कि मुक्त जीव अपनी इच्छा के अनुसार अपने संकल्पी शरीर के साथ सब जगह विचरता हुआ परमानन्द भोगता रहता है? प्यारे भाइयो! यदि ज़रा भी आपने इस पर ध्यान दिया होता तो कदाचित् भी आप इस सिद्धान्त को न मानते। परन्तु स्वामी जीने आप को संसार की वृद्धि में ऐसा आसक्त कर दिया है कि आप को इन धार्मिक सिद्धान्तों पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिलता है। आप जानते हैं कि जीवको

एक प्रकार के कार्य को छोड़कर दूसरे प्रकार का कार्य ग्रहण करने की आवश्यकता तभी होती है जब प्रथम कार्य से घृणा हो जाती है अर्थात् वह दुखदाई हो जाता है व दूसरा कार्य उससे अधिक सुखदाई प्रतीत होने लगता है इस ही प्रकार मुक्त जीव अपने एक प्रकार के संकल्पी शरीर को तभी छोड़ेगा और एक स्थान से दूसरे स्थान में तब ही विचरैगा जब कि पहला संकल्पी शरीर उसको दुखदाई प्रतीत होगा वा दूसरे प्रकार का शरीर वा दूसरा स्थान अधिक सुखदाई मालूम होगा। अब आप ही विचार लीजिये कि यदि मुक्ति में इस प्रकार मुक्त जीव की अवस्था होती रहती है तो क्या यह कहना ठीक है कि मुक्तजीव परमानन्द में रहता है? कदापि नहीं॥

संसारमें जोकुछ दुःखहै वह यह इच्छा होती है उसके सिवाय संसारमे भी और क्या दुःख है? नहीं तो संसारकी कोई वस्तु वा कोई अवस्था भी जीवके वास्ते सुखदाई वा दुखदाई नहीं कही जा सकती है -इस हमारी बातको स्वामी दयानन्दने सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४१ पर एक दृष्टान्त देकर सिद्ध किया है जिस को हम ज्योंका त्यों लिखते हैं:—

"जैसे किसी साहूकारका विवाद राजघरमें लाख रुपयेका हो तो वह अपने घरसे पालकीमें बैठकर कचहरीमें उष्णकालमें जाता हो बाज़ारमें होके उस को जाता देखकर अज्ञानी लोग कहते हैं कि देखो पुन्य पापका फल, एक पालकीमें आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे बिना जूते पहिरे ऊपर नीचेसे तप्यमान होते हुए पालकी को उठाकर लेजाते हैं परन्तु बुद्धिमान् लोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे २ कचहरी निकट आती जाती है वैसे साहूकार को बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारोंको आनन्द होता जाता है"-

प्रिय पाठको! उपर्युक्त लेखमें स्वामी जीने स्वयं सिद्ध करदिया कि सुख दुःख किसी सामग्रीके कम बेश मिलने पर नहीं है वरण इच्छाकी कमी वा बहुती पर है-परन्तु इन तमाम बातोंको जानते हुए भी स्वामी दयानन्दने धर्म को नष्ट भ्रष्ट करने और हिन्दुस्तानके जीवोंको संसार के विषयों में मोहित करनेके वास्ते इच्छाका यहां तक सबक़ या पाठ पढ़ाया कि मुक्तिदशामें भी इच्छा सिखादी और संसारकी इतनी महिमा गाई कि मुक्तिसे भी संसारमें आनेकी आवश्यकता बतादी-

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीको अपनी असत्य और अधर्मकी बातों सिद्ध करनेके वास्ते बड़ी बेतुकी दलीलोंको काममें लाना पड़ा है। आप लिखते * हैं कि यदि मुक्तिमें जीव जाते ही रहैं और लौटें नहीं तो मुक्तिके स्थान में बहुत भीड़ भड़क्का होजावेगा।

* सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४७ पर।

हम रे आर्य भाई स्वामीजीके इस हेतु पर फूले नहीं समाते होंगे परन्तु हम कहते हैं कि ऐसी बेतुकी बातोंको हेतु कहना ही लज्जाकी बात है क्यों कि स्वामीजी स्वयम् कहते हैं कि, जीव मुक्ति पाकर ब्रह्ममें रहता है और ब्रह्म सर्वव्यापक है और मुक्ति जीव सब ज गह विचरता फिरता रहता है-अफसोस ! इतनी बात मूर्खसे मूर्ख भी समझ सकता है कि सर्वब्रह्माण्ड जिसमें ब्रह्म सर्वव्यापक है और जो मुक्तजीवों का स्थान स्वामीजीके कथनानुसार है उसमें ही जगतकी सर्वसामग्री स्थित है जगत्की सर्ववस्तुओं से तो भीड़ हुई नहीं परन्तु मुक्ति जीवोंसे भीड़ भड़क्का होजावेगा-ऐसी अद्भुत बुद्धि स्वामी दयानन्द की ही हो सकती है और किसकी होती ? ।

इसके अतिरिक्त स्वामीजी परमेश्वर को सर्वव्यापक कहते हैं जब वह सर्वस्थानमें व्यापक होगया तो अन्य वस्तु उस ही स्थानमें कैसे आ सकती है ? परन्तु स्वामीजी स्वयम् यह कहते हैं कि जिस सर्वस्थानमें ईश्वर व्यापक है उस ही सर्वस्थान में आकाश भी सर्व व्यापक है-ईश्वरने सर्वमें व्याप कर भीड़ नहीं करदी बरण जिस २ स्थान में ईश्वर है उस सर्वही स्थानमें आकाश भी व्याप गया और ईश्वर और आकाश के सर्वव्यापक होने पर भी उसही स्थान में जगत् की सर्ववस्तुयें व्याप गईं परन्तु जगत् की स्थूल वस्तु अन्य स्थूल वस्तुको उसही स्थानमें आने नहीं देती है और भीड़ करती हैं स्वामीजी विचारेने संसारी स्थूल वस्तओंको देखकर यह हेतु लिखमारा । वह विचारे इन बातोंको क्या समझें ? परन्तु हम समझाते हैं कि निराकार वस्तु भीड़ नहीं किया करती है बरण भीड़ स्थूल वस्तु से ही हुआ करती है--निराकार और स्थूलमें यह ही तो भेद है--ईश्वर को स्वामीजी निराकार कहते हैं इस कारण उसके सर्वव्यापक होनेसे भीड़ नहीं हो सकती--

इस ही प्रकार आकाश निराकार है इस हेतु उससे भी भीड़ न हुई परन्तु संसारकी अन्य स्थूल वस्तुओंसे भीड़ हुई स्वामीजीको चाहिये था कि पहले यह बिचार लेते कि मुक्त जीव की बाबत यह कहाजाता है कि वह ब्रह्ममें बास करता है तो क्या वह स्थूल शरीरके साथ बास करता है? स्वामी जी स्वयम् ही कई स्थान पर लिखते हैं कि स्थूल शरीर मुक्ति अवस्था में नहीं रहता है तब तो यही कहना पड़ेगा कि मुक्ति में निराकार ब्रह्म में जीव निराकार अवस्था ही में बास करता है तब भीड़ भड़क्का की बात कैसे उठ सकती है ? परन्तु स्वामी जी को तो अपना संसार सिद्ध करने के वास्ते बेतुकी हांकने से मतलब, चाहे वह बात युक्ति पूर्वक हो वा न हो ।

आर्यमत लीला ।

(१८)

गत दो लेखों मे हमने दिखाया है कि, स्वामी दयानन्दने वैराग्य धर्मको नष्ट करने और संसार के विषय कषायों में मनुष्यों को फंसाने के वास्ते हिन्दुस्तान के जगत् प्रसिद्ध सिद्धांत के विरुद्ध यह स्थापित किया है कि मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् भी जीव बंधन में फंसता है और संसार में रुलता है। स्वामी जी को अपने इस अद्भुत और नवीन सिद्धान्त का यहां तक प्रेम हुआ है कि वह मुक्ति को जेलखाना बनाते हैं सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४१ पर स्वामी जी लिखते हैं:—

"इस लिये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्ति में जाना वहां से पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़े से कारागार से जन्म कारागार दंड वाले प्राणी अथवा फांसी को कोई अच्छा मानता है जब वहां से आना ही न हो तो जन्म कारागार से इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्ममें लय होना समुद्रमें डूब मरना है॥

पाठक गण! नहीं मालूम स्वामीजी को मुक्ति दशा से क्यों इतनी घृणा हुई है कि उन्होंने उस को कारागार और फांसी के समान बताया। यदि स्वामी जी को मुक्ति ऐसी ही बुरी मालूम होती थी, तो जिस प्रकार उन्होंने स्वर्ग और नरकका निषेध किया है और अपने चेलों को सिखाया है कि स्वर्ग और नरक कहीं नहीं है, इस ही प्रकार मुक्ति का भी निषेध कर देते और कह देते कि कुछ सुख दुःख होता है वह इस पृथ्वी पर ही हो रहता है। परन्तु मुक्ति को स्थापन करके उसको कारागार बनाना बहुत अन्याय है।

क्या मुक्ति से लौटा कर संसार में फिर वापिस आने की आवश्यकता को दिखाने के वास्ते स्वामी जी को कोई और दृष्टान्त नहीं मिलता था, जो कारागार का दृष्टान्त देकर यह समझाया कि अनित्य मुक्ति तो ऐसी है जैसा किसी को दो चार बरसके वास्ते कैद खाना हो जावे और मियाद पूरी होने पर अपने घर पर फिर वापिस चला आवे और नित्य मुक्ति ऐसी है जैसा किसी को जन्म भरके वास्ते कैद खाना हो जावे और घर वापिस आने की उम्मेद हो न रहै, या ऐसा किसी को फांसी हो जावै कि वह फिर अपने घर वापिस हो न आसके? तात्पर्य इसका यह है कि जिस प्रकार गृहस्थी लोग अपने घरपर अपने बाल बच्चों में रहना पसन्द करते हैं और जेल खाने में फंसना महा कष्ट समझते हैं, इस ही प्रकार जीवका मनुष्य पशु पक्षी आदिक अनेक शरीर धारण करते हुये संसार में विचरना अच्छा है, और मुक्ति का हो जाना महा कष्ट है स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति में

और जेल खाने में इतना ही अन्तर है कि मुक्ति में मजदूरी नहीं करनी पड़ती और जेल खाने में करनी पड़ती है। परन्तु स्वामी जी को मालूम नहीं कि कैद भी दो प्रकार की होती है एक कैद मुशक्कत जिसमें मिहनत करनी पड़ती है और दूसरी कैद महज जिसमें मिहनत नहीं करनी पड़ती। इस कारण स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति में जाना कैद महज हो जाने के समान है। इसी हेतु स्वामी जी चाहते हैं कि यदि मुक्ति हो तो सदा के वास्ते नहो, बल्कि थोड़े दिनों के वास्ते हो जिस को जिस तिस प्रकार भुगत कर फिर जीव संसार में आसके और संसार के विषय भोग भोग सके।

प्यारे आर्य भाइयो! स्वामीजीके इस कथनसे स्पष्ट विदित होता है कि स्वामीजी [illegible] बड़ी लालसा थी [illegible] ना उनसे होसका है, [illegible] के हटाकर मुक्तिके आनन्दमें पहुंचाकर संसारका मोह और [illegible] गानेकी कोशिश की है। इस कारण आपको उचित है कि आप म[illegible] स्वामी दयानन्दके वाक्योंका अनुकरण न करें वरण अपने कल्याणके अर्थ सत्यधर्मकी खोज करें और सत्यके ही ग्रहणकी चेष्टा करें।

प्यारे भाइयो! हम स्वामी जी के आभारी हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तानमें रहने वाले प्रमादमें फंसे हुये मनुष्यों को सोते से जगाया। फजूल खर्ची, बाल विवाह और अन्य कुरीतियोंको हटाना सिखाया जिससे हमारा गृहस्थ अत्यन्त दुःखदाई होरहा था, संस्कृत विद्याके पढ़नेकी रुचि दिलाई जिस को हम बिल्कुल भूल बैठे थे और सबसे बड़ा भारी उपकार यह किया कि हिन्दुओंको ईसाई और मुसलमान होनेसे बचाया। परन्तु इस प्रयोजनके वास्ते उनको सत्य धर्मको बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट करना पड़ा और ऐसे सिद्धान्त स्थापन करने आवश्यक हुवे जो उन पुरुषोंको रुचिकर थे जो अंगरेजी पढ़कर ईसाई व मुसलमानी धर्मकी तरफ आकर्षित होते थे। इस कारण स्वामीजीका उपकार थोड़े समय ही के वास्ते काम देगा और संसार में अत्यन्त अनर्थकी [illegible] वाला होजायेगा। इस हेतु प्यारे भाइयो आप को उचित है कि आप [illegible] [illegible] स्वामीजीके [illegible] हैं। [illegible] आर्य नाम [illegible] आर्यसमाज सदाके लिये [illegible] होकर अपनी बुद्धि [illegible]।

प्यारे भाइयो ज्यों ज्यों आप स्वामी जीके लेखोंपर विचार करेंगे त्यों त्यों आप को मालूम होगा कि या तो स्वामी जी आत्मिक धर्म को समझते ही नहीं थे या उन्होंने आप[illegible]

बावला बनना पसन्द किया है। देखिये स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाशमें मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आने की आवश्यकता को सिद्ध करने के वास्ते पृष्ठ २४१ पर लिखते हैं—

"और जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय"

प्यारे भाइयो ! क्या इस से यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि स्वामी जी मुक्ति प्राप्ति को भी कर्मों का फल समझते हैं ? अर्थात जिस प्रकार जीव के कर्मों से मनुष्य, पशु पक्षी, आदिकी पर्याय मिलती है उसही प्रकार मुक्ति भी एक पर्याय है जो जीवके कर्मोंके अनुसार ईश्वर देता है—

प्यारे भाइयो ! यदि आपने पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ पढ़े होंगे तो आप को मालूम हो जावेगा कि मुक्ति कर्मोंका फल नहीं है बरण कर्मोंसे रहित होकर जीव का स्वच्छ और शुद्ध होजाना है अर्थात् सर्व उपाधियां दूर होकर जीव का निज स्वभाव प्रगट होना है इस बात को हम आगामी सिद्ध करेंगे। परन्तु प्रथम तो हम यह पूछते हैं कि यह मानकर भी कि मुक्ति भी कर्मों का ही फल है क्या स्वामीजी का यह हेतु ठीक है कि अंत वाले कर्मोंका अनन्त फल नहीं मिल सकता है ? क्या खश खश के दाने के समान एक छोटे से बीज से बड़ का बहुत बड़ा वृक्ष नहीं बन जाता है ? और यदि ईश्वर जगत् कर्ता है और वृक्षभी वह ही पैदा करता है तो क्या स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि छोटे से बीज से बड़ा भारी वृक्ष बना देने में ईश्वर अन्याय करता है ? यदि कोई किसी को एक थप्पड़ मार दे तो राजा उसको बहुत दिनों का कारागार का दंड देता है। क्या स्वामी जी के हेतु के अनुसार राजा इस प्रकार दंड देने में अन्याय करता है और एक थप्पड़ मारने का दंड एक ही थप्पड़ होना चाहिये क्या जितने दिनों तक जीव कोई कर्म उपार्जन करै उस कर्म का फल भी उतने ही दिनोंके वास्ते मिलना चाहिये ? और वैसा ही मिलना चाहिये अर्थात् कोई किसी को गाली दे तो गाली मिले और भोजन दे तो भोजन मिले यदि ऐसा है तो भी स्वामी जी को समझना चाहिये था कि कर्मों का फल मुक्ति कदाचित् भी नहीं हो सकता है क्योंकि कोई भी कर्म ऐसा नहीं हो सकता है जो मुक्ति के समान हो क्योंकि कर्म संसार में किये जाते हैं और बंध अवस्था में किये जाते हैं और मुक्ति संसार और बंध दोनों से विलक्षण है।

प्यारे आर्य भाइयो ! मुक्ति के स्वरूप को जानने की कोशिश करो। आचार्यों के लेखों को देखो और तर्क वितर्क से परीक्षा करो। मुक्ति कर्मों का फल कदापि नहीं हो सकती है वरण कर्मों के क्षय होने तथा जीवका

शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का नाम मुक्ति है। इस भय से कि स्वामी दयानन्द के वचनों में आसक्त होकर आप हमारे हेतुओं और आचार्यों के प्रमाणों को शायद न सुनें हम इस विषय की पुष्टि स्वामी दयानन्द के ही लेखों से करते हैं-

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९२

"कैवल्य मोक्ष का लक्षण यह है कि (पुरुषार्थ) अर्थात् कारण के सत्व, रजो और तमो गुण और उन के सब कार्य पुरुषार्थ से नष्ट होकर आत्मा में विज्ञान और शुद्धि यथावत् होके स्वरूप प्रतिष्ठा जैसा जीवका तत्व है वैसा ही स्वाभाविक शक्ति और गुणोंसे युक्त होके शुद्ध स्वरूप परमेश्वर के स्वरूप विज्ञान प्रकाश और नित्य आनन्द में जो रहना है उसी को कैवल्य मोक्ष कहते हैं"

प्यारे पाठको! उपर्युक्त लेखके अनुसार मुक्ति कर्मों का फल है वा कर्मों के सर्वथा नष्ट होनेसे मुक्ति होती है? जब सत्व, रज और तम तीनों उपाधिक गुण और उनके कार्य नष्ट होगये और जीव शुद्ध यथावत जैसा जीवका तत्व है वैसा ही स्वभाविक शक्ति और गुण सहित रहगया तो क्या फिर भी जीव के साथ कोई कर्म बाकी रहगये? ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इस प्रकार जो मुक्ति का लक्षण वर्णन किया है इससे तो किंचित् मात्र भी संदेह नहीं रहता है वरण स्पष्ट विदित होता है कि कर्मोंके क्षय होने और जीव के शुद्ध स्वच्छ और निर्मल हो जाने का ही नाम मुक्ति है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के ऊपरके लेख से यह भी विदित होता है कि मुक्ति नित्य के वास्ते है अनित्य नहीं है। बेशक जब कि सर्व उपाधि दूर होकर अर्थात कर्मों का सर्वथा नाश होकर जीव के शुद्ध निज स्वभाव के प्रगट होने का नाम मुक्ति है तो यह सम्भव ही नहीं हो सकता है कि जीव मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आवे क्योंकि संसार को दुःख सागर और मुक्ति को परम आनंद बार २ कई स्थान में स्वयम् स्वामी दयानंद जीने भी लिखा है। इस कारण मुक्ति जीव अपने आप तो मुक्ति के परमानंदको छोड़कर संसार के दुःख में फंसना पसंद करही नहीं सकता है और किसी प्रकार भी संसार में आही नहीं सक्ता है और यदि ईश्वर जगत्का कर्ता हो तो वह भी ऐसा अन्याई और अपराधी नहीं हो सकता है कि शुद्ध, निर्मल और उपाधि रहित मुक्ति जीवको बिना किसी कारण, बिना उसके किसी प्रकार के अपराध के परमानन्द रूप मुक्तिस्थान से धक्का देकर दुःख दाई संसार कूप में गिरादे और मुक्त जीव की स्वच्छता और शुद्धता को नष्ट भ्रष्ट करके सत, रज, और तम आदि उपाधियें उस के साथ चिमटादे। ऐसा कठोर हृदय तो सिवाय स्वामी

दयानन्द जीके और किसी का भी नहीं हो सकता है कि निरपराधी मुक्त जीवों को स्वयम् संसारमें फंसाकर अपराध करना सिखावें।

पाठक गण! जीव की दो ही तो अवस्था हैं एक बंध और दूसरी मोक्ष यह दोनों अवस्था प्रसिद्ध हैं। बंध शब्द ही इस बात को बता रहा है कि जब तक जीव उपाधियों में फंसा रहता है तब तक बंध अवस्था कहाती है और जब इन उपाधियोंसे मुक्त हो जाता है अर्थात् छूट जाता है तब मोक्ष अवस्था होती है। आश्चर्य है! कि स्वामीजीको इतनी भी समझ न हुई कि कर्म उपाधिसे मुक्त होना अर्थात् छूटनेका नाम मुक्ति है या मुक्ति भी कोई पदार्थ है जो कर्मोंके अनुसार प्राप्त होती है परन्तु हां सीधे समझ भोले लोगोंको बहकानेके वास्ते यह लिखमारा कि अनित्य कर्मोंका फल नित्य मुक्ति नहीं हो सकती है। स्वामीजी सब कर्म उपाधि जीवने क्षय करदी और वह शुद्ध निर्मल होगया तभी तो वह मुक्त कहाया। वह कर्म कौनसा बाकी रहगया जिस का फल आप मोक्ष बताते हैं? क्या आपके न्यायमें किसी वस्तुके शुद्ध होजानेके पश्चात् फिर उसका अशुद्ध और मल सहित होना बिना कारण भी आवश्यक है?

यह बात, कि मुक्ति कर्मोंका फल नहीं है वरण कर्मोंको क्षय करके जीव का शुद्ध होजाना है, ऐसी मोटी और सीधी है कि इसके वास्ते किसी हेतु की जरूरत नहीं है परन्तु स्वामी दयानन्दके प्रेमी! भोले भाइयोंके समझानेके वास्ते हमने स्वयम् स्वामीजी की बनाई पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकाका भी लेख दिखलाया है इस पर भी यदि किसी भाईको यह शंका हो कि नहीं मालूम स्वामीजीने यह लेख भूमिकामें किस अभिप्रायसे लिखा है, हम स्वामीजीकी पुस्तकके और भी बहुतसे लेख उद्धृत करते हैं जिनके पढ़नेसे कुछ भी सन्देह बाकी न रहेगा—

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १९२

"जब मिथ्या ज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट होजाती तब जीवके सब दोष जब नष्ट होजाते हैं उसके पीछे (प्रवृत्ति) अर्थात् अधर्म अन्याय विषयासक्ति आदिकी वासना सब दूर होजाती है। उसके नाश होनेसे (जन्म) अर्थात् फिर जन्म नहीं होता उसके न होनेसे सब दुःखोंका अत्यन्त अभाव होजाता है। दुःखोंके अभावसे पूर्वोक्त परमानन्द मोक्षमें अर्थात् सब दिनके लिये परमात्माके साथ आनन्द ही भोगनेको बाकी रहजाता है इसीका नाम मोक्ष है,,

✓ ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८१

"अर्थात् सब दोषोंसे छूटके परमानन्द मोक्षको प्राप्त होते हैं जहां कि पूर्ण पुरुष सबमें भरपूर सबसे सूक्ष्म अर्थात् अविनाशी और जिसमें हानि

लाभ कभी नहीं होता ऐसे परमपदको प्राप्त होके सदा आनन्दमें रहते हैं "

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९७

" पूर्व लिखी हुई चित्तकी पांच वृत्तियोंको यथावत् रोकने और मोक्षके साधनमें सब दिन प्रवृत्त रहनेसे पांच क्लेश नष्ट होजाते हैं १ अविद्या २ अस्मिता ३ राग ४ द्वेष ५ अभिनिवेश उनमेंसे अस्मितादि चार क्लेशों और मिथ्या भाषणादि दोषोंकी माता अविद्या है जो कि मूढ जीवोंको अन्धकारमें फसाके जन्म मरणादि दुःखसागरमें सदा डुबाती है । परन्तु जब विद्वान् और धर्मात्मा उपासकोंकी सत्यविद्यासे अविद्या भिन्न २ होके नष्ट होजाती है तब वे जीव मुक्तिको प्राप्त होजाते हैं । "

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९८

" जब अविद्यादि क्लेश दूर होके विद्यादि शुभ गुण प्राप्त होते हैं तब जीव सब बन्धनों और दुःखोंसे छूटके मुक्तिको प्राप्त होजाता है "

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९८

" जब सब दोषोंसे अलग होके ज्ञान की ओर आत्मा झुकता है तब कैवल्य मोक्ष धर्मके संस्कारसे चित्त परिपूर्ण होजाता है तभी जीवको मोक्ष प्राप्त होता है क्योंकि जबतक बन्धनके कामोंमें जीव फंसता जाता है तबतक उसको मुक्ति प्राप्त होना असम्भव है- "

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९९ पर मुक्तिके साधनोंमेंसे एक साधन तप है जिसकी व्याख्या स्वामीजी इस प्रकार करते हैं—

" जैसे सोनेको अग्निमें तपाके निर्मल करदेते हैं वैसे ही आत्मा और मनको धर्माचरण और शुभ गुणोंके आचरण रूपसे निर्मल करदेना "

पाठकगण ! आपको आश्चर्य होगा कि स्वामी दयानन्दजी अपनी पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में स्वयम् उपर्युक्त प्रकार लिखकर फिर सत्यार्थप्रकाशमें इस बातके सिद्ध करनेकी कोशिश करते हैं कि मुक्ति सदाके वास्ते नहीं होती है और कर्मोंके क्षयसे मुक्ति नहीं होती है वरन् मुक्ति भी कर्मोंका फल है । परन्तु यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि जो कोई असत्यकी पुष्टि करता है उसके वचन पूर्वापर विरोध रहित हुआ ही नहीं करते हैं । स्वामीजीने अनेक ग्रन्थोंको पढ़ा और प्रायः सर्वशास्त्रोंमें मुक्तिको सदाके वास्ते लिखापाया और मुक्ति प्राप्त होनेका कारण सर्वकर्मोंका क्षय होकर जीवका शुद्ध और निर्मल होजाना ही सब आचार्योंके वाक्योंमें पाया इस कारण स्वामीजी सत्य बातको छिपा न सके और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकामें उनको ऐसा लिखना ही पड़ा । परन्तु अपने शिष्योंको खुश करनेके वास्ते इधर उधर की अटकलपच्चू बातोंसे उन्होंने मुक्तिसे लौटना भी सत्यार्थप्रकाशमें वर्णन करदिया ॥

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के उपर्युक्त वाक्योंसे हमारे आर्य भाइयों को यह भी विदित होगया होगा कि मुक्ति का-

रागार नहीं है—जेलखाना नहीं है जिससे छूटना जरूरी हो बरण मुक्ति तो ऐसा परमानन्दका स्थान है कि वह आनन्द संसारमें प्राप्त ही नहीं हो सकता है। परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वतीने मुक्तिको अनित्य वर्णन करके और मुक्तिसे लौटकर फिर संसारके बन्धनमें पड़नेको आवश्यक स्थापित करके मुक्तिके परमानन्दको धूलमें मिला दिया। क्योंकि प्रियपाठको! आप जानते हैं कि यदि हम किसी मनुष्यको कहदेवें कि तुझको राजा कैद करदेगा वा अन्य कोई महान् विपत्ति तुझ पर आने वाली है और उसको इस बात का निश्चय वा संदेह तक भी होजावे तो कैदमें जाने वा अन्य विपत्तिके आने से जो क्लेश होगा, उससे अधिक क्लेश उस मनुष्यको अभीसे प्राप्त हो जावेगा और यदि वह इस समय आनन्दमें भी था तो उसका वह आनन्द सब मिट्टी में मिल जावेगा। इस ही प्रकार यदि मुक्तिसे लौटकर संसारके बन्धनमें फंसना मुक्ति जीवोंके भाग्यमें आवश्यक है तो यह बात मुक्ति जीवोंको अवश्य मालूम होगी क्योंकि स्वामी दयानन्दजीने स्वयम् सत्यार्थप्रकाशमें सिद्ध किया है कि मुक्ति जीव परमेश्वरके सदृश होजाते हैं और उनका संसारियों की तरह स्थूल शरीर नहीं होता है और न इन्द्रियोंका भोग रहता है बरण वह अपने ज्ञानसे ही परमानन्द भोगते हैं। यह मालूम होने पर कि हमको यह परम आनन्द छोड़कर संसार में फिर रुलना पड़ेगा और दुःख सागरमें डूबना होगा, मुक्त जीवोंको जितना क्लेश हो सकता है उसका वर्णन जिह्वासे नहीं हो सकता है और उनकी दशाको परमानन्दकी दशा कहना तो क्या सामान्य आनंदकी भी दशा नहीं कह सकते हैं। इस हेतु मुक्तिसे लौटकर संसारमें आनेके सिद्धान्तको मानकर मुक्तिका सर्व वर्णन ही नष्ट भ्रष्ट होता है—और सर्व कथन मिथ्या हो जाता है॥

आर्यमत लीला।

(१९)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीको संसारके विषय भोगोंका इतना प्रेम है कि वह संसारके विषयोंको भोगनेके वास्ते मुक्त जीवोंका भी मुक्तिसे वापिस आना आवश्यक समझते हैं और इस ही पर बस नहीं करते बरण वह सिद्ध करना चाहते हैं कि जितने दिन जीव मुक्तिमें रहता है उन दिनोंमें भी मुक्ति जीव इच्छासे वंचित नहीं रहता है बरण मुक्त दशा में भी स्वेच्छानुसार सर्व ब्रह्मांड में विचरता रहता है और जगह २ का स्वाद लेता रहता है यदि कोई ऐसा कहै कि मुक्ति में जीव इच्छा द्वेष से रहित रहता है तो स्वामीजी को बहुत बुरा मालूम होता है और तुरंत उसके खण्डन पर तय्यार होते हैं स्वामीजीको तो संसार के मनुष्यों को

संसार से प्रेम कराना है इस कारण मुक्ति जीवका एक स्थान में स्थिर रहना उनको कब सुहाता है। वह तो यह ही चाहते हैं कि जिस प्रकार संसारी जीव इच्छा वश विचरते फिरते हैं उस ही प्रकार मुक्त जीवों की बाबत कहा जावे मुक्त जीवोंमें संसार के जीवोंसे कुछ विशेषता सिद्ध नहो

स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४४५ पर लिखते हैं:-

"यह शिला पैंतालीस लाखसे दूनी नब्बेलाख कोशकी होती तो भी वे मुक्त जीव बंधन में हैं क्योंकि उस शिला वा शिवपुरके बाहर निकलने से उन की मुक्ति छूट जाती होगी और सदा उसमें रहने की प्रीति और उससे बाहर जाने में अप्रीति भी रहती होगी जहां अटकाव प्रीति और अप्रीति है उसको मुक्ति क्यों कर कह सकते हैं"

पाठकगण ! इस लेख का अभिप्राय यह है कि जैनी लोग पैंतालीस लाख योजन का एक स्थान मानते हैं जिस में मुक्तजीव रहते हैं स्वामीजी इसके विरुद्ध यह सिखाना चाहते हैं कि मुक्त जीव सर्व ब्रह्माण्डमें घूमता फिरता रहता है इसकारण स्वामीजी जैनियों के सिद्धान्तकी हंसी उड़ाते हैं कि यदि मुक्त जीव मुक्ति लोकसे बाहर चला जाता होगा तो उसकी मुक्ति छूट जाती होगी और मुक्ति स्थान में ही रहते रहते उसको मुक्ति स्थानसे प्रीति और मुक्ति स्थान से बाहर जो लोक है उस से अप्रीति होजाती होगी । परन्तु स्वामी जी ने यह न समझा कि ऐसा कहने से स्वामीजी अपनी ही हंसीकराते हैं क्योंकि यह अनोखा सिद्धान्त कि, कर्मोंके बंधनसे मुक्त होकर और रागद्वेष को छोड़कर और स्वच्छ निर्मल होकर और मुक्तिको प्राप्त होकर भी प्रीति और अप्रीति करने का गुण बाकी रहता है और इधर उधर विचरने की भी इच्छा रहती है, स्वामी जीके ही मुखसे शोभता है अन्य कोई विद्वान् ऐसा ढीठ नहीं हो सक्ता है कि ऐसी उलटी बातें बनावे । अफसोस ! स्वामीजीने अनेक ग्रंथ पढ़े परंतु मुक्ति और आनन्द का लक्षण न जाना स्वामीजी बेचारे तो आनन्द इस ही में समझते रहे कि जीव सर्व प्रकारके भोग करता हुआ स्वच्छन्द फिरता रहे और किसी प्रकारका अटकाव किसी काम में रोक टोक न माने और जो चाहे सो करे ॥

पाठकगण ! जिस प्रकार बाजारी रंडियें गृह स्वामी स्वभर्तार संतुष्ट स्त्रियों पर हंसा करती हैं कि हम स्वच्छन्द हैं और विवाहिता स्त्रियें बंधन में फंसी हुई कारागारका दुःख भोगती हैं वा जिस प्रकार शराबी कबाबी लोग त्यागियों की हंसी उड़ाया करते हैं कि यह त्यागी लोग संसारका कुछ भी स्वाद न ले सकेंगे इस ही प्रकार स्वामी दयानन्दजी भी शुद्ध निर्मल स्वभावमें स्थित उन मुक्त जीवोंकी हंसी उड़ाते

हैं जिनको कुछ भी इच्छा नहीं है और एक स्थानमें स्थिर हैं और उनको बंधन में बतलाते हैं और इनके विरुद्ध यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मुक्त होकर भी जीव सारे ब्रह्मांड में मजे उड़ाता फिरता रहता है "उलटा चोर कोतवालको डांटे" वाला दृष्टान्त यहीं घटता है—

प्यारे आर्य्य भाइयो! हम बारम्बार आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप सिद्धान्तों को विचारें और आचार्योंके लेखोंको पढ़ें स्वामी दयानन्दजीके पूर्वापर विरुद्ध वाक्यों पर निर्भर न रहें क्योंकि स्वामी दयानन्दजीने कोई धर्म व धर्म का मार्ग प्रकाश नहीं किया है वरण भ्रमजाल रचा है। आइये! हम आप को स्वयम् स्वामी दयानन्दजीके ही लेख दिखावें जिससे उनका सब छल जाल प्रगट हो जावे।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १९२

"जैसे जलके प्रवाहको एक ओर से दृढ़ बांधके रोक देते हैं तब जिस ओर नीचा होता है उस ओर चलके कहीं स्थिर होजाता है। इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वरमें स्थिर होजाती है। एक तो चित्तकी वृत्ति को रोकनेका यह प्रयोजन है और दूसरा यह है कि उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं तब योगीकी वृत्ति सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है और संसारके मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है"

प्यारे पाठकों! जरा स्वामीजी के इस लेख पर विचार कीजिये। जिस प्रकार तालाव का जल स्थिर होजाता है। इस प्रकार मनकी वृत्तिको रोक कर स्थिर करने का उपदेश स्वामीजी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें लिखते हैं और चित्तके स्थिर होने से आनन्द और चंचल होने से दुःख बताते हैं परन्तु सत्यार्थ प्रकाशमें जहां उनको जैनियोंके खण्डन पर लेखनी उठाने की आवश्यकता हुई वहां मुक्ति जीवोंके एक स्थानमें स्थिर रहने को बंधन बताया और सर्व ब्रह्मांड में स्वेच्छानुसार घूमते फिरने को परमानन्द समझाया। यदि इसही प्रकार स्वामीजी को जैनियोंका खण्डन करना था तो उनको उचित था कि मुक्ति का मोक्ष न चित्त वृत्ति का रोकना और मनको स्थिर करना न बताते वरण वाममार्गियों की तरह स्वेच्छाचारी रहने और मनको बिल्कुल न रोकने में ही मुक्ति बताते और चित्तकी वृत्ति को रोकना, उपासना और ध्यान आदिक को महा बंधन और दुःख का कारण बताते। मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आने की आवश्यकता सिद्ध करने में जो २ हेतु स्वामीजीने दिये हैं उन से तो यहही मालूम होता है कि स्वामीजीकी इच्छा तो ऐसी ही थी क्योंकि उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, मीठा का

खट्टा एक प्रकारका ही रस चखने से वह आनन्द नहीं आ सक्ता जो नाना प्रकार के रस चखनेसे आता है इस कारण मुक्ति जीवों को संसार के नानाप्रकार के विषयभोग भोगने के वास्ते मुक्ति को छोड़कर अवश्य संसारमें आना चाहिये केवल इतना ही नहीं वरण स्वामीजीने तो यहां तक लिख दिया है कि मुक्ति कैद के समान है यदि वह कुछ काल के वास्ते हो तो ज्यों त्यों भुगती भी जावे परन्तु यदि सदा के वास्ते हो तो अत्यन्त ही दुःख दाई है। इससे ज्यादा स्वामीजी अपने हृदयके विचारका और क्या परिचय देते?

यद्यपि मुक्तिके साधनोंका वर्णन करते हुए पूर्वाचार्यों के वाक्योंके अनुसार स्वामी जीको यह ही लिखना पड़ा कि सन्यासी अपने चित्तकी वृत्ति को संसार की ओर से रोककर किया करे परन्तु ऐसा लिखनेका दुःख उनके हृदय में अवश्य बनाही रहा और वह यह ही चाहते रहे कि मुक्ति का साधन करनेवाला वहही माना जावे जो संसार से ही लगा रहे। इस ही हेतु स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १३५ पर नीचे लिखा एक श्लोक लिखकर उसका खण्डन करते हैं—

> यतीनांकाञ्चनंदद्या-
> त्ताम्बूलंब्रह्मचारिणाम्।
> चौराणामभयंदद्या-
> त्सनरोनरकं व्रजेत्॥

"इत्यादि वचनों का अभिप्राय यह है कि [illegible] को सुवर्ण दान देवे तो दाता नरक को प्राप्त होवे"—

पाठक गणो! संन्यासी का काम है कि संसार का त्याग करे और अपने चित्त को [illegible] करने की कोशिश करता रहे और संसार व्यवहार में न पड़े परंतु स्वामी [illegible] संसार में [illegible] कारण [illegible] किसी से उपदेश [illegible] संन्यासी [illegible] स्वामी [illegible] देते हैं।

"[illegible] पदार्थों और [illegible] खिलाने को [illegible] स्वार्थियों की [illegible] कि हमारा [illegible] कर सकेंगे और हमारी हानि होगी तथा व हमारे आधीन भी न रहेंगे और जब भिक्षादि व्यवहार हमारे आधीन रहेगा तो डरते रहेंगे"—

इस उपर्युक्त लेख से स्वा.मी दयानंद जी का अभिप्राय पाठकों को मालूम होगया होगा कि वह संन्यासियों की वृत्ति किस प्रकार की हो जानी चाहते थे और यह पहले ही मालूम हो

चुका है कि वह मोक्षको कैसा दुःख दाई मानते थे।

स्वामी जी का अभिप्राय कुछ भी हो हमतो यह खोज करनी है कि जिस प्रकार जैनी मानते हैं-जीव के स्थिर रहने में परमानंद है वा जिस प्रकार स्वामी दयानंद जी सिखाते हैं-जीवके स्वेच्छानुसार सर्वस्थान में विचरने में सुख है? इस की परीक्षा में हम अपने आर्य्य भाइयों के वास्ते उपनिषद् का एक लेख पेश करते हैं जिसको स्वामी जी ने भी स्वीकार करके सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १८७ पर लिखा है-

समाधि निर्धूतमलस्य चेतसोनिवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयमन्तःकरणेन गृह्यते ॥

जिस पुरुष के समाधि योगसे अविद्यादि मल नष्ट हो गये हैं आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने लगाया है उस को जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनंदको जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है।

पाठक गण! इस उपर्युक्त श्लोक में यह दिखाया गया है कि समाधि से अविद्यादि मल नष्ट हो जाते हैं और जीव इस योग्य हो जाता है कि वह अपनी आत्मा में स्थिर हो सके इस प्रकार जब जीव अपनी आत्मामें स्थिर होकर परमात्मासे योग लगाता है। उस को परमानन्द प्राप्त होता है-

स्वामी दयानन्द जी ने जो सत्यार्थ प्रकाश में यह लिखा है कि मुक्तजीव ब्रह्म में वास करता है उस के भी केवल यह ही अर्थ हो सकते हैं कि जीव अपनी आत्मा में स्थिर होकर परमात्मा से युक्त हो जाता है इस ही कारण स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि मुक्त जीव ब्रह्मके सदृश हो जाता है। इस अर्थ को स्पष्ट करने के वास्ते स्वयम् स्वामी दयानन्द जी ऋग्वेदादि भाष्य भूमि का के पृष्ठ १८६ पर लिखते हैं-

जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि रूप हो जाता है। इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञानसे परिपूर्ण करनेको समाधि कहते हैं-

पूर्वोक्त उपनिषद् के श्लोक में यह दिखलाया था कि प्रथम समाधि लगाकर अविद्यादि मल अर्थात् इच्छा, द्वेष आदिक को दूर करे फिर अपनी आत्मा में स्थिर हो जावे और इस वाक्य में समाधि का स्वरूप दिखलाया है कि संसार से चित्त की वृत्तिको हटा कर यहां तक कि अपने शरीरको भी भूल कर परमात्मा के ज्ञान में इस प्रकार लीन हो जावै कि अपने आपे का भी ध्यान न रहै जिस प्रकार कि

लोहा अग्नि में पड़कर लाल अग्नि रूप ही हो जाता है और अंगारा ही मालूम होने लगता है इस ही प्रकार परमात्मा के ध्यानमें ऐसा ही लवलीन हो जावे कि अपने आपेका भी ध्यान न आवे इस ही अवस्था में परमानन्द प्राप्त होता है-

यह आनन्द ऐसा आनन्द नहीं है जो संसारियों को नानाप्रकार की वस्तुओं के भोगने वा नानाप्रकार की क्रियाओं के करने से प्राप्त होता है वरण संसार का सुख इस सुखके सामने दुःख ही है और झूठा सुख है। असली आनन्द और परमानन्द जीव की वृत्तियों के रुकने और आत्मामें स्थिर होनेमें ही होता है क्योंकि संसारका सुख तो यह है कि किसी बात की इच्छा उत्पन्न हुई और दुःख प्राप्त हुआ। फिर उस इच्छा के दूर होने से जो दुःख की निवृत्ति हुई उसको सुख मान लिया। संसार के जितने सुख हैं वह सब सापेक्षिक हैं। बिना दुःख के संसार में कोई सुख हो ही नहीं सकता है। यदि भूख न लगे तो भोजन खाने से सुख न हुआ करे यदि प्यास न लगे तो पानी पीने से सुख न हुआ करे या कामकी पीड़ा न हो तो स्त्री भोग में कुछ भी आनन्द न हो। इसही प्रकार चलना फिरना सैर सपाटा आदिक जिन २ संसारीक कामोंमें सुख कहा जाता है वह यही ही है कि प्रथम इच्छा उत्पन्न होती है और उस इच्छासे दुःख होता है फिर जब इच्छाके अनुसार काम होजाता है तो उस दुःख के दूर होने को यह जीव सुख मान लेता है परन्तु इच्छा द्वेष आदिक दूर होकर और इच्छा द्वेषके कारण जो जिसकी प्रवृत्ति संसार की नाना वस्तुओं और नाना रूप कार्यों पर होती है उस प्रवृत्ति के रुकनेसे और जीवात्माके आत्मा में स्थिर होनेसे किसीप्रकार भी दुःख नहीं हो सकता है और न वह संसार का झूठा सुख प्राप्त होता है जो वास्तव में दुःख का किंचित् मात्र दूर होना है वरण इस प्रकार रागद्वेष दूर होकर और जीवात्मा शुद्ध और निर्मल होकर उसके ज्ञानके प्रकाश होनेसे जो सुख होता है वह ही सच्चासुख और परमानन्द है।

परमानंद का उपर्युक्त स्वरूप होने पर भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी संसार सुख को ही सुख मानते हैं और मुक्ति जीव को भी आनंद की खोजमें सर्व ब्रह्मांड में भ्रमता हुआ फिराना चाहते हैं और एक स्थान में स्थिर अपने ज्ञान स्वरूप में मग्न मुक्त जीवों को बंधन में बंधा हुआ बताकर जैनियों की हंसी उड़ाते हैं-परंतु वास्तव में हंसी उसीकी उड़ती है जो अटकल पच्चू और उलटी बातें बनाता है-

हमको अत्यंत आश्चर्य है कि स्वामी जी ने यह कैसे कह दिया कि, मुक्त जीवों के एक स्थान में स्थिर रहने से उनको उस स्थान से प्रीति होजावैगी

और उस स्थान से दूसरे स्थान से अप्रीति करने लगें ? क्या स्वामी जी की समझमें मुक्ति प्राप्त होने पर भी राग द्वेष जीव में बाकी रह जाता है और प्रीति करने की उपाधि उस में बनी रहती है ? शायद यह ही समझ कर कि उस में ऐसी उपाधिका कोई अंश बाकी रह जाता है स्वामी जी ने यह कहा हो कि मुक्ति जीव अपनी इच्छानुसार आनन्द भोगता हुआ सर्व ब्रह्माण्ड में फिरता रहता है । परंतु ऐसा मानने से तो बड़ी हानि आवेगी क्योंकि जब एक स्थान से प्रीति और अन्य स्थान से अप्रीति स्वामी जी के कथनानुसार हो सकती है तो अन्य वस्तुओं से प्रीति वा अप्रीति क्यों नहीं हो सकती ? और जब कि स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति जीव सब ब्रह्माण्डमें घूमता फिरता रहता है तो नहीं मालूम किस वस्तु से प्रीति कर बैठे और किस विषय में आसक्त हो जावे या न मालूम किस वस्तु वा जीवसे अप्रीति अर्थात् द्वेष कर बैठे और उससे लड़ बैठे ?

इस प्रकार मुक्ति जीव के एक स्थान में अपने ज्ञान स्वरूप में स्थिर न रहने और इच्छानुसार ब्रह्माण्ड में विचरते फिरने से संसारी और मुक्तिजीव में कुछ भी अंतर नहीं रहता है और शायद इस ही अंतर को हटाने और मुक्ति के साधनसे अरुचि दिलाने ही के वास्ते स्वामी जी ने यह सब प्रपंच रचा है--

स्वामी जी ! यह मानने से कि मुक्त जीव इच्छानुसार घूमते फिरते रहते हैं बड़ा भारी बखेड़ा उठ खड़ा होगा क्योंकि आप सत्यार्थप्रकाश में यह लिख चुके हैं कि "यदि मुक्ति से जीव लौटता नहीं है तो मुक्ति में अवश्य भीड़ भड़क्का हो जावेगा„ जिससे सिद्ध होता है कि आप मुक्ति जीवों का ऐसा शरीर मानते हैं जो दूसरे मुक्त जीव के शरीर को रोक पैदा करे ऐसा शरीर धरते हुवे क्या यह सम्भव नहीं है कि एक मुक्ति जीव जिस समय जिस स्थान में जाना चाहै उसही स्थान में उस ही समय दूसरा मुक्त जीव जाने की वा प्रवेश करने की इच्छा रखता हो और स्वामी जी के कथनानुसार मुक्त जीवों का ऐसा शरीर है नहीं जो एक ही स्थान में कई जीव समा सकै वरण एक जीव दूसरे जीव के वास्ते भीड़ करता है तब तो उन दोनों मुक्ति जीवों में जो एक ही स्थान में प्रवेश करना चाहते होंगे खूब लड़ाई होती होगी वा एक मुक्त जीव को निराश होकर वहां से लौटना पड़ता होगा और इस में अवश्य उसको दुःख होता होगा और ऐसा भी हो सकता है कि जिधर एक मुक्त जीव आता हो उधर से दूसरा मुक्त जीव आता हो और दोनों आपस में टकरा जावैं यदि कोई कहने लगे कि एक उस में से अलग हट कर दूसरे को रास्ता दे

ला और जिस मनसे ध्यान करता है और जिन का ध्यान करता है इन तीनों बातों का भी भेद मिटाकर परमेश्वर के आनन्द स्वरूप ज्ञान में ऐसा मग्न हो जावे कि इस बात का भेद ही न रहै कि कौन ध्यान करता है और किस का ध्यान करता है परन्तु मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् स्वामी जी यह बताते हैं कि वह सर्व ब्रह्मांड की सैर करता हुआ फिरे ! क्या मुक्ति प्राप्त होनेके पश्चात् जीव को परमेश्वर के आनन्द स्वरूप ज्ञानमें मग्न रहने और अपने आपे को भुलाकर परमेश्वर ही में लवलीन रहनेकी जरूरत नहीं रहती है क्या मुक्ति साधन के समय तो आनन्द ईश्वर में तल्लीन होने से प्राप्त होता है और मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् इच्छानुसार सारे ब्रह्मांड में घूमते फिरने से प्राप्त होता है ?

अफसोस ! स्वामी जी ने बिना विचारे जो चाहा लिखमारा और आनन्द के स्वरूप को ही न जाना ।

आर्यमत लीला ।

(२०)

सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने से मालूम होता है कि स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने जीव के स्वरूप को उलटा समझ लिया और इस ही कारणसे जीव के मुक्ति से लौटने और मुक्ति में भी सुख के अर्थ विचरते फिरनेका सिद्धान्त स्थापित कर दिया । देखो स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं-

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ६०

इच्छाद्वेषप्रयत्न सुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति ,, ॥ न्याय० ॥ अ० १ । आ० १ । सू० १० ।

जिसमें (इच्छा) राग, (द्वेष) वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख, (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा । वैशेषिक में इतना विशेष है "प्राणाऽपाननिमेषोन्मेष जीवन मनोगतीन्द्रियान्तर विकाराः सुख दुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि,, ॥ वै० ॥ अ० ३ । आ० २ । सू० ४ ॥

(प्राण)भीतर से वायु को निकालना (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना (निमेष) आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख को ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना उनसे विषयों का ग्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्माके लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं ।

स्वामीजीने अनेक ग्रन्थ पढ़े और स्थान स्थान पर सत्यार्थ प्रकाशमें पूर्वाचार्यों केवाक्य उद्धृत भी किये परन्तु समझमें उनकी कुछ भी न आया । वह न्याय और वैशेषिक शास्त्रों में उपरोक्त सूत्रों को पढ़कर यह ही समझ गये कि सांस लेना, आंख को खोलना मूंदना, भूख

चाहे आना जाना, इन्द्रियों का विषय भोग करना, भूख, प्यास, शारीरिक बीमारी, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न यह सब बातें जीव के स्वाभाविक गुण हैं, अर्थात् यह सब बातें जीव के साथ सदा बनी रहती हैं और कभी जीव से अलग नहीं हो सकतीं हैं। तब ही तो स्वामी जी यह कहते हैं कि मुक्ति दशा में भी जीवात्मा अपनी इच्छा के अनुसार सर्व ब्रह्मांड में घूमता फिरता रहता है और सर्व स्थान के स्वाद लेता रहता है और तब ही तो स्वामी जी यह समझाते हैं कि जैनी लोग मुक्त जीवों के वास्ते एक स्थान नियत करके और उनको स्थिर अवस्था बना कर उनको जड़ वस्तु के समान बनाना चाहते हैं।

जिस प्रकार तोते को बहुत सी बोली बोलनी सिखा दी जाती हैं और वह पक्षी उन सिखाये हुये शब्दों को बोलने लगता है परन्तु उन वाक्योंका अर्थ बिल्कुल भी नहीं समझता, इस ही प्रकार स्वामी जी की दशा मालूम होती है कि अनेक ग्रन्थ देख डाले परंतु समझा कुछ भी नहीं। स्वामीजी को इतनी भी मोटी समझ न हुई कि उपर्युक्त जो लक्षण जीव के न्याय वा वैशेषिक दर्शनों में वर्णन किये हैं वह संसारी जीव के हैं देहधारी के हैं। क्योंकि मुक्ति में जीव शरीर रहित निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। देह धारण करना जीवका औपाधिक भाव है स्वाभाविक भाव नहीं है इस ही कारण मुक्ति में शरीर नहीं होता है, यदि देह धारण करना जीव का स्वाभाविक भाव होता तो मुक्ति में भी शरीर कदाचित् न छूट सकता। देखो स्वामी जी स्वयम् सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १२८

" न है शरीरस्यसतः प्रियप्रिययोर पहतिरस्त्यशरीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः" ॥ छान्दो० ॥

जो देहधारी है वह सुख दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति में सर्व व्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है तब उनको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता—

ऊपर के लेखसे स्पष्ट विदित है कि सांसारिक अवस्था औपाधिक अवस्था है स्वाभाविक अवस्था नहीं है क्योंकि मुक्ति में जीव शुद्ध अवस्था में रहता है और संसार में उसकी अवस्था अशुद्ध है-स्वभाव से विरुद्ध अवस्था को ही अशुद्ध अवस्था कहते हैं अशुद्धि, उपाधि और विकार यह सब शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं और इनके प्रतिपक्षी शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल एक अर्थ के वाचक हैं जब सर्व प्रकार की उपाधि जीव की दूर जाती हैं और जीव साफ होकर अपने असली स्वभाव में रह जाता है तब ही जीव की मुक्ति दशा कहलाती है। मुक्ति कहते हैं छूटनेको छूटना किससे? विकारसे—

अब देखना यह है कि उपाधि या विकार जो संसारी जीवों को लगे रहते हैं वह क्या है और जीव का असली स्वाभाव क्या है?—

उपर्युक्त लेख से यह भी विदित हो है कि शरीर धारी होना जीवका स्वभाव नहीं है अतः शरीर भी जीवके वास्ते एक उपाधि है।

इस प्रकार समझने के पश्चात् आ हमारे प्यारे आर्य्य भाई न्याय और वैशेषिक शास्त्रों के कथन किये हुवे जीवके लक्षणों को जांच करेंगे तो मालूम होजावेगा कि वह सब लक्षण संसारी देहधारी जीवके हैं अर्थात् जीव के उपाधिक भाव के लक्षण हैं। जीव के असली स्वाभाव के वह लक्षण कदाचित् नहीं हो सकते हैं क्योंकि वह सब लक्षण देहधारी जीव में ही हो सकते हैं, देह रहित में कदापि नहीं हो सकते क्योंकि प्राण लेना, आंखों को खोलना मूंदना, आंख, नाक, और जीभ आदिक इन्द्रियोंका होना और इन्द्रियों के द्वारा विषय भोग करना आदिक सर्व क्रिया देहधारी जीव में ही हो सकती हैं। देहरहित मुक्त जीव में इनमें से कोई भी बात नहीं हो सकती है। और संसारमें जो सुख दुःख कहलाता है वह भी देहधारी ही में होता है। मुक्त जीव तो संसारिक सुख दुःख से पृथक् होकर परमानन्द ही में रहता है। संसारिक सुख दुःखका कारण सिवाय रागद्वेषके और कुछ नहीं हो सकता है। इस वास्ते रागद्वेष भी संसारी देहधारी उपाधिसहित जीवोंमें ही होता है। मुक्त जीव में रागद्वेष भी नहीं हो सकता है। देखिये स्वामी दयानन्द जी मुक्ति सुखको इस प्रकार वर्णन करते हैं-

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १९२

"सब प्रकार की बाधा अर्थात् इच्छाविघात और परतन्त्रता का नाम दुःख है फिर उस दुःख के अत्यन्त अभाव और परमात्मा के नित्य योग करने से जो सब दिनके लिये परमानन्द प्राप्त होता है उसी सुखका नाम मोक्ष है—"

उपर्युक्त लेख से साफ़ विदित होता है कि इच्छा और दुःख ही जीव को बाधा पहुंचाती हैं और इन ही के दूर होनेसे जीव स्वच्छ और निर्मल होकर अपना असली स्वभाव प्राप्त करता है।

प्रयत्न भी संसारी जीव ही को करना पड़ता है क्योंकि प्रयत्न उसही बात के वास्ते किया जाता है जो पहले से प्राप्त नहीं है और जिसकी प्राप्ति की इच्छा है अर्थात् जिसकी अप्राप्ति से जीव दुःख मान रहा है। मुक्ति में न इच्छा है और न दुःख है इस कारण मुक्ति में प्रयत्न की कोई आवश्यकता ही नहीं है। इच्छानुसार गमनागमन भी एक प्रकार का प्रयत्न है इस कारण यह भी मुक्तिमें नहीं हो सकता है

वरण मुक्ति में तो शांति और स्थिरता ही परमानन्द का कारण है।

स्वामीदयानन्द सरस्वतीने भी स्थिरताको ही मुक्ति और परमानन्द का उपाय पूर्वाचार्यों के अनुसार लिखा है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ १८७
"जो ...... अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदय रूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं.,

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १९५
"जिससे उपासक का मन एकाग्रता प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो,,

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १२६
"यच्छेद्वाङ्मनसीप्राज्ञ-
स्तद्यच्छेज् ज्ञानमात्मनि ।
ज्ञानमात्मनिमहति नियच्छेत्,
तद्यच्छेच्छान्तआत्मनि ॥

सन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोके उनको ज्ञान और आत्मामें लगावे और ज्ञानस्वात्माको परमात्मा में लगावे और उस विज्ञान को शान्त स्वरूप आत्मामें स्थिर करे--"

उपर्युक्त स्वामीजी के ही लेखों से सिद्ध होगया कि शान्ति और स्थिरता ही जीवके वास्ते मुक्तिका साधन और स्थिरता ही परमानन्द का कारण है! इस हेतु मुक्तिजीव इधर उधर डोलते नहीं फिरते हैं वरण राग द्वेष रहित स्थिर चित्त ज्ञान स्वरूप परमानन्दमें मग्न रहते हैं।

स्वामी दयानन्दजीने बड़ा धोखा खाया जो न्याय और वैशेषिक शास्त्रों के पूर्वोक्त संसारी देहधारी जीवके लक्षणको अर्थात् औपाधिक भावको जीवका असली स्वभाव मान लिया और ऐसा मानकर शुद्ध स्वरूप मुक्त जीवों में भी यह सब उपाधियां लगा दीं और मुक्त जीवको भी संसारी जीवके तुल्य बनाकर कल्याणके मार्गको नष्ट भ्रष्ट करदिया और धर्मकी जड़ काटदी।

प्यारे आर्य भाइयो! यह तो आप को मालूम होगया कि जिस प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने जीवका लक्षण समझा है और न्याय और वैशेषिक दर्शनोंके हवाले से लिखा है यह विकार सहित बंधनमें फंसेहुवे जीव का लक्षण है परन्तु अब आप यह जानना चाहते होंगे कि जीवका असली लक्षण क्या है? इस कारण हम आपको बताते हैं कि जीवका लक्षण ज्ञान है।

लक्षण वह होता है जो तीन प्रकार के दोषोंसे रहित हो। १ अव्याप्त २ अतिव्याप्त ३ असम्भव। जो लक्षण किसी वस्तु का किया जावे यदि वह लक्षण उस वस्तु में कभी पाया जावे और कभी न पाया जावे या उस के एक देश में पाया जावे तो उस लक्षण में अव्याप्ति दोष कहलाता है जैसा कि जो लक्षण स्वामी जी ने न्याय और वैशेषक शास्त्रके कथनके अनुसार वर्णन किये हैं वह जीवके लक्षण नहीं हो सक्ते क्योंकि वह लक्षण संसारी जीव में पाये जाते हैं और मुक्ति जीव में नहीं, इस कारण इन लक्षणोंमें अ-

व्याप्त दोष है। वरण यदि अधिक विचार किया जावे तो संसारी जीव के भी यह लक्षण नहीं हो सक्ते हैं क्योंकि संसारी जीवों में स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाशमें वृक्ष आदिक स्थावर जीव भी माने हैं, जो अपनी इच्छा के अनुसार चल फिर नहीं सक्ते हैं और उन के आंखें भी नहीं होती हैं जिनको वह खोल मूंद सकें। और स्वामी दयानन्द जी ने वैशेषिक शास्त्रके आधार पर अपनी इच्छा के अनुसार चलना फिरना और आखोंका मूंदना खोलना भी जीवका लक्षण वर्णन किया है। लक्षण वहही हो सकता है जो कभी किसी अवस्थामें भी लक्ष्य वस्तुसे दूर न हो सके।

जो लक्षण किसी वस्तुका कहा जावे यदि वह लक्षण उस वस्तुसे पृथक् अन्य किसी वस्तु में भी पाया जावे तो उस लक्षणमें अतिव्याप्त दोष होता है जैसे आंखोंका खोलना मूंदना आदिक क्रिया धातुके खिलौने में भी हो जाती हैं जिनमें कोई कल लगा दी जाती है।

जिस वस्तुका लक्षण वर्णन कियाजावे यदि वह लक्षण उस वस्तुमें कभी भी न पाया जावे तो उस लक्षणमें असंभव दोष होता है॥

जीवका लक्षण वास्तवमें ज्ञानही हो सकता है क्योंकि इस लक्षणमें इन तीनों दोषोंमेंसे कोई भी दोष नहीं है। कोई अवस्था जीवकी ऐसी नहीं हो सकती है जब इसमें थोड़ा वा बहुत ज्ञान न हो क्योंकि जिसमें किंचिन्मात्र भी ज्ञान नहीं है वह ही तो वस्तु जड़ व अचेतन कहलाती है। इस हेतु इस लक्षणमें अव्याप्त दोष नहीं है। इस में अतिव्याप्ति दोष भी नहीं है क्योंकि जीवके सिवाय ज्ञान किसी अन्य वस्तु में होही नहीं सकता है। जीवमें ज्ञान प्रत्यक्ष विद्यमान है इस कारण इसमें असम्भव दोष भी नहीं है॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी यह तो मानतेही हैं कि मुक्ति अवस्थामें जीव देह रहित होता है और ज्ञान उसका देहधारी जीवोंसे अधिक होता है। इस हेतु जीवके ज्ञानका आधार आंख नाक कान आदिक इन्द्रियों पर नहीं हो सकता है वरण संसारी जीव रागद्वेष आदिक विकारोंके कारण अशुद्ध हो रहा है जिससे इसका ज्ञान गुण मैला रहता है और पूर्णकाम नहीं कर सकता है। इस कारण संसारी देहधारी जीवको इन्द्रियोंकी इस ही प्रकार आवश्यकता होती है जिस प्रकार आंखके विकार वालोंको ऐनककी आवश्यकता होती है वा जिस प्रकार वृद्ध वा कमज़ोर मनुष्यको लाठी पकड़ कर चलनेकी ज़रूरत होती है। ज्यों ज्यों इच्छा द्वेष आदिक संसारी जीव के मैल ध्यान, तप और समाधि आदिकसे दूर होते जाते हैं त्यों त्यों जीवकी ज्ञानशक्ति प्रकट होती है और अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता जाता है। इस विषयमें स्वामी दयानन्द जी इस प्रकार लिखते हैं।—

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ठ १८५

"इस प्रकार प्राणायाम पूर्वक उपासना करनेसे आत्माके ज्ञानका आवरण अर्थात् ढांकने वाला जो अज्ञान है वह नित्यप्रति नष्ट होता जाता है और ज्ञानका प्रकाश धीरे २ बढ़ता जाता है-"

स्वामी दयानन्दजीने यह सब कुछ लिखा परन्तु स्वामीजीको मुक्तिसे कुछ ऐसी चिढ़ थी कि उनको मुक्तजीवकी प्रशंसा तनक भी नहीं भाती थी। जब ही तो उन्होंने मुक्तिको क़ैदखानेके समान लिखा और नाना प्रकार के स्वाद लेनेके वास्ते मुक्तिसे लौटकर संसारमें आनेकी आवश्यकता बताई। तब वह यह कब मान सकते थे कि मुक्ति में जीवको पूर्णज्ञान प्रकट हो जाता है और वह सब कुछ जानने लगता है अर्थात् सर्वज्ञ होजाता है। इस कारण स्वामीजीने यह नियम बांध दिया कि जीव अल्पज्ञ है वह सर्वज्ञ होही नहीं सकता है अर्थात् मुक्तिमें भी अल्पज्ञ ही रहता है॥

मुक्तजीवोंकी बुराई करने में स्वामी जी ऐसे पक्षपाती बने हैं कि वह अपने लिखेको भूलजाते हैं देखिये वह सत्यार्थप्रकाशमें इस प्रकार लिखते हैं।

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०

"प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञान दीप्तिराविवेक ख्यातेः॥

"जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर कालमें अशुद्धि का नाश और ज्ञानका प्रकाश होजाता है-जबतक मुक्ति न हो तब तक उस के आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है-"

इस प्रकार लिखने पर भी स्वामी जीको यह न सूझी कि मुक्ति अवस्था तक बढ़ते बढ़ते कहांतक ज्ञान बढ़ जाता है। और कहां तक बढ़ना रुकजाता है। स्वामीजीको विचारना था कि ज्ञानका इस प्रकार बढ़ना जीवसे पृथक् किसी दूसरी वस्तुके सहारे पर नहीं है। जिस प्रकार कि पानीका गर्म होना अग्निके सहारे पर होता है कि जितना अग्नि कसतो बढ़ती होगा पानी गर्म होजावेगा बरण यहां तो जीवके निज स्वभावका प्रगट होना है। जीव के ज्ञानपर जो आवरण आरहा है उस का दूर होना है-अर्थात इच्छा द्वेषादिक मैल जितना दूर होता जाता है उतना उतना ही जीवके ज्ञानका आवरण दूर होता जाता है। और जीव का ज्ञान प्रगट होता जाता है। जब जीव पूर्ण शुद्ध हो जाता है अर्थात् पूर्ण आवरण नष्ट हो जाता तब जीव का पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हो जाता है तात्पर्य यह है कि मुक्ति दशामें जीवके ज्ञानमें कोई रुकावट बाकी नहीं रहती है-अर्थात वह सर्वज्ञ होजाता है।

सर्वज्ञ के शब्द पर शायद हमारे आर्य भाई खटकेंगे क्योंकि वह कहेंगे कि सर्वज्ञ तो ईश्वरका गुण है। इस कारण यदि जीव मुक्ति पाकर सर्वज्ञ होजावे तो मानो वह तो ईश्वरके तुल्य होगया

परन्तु प्यारे आर्य भाइयो ! आप घबराइये नहीं स्वयम् स्वामी दयानन्दने यह बात मानली है कि मुक्त जीव ईश्वर के तुल्य होता है-देखो वह इस प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १९८

"सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं।

स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाशमें कई स्थान पर यह भी लिखा है कि मुक्त जीव ब्रह्ममें रहता है परन्तु ब्रह्म में रहने का अर्थ सिवाय इसके और कुछ भी नहीं हो सकता है कि वह ब्रह्मके सदृश हो जाता है क्योंकि ब्रह्म को सर्व व्यापक मानने से मुक्त अमुक्त सब ही जीवोंका ब्रह्ममें निवास सिद्ध होता है फिर मुक्त जीवों में कोई विशेषता बाकी नहीं रहती। प्यारे आर्य भाइयो ! स्वामीजीने मुक्तजीव को अल्पज्ञ तो वर्णन कर दिया परन्तु उस अल्पज्ञता की कोई सीमा भी बांधी ? यदि आप इस पर विचार करेंगे तो आप को मालूम हो जावेगा कि न तो स्वामीजी कोई ऐसा मुक्त जीवके ज्ञानकी बांध सके और न बंध सकती है। देखिये स्वयं स्वामीजी इस प्रकार लिखते हैं:—

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २५०

"जैसे सांसारिक सुख शरीरके आधारसे भोगता है वैसे परमेश्वरके आधार मुक्तिके आनन्दको जीवात्मा भोगता है। वह मुक्तजीव अनन्त व्यापक ब्रह्ममें स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टि विद्याको क्रमसे देखता हुआ सब लोक लोकान्तरोंमें अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और नहीं दीखते उन सब में घूमता है। वह सब पदार्थों को जो कि उसके ज्ञान के आगे हैं देखता है जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है-मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होने से पूर्णज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है।"

प्यारे आर्य्य भाइयो ! स्वामी दयानन्द जी का उपर्युक्त लेख पढ़नेसे स्वामी जी का यह मत तो स्पष्ट विदित हो गया कि सर्व ब्रह्मांडमें कोई स्थूल वा सूक्ष्म वस्तु ऐसी नहीं है जिसका ज्ञान मुक्त जीव को न हो सकता हो वरण सर्वका ज्ञान उसको होता है और वह पूर्ण ज्ञानी है। और ज्ञान ही उस का आनन्द है। स्वामीजी कोई सीमा जीवके ज्ञानकी नहीं बांध सके कि अमुक वस्तुका वा उसके स्वभावका ज्ञान होता है, और अमुक का नहीं, वरण वह स्पष्ट लिखते हैं कि उसको सर्व ज्ञान होता है और पूर्णज्ञान होता है। और इसके विरुद्ध लिखा भी कैसे जा सकता है ? क्योंकि जब मुक्त जीव के आनन्द का आधार उसका ज्ञान ही है और जितना २ जीव निर्मल होता जाता है और उसका ज्ञान बढ़ता जाता है उतना आनन्द

बढ़ता जाता है। तब यदि मुक्तजीव अल्पज्ञ रहेगा उसका ज्ञान पूर्ण नहीं होगा अर्थात् वह सर्वज्ञ नहीं होगा तो उसको परमानन्द भी प्राप्त नहीं होगा। जितनी उसके ज्ञानमें कमी होगी उतना ही उसका आनंद कम होगा। परंतु स्वामी दयानन्द जी पूर्वाचार्योंके आधार पर बारबार यह लिख चुके हैं कि मुक्तजीव ईश्वर के सदृश होकर परम आनंद भोगता है। उसके आनंद में कोई बाधा नहीं रहती है। और न उसको कोई रुकावट रहती है जिससे उसको दुःख प्राप्त हो। फिर मुक्तजीव को सर्वज्ञ न मानना वास्तवमें उसको दुःखी वर्णन करना है।

प्यारे पाठको! सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५० से जो लेख हमने स्वामीजी का लिखा है उसके पढ़नेसे आपको स्वामी जी की चालाकी भी मालूम हो गई होगी। यद्यपि पूर्वाचार्योंके कथनानुसार स्वामी जी को लाचार यह लिखना पड़ा कि ज्ञान ही मुक्तजीवोंका आनन्द है और उन को पूर्ण ज्ञान होकर पूर्ण आनन्द अर्थात् परम आनंद प्राप्त होता है, परन्तु स्वामीजी तो संसार सुखको सुख मानते हैं- प्रेम और प्रीतिके ही मोह जालमें फंसे हुवे हैं और नाना प्रकार के ही रस भोगने को आनन्द मानते हैं इस कारण इस लिखने से न रुके कि वह आपसमें मुक्त जीवोंसे मिलते हुये फिरते रहते हैं, अर्थात् मोहजाल में वह भी फंसे रहते हैं और मुक्त जीवोंके पूर्ण ज्ञान का विरोध करनेके वास्ते चुपके से यह भी लिख दिया कि यद्यपि उनको पूर्ण ज्ञान सर्व पदार्थों का होता है, परन्तु एक साथ नहीं होता है, वरण क्रम से ही होता है, और सन्निहित पदार्थोंका ही ज्ञान होता है अर्थात् जो पदार्थ उनके सन्मुख होता है उनही का ज्ञान होता है। मानो स्वामी जी ने मुक्त जीवके ज्ञानकी सीमा बांधदी और सर्वज्ञ से कमती ज्ञान सिद्ध करदिया।

सन्निहित अर्थात् सन्निकर्ष ज्ञान चार्वाक नास्तिकों ने माना है। जो वस्तु इन्द्रियोंसे भिड़जावे उस ही का ज्ञान होना दूरवर्ती पदार्थका ज्ञान न होना सन्निकर्ष ज्ञान कहलाता है। बेचारे स्वामी दयानन्द को मुक्त जीव की सर्वज्ञता नष्ट करने के वास्ते नास्तिक का भी सिद्धान्त ग्रहण करना पड़ा परन्तु कार्य कुछ न बना, क्योंकि संसारी जीव जो विकार सहित होनेके कारण इन्द्रियोंके द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करता है वह भी सूर्य्य और ध्रुवतारा आदिक बहुत दूरवर्ती पदार्थोंको देखसक्ता है। इस कारण विकार रहित ज्ञान स्वरूप मुक्तजीवमें सन्निकर्ष ज्ञान को स्थापन करना तो अत्यन्त ही मूर्खता है। स्वामी जी स्वयम् सत्यार्थ प्रकाश में कहते हैं कि संसारी जीवों पर अज्ञान का आवरण होता है। यह आवरण दूर होकर ही जीवका ज्ञान बढ़ता है और जब यह आवरण

पूर्ण नष्ट होजाता है तब जीवको मुक्ति होजाती है। परन्तु मुक्तजीवमें स्वामी जी सन्निकर्ष ज्ञान स्थापित करते हैं अर्थात् संसारी जीवोंसे भी कमती ज्ञान सिद्ध करना चाहते हैं।

शायद कोई हमारा आर्य्यभाई यह कहने लगे कि सन्निहित पदार्थोंका अभिप्राय यह है कि जो पदार्थ मुक्तजीव के सन्मुख होते हैं उनहीं को देख सक्ता है। परन्तु ऐसा कहना भी बिना बिचारे है क्योंकि शरीर धारी जीवों में तो उनकी इन्द्री एक स्थान पर स्थित होती है जैसा कि आंख मुखके ऊपर होता है। संसारी जीव आंखके द्वारा देखता है। इस कारण आंख के सन्मुख जो पदार्थ है उसही को देख सक्ता है आंखके पीछे की वस्तुको नहीं देख सक्ता है। परन्तु मुक्त जीवके शरीर नहीं होता है उसका ज्ञान किसी इन्द्री के आश्रित नहीं होता है, वरण वह स्वयम् ही ज्ञान स्वरूप है अर्थात् सब ओरसे देखता है। उसके वास्ते सबही पदार्थ सन्मुख हैं। इस हेतु किसी प्रकार भी सन्निहित पदार्थ के ज्ञानका नियम कायम नहीं रह सक्ता है।

यदि स्वामी दयानन्दजीके कथनानुसार मुक्त जीवको पदार्थोंका ज्ञानक्रम रूप होता है अर्थात् सर्व पदार्थोंका एक समयमें ज्ञान नहीं होता है वरण जिस प्रकार संसारी जीव को संसार दशा को देखने के वास्ते एक नगर से दूसरे नगरमें और एक देशसे दूसरे देश में डोलते हुये फिरना पड़ता है। इस ही प्रकार मुक्त जीव को डोलना पड़ता है तो मुक्त जीवको परमानंदकी प्राप्ति कदाचित् भी नहीं कही जा सक्ती है। क्योंकि जितने स्थान वा जितनी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना बाकी है उतनी ही मुक्तजीव के आनंद में कमी है। यह बात स्वामीजी कह ही चुके हैं कि पूर्ण ज्ञानका होना ही मुक्त जीव का आनंद है। इसके अतिरिक्त जब मुक्त जीवको भी यह अभिलाषा रही कि मुझको अमुक २ स्थानों वा अमुक २ पदार्थों को जानना है तो उस को परम आनंद हो ही नहीं सक्ता है वरण दुःख है। जहां अभिलाषा है वहां दुःख अवश्य है। इस कारण यह ही मानना पड़ेगा कि मुक्तजीवमें पूर्ण ज्ञान होता है अर्थात् वह सर्वज्ञ ही होता है।

आर्य्यमत लीला।

[कर्म फल और ईश्वर]

(२१)

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि यदि परमेश्वर मुक्ति जीवों को, जो राग द्वेष रहित इंद्रियों के विषय भोगों से विहीन स्वच्छ निर्मल रूप अपने आत्म स्वरूप में ठहरे हुये हैं और अपने ज्ञान स्वरूप में मग्न परमानन्द भोग रहे हैं, मुक्ति स्थान से ढकेलकर संसार रूपी दुःखसागरमें न गिरावे और सदा के लिये मुक्ति ही में रहने दे तो

परमेश्वर अन्यायी ठहरता है। पाठक गण आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि अन्यायी तो मुक्ति से हटाकर फिर संसार में फसाने से होता है न कि इस के विपरीत। परन्तु स्वामी जी तो मुक्ति को जेलख़ाना और संसार को मजे उड़ाने का स्थान स्थापित करना चाहते हैं इस कारण वह तो ईश्वरको अन्यायी ही बतावेंगे यदि वह मुक्त जीवों को सदा के वास्ते मुक्ति में रहने दे।

स्वामी जी का कथन है कि ईश्वर ही जीवों के बुरे भले कर्मों का फल देता है और मुक्ति प्राप्त करना भी कर्मों का फल है। कर्म अनित्य हैं इस कारण उनका फल नित्य नहीं हो सकता है इस हेतु यदि ईश्वर अनित्य कर्मों का फल नित्य मुक्ति देवे तो अन्यायी हो जावेगा। परन्तु यह बात हम ने पिछले अंक में भलीभांति सिद्ध करदी है कि मुक्ति कर्मों का फल नहीं है बरण मुक्ति नाम है कर्मों के क्षय हो जाने का-सर्वथा नाश होजाने का और जीवात्मा के स्वच्छ और निर्मल हो जाने का सर्व औपाधिक भाव दूर हो जाने का। आज इस लेख में हम यह समझाना चाहते हैं कि मुक्तजीव को सदा के वास्ते मुक्ति में रहने देने में ईश्वर अन्यायी नहीं होता है बरण बिना कारण मुक्ति से ढकेल कर संसार के पापों में फंसाने में अन्यायी होता है। और इस से भी अधिक हम यह समझना चाहते हैं कि जीव को कर्मों का फल देने ही में ईश्वर अन्यायी होता है बरण इस से भी अधिक अर्थात् यह कि यदि ईश्वर कर्मों का फल देवे तो वह पापी हो जाता है और ईश्वर ही नहीं रहता है।

हमारे आर्य भाई जिन्हों ने अभी तक कर्म और कर्मफलका स्वरूप नहीं समझा है. इस बात से आश्चर्य करेंगे, परन्तु उनको हम प्रेम के साथ समझाते हैं और यक़ीन दिलाते हैं कि वह बिचार पूर्वक आद्योपान्त इस लेख को पढ़ लेवें तब उनका यह सब आश्चर्य दूर हो जावेगा। इस बात के आश्चर्य करने में उनका कुछ दोष नहीं है क्योंकि स्वयम् स्वामी दयानन्दजी, जिन की शिक्षा पर वह निर्भर हैं. कर्म और कर्म फल के स्वरूप को नहीं समझते थे तब बिचारे आर्य भाई तो क्या समझ सकते हैं? परन्तु उन को उचित है कि वह इस प्रकार के सिद्धांतों की खोज करते रहैं और सीखने का अभ्यास बनाये रक्खैं-तब वह सब कुछ सीख सकते हैं, क्योंकि पूर्वाचार्यों और पूर्व विद्वानों की कृपा से हिन्दुस्तान में अभी तक आत्मिक तत्वके विषय में सर्व प्रकारके सिद्धांत हेतु और बिचार सहित मिल सकतेहैं।

प्यारे आर्य भाइयो! आप संसार में देखते हैं कि संसारी मनुष्य राग द्वेष में फंसे हुवे अनेक पाप किया क-

रते हैं और आप यह भी जानते हैं कि रागद्वेष जीव का निज स्वभाव नहीं हैं बरण यह उस का औपाधिक भाव है जो पूर्व कर्मों के वश उप को प्राप्त हुआ है। देखिये स्वयम् स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १२९-१३० पर लिखते हैं:-

"इन्द्रियाणां निरोधेन,
राग द्वेष क्षयेणच ।
अहिंसया च भूताना
ममृतत्वाय कल्पते ॥
यदा भावेन भवति,
सर्वे भावेषु निःस्पृहः ।
सदा सुखमवाप्नोति,
प्रेत्य चेहच शाश्वतम्,,

इन श्लोकों का अर्थ स्वामी जी ने पृष्ठ १३१ पर इस प्रकार लिखा है-

(१) "इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग द्वेषको छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्तकर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे ॥

(२) जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में निःस्पृह कांक्षा रहित और सब बाहर भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है तभी इस देह में और मरण पाके निरंतर सुख को प्राप्त होता है"-

इस से स्पष्ट विदित हो गया कि राग द्वेष आदिक भावों को स्वामी जी भी औपाधिक भाव बताते हैं इस ही कारण तो मुक्ति के साधन के वास्ते संन्यासी को इन के छोड़ने का उपदेश देते हैं।

इस ही प्रकार स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १३० पर लिखते हैं-

"इन्द्रियाणां विचरताम्,
विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठे-
द्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥,,

अर्थ-जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खैंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करें।

इन्द्रियाणां प्रसंगेन,
दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्यतु तान्येव,
ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

अर्थ-जीवात्मा इन्द्रियों के वश हो के निश्चित बड़े बड़े दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश करता है तभी सिद्धिको प्राप्त होता है

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च,
नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्र दुष्ट भावस्य,
सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

अर्थ-जो दुष्टाचारी अजितेन्द्रिय पुरुष है उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को नहीं प्राप्त होते।

प्यारे आर्य्य भाइयो ! अब विचारणीय यह है कि राग, द्वेष और इन्द्रियों के विषय भोग की वांच्छा आदिक बीमारी जिनके कारण यह जीव

सर्व प्रकार के पाप करता है और जिन को दूर करने से इस को मुक्ति सुख मिलता है इस जीवात्मा में किस का रच लग जाती हैं ? इस का उत्तर सब भाई शीघ्रता के साथ यह ही देवेंगे कि जीव के पूर्व उपार्जित कर्म ही इनके कारण हैं परन्तु उन पूर्वोपार्जित कर्मों का फल देता कौन है ? इसका उत्तर देना जरा कठिन बात है क्योंकि यदि ईश्वर फल देता है तो ईश्वर अवश्य अन्यायी, पापी और पापकी प्रवृत्ति कराने वाला तथा पापकी सहायता करने वाला ठहरेगा ।

विचारवान् पुरुषो ! यदि किसी अपराधी को जिसने एक मनुष्य का सिर काट कर उसको प्राणांत करदिया है, राजा यह दंड देवे कि इसके सारे शरीरसे ऐसे हथियार बांध दो जिन से वह अपराधी मनुष्यों को मार ने के सिवाय और कोई काम ही न करे, वा किसी चोर को यह दंड देवे कि कुंवल (नकब) लगाने के हथियार और ताला तोड़नेके औज़ार इसके हाथोंसे बांध दिये जावें जिससे वह चोरी ही का काम किया करे, वा किसी अपराधी को जिसने परस्त्री सेवन किया हो यह दंड देवे कि उस को ऐसी औषधी खिला दो जिस से वह सदा कामातुर रहा करे और इस अपराधी को ऐसे नगर में छोड़ दो जहां व्यभिचारणी स्त्रियें बहुत मिल सकी हैं, और साथ ही इसके वह ढंढोरा भी पिटवाता है कि जो कोई मनुष्य हिंसा वा चोरी, जारी करैगा उसको बहुत बहुत दंड दिया जावेगा-तो क्या वह राजा स्वयम् अपराधी नहीं है ? क्या वह स्वयम् अपराध की प्रेरणा और सहायता नहीं करता है ? राजा और न्याय कर्ता वा दंड दाता का तो यह काम है और दंड इस ही हेतु दिया जाता है कि ऐसा दंड दिया जावे जिस से अपराधी फिर वह अपराध न करे । यह कदाचित् भी दंड नहीं हो सका है कि अपराधी को ऐसा बना दिया जावे कि वह पहले से भी अधिक अपराध करने लगे ।

प्यारे भाइयो ! ईश्वर जीवों के वास्ते क्या कर्तव्य चाहता है ? क्या वह यह चाहता है कि जीव सदैव राग द्वेष और इन्द्रियों के विषय में फंसे रहें ? वा यह चाहता है कि इनसे विरक्त होकर परमानंद रूप मुक्तिको प्राप्त हों ? यदि वह राग, द्वेष और इन्द्रियों के विषय में फंसने को पाप समझता है तो राग, द्वेष करने वालों और इन्द्रियों के विषयमें फंसने वाले जीवों को उनके इस पाप का यह दंड क्यों देता है कि वह आगामी को भी राग द्वेष के वश में रहें और इन्द्रियों के विषय में फंसे । जिसने हिंसा का पाप किया उस को तो यह दंड दिया कि भील, डाकू आदिक म्लेच्छोंमें उस का जन्म हो जिससे वह सदा ही मनुष्यों को मार कर उनका धन हरण

किया करै, वा सिंह आदिक क्रूर जीव बना दिया जिससे उस का उदर पोषण भी जीव हिंसासे ही हुआ करै और हिंसा के सिवाय और कुछ काम ही न हो। जो कोई स्त्री व्यभिचारिणी हो उस को यह दंड दिया कि वह रंडी के घर पैदा की जावे जहां सदा व्यभिचार ही होता रहै। इस ही प्रकार अन्य अपराधों के भी दंड दिये। अथवा यदि हिंसा के अपराध का दंड हिंसक बनाना और व्यभिचार के अपराध का दंड व्यभिचारी बनाना न भी हो तौ भी हिंसक, व्यभिचारी डाकू आदिक जितने पापी जीव दृष्ट पड़ते हैं वह सब किसी न किसी अपराधके ही दंड में ऐसे बनाये गये हैं जो आगामीको अधिक पाप करैं। देखिये स्वामी दयानन्द जी भी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २५२-पर लिखते हैं:-

"मन से किये हुए कर्मों से चांडाल आदि का शरीर मिलता है-"

"जब रजो गुणका उदय सत्व और तमो गुण का अन्तर्भाव होता है तब आरंभ में रुचिता धैर्य्य त्याग असत् कर्मों का ग्रहण निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है तभी समझना कि रजो गुण प्रधानता से मुझ में वर्त्त रहा है"

"जब तमो गुणका उदय और दोनों का अन्तर्भाव होता है तब अत्यंत लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य्य का नाश, क्रूरता का होना, (नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वरमें श्रद्धा का न रहना) भिन्न २ अन्तःकरण की वृत्ति और एकाग्रता का अभाव और किन्हीं व्यसनों में फंसना होवे तब तमो गुणका लक्षण विद्वान् को जानने योग्य है-

इस ही प्रकार सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ २५४ पर स्वामी जी लिखते हैं-

जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ, निंदित कर्म करने हारे सिंह, व्याघ्र, वराह अर्थात् सूकर के जन्म को प्राप्त होते हैं। जो उत्तम तमो गुणी हैं वे चारण, सुन्दर पक्षी, दांभिक पुरुष अर्थात् अपने सुख के लिये अपनी प्रशंसा करने हारे राक्षस जो हिंसक, पिशाच, अनाचारी अर्थात मद्यादि के आहार कर्ता और मलिन रहते हैं यह उत्तम तमोगुण के कर्मका फल है जो मद्य पीने में आसक्त हो ऐसे जन्म नीच रजो गुण का फल है-

प्यारे भाइयो! अब आपने जान लिया कि पाप कर्म का फल यह मिलता है कि आगामी को भी पाप में ही आसक्त रहे। परन्तु क्या ईश्वर ऐसा फल दे सकता है? कदाचित् नहीं वरण ऐसी दशा में ईश्वर को कर्मों के फलका देने वाला बताना परमेश्वर को कलंकित करना और उसको अपराधी ठहराना है क्योंकि जो कोई अपराध की सहायता वा प्रेरणा करता है वह भी अवश्य अपराधी ही होता है। क्या कोई पिता ऐसा हो सकता है जो अपने बालक को जो पाठशाला में अ-

जाती जाता है और पढ़ने में ध्यान कम लगाता है वरण अधिकतर खेल कूद में रहता है पाठशाला से उठा-लेवे, सर्व पुस्तकें उससे छीन लेवे और गेंद बल्ला ताश, चौपड़ आदिक खेल की वस्तु उसको ले देवे? वा किसीका बालक व्यभिचारी मालूम पड़े तो उस को ले जाकर रंडियों के चकले में छोड़ देवे? वा बालक और कोई अपराध करे तो उस को उसका पिता उस ही अपराधका अधिक अभ्यास करावे और अपराध करने का अधिक सुभीता और अधिक प्रेरणा देवे? और साथ साथ यह भी कहता रहै कि जो कोई विद्या पढ़ेगा उसको मैं सुख दूंगा और जो अपराध करेगा उसको दंड दूंगा। क्या वह पिता महामूर्ख और अपनी संतान का पूरा शत्रु नहीं है? अवश्य है-इस कारण प्यारे भाइयो! जीव के कर्म का फल देने वाला कदाचित् भी परमेश्वर नहीं हो सकता है-परमेश्वर क्या वरण कोई भी चेतन अर्थात् कुछ भी ज्ञान रखने वाला ऐसा उलटा कृत्य नहीं कर सकता है।

इसके अतिरिक्त यदि कोई चेतन शक्ति जीवोंके कर्म का फल दिया करती तो अवश्य जीव को यह सुझा दिया करती—अच्छी तरह बता दिया करती कि अमुक कर्म का तुम को यह फल दिया जाता है जिससे वह सावधान हो जावे और आगामी को उस पर असर पड़े जीव को कुछ भी नहीं मालूम होता है कि मुझ को मेरे किस किस कर्म का क्या क्या फल मिल रहा है? इस से स्पष्ट विदित होता है कि कर्मों का फल देने वाली कोई चेतन शक्ति नहीं है वरण वस्तु स्वभाव ही कर्म फल का कारण है अर्थात् प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावानुसार काम करती है उस ही से जगत् के सब फल प्राप्त होते हैं। जो पुरुष मदिरा पीवैगा तो मदिरा और जीव के शरीर का स्वभाव मिल कर यह फल अवश्य प्राप्त होगा कि पीने वाले को नशा होगा, उसके ज्ञान गुण में फरक आवैगा और अनेक कुचेष्टा उत्पन्न होगीं। मदिरा को इससे कुछ मतलब नहीं है कि किसी का भला होता है या बुरा किसी को दंड मिलता है वा लाभ वह तो अपने स्वभाव के अनुसार अपना काम करैगी।

बहुत से मनुष्य ऐसे मूर्ख और जिह्वा इन्द्री के ऐसे वशीभूत होते हैं कि वह बीमारीमें परहेज नहीं करते और उन वस्तुओंको खा लेते हैं जिन को वैद्य बताता है कि इनके खाने से बीमारी अधिक बढ़ जावेगी ऐसी वस्तुओं के खाने का फल यह होता है कि बीमारी अधिक बढ़ जाती है और रोगी बहुत तकलीफ उठाता है। बहुत से लोग यह कह दिया करते हैं कि कोई मनुष्य अपना नुकसान नहीं चाहता है और कोई अपराधी अपनी राजी से कैदखाने में जाना नहीं चाहता है परन्तु नित्य यह ही देखने में आता है कि बहुत से रोगी कुपथ्य से-

बन करके अपने हाथों अपना रोग बढ़ा लेते हैं और अत्यंत दुःख उठाते हैं। बहुत से बालकों को देखा है कि वह खेल कूद में रहते हैं और विद्याध्ययन में ध्यान नहीं देते। उनके माता पिता और मित्र बहुतेरा समझाते हैं कि इस समय का खेल कूद तुम को बहुत दुःखदाई होगा परन्तु वह खेल कूद में रह कर स्वयम् विद्या विहीन रहते हैं और मूर्ख रहकर अपनी जिन्दगी में बहुत दुःख उठाते हैं। बहुत से पिताओं को समझाया जाता है कि तुम छोटी अवस्था में अपनी संतान का विवाह मत करो परन्तु वे नहीं मानते और जब संतान उन की वीर्य हीन निर्बल नपुंसक हो जाती है तो माथा पीटते हैं और हकीमों से पुष्टी के नुसखे लिखवाते फिरते हैं। बहुत से धनवानों को यह समझाया जाता है कि वह बेटा बेटी के विवाह में अधिक द्रव्य न लुटावें परन्तु वह नहीं मानते और बहुत कुछ व्यर्थ व्यय करके अपने हाथों दारिद्री हो जाते हैं। इत्यादिक संसार के सारे कामों में कोई फल देने वाला नहीं आता है वरण जैसा काम कोई करता है उसका जो फल है उसको अवश्य भोगना पड़ता है और यदि वह काम खोटा है और उसका फल दुःख है तो दुःख भी उसको अवश्य भोगना पड़ता है। वास्तव में वह दुःख उसने आप ही अपने वास्ते पैदा किया। जगत् में नित्य यह ही देखने में आता है कि अनेक प्रकार के उलटे काम करके नुक़सान उठाते हैं अर्थात् अपने हाथों अपने आप को मुसीबत में डालते हैं।

संसारी जीवों पर अभ्यास और संस्कार का बहुत असर पड़ता है। यदि वह विद्यार्थी जो पढ़ने पर बहुत ध्यान रखता है, एक महीने के वास्ते भी पाठशाला से अलग कर दिया जावे और उसको एक महीने तक खेल कूद ही में लगाया जावे तो महीने के पश्चात् पाठशाला में जाकर कई दिन तक उस की रुचि पढ़ने में नहीं लगेगी वरण खेल कूद का ही ध्यान आता रहेगा। इस ही प्रकार यदि भले आदमी को भी दुष्ट मनुष्य की संगति में अधिक रहना पड़े तो कुछ कुछ दुष्टता उस भले मनुष्य में भी आ जावेगी। इन सब कामों का फल देने वाली कोई अन्य शक्ति नहीं आवेगी वरण यह उस के कर्म ही उस को बुरे फल के दायक होंगे।

कारण से कार्य की सिद्धि स्वयम् स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं। जब जीव का कर्म जो कारण है उस से कार्य अर्थात् कर्म फल अवश्य प्राप्त होगा इस में चाहे जीव को दुःख हो वा सुख। हमको आश्चर्य है कि स्वामीजी स्वयम् जीव और प्रकृति अर्थात् जड़ पदार्थों को नित्य मानते हैं और जब इनको नित्य मानते हैं तो इनके स्वभावको भी नित्य बताते हैं। तो क्या यह सर्व

अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्य नहीं करती हैं और उन से फल नहीं प्राप्त होते हैं? बहुत से मनुष्यों की बाबत आप ने सुना होगा कि उन्हों ने अपनी मूर्खता से मिट्टी के तेल का कनस्तर आग से ऐसी असावधानी से खोला कि आग कनस्तर के अंदर पहुंच गई और आग भड़क कर सारा मकान जल भुनकर खाक हो गया। इस महान् दुःख के कार्य में क्या उन की मूर्खता ही कारण नहीं हुई और क्या यह कहना चाहिये कि मूर्खताका काम तो मनुष्य ने किया परंतु उन का फल अर्थात् सारे मकान का जला देना यह काम ईश्वरने आकर किया।

प्यारे भाइयो! यह जीव जब मान माया, लोभ और क्रोध आदिक कषायों के वश होकर मान, माया, लोभ और क्रोध आदिक करता है और जब यह इन्द्रियों के विषय में लगता है तो इस को इन मान माया आदिक का संस्कार होजाता है और इन कामों का इस को अभ्यास पड़ जाता है अर्थात् मान, माया, लोभ क्रोध आदिक उपाधियां इस में पैदा हो जाती हैं और उसका जीवात्मा मलिन हो जाता है। यह ही उसके कर्मों का फल है। इत्यादिक और भी जो जो कर्म यह जीव समय समय पर करता रहता है उसका असर इसके चित्त पर पड़ता रहता है और जीवात्मा अशुद्ध होता रहता है। और ज्यों ज्यों यह जीव धर्म सेवन करता है त्यों त्यों मान माया, लोभ, क्रोध आदिक की कालिमा उन से दूर होती रहती है क्योंकि धर्म उसही मार्ग का नाम है जो मान, माया, लोभ और क्रोध आदिक कषायों को दूर करने वा दबाने वा कम करने का हेतु हो। और जब इन कषायों को बिलकुल रोककर यह जीव आत्मस्थ होता है अर्थात् अपनी ही आत्मा में स्थिर हो जाता है तब आगामी कर्म पैदा होने बंद हो जाते हैं और पिछले कर्म भी आहिस्ते २ क्षय हो जाते हैं तब ही यह जीव स्वच्छ और शुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी इस ही प्रकार लिखा है–

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २५५

"इस प्रकार सत्व, रज और तमो गुण युक्त वेग से जिस २ प्रकारका कर्म जीव करता है उस २ को उसी २ प्रकार फल प्राप्त होता है। जो मुक्त होते हैं वे गुणातीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फंसकर महायोगी होके मुक्ति का साधन करें क्योंकि–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥१॥

तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम् ॥२॥

ये योग शास्त्र पातंजलि के सूत्र हैं। मनुष्य रजो गुण तमो गुण युक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सत्व गुण युक्त कर्मों से भी मनको रोक शुद्ध सत्व गुण युक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर

एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्म युक्त कर्म इन के अग्र भागमें चित्तका ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना ॥१॥ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है-

प्यारे भाइयो! इस सर्व लेख का अभिप्राय यह है कि स्वामी दयानन्द का यह कहना कि मुक्ति भी कर्मों का फल है बिलकुल असत्य है, वरण मुक्ति तो सर्व कर्मों के क्षय से प्राप्त होती है अर्थात् जीव का सर्व प्रकार की उपाधी से रहित होकर स्वतन्त्र रूप निर्मल और स्वच्छ हो जाना ही मुक्ति है। इस कारण स्वामी जी का यह कहना कि ईश्वर यदि मुक्ति जीव को मुक्ति से निकाल कर और उसका परमानन्द छुड़ाकर फिर उसको संसार में न डाले और दुःख और पापों में न फंसावे तो ईश्वर अन्यायी ठहरता है बिलकुल ही अनाड़ीपन की बात है-

असल यह है कि स्वामीदयानन्दजी ने कर्म और कर्म फलके गूढ़ सिद्धान्त को समझा ही नहीं। कर्म फिलोसफी की Philosophy का वर्णन जितना जैन ग्रंथों में है उतना और किसी भी मत के ग्रन्थों में नहीं है। स्वामी जी ने संसारी जीव के तीन गुण सत्व, रज और तम वर्णन किए हैं। परन्तु जैन शास्त्रों में इस विषय को इतना विस्तार के साथ लिखा है कि इसके १४ गुणस्थान वर्णन किये हैं और प्रत्येक गुणस्थान के बहुत २ भेद किये हैं और कर्म प्रकृतियों के १४८ भेद किये हैं। प्रत्येक गुणस्थान में किसी २ कर्म की सत्ता, उदय और बंध होना है इसको वर्णन किया है-और कर्मों के उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण आदिक का वर्णन बहुत विस्तारके साथ किया है। इस कारण सत्य की खोज करने वालों को उचित है कि वह पक्षपात छोड़कर जैन ग्रन्थोंका स्वाध्याय करें जिससे उनकी अविद्या दूर होकर कल्याण का मार्ग प्राप्त होवे।

आर्यमतलीला।

(ईश्वरकी भक्ति और उपासना)

(२२)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १९२ पर यह प्रश्न उठाते हैं कि "ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं?" फिर आपही इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार देते हैं-

" नहीं क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय और सब मनुष्य महापापी होजावें क्योंकि क्षमा की बात सुनही कर उनको पाप करनेमें निर्भयता और उत्साह होजाय जैसे राजा अपराधको क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक अधिक बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा करदेगा और उनको भी भरोसा होजाय कि राजासे हम हाथ जोड़ने

आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ालेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करनेमें न डरकर पाप करनेमें प्रवृत्त होजायंगे। इसलिये सब कर्मोंका फल यथावत् देना ही ईश्वरका काम है क्षमा करना नहीं।"

प्यारे आर्य भाइयो! स्वामीजीके उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट विदित है कि जो कोई ईश्वरकी भक्ति करता है वा जो कोई भक्ति स्तुति नहीं करता है वा जो कोई ईश्वरको मानता है वा नहीं मानता है, ईश्वर इन सब जीवोंको समान दृष्टिसे देखता है। भक्ति स्तुति करने वालेके ऊपर रिआयत नहीं करता अर्थात् उनके अपराधोंको छोड़ नहीं देता और उनके पापोंको मुआफ़ नहीं करता और उनके पुण्य कर्मोंसे अधिक कुछ लाभ नहीं पहुंचाता वरण जितने जिसके पुण्य पाप हैं उनही के अनुसार फल देता है और भक्ति स्तुति न करने वालों पर क्रोध नहीं करता और उनपर नाराज होकर ऐसा नहीं करता है कि उनके पुण्य फलको न देवे वा न्यून पापका अधिक दण्ड देदेवे वरण उनके पाप पुण्य कर्मोंके अनुसार ही उनको फल देता है।

इस ही प्रकार स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८२ पर प्रश्न करते हैं "क्या स्तुति आदि करनेसे ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वालेका पाप छुड़ादेगा?" इसके उत्तरमें स्वामीजी लिखते हैं। नहीं" इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि ईश्वर स्तुति और प्रार्थना आदिक करनेसे वा न करनेसे राजी वा नाराज नहीं होता है॥

इस ही प्रकार स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८६ पर लिखते हैं

"ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओंका नाश, मुझको सबसे बड़ा मेरीही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब होजायं इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरेके नाशके लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनोंका नाश कर दे? जो कोई कहै कि जिसका प्रेम अधिक हो उसकी प्रार्थना सफल होजावे तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम न्यून हो उसके शत्रुका भी न्यून नाश होना चाहिये-ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा हे परमेश्वर! आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये, मकानमें झाड़ू लगाइये वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये-"

स्वामी दयानन्दजीके उपरोक्त लेखसे तो खुल्लम खुल्ला यह ज्ञात होगया कि धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, स्त्री, कुटुम्ब, महल, मकान, जमीन, जायदाद, प्रतिष्ठा, और शरीर कुशल आदिक संसारी कार्योंके वास्ते ईश्वरसे प्रार्थना करना और इसके अर्थ उसकी भक्ति स्तुति करना बिल्कुल व्यर्थ है। ईश्वर खुशामदी नहीं है जो किसीकी भक्ति स्तुति वा प्रार्थनासे खुश होकर उसका

काम करदेवे—वा खुशामदसे बहकायेमें आजावे--वा जो उनकी स्तुति आदिक न करे उससे रुष्ट होकर उसका काम बिगाड़ देवे । परन्तु ईश्वर तो बिल्कुल निष्पक्ष रहता है उन पर निन्दा वा स्तुतिका कुछ भी असर नहीं होता है वरण पूर्ण न्याय रूप होकर जीव के भले बुरे कर्मोंका बुरा भला फल बराबर देता रहता है—

इसही की पुष्टिमें स्वामीजी पृष्ठ १८६ पर इसके आगे लिखते हैं:—

" इस प्रकार जो परमेश्वरके भरोसे आलसी होकर बैठे रहते वे महामूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वरकी पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा-- "

इसहीकी पुष्टीमें स्वामीजी पृष्ठ १८७ पर लिखते हैं:—

" जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्बसे गुड़ मिल ही जाता है "

अभिप्राय इस का यह है कि ईश्वर की स्तुति करने और ईश्वरके उत्तम गुणोंकी प्रशंसा करनेसे कुछ नहीं होता है वरण जीवको उचित है कि पुरुषार्थ करके ईश्वरके समान अपने गुण, कर्म और स्वभाव उत्तम बनावे और पुण्य उपार्जन करे जिस से उस के मनोरथ सिद्ध हों—

फिर सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८३ पर स्वामीजी यह प्रश्न करते हैं " तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ? " इसके उत्तरमें स्वामीजी लिखते हैं " उनके करनेका फल अन्य ही है " " स्तुतिसे ईश्वरमें प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभावका सुधारना, प्रार्थनासे निरभिमानता उत्साह और सहायका मिलना उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना- "

आशय स्वामी दयानन्दजीके लेखका यह है कि ईश्वर सबसे उत्तम गुणोंका धारी है इस कारण यदि ईश्वरके गुणोंका चिन्तवन और उसके उत्तम गुणोंकी स्तुति कीजावेगी तो स्तुति करने वाले जीवके भी उत्तम गुण हो जावेंगे क्योंकि जीव जैसी संगति करता है, जैसी बातें देखता है, जिन बातोंसे प्रेम करता है, जिन बातोंकी चर्चा वा चिन्तवन करता है और जैसी शिक्षा पाता है वैसे ही उन जीवके गुण, कर्म, स्वभाव होजाते हैं । जो मनुष्य बदमाशोंके पास बैठेगा वा बदमाशोंकी बातें सुनेगा वा बदमाशीकी बातोंमें प्रेम लगावेगा वा बदमाशोंकी प्रशंसा करेगा उसके चित्तमें बदमाशीका अंश अवश्य समाजावेगा और जो कोई धर्मात्माओंकी संगति करेगा, उनसे प्रेम रक्खेगा, उनकी प्रशंसा करेगा तो धर्म का अंश उसके हृदयमें अवश्य आवेगा यह ही कारण है कि जुवारीके पास बैठने वा रण्डियोंके मोहल्लेतकमें जाना वा अश्लील पुस्तकोंका पढ़ना और अश्लील मूर्तियों तकका देखना बुरा समझा जाता है ॥

इस ही आशयकी पुष्टीमें स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८३ पर लिखते हैं:--

" इससे अपने गुण कर्म स्वभाव भी करना जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें और जो केवल भांड़के समान परमेश्वरके गुण कीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है--"

अभिप्राय इस लेखका बहुत ही स्पष्ट है। स्वामी दयानन्द जी समझाते हैं कि जो कोई परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना इस कारण करता है कि परमेश्वर मुझ से प्रसन्न होगा तो उसका ऐसा करना बिलकुल व्यर्थ है क्योंकि परमेश्वर अपनी स्तुति प्रार्थना करने वालेसे राजी वा न करने वालेसे नाराज नहीं होता है वरण परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना करनेका हेतु तो यह ही है कि परमेश्वरके गुणानुवादसे परमेश्वर जैसे गुण हममें होजावैं इस कारण स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना करने वालेको उचित है कि अपने गुण कर्म स्वभावोंको परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावों के अनुकूल करनेकी कोशिश करता रहे और सदा इस बात का विचार रक्खे कि मैं परमेश्वरके जिन गुण कर्म स्वभावोंकी स्तुति करता हूं वैसे ही गुण कर्म स्वभाव मेरे भी होजावैं--तबही उसकी स्तुति प्रार्थना फलदायक होगी और यहही ईश्वरकी स्तुति प्रार्थनाका अभिप्राय है ॥

इसहीकी पुष्टिमें स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८४।--८५ पर प्रार्थना और स्तुतिका कुछ नमूना लिखते हैं कि किस प्रकार प्रार्थना और स्तुति करनी चाहिये? जो प्रार्थना करने वालेमें उत्तम गुणोंके देने वाली है उसका कुछ सारांश इम नीचे लिखते हैं

" आप प्रकाश स्वरूप हैं कृपाकर मुझमें भी प्रकाश स्थापन कीजिये।"। " आप निन्दा स्तुति और स्वअपराधियोंका सहन करने वाले हैं कृपासे मुझको वैसा ही कीजिये।" " मेरा मन शुद्धगुणोंकी इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहै। हेजगदीश्वर! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्य वर्तमान, व्यवहारोंको जानते जो नाश रहित जीवात्माको परमात्माके साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है जिसमें ज्ञान क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है उस योगरूप यज्ञको जिससे बढ़ाते हैं वह मेरा मनयोग विज्ञान युक्त होकर विद्यादि क्लेशोंसे पृथक् रहे।" " हे सर्व नियन्ता ईश्वर! जो मेरा मन रस्सीसे घोड़ोंके समान अथवा घोड़ोंके नियन्ता सारथीके तुल्य मनुष्योंको अत्यन्त इधर उधर डुलाता है जो हृदयमें प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेगवाला है वह सब इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोकके धर्मपथमें सदा चलाया करे ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये।" हे सुखके दाता! स्वप्रकाशरूप सबको

जानने द्वारे परमात्मन् ! आप हमको श्रेष्ठमार्गसे संपूर्ण प्रज्ञानोंको प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिलपापाचरणरूपमार्ग है उससे पृथक् कीजिये । इसीलिये हमलोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुतसी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें ।"

स्वामी दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८७ पर उपासनाका अर्थ इस प्रकार लिखते हैं--

"उपासना शब्दका अर्थ समीपस्थ होना है अष्टांगयोगसे परमात्माके समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष करनेके लिये जो २ काम करना होता है वह २ सब करना चाहिये-"

स्वामीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८८ पर इस प्रकार लिखते हैं-

"परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र होजाते हैं । इसलिये परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये । "

प्यारे पाठको ! स्वामी दयानन्दजी के कथनानुसार ईश्वर सर्वव्यापक है अर्थात् सब जगह मौजूद है यहां तक कि सब जीवोंके अन्दर व्याप्त है चाहे वह पापी है वा धर्मात्मा । इस कारण उपासना करनेसे ईश्वरके समीपस्थ होनेके यह अर्थ तो होही नहीं सकते हैं कि ईश्वरके पास जा बैठना क्योंकि समीप तो वह सदाही रहता है वरण समीपस्थ होनेके यहही अर्थ हो सकते हैं कि ईश्वरके गुणोंके ध्यानमें इतना मग्न होजाना कि मानो अपने सद्गुणों सहित ईश्वर समीप ही विराजमान है ।

प्यारे आर्य भाइयो ! वह अति उत्तम गुण क्या हैं जिनकी प्राप्तिके वास्ते और वह निकृष्ट अवगुण क्या हैं जिन के दूर करनेके वास्ते ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासनाकी आवश्यकता है ? इसके उत्तरमें आपको विचारना चाहिये कि जीव स्वभावसे तो रागद्वेष रहित स्वच्छ और निर्मल है इस ही कारण स्वामीजीने कहा है कि उपासनासे जीव के गुण कर्म स्वभाव ईश्वर के सदृश पवित्र हो जाते हैं परन्तु कर्मों के वश होकर राग द्वेष आदिक उपाधियां इस जीवके साथ लगी हुई हैं इस ही कारण संसारी जीव मोहान्धकारमें फंसकर मान माया लोभ क्रोध आदिक कषायोंके वशीभूत हुआ पांच इन्द्रियोंके विषय भोगोंका गुलाम बना हुआ अनेक दुःख उठाता और भटकता फिरता रहता है और संसार में कभी इसको चैन नहीं मिलती है जब यह सब उपाधियां इसकी दूर होजाती हैं तब मुक्ति पाकर परमानन्द भोगता है और शान्तिके साथ सच्चा सुख उठाता है इस हेतु इन उपाधियोंका दूर करना और स्वच्छ और निर्मल होजाना ही इसका परम कर्त-

दय है और रागद्वेष रहित होकर निर्मल होजाना ही इसका उत्तम गुण है जिसके वास्ते जीवको सब प्रकार के साधन करना चाहिये और वही मार्ग धर्म कहलाता है जो जीवको इन उपाधियों और दुःखसे रहित कर देवे परन्तु चिरकालका जमा हुआ मैल बहुत मुश्किल से दूर हुआ करता है। जन्म जन्मान्तर में बराबर रागद्वेषमें फसे रहनेके कारण यह सब उपाधि एक प्रकार का संसारी जीव का स्वभावसा होगया है और इनसे विरक्त होना इसको बुरा लगता है। संसारी जीवकी दशा बिलकुल ऐसे ही है जैसे अफीमी की होजाती है जिसको चिरकाल तक अफीम खाते २ अफीम खानेका अभ्यास होगया हो यद्यपि वह जानता हो कि अफीम खानेसे मुझको बहुत नुकसान होता है शरीर कृश होगया है, इन्द्रियां शिथिल होगई हैं, पुरुषार्थ जाता रहा है और अनेक रोग व्याप गये हैं परन्तु तो भी अफीम का छोड़ना उस के वास्ते कष्टसाध्य ही होता है वह प्रथम कुछ कम खानी शुरू करता है और अफीम खाना छोड़ने का साहस और उत्साह अपने में पैदा होनेके वास्ते ऐसे पुरुषोंसे मिलता है जिन्होंने अफीम खानी छोड़ दी हो उन से पूछता है कि उन्होंने किस २ प्रकार अफीम छोड़नेका अभ्यास किया, मनमें उनकी प्रशंसा करता है जिन्होंने अफीम छोड़ी और अपनी निन्दा करता है कि तू इस अफीमके ही वशमें हो रहा है और यह जरासा साहस भी तुझ से नहीं होसका कि अफीम खाना छोड़ देवे, इस प्रकार बहुत कुछ श्रम करके अफीम खाने का अभ्यास छोड़ता है।

प्यारे भाइयो! बिलकुल ऐसी ही दशा संसारी जीव की है-एक दम रागद्वेषको छोड़ अपनी आत्मामें आत्मस्थ होजाना और स्वच्छ निर्मल होकर ज्ञान स्वरूप परमानन्द भोगना जीवके वास्ते दुःसाध्य है इस कारण वह पहले राग, द्वेष रूप को कम करता है अर्थात् यद्यपि रागद्वेष कार्य करता है परन्तु अन्याय और अधर्मके कामोंको त्यागता है।

इस विषय में स्वामी दयानन्द जीने सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८१ पर इस प्रकार लिखा है:--

जो उपासनाका आरम्भ करनी चाहे उसके लिये यह ही आरम्भ है कि वह किसीसे वैर न रक्खे, सवदा सब से प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले चोरी न करे सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लंपट न हो, निरभिमानी हो अभिमान कभी न करे यह पांच प्रकार के यम मिलके उपासना योग का प्रथम अंग है=,,

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी दूसरा अंग इस प्रकार लिखते हैं अर्थात जब सब यमोंके साधनका अभ्यास हो जावे तब इस प्रकार अगाड़ी बढ़े।

"राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहे धर्मसे पुरुषार्थ करनेसे लाभमें न प्रसन्नता और हानिमें

न अप्रसन्नता करे प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुखोंका सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्मका नहीं सर्वदा सत्य शास्त्रोंकोपढ़े पढ़ावे सत्पुरुषोंका संगकरे

तात्पर्य्य इस सब लेखका यह है कि रागद्वेषको त्यागकर जीवके शुद्ध निर्मल होने के जो जो उपाय हैं वह ही धर्म कहलाते हैं और संसारके सर्व प्रकारके मोहको परित्याग कर अपनी आत्मामें स्थित होनाही परम साधन है—यह संसारी जीव धर्म मार्गमें लग कर जितना २ इससे होसक्ता है राग द्वेषको कम करता जाता है अर्थात् धर्म सेवन करता है और अपनेमें रागद्वेष के अधिक छोड़ने और संसारके मोहजालसे निकलने की अधिक उत्तेजना और अधिक साहस होनेके वास्ते धर्म शास्त्रोंको पढ़ता है, धर्मात्माओं की शिक्षा और उपदेश सुनता है धर्मात्माओंकी संगति करता है उन जीवों के जीवन चरित्रोंको पढ़ता और सुनता है जिन्होंने रागद्वेषको त्यागकर मुक्ति प्राप्त करली है—मुक्ति जीवोंसे प्रेम रखता है और उन का ध्यान करता है।

संसारके मोह जालसे छूटनेकी इस ही प्रकारकी उत्तेजना और साहस पैदा करने हीके वास्ते स्वामी दयानन्दजी ने परमेश्वरके उत्पन्न गुणोंकी भक्ति अर्थात् प्रार्थना स्तुति और उपासनाको कार्य कारी और आवश्यक बताया है परन्तु प्यारे भाइयो! यदि आप विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि जिस प्रकार स्वामीजी परमेश्वरका स्वरूप वर्णन करते हैं उस प्रकारके परमेश्वरकी प्रार्थना, स्तुति और उपासनासे वह कार्य सिद्ध नहीं होसक्ता है जो आप सिद्ध करना चाहते हैं क्योंकि जीवको साध्य है रागद्वेषका छूटना संसारका ममत्व दूर होना संसारके बखेड़ेमें से अलग निकल कर एक चित्त शांतिस्वरूप होना और परमेश्वरके गुण स्वामी दयानन्दजी बताते हैं इसके विपरीति यह कहते हैं कि ईश्वर जगत् का कर्त्ता है—कभी सृष्टि बनाता है कभी प्रलय करता है, संसारमें जो कुछ होरहा है वह उस ही का किया हो रहा है—समय समय पर संसारमें जो कुछ उलटन पलटन होती है वह सब वह कररहा है—सर्व संसारी जीवोंको जो कुछ सुख दुःख पहुंच रहा है, जो मरना जीना रोग नीरोग, धन, निर्धन आदिक व्यवस्था समय समय पर जीवों की पलट रही है वह ईश्वर ही उनके कर्मानुसार पलटा रहा है-तब प्यारे भाइयो! विचार कीजिये कि यदि ईश्वर अर्थात् उसके गुणों का विचार किया जावेगा उस के गुणों की स्तुति की जावेगी वा उस के गुणों से ध्यान बांधा जावेगा तो राग पैदा होगा या वैराग्य, संसार के बखेड़ों से प्रीति होगी वा अप्रीति प्यारे आर्य भाइयो! ऐसे ईश्वर की भक्ति से तो संसार ही

सूझैगा और फायदा कुछ भी न होगा। देखिये स्वामी दयानन्द जी ने जो नमूना प्रार्थना का सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८४ पर दिया है और जिस का कुछ सारांश हम ने पूर्व इस लेख में दिया है और जिस से स्वामी जी ने इस बात के सिद्ध करने की कोशिश की है कि इस प्रकार प्रार्थना से ईश्वर के उत्तम गुण प्रार्थना करने वाले में पैदा होते हैं उसही नमूनेमें स्वामी जी को इस प्रकार लिखना पड़ा है—

"आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं मुझको भी वैसा ही कीजिये।

हे रुद्र ! (दुष्टों को पापके दुःख स्वरूप फल को देके रुलाने वाले परमेश्वर) आप हमारे छोटे बड़े जिन, गर्भ, पिता, और प्रिय, बंधुवर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये ऐसे मार्ग से हम को चलाइये जिस से हम आप के दंडनीय न हों।

देखिये प्यारे आर्य भाइयो ! आगई राग, द्वेष की झलक या नहीं ? साधन तो है राग, द्वेष छोड़ने का और उलटा राग,द्वेष पिपटने लगा-प्यारे भाइयो ! कर्ता ईश्वर की भक्ति करनेसे कदाचित् भी संसार से विरक्तता नहीं हो सकती है बरण संसार के ही बखेड़ों का ध्यान आवेगा और संसारके बखेड़े ही ईश्वर के गुण होंगे जिनका ध्यान किया जावे-देखिये हमारे इस ऐतराज का भय स्वयम् स्वामी दयानन्द जी के हृदयमें व्याप चुका है इस ही कारण उन को ईश्वर में सगुण और निर्गुण दो प्रकार के भाव स्थापित करने पड़े हैं-और वह सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८३ पर लिखते हैं—

जिस २ राग द्वेषादि गुण से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है।

स्वामी दयानन्द जी फिर इस ही बात को पृष्ठ १८६ पर लिखते हैं—

अर्थात् जिस २ दोष वा दुर्गुण से परमेश्वर और अपने को भी पृथक् मान के परमेश्वर की प्रार्थना की जाती है वह विधि निषध मुख होने से सगुण निर्गुण प्रार्थना।

फिर निर्गुण प्रार्थनाको मुख्य बताने के वास्ते स्वामी जी पृष्ठ १८८ पर लिखते हैं—

वहां सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गंध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अति सूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थिति हो जाना निर्गुणोपासना कहाती है।

प्यारे आर्य भाइयो ! जरा विचार कीजिये कि यह कैसा भ्रम जाल है ? ईश्वर को कर्ता मानकर उस को संसार के अनेक बखेड़ों में फसाना और जब जीव को अपने कल्याण के अर्थ राग द्वेष छोड़ने की आवश्यक्ता हो और इस कार्य में अपना उत्साह और अ-

ध्यान बढ़ाने के लिये राग, द्वेष रहित के ध्यान और मनन की आवश्यकता जीव को हो तो उसही कर्त्ता ईश्वर को निर्गुण बताकर उसकी उपासना का उपदेश देना-जो ईश्वर सदा संसार के धंधों में लगा रहता है क्या उस का निर्गुण रूप ध्यान जीव को हो सक्ता है? और यदि अधिक आत्मीक शक्ति रखने वाले तपस्वी पुरुष ऐसा ध्यान बांध भी सकते हैं तो उन को ईश्वर का सहारा लेने ही की क्या आवश्यकता है वह अपनी आत्मा में ही एकाग्र ध्यान क्यों न करेंगे?

प्यारे आर्य भाइयो! संसारी जीवों को तो यह ही उचित है कि वह अपनी आत्मिक शक्ति बढ़ाने, संसार के मोह जाल से घृणा पैदा करने और रागद्वेष को त्यागने का उत्साह और साहस अपने में उत्पन्न करने और इन्द्रियों और क्रोध मान माया लोभादिक कषायों को वश में करने के वास्ते उन शुद्ध जीवों की भक्ति, स्तुति और उपासना करें उन के गुणों का चिन्तवन करें, उनकी जीवनी को विचारें जिन्होंने सर्वथा रागद्वेष को त्याग कर और संसार के मोह जालको बिल्कुल छोड़कर और सर्व प्रकार की उपाधियों और मैल को दूर करके स्वच्छ और निर्मल होकर मुक्ति प्राप्त करली है वा उन सबे संन्यासियों की जो बिलकुल इस ही साधन में लगे हुए हैं।

प्यारे भाइयो! यह जैन धर्म का सिद्धांत है जो मुक्त जीवों और साधुओं की ही भक्ति, स्तुति और उपासना का उपदेश देता है परन्तु ऐसा मालूम होता है कि स्वामी दयानंद जी ने इस ही भय से कि यह सत्य सिद्धांत ग्रहण करके संसार के जीव कल्याण के मार्ग में न लग जावें मुक्ति दशा की निन्दा की है और मुक्ति जीवों को यह कलंक लगाया है कि वह इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर आनन्द भोगते हुये फिरते रहते हैं और उनको फिर संसार में आने की आवश्यकता बनाकर मुक्ति को जेलखाना बनाया है।

आर्यमत लीला।

(सांख्यदर्शन और मुक्ति)

(२२)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने अपनेको षटदर्शनका मानने वाला बताया है और उनही के कथनानुसार हमारे आर्य भाई भी अपनेको षटदर्शनोंका मानने वाला बताते हैं परन्तु स्वामी दयानन्दजीने सत्यार्थप्रकाशमें जो सिद्धान्त स्थापित किया है वह दर्शन सिद्धान्तोंके बिल्कुल विरुद्ध स्वामी जी का मन घड़न्त ही सिद्धान्त है--शोक है कि हमारे आर्य भाई केवल सत्यार्थप्रकाशको पढ़कर यह समझने लगते हैं कि सत्यार्थप्रकाशमें जो लिखा है वह

सत्य ही है और श्रुति, स्मृति और दर्शन शास्त्रोंके अनुकूल ही है परन्तु यदि वह कुछ भी परीक्षा करें तो उनको सहजही में सत्यार्थप्रकाशका मायाजाल मालूम हो सकता है और उनका भ्रमजाल दूर होकर सच्चाईका मार्ग मिल सकता है--

यद्यपि जैनशास्त्र धर्मरत्नोंका भण्डार है और उनके द्वारा सहजही में सत्यमार्ग दिखाया जा सकता है और युक्ति प्रमाण द्वारा अज्ञान अन्धकार दूर किया जा सकता है परन्तु संसारके जीवोंको पक्ष और द्वेषने ऐसा घेरा है कि वह दूसरेकी बातका सुनना भी पसन्द नहीं करते हैं इस कारण अपने आर्य भाइयोंके उपकारार्थ हम उनहींके मान्य ग्रन्थोंसे ही उनका मिथ्यात्व दूर करनेकी कोशिश कररहे हैं जिनसे उनको सत्यार्थप्रकाशका मायाजाल मालूम होकर पक्षपात और द्वेषका आवरण दूर हो और सत्य और कल्याण मार्गके खोजकी चाह उत्पन्न हो--

प्यारे आर्य भाइयो! आप षट्दर्शनोंको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं और उनको आर्य्यावर्तके अमूल्य रत्न समझते हैं परन्तु शोक है कि आप उनको पढ़ते नहीं हो, उन रत्नोंके प्रकाशसे अपने हृदयको प्रकाशित नहीं करते हो। देखिये षट् दर्शनोंमें सांख्यदर्शनके कुछ विषय हम आपको दिखाते हैं जिससे आपको मालूम होजावेगा कि सत्यार्थप्रकाशमें जो सिद्धान्त स्वामी जीने वर्णन किये हैं वह प्राचीन शास्त्रोंके विरुद्ध और धर्म श्रद्धासे भ्रष्ट करके जीवको संसारमें रुलाने वाले हैं--

मुक्तिसे लौटकर फिर संसारमें आनेके ही उल्टे सिद्धान्तकी बाबत खोज लगाइये कि प्राचीन आचार्य इस विषयमें क्या कहते हैं--

सांख्यदर्शनमें महर्षि कपिलाचार्यने मुक्तिसे लौटने के विषयमें इस प्रकार लिखा है--

"तत्र प्राप्त विवेकस्यानावृत्ति श्रुतिः"- सांख्य । अ० १ ॥ सू० ८३ ॥

सांख्यमें अविवेकसे बन्धन और विवेक प्राप्त होनेको मुक्ति वर्णन किया है--इस सूत्रमें कपिलाचार्यजी लिखते हैं कि, श्रुति अर्थात् वेदोंमें विवेक प्राप्त अर्थात् मुक्त जीवको फिर लौटना नहीं लिखा है--

प्यारे आर्य भाइयो! सांख्यशास्त्रके बनाने वाले प्राचीन कपिलाचार्य यह बताते हैं कि वेदोंमें मुक्तिसे लौटना नहीं लिखा परन्तु स्वामी दयानन्दजी वेदों और दर्शन शास्त्रोंका भी उल्लंघन कर यह स्थापित करते हैं कि मुक्ति दशासे उकताकर संसारके अनेक विषयभोग भोगनेके वास्ते जीवका मुक्तिसे लौटना आवश्यक है और इस ही कारण मुक्तिको कारागारकी उपमा देते हैं--क्या ऐसी दशामें स्वामीजीका वचन माननीय हो सकता है ? ॥

प्यारे आर्य भाइयो! यदि स्वामीजी के वचनों पर आपको इतनी श्रद्धा है

कि उसके मुकाबलेमें वेद वचन भी प्रमाण नहीं तो साफ़ साफ़ तौर पर वेदों और दर्शन शास्त्रोंसे इनकार करके केवल सत्यार्थप्रकाश पर ही भरोसा करलो--परन्तु सत्यार्थप्रकाशमें तो स्वामी जीने अपने कपोल कल्पित सिद्धान्त लिखकर यह भी लिखदिया है कि वेद और षट्दर्शनोंको ही मानना चाहिये और यह भी बहका दिया है कि स्वामीजीके कथित सिद्धान्त वेद और दर्शनोंके अनुकूल ही हैं--इस कारण हमारे भोले आर्य भाई भ्रमजालमें फंस गये हैं--

देखिये सांख्यदर्शनमें मुक्तिसे फिर लौटनेके विषयमें कैसी स्पष्टताके साथ विरोध किया है--

"न मुक्तस्य पुनर्बन्ध योगोऽप्यनावृत्ति श्रुतेः" ॥ सां० अ० ६ सू० १७

अर्थ--मुक्त पुरुषका फिर दोबारा बंध नहीं हो सकता है क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि मुक्तिसे जीव फिर नहीं लौटता है--

"अपुरुषार्थत्व मन्यथा" ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १८

अर्थ--यदि जीव मुक्तिसे फिर बंधन में आ सकता हो तो पुरुषार्थ अर्थात् मुक्तिका साधन ही व्यर्थ होजावे--

"अविशेषापत्तिरुभयोः" ॥ सां० अ० ६ सू० १९

अर्थ--यदि जीव मुक्तिसे भी लौटकर फिर बंधनमें फंसता है तो मुक्ति और बन्धनमें फरक ही क्या रहा?

"मुक्तिरन्तराय ध्वस्तेर्न परः ॥" सां० अ० ६ सू० २०

अर्थ--मुक्ति कोई पर पदार्थ नहीं है जिसकी प्राप्तिसे मुक्ति होती हो और प्राप्त होनेके पश्चात् किसी समय किसी कारणसे उस पदार्थके छिनजानेसे मुक्ति न रहती हो बरण मुक्ति तो अन्तराय के नाश होनेका नाम है अर्थात् जीव की निज शक्ति अर्थात् केवल ज्ञान पर जो अनादि कालसे अविद्याका पटल पड़ाहुआ था उस पटल के दूर होने और निज शक्तिके प्रकट होनेका नाम मुक्ति है इस हेतु जब जीव को निज शक्ति प्राप्त होगई और उसका ज्ञान प्रकाश होगया तब कौन उसको बन्धनमें फंसा सकता है? भावार्थ फिर बंध नहीं हो सकता है--

प्यारे आर्य भाइयो! सांख्यदर्शन में इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध करने पर भी कि, मुक्तिसे फिर जीव लौट नहीं सकता है, स्वामीजीने मुक्तिसे जीवके लौटने का सिद्धान्त सत्यार्थप्रकाशमें स्थापित किया है और साथ ही इसके यह भी लिखदिया है कि दर्शनशास्त्र सच्चे और मानने योग्य हैं--ऐसी पूर्वापर विरोध से भरीहुई सत्यार्थप्रकाश नामकी पुस्तक क्या भोले मनुष्योंको भ्रमजालमें फंसाने वाली नहीं है? और क्या वह विद्वान् पुरुषोंके मानने योग्य हो सकती है? कदाचित नहीं--

सत्यार्थप्रकाश में तो स्वामी जी को मुक्तिसे जीवोंके लौटनेका इतना पक्ष

हुआ है कि यदि किसी वाक्य में न लौटनेका उनको गन्ध भी आया है तो वहीं अपने वाग्जालसे उसको छिपाने की कोशिश की है--देखो सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २५५ पर स्वामीजीको सांख्यदर्शनके प्रथमसूत्र को लिखनेकी जरूरत पड़ी है जो इस प्रकार है--

"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः"

अर्थात् पुरुषका अत्यन्त पुरुषार्थ यह है कि तीन प्रकारके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति करदे परन्तु दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति तो तबही कहला सकती है जब कि फिर दुःख किसी प्रकार भी प्राप्त न हो इस कारण इस सूत्रमें स्वामीजीको दुःखोंकी निवृत्तिके साथ अत्यन्तका शब्द खटका और इसको अपने सिद्धान्तके विरुद्ध समझा. स्वामीजीने तो अन्यथा अर्थ करनेका सहज मार्ग पकड़ ही रक्खा था--इस कारण यहां भी इस सूत्रका अर्थ करते हुए अत्यन्त का अर्थ न किया और केवल यह ही लिखदिया है कि त्रिविध दुःखको छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है-

प्यारे भाइयो ! क्या स्वामीजी की ऐसी चालाकी इसही कारण नहीं है कि वह जानते थे कि संस्कृतका प्रचार न रहनेके कारण संस्कृत पढ़ने वाले नहीं रहे हैं इस हेतु हिन्दी भाषामें हम जिस प्रकार लिख देंगे उसही प्रकार भोले मनुष्य बहकावेमें आजावेंगे--यह आकस्मिक--इत्तफाककी बात नहीं है कि स्वामीजीसे अत्यंत शब्दका अर्थ लिखना रह गया वरण स्वामीजीने जानबूझकर इस प्रकारकी सावधानी रक्खी है-देखो सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४९ पर स्वामीजीने मुण्डकउपनिषद्का एक श्लोक इस प्रकार दिया है:--

"भिद्यते हृदयग्रंथि--
श्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्तेचास्य कर्माणि,
तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे="

इस श्लोकमें कर्मोंके क्षय होनेका वर्णन है परन्तु स्वामी दयानन्दजी को कर्मके क्षय होनेका कथन कब सुहाता था क्योंकि वह तो कर्मोंके क्षयसे मुक्ति नहीं मानते वरण मुक्तिको भी कर्मोंका फल स्थापित करते हैं और मुक्ति अवस्थामेंभी कर्म कायम करना चाहते हैं इस कारण उन्होंने इस श्लोकके अर्थ में दुष्ट कर्मोंका ही क्षय होना लिखा जिसका भावार्थ यह हो कि श्रेष्ठ अर्थात् पुण्य कर्म क्षय नहीं होते हैं--

प्यारे आर्य भाइयो ! यदि आप संस्कृत जानते हैं तो स्वयम् नहीं तो किसी संस्कृत जानने वाले से पूछिये कि इस श्लोकमें सर्वकर्मोंका क्षय लिखा है या केवल दुष्ट कर्मोंका ? और क्या श्लोकमें कोई भी ऐसा शब्द है जिससे दुष्ट कर्मके अर्थ लगाये जासकें ? और कृपा कर यह भी पूछिये कि कहीं इस श्लोकमें परमेश्वरमें वास करनेका भी कथन है कि नहीं जो स्वामीजीने अर्थों में लिखदिया है ? ।

यह बहुत छोटी बातें हैं परन्तु स्वामीजीने बड़ा बड़ा हठ किया है और भोले मनुष्योंकी आंखोंमें धूल डालनेकी कोशिश की है देखिये उन्होंने सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३९ पर उपनिषद्का एक वचन इस प्रकार लिखा है:-

"न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तत इति"

जिसका अभिप्राय यह है कि मुक्ति से जीवका फिर वापिस आना नहीं होता है-

इसही प्रकार एक सूत्र शारीरकसूत्र का इस प्रकार दिया है:-

"अनावृत्तिःशब्दादनावृत्तिः शब्दात्"

जिसका भी यह ही अभिप्राय है कि मुक्तिसे जीव नहीं लौटता है--इस प्रकार उपनिषद् और शारीरक के वचन लिखते हुये सरस्वती दयानन्द जी प्रश्न उठाते हैं " इत्यादि वचनोंसे विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिस से निवृत्त होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता" इस प्रकार प्रश्न उठाकर स्वामीजी उत्तर देते हैं " यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में इस बातका निषेध किया है--"

पाठकगण ! स्वामीजीके इस उत्तर को पढ़कर क्या संदेह उत्पन्न नहीं होता कि महाराज कपिल जीतो सांख्य शास्त्र में ऐसा लिखते हैं कि वेदोंसे यह ही सिद्ध है कि मुक्तिसे फिर लौटना नहीं होता और दयानन्द सरस्वतीजी लिखते हैं कि वेदोंमें लौटना लिखा है इन दोनोंमें से किसकी बात सत्य है? क्या सांख्य दर्शनके कर्ता कपिलाचार्य्य से भी अधिक दयानन्दजीको सरस्वती का वर मिलगया कि कपिलाचार्य्यसे भी अधिक वेदके ज्ञाता होगये और उपनिषदोंके बनाने वालोंको भी वह बात न सूझी जो सरस्वती जीको सूझी ? यहां तक कि व्यासजी महाराज ने भी अपने शारीरक सूत्रमें गलती खाई और इन सबकी गलतियोंको दुरुस्त करनेवाले कि वेदोंमें मुक्तिसे जीवका लौटना लिखा है एक स्वामी जीही हुये ? और तिसपर भी तुर्रा यह कि स्वामीजी सांख्य दर्शनको प्रामाणिक मानते हैं ।

पाठकगण ! मुक्तिसे जीवका न लौटना केवल एकही उपनिषद् में नहीं लिखा है वरण सब उपनिषद् आदि ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है यथा:-

"एतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते" (प्रश्नोपनिषदि)

अर्थ-उसको प्राप्त होकर फिर नहीं लौटते—

तेषु ब्रह्म लोकेषु परा परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः

(बृहदारण्यक)

अर्थ उस ब्रह्म लोक में अनंतकाल वास करते हैं उनके लिये पुनरावृत्ति नहीं इस ही प्रकार सर्व प्राचीन ग्रन्थों में जिन को स्वामी जीने माना है और जिनके आधार पर वेदोंका भाष्य करना सरस्वती जी ने लिखा है यहही लिखा मिलता है कि मुक्ति सदा के वास्ते है वहां से लौटकर फिर संसार

में फंसना नहीं होता। परन्तु दयानन्दजी के कथन से इस विषय में सर्व ग्रन्थ झूठे और किसी ने आज तक वेदों को नहीं समझा! सृष्टि की आदिसे आज तक सिवाय दयानन्द जी के और कोई वेदों को समझ भी नहीं सकता था क्योंकि साक्षात् सरस्वती तो दयानन्द जी ही हुये हैं इन्हीं ने ही यह बात निकाली कि मुक्ति से लौट कर जीव को फिर संसार में भ्रमण करना पड़ता है।

प्यारे पाठकों! यह तो सब कुछ सही, सब झूठे और अविद्वान् ही सही परन्तु जरा यह तो जांच करलो कि मुक्ति से लौटना वेदों में कहां लिखा है और किस प्रकार लिखा है?

स्वामी जी ने वेदों में से मुक्ति से जीव के लौटने के दो मंत्र ढूढ़कर निकाले हैं और उनको सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २३९ पर इस प्रकार लिखा है—

कस्यनूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्यनाम। कोनोमह्या अदितये पुनर्दात् पितरञ्च दृशेयं मातरञ्च" ॥१॥

"अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्यनाम। सनो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरञ्च दृशेयं मातरञ्च ॥ २॥ ऋ० मं० १॥ सू० २४ मं० १ ॥२॥

प्रिय पाठकों! इन दोनों श्रुतियों का अर्थ इस प्रकार है—

हम लोग देवतों के मध्य में किस प्रकार के देवता के शोभन नाम को उच्चारण करें-कौनसा देवता हम को फिर भी बड़ी पृथिवी के लिये दे जिस से हम पिता और माता को देखें ॥१॥ हम लोग देवतों के मध्य में प्रथम अग्नि देवता के सुंदर नाम को उच्चारण करें वह हम को बड़ी पृथिवी के लिये दे जिससे हम पिता और माता को देखें ॥२॥

पाठकगणो! इन दोनों ऋचाओं में, न मुक्ति का कथन है न मुक्तिसे लौट आने का परन्तु इनका अर्थ स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार दिया है।

(प्रश्न) हम लोग किस का नाम पवित्र जानें? कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाश रूप है हम को मुक्ति का सुख भुगा कर पुनः इस संसारमें जन्म देता और माता पिताका दर्शन कराता है॥१॥

(उत्तर) हम इस स्वप्रकाश रूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हम को मुक्ति में आनंद भुगाकर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है ॥२॥

सरस्वती जीके इन अर्थों को पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है कि स्वामी जी ने किस प्रकार यह अर्थ लगा दिये? इसकी खोजमें स्वामी जीके वेद भाष्य को देखने पर मालूम हुआ कि सारेही अर्थ मन घड़न्त लगाये हैं हमको ज्यादा खोज इस बात की थी कि "हम

को मुक्तिका सुख भुगाकर" इस प्रकार किन शब्दोंका अर्थ किया गया है। स्वामी जी के वेदभाष्य से मालूम हुआ कि यह अर्थ "नः" शब्द के किये गये हैं और इस प्रकार अर्थ किए हैं-

संस्कृत पदार्थ प्रथममंत्र

(नः) अस्मान्

भाषापदार्थ प्रथममंत्र

(नः) मोक्षको प्राप्त हुएभी हमलोगोंको।

संस्कृतपदार्थ दूसरामंत्र

(नः) अस्मभ्यम्

भाषापदार्थ दूसरा मंत्र

(नः) हमको-

हम को आश्चर्य है कि प्रथममंत्र के भावार्थ में जो "नः" शब्दका अर्थ "मोक्ष को प्राप्त हुए भी हम लोगों को" किया गया है वह किस व्याकरण वा कोश के आधार पर किया गया है? शायद स्वामी जी के पास कोई गुप्त पुस्तक हो वा परमेश्वर ने स्वामी जी के कान में कह दिया हो कि यद्यपि शब्दार्थसे मालूम नहीं होता परन्तु मेरा अभिप्राय ही यह है और इस अभिप्राय को मैं ने आज तक किसी पर नहीं खोला एक तुम पर ही खोलता हूं क्योंकि तुम साक्षात् सरस्वती हो-

प्यारे भाइयो! दयानन्द जी इस एक "नः" शब्द के अपने कल्पित अर्थ के ही आधार पर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मुक्ति प्राप्त होकर भी जीव फिर जन्म लेता है परन्तु स्वामी जी से कोई पूछे कि "नः" के अर्थ हम को वा हमारे लिये तो सब जानते हैं परंतु आप के गुरू ने ऐसी कौनसी अद्भुत अष्टाध्यायी व्याकरण आप को दिया है जिस के आधार पर "नः" शब्द का अर्थ आप ने "मोक्षको प्राप्त हुवे भी हम लोगों" ऐसा करके सारे मंत्र का ही अर्थ बदल दिया और मुक्ति से लौटना वेदों में दिखाकर सर्व पूर्वाचार्यों के वाक्य झूठे कर दिये-

इन मंत्रों (ऋचाओं) का जो अर्थ स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में किया है उस का अभिप्राय तो यह मालूम होता है कि इन मंत्रों के द्वारा ईश्वर ने जगत् के मनुष्यों को यह सिखाया है कि माता पिता के दर्शन इतने आवश्यक हैं कि उन के वास्ते मुक्तिसे लौटकर फिर जन्म लेने की आवश्यक्ता है। इस ही वास्ते प्रथम मंत्र में उस महान् देवता की खोज की गई है जो जीव का यह भारी उपकार कर कर दे कि लौटकर माता पिता के दर्शन करादे और दूसरे मंत्र में उत्तर दिया गया है कि ऐसा उपकारी महान् देव परमेश्वर ही है परन्तु वेदभाष्य में स्वामी दयानंद जी इस से भी अगाड़ी बढ़े हैं और प्रथममंत्र के अर्थ में इस प्रकार लिखा है:-

जिनसे कि हम लोग पिता और माता और स्त्री पुत्र बन्धु आदि को देखने की इच्छा करें-

और दूसरे मंत्र के अर्थ में इस प्रकार लिखा है-

जिस से हम लोग फिर पिता और माता और स्त्री पुत्र बंधु आदि को देखते हैं--

अर्थात् वेदभाष्यके अर्थों के अनुसार माता पिता के दर्शनों के कारण नहीं वरण संसार के सर्व प्रकार के मोह के कारण वेद में इन मंत्रों द्वारा ऐसे महान् देवता के तलाश की शिक्षा दी गई है जो मोक्ष से निकाल कर फिर जन्म देवे ।

कुछ भी हो हम तो स्वामी दयानंद सरस्वती जी के साहस की प्रशंसा करते हैं हम ने इस लेख में सांख्य दर्शन के अनेक सूत्र लिखकर दिखाया है कि सांख्य दर्शन ने मुक्ति से लौटनेका स्पष्ट खंडन किया है परन्तु स्वामी जी ने उपनिषदों और व्यास जी के शारीरक सूत्र को असत्य सिद्ध करने और मुक्ति से लौटकर संसार में पड़ने की आवश्यकता साबित करने के वास्ते सांख्य का भी एक सूत्र सत्यार्थप्रकाश में दिया है आगामी में हम उस की भी व्याख्या करेंगे और सांख्यदर्शन के शब्द शब्दसे नित्य मुक्ति दिखावेंगे ।

आर्यमत लीला ।

(सांख्यदर्शन और मुक्ति)

(२४)

सांख्यदर्शन को स्वामी दयानन्दजी ने इतना गौरव दिया है और ऐसा मुख्य माना है कि उपनिषद् और महात्मा व्यास जी के शारीरक सूत्र में मुक्तिसे लौट कर फिर नहीं आने के विषय में जो लेख हैं उनको झूठा करने के मतलबमें सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३९ पर सांख्य का यह सूत्र दिया है:-

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः।"

और अर्थ इसका इस प्रकार किया है:- "जैसे इस समय बंध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त विच्छेद बंध मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती-"

पाठकगण ? सांख्यदर्शन में स्वयम् बहुत जोर के साथ मुक्तिसे लौटने का निषेध किया है जैसा निम्न सूत्रोंसे विदित होता है:—

'न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्ति श्रुतेः ॥ सां० अ० ६ सू० १७

अर्थ—मुक्त पुरुष का फिर दोबारा बंध नहीं हो सक्ता है क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि मुक्तजीव फिर नहीं लौटता है ॥

"अपुरुषार्थत्वमन्यथा" ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १८

अर्थ—यदि जीव मुक्तिसे फिर बन्धन में आ सक्ता हो तो पुरुषार्थ अर्थात् मुक्तिका साधन ही व्यर्थ हो जावे--

ऐसी दशा में यह संभव ही नहीं सक्ता कि सांख्यदर्शन में कोई एक सूत्र क्या वरण कोई एक शब्द भी ऐसा हो जिससे मुक्तिसे लौटना प्रकट होता हो-फिर स्वामी दयानन्दजीने उपर्युक्त सूत्र कहांसे लिख मारा ? इसकी जांच अवश्य करनी चाहिये--

प्यारे आर्य्य भाइयो ! उपर्युक्त सूत्र

सांख्य दर्शनके प्रथम अध्याय का १५९ वां सूत्र है जो अद्वैतवादके खंडनमें है- सूत्र १४९ से अद्वैतका खंडन प्रारम्भ किया है यथाः—

"जन्मादि व्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ॥ सां० अ० १ ॥ सू० १४९

अर्थ—जन्मआदि की व्यवस्थासे पुरुषोंका बहुत होना सिद्ध होता है अर्थात् पुरुष एक नहीं है वरण अनेक हैं इस प्रकार अद्वैत के विरुद्ध लिखते हुये और उस का खण्डन करते हुये सांख्य इस प्रकार लिखता हैः--

"वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम्., ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ १५५

अर्थ—वामदेव आदि मुक्त हैं यह अद्वैत नहीं है क्योंकि इससे तो द्वैत सिद्ध होता है कि अमुक पुरुष तो मुक्त हो गया और अन्य नहीं हुए। अद्वैत तो तब हो जब कि सर्वजीव मुक्त होकर ब्रह्म में लय हो जावें और सिवाय ब्रह्म के और कुछ भी न रहै। परन्तु-

"अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम्" ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ १५८

अर्थ—अनादिकाल से अब तक सर्व जीव मुक्त होकर अद्वैत सिद्ध हुआ नहीं तो भविष्यत कालमें कैसे होसक्ता है? क्योंकि (अब वह सूत्र लिखते हैं जिसको स्वामी जी ने लिखा है)

"इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः" ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ १५९

अर्थ—वर्त्तमान् काल के समान कभी भी सर्वनाश नहीं होता है। भावार्थ- जैसा वर्त्तमान कालमें संसार विद्यमान है और पृथक २ जीव हैं इस ही प्रकार सर्व काल में भी समझना चाहिये--ऐसा कभी नहीं होता कि संसार का सर्वनाश हो कर सब कुछ ब्रह्ममें लय हो जावे और एक ब्रह्म ही ब्रह्म रह जावे—

आश्चर्य है कि इस सूत्र के अर्थमें सरस्वतीजी ने यह किस शब्द का अर्थ लिख दिया "किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती.,

यदि सांख्यदर्शनको स्वामी जीने आद्योपांत पढ़ा होता और उनके हृदय में यह बात न होती कि अविद्या अंधकार फैला हुआ है, भोले मनुष्य जिस तरह चाहें बहकाये जा सक्ते हैं तो मुक्तिमें लौटने के सबूत में कभी भी वह सांख्यदर्शन का नाम तक न लेते क्योंकि सांख्यदर्शनके तो पद २ और शब्द २ से मुक्ति सदा होके वास्ते सिद्ध होती है—सांख्य ने बड़ी बड़ी युक्तियोंसे मुक्ति से न लौटना सिद्ध किया है यथाः—

"प्रकारान्तरासम्भवादविवेकएवबंधः॥ सां० अ० ६ ॥ सू० १६

अर्थ-अन्य प्रकार संभव न होनेसे अविवेकही बंध है—अर्थात् बंधका कारण अविवेकही है अन्य कोई भी कारण बंधके वास्ते सम्भव नहीं है।

"नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम्" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६८॥

अर्थ--अपेक्षा न होने में भी प्रकृति

के उपकारमें अविवेक निमित्त है अर्थात् यद्यपि जीव और प्रकृति का संबंध नहीं तो भी प्रकृति से जो कार्य होते हैं अर्थात् जीव का बंधन होकर वह अनेक प्रकार के नाच नाचता है उस का निमित्त अविवेकही है—

"इतर इतरवत्तद्दोषात्" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६४ ॥

अर्थ-जिसको ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ वह अज्ञानीके समान अज्ञान दोष से बंधन में रहता है—

"अनादिरविवेको अन्यथा दोषद्वय प्रसक्तेः" ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १२।

अर्थ--अविवेक अनादि है अन्यथा दो दोष होनेका प्रसंग होने से अर्थात अविवेक जिसके कारण जीव बंधन में पड़ा हुआ है वह जीवके साथ अनादिकाल से लगा हुआ है—यदि ऐसा न माना जावे तो दो प्रकार के दोष प्राप्त होते हैं--प्रथम यदि अविवेक अनादि नहीं है और किसी कालमें जीव उससे पहिले बंध में नहीं था अर्थात् मुक्त था ऐसा मानने से यह दोष आयो कि मुक्त जीव भी बंधन में फस जाते हैं परन्तु ऐसा होना असम्भव है। दूसरा दोष यह है कि यदि अविवेक अनादि नहीं है और किसी समय जीव में उत्पन्न हुआ तो उसके उत्पन्न होनेका कारण क्या है?—कर्म आदिक भी जो कारण अविवेक पैदा होनेके वर्णन किये जावें यदि उनका भी कारण ढूंढा जावे तो अविवेक ही होगा इस हेतु अनव स्था दोष हो जावेगा लाचार यह ही मानना पड़ेगा कि अविवेक जीव के साथ अनादि है—

"न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः" ॥ सां० अ० ६ ॥ सू० ॥ १३

अर्थ-अविवेक आत्माके समान नित्य नहीं है क्योंकि यदि नित्य हो तो उसका नाश नहीं हो सक्ता अर्थात् अविवेक जीव के साथ अनादि है परंतु वह नित्य नहीं है और आत्मा नित्य है इस कारण अविवेक का नाश हो जाता है—

"प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्यध्वान्तवत्" ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १४ ॥

अर्थ-जिस प्रकार प्रकाश से अंधकार का नाश हो जाता है इसही प्रकार नियमित कारणोंसे अविवेक का भी नाश हो जाता है। अर्थात् विवेक प्रकट हो जाता है।

"विमुक्तबोधान्नसृष्टिः प्रधानस्य लोकवत् ॥ सां० ॥ ६ सू० ४३ ॥

अर्थ--विमुक्त बोध होने से लोकके तुल्य प्रधान की सृष्टि नहीं होती—अर्थात जब प्रकृतिको यह मालूम हो गया कि अमुक जीव मुक्त होगया है तो वह प्रकृति उस जीवके वास्ते सृष्टि को नहीं रचती अर्थात् फिर वह जीव बंधनमें नहीं आता।

"नान्योपसर्पणेऽपि मुक्तोपभोगो निमित्ताभावात्" ॥ सां० ॥अ०६॥ सू०४४

अर्थ--यद्यपि प्रकृति अविवेकियोंको बंधनमें फंसाती रहती है परन्तु किसी

प्रकार भी मुक्त जीवको बंधनमें नहीं फंसासक्ती है क्योंकि जिस निमित्तसे प्रकृति जीवोंको बन्धनमें फंसा सक्ती है वह निमित्त ही मुक्तजीवमें नहीं होता है। भावार्थ--जीव अविवेक से बंधनमें पड़ता है वह मुक्तजीवमें रहता ही नहीं फिर मुक्त जीव कैसे बंधनमें पड़ सक्ता है?

"नर्तकीवत्प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात्" ॥ सां ॥ अ० ३॥ सू० ६९ ॥

अर्थ--नाचनेवालीके समान चरितार्थ होनेसे प्रवृत्तकी भी निवृत्ति होती है अर्थात् जिस प्रकार नाचने वाली उसही समय तक नाचती है जब तक उसका नाच देखने वाला देखना चाहता है। इसही प्रकार प्रकृति उसही समय तक जीवके साथ काम करके प्रवृत्ति होती है जब तक जीव उसमें रत रहता है अर्थात् उसको अविवेक रहता है और जब जीवको ज्ञान प्राप्त होजाता है और प्रकृतिसे उदासीन होजाता है तब प्रकृति भी उसके अर्थ प्रवृत्ति करना छोड़देती है ॥

"दोषबोधेऽपिनोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत्" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ७० ॥

अर्थ--दोषके ज्ञात होजाने हीसे कुल बधूके समान प्रधान अर्थात् प्रकृतिका पास जाना नहीं होता--अर्थात् जिस प्रकार अच्छे घरोंकी स्त्री दोष मालूम होने पर पतिको मुंह नहीं दिखाती इसही प्रकार जब जीवको ज्ञान होगया और यह जान गया कि प्रकृति ही में रत होनेके कारण भ्रष्ट होरहा हूं और संसार भ्रमण कर रहा हूं तब फिर दोबारा वह कैसे प्रकृतिसे रत होसक्ता है? एक वार मुक्त हुआ जीव सदा ही के वास्ते मुक्त रहेगा प्रकृति को तो उसके पास भी फटकनेका हौंसला नहीं होगा।

"विविक्तबोधात्सृष्टि निवृत्तिःप्रधानस्य सूदवत्पाके" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६३ ॥

अर्थ--जीवमें ज्ञान प्राप्त होजाने पर प्रधान अर्थात् प्रकृतिकी सृष्टि निवृत्ति होजाती है जैसे रसोइया रसोई बन जाने पर अलग होजाता है फिर उसे कुछ करना बाकी नहीं रहता है।

महाराज कपिलाचार्य्य ऐसी दशाको मुक्ति ही नहीं मानते हैं जहांसे फिर लौटना हो वहतो मुक्त उसहीको मानते हैं जो सदाके वास्ते हो और मुक्ति के वास्ते पुरुषार्थ करनेका हेतुही उन्होंने यह वर्णन किया है कि उसमें सदा के वास्ते दुःखोंसे निवृत्ति रहती है यथा--

"नदृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्। सां० ॥ अ० १॥ सू० २ ॥

अर्थ--जो पदार्थ जगत्में दिखाई देते हैं उनकी प्राप्ति से दुखोंकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती क्योंकि जगतमें देखा जाता है कि दुःख दूर होकर भी कुछ समयकेपश्चात् फिर दुःख प्राप्त होजाताहै

"नानुश्रविकादपितत्सिद्धिःसाध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥ सां० ॥ अ० ॥ १ सू० ८२ ॥

अर्थ--वेदोक्त कर्मोंसे भी मुक्ति नहीं होसक्ती क्योंकि यदि उनसे कार्यसिद्धि भी हो अर्थात् स्वर्गादि प्राप्ति भी हो तबभी वहांसे फिर वापिस आना होगा

"नकारणलयात्कृतकृत्यतामग्नवदुत्थानात्" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ५४

अर्थ--कारणमें लय होने से कृतार्थता नहीं है मग्नके समान फिर उठनेसे अर्थात् अद्वैत वादियोंके अनुसार यदि एक ब्रह्म ही माना जावे और सर्व जीवोंको ब्रह्मकाही स्वरूप कहाजावे और जीवके ब्रह्ममें लय होजानेको मुक्ति माना जावे तो कार्य सिद्ध नहीं होता है क्योंकि कृतकृत्यता तो तब हो जब कि फिर कभी बंधन न होवे परन्तु यदि एक ही ब्रह्म है और उस ही का अंश बंधन में आकर जीव रूप होजाता है तो जीव ब्रह्ममें लय होनेके पश्चात् फिर बंधनमें आसक्ता है अर्थात् डुबकी की दशा रहेगी---

पाठक! देखो, सांख्य दर्शनमें महर्षि कपिलाचार्यने मुक्तिसे वापिस लौटने के सिद्धांतका कितना जोरके साथ विरोध किया है और स्वामी दयानन्दने उनके एक सूत्रका कितना दुरुपयोग करके भोले मनुष्योंको अपने मायाजालमें फंसानेकी चेष्टा की है।

हम अपने आर्य भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे अपने मान्य ग्रन्थ सांख्य दर्शन को आद्योपान्त पढ़ें और स्वामी दयानन्दके वाक्योंको ही ईश्वर वाक्य न समझकर कुछ उनकी परीक्षाभी किया करें। अब हम आगामी लेखमें यह सिद्ध करेंगे कि स्वामी दयानन्दने मुक्ति के विषयमें जो २ कपोल कल्पित सिद्धांत सत्यार्थप्रकाशमें वर्णन किये हैं वे सब उनके मान्य सांख्य दर्शन से खण्डित होते हैं।

॥ आर्यमत लीला ॥

(६५)

पिछले अंक में हमने स्वामी दयानन्द और आर्य भाइयोंके परम मान्य सांख्य दर्शन से दिखाया है कि महर्षि कपिलाचार्य ने किस जोर के साथ मुक्ति से वापिस आनेके सिद्धान्त का विरोध किया है और पूरे तौर पर सिद्ध किया है कि मुक्ति से कदाचित् भी जीव वापिस नहीं आसक्ता है अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि मुक्ति के विषय में जो जो कपोल कल्पित सिद्धान्त दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में वर्णन किये हैं वह सबही उनके मान्य ग्रन्थ सांख्य दर्शन से खंडित होते हैं।

स्वामी जी मुक्ति से वापिस आनेके सिद्धांत को सिद्ध करने के वास्ते एक अद्भुत सिद्धान्त यह स्थापित करते हैं कि मुक्ति भी कर्मों का फल है और इस बात को लेकर सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि कर्म अनित्य हैं नित्य नहीं हैं सब जीव कर्मों का फल ईश्वर देता है इस हेतु यदि ईश्वर अनित्य कर्मों का फल नित्य मुक्ति देवे तो

वह अन्यायी हो जावे इस कारण ईश्वर अनित्य ही मुक्ति देता है।

यद्यपि यह बात सब जानते हैं कि मुक्ति कर्मों का फल नहीं हो सकती वरण कर्मों के क्षय होनेका नाम मुक्ति है परन्तु अपने आर्य्य भाइयों को समझाने और सत्य मार्ग पर लाने के वास्ते हम उन के परममान्य ग्रन्थ सांख्य दर्शन से ही सरस्वती जी की अविद्या को सिद्ध करते हैं-और उनके माया जाल से अपने भाईयों को बचाने की कोशिश करते हैं:-

"न कर्मणा उपादानत्वायोगात्" सां० अ० १ सू० ८१

अर्थ-कर्मसे मुक्ति नहीं है क्योंकि कर्म उसका उपादान होने योग्य नहीं है।

काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वा विशेषात्। सां० अ० १ सू० ८५ ॥

अर्थ-चाहे कर्म निष्काम हो चाहे सकाम हो परन्तु कर्म से मुक्ति नहीं है क्योंकि दोनों प्रकार के कर्म के साधन में समानता है।

आर्य्य धर्म के मुख्य प्रचारक स्वामी दर्शनानन्द ने इस सूत्र की पुष्टिमें यह श्रुति भी लिखी है।

"न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागे नैकेऽमृतत्वमानशुः"

अर्थात् न तो कर्मसे मुक्ति होती है न प्रजासे न धन से

निजमुक्तस्य बंधध्वंसमात्रं परं न समानत्वम्" सां० अ० १ सू० ८६ ॥

अर्थ-आत्मा स्वभाव से मुक्त है इस हेतु मुक्ति प्राप्त होना बंध की निवृत्ति होना अर्थात् दूर होना है समान होना नहीं है-

भावार्थ--बंध का नाश होकर निज शक्ति का प्रकट होना मुक्ति है किसी वस्तु का प्राप्त होना या किसी परशक्ति का उत्पन्न होना मुक्ति नहीं है इस हेतु मुक्ति किसी प्रकार भी कर्मोंका फल नहीं हो सकती है।

"न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेश विधिः" ॥सां० अ० १ सू० ७

अर्थ-बंध में रहना जीव का स्वभाव नहीं है क्योंकि यदि ऐसा होवे तो मोक्ष साधन का उपदेश ही व्यर्थ ठहरे।

नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टेऽप्यनुपदेशः। सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९

अर्थ--जो अशक्य है (नहीं हो सकता) उसका उपदेश नहीं दिया जाता क्योंकि उपदेश दिये जाने पर भी न दिये जाने की बराबर है अर्थात् किसी को उसका उपदेश नहीं होता।

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठान लक्षणमप्रामाण्यम्„ ॥सां०॥ अ० ॥१॥ सू० ८

अर्थ-स्वाभाविक गुण अविनाशी होते हैं इस कारण श्रुतिमें जो मोक्ष साधन का उपदेश है वह अप्रमाण हो जावेगा।

नित्य मुक्तत्वम्-सां ॥अ०१। सू० १६२

अर्थ-स्वाभाव से जीव नित्य मुक्तही है अर्थात् निश्चय नय से वह सदा मुक्त ही है।

औदासीन्यं चेति ॥ सां॥ अ० १ सू० १६३

अर्थ--और निश्चय नय से वह सदा उदासीन भी है-

स्वामी दयानन्द जी की जितनी बातें हैं वह सब अद्भुत ही हैं वह सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि, मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् मुक्ति जीव अपनी इच्छा के अनुसार आनन्द भोगता हुआ चलता फिरता रहता है, मुक्ति जीवों से मेल मुलाकात करता है और जगत् के सर्व पदार्थों का आनन्द लेता फिरता रहता है,-इसके विरुद्ध जैनियों ने जो मुक्तिजीव के एक स्थान में अपनी आत्मा में स्थिर और अपने ज्ञान स्वरूप में मग्न रहना लिखा है उन का सत्यार्थप्रकाश में मखौल उड़ाया है--

इसलिये इस विषयमें स्वामी दयानन्द जीके मान्य ग्रन्थ सांख्यदर्शन से क्या सिद्ध होता है--

निर्गुणादिश्रुति विरोधश्चेति । सां० अ० १ सू० ५४ ॥

अर्थ-साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च इत्यादिक श्रुतियोंमें जीव को निर्गुण कहा है यदि कोई क्रिया वा कर्म जीव में माने जावेंगे तो श्रुतिसे विरोध होगा--

निर्गुणत्वमात्मनोऽसंगत्वादिश्रुतेः सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १० ॥

अर्थ-श्रुति में जीव को असंग वर्णन किया है इस कारण जीव निर्गुण है--

निष्क्रियस्य तदसंभवात् ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ४९

अर्थ-क्रिया रहित को वह असंभव होने से-अर्थात् जीव क्रिया रहित है उस में गति असम्भव है-क्रिया और गति प्रकृतिका धर्म है-गति का वर्णन इस से पूर्व के सूत्र में है।

"न कर्मणाप्य तद्धर्मत्वात्" ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ५२

अर्थ-कर्मसे भी पुरुषका बंधन नहीं है क्योंकि कर्म जीवका धर्म नहीं है वरण देहका धर्म है ॥

"उपरागात्कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात्" ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० १६४

अर्थ-जीव में जो कर्तापना है वह चित्त अर्थात् मन के संसर्ग से उपराग पैदा होने से है—

"असंगोऽयं पुरुष इति" सां अ० १ सू० ५५ ॥

अर्थ-पुरुष संग रहित है अर्थात् अपने स्वभाव में स्थित स्वच्छ और निर्मल है।

प्यारे आर्य भाइयो ! जब मुक्तजीव के प्रकृति से बना शरीर ही नहीं है वरण मुक्ति दशा में वह असंग निर्मल और स्वच्छ है और क्रिया प्रकृति का धर्म है अर्थात जो क्रिया संसारी जीव करता है वह सत, रज, तम इन तीन गुणों में से किसी एक गुण के आश्रित करता है और यह तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं मुक्तिदशा में प्रकृति से अलग होकर जीव निर्गुण हो जाता है तब उनसे चलना फिरना आदिक काम कैसे बन सकते हैं ?

"द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः"

सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६५

अर्थ-दोनों वा एक का उदासीन होना मोक्ष है-अर्थात् जीव और प्रकृति दोनों का वा इन दोनों में से एक का उदासीन हो जाना अर्थात् दोनों का सम्बन्ध छूट जाना ही मोक्ष कहलाता है-

पाठक गणो ! जरा मुक्ति के साधन पर ही ध्यान दो कि सांख्य में क्या लिखा है ? इस ही से विदित हो जावैगा कि मुक्तिजीव स्थिर रहते हैं वा अन्य मुक्तिजीवों से मुलाकात करते फिरते रहते हैं--

तत्वाभ्यासान्नेतिनेतीति त्यागाद्विवेकसिद्धिः ॥ सां० ॥अ० ३ ॥ सू० ७५

अर्थ--यह आत्मा नहीं यह आत्मा नहीं है इस त्याग रूप तत्व अभ्यास से विवेक की सिद्धि है-अर्थात् जीव जिस को अपने से पृथक् समझता जावे उस को त्याग करता जावे इस प्रकार त्याग करते करते सर्व का त्याग हो जावेगा और केवल अपने ही आत्मा का विचार रह जावेगा यह ही विवेक है इस से मुक्ति है । देह गेह आत्मा नहीं, स्त्री पुत्रादिक जगत सब जीव के आत्मा से भिन्न हैं और इस ही प्रकार जगत् के सर्व पदार्थ भिन्न हैं इस प्रकार आत्मबोध हो जाता है--

(नोट) परन्तु क्या बोध प्राप्त होने के पश्चात् अर्थात् मुक्ति प्राप्त करके फिर अन्य वस्तु अर्थात मुक्तिजीवों वा जगत् की अन्य वस्तु की ओर चित्त लगा सकता है ?

ध्यानं निर्विषयं मनः ॥ सां० अ० ६ सू० २५

अर्थ-मनको विषय से रहित करने का नाम ध्यान है-

रागोपहतिर्ध्यानम् ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ३०

अर्थ-राग के नाश का जो हेतु है वह ध्यान है ॥

वृत्ति निरोधात् तत्सिद्धिः ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० ३१

वृत्ति के निरोध से ध्यान की सिद्धि होती है ।

प्यारे पाठको ! सांख्य ने मुक्ति को प्राप्त होना कृतकृत्य होना सिद्ध किया है अर्थात् जिस के पश्चात् कुछ भी करना बाकी न रहे । परन्तु अफसोस है कि स्वामी दयानन्द जी संसारी जीवों की तरह मुक्त जीवों को भी कामों में फंसाते और आनन्द प्राप्ति की सड़क में कल्पित शरीर बनाकर जगत् भर में मुक्ति जीवोंका भ्रमण करा कर सत्यार्थप्रकाश में वर्णन करते हैं -

विवेकान्निःशेष दुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात् ॥ सां० ॥ अ०३सू०८४

अर्थ-विवेक से समस्त दुःख निवृत्त होने पर कृत कृत्यता है दूसरे से नहीं अर्थात् पूर्ण ज्ञान होने ही से दुःखकी पूरी पूरी निवृत्ति होती है और जब पूर्ण ज्ञान हो गया तब कुछ करना बाकी नहीं रहा अर्थात कृतकृत्य हो जाता है -

अत्यन्त दुःख निवृत्या कृतकृत्यता ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० ५ ॥

अर्थ-दुःख की अत्यंत निवृत्ति से कृत कृत्यता होती है-अर्थात् जीव कृत कृत्य तब ही होता है जब दुःख की बिल्कुल निवृत्ति हो जावे किसी प्रकार का भी दुःख न रहे--

यथा दुःखात्क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ॥ सां० ॥ अ० ६ सू० ६

अर्थ--जीवको जैसा दुःख से द्वेष होता है ऐसी सुखकी अभिलाषा नहीं है।

यद्वातद्वातदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः" ॥ सां० अ०६ ॥ सू० ७०

अर्थ--जिस किसी निमित्तसे हो उस का नाश पुरुषार्थ है अर्थात जीव और प्रकृति का सम्बंध जो अनादि काल से हो रहा है वह चाहे कर्म निमित्त से हो चाहे अविवेक से हो वा यह सम्बंध किसी अन्य कारण से हो परन्तु इस सम्बंध का नाश करना ही पुरुषार्थ है क्योंकि इस संबंध ही से दुःख है और इस संबंध के नाश ही से जीव की शक्ति प्रकट होती है-

स्वामीदयानन्द जी तो ऐसी आज़ादी में आए हैं कि स्वर्ग और नरक से भी इन्कार कर दिया है वरण ऐसी अंगरेजियत में आए हैं कि जगत् में ऊपर नीचे की अवस्था को ही आप नहीं मानते वरण जैनियोंका जो यह सिद्धांत है कि मोक्ष स्थान लोक शिखर पर है इस बात को हंसी इस ही हेतु से उड़ाई है कि ऊपर नीचे कोई अवस्था ही नहीं हो सकती है परन्तु सांख्य दर्शन में ऊपर नीचे सब कुछ माना गया है:—

"दैवादिप्रभेदाः" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ४६

अर्थ सृष्टि वह है जिस में देव आदि भेद हैं अर्थात् देव-नारकी मनुष्य और तिर्यंच-

"ऊर्ध्वं सत्व विशाला" ॥ सां ॥ अ० ३ ॥ सू० ४८

अर्थ-सृष्टि के ऊपर के विभाग में सत्वगुण अधिक है-अर्थात् ऊपर के भाग में सतोगुणी जीव रहते हैं भावार्थ ऊपर स्वर्ग है जहां देव रहते हैं।

"तमो विशाला मूलतः" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ४९

अर्थ सृष्टि के नीचे के विभाग में तमोगुण अधिक है-अर्थात् नीचे के भाग में तमोगुणी जीव रहते हैं भावार्थ नीचे नरक है जहां नारकी रहते हैं।

मध्ये रजो विशाला ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ५०

अर्थ--सृष्टि के मध्य में रजोगुण अधिक है-भावार्थ मध्य में मनुष्य और तिर्यंच रहते हैं--

आगे लेख में हम दिखलावैंगे कि सांख्य दर्शन में कर्ता ईश्वर का भली भांति खंडन किया है और मुक्तिजीवों की ही पूजा उपासना और जीवन मुक्त अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् जब तक शरीर रहै उन का ही उपदेश मानने के योग्य है और किसी का नहीं।

आर्यमतलीला ।

सांख्यदर्शन और ईश्वर

(२६)

प्रिय पाठको ! स्वामी दयानन्दजीने यह प्रकट किया है कि वह षट्दर्शनके मानने वाले हैं और उनके अनुयायी हमारे आर्य भाई भी ऐसा ही मानते हैं—षट्दर्शनोंमें सांख्यदर्शन भी है जो बड़े जोरसे अनेक युक्तियोंके साथ कर्ता ईश्वर का खण्डन करता है और जीव और प्रकृति यह दोही पदार्थ मानता है--इस कारण आर्य भाइयोंको भी ऐसा ही मानना उचित है--

प्यारे आर्य भाइयो ! सांख्यशास्त्रको देखिये और स्वामी दयानन्दजीके भ्रम जालसे निकल कर सत्य का ग्रहण कीजिये जिससे कल्याण हो--देखिये हम भी कुछ सारांश सांख्य के हेतुओं का आपको दिखाते हैं--

" नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः " ॥ सां० ॥ अ० ५॥ सू० २

अर्थ -ईश्वरके अधिष्ठित होनेमें फलकी सिद्धि नहीं है कर्मसे फलकी सिद्धि होनेसे अर्थात् कर्मों ही से स्वाभाविक फल मिलता है यदि ईश्वरको फल देने वाला मानाजावे और कर्मों ही से स्वाभाविक प्राप्ति न मानी जावे तो ठीक नहीं होगा और फलकी प्राप्तिमें बाधा आवेगी -

" न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियत कारणत्वात् ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ६

अर्थ--प्रतिनियत कारण होनेसे बिना राग उसकी सिद्धि नहीं--अर्थात् बिना राग के प्रवृत्ति नहीं हो सकती है इस कारण ईश्वरका कुछ भी कार्य मानाजावे तो उसमें राग अवश्य मानना पड़ेगा--

" तद्योगोऽपि न नित्यमुक्तः " ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ७ ॥

अर्थ--यदि उसमें राग भी मानलिया जावे तो क्या हर्ज है इसका उत्तर देते हैं कि फिर वह नित्यमुक्त कैसे माना जावेगा ? ईश्वरके मानने वाले उसको नित्यमुक्त मानते हैं उसमें दोष आवेगा-

" प्रधानशक्तियोगाच्चेत् सङ्गापत्तिः " ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ८

अर्थ--जिस प्रकार कि जीवके साथ प्रकृतिका संग होकर और राग आदि पैदा होकर संसारके अनेक कार्य होते हैं इस ही प्रकार यदि ईश्वरका सृष्टि कर्त्तापन प्रधान अर्थात् प्रकृति के संग से मानाजावे तो उसमें संगी होने का दोष आता है ।

" सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् " ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ९

अर्थ--यदि यह मानाजावे कि प्रकृति का संग सत्तामात्र है -जिस प्रकार मणि के पास डांक रखने से मणिमें डांकका रंग दीखने लगता है इस ही प्रकार प्रकृतिकी सत्तासे ही ईश्वर काम करता है प्रकृति उस में मिल नहीं जाती, तो जितने जीव हैं वह सबही ईश्वर हो जावेंगे क्योंकि जितने संसारी जीव हैं उन की व्यवस्था सांख्यने इसही प्रकार मानी है ॥

"प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः" ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० १०

अर्थ--ईश्वरकी सिद्धिमें कोई प्रमाण नहीं घटता है इस कारण ईश्वर हैही नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाण तो ईश्वरके विषय में है ही नहीं क्योंकि ईश्वर नजर नहीं आता इस कारण अनुमान की बाबत कहते हैं।

"सम्बन्धा भावान्नानुमानम्" ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ११

अर्थ--सम्बन्ध के अभाव से अनुमान भी ईश्वरके विषयमें नहीं लगता है-अर्थात् बिना व्याप्तिके अनुमान नहीं हो सकता है।

साधन का साध्य वस्तु के साथ नित्यसम्बंध को व्याप्ति कहते हैं। जब यह संबंध पहले प्रत्यक्ष देख लिया जाता है तो पीछे से उन सम्बंधित वस्तुओं में से साधन के देखने से साध्य वस्तु जान ली जाती है इस को अनुमान कहते हैं-जैसे कि पहले यह प्रत्यक्ष देखकर कि धुआं जब पैदा होता तब अग्निसे होता है अग्नि और धूएं का सम्बंध अर्थात् व्याप्ति मान-ली जाती है पश्चात् धूएं को देखकर अग्नि का अनुमान कर लिया जाता है परन्तु ईश्वर का प्रत्यक्ष ही नहीं है इस हेतु उसका किसी से संबंध ही कैसे माना जावे और कैसे व्याप्ति कायम की जावे जिससे अनुमान हो जब सम्बंध ही नहीं तो अनुमान कैसे हो सकता है--

श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य ॥ सां० ॥ अ० ५ सू० १२

अर्थ-यदि यह कहा जावे कि प्रत्यक्ष और अनुमान नहीं लगते हैं तो शब्द प्रमाण से ही ईश्वर को मान लेना चाहिये-इसके उत्तर में सांख्य कहता है कि श्रुति अर्थात् उन शास्त्रों में जिन का शब्द प्रमाण हो ईश्वर का वर्णन नहीं है वरण श्रुति में भी सर्व कार्य प्रधान अर्थात् प्रकृति के ही बताये गये हैं--

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १८९ पर सांख्य के यह तीन सूत्र दिये हैं--

"ईश्वरा सिद्धेः" ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९२

"प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः" सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० १०

"सम्बन्धाभावान्नानुमानम्" ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ११

और अर्थ इनका सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १९० पर इस प्रकार सरस्वती जी ने लिखा है -प्रत्यक्ष से घट सकते ईश्वर की सिद्धि नहीं होती ॥१॥ क्योंकि जब उसकी सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं हो सकता ॥२॥ और व्याप्ति सम्बंध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता पुनः प्रत्यक्षानुमान के न होने से शब्द प्रमाण आदि भी नहीं घट सकते इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं होसक्ती।

इसका उत्तर सरस्वती जी इस प्रकार देते हैं।

(उत्तर) यहां ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है और न ईश्वर जगत् का उपादान कारण है और पुरुष से विलक्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण होने से परमात्मा का नाम पुरुष और शरीर में शयन करने से जीव का भी नाम पुरुष है क्योंकि इसी प्रकरण में कहा है-

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्संगापत्तिः ॥ सां० ॥ अ० ॥ ५ ॥ सू० ८

सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्य्यम् ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ९

श्रुतिरपि प्रधान कार्य्यत्वस्य ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० १२

इनका अर्थ सरस्वती जी ने इस प्रकार किया है।

यदि पुरुष को प्रधान शक्तिका योग हो तो पुरुष में संगापत्ति हो जाय अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिलकर कार्य रूप में संगत हुई है वैसे परमेश्वर भी स्थूल हो जाय इस लिये परमेश्वर जगत का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है जो चेतन से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है वैसा संसार में भी सर्वैश्वर्य्य का योग होना चाहिये सो नहीं है इस लिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान ही को जगत् का उपादान कारण कहाता है।

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः ॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् अ० ४। मं० ५ ॥

अर्थ इसका स्वामी जी इस प्रकार करते हैं।

जो जन्म रहित सत्व, रज, तमोगुण रूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थांतर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं प्राप्त होता सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है।"

इस प्रकार लिखकर सरस्वतीजी अद्भुत शैलीमें आकर इस प्रकार लिखते हैं--

"इसलिये जो कोई कपिलाचार्यको अनीश्वरवादी कहता है जानो वही अनीश्वरवादी है कपिलाचार्य नहीं।"

पाठकगण! देखो सरस्वतीजीकी उद्दण्डता! इस प्रकार लिखने वालेको सरस्वतीकी पदवी देना इस कलिकाल ही की महिमा नहीं तो और क्या है? सरस्वतीजीके इस वचनको जो प्रमाण मानते हैं उनसे हम पूछते हैं कि ईश्वर उपादान कारण न सही निमित्त कारण ही सही परन्तु कपिलाचार्यने जो यह सिद्ध किया है कि ईश्वर में कोई प्रमाण नहीं लगता है अर्थात् न वह प्रत्यक्ष है न उसमें अनुमान लगता है और न शब्द प्रमाणमें उसका वर्णन है इस हेतु ईश्वर असिद्ध है इस का उत्तर सरस्वती जी ने क्या दिया है? क्या उपादान कारणके ही सिद्ध करने के वास्ते प्रमाण होते हैं और निमित्त कारणके वास्ते नहीं? सृष्टिके वास्ते

उपादान हो चाहे निमित्त परन्तु आप के कथनानुसार वस्तु तो है और आप उस को अनादि मानते हैं इस कारण सृष्टिका नहीं परन्तु अपना तो उपादान है--वा इस स्थान पर आप यह मानलेंगे कि जो उपादान सृष्टि का है वही परमेश्वरका है? कुछ हो किसी न किसी प्रमाणसे ही सिद्ध होगा तब ही मानाजावेगा अन्यथा कैसे माना जा सकता है--कपिलाचार्य कहते हैं कि वह किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं इस कारण अवस्तु है--और सांख्यदर्शनके अध्याय ५ के सूत्र ८ और ९ के अर्थमें जो सरस्वतीजीने यह शब्द अपने कपोलकल्पित लिखमारे हैं "किन्तु निमित्त कारण है,, यह उक्त सूत्रमें तो किसी शब्दसे निकलते नहीं। यदि सरस्वती जी का कोई चेला बतादे कि अमुक रीतिसे यह अर्थ निकलते हैं तो हम उनके बहुत अनुग्रहीत हों।

इस ही प्रकार उपनिषद् का वाक्य लिखकर उसके अर्थमें जो यह लिखा है

" और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूपमें कभी नहीं प्राप्त होता सदा कूटस्थ निर्विकार रहता,, यह कौनसे शब्दोंका अर्थ है? असलमें तो ऐसा कोई शब्द है नहीं जिसका यह अर्थ कियाजावे, हां यदि सरस्वतीजीको सरस्वतीका यही वर हो कि वह अर्थ करते समय शब्दों से भिन्न भी जो चाहैं लिखदिया करैं तो इसका कुछ कहना ही नहीं है।

दयानन्दजीको यह लिखनेमें लज्जा आनी चाहिये थी कि सांख्यदर्शनके कर्त्ता कपिलाचार्य ईश्वरवादी थे--देखिये सांख्य कैसी सफाईके साथ ईश्वरसे इन्कार करता है।

"ईश्वरासिद्धेः" ॥ सां० ॥ अ० ॥ १॥ सू० ९२

अर्थ--इस कारणसे कि ईश्वरका होना सिद्ध नहीं है।

"मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्नतत्सिद्धिः सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९३ ॥

अर्थ--चैतन्य दोही प्रकारका है मुक्त और बद्ध इस से अन्य कोई चैतन्य नहीं है इस हेतु ईश्वरकी सिद्धि नहीं है।

" उभयथाप्यसत्करत्वम् ,, ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९४

अर्थ दोनों प्रकारसे ईश्वरका कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता अर्थात् यदि वह मुक्त है तो उसका विशेष क्या काम होसकता है? जैसे अन्य मुक्तजीव ऐसा ही वह और यदि वह बद्ध है तो अन्य संसारी जीवों के समान है--दोनों अवस्थाओंमें ऐसा कोई कार्य नहीं जिसके वास्ते ईश्वरको स्थापित किया जावे।

आर्यभाइयो! यदि आपकुछ भी विचारको काममें लावगे और सांख्यदर्शनको पढ़ैंगे तो आपको मालूम होगा कि सांख्यने ईश्वरवादियोंका मखौल तक उड़ाया और प्रधान अर्थात् प्रकृतिको ही ईश्वर कर दिखाया है यथाः--

"सहिसर्ववित् सर्वकर्त्ता" ॥ सां० ॥ अ० ३ सू० ५६

अर्थ--निश्चयसे वहही सब कुछ जानने वाला और सर्व कर्त्ता है।

ईदृशेश्वरसिद्धिःसिद्धा ॥ सां० ॥अ०३॥ सू० ५७

अर्थ-ऐसे ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है।

भावार्थ इन दोनों सूत्रों का यह है कि सांख्यकार जीव और प्रकृति यह दोही पदार्थ मानता है-सांख्यकार जीव को निर्गुण और क्रिया रहित अकर्त्ता सिद्ध करता है और सृष्टि के सर्व कार्य प्रकृति से ही होता हुआ बताता है इस ही कारण सांख्यकारने प्रकृति का नाम प्रधान रक्खा है और उस ही को सर्व कार्यों का कारण बताया है।

सांख्यकार कहता है कि प्रधान (प्रकृति) ही सब कुछ जानने वाला और सब कुछ करने वाला है और यदि उस को ईश्वर माना जावे तो बेशक ऐसे ईश्वर का होना सिद्ध है-

सूत्र ५८ में प्रकृति का कर्त्ता होना स्पष्ट हो जाता है-

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुंकुम वहनवत्-

अर्थ-यद्यपि प्रधान अर्थात् प्रकृति सृष्टि को करती है परंतु यह सृष्टि दूसरों के लिये है क्योंकि उस में स्वयं भोग की सामर्थ्य नहीं है भोग उसका जीव ही करते हैं, जैसे ऊंट का कुंकुम को लादकर ले जाना दूसरोंके लिये है-

और सूत्र ५९ में प्रकृति के समझदारी के कार्य सिद्ध किये हैं-

"अचेतनत्वेऽपिक्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य"-

अर्थ-यद्यपि प्रधान अर्थात् प्रकृति अचेतन है परंतु दुग्ध की तरह कार्य उसके चेष्टित होते हैं-

कपिलाचार्य्य ने सांख्यदर्शन में ईश्वर की असिद्धिमें इतना जोर दिया है कि प्रथम अध्याय के सूत्र ९२, ९३, और ९४ में जैसा कि इन सूत्रों का अर्थ हमने ऊपर दिया है, ईश्वर की असिद्धि साफ साफ दिखाकर आगे यहां तक लिखा है कि पूजा उपासना भी मुक्त जीवों की ही है और शब्द भी उनके ही प्रमाण हैं न किसी एक ईश्वर की पूजा उपासना है और न उसका कोई शब्द वा उपदेश प्रमाण है जैसा कि निम्न लिखित सूत्रोंसे विदित होताहै-

मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासा सिद्धस्य वा ॥ सां० अ० १ ॥ सू० ९५

अर्थ-प्रशंसा उपासना मुक्त आत्मा की है वा सिद्ध की-

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९६

अर्थ-उसके सन्निधान से मणि के समान अधिष्ठातापना है अर्थात् मुक्त वा सिद्ध जीवों की उपासना का कारण यह नहीं है कि वह कुछ देते हैं वा कोई कार्य सिद्ध कर देते हैं वरण उनके सन्निधान से ही असर पड़ता है इस कारण मुक्ति जीवों को अधिष्ठातापना है।

विशेष कार्य्येष्वपि जीवानाम् ॥सां० अ० १ ॥ सू० ९७

अर्थ--विशेष कार्य्योंमें संसारी जीवों

की भी इस ही प्रकार अधिष्ठातापना होता है अर्थात उन की प्रशंसा उपासना भी की जाती है।

सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः ॥सां० अ० १ ॥ सू० ९८

सिद्धरूपों के यथार्थ ज्ञाता होने से उनका वाक्यार्थ ही उपदेश है अर्थात् उन ही का वाक्य प्रमाण है।

जीवन्मुक्तश्च ॥ सां० ॥अ० ३॥ सू० ७८

जीवन मुक्त भी अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त होने पर जब तक शरीर बना रहता है तब तक की अवस्था को जीवन मुक्त कहते हैं—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० ७९

अर्थ-उपदेश के योग्य को उपदेश करने वाले के भाव से उसकी सिद्धि है अर्थात् उपदेश करने का अधिकार जीवन मुक्तको ही है क्योंकि उससे पहले केवल ज्ञान नहीं जो सर्व पदार्थों का जानने वाला हो और केवल ज्ञान होने पर देह त्यागने के पश्चात उपदेश हो नहीं सकता क्योंकि उपदेश बचन द्वारा ही हो सकता है और देह होने की ही अवस्था में बचन उत्पन्न होता है इस कारण उपदेश कर्ता जीवन्मुक्त ही हो सकता है—

श्रुतिश्च ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ८०

अर्थ—श्रुति में भी इसका प्रमाण है-

इतरथान्धपरम्परा ॥ सां० ॥ अ० ३॥ सू० ८१

अर्थ—यदि जीवन्मुक्त को ही उपदेश का अधिकार न हो और किसी अन्य का भी बचन प्रमाण हो तो अंधाधुंध फैल जावे क्योंकि केवलज्ञानके बिदून जो मन में आवे सो कहै-

चक्रभ्रमणवद्धृतशरीरः ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ८२

अर्थ-जिस प्रकार कुम्हार अपने चाक को लाठी से चलाता है परन्तु लाठी के निकाल लेने और कुम्हार के अलग हो जाने के पश्चात् भी चक्र चलता रहता है इस ही प्रकार जीव अविवेक से बंधन में पड़ा था और संसार के चक्र में फंसा हुआ था अब अविवेक दूर हो गया और केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई परंतु अविवेकने जो संसार चक्र घुमाया था वह अविवेक के दूर होने पर अभी तक बंद नहीं हुआ इस कारण देह का संस्कार बाकी है जब सर्व संस्कार शांत हो जावेंगे तब देह भी छूट जावेगा और जीव सिद्ध पद को प्राप्त हो जायगा-

संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० ८३

अर्थ कुछ संस्कार का लेश बाकी रह गया है इस ही कारण जीवन्मुक्त होने पर भी शरीर बाकी है-

आर्यमत लीला

योग दर्शन और मुक्ति।

(२१)

षट्दर्शनके मानने वाले प्यारे आर्य भाइयो! यद्यपि स्वामी दयानन्द ने आपको बहकाया है कि सत्यार्थप्रकाश में जो सिद्धान्त उन्होंने स्थापित किये

हैं वे षटदर्शनके विरुद्ध नहीं हैं परन्तु यदि आप षट्दर्शन को पढ़ें तो आप को मालूम हो जावेगा कि स्वामीजी के सर्वसिद्धान्त कपोल कल्पित , पूर्वाचार्योंके विरुद्ध और मनुष्योंको धर्मसे भ्रष्ट करने वाले हैं।

प्यारे आर्य भाइयो ! योगदर्शन को आप जिस आदरकी निगाहसे देखते हैं जितना आप इस ग्रन्थको मुक्तिका मार्ग और धर्म की बुनियाद समझते हैं उसको आप ही जानते हैं परन्तु यदि आप योगदर्शन और सत्यार्थप्रकाशको मिलावें तो आप को मालूम होगा कि स्वामीजी ने मुक्ति और उस के उपायोंकी जड़ ही उखड़ दी है-अर्थात् धर्मका नाश ही करदिया है निम्न लिखित विषय अधिक विचारणीय हैं—

(१) दर्शन कार कर्मोंके क्षय से मुक्ति मानते हैं परन्तु स्वामीजी मुक्ति को भी कर्मों ही का फल बताते हैं मानो स्वामीजीकी समझमें जीव कभी कर्म बंधनसे छूट ही नहीं सक्ता है।

(२) मुक्ति किसी नवीन पदार्थकी प्राप्ति वा किसी नवीन शक्तिकी उत्पत्तिका नाम नहीं हैं वरण प्रकृति का संग छोड़कर जीवका स्वच्छ और निर्मल होजाना ही मुक्ति है इसही हेतु मुक्तिके पश्चात् जीवके फिर बंधनमें फंसनेका कोई कारण ही नहीं है परन्तु स्वामीजी सिखाते हैं कि मुक्तिसे लौट कर जीवको फिर बंधनमें पड़ना आवश्यक है—फल स्वामीजीके सिद्धान्त का यह है कि मनुष्य मुक्ति साधन से निरुत्साही होजावें। क्योंकि—

" चलना है रहना नहीं
चलना बिसवे बीस।
ऐसे सहज सुहाग पर
कौन गुदावे सीस ॥"

(३) दर्शनकारों के मतके अनुसार प्रकृतिके संगसे जीवमें सत, रज और तम तीन गुण पैदा होते हैं और इन ही गुणोंके कारण जीवकी अनेक क्रिया में और चेष्टायें होती है और यही दुःखहै दर्शनकारोंके अनुसार जीव स्वभावसे निर्गुण है और इसही हेतु अपरिणामी है—संसारमें जीवका जो कुछ परिणाम होता है वह प्रकृति के उपरोक्त तीन गुणोंके ही कारण होता है—प्रकृतिका संग छोड़कर अर्थात् मोक्ष पाकर जीव निर्गुण और अपरिणामी रहजाता है और निर्मल होकर सर्व प्रकारके संकल्प विकल्प छोड़कर ज्ञान स्वरूप अपने आत्मा ही में स्थित रहता है और ज्ञानानन्दमें मग्न रहता है परन्तु स्वामी दयानन्दजी इसके विपरीत यह सिखाते हैं कि मुक्ति पाकर भी जीव अपनी इच्छानुसार संकल्पी शरीर बनालेता है और सर्व स्थानों का आनन्द भोगता हुआ फिरता रहता है और अन्य मुक्तजीवोंसे मेल मुलाकात करता रहता है। फल उनकी इस शिक्षाका यह कि संसारी जीवों और मुक्तजीवों में कोई अंतर न रहे और मुक्ति साधन व्यर्थ समझा जाकर मनुष्य संसार की ही उन्नति में लगे रहें।

(४) दर्शनकारों के मतके अनुसार जीव स्वभावसे सर्वज्ञ है परन्तु प्रकृति संयोगसे उसके ज्ञान पर आवरण पड़ा हुआ है जिससे वह अल्पज्ञ होकर अविवेकी होरहा है और इसके अविवेक के कारण संसार में फंसकर अनेक दुःख उठा रहा है—

इस आवरणके दूर होने और सर्वज्ञता प्राप्त होने ही का नाम मोक्ष है-परन्तु स्वामी दयानन्दजी सिखाते हैं कि जीव स्वभावसे ही अल्पज्ञ है इस हेतु मोक्षमें भी अल्पज्ञ रहता है अर्थात् पूर्ण विवेक मोक्ष में प्राप्त नहीं होता है इसही कारण संकल्पी शरीर बनाकर संसारी जीवोंकी तरह आनन्दकी खोज में भटकता फिरता है। यह शिक्षा भी मनुष्यको मुक्तिके साधनमें निरुत्साही बनाने वाली है।

(५) योगदर्शनमें मुक्तिका उपाय स्थिर चित्त होकर संसारकी सर्व वस्तुओंसे अपने ध्यानको हटाकर अपनी ही आत्मामें मग्न होना बताया है-- इसही से सर्व बन्धन और सर्व आवरण दूर होते हैं और इसही से ज्ञान प्रकट होता है और ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही स्थिर रहना मोक्षका स्वरूप और मुक्तिका परम आनन्द है परन्तु दयानन्द सरस्वतीजी ऐसी अवस्थाकी हंसी उड़ाते हैं और इसको जड़वत् हो जाना बताते हैं-स्वामीजीको तो संसारी जीवोंकी तरह अनेक चेष्टा और क्रिया करना ही पसन्द है इसही हेतु स्वामीजी अपरिग्रही और वैरागी योगीको नापसन्द करते हैं वरण यहांतक शिक्षा देते हैं कि योगीको यहां तक परिग्रही होना चाहिये कि स्वर्ण आदिक भी अपने पास रक्खे-गरज स्वामीजीकी नियत इससे यह मालूम पड़ती है कि धर्मके सर्व मार्ग दूर होकर मनुष्योंकी प्रवृत्ति संसारमें दृढ़ हो ॥

प्यारे आर्य भाइयो! आज हम योग दर्शनका कुछ सारांश इस लेखमें आप को दिखाते हैं जिससे स्वामीजीका फिलाया हुआ भ्रमजाल दूर होकर हमारे भाइयों की रुचि सत्यधर्मकी ओर लगे

देखिये योगशास्त्रमें मुक्तिका स्वरूप इसप्रकार लिखा है-

"पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वाचितिशक्तिरिति यो० अ० ४ सू०-३४ ॥"

अर्थ-पुरुषार्थ शून्य गुणोंका फिर पैदा न होना कैवल्य है वा स्वरूप प्रतिष्ठा है वा चैतन्यशक्ति है-अर्थात् सत रज और तम यह तीन प्रकारके प्रकृतिके गुण जब जीवको किसी प्रकारका भी फल देना छोड़देते हैं पुरुषार्थ रहित होजाते आगामीको यह गुण पैदा होजाने बंद होजाते हैं। भावार्थ-जब सर्व प्रकारके कर्मों और संस्कारोंकी निर्जरा और संवर होजाता है तब जीव कैवल्य अर्थात् खालिस और शुद्ध रहजाता है और अपनेही स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है, अपने स्वरूपसे भिन्न जगत् की अन्य किसी वस्तुकी तरफ जीवकी

प्रवृत्ति नहीं होती है और चेतनाशक्ति अर्थात् ज्ञान ही ज्ञान रहजाता है--

नोट-योगशास्त्रके इस सूत्रसे सत्यार्थप्रकाशके मुक्तिविषयक सर्व सिद्धान्त असत्य होजाते हैं-क्योंकि इस सूत्रके अनुसार मुक्ति कर्मोंका फल नहीं वरण कर्मोंके नाशका काम मुक्ति है-मुक्तिके पश्चात् आगामी भी कर्मोंकी उत्पत्ति बन्द होजाती है इस हेतु मुक्तिसे लौटना भी नहीं हो सकता है सत, रज और तम तीनों गुणोंका नाश हो कर मुक्तिजीवमें प्रवृत्ति भी नहीं रहती है जिससे वह संकल्पी शरीर बनावे और कहीं घूमता फिरे वरण अपनेही स्वरूप में स्थित रहता है और इस प्रकार स्थिर रहनेसे वह पाषाण की मूर्त्तिके समान जड़ नहीं होजाता है वरण अपने ज्ञानमें मग्न रहता है वह पूर्ण चेतन स्वरूप अर्थात् ज्योतिस्वरूप होजाता है-

"तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी" यो० अ० १ सू० ५० ५८

अर्थ-उक्त समाधिसे जो उत्पन्न हुआ संस्कार वह अन्य संस्कारोंको नाश करने वाला होता है-अर्थात् मुक्तिका उपाय समाधि है और उससे सर्व संस्कार अर्थात् कर्मनाश होजाते हैं= इसके आगे जो संस्कार समाधिसे उत्पन्न होता है उसके नाशका वर्णन करते हैं-

"तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजस्समाधिः" अ० १ सू० ५१॥ ५०

अर्थ-उस संस्कारके भी निरोध से निर्बीज समाधि होती है-अर्थात् संस्कार बिल्कुल बाकी नहीं रहता है और जीव अपनी आत्मा ही में स्थित होजाता है।

नोट-उपर्युक्त साधनोंसे अर्थात् कर्मों का सर्वथा नाश करनेसे योगदर्शनमें मुक्तिकी प्राप्ति कही है परन्तु दयानन्द सरस्वती जी मुक्ति भी कर्मोंहीका फल बताते हैं और कहते हैं कि यदि ईश्वर अनित्य कर्मोंका फल नित्य मुक्ति देवै तो वह अन्यायी होजावे।

"क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः" ॥ अ०२ सू० १२ ॥

अर्थ क्लेश अर्थात राग द्वेष अविद्या आदि ही कर्म आशयके मूलकारण हैं जो दृष्ट तथा अदृष्ट जन्मों में भोगा जाता है।

"ते ह्लाद परितापफलाः पुण्यापुण्य हेतुत्वात्" ॥ २ ॥ १४ ॥

अर्थ-वे आनन्द और दुःख फल युक्त हैं पुण्य और पापके हेतु होनेसे अर्थात् कर्मोंके दो भेद हैं पुण्य कर्म और पाप कर्म पुण्यकर्मोंसे सांसारिक सुख मिलता है और पापकर्मोंसे दुःख मिलता है।

"सत्त्व पुरुषयोः शुद्धिसाम्येकैवल्यमिति" ॥ अ० ३ ॥ सू० ५५ ॥ ५२

अर्थ-जब सत्व और पुरुष दोनों शुद्धतामें समान होजाते हैं तब कैवल्य होजाता है--अर्थात् किसी वस्तुमें जब कोई दूसरी वस्तु मिलती है तबही खोट कहाजाता है जब दोनों वस्तु अलग २ करदी जावें तो दोनों वस्तु स्व-

कड़ और खालिस कहलाती हैं-इसही प्रकार जीव और प्रकृति मिलकर खोट पैदा होता है--प्रकृति के तीन गुण हैं सत्व, रज और तम--रज और तम के दूर होनेका वर्णन तो योगशास्त्रमें पूर्व किया गया--योगी में एक सत्व गुणका खोट रहगया था उसका वर्णन इस सूत्र में करते हैं कि जब सत्व भी आत्मासे अलग होजावे और आत्मा और सत्व दोनों अलग २ होकर शुद्ध होजावें तब आत्मा कैवल्य अर्थात् खालिस होजाता है-सत रज और तम इनही तीनों गुणोंसे कर्म पैदा होते हैं जब प्रकृति के यह तीनों गुण नाश होकर आत्मा कैवल्य होगया तब कर्मका तो लेश भी बाकी नहीं रह सक्ता है।

नोट--नहीं मालूम स्वामीजीको कहां से सरस्वतीका यह वर मिला है कि मुक्तिको भी कर्मोंका ही फल वर्णन करते हैं? जिससे हमारे लाखों भाइयों का श्रद्धान भ्रष्ट होगया और होनेकी सम्भावना है।

दयानन्दजीने मुक्तिको संसारके ही तुल्य बनानेके वास्ते मुक्ति पाकर भी जीवको अल्पज्ञ ही वर्णन किया है और मोक्षमें भी उसका क्रमवर्ती ज्ञान कहा है अर्थात् जिस प्रकार संसारी जीव अपने ज्ञान पर कर्मोंका आवरण होने की वजहसे इन्द्रियोंका सहारा लेते हैं और आत्मिक शक्ति दबी हुई होनेके कारण संसारकी वस्तुओंको क्रम रूप देखते हैं अर्थात् सर्व वस्तुओं को एक साथ नहीं देखसक्ते हैं ऐसी ही दशा दयानन्दजीने मुक्तजीवोंकी बताई है कि वह भी क्रमरूप ही ज्ञान प्राप्त करते हैं--परन्तु प्यारे पाठको! दर्शनकार इसके विरुद्ध कहते हैं और आत्माकी शक्ति सर्वज्ञताको बताकर मोक्षमें सर्वज्ञताकी प्राप्ति दिखाते हैं-देखो योगदर्शन इसप्रकार कहता है:—

"परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम्" ॥ अ० ३ ॥ सू० १६ ॥

अर्थ-तीन परिणामोंके संयमसे भूत और भविष्यतका ज्ञान होता है।

"सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्व भावाधिष्ठातृत्वंसर्वज्ञातृत्वं च३।४८

अर्थ--सत्व पुरुषकी अन्यता ख्याति मात्रको सर्व भावोंका अधिष्ठातापना और सर्वज्ञपना होता है।

क्षणतत् क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ३ ॥ ५१ ॥

अर्थ--क्षण (काल का सब से छोटा भाग) और उसके क्रम में संयम करने से विवेकज ज्ञान होता है।

नोट-आश्चर्य है कि योगशास्त्र तो क्रम में संयम करने का उपदेश करता है और उससे ही विवेक ज्ञान की प्राप्ति बताता है और दयानन्द जी ऐसी दया करते हैं कि मुक्तजीव के भी क्रमवर्ती ज्ञान बताते हैं आगे योग दर्शन विवेक ज्ञानको सर्वज्ञता बताता है

तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमंचेति विवेकजं ज्ञानम् ॥३॥ ५२ ॥

अर्थ-तारक अर्थात् संसार से तिराने वाला ज्ञान जो सर्व विषय को और उन की सर्व अवस्थाओं को युगपत

जानने वाला होता है अर्थात् भूत भविष्यत वर्तमान सर्व पदार्थों को एक ही वक्तमें जानता है उसको विवेकज ज्ञान कहते हैं।

नोट-प्यारे भाइयो, योगशास्त्र कैसी स्पष्टता के साथ योगी को सर्वज्ञता प्राप्त होने का वर्णन करता है पर स्वामी दयानन्द जी मुक्ति पाने पर भी उसको अल्पज्ञ ही रखना चाहते हैं।

सच तो यह है कि स्वामी दयानन्द जी ने या तो आत्मिक शक्तिको जाना नहीं है या आत्मिक सिद्धान्तों को छिपा कर मनुष्यों को संसार में डुबाने की चेष्टा की है यदि हमारे भाई एक नजर भी योग शास्त्र को देख जावेंगे उन को मालूम हो जावे कि दयानन्द जी ने मुक्ति को बिल्कुल बच्चों का खेल ही बना दिया है। स्वामी जी को सत्यार्थप्रकाश में यह लिखते हुवे अवश्य लज्जा आनी चाहिये थी कि मुक्तिजीव भी संकल्पी शरीर बनाकर आनंद के वास्ते जगह २ फिरता है और अन्य मुक्त जीवों से भी मिलता रहता है।

तासामनादित्वंचाशिषो नित्यत्वात् ॥ ४ ॥ १०

अर्थ-वे वासना अनादि हैं सुख की इच्छा नित्य होने से।

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वा देषामभावेतदभावः ॥ ४ ॥ ११

अर्थ-हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन से वासनाएं संग्रहीत होती हैं और इन हेतु, फल आदि के अभावसे वासनाओं का भी अभाव हो जाता है भावार्थ इन दोनों सूत्रों का यह है कि यद्यपि वासनाएं अनादि हैं परंतु समाधि बल से वासनाओं का नाश हो जाता है और मुक्ति अवस्था में कोई वासना नहीं रहती है।

मुक्ति में कोई कर्म बाकी नहीं रहता कोई वासना नहीं रहती सत्व, रज और तम कोई गुण नहीं रहता प्रकृति से मेल नहीं रहता जीवात्मा निर्गुण हो जाता है और कैवल्य, स्वच्छ रह जाता है फिर नहीं मालूम स्वामी जी को यह लिखने का कैसे साहस हुआ कि मुक्त जीव इच्छानुसार संकल्पी शरीर बनाकर सर्वस्थानों के आनन्द भोगते हुवे फिरते रहते हैं?

देखिये योग दर्शन में वैराग्यका लक्षण इस प्रकार किया है।

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञावैराग्यम् ॥ १ ॥ १५

अर्थ-दृष्ट और अनुश्रविक विषयों की तृष्णासे रहित चित्त के वश करने को वैराग्य कहते हैं।

तत्परमपुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम् ॥ १ ॥ १६

अर्थ-वह वैराग्य परम पुरुष की ख्याति से प्रकृति के गुण अर्थात् सत्व रज तम और उस के कार्य में तृष्णा रहित होना है।

अब हम पूछते हैं कि जीव जब सत्व, रज और तम प्रकृति के इन ती-

नों गुणों से रहित स्वच्छ हो तब वह संकल्पी शरीर बना सकता है वा नहीं और संकल्पी शरीर बनाने की इच्छा और सर्व स्थानों का आनन्द लेते फिरना राग है या वैराग्य ? क्या वैराग्य के द्वारा मुक्ति प्राप्त करके मुक्त होते ही फिर जीव रागी हो जाता है ? क्या यह अत्यंत विरुद्ध बात नहीं है ? और यदि ऐसा हो भी जाता है तो वह अवश्य दुःख में है क्योंकि जहां राग है वहां ही दुःख है देखिये योगशास्त्र में ऐसा लिखा है-

सुखानुशयी रागः ॥ २ ॥ ७

अर्थ-सुख के साथ अनुबंधित परिणाम को राग कहते हैं--भावार्थ यदि मुक्त जीव को सुखके अर्थ संकल्पी शरीर धारण करना पड़ता है और जगह २ घूमना होता है तो उस में अवश्य राग है परंतु राग को योग दर्शन में क्लेश वर्णन किया है-

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ॥ २ ॥ ३

अर्थ-अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष और अभिनिवेश यह पांच प्रकार के क्लेश हैं—

इस हेतु दयानन्द जी के कथनानुसार दयानन्द जी की मुक्त जीवों पर ऐसी दया होती है कि उन को वह क्लेशित बनाना चाहते हैं--क्लेशित केवल राग ही के कारण नहीं बरण अविद्या के कारण भी क्योंकि जब तक सर्वज्ञ नहीं है तब तक ज्ञान में कमी ही है और इस कारण क्लेश है सरस्वतीजी का भी यह ही कथन है कि सर्वज्ञ होने के कारण जीव एक ही समय में सर्व वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करके एक साथ ही आनन्द नहीं ले सकता है वरण अल्पज्ञ होनेके कारण उस को स्थान स्थान का ज्ञान प्राप्त करने के वास्ते जगह २ घूमना पड़ता है क्या यह थोड़ा क्लेश है ? और तिसपर स्वामी जी कहते हैं कि मुक्तजीव परमानन्द भोगता है । योगशास्त्र में तो अविद्या को ही सर्व क्लेशों का मूल वर्णन किया है-

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नो दाराणाम् ॥ २ ॥ ४ ॥

अर्थ-प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार रूप अगले सर्व क्लेशों का कारण (क्षेत्र) अविद्या ही है ।

अभिनिवेश का लक्षण योगशास्त्र में इस प्रकार है-

स्वरसवाही विदुषोपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ॥ २ ॥ ९

अर्थ जो मूर्ख तथा पण्डितों को एक समान प्रवेश हो उसे अभिनिवेश कहते हैं योगशास्त्र के भाष्यकारों ने इस का दृष्टान्त यह लिखा है कि जैसे इस बात का क्लेश सब को होता है कि हम को मरना है इस ही प्रकार के क्लेश अभिनिवेश कहाते हैं स्वामीजी ने मुक्ति से लौटकर संसार में फिर लौटने का भय दिखाकर बेचारे मुक्त

जीवों को अभिनिवेश क्लेशमें भी फंसा दिया इस ही प्रकार स्वामी जी के कथनानुसार अस्मिता और द्वेषभी मुक्त जीवोंमें घटते हैं अर्थात् मुक्त जीव पांचों प्रकार के क्लेशों में फंसता है। नहीं मालूम सरस्वती जी को मुक्त जीवों से क्यों इतना द्वेष हुआ है कि उन को सर्व प्रकार के क्लेशों में फंसाना चाहते हैं ? परन्तु मुक्त जीवों पर तो स्वामी जी का कुछ वश नहीं चलैगा। हां, करुणा तो उन संसारी मनुष्यों पर आनी चाहिये जो दयानंद जी की शिक्षा पाकर मुक्ति साधन से अरुचि करलेंगे और संसार के ही बढ़ाने में लगे रहैंगे-

प्यारे आर्य भाइयो। योग दर्शनको पढ़ो और उस पर चलो जिसमें ऐसा लिखा है, सत्यार्थप्रकाश के भरोसे पर क्यों अपना जीवन खराब करते हो--

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेय हेतुः ॥ २॥१७

अर्थ-देखनेवाला और देखने योग्य वस्तु इनका जो संयोग है वह त्याज्य का मूल है अर्थात् मोक्ष साधनमें त्याग ही एक उपादेय है और त्याग का मुख्य तत्व यह है कि ज्ञेय वा दृश्य अर्थात् देखने योग सर्व वस्तुओं का जो संयोग देखने वाला करता है वह त्याग दिया जावे-

परन्तु स्वामी जी इस के विरुद्ध कहते हैं कि मुक्त जीव इस ही संयोग मिलने के वास्ते संकल्पी शरीर बनाता है और जगह २ घूमता फिरता है।

तस्यहेतुरविद्या ॥ २ ॥ २४

अर्थ-उस संयोग का हेतु अविद्या है। तब ही तो स्वामी जी ने मुक्तजीव को अल्पज्ञ बताया है परन्तु प्यारे आर्य भाइयो ! स्वामी जी कुछ ही कहैं आप जरा योग दर्शन की शिक्षा पर ध्यान दीजिये देखिये कि सस्पष्टतासे कहा है--

तदभावात्संयोगाभावोहानम् तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २ ॥ २५॥

अर्थ-उसके अर्थात् अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव होता है और वही दृष्टाका कैवल्य अर्थात् मोक्ष है विना सर्वज्ञता प्राप्त होनेके और सर्व पदार्थों से प्रवृत्ति को हटाकर आत्मस्थ होनेके बिदून मुक्ति ही नहीं हो सकती है। भावार्थ सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने मुक्ति का वर्णन नहीं किया है वरण मुक्ति को हंसी का स्थान बना दिया है।

आर्यमतलीला ॥

(२८)

संसारमें तो यह ही देखने में आता है कि तृष्णावान् को दुःख है और सन्तोषीको सुख--एक महाराजाको लाख खरबका राज्य मिलने से उतना सुख प्राप्त नहीं होता है जितना जंगलमें पड़ेहुए एक योगीको सुख है। धर्म सुखप्राप्तिका मार्ग है इस ही हेतु धर्म का मूल त्याग है--इन्द्रियोंको विषय भोगोंसे हटाना चित्त की वृत्तियों को

रोकना सुखप्राप्ति का उपाय है--और संसारके सर्व पदार्थों से चित्तको हटा कर अपने ही आत्मामें स्थिर और शान्त होजाना परम आनन्द है और यह ही मोक्षका उपाय है--इस ही हेतु मोक्ष में परम आनन्द है क्योंकि वहां ही जीवात्मा प्रकृतिके सब विकारोंसे रहित हो कर पूर्णरूप स्थिर और शान्त होता है--

परन्तु स्वामी दयानन्दजी इस सुख को नहीं मानते हैं वह इस स्थिर और शान्तिदशाको पत्थरकी मूर्त्तिके समान जड़ बनजाना बताते हैं इस ही कारण मुक्ति जीवोंके वास्ते भी वह आवश्यक समझते हैं कि वह अपनी इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर जगह २ का आनन्द भोगते हुए फिरते रहैं--स्वामीजीको मुक्तिका साधन करने वाले योगियों का परिग्रह त्याग और आत्मध्यान भी व्यर्थका ही क्लेश प्रतीत पड़ता है उनको यह कब रुचिकर हो सकता है कि योगी संसारकी सर्व वस्तु और शरीरका ममत्व छोड़ दे और कपड़े पहनेका बखेड़ा न रख कर नग्न अवस्था धारण कर आत्मध्यानमें लगे? वरण स्वामीजी तो यहां तक चाहते हैं और सत्यार्थप्रकाशमें उपदेश देते हैं कि योगीको चांदी सोना धन दौलत भी रखनी चाहिये-- परन्तु प्यारे आर्यभाइयो ! अपने और स्वामीजीके मान्य ग्रन्थ **योगदर्शन** को देखिये जिसको आप मुक्ति सोपान समझते हैं--उससे आपको विदित हो जायगा कि सरस्वतीजीकी शिक्षा बिलकुल धर्ममार्गके विरुद्ध और संसारमें फंसाने वाली है।

देखिये योगदर्शन इस प्रकार लिखता है--

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" यो० अ० १ सू० २

अर्थ-चित्तकी वृत्तियोंके निरोध अर्थात् रोकनेको योग कहते हैं--भावार्थ अपने ही आत्मा में स्थिरता हो इस से बाहर किसी वस्तु को तरफ प्रवृत्ति न हो॥

"तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" ॥१॥३॥

अर्थ--उस समय अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होने पर जीवात्मा का अपनेही स्वरूपमें अवस्थान होता है-

"वृत्तिसारूप्यमितरत्र" ॥ १॥ ४॥

अर्थ-अन्य अवस्था में अर्थात् जब चित्तकी सर्ववृत्तियोंको रोककर जीवात्मा अपनेही स्वरूपमें मग्न नहीं होता है तब वह चित्तवृत्तियोंके रूपको धारण करलेता है--यह दशा सर्व संसारी जीवोंकी रहतीही है--

नोट--महर्षियोंने मुक्तिका साधन तो यह बताया कि चित्त की वृत्तियों को रोककर अपनीही आत्मामें अवस्थित होजावै--परन्तु स्वामीजी कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त होने पर यदि जीवात्मा अपने ही आत्मा में स्थिर रहे और नाना प्रकार चेष्टा न करे, इच्छा प्राप्त न हो -इच्छानुसार कल्पित शरीर न

बनावे और जगह २ घूमता न फिरै तो वह पत्थरके समान जड़ होजावे--परन्तु हमको आश्चर्य है कि सरस्वतीजी ने इतना भी न विचारा कि यदि मुक्ति अवस्थामें इस प्रकार प्रवृत्ति करने और चित्त वृत्तियों में लगने और संसारी जीवों के समान वृत्तियों का रूप धारण करने की जरूरत है तो मुक्ति-साधन के वास्ते इन वृत्तियों के रोकने और अपने आत्मा में ही स्थिर होने की और योग धारण करने की क्या जरूरत है? योग धारण करना और चित्त वृत्तियों को रोककर आत्मा में स्थिर होना कोई सहज बात नहीं है इसके वास्ते योगी को बहुत कुछ अभ्यास और प्रयत्न करना पड़ता है परन्तु जब मोक्ष में जाकर भी इन वृत्तियोंमें फंसना और आत्म स्थिरता को छोड़कर चंचल बनना है तो दयानन्द जी के कथनानुसार योग साधन का सब उपाय व्यर्थ का ही कष्ट ठहरता है–

देखिये योगदर्शन चित्त की वृत्तियों को रोककर आत्मस्थ होने के वास्ते क्या क्या उपाय बताता है-

"अभ्यास वैराग्याभ्यान्तन्निरोधः" ॥ १ ॥ १२ ॥

अर्थ–वह निरोध अर्थात् चित्त की वृत्तियों का रोकना अभ्यास और वैराग्य से होता है—

तत्रस्थितौयत्नोऽभ्यासः ॥ १ ॥ १३ ॥

अर्थ-आत्मा में स्थिर होने में यत्न करने को अभ्यास कहते हैं।

सतुदीर्घकाल नैरन्तर्य्य सत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः ॥ अ० १ सू० १४

अर्थ–वह अभ्यास बहुत काल तक निरन्तर अर्थात् किसी समय किसी अवस्था में वा किसी विघ्न से त्याग न करते हुवे अधिक आदरके साथ सेवन करने से दृढ़ होता है–

प्यारे आर्य्य भाइयो! योगशास्त्र तो इस प्रकार अत्यंत कष्टसाध्य आत्म स्थिति और चित्त वृत्तियों ही के रोकने में आनन्द बताता है स्वामी दयानन्द जी उसको पत्थर के समान जड़ अवस्था कहैं वा जो कुछ चाहैं कहैं-

"निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः" ॥ १ ॥ ४७ ॥

अर्थ-निर्विचार समाधि के विशारद भाव में अध्यात्मिक प्रसाद है-अर्थात् आत्मिक परम आनन्द प्राप्त होता है-

प्यारे आर्य्य भाइयो! योगदर्शन तो प्रारम्भ से अंत तक चित्त वृत्तियों के रोकने और आत्मा में स्थिर होने ही को मोक्ष मार्ग और धर्म का उपाय बताता है-

तत्रस्थिर सुखमासनम् ॥ २ ॥ ४६

अर्थ-जिसमें स्थिर सुख हो वह आसन कहाता है अर्थात् जिसकी सहायता से भली भांति बैठा जाय उसे आसन कहते हैं। वह पद्मासन, दण्डासन, स्वस्तिक के नाम से विख्यात हैं यह आसन जब स्थिर कम्प रहित और योगी को सुख दायक होते हैं

तब योग के अंग कहे जाते हैं-

नोट-स्वामी दयानन्द जी तो आसन को जड़ पत्थर के समान ही होजाना समझते होंगे।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ २ ॥ ४७

अर्थ-प्रयत्न के शिथिल होने और अनन्त समापत्ति से आसन की सिद्धि होती है अर्थात् आसन निश्चल होते हैं और चित्त की चंचलता क्षय हो जाती है-

नोट-दयानन्द सरस्वती जी तो इस बात को कभी न मानते होंगे ? क्योंकि प्रयत्न तो वह जीव का लिंग बताते हैं और इस ही हेतु मोक्ष में भी जीवका प्रयत्न सिद्ध करते हैं स्वामी जी तो जैनियों से इस ही बातसे रुष्ट हैं कि जैनी मुक्तिजीव का प्रयत्न रहित एक स्थान में स्थित ज्ञान स्वरूप आनन्दमें मग्न रहना बताते हैं और इसके खण्डन में सत्यार्थप्रकाश में कई कागज़ काले करते हैं-प्राणधारी मनुष्य अर्थात् योगी के वास्ते इस प्रकार पत्थर बन जाने को तो वह कब पसन्द करेंगे ?

परन्तु स्वामी जी जो चाहैं मखौल उड़ावैं योगशास्त्र की तो ऐसी ही शिक्षा है

तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः २ ॥ ४८

अर्थ-आसन स्थिर होनेपर जो श्वासो श्वास की गति का अवरोध होता है उसे प्राणायाम कहते हैं अर्थात् आसन स्थिर होकर श्वास उश्वास के रुकने को प्राणायाम कहते हैं।

नोट-दयानन्द जी मुक्त जीवों पर तो आप की दया होगई जो उनको स्थिरता से छुड़ाकर इस प्रयत्न में लगा दिया कि वह संकल्पी शरीर बनाकर जगह जगह का आनन्द लेते फिरा करें परन्तु योगियों पर भी तो कुछ दया करनी चाहिये थी ; देखो महर्षि पातञ्जलिने तो योग दर्शन में उन का सांस रोक कर सचमुच ही पत्थर की मूर्ति बना दिया हमारे आर्यभाई प्राणायाम के बहुत शौकीन हैं इनको भी कोई ऐसा प्रयत्न बता दिया होता जिस को करते हुवे भी प्राणायाम सिद्ध होता है और चंचलता भी बनी रहै ?

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपीचतुर्थः ॥२॥५१

अर्थ-जिसमें बाह्य और आभ्यंतर विषयों का परित्याग हो वह चौथा प्राणायाम है-तीन प्रकारके प्राणायाम पहले वर्णन करके इस सूत्र में चौथा वर्णन किया है।

नोट-दयानन्द जी तो मुक्तजीव को भी विषय रहित नहीं बनाना चाहते हैं इस ही हेतु इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर भ्रमण करना और अन्य मुक्त जीवों से मिलना जुलना आवश्यक बताते हैं। इस प्रकार की क्रिया बाह्य विषय से हो वा आ-

भ्यंतर विषय से इस को सरस्वतीजी ही जानते होंगे ! परन्तु योगदर्शन में तो प्राणायाम ही में जो योग और मुक्ति साधन का एक बहुत छोटा द- र्जा है, बाह्य और आभ्यंतर दोनों विषयों को उड़ादिया।

ततःक्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ २ ॥५२॥

अर्थ--प्राणायाम सिद्धि के अनन्तर ज्ञान का आवरण सनाश हो जाता है अर्थात् ज्ञान का प्रकाश होने ल- गता है।

नोट—दयानन्द जी ने मुक्ति सिद्धि पर मुक्त जीवों के साथ फिर वह वि- कार लगा दिये हैं जो प्राणायाम में छोड़गये थे अर्थात् प्रयत्न चंचलता और विषय वासना इस ही कारण जो ज्ञान का आवरण प्राणायाम के पश्चात् दूर हुआ था वह दयानन्द जी ने मुक्त जीवों पर डालकर उनको अल्पज्ञ बना दिया !

प्यारे पाठको ! योगदर्शन के अ- नुसार योगी के वास्ते सब से प्रथम काम पांच यम पालन करना है।

यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्या- हारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि ॥ २ ॥ २९

अर्थ—यम, नियम, आसन, प्राणा- याम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, योग के यह आठ अंग हैं।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्ति राविवेक ख्यातेः ॥ २ ॥ २८ ॥

अर्थ-योग के अंगों को क्रमशः अनु- ष्ठान करने से अशुद्धि के क्षय होने पर ज्ञान का प्रकाश होता है..... क्रमशः का भावार्थ, यह है कि यम के पश्चात् नियम और नियम का पालन होने पर आसन इस ही प्रकार सिलसिले वार ग्रहण करना है। अर्थात् यम सब से कम दर्जे में और सब से प्रथम है। इन के पालन बिदून तो आगे चल ही नहीं सकता है।

तत्राहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरि- ग्रहायमाः ॥ २ ॥ ३०

अर्थ-तिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच यम हैं।

जातिदेशकालसमयाऽनवच्छिन्नाः सा र्वभौमामहाव्रतम् ॥ २ ॥ ३१

अर्थ-जाति देश, काल और समयकी मर्यादा से न करके सर्वथा पालन क- रना महाव्रत है-अर्थात् उपरोक्त पां चोंयमों को बिना किसी मर्यादा के सर्वथा पालन करना महाव्रत है और मर्यादा सहित पालन करना अणुव्रतहै।

अब प्यारे आर्य भाइयो ! विचार- ने की बात है कि, परिग्रह कहते हैं सांसारिक वस्तुओं (असबाब) और उन की अभिलाष को संसार का कोई भी असबाब न रखना और न उस में ममत्व रखना अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह महाव्रत धारण करने में किसी प्रकार की मर्यादा नहीं रह-

ती है कि अमुक वस्तु रक्खूं या अमुक न रक्खूं महाव्रत तो विना मर्यादा ही होता है इस हेतु आप ही सोचिए कि महाव्रती योगी वस्त्र रक्खेगा या नहीं ? क्या एक लंगोटी रखना भी अपरिग्रह महाव्रतको भंग नहीं करेगा ? अवश्य करेगा--महाव्रती को योगदर्शनके अनुसार अवश्य नग्न रहना होगा। इसके अतिरिक्त प्यारे भाइयो जब आप योगके आठों अंगोंको समझेंगे और वैराग्य ही को योगका साधन जानेंगे तब आपको स्वयम् निश्चय हो जायगा कि योगीको वस्त्र, लंगोटी का ध्यान तो क्या अपने शरीर का भी ध्यान नहीं होता है—नग्न रहनेकी लज्जा करना वा अन्य कारणोंसे वस्त्र की आवश्यक्ता समझना योगसाधन का बाधक है और जिसको इस प्रकार लज्जा आदिकका ध्यान होगा उससे तो संसार छूटा ही नहीं है वह योग साधन और मुक्तिका उपाय क्या कर सक्ता है ?

प्यारे भाइयो ! साधुके वास्ते मोक्षके साधनमें नग्न रहना इतना आवश्यक होनेपर भी हमारे बहुतसे आर्य भाई नग्न अवस्थाकी हंसी उड़ाकर क्या धर्म की हंसी नहीं उड़ाते हैं ? अवश्य उड़ाते हैं।

मुश्किल यह है कि स्वामी दयानन्दजी ने अंगरेजी पढ़े हुये भाइयोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके वास्ते उनके आजादीके खयालको लेकर सब वाहियात और झूठका पाठ पढ़ाना शुरूकर दिया और बहुत सी बातोंको असम्भव और नामुमकिन बताकर भोले लोगोंके खयाल को बिगाड़ दिया ॥

अफसोस है कि स्वामीजीके ऐसे वर्तावसे हमारे आर्य्यभाई जीवात्माकी शक्तियोंको समझनेसे वंचित रहेजाते हैं और अंगरेजोंकी तरह जड़ पदार्थ की ही शक्तियोंके ढूंढने और मानने में लगते जाते हैं—महर्षि पातञ्जलि ने योगशास्त्र में जो आत्मिक अतिशय वर्णन की हैं उनका सारांश हम नीचे लिखते हैं और अपने आर्य भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि इनमें अपना विचार देवैं—और आत्मिक शक्तियोंकी खोजमें लगें।

"अहिंसा प्रतिष्ठायांतत्संन्निधौ वैर त्यागः ॥ २ ॥ ३५ ॥

अर्थ--योगीका चित्त जब अहिंसा में स्थिर होजाता है तब उसके समीप कोई प्राणी वैर भाव नहीं करता है अर्थात् शेर, सांप बिच्छू आदिक दुष्ट जीव भी उसको कुछ बाधा नहीं पहुंचा सक्ते हैं।

" शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभाग संयमात् सर्व्व भूतरुतज्ञानम् " ॥ ३ ॥ १७

अर्थ-- शब्द अर्थ और ज्ञानमें परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध होनेसे शब्द सङ्करता है और उनके विभागमें संयम

करनेसे प्राणीमात्र की भाषाका ज्ञान होता है-अर्थात् पातंजलि ऋषिका यह मत है कि योगीको सर्व जीवोंकी भाषा समझने का ज्ञान होसक्ता है भावार्थ जानवरोंकी भी बोली समझ सक्ता है।

"संस्कारसाक्षात् करणात् पूर्वजाति ज्ञानम्" ॥ ३ ॥ १८ ॥

अर्थ--संस्कारोंके प्रत्यक्ष होनेसे पूर्व जन्मोंका ज्ञान होता है ॥

"कण्ठकूपेक्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥३।२९

अर्थ--कंठके नीचे कूपमें संयम करने से भूख और प्यास नहीं रहती।

"मूर्द्धं ज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥३॥३१

अर्थ--कपालस्थ ज्योतिमें संयम करनेसे सिद्धोंका दर्शन होता है।

"उदान जयाज्जल पंककंटकादिष्व संगउत्क्रान्तिश्च" ॥ ३ ॥ ३८

अर्थ--उदानादि वायुके जीतनेसे कंटकादि का स्पर्श नहीं होता और उत्क्रान्ति भी होती है।

"कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाश गमनम्" ३॥४१

अर्थ--शरीर और आकाशके सम्बन्ध से संयम करनेसे और लघु आदि पदार्थोंकी समापत्तिसे आकाशमें गमन सिद्ध होता है।

प्यारे आर्य भाइयो! विशेष हम क्या कहैं आपको यदि अपना कल्याण करना है तो हिन्दुस्तानके महात्माओं और ऋषियोंने जो आत्मिक शक्तियों की खोजकी है और जिस कारण यह हिन्दुस्थान सर्वोपरि है उसको समझो और मुक्तिके सच्चे मार्गको पहचानो।

इति शुभम्।
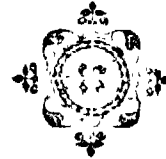
॥ निवेदन ॥

आर्यसमाज नामक संस्थाके चतुर संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने अपने लेख और सिद्धान्तोंमें यथा शक्ति यह सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है कि वेद (ऋग, यजु, साम और अथर्व नामक चारोंसंहिता) ईश्वर प्रणीत हैं, वह सर्व कल्याणकारी विद्याओंके उत्पादक स्थान हैं तथा उन्हींके उपदेशानुकूल चलनेसे मनुष्यका यथार्थ कल्याण होसक्ता है और अब भी स्वामी जीके अनुयायी हमारे आर्यसमाजी भाई अपने प्रयास भर वैसा प्रतिपादन करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। उपरोक्त वेदोंके वर्तमान में सायण, महीधर और मोक्षमूलर (Maxmuller) आदि कृत अनेक भाष्य पाये जाते हैं और वह इतने विशद हैं कि अनेक परस्पर विरुद्ध संप्रदायों यहांतक कि बाममार्गादि ने भी अपना सिद्धान्त पोषक स्थान वेदको ही माना है परन्तु हमारे स्वामीजीने यह कहकर उन सर्व प्राचीन भाष्योंको अमान्य करादिया है कि वे सृष्टिक्रम विरुद्ध, हिन्सा और व्यभिचारादि घृणित कार्योंसे परिपूर्ण हैं और उनके पठन से वे सर्वज्ञ ईश्वर प्रणीत होना तो एक ओर किसी बुद्धिमान भी मनुष्य कृत प्रमाणित नहीं होसके और इसी अर्थ अपने मन्तव्यों को पोषण करने के अर्थ स्वामीजीने उनपर अपना एक स्वतन्त्र नवीन भाष्य रचा है। यद्यपि यह विषय विवाद ग्रस्त है कि स्वामीजीका वेद भाष्य ही क्यों प्रामाणिक है परन्तु इसपर कुछ ध्यान न देते हुये जैनगजटके भूतपूर्व सुयोग्य सम्पादक सिरसावा निवासी श्रीयुत बाबू जुगलकिशोर जी मुख्तार देवबन्दने अपने सम्पादकत्व कालमें सन् १९०८ ई० के जैनगजट के २८ अंकों में यह "आर्यमत लीला" नामक विस्तृत और गवेषण पूर्ण लेखमाला निकालकर समाजका बड़ा उपकार किया है। बाबू साहबने अपनी सुपाठ्य और मनोरंजक सरल भाषामें स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके भाष्यानुसार ही आर्यसमाजके माने हुये प्रामाणिक वेद व अन्य सिद्धान्तोंकी जो यथार्थ समालोचना कर सर्व साधारण विशेषकर हमारे उदार हृदय, समाज सुधारक (Social Reformer) सांसारिक उन्नतिकी उत्कट आकांक्षा रखनेवाले, उन्नतिशील और सच्चे धर्मके अन्वेषी आर्यसमाजी भाइयोंका भ्रमान्धकार दूर करनेका जो श्लाघनीय परिश्रम किया है उसके कारण आप शतशः धन्यवादके पात्र हैं। जैनगजटके अंकों में ही इस " लीला " के बने रहनेसे सर्व साधारणका यथा उचित विशेष उपकार नहीं होसकता ऐसा विचारकर हमारी सभाने अपने हृदय से केवल सत्यासत्य निर्णयार्थ सबको यथार्थ लाभ पहुंचाने के सद् उद्देश्यसे ही इसको पुस्तकाकार मुद्रित कर प्रकाशित किया है। अन्तमें हमको पूर्ण आशा तथा दृढ विश्वास है कि इसको निष्पक्ष एक बार पठन करने से और नहीं तो हमारे प्रिय आर्यसमाजी भाइयों को (जिनका कि वेदोंको पढना और पढाना परम धर्म भी है) अवश्य ही वेदोंको—जिनका कि पढना और समझना अब प्रत्येक पर्य्याप्त हिन्दी जानने वाले साधारण बुद्धिमान पुरुष को भी वैदिकयन्त्रालय अजमेर से स्वल्प मूल्यमें ही प्राप्तव्य स्वामि भाष्य वेदोंसे सुलभ साध्य होगया है—कमसे कम एकबार पाठ करनेका उत्साह और उसपर निष्पक्ष विचार करनेसे उनको वेदोंका यथार्थ ज्ञान प्रगट होजायगा और ऐसा होनेपर उनको निज कल्याणार्थ सत्य धर्म की अवश्य ही खोज होगी। हमारी यह आन्तरिक मङ्गल कामना है कि मनुष्य मात्र वस्तु स्वभाव सच्चा धर्म लाभकर अपने अनन्त, अविनाशी, स्वाधीन, निराकुल, और आत्मस्वरूप आनन्दको प्राप्त होवें ॥ इति शुभम् ॥

जीवमात्रका हितैषी—

जनवरी १९११ ईस्वी } चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री

इटावा } श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा

ओम्

परमात्माजयति ।

छेद-किये हैं मत दयानन्दी के टुकड़े २ क्षणभर में । हमारी लेखिनी भी वज्र है मानो परशु का

शंभुनाथगप्पकुठार

और

जगन्नाथदास का वज्रप्रहार.

जगन्नाथदास सङ्कलित

वही

"लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय मुरादाबाद में

छपवाकर प्रकाशित किया.

सितम्बर सन् १९०१.

॥ ओम् ॥

परमात्माजयति.

शम्भुनाथ गप्पकुठार,

और

जगन्नाथदास का वज्रप्रहार.

तेजोऽसितेजोमयिधेहि। वीर्यमसिवीर्यंमयिधेहि। बलमसिबलंमयिधेहि।
ओजोऽस्योजोमयिधेहि। मन्युरसिमन्युंमयिधेहि। सहोऽसिसहोमयिधेहि॥१॥

(शंभुनाथ) कुतर्क १ दयानन्दमत सूर्चा में से (वादी) प्रथम उत्पत्ति लिखी जीवों की फिर अनादि बतलाया। स० प्र० २३२ (प्रतिवादी) यद्यपि प्रथम सत्यार्थ प्रकाश का प्रमाण देना वृथा है क्योंकि स्वामीजी महाराज ने कई जगह अपने प्रतिकूल पाकर उस को अप्रमाणिक करदिया तथापि वादी का आक्षेप उस से भी निर्मूल सिद्ध होता है हम पृष्ठ २३२ का लेख नीचे लिखते हैं बुद्धिमान् निष्पक्षजन विचारें कि ला० जगन्नाथ दास की यह सरासर बनावट है या सच्चा आक्षेप है "जब जीवों को ईश्वर ने रचा तो विचार कर के सब को स्वतंत्र ही रखदिया पृष्ठ २३२—इस लिये शरीर में जो अधिष्ठाता कर्त्ता और भोक्ता है उस को जीव कहते हैं जो कि एक काल में सब बुद्ध्यादिक किये कर्मों का अनुभव करता है चेतन स्वरूपहै उसका नाम जीव है सो भिन्न पदार्थ ही है चारों के मिलाने से जीव के गुण और जीव कभी उत्पन्न नहीं होता इस से यह बात जो कही थी कि चारों के मिलने से जीव होता है यह बात खंडित होगई पृ० २३१ महाशय गण ध्यानदीजिये पृष्ठ २३१ में साफ़ लिखा है कि जीव भिन्न पदार्थ है और कभी उत्पन्न नहीं होता तो भला यह कैसे होसकता है कि एक ही पृष्ठ के आगे जीवकी उत्पत्ति लिखी हो वादी को तनिक तो विचार करना चाहिये था बात यह है कि जीव ऐसा शब्द है जो हमारी बोलचाल में प्राण धारी और जीवात्मा दोनों के लिये आता है इस लिये पृष्ठ २३२ में जो लिखा है कि जीवों को रचा उस का मतलब यही है कि प्राणधारी मनुष्यादि को रचा ऐसा बोलने का महाविरा है इत्यादि।

उत्तर—यह लेख शंभूनाथ शर्मा टीचर हाई स्कूल मुरादाबाद के नामसे आर्य्यमित्र ता० १६ मई सन् १८९९ में छपाथा।

तब हमने उन से एक दिन बाज़ार में पूछा कि आर्य्यमित्र में एक लेख आपके नाम से छपा है क्या वह आपनेही छपवाया है तब तो वे मौन से होरहे परंतु अगले दिन हमारे पास आकर कहा कि वह लेख बदरीदत्त का है वे मेरे नाम से छपाना कहते थे और मैंने उन से बहुत कह दिया था कि इस लेखपर मेरा नाम न छापना परंतु उन्हों ने बलात्कार मेरा नाम छापदिया—हमने उसका उत्तर सनातनधर्मपताका संवत् १९५६ भाद्रपद में मुद्रितकरादिया हमने वहां यहभी लिखाथा कि हे मित्र जो आप दयानंदी हैं तो आपके नाम के अन्त में शर्म्मा पद सर्वथा अनुचित है क्योंकि—दयानन्दने वर्णविभाग गुण कर्मसे माना है न कि जन्मसे सो आपमें मेरे विचारानुसार ब्राह्मणवर्ण के योग्य गुणकर्मों का चिह्न लेशमात्र भी नहीं यदि न्यायपूर्वक विचार करोगे तो चतुर्थकक्षाके अधिकारी ठहरोगे धर्मपताका संवत् १९५६ पौषमें हमने उक्तलेखके अतिरिक्त इतना और भी लिखा था कि नाथजी अपने नाम के अन्त में शर्म्मा लिखने से शरमायँ वा दयानन्दलिखित वर्णव्यवस्थाके अनुसार अपने को ब्राह्मणवर्ण का अधिकारी सिद्ध करदिखावें और प्रथम यह भी बतलावें कि दयानन्दके मतानुसार आप अपने माता पिताको किस २ वर्ण का अधिकारी जानते हैं और अपनी धर्मपत्नी को क्या मानते हैं नाथजी ने इसका उत्तर तो अद्यपर्यन्त नहीं दिया परन्तु जगन्नाथकुतर्ककुठारनामक अपनी पुस्तकमें अपने नाम के अन्तमें शर्म्मा पद नहीं लिखा यहां से जानागया कि ब्राह्मणवर्ण के गुण कर्म अपने में न पाये तब शर्म्मा लिखनेसे शरमाये हम फिर सविनय निवेदन करते हैं कि आप हमारे पूर्वोक्तलेखका यथार्थ उत्तर दें और अपने वर्णका सम्यक् निर्णय करें फिर आपने जो अपने नाम के अन्त में दयालु पद रक्खा है इसका आशय क्या है यह पदवी आपको बाल्यावस्था ही में कहींसे मिली है वा समाजियोंने आपके गुण कर्मानुसार अब दी है वास्तवमें आपकी उपाधि परंपरासे संडहै दयालु होनेका मिथ्या घमण्ड है पाठकगण! जिसप्रकार शंभुनाथजीके कथनानुसार आर्यमित्र १६ मई सन् १८९९ का लेख उनका लिखा नहीं है इसीभांति यह जगन्नाथकुतर्ककुठारनामक पुस्तक भी वास्तव में नाथजी की बनाईहुई नहीं है किसी और ही महाशय ने समाजियों की प्रसन्नताके अर्थ मिथ्या कपोल कल्पना की है परंतु लेखक महाशय

ने अपने लेखको सर्वथा मिथ्या और हास्यजनक जानकर नाथजीके नाम से छपवा दी है दयानन्दी मत में परपुरुषों से दश सन्तानपर्यन्त उत्पन्न कराने की आज्ञा है यदि नाथजीने किसी अन्यपुरुषसे एक छोटीसी पोथी बनवाली तो आश्चर्यही क्या है अस्तु अब मैं नाथजी की कपोलकल्पना का यथोचित उत्तर सुनाता हूँ और उनका अज्ञान मूलसहित मिटाता हूँ दयानन्दका जीवात्माकी उत्पत्ति लिखना प्रत्यक्ष दिखाता हूँ और उसकी अज्ञतापर बुद्धिमानों को हँसाता हूँ यहां विचार केवल इसबातपर है कि हम ने सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८७५ के पृष्ठ २३२ में दयानन्द के इसलेखसे कि (जब जीवों को ईश्वर ने रचा) दयानन्द का जीवात्मा की उत्पत्ति मानना लिखकर आक्षेप किया है और नाथजी कहते हैं कि जीवों को रचा उसका मतलब यह है कि प्राणधारी मनुष्यादि को रचा इसके निर्णयार्थ में उक्त सत्यार्थ-प्रकाश पृष्ठ २३०से पृष्ठ २३२ में (जबजीवों को ईश्वर ने रचा) दयानंदजी के इस लेखतक नीचे लिखता हूँ बुद्धिमान् लोग उस संपूर्ण लेख को न्याय दृष्टि से सम्यक् विचारकर न्यायकरें किहमारा कथन सत्य है वा नाथजी की बनावट उक्त सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३० प्रश्न पृथिवी जल अग्नि वायु इन चारोंके मिलने से चेतन भी उसमें होता है जब वे पृथक् २ होजाते हैं तब सब कला बिगड़ जातीहैं फिर उसमें कुछ नहीं रहता इससे जगत्का रचनेवाला कोई नहीं आपसे आपही जगत् और जीव होता है—उत्तर आपभी इन चारोंको मिलाके जीव और जीवके जितने गुण उनको दिखलादेवें सो कभी नहीं देखपड़ेंगे क्योंकि पहिले ही से सब स्थूल भूतों में सब सूक्ष्म भूत मिलेरहे हैं फिर उन में ज्ञानादिक गुण क्यों नहीं देखपड़ते इससे जीव पदार्थ इन भूतोंसे भिन्नहीहै जिसके ये गुण हैं इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनोलिंगम् । यहगौतम मुनिका सूत्रहै इसका यह अभिप्रायहै कि इच्छा किसीप्रकारका चाहना जिसके गुणोंको जानताहै उसकी प्राप्तिकी चाहना करता है जिस में दोषों को जानता है उस में द्वेष अर्थात् चाहना नहीं करता प्रयत्न नानाप्रकार की शिल्पविद्या से पदार्थों का रचना शरीर तथा भार का उठाना इस का नाम प्रयत्न है सुख नाम अनुकूल का चाहना और जानना दुःख प्रतिकूल का जानना और छोड़ने की इच्छा करना ज्ञान जैसा जो पदार्थ है उसका तत्व पर्यन्त यथावत् विवेक करना इस का नाम जीव है ये गुण पृथिव्यादिक जड़ों के नहीं किन्तु जीव ही के हैं— लिंग शरीर बुद्धि जिस से जीव निश्चय करता है । " बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ,, । यह गौतम जी का सूत्र है बुद्धि उपलब्धि और ज्ञान ये तीनों नाम

एकही पदार्थ के हैं—मन जिस से एक पदार्थ को विचार के दूसरे का विचार करता है ॥ युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसोलिंगम् ॥ यह गौत० जिस से एक पदार्थ ही को एक काल में ग्रहण करता है एक को ग्रहण करके दूसरे का दूसरे काल में ग्रहण करता है एक काल में दोनों का नहीं इस का नाम मन—चित्त जिस से कि जीव पूर्वा पर का स्मरण करता है जो कि पहिले देखा और सुनाथा इसका नाम चित्त है—अहंकार जिस से अभिमान जीव करता है ये चार मिल के अंतःकरण कहाता है इस से जीव भीतर मनोराज्य करता है ये चारों एकही हैं परंतु व्यापार भेदसे चारभिन्न २ नाम-कहे—बाह्यकरण जिससे कि बाहर जीव व्यापार करता—श्रोत्र जिससे शब्द सुनाता है—त्वचा जिससे स्पर्श जानता है—नेत्र जिससे रूपको जानता है—जिह्वा जिससे रसको जानताहै—नासिका जिससे गंधको जानताहै ये पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं इनसे जीव बाह्य पदार्थों को जानताहै—वाक् जिससे शब्द बोलताहै—पाद जिससे गमन करताहै—हस्त जिससे ग्रहण करताहै—पायु जिससे मलका त्याग करता है—लिंग जिससे मूत्र और विषय भोग करताहै ये पांचकर्मेन्द्रियहैं इनसे जीव बाह्य कर्मकरताहै—प्राण जिससे ऊर्द्ध चेष्टाकरताहै—अपान जिससे अधोचेष्टा करताहै—व्यान जिससे सब संधियोंमें चेष्टाकरताहै—उदान जिससे जल और अन्नकोंकंठ से भीतर आकर्षण करलेताहै—समान जिससे नाभिद्वार सब रसोंको सब शरीर में प्राप्त करदेताहै ये पांच मुख्य प्राण कहातेहैं—नाग जिससे डकार लेताहै—कूर्म जिससे नेत्रको खोलता और मूंदताहै—कृकल जिससे छींकताहै—देवदत्त जिससे जंभाईलेताहै—धनंजय जिससे शरीर को पुष्ट करताहै और मरेपीछे शरीर को नहीं छोड़ता जोकि मुरदेको फुलाता है येपांच उपप्राणहैं येदश एकही हैं परन्तु क्रिया भेदसे दशनाम भयेहैं ये २४तत्व मिलके लिंग शरीर कहाता है कोई उपप्राण को नहीं मानता उसके मतमें १९ * होते हैं और कोई पांच सुक्ष्म भूत जोकि परमाणु रूप हैं और पूर्वोक्त चारभेद अन्तःकरण के इन नव तत्वों को लिंग शरीर कहाता है इस लिंग शरीर में जो अधिष्ठाता कर्त्ता और भोक्ता उसको जीव कहतेहैं जोकि एककालमें सब बुद्ध्यादिकोंके किये कर्मोंका अनुभव करताहै चेतन स्वरूप है उसका नाम जीव है उसकी अधिक व्याख्या मुक्ति के प्रकर्ण में कीजायगी सो जीव

---

*२४ में ५ गयेतो २९ रहे वा १९ यहभी ध्यान रहेकि पहिले विद्वानों ने लिंग शरीर १७ तत्वों का मानाहै तथाहि पंचप्राण मनोबुद्धि दशेन्द्रिय समान्वितं अपंचीकृत भूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोग साधनम् ॥

भिन्न पदार्थ ही है चारों के मिलाने से जीवके गुण और जीव कभी नहीं उत्पन्न होता इससे यह बात कही थी कि चारों के मिलने से जीव भी होता है यह बात खंडित होगई प्रश्न ईश्वर सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी है जैसा ईश्वरने अपने ज्ञानसे निश्चित कियाहै वैसाही जीव पाप वा पुण्य करेगा फिर जीव को दंड क्यों होताहै क्योंकि उससे अन्यथा जीव कुछ नहीं करसकता जो अन्यथा जीव करेगा तो ईश्वर का सर्वज्ञान नष्ट होजायगा इससे जैसा ईश्वरने पहिले ही निश्चय कररक्खाहै वैसा जीव करताहै ईश्वर जानताभीहै फिर आपसे उसको निवृत्त क्यों नहीं करदेता जो निवृत्त नहींकरदेता तो दण्ड क्यों देताहै-उत्तर ईश्वरहै अत्यन्त दयालु सबजीवोंको ईश्वरने रचा इति अब नाथजी का यह लेख कि पृष्ठ २३१ में साफ़ लिखाहै कि जीव भिन्न पदार्थ है और कभी उत्पन्न नहीं होता तो भला यह कैसे होसकता है कि एकही पृष्ठ के आगे जीव की उत्पत्ति लिखी हो विचारणीय है देखो पृष्ठ २३० में यह प्रश्न है कि पृथ्वी जल अग्नि वायु इन चारों के मिलने से चेतन भी उसमें होता है इत्यादि पृष्ठ २३१ में इस का उत्तर यह है कि इस लिङ्गशरीर में जो अधिष्ठाता कर्त्ता और भोक्ता उसको जीव कहते हैं जो कि एक काल में सब बुद्ध्यादिकों के किये कर्मों का अनुभव करता है चेतन स्वरूप है उसका नाम जीव है—सो जीव भिन्न पदार्थ ही है चारों के मिलाने से जीवके गुण और जीव कभी नहीं उत्पन्न होता—यहां नाथजीने बड़ाभारी छल कपट कियाहै और पवलिकको पूरा२ धोकादियाहै ऐसा क्यों न करते दयानन्दीही तो ठहरे दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४के पृष्ठ ११८पर श्रुति का अंतिम टुकड़ा (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिमत्) लिखकर शिष्यों को समझादिया कि जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्रीको आज्ञा देवे कि हे सुभगे सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू मुझसे दूसरे पति की इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से संतानोत्पत्तिकी आशा मत करे इति यह दयानन्दका मिथ्यार्थ और छल कपटहै जो कि ऋग्वेद में पूर्णसूक्त तथा एक ही श्रुतिके देखनेसे सम्यक् प्रकटहै वस्तुतः वहां दयानन्दके अर्थ की गन्धभी नहीं ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं विस्तारभयसे नहीं लिखते— वास्तव में पूर्वापर विचार के बिना केवल एक वाक्य के देखने से बड़ा अनर्थ होजाता है जैसा नाथजी और उनके गुरुके लेखसे प्रकट है बुद्धिमान् लोग सम्यक् पूर्वापर विचारकर सत्यको सत्य और असत्यको असत्य कहें अब नाथजीका यह लेख कि पृष्ठ २३२ में जो लिखा है कि जीवों को रचा उसका मतलब यही है कि प्राणधारी मनुष्यादिको रचा विशेष निर्णय है विद्वज्जन पृष्ठ २३० के प्रश्न से

पृष्ठ २३२ के इस लेखतक कि जब जीवों को ईश्वर ने रचा ध्यानपूर्वक सम्यक् विचारें कि दयानन्दजीके उक्तलेख में जीव शब्द मनुष्यादि के लिये कहीं नहीं आया किंतु सर्वत्र जीवात्मा ही के लिये आयाहै वहां (इच्छाद्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनोलिंगम्) यह गौतमजी का सूत्र जीवात्माही के विषय में लिखकर इसकी पूर्ण व्याख्या की है फिर लिंगशरीरका पूर्ण वर्णन किया है उस लिंगशरीर में जो अधिष्ठाता कर्त्ता और भोक्ताहै उसको जीव कहा है जो कि जीवात्मा ही का वाचक है मनुष्यादिका कदापि नहीं वस्तुतः यह प्रश्न कि पृथ्वी जल अग्नि वायु इन चारोंके मिलनेसे चेतन भी उसमें होता है जीवात्माही के विषय में है और उत्तर के अन्त में दयानन्दजी का यह सिद्धान्त कि इसलिंगशरीरमें जो अधिष्ठाता कर्त्ता और भोक्ता उसको जीव कहते हैं-चेतनस्वरूप है उसका नाम जीव है जीव भिन्नपदार्थ ही है चारोंके मिलाने से जीवके गुण और जीव कभी नहीं उत्पन्न होता प्रत्यक्ष जीवात्मा ही के विषय में है। फिर वह लेख कि जब जीवों को ईश्वरने रचा मनुष्यादिकोंके विषय में कैसे होसक्ता है निःसन्देह उक्त लेख भी जीवात्माही के विषयमें है फिर (जब जीवों को ईश्वरने रचा) इसके उपरांत; पृष्ठ २३३ तक जहाँ२ जीवशब्द आया है जीवात्माही के विषय में आया है मनुष्यादिकों के विषय में कहीं भी नहीं वहां का लेख यह है परमेश्वर ने सब जीव स्वतंत्र रक्खे हैं-कर्मों के करने और पुण्यों के फल भोगने में जीव स्वतंत्र हैं और पापों के फल भोगने में पराधीन हैं-जीव कर्मों के करने वाले और भोगने वाले है--जैसा जीव कर्म करैगा वैसाही ईश्वर ने ज्ञान से निश्चय पहिले ही किया है—अपने कर्मों के करने में तथा भोगने में जीव स्वतंत्र हैं—प्रश्न जीव का निजस्वरूप क्या ? उत्तर विशिष्टस्यजीवत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्याम् ।। लिंगशरीर जो है उसका अधिष्ठाताहै सोई जीव है-चेतन एक जीव और दूसरा परमेश्वर ही है—जहाँ २ लिंगशरीर विशिष्ट जीव रहता है—लिंगशरीर से युक्त जीव स्वर्ग नरक जन्म और मरण इत्यादिकों में भ्रमण करताहै कारणशरीर के ज्ञान लोभ और क्रोधादिक गुण जीव में आते हैं और स्थूलशरीरके शीतोष्ण क्षुधा तृषादिक गुण भी जीव में आते हैं क्योंकि दोनों शरीरके मध्यस्थवर्त्ती जीव हैं इससे दोनोंशरीरोंके गुणका भी संग जीवकर्त्ता है-सज्जनलोग न्याय करें कि जब जीवोंको ईश्वर ने रचा इस वाक्यके प्रथम और उपरान्त जहाँ२ जीवपद आया है जीवात्माही का द्योतक आया है कारण और स्थूल दोनों शरीरों से जीवको प्रत्यक्ष पृथक् दिखाया है फिरनाथजी के लेखानुसार

(जब जीवों को ईश्वरने रचा) इस वाक्य में जीवशब्द मनुष्यादिकों का वाचक कैसे होसक्ता है कदापि नहीं किन्तु जीवात्मा ही का वाचकहै यदि हमारे इस सदुत्तर से नाथजी तथा उनके सहायकों की सम्यक् तृप्ति न हुई हो तो उसी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३९३ को देखें और दयानन्दका जीवों की उत्पत्ति मानना समझलें वहां लिखा है कि एक ब्रह्मसमाज मत चला है वे ऐसा मानते हैं नित्य परमेश्वर सृष्टिकर्त्ता है अर्थात् जीवादिक नये२ नित्य उत्पन्न करता है जीव पदार्थ ऐसाहै कि जड़ और चेतन मिलाभया उत्पन्न ईश्वर कर्त्ताहै जब वह शरीर धारणकर्त्ता है तब जड़ांशसे शरीर बनताहै और चेतनांश जो है सो आत्मा रहताहै जबशरीर छूटताहै तब केवल चेतन और मन आदिकपदार्थ रहतेहैं फिर जन्म दूसरा नहीं होता किंतु पापोंका भोग पश्चात्तापसे करलेताहै ऐसेही क्रम से अनन्त उन्नतिको प्राप्त होताहै। यह बात उन की युक्ति और विचारसे विरुद्ध है क्योंकि जो नित्य २ नई सृष्टि ईश्वरकर्त्ता तो सूर्यचन्द्र पृथिव्यादिक पदार्थों की भी सृष्टि नई २ देखने में आती जैसे पृथिव्यादिक की सृष्टि नई २ देखने में नहीं आती ऐसे जीव की सृष्टिभी ईश्वरने एकीवेर की है इत्यादि यहां से स्पष्ट सिद्ध है किदयानंद के मत में ईश्वर ने जीवों की सृष्टि एकही वार की है नित्य नये २ जीव उत्पन्न नहीं करता यदि यहां भी नाथजी जीव शब्द को मनुष्यादिका वाचक कहेंगे तो अज्ञशिरोमणी रहेंगे क्योंकि प्रत्यक्ष के विरुद्ध है सर्वथा अशुद्ध है कि मनुष्यादि की सृष्टि नित्य नई २ होतीही है निदान दयानंदने मुसलमानों के समान यहां जीवोंकी उत्पत्ति स्पष्ट लिखी है यदि अब भी नाथजी और उन के सहायक न मानेंतो सर्वथा हठ धर्मी है जिसका नाम सत्यार्थ प्रकाश है सद्धर्मका उससे सत्यानाश है शास्त्र विरुद्ध है महा अशुद्ध है कोई विद्वान् दयानंद के सत्य वक्ता होनेका अभिमान नहीं करसकता हमारे आक्षेपों का सच्चा समाधान नहीं करसकता जो कोई उसका पक्ष करेगा शिरके बल गिरेगा मात खायगा और अपनी अप्रतिष्ठा करायगा यहां तक पूर्व सत्यार्थप्रकाश के लेखसे दयानन्द का जीवोंकी उत्पत्ति मानना सम्यक् दिखायागया और झूठका पक्ष करनेवालों को झूटा बनायागया रहानाथजी का वह लेखकि प्रथम सत्यार्थप्रकाशका प्रमाण देना वृथा है क्योंकि—स्वामीजीने कई जगह अपने प्रतिकूल पाकर उसको अप्रमाणिक करदिया इति ॥ ध्यानरहे कि दयानन्दने मरणपर्यन्त पहिले सत्यार्थप्रकाश के अप्रमाणिक होने का कोई विज्ञापन नहीं छपवाया हां संवत् १९३५ में यजुर्वेदभाष्यके अङ्क२पर यह छपवाया था कि सत्यार्थप्रकाशके ४२ पृष्ठ और २५ पङ्क्ति में पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण

न करे और जितने मरगये हैं उनका तो अवश्य करै तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये । पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करना है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापागया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छपगया है इति यद्यपि दयानंद का यह लेख कि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापागया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है सर्वथा मिथ्या है हमने दयानंद मत परीक्षा सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा में इस की सम्यक् समालोचना की है परंतु दयानंद का यह विज्ञापन नाथ जी के उस कथन को कि स्वामी जीने कई जगह अपने प्रतिकूल पाकर पहले सत्यार्थ प्रकाश को अप्रमाणिक करदिया झुटलाता है क्यों कि उसने केवल तर्पण और श्राद्ध विषय को अशुद्ध छपा प्रकट किया इस से आप सिद्ध होगया कि उसके विचार में और समस्त सत्यार्थ प्रकाश प्रमाणिक रहा संस्कार विधि आदि पर उस को विक्रीय पुस्तकों में छापते रहे और मरण पर्यन्त उस को वेचते रहे ९ वर्ष उपरान्त मरणसमीप दूसरे सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में यह लिखा कि जिस समय मैंने यह सत्यार्थप्रकाश बनायाथा मुझ को इस भाषा का विशेष ज्ञान न था इस लिये भाषा शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है अर्थ का भेद नहीं किया गया है यहां तक उसको अप्रमाणिक नहीं कहा मुद्दई सुस्तगवाह चुस्तका दृष्टान्त नाथ जी पर चरितार्थ है अस्तु हमने इसकी विशेष व्याख्या कृपारामकी कजरफ्तारी में की है कि दयानंद ने पहिले सत्यार्थ प्रकाश को मरणपर्यन्त अप्रमाणिक नहीं माना किंतु प्रमाणिकही जाना है जब हमने दयानंद लिखित पूर्व सत्यार्थ प्रकाशान्तर्गत गाय वैल आदि के मारने और मांसादि से होम करने मांसके पिंड देने आदि को प्रकट किया तब से दयानंदियों ने यह झूठी बात बनाई है कि पहिले सत्यार्थ प्रकाश के अशुद्ध होने का नोटिस तो स्वामी जीने आपही दे दिया था परंतु वह नोटिस आजतक किसी ने दिखाया नहीं यदि यह झूठी बात मान भी लीजाय कि दयानंद ने उसके अशुद्ध होने का नोटिस दिया था तब तो उस का अशुद्ध होना स्वतः सिद्ध है कि जिस ग्रंथ को आप बनाया और छपवाया उसी को झूटा बताया यदि उससमय उस को सत्यासत्य का निर्णय न था तो फिर किस गुरु से पढ़कर विद्वान् होगया यह भी ध्यान रहै कि जिससमय वह नोटिस देना मानोगे तबतक उस ने और जो कुछ लिखा वा उपदेश किया समस्त झूटा जानोगे वस्तुतः पुराना सत्यार्थ प्रकाश ही अशुद्ध नहीं दयानंद के सभी ग्रन्थ अशुद्ध हैं शास्त्रविरुद्ध हैं शीघ्र वह दिन आनेवाला है कि

दयानंदी लोग जैसे अब पुराने सत्यार्थप्रकाश को अप्रमाणिक कहते हैं दयानंद के सम्पूर्ण पुस्तकों को अप्रमाणिक बतायेंगे और जिनका प्रारब्ध अच्छा है पक्षपात हठ दुराग्रह को छोड़कर सनातनधर्म ही की शरण आयेंगे अस्तु पाठकगण दयानंद ने पूर्व सत्यार्थप्रकाश ही में जीवों की उत्पत्ति नहीं लिखी किंतु अन्यत्र भी लिखी है देखो आर्याभिविनय मुद्रित संवत् १९३२ का पृष्ठ ४५ प्रथमोत्पन्नजीव सब संसार से आदि कार्य जीव को ही समझना। पृष्ठ ६० परमात्मा ने अनंत सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है वही इस सब जगत् का अधिष्ठान उपादान निमित्त और साधनादि है उस अनंत स्वसामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत् को यथा योग्य रचा है यहां परमात्मा को जगत् का उपादानकारण माना है यह बड़े आक्षेप की बात है पृष्ठ ६८ जीव ईश्वर के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं—जन्य जनकादि संबंध तो जीवादि जगत् के साथ ब्रह्म का है इत्यादि नाथजी की पहिली शंका का समाधान पूर्ण हुआ और उन के मिथ्या कथन का चूर्ण २ यदि वे अब भी दयानन्द का प्रथम जीवों की उत्पत्ति मानना न मानेंगे तो बुद्धिमान् लोग उन को हटी दुराग्रही और अज्ञ ही जानेंगे उन्होंने पवलिक को धोका देने के लिये सर्वथा छल कपट किया है जो कि हमने सम्यक् प्रकट किया है। छंद- छल कपट से बुद्धिमानों में तो होगी जय नहीं। मूर्खों के आप वनजायें गुरु तो भय नहीं॥

(शंभुनाथ) कुतर्क २ दयानंदमत सूची में से (वादी) कुंभकरण की मूछ को लंबा योजन एक बताया। तुलसीदास को दयानंद ने मिथ्या दोष लगाया॥ प्रथम स० प्र० पृष्ठ ६५४।

(प्रतिवादी) स्वामी जी महाराज का काम किसी पर दोषारोपण करना न था पर यदि लोग आपही आप ऐसा समझ बैठें तो इसका क्या उपाय वादी जी! स्वामीजी महाराज ने मिथ्या दोष नहीं लगाया कृपा करके बंबई जगदीश्वर प्रेस स० १९१८ की छपी हरि प्रसाद भागीरथ की छपाई तुलसीकृत रामायण को दृष्टिगोचर कीजिये आपका भ्रम दूर होजायगा उस में लिखा है कि—

अति अकार तनु चितव न जाई। चौतिस योजन की चकुलाई॥
योजन तीन तीन के काना। बाइस योजन बाहु अजाना॥
सत्रह योजन जांघ लँबाई। शत योजन तनु बरणि न जाई॥
दुइ योजन की नाक जो बाढी। योजन एक मूछ रहै ठाढी॥

सुंदरकाण्ड पृष्ठ ४३९ परंतु इस में यह उत्तम काम किया है कि क्षेपक अलग करदिये हैं जो प्रायः रामायणों में नहीं कियेगये हैं यद्यपि यह वार्त्ता (कुंभकरण के शरीर का विस्तार) इस यन्त्रालय की छपी पुस्तक में क्षेपक में है पर इस से यह तो स्पष्ट विदित है कि और रामायणों में क्षेपक वार्त्ता बिलग नहीं की गई और इस दशा में यह पहचानना कब सम्भव होसकता है कि अमुक विषय मूल में है वा क्षेपक में इत्यादि ।

(उत्तर) आप के स्वामी ने सभीपर दोषारोपण किये हैं भागवतादि के नाम से झूटे इतिहास लिख दिये हैं दूसरों को दुर्वाक्य सुनायेहैं झूटे दोष लगाये हैं श्रीवेदव्यास महर्षि के वचन को वेद विरुद्ध ठहराया है मुक्ति को जेलखाना और फांसी के समान वताया है वेदों का अर्थ विगाड़ा है सनातनधर्म की पुष्पवाटिका को उजाड़ा है अधिक व्याख्या न कराइये लोगों को न हंसाइये अब आपके मुख्य लेख का उत्तर सुनाता हूं और तुलसी दास जी पर दयानंद का मिथ्या दोष लगाना आपही के लेख से सिद्ध कर दिखाता हूं जादू वह जो शिरपर चढ़ के बोले यहां तो आपने तुलसी दासजीपर दयानंद का मिथ्या दोष लगाना स्वयं मानालिया और अपने गुरु की अज्ञता को सम्यक् जानलिया फिर भी झूठी बातें बनाने से बाज़ नहीं रहते और अज्ञ को अज्ञ नहीं कहते जब कि आपकी माननीय जगदीश्वर प्रेस की छपीहुई रामायण में कुंभकरण के शरीर का विस्तार क्षेपक में है तुलसीदासजी के लेख में नहीं तो फिर तुलसीदासजी पर दयानंद का मिथ्या दोष लगाना स्पष्टसिद्ध है यदि इस विषय को आप किसी न्यायकारी के पास लेजायँगे तो निःसन्देह हम ही जय पावँगे फिर आपका यह लेख कि यद्यपि यह वार्त्ता (कुंभकरण के शरीर का विस्तार) इस यंत्रालय की छपी पुस्तक में क्षेपक में है पर इस से यह तो स्पष्ट विदित है कि और रामायणों में क्षेपक वार्त्ता बिलग नहीं कीगई, सर्वथा असंगत है क्योंकि—यह विषय इस पुस्तक में क्षेपकमें है तो और पुस्तकों में क्षेपकमें न होगा यह तो सिद्ध नहीं होता किंतु यह अनुमान होसक्ता है कि इस पुस्तक में क्षेपक में है तो और पुस्तकों में भी क्षेपक में होगा इससे हमारा कोई विशेष प्रयोजन नहीं केवल आप की बुद्धि को दिखाया है और मित्रभावसे समझाया है कि समझ सोचकर लिखा करो समंजस और असमञ्जस का विचार करलिया करो ऐसे लेखों को देखकर लड़के भी आप की हँसी करेंगे और आपका नाम अज्ञशिरोमणी धरेंगे अस्तु फिर आपका यह कथन कि—

इस दशा में यह पहचानना कब संभव होसक्ता है कि—अमुक विषय मूल में है वा क्षेपक में इति सर्वथा अशुद्ध है बुद्धिमानों के विरुद्ध है जैसे जौहरी लोग असली और नकली रत्नको जानलेते हैं ऐसेही पूर्णविद्वान् सुकवि और कुकवि की कविताको पहिचान लेते हैं इस के अतिरिक्त समस्तबुद्धिमानोंपर प्रकट है कि—तुलसीदासजी की रामायण में मिलावट बहुत होगई है फिरभी अधिकतर यन्त्रालयों की छपीहुई रामायणों में आप की लिखीहुई चौपाइयाँ कुंभकरण के शरीरके विस्तार की हैं ही नहीं आपको ढूंढनेसे एक जगदीश्वर प्रेस की छपी रामायण में उक्त चौपाइयां मिलीं सो उस पुस्तक में क्षेपकही में हैं ऐसी दशा में तुलसीदासजी पर दोषारोपण करना दयानंद की महद्-शता और द्वेष बुद्धिका प्रभाव है उस को उचित था कि प्राचीनकाल की हाथ की लिखी हुई और दश यंत्रालयों की छपी हुई रामायणों को अपनी आँखों से देखता यदि सब में वह लेख पाता तो तुलसीदासजी के नाम से लिखता अन्यथा नहीं परंतु उस को निर्णय से क्या प्रयोजन उस को तो सब परदोषारोपण करने थे जैसे चाहा कर दिया ब्राह्मणादि सत्शास्त्रों में बिना निर्णय किये वेद विरुद्ध होने का दोष लगाया चक्रांकितों को वेद विरोधी और नानकजी को दंभी बताया तो तुलसीदास जी पर मिथ्या दोषारोपण करना कुछ बड़ी बात नहीं, हे मित्र उस को सत्यासत्यके निर्णय से प्रयोजन नहीं था किंतु अपना प्रयोजन सिद्ध करने ही से प्रयोजन था देखो 'देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते' इसे निरुक्तकी टिप्पणी में क्षेपक लिखा है उस ने सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ११६ पर अपना प्रयोजन सिद्ध करने को इसे निरुक्त के नाम से लिख दिया और पृष्ठ ११८ में वेद का बता दिया दो पृष्ठ के उपरान्त अपने पिछले लिखे का भी ध्यान न रहा अस्तु ऐसे बहुत दृष्टान्त हैं कहांतक लिखें वस्तुतः दयानन्द ने कुंभकरणके शरीरका विस्तार किसीसे सुनकर लिखा है उसने निर्णयार्थ रामायण की पुस्तकों को नहीं देखा जब वह दूसरीबार मुरादाबाद आया था हम ने उससे कहा था कि तुलसीदासजीकी रामायण में यह लेख नहीं है तब उसने किसी यन्त्रालयकी छपी रामायण का प्रमाण न दिया निदान नाथजी के लेखानुसार वह लेख तुलसीदासजी का नहीं है किंतु किसी दूसरे का मिलायाहुआ है कि जिस पुस्तक में छपा है क्षेपक में लिखा है इसकारण हमारा यह लेख कि (कुंभकरणकी मूछ को लंबा योजन एक बताया । तुलसीदासको दयानन्दने मिथ्यादोष लगाया) सर्वथा सत्य है और नाथजी का

हृथा प्रलाप मृषा, छन्द–स्वीकार नाथजी को मेरा आक्षेपहै । बातें बनायेजात हैं फिर भी वह बेतुकी ॥ नाथजी की बुद्धिपर अज्ञान छाया है और उन के लेखने उन की अज्ञताको प्रकट करदिखाया है उनके लेख में कुम्भकर्ण की मूछको हमारे इस छन्दका पता प्रथम. स० प्र० पृष्ठ ६५४ अशुद्ध है दयानन्द-मतसूचीके विरुद्धहै नहां पृष्ठ ३५४ लिखा है जोकि - ठीक पताहै जिनको यहांतक अज्ञान है उनको हमारे आक्षेपों के उत्तर लिखने का अभिमान है छंद--हमारे आक्षेपों का तो उत्तर मानलेना है । बनाये बात जो झूटी बनेगा आप वह झूटा ॥ नाथ जी अपने उस लेख को स्मरण कीजिये कि भला चंद्र पर धूर फेंकने से कहीं चंद्र छिपसकता है उलटी फेंकने वाले की ही आँखों में पड़ेगी—कहिये कैसी पड़ी पता लिखा वह अशुद्ध उत्तर दिया सो बुद्धिमानों के विरुद्ध अस्तु अब यह भी ध्यान रहै कि दयानंद ने पूर्व सत्यार्थप्रकाश में तुलसीदास जी के नाम से कुंभकर्णके शरीर का विस्तार जिस प्रकार लिखा था उसको आप झूटा जान लिया और तुलसीदास जी पर अपना मिथ्या दोष लगाना आपमान लिया क्योंकि उसे दूसरे सत्यार्थ प्रकाश में नहीं छपवाया और आप की समान झूटी बनावट करके अपनी अज्ञतापरबुद्धिमानों को अधिक नहीं हँसाया दयानन्दको हमारा आक्षेप स्वीकार है और झूटी बनावट बनानेवाले को लोकपरलोक में धिक्कार ।छन्द-शत्रुने मेरे लेखकी पुष्टि जो आप की । जय२ की चारों ओर से होनेलगी ध्वनी ॥ पाठकगण प्रकट होगया कि वादी हमारे आक्षेपों का उत्तर लिखने के बहाने से दयानन्द की अज्ञताको दिखारहा है अज्ञोंको सुझारहा है हम से उसकी पोल सम्यक् खुलवारहा है मिथ्यावादियों को चितारहा है अस्तु ।

(शंभुनाथ) कुतर्क ३ दयानन्दमतसूची में से–(वादी) नारायण नाम ईश्वरका है यह पहलै छपवाया । नारायणायनमः को फिर क्यों वेद विरुद्ध बताया । स० प्र० पृ० २६ (प्रतिवादी) भला चन्द्रपर धूरके फेंकनेसे कहीं चन्द्र छिपसक्ता है उलटा फेंकनेवाले की ही आंखों में पड़ेगी–महाशयजी स्वामीजीने यह कहां लिखा है कि–नारायण शब्द वेदविरुद्ध है पृष्ठ २६ में तो केवल यह लिखा है कि—सीतारामाभ्यांनमः नारायणायनमः राधाकृष्णाभ्यांनमः गणेशायनमः शिवायनमः भैरवायनमः हनुमतेनमः इत्यादि से जो मङ्गलाचरण करते हैं सो ऐसा मङ्गलाचरण वेदशास्त्र विरुद्ध है वह यह कब लिखते हैं कि–नारायण नाम वेदविरुद्ध है इत्यादि ।

(उत्तर) निःसंदेह चंद्र पर धूलि फेंकने से चंद्र कभी नहीं [illegible]

उलटी फेंकने वाले ही की आँखों में पड़ती है हमारे सच्चे आक्षेपों पर आप कितनी ही झूटी बनावटें बनाएँ परंतु वे कदापि न छुपेंगे किंतु और अधिक प्रकाशित होंगे यहां तो आपकी आँखों में ऐसी धूलि पड़ी कि सत्यार्थ प्रकाश की दो तीन पंक्ति लिखने में आगे पीछेकी कुछ भी सुध न रही अस्तुदेखिये सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन१८८४के पृष्ठ२६में आपके गुरु का लेख यह है—जो आधुनिक ग्रंथों में श्रीगणेशाय नमः सीतारामाभ्यांनमः राधाकृष्णाभ्यांनमः श्रीगुरुचरणारविंदाभ्यांनमः हनुमतेनमः दुर्गायैनमः वटुकाय नमः भैरवायनमः शिवायनमः सरस्वत्यैनमः नारायणायनमः इत्यादि लेख देखने में आते हैं इन को बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्याही समझते हैं इत्यादि अब आंखों की धूलि निकलवाइये और गुरु के लेख से अपना लेख मिलाइये देखिये वाक्यों के लिखने में आपने कैसी उलट पलट की है कि अपनी अज्ञता सम्यक् प्रकट की है आँखों में धूलि पड़ना इसीका नाम है और मिथ्याभाषीका यही परिणाम है अस्तु छंद—हमारे सत्य लेखों पर बनाये बात कोइ झूटी । रहैगी सत्यही की जय अनृत अनृतही ठहरेगा ॥ नाथजी ! नारायणाय नमः इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्याही समझते हैं सत्यार्थप्रकाश में यह स्पष्ट लिखा है तो (नारायणायनमः को फिर क्यों वेदविरुद्ध ठहराया) हमारे इस कथन में अशुद्ध क्या है यहां दयानन्दने नारायणायनमः को प्रत्यक्ष वेदविरुद्ध कहा है और ईश्वरके सर्वोत्तम नामों को ग्रंथकी आदि में लिखने से अज्ञों को रोका है वस्तुतः वह ईश्वरका नामतक जगत् से उडाना चाहता था और पूर्ण नास्तिकता फहलाना चाहता था उसने उक्त सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ७३ तथा ३२४ में नारायण शिवनामस्मरण की निंदा की है निःसंदेह अज्ञों को ईश्वरसे विमुख करनेपर कमर बाँधी है फिर आपका यह कथन कि— स्वामीजी का अभिप्राय शिवादि नामों को वेदविरुद्ध बताने अथवा खण्डन करने का नहीं है किन्तु ईश्वरके स्थान में नवीन देवी देवताओं के नाम से मंगलाचरण करने के अभिप्राय से निषेध किया है) आप की अज्ञता है और बनावट मिथ्या क्योंकि—नारायण और शिव नामों को आपके गुरु ने भी नवीन देवी देवताओं के नाम नहीं माने हैं किंतु उन को ईश्वरही के नाम माने हैं अतएव उक्त नामों से मंगलाचरण करने का निषेध करना भी नास्तिकों का धर्म है और पूर्ण पापकर्म, फिर आपका यह लेख कि इस प्रकार का मंगलाचरण आर्षग्रंथों के प्रतिकूल है—कण्पुक

प्राचीन ग्रंथों में तो ओ३म् वा अथ शब्द सेही मंगलाचरण किया गया है इति दयानंद की कपोल कल्पना है और मिथ्या विडंबना जब कि ऋष्युक्त प्राचीन ग्रंथों में ओ३म् शब्द से मंगलाचरण किया गया है तो नारायण शिवादि शब्दों से मंगलाचरण करने का निषेध करना दयानंद की महदज्ञता है क्यों कि संपूर्ण वेदानुयायी जैसे ओ३म् शब्द को ईश्वर का वाचक जानते हैं वैसेही नारायण और शिवादि शब्दों को परमात्मा का नाम मानते हैं अतएव नारायण वा शिवादि ईश्वरवाचक शब्दों से मंगलाचरण करना कदापि आर्ष ग्रंथों के प्रतिकूल नहीं किंतु अनुकूल है और दयानन्द तथा दयानंदियों का कथन सर्वथा निर्मूल यदि अब भी आप अपने हठका त्यागन करें और यही कहें कि ऋषिप्रणीत ग्रंथों की आदि में नारायणायनमः शिवाय नमः इत्यादि नहीं लिखा अतएव ऐसा लिखना वेद और शास्त्रों के विरुद्ध ही है तो दयानंदजीने आर्याभिविनय की आदि में ॐतत्सत् परब्रह्मणेनमः और सत्यार्थप्रकाश की आदि में ओ३म् सच्चिदानन्देश्वरायनमोनमः तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका संस्कारविधि और वेदभाष्य की आदि में ओ३म् सहनाववतु और विश्वानिदेव इन श्रुतियों से जो मंगलाचरण किया है वेद और ऋषियों के ग्रंथों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता अतएव उनका उक्त लेख वेद और शास्त्रों के विरुद्ध जानिये और गुरु जी की भूल मानिये फिर सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर के जो सौ नाम लिखे हैं वेद और ऋषियों के ग्रंथों में वे नहीं लिखे मौन न रहिये उन को भी वेद और शास्त्रों के विरुद्ध कहिये —

छंद—दयानन्द का लेखहै सब अशुद्ध । सभी वेद से बाह्य है वा विरुद्ध ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क ४ दयानंदमतसूची में से (वादी) नमःशिवाय यह वाक्य वेद में हमने तुझे दिखाया । तेरे गुरु ने निंदा से उस की क्या लाभ उठाया ॥ स० प्र० पृष्ठ ३४९ ।

(प्रतिवादी) झूंटे आक्षेप करके महात्माओं की निंदा करना तो आपने अपना कर्त्तव्य बना रक्खा है इत्यादि (उत्तर) छंद—अनृत कथन से अपनाही विश्वास खोयगा । झूठी बनावटों से न होगी कहीं भी जय ॥ पूर्ण कलिकाल है जिस ने मांसादि पदार्थों से होम करना मांस के पिंड देना मांसभक्षण की पुष्टि यज्ञ में गोवृषभादि का वध लिखा एक स्त्री को ग्यारह पुरुषों तक से नियोग करके संतानोत्पत्ति करने की आज्ञादी वह महर्षि और महात्मा कहलाये । महातमा जी हमने उस की भी निंदा नहीं की किंतु

स्वधर्मरक्षार्थ उस के शास्त्रविरुद्ध महाअशुद्ध सर्वथा मिथ्या और असंबद्धप्रलापादि लेखों को प्रकट किया है हमारा आक्षेप एक भी झूठा नहीं है आप के गुरु ही ने सनातनधर्मावलम्बियों पर प्रायः झूठे आक्षेप किये हैं जो कि हमने संक्षेप से अपनी पुस्तकों में लिखे हैं महात्माओं की निंदा भी उसी ने पेटभर की है सत्यार्थप्रकाश ही में लिखी है संपूर्ण मतानुयायियों पर दुर्वाक्यों की वर्षा की है उसकी सूचना संक्षेप से हमने सनातनधर्मपताका संवत् १९५६ संख्या २ में छपवादी है सत् शास्त्रों में वेद विरुद्ध बताया है उनको अप्रमाण ठहराया है वेदों में भी केवल चार शाखाओं को माना है शेष को ऋषि मुनि कृत जाना है धर्म को मिटाया है अधर्म को फइलाया है ऐसे कर्मों का परिणाम भला नहीं है जगत् में हंसी कराई और अंत में अपमृत्यु पाई अब सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३४९ के लेख को अवलोकन कीजिये और हमारे आक्षेप की सत्यता देख लीजिये यथाहिः—

(प्रश्न)—शैव मतवाले तो अच्छे होते हैं ?

(उत्तर) अच्छे कहां से होते हैं जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ जैसे वाममार्गी मन्त्रोपदेशादि से उनका धन हरते हैं वैसे शैव भी ॐनमःशिवाय इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रों का उपदेश करते रुद्राक्षभस्म धारण करते मट्टी के और पाषाणादिके लिंग बनाकर पूजते हैं इत्यादि—यहां ओंनमःशिवाय इत्यादि पञ्चाक्षरी मंत्रों का उपदेश तथा रुद्राक्षभस्म धारण करने और मट्टी पाषाणादिके लिंग बनाकर पूजने की स्पष्ट निंदा की है और शैवोंको उक्तकर्म करने के कारण वाममार्गियों से उपमा दी है आपके छुपाने से दयानन्दकी अज्ञता कदापि न छुपेगी झूटी बनावटोंके सदुत्तर छपने से और भी अधिकतर खुलेगी आप की यह बनावट कि—यहां ओंनमःशिवायका उपदेश करने आदिको बुरा नहीं बताया है किंतु धनहरण करने को वाममार्गियों की सदृश ठहराया है सर्वथा अशुद्ध है बुद्धिमानों के विरुद्ध है क्योंकि—ओंनमःशिवाय इत्यादि के उपरान्त धनहरण कहीं नहीं लिखा और रुद्राक्षभस्म धारण करने तथा शिवमूर्त्तिके पूजने से किसीप्रकार धनहरण होता भी नहीं यदि कहो कि—मन्त्रोपदेश करके दक्षिणा लेते हैं तो उस के लिये वाममार्गियों के दृष्टांत की क्या आवश्यकता है और अधर्म ही क्या है क्योंकि यज्ञों में दक्षिणा दीजाती है गुरु के लिये दक्षिणा का विधान है धर्म से कहिये कि आपके गुरु ने पुस्तकोंका मूल्य चतुर्गुण रखने के अतिरिक्त वेदभाष्य की सहायताके नाम से बारंबार विज्ञापन छापकर शिष्यों का कितना धन हरण किया राजा महाराजों से

कितना धन लिया धन हरण करने को (विविधानिचरत्नानि विविक्तेपूपपादयेत् मनुके नाम से यह झूटा आधा श्लोक बनाया और पूर्व सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध नवीन सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १३५में(नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन संन्यासियों को देवें) यह अनर्थ छपवाया समाजों में सहस्रों रुपया चंदे से एकत्र होता है कि नहीं आपके विना यजमानों से धन लेते हैं वा नहीं जिन कर्मों को आप अधर्म और पोपों का छल कपट कहते हो वे तो उन्हीं के द्वारा धन लेते हैं।किसी मुसल्मानी स्त्री ने मरण समय बहुत कुछ धनादि का दान किया था धर्म से कहिये कि वह किसने लिया था+

वस्तुतः दयानंद ने शैवों को ओंनमः शिवाय इत्यादि मंत्रों का उपदेश तथा रुद्राक्षभस्म धारण करने और शिव मूर्त्ति पूजनेही से बुरा बताया है और वाममार्गियों की सदृश ठहराया है इस के अतिरिक्त सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ७३ तथा ३२४ में भी नारायण और शिवनाम स्मरण की निंदा की है अपने शिष्यों को ईश्वर से विमुख होने की शिक्षादी है यदि बलात्कार आप अपनी ही हठ पर रहोगे और यही कहोगे कि उस ने धन हरण करने ही को वाम मार्गियों की सदृश कर्म बताया है ओंनमःशिवाय मंत्रके उपदेश को निंदित नहीं ठहराया तो रुद्राक्ष भस्म धारण करने तथा मट्टी और पाषाणादि की मूर्त्ति पूजने को भी बुरा न जानोगे किंतु ओंनमःशिवाय मंत्र की सदृश ही मानोगे क्यों कि निंदा वा स्तुति सब की समान है न मानो तो आपका महदज्ञानहै ॥ छंद -आपके हाथ से घर आपका मिसमार हुआ आपके शिर पै कुठार आप का असवार ॥ हुआ सत्य भाषणसे हुई मेरी विजय लाखोंमें । झूट से आप का सर्वत्र तिरस्कार हुआ ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क ९ दयानद मत सूची में से (वादी) कहै त्रिकाल दर्शी ईश्वरको उस को मूर्ख बताया। निज मुख मूर्ख बने स्वामी जी आपही छपवाया ॥ स० प्र० पृष्ठ १९४ ॥ (प्रतिवादी) यहां आपने पबलिक को खूब धोका दिया पर अब आपकी चालाकियों का समय आपहुंचा है हम एक २ आक्षेप का ऐसा मुख मर्दन करेंगे कि आप भी याद करें अब हम पृष्ठ १९४ का लेख नीचे उद्धृत करके दिखलाते और पबलिक को वादी की अज्ञता परहंसाते हैं–ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खताका काम है क्यों कि जो होकर न रहै वह भूतकाल और न होके होवे वह भविष्यतकाल कहाता है क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता अथवा न होके होताहै कभी नहीं परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस अखंडित

वर्त्तमान रहता है भूत भविष्यत् जीवों के लिये है हां जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है स्वतः नहीं महाशय गण विचारिये स्वामी जीने तो यह कहा है कि ईश्वर को अपनी अपेक्षा त्रिकाल दर्शित्व नहीं है क्योंकि वह तो सदा एक रस वर्त्तमान है देश काल और वस्तु इन सब से अपरिच्छिन्न है। इत्यादि

(उत्तर) छंद-न्यूनता बुद्धि की है और हठ दुराग्रह द्वेष है। बात सीधी का भी जो देता है तू उल्टा जवाब ॥ नाथजी जरा तो बुद्धि से काम लीजये और कुछ तो मनुष्यत्व का काम कीजये झूटी बातें बनाते हो फूटे ढोल बजाते हो बेतुके गीत गाते हो और अज्ञों को रिझाते हो। छंद-झूंटी बनावटों से कुछ भी न सिद्धि होगी। हां अज्ञता की तेरे स्वामि का पुष्टि होगी ॥ धोका देना आपका और आपके गुरुका काम है गप्पाष्टक उसकानाम है हमने उसके शास्त्र विरुद्ध महा अशुद्ध सर्वथा मिथ्या असमंजस और छलकपटादि युक्त लेखों की सम्यक् पोल खोली है और विद्वानों ने अपनी बुद्धि रूपी तुला में तोलीहै। छंद- दयानंद का छल कपट तुलगया। कि विद्वानों की बुद्धि में तुलगया ॥ निःसंदेह अब आपके गुरु की चालाकियों का अंतिम समय निकट है कि प्रत्येक नगर और ग्राम निवासियों पर उस की अज्ञता सम्यक् प्रकटहै। छंद-तेरे गुरुकी अज्ञता सबपर प्रकट हुई। फंदे में उसके आयगा कोई न बुद्धिमान ॥ प्रत्यक्ष देखलो कि जिन २ द्विजातियों ने प्रथम उसके मत को अपूर्व जान लिया था और विना सोचे समझ अज्ञान वा किसी अन्य कारण से कुछ २ मान लिया था प्रायः उसके त्यागी हुए सनातन धर्मही के अनुरागी हुए प्रायः मन में झूटा जानते हैं परंतु छोड़ते में अप्रतिष्ठा मानते हैं फिर भी उस की सब बातों को स्वीकार नहीं करते सर्वथा शास्त्र विरुद्ध नियोगादि दुष्कर्मों का प्रचार नहीं करते अधिक व्याख्या न कराइये अन्यमतावलंबियों को न हंसाइये आज कल शूद्र और पतित लोग समाजों में नाम लिखाते हैं शर्मा और वर्मा बन जाते हैं द्विजाती लोग जिन के हाथ का पान नहीं खाते थे और जिनको अपना पात्र तक नहीं छुवाते थे समाजी लोग उन के घर का भोजन खाते हैं और अपनी पंक्ति में बिठाते हैं मुसलमानों और ईसाइयों को आर्य्य बनाते हैं धर्म को सर्वथा मिटाते हैं सनातन धर्म पताका मुरादाबाद वैशाख संवत् १९५८ में जलेसरका एक पत्र छपा है कि आर्यसमाज में एक भंगी निकला भंगियों ने पहिचान लिया पहिले कृष्टान हुआ अब आर्य्य है धन्य हम आपकी प्रत्येक कपोल कल्पना और झूटी बना-

बट का ऐसा खंडन करेंगे कि बुद्धिमान लोग आपके सर्वथा मिथ्या और असंगत प्रलाप को पागल की बड़ से अधिक न समझेंगे । छंद कहेगा शास्त्र के प्रतिकूल जो कोइसागने मेरे । वह हारेगा वह हारेगा वह हारेगा वह हारेगा ॥ पाठकगण कहे त्रिकालदर्शी ईश्वर को उसको मूर्ख बताया । निज मुख मूर्ख बने स्वामी जी आपबही छपवाया ॥ यहां हमारा यही आक्षेप है कि जो कोई ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहै दयानंद उसको मूर्ख बनाता है परंतु उसने आप ईश्वर को त्रिकालदर्शी लिखा है अतएव वह अपने कथनानुसार मूर्ख हुआ सो (ईश्वरको त्रिकालदर्शी कहना मूर्खताका काम है) नाथ जीने दयानंदका यह लेख स०प्र० पृष्ठ १०४ मे आप दिखाया है और दूसरे लेख का पता हमने दयानंदमत सूची में आर्य्याभिविनय पहिले का पृष्ठ ८ लिखा है वहां दया नंद जी का लेख है कि ईश्वर त्रिकालदर्शी होने मे इस बात में दोष नहीं हमने जो कुछ पद्य में लिखा है वही लेख दयानन्द के गद्य में विद्यमान है कुछ भी न्यूनता नहीं अतएव हमारा आक्षेप सर्वथा बलवान है और नाथ जी की हठधर्मी वा अज्ञान ॥ छंद—हमने जो कुछ बताया था दोष उस के लेख में । प्रत्यक्ष उस के लेख से वह सिद्ध करदिया ॥ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ ७६ में भी ईश्वर को त्रिकालदर्शी भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जाननेवाला लिखा है और उक्त आर्य्याभिविनय पृष्ठ ३० यजुर्वेद की श्रुति के अर्थ में ईश्वर को त्रैकाल्यज्ञ लिखा है पूर्व सत्यार्थ० के पृष्ठ २३२ पर ईश्वर को त्रिकालदर्शी लिखा है फिर दयानन्द का यह लेख कि (जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होकर होवे वह भविष्यतकाल कहाता है क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता अथवा न होके होता है परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस अखंडित वर्त्तमान रहता है) उसकी मूर्खता को और भी पुष्ट करता है क्योंकि ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है इस पहिले वाक्य से कुछ भी संबन्ध नहीं रखता और उसका हेतु कदापि नहीं होसकता—हां यदि ऐसा कहें कि (ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना उचित है क्योंकि जो बीत गया वह भूतकाल और जो आनेवाला है वह भविष्यत् काल कहाता है क्या ईश्वर को व्यतीत हुए का ज्ञान नहीं रहता अथवा आनेवाले समय का ज्ञान नहीं परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस अखंडित वर्त्तमान रहता है) तो ठीक होगा जिस को अपने लेख में योग्यता अयोग्यता का भी ज्ञान न हुआ उस के मूर्ख होने में क्या संदेह है ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के

पृष्ठ ९ में (योभूतंच) इस श्रुति की व्याख्या में लिखा है कि जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत होगया है (च) अनेक चकारों से दूसरा जो वर्त्तमान है (भव्यञ्च) और तीसरा भविष्यत् जो होनेवाला है इन तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता है उन सब व्यवहारों को वह यथावत् जानता है फिर पृष्ठ ३७ में (सपर्य्यगात्) इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि जो सबका अन्तर्यामी है और भूत भविष्यत् तथा वर्त्तमान इन तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जानता है—क्या अब भी ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं ? फिर यह कथन कि जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है स्वतः नहीं धन्य प्रातःकाल का भूला सायंकाल को अपने घर पर आजाय तो वह भूला नहीं कहाता दयानन्द जी ने इसी स्थानपर आप ईश्वर को त्रिकालज्ञ स्वीकारकर लिया वह ईश्वर की त्रिकालज्ञता जीवों के कर्म की अपेक्षा हो वा स्वतः हो इस से कोई हानि नहीं निदान ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना अनुचित कदापि नहीं किंतु उचित ही है कि वह त्रिकालज्ञ अवश्य है चाहे किसी कारण से हो ॥ छंद–करचुका आप मेरे दावे को स्वकार रिपु । कौन मुंसिफ़ न करेगा भला डिगरी मेरी ॥ ध्यान रहे कि दयानन्द का यह कथन भी कि ईश्वर में त्रिकालज्ञता स्वतः नहीं सर्वथा अशुद्ध है और उसी के लेख से विरुद्ध है क्योंकि आर्य्याभिविनय पृष्ठ ८ का वह लेख कि ईश्वर त्रिकालदर्शी होने से इस बात में दोष नहीं–ईश्वर की स्वतः त्रिकालज्ञता का द्योतक है वहां जीवों के कर्म का विषय कुछ भी नहीं–फिर नाथजी का यह कथन कि (ईश्वर देश काल और वस्तु इन सब से अपरिछिन्न है) केवल अप्रसंग ही नहीं किंतु उन को झुटलाता है ईश्वर के त्रिकालदर्शी होने की पुष्टि में एक अपूर्व युक्ति दिखलाता है ईश्वर देशकाल वस्तु इन सब से अपरिछिन्न है इसी से वह पूर्ण त्रिकालज्ञ है आपने उक्त वाक्य किसी से सुनलियाहै वा कहीं लिखा देखाहै परंतु उस का आशय उलटा ही समझा है–राजर्षि भर्तृहरि जी का श्लोक भी हमारे अनुकूल है उसपर आक्षेप ही क्याहै, हां आप की समझ का टोटाहै। छंद–मिटाने से तुम्हारे अज्ञता उस की नहीं मिटती । कि उस के लेख से है अज्ञता उस की प्रकट सम्यक् ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क ६ धर्म संताप में से (वादी) प्रमना भूमिका जो उसने लिखा निर्मूल है । जो कि हैं वेदज्ञ यह उन के हृदयमें शूल है ॥ दूसरा सत्यार्थ प्र० ४६० देखो सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय–दूसरा सत्यार्थ०

पृष्ठ २२८ सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय में भूरचलास्वभावतः लिखा है अथर्ववेद में ध्रुवा पृथ्वी इत्यादि ऐसी श्रुति है—

(प्रतिवादी) वेदज्ञों के हृदय में तो कदापि शूल नहीं क्यों कि वेद में तो स्वयं लिखा है कि या गौर्वर्त्तनि पर्य्येति निष्कृतंपयो दुहाना ब्रतनीर वारतः। साप्रब्रुवाणावरुणायदाशुषे देवेभ्योदाशद्धविषा विवस्वते ॥ ऋ० अ०८ अ०२ व० १० मं १ ॥ हां किंतु वेदाज्ञों के हृदय में शूल हो तो आश्चर्य नहीं और सि० शि० के टुकड़े " भूर चला स्वभावतः ", का जो आपने प्रमाण दिया तो यह आप की बुद्धिमानी है या किसी कच्चे के मुख से केवल इतनाटुकड़ा सुन विना विचारे कि यह किस स्थल का है और किस आशय से वहां लिखा है अपने पक्ष का पोषक समझ लिखमारा यदि आप पुस्तक में इस का प्रसङ्ग देखलेते तो इस के प्रमाण देने का कभी साहस न करते अब हम उक्त स्थल के सम्पूर्ण श्लोकों को उद्धृत कर प्रसङ्ग दिखाते और वादी की अज्ञता पर बुद्धिमानों को हँसाते हैं इत्यादि ।

(उत्तर) नाथजी आपका लेख सर्वथा निर्मूल है और प्रथम ही भूल है देखिये आपने जो यहां हमारे छन्द के अन्त में दूसरा सत्यार्थप्र० ४६० देखो सिद्धांतशिरोमणि गोलाध्याय यह लेख किया है अपनी अज्ञता का परिचय दिया है वस्तुतः यह पता—जो लिखी पृथ्वी की परिधी, उस छन्दका है जो कि आपने कुतर्क १२में लिखाहै धर्मसन्ताप में (जो लिखी पृथ्वी की परिधी) यह पूर्वार्ध और (घूमना भूमीका जो) यह उत्तरार्द्ध एक ही छन्द ३२ का है धर्मसन्ताप में इसका पता—दूसरा सत्यार्थ० पृष्ठ २२८ ही लिखा है पिछले आधे को कुतर्क ६ में और फिर पहिले आधे को कुतर्क १२ में लिखना यह आपकी अज्ञता पर अज्ञता है अस्तु। छन्द—अज्ञता पर अज्ञताहै लेख में तेरे प्रकट । क्या लिखेगा लेख का उत्तर मेरे तू फिर भला ॥ आपने जो यहां—या-गौर्वर्त्तनि—इस श्रुति को लिखा है किसी कच्चे के मुख से सुनके विना विचारे कि यह मन्त्र किस स्थल का है और इस का आशय क्या है अपने पक्षका पोषक समझकर लिखमारा आपको तो संस्कृत समझने की बुद्धि नहीं है, परन्तु अपने लघुभ्राता से उसके भाष्य का भावार्थ सुनलेते तो इस के प्रमाण देनेका कदापि साहस न करते इस से और पृथ्वी के घूमने वा स्थिर होनेसे सम्बन्धही क्या है वस्तुतः वहां प्रकरण यज्ञका है अतएव सायणाचार्य ने गौपद से गाय ही का अर्थ किया है आगे श्रुति में प्रत्यक्ष पय शब्द पड़ा है जिस की गायही के साथ सम्यक् योग्यता है। छंद-किसी कच्चे के

मुख से सुन के लिक्खी जो श्रुति तूने । असंगत लेख से अपने बना तू आप ही कच्चा ॥ फिर आपका यह लेख कि सि० शि० के टुकड़े 'भूरचलास्वभावतः' का जो प्रमाण आपने दिया किसी कच्चे के मुखसे इत्यादि आप की अज्ञता है और सर्वथा मिथ्या । छन्द- हमारे सत्य लेखों पर बनाये बात जो झूटी । बनेगा आप वह झूटा कहाये लाख में कच्चा ॥ महाशय ! हमको सिद्धान्तशिरोमणि का वचन आपके पिता मुन्नालाल पाधाजी ने बताया था आप उनको कच्चा कहिये वा सच्चा समझो परंतु हमने पुस्तक में विनादेखे और विनाविचारे नहीं लिखा किंतु सम्यक् विचारकरही लिखा है देखिये वहां प्रथम पृथ्वीके स्वरूपका वर्णनहै यथाहि इदानीं भूमेः स्वरूपमाह-भूमेःपिंडः शशाङ्कज्ञकवि रवि कुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-वृत्तैर्वृत्तोवृतः सनमृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयं । नान्याधारः स्वशक्त्यैववियति नियतं तिष्ठतीहास्यपृष्ठे निष्ठं विश्वं च शश्वत्सदनुजमनुजादित्य दैत्यं समन्तात् । यहां स्पष्ट है कि निश्चय पृथ्वी अन्याधार रहित अपनी ही शक्ति से आकाश में ठहरी हुई है श्लोक में तिष्ठति क्रिया पद है जो कि 'ष्ठा' धातु से बनता है और ष्ठा गति निवृत्तौ गति की निवृत्ति ही में है अतः उस को चलायमान कहना सर्वथा अशुद्ध है कि सिद्धान्तशिरोमणि के विरुद्ध है उक्त श्लोक में देवता, दैत्य और दानव भी स्पष्ट मनुष्यों से पृथक् लिखे हैं इस के उपरान्त आपके लिखे सम्पूर्ण दो श्लोक हैं यथाहि यथोष्णताऽर्कानलयोश्च शीतता विधौद्रुतिःके कठिनत्वमश्मनि । मरुच्चलोभूरचलास्वभावतो यतोविचित्रावतवस्तुशक्तयः ॥ १ ॥ आकृष्ट शक्तिश्चमहीतयायत् स्वस्थंगुरुस्वाभिमुखंस्वशक्त्या । आकृष्यतेतत्पततीवभाति समेसमन्तात्कपतत्वियंखे ॥ २ ॥ यहां पहले श्लोक में पृथ्वी स्वभावसे अचल है यह स्पष्ट है जो कि आपको भी स्वीकार है । हां आप ने अज्ञों को धोका देने के लिये पृथ्वी के आगे (मट्टी) अधिक लिखा है मूल में भूः पद है जिस का अर्थ भूगोलही का है न कि मट्टी के ढेले आदिका-दूसरे श्लोक में पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का वर्णन है कि गुरु पदार्थ को अपनी ओर लेआती है इस से पृथ्वी के अचल होने में कोई बाधा नहीं आपने केवल लेख बढ़ाने को वृथा लिखा है इस के आगे भी भूमिही का प्रकरणहै फिर आप कैसे कहते हैं कि (भूरचलास्वभावतः) किसी कच्चे के मुख से सुन बिना विचारे अपने पक्षका पोषक समझ लिख मारा निःसन्देह पृथ्वी अचल है उक्त वचन हमारे इस सत्य कथन की पुष्टि करता है और दयानन्द ने अंग्रेज़ों का अनुसरण करके शास्त्रविरुद्ध पृथ्वी का घूमना माना है उस के शिरपर अ-

ज्ञता का बोझ भरता है। छन्द–किसी कच्चे की बातों पर करेगा हठदुराग्रह जो। हमारे सामने निश्चयबनेगा आप वह कच्चा॥ हे मित्र! कच्चों केमुख से सुनकर विनाविचारे लिख मारना आपके गुरुहीका कामहै जिससे सर्वत्र विद्वानों के सन्मुख आप लोगों का लज्जित होनाही परिणाम है देखो सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ पृष्ठ ११८ (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिंमत्) यह श्रुति का एक टुकडा किसी कच्चे के मुखसे सुनकर विना विचारे कैसा अनर्थ किया है पृष्ठ १२६ "ब्राह्मणस्यविजानतः" यह वेदों के नाम से लिखा वेदों में कहीं नहीं किंतु गीता का वचन है पृष्ठ १३५ " विविधानिचरत्नानिविविक्तेषूपपादयेत्" यह मनु के नाम से लिखा मनु में कहीं नहीं पृष्ठ १९६ "य आत्मनि" यहश्रुति बृहदारण्यकोपनिषद के नाम से लिखी वहां नहीं शत पथ में है पृष्ठ १९७ जीवे शौच–यह दो श्लोक संक्षेप शारीरक और शारीरक भाष्य के नाम से लिखे दोनों जगह नहीं पृष्ठ २१० तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति–इसे तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन कहा वहां नहीं छांदोग्य में है पृष्ठ २२३ ततो मनुष्या अजायन्त यह यजुर्वेद के नाम से लिखा वहां नहीं शत पथ में है पृष्ठ ३३३में हिरण्याक्ष और प्रह्लाद की कथा जिस प्रकार लिखी है भागवत में उस प्रकार नहीं पृष्ठ ३३४ में रथेनवायुवेगेन जगामगोकुलं प्रति–यह आधा श्लोक अक्रूरजी के विषय में लिखा है भागवत में कहीं नहीं पृष्ठ ३३८ छादयत्यर्क मिन्दुर्विधुं भूमिभाः' इसे सिद्धान्त शिरोमणि का वचन कहा वहां कहीं नहीं किंतु ग्रहलाघवका है पृष्ठ ३५६ वेद पढत ब्रह्मामरे चारों वेद कहानि। इसे नानक जीके नाम से लिखा परंतु उन के ग्रंथ में यह वाक्य कदापि नहीं कहां तक लिखें ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिन से स्पष्ट प्रकट है कि उस ने कच्चों के मुख से सुनकर विना विचारे जी में आया सो लिख मारा॥ छंद–पते जो कुछ लिखे उसने पता उन का नहीं लगता। कहो तो मंड जी तुम ही वह सच्चा था कि था कच्चा॥ फिर आप का यह कथन कि अथर्ववेद का–ध्रुवा पृथ्वी इत्यादि मन्त्र इस का उत्तर जगन्नाथ भ्रमनाशक में शंका नं० ३५ के उत्तर में दे दिया है यहां केवल इतना कहना इच्छित है कि जगत् शब्द का धात्वर्थ 'गच्छतीति जगत्' ही चलने वाला है तो फिर स्थिर किस प्रकार होसकता है इत्यादि महाशय आपके भ्रमनाशक में इस विषय पर यह लेख है कि ध्रुवा के अर्थ नियम में या स्वरूप से स्थिर के लेने चाहियें यदि यह अर्थ कियाजावे कि संपूर्ण जगत् स्थिर है तो सम्पूर्ण सूर्यादि ग्रह भी स्थिर रहे क्योंकि सूर्य भी जगत् ही में है ये अर्थ

माननीय नहीं होसकता क्योंकि जो लोग पृथ्वी को स्थिर मानते हैं वह सूर्य को अवश्य चलायमान जानते हैं इति आपके गुरु ने उक्त श्रुति और उस का अर्थ दूसरी वार की छपी संस्कार विधि के पृष्ठ १२९ पर लिखा है प्रथम यहां उस को दिखाता हूँ और फिर आपके और आपके भ्रमनाशक का यथोचित उत्तर सुनाता हूँ—ओं ध्रुवाद्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्व मिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पति कुले इयम् ॥ अर्थ हे वरानने जैसे (द्यौः) सूर्य की कान्ति वा विद्युत् (ध्रुवा) सूर्यलोक वा पृथिव्यादि में निश्चल जैसे (पृथिवी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाह स्वरूप में (ध्रुवम्) स्थिर है जैसे (इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम) यह तू मेरी (स्त्री) (पतिकुले) मेरेकुलमें (ध्रुवा) सदा स्थिर रह इति मास्टर साहिब विवाद पृथ्वी के स्थिर होने और चलने में है उस को छोड़कर आप प्रथमही यह क्यों कहने लगे कि जगत् शब्दका धात्वर्थ " गच्छतीति जगत् " ही चलने वाला है तो फिर स्थिर किस प्रकार हो सकता है इसका उत्तर तो गुरुजी के लेख में देख लीजये सम्यक् शांति न हो तो उनही से यथेच्छित झगड़ा कीजये हम को जगत् के चलवा अचल होने से कुछ फल नहीं है कि विवाद का स्थल नहींहै यहां पृथ्वीके चलायमान् वा स्थिर होने का विचार है सो श्रुति के अर्थ में आपके गुरु को सम्यक् स्वीकारहै आपका भ्रमनाशक गुरुभाईभी ध्रुवःके अर्थस्वरूपसे स्थिरमानताहैऔर स्वरूपका पर्य्याय वास्तविक वा स्वभावहै यह प्रत्येक बुद्धिमान् जानताहै हमारा पक्ष प्रवलहै कि आपके गुरु और गुरुभाई ही के लेखसे पृथ्वी स्थिर अर्थात् अचल है जब कि वेद में ध्रुवा पृथ्वी यह पद प्रत्यक्ष विद्यमान है और ध्रुव शब्द का अर्थ स्पष्ट अचलायमान है तो उस को चलायमान कहना आप की हठधर्मी वा अज्ञान है और वेद विरोधी होने की पहिचान—अब अपने पूर्व अज्ञान को भी दूर कीजिये और उसकी औषधि हम से सुन लीजिये वस्तुतः जगत् शब्दरूढ़है उसका धात्वर्थ करे सो मूढ़ है यदि आपके लेखानुसार यह मानाजावे कि संपूर्ण जगत् चलायमान है तो ध्रुवादि नक्षत्र तथा आकाश वन पर्वतादि भी चलायमान् रहे क्योंकि ये भी जगत् ही में हैं परंतु यह अशुद्ध है विद्वानों के विरुद्ध है फिर आप के गुरु भाई की युक्ति से जो लोग पृथ्वी को चलायमान् मानते हैं वह सूर्य को अवश्य स्थिर जानते हैं यह मानना बड़ी भारी भूल है कि वेद के प्रतिकूल है यथाहि सूर्य

एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । यजुर्वेद अ० २३ मंत्र१०जब कि सूर्य का चलना प्रत्यक्ष वेदानुसार है तो आप को अपने गुरुभाई के सिद्धान्तानुकूल कि जो लोग पृथ्वी को स्थिर मानते हैं वह सूर्य को अवश्य चलायमान जानते हैं पृथ्वी का स्थिरत्व मानना अत्यावश्यक और बलात्कार है । छंद-हमारे लेखका उत्तर लिखे वह जिसका जी चाहे । वरन संसार में झूठे की निश्चय हारही होगी ॥ अंत में यजुर्वेद का एक मंत्र और सुनाते हैं और दयानंदही के लेख से नाथ जी को पृथ्वी का स्थिर होना मनाते हैं उपयाम गृहीतोसि ध्रुवोसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तम एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । पदार्थः-हे परमेश्वर आप (उपयामगृहीतः) शास्त्र प्राप्त नियमों से स्वीकार किये जाते (असि) हैं ऐसेही (ध्रुवः) स्थिर (असि) हैं कि (ध्रुवक्षितिः) जिन आपमें पृथिवी स्थिर होरही है और (ध्रुवाणाम्) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में (ध्रुवतमः) अत्यन्त स्थिर (असि) हैं तथा (अच्युतानाम्) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में (अच्युतक्षित्तमः) अतिशय करके अविनाशिपन बसाने वाले हैं ॥ अध्याय ७ मंत्र २५-हे पृथ्वी का चलना मानने वाले वेद विरोधियों अच्छे प्रकार आंख खोलकर उजाले में देखलो कि मंत्र में (ध्रुवक्षितिः) पद स्पष्ट विद्यमान है। और तुम्हारे गुरु दयानंद ने अपने किये भाष्य के पदार्थ में इसका अर्थ पृथ्वी का स्थिर होनाही किया है अब भी न मानो तो गुरु को झूठा बताओ और उसके वेद भाष्य को नदी में बहाओ । छंद-वेदों से मत हमारा है सिद्धपूर्ण सम्यक् । विपरीत जो कहेगा वह नास्तिक बनेगा ॥ मास्टर जी अंत में आपका यह लेख कि पृथ्वी के सूर्य की परिक्रमा करने का विषय ज्योतिषचंद्रिका बाबू गंगाप्रसाद एम० ए०कृत में अवलोकनकर अपने मन का अंधकार दूर कीजिये-महाशय हमारे हृदय में तो वेदादि सत्शास्त्रों ने सम्यक् उजालाकर रक्खा है हमने पृथ्वी का स्थिर होना लिखा था सो वेदों में दिखा दिया आपलोगों की बुद्धि पर वेदविरुद्ध अंग्रेजों के लेखों तथा उक्त पुस्तक के देखने सेही अंधेरा छाया है वह आपही को मुबारिक हो। सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३७९ में लिखा है कि अपने माता पिता पितामहादि के मार्ग को छोड दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना इंगलिश भाषा पढ़ के पंडिताभिमानी होकर झटिति एकमत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है। धर्म से कहिये कि आपके गुरु का उक्त लेख आपपर सम्यक् च-

रितार्थ है वा नहीं संस्कृतविद्या के विना इन्ट्रेंस पास होने से आपके हृदयका अंधकार कदापि नष्ट न होगा अतएव कुछ संस्कृत पढ़लीजिये और हठदुराग्रह छोडकर सत्यासत्यका निर्णय कीजये हिन्दी बंगवासी २७मई सन् १९०१में लिखा है कि मिस्टर डी० वाईलाम्काटने एक किताव बनाई है कि पृथ्वी नहीं घूमती अनेक अंग्रेज इस वात को मानते हैं बडे शोक की वात है कि अंग्रेज लोग तो वेदादि सत्शास्त्रानुसार स्वीकार करें और आप वेदप्रतिकूल का प्रचार । छंद–वेदों के प्रतिकूल जो माने वह है पूरा कच्चा । कथन किसी का सच है झूटा झूटा सच्चा सच्चा ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क ६ धर्म संताप में से (वादी) पंचविंशे श्लोक सुश्रुत के शरीर स्थान में । लिखते हैं स्वामीजी कहिये ज्ञान या अज्ञानमें॥स०प्र०पृष्ठ४६ (प्रतिवादी) यह श्लोक सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३५ में उपस्थित है प्रेस मैनों की कृपा से पता अशुद्ध छप गयाथा अब पंचम प्रति में शुद्ध कर दिया गया है इत्यादि ॥

(उत्तर) आपके मुख से प्रथम ही अज्ञनाकी दुर्गंधि आती है झूटे की बुद्धि सर्वथा नष्ट होही जाती है आप मास्टरी करते हैं और गणितविद्या में दम भरते हैं यहां तर्क ७ के स्थान में ६ अशुद्ध लिखा है क्यों कि अंक ६ प्रथम आही चुका है अंत पर्यन्त आपका यही अज्ञान है कि सर्वत्र एक की न्यूनता समान है । छंद–येही पाठशाला है और येही पाठक । तो लडकों की बुद्धि न क्यों नष्ट होगी ॥ नहीं २ कुछ भय नहीं आपके गुरु ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में सृष्टिके गत शेष वर्षों की गणनाकी है हम ने उस में २०९२०००० की भूल निकाली है स० प्र० पृष्ठ २४१ में सौ वर्ष के दिन तीन लाख साठ सहस्र अक्षरों में छपवाये हैं एकके दश गाये हैं जिस पुस्तक का नाम षोडशसंस्कारविधि है हम ने उसमें सत्रह संस्कारोंकी गणनाकी है आपका छहके उपरान्त छह लिखना कुछ वडी भूल नहीं है गुरुके अनुकूल नहीं है अस्तु महात्माजी हमारा आक्षेप यही है कि उक्त श्लोक को दयानंद ने सुश्रुतके शरीरस्थानका लिखा है सो वहां नहीं यह उसका अज्ञान है सो आपने स्वीकारकर लिया सब जगह प्रेसमैनों का दोष बताना यह आपका मिथ्याभाषण है सूत्रस्थान की जगह शरीर स्थान प्रेसमैनोंकी भूल से कदापि नहीं होसकता यह तो महात्मा जी ही की भूल है और उनके अज्ञान की मूल–शुद्धाशुद्ध लिखनेपर भी न सूझा चारवार सत्यार्थ प्रकाश छपा तबतक भी किसी समाजी महाशय को उस अशुद्धि का ध्यान न हुआ जब हमने

प्रकट किया तब पंचम प्रति में शुद्ध किया गया वस्तुतः दयानंद की अशुद्धियों को शुद्ध करनेवाले हम हैं और अज्ञानियों का अज्ञान हरनेवाले हम छंद–शत्रु ने आक्षेप को स्वीकार कर लिया। फिर क्यों न जय ध्वनि हो जगत् में मेरे लिये ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क ७ धर्म संताप में से (वादी) पाप विन भोगे नहीं छुटता, है यह कहना अशुद्ध। हैं वचन उन के ही ग्रंथों में अनेक इस के विरुद्ध ॥ स० प्र० पृष्ठ ३२२—३७८—

(प्रतिवादी) वास्तव में कर्म का फल भोगना ही पड़ता है परमेश्वर की न्यायव्यवस्था से कोई मनुष्य पाप करके फल से बच नहीं सकता इत्यादि

(उत्तर) ईश्वरभक्ति दान अध्ययनादि शुभ कर्मों के करने से पाप अवश्य नष्ट होते हैं यदि बिना भोगे पाप न छूटें तो मुक्ति कदापि न हो क्योंकि जीव अनादि है अनादिकाल से पाप पुण्य करना चला आता है उन की समाप्ति होना असंभव है अब प्रथम पापों का नाश होना दयानंद ही के लेख से दिखाता हूँ और पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता बिना भोगे सत्यार्थ प्रकाश सन १८८४ पृष्ठ ३२२ तथा ३७८ के वेदादि सत्शास्त्र विरुद्ध लेख को उसी के लेख से विरुद्ध ठहराता हूँ- शर्मा जी को शर्माता हूँ और उन के अज्ञता रूपी पापों को मिटाता हूँ–सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १०७। धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम्। मनु० जिसका धर्म के अनुष्ठान से कर्त्तव्य पाप दूर होगया इति यहां कर्त्तव्य पाप लिखना दयानंद की अज्ञता का कारण है परंतु पाप दूर होना स्पष्ट है पृष्ठ+१३०। प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्। मनु० अ० ६ पृष्ठ+१३१ प्राणायामों से आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोष धारणाओं से पाप-को भस्मीभूत करै—संस्कारविधि मुद्रित सम्वत् १९३२ पृष्ठ १३५ प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्। यहां सत्यार्थ प्र० के विरुद्ध असत्यार्थ कियाहै परंतु मूल में किल्बिषम् पद स्पष्ट है।

पृष्ठ ११६ प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु चदुस्कृतं। विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ पृष्ठ १३७ प्रिय जे धर्मात्मा सेवक तथा अप्रिय जे दुष्टात्माविरोधी उन में पुण्य और पाप को छोड़ के ध्यान योग से सनातन जो ब्रह्म उस को प्राप्त होता है यहां पाप पुण्य दोनों का छूटना स्पष्ट है और एक का कर्म दूसरों को मिलना प्रकट आर्याभिविनय मुद्रित संवत् १९३२ पत्र ८ है अधमोद्धारक पतित पावन। पृष्ठ २५ अपनः शोशुचदघम् आपकी

इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट होजाय। पृष्ठ ३७ हे महाराजाधिराज। मनसा वाचा, कर्मणा, अज्ञानेन.प्रमादेन वा,यद्यत्पापं कृतंमया,तत्तत्सर्वं कृपयाक्षमस्व - मनसे वाणीसे और कर्म से अज्ञान वा प्रमादसे जो जो पाप किया होय किंवाकरने का होय उस उस पाप मेरा क्षमाकर। उक्त सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ५४४ में लिखा है कि पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह किसी विद्वान का बनाया नहीं- कहो नाथ जी कुछ समझे अस्तु आर्याभिविनय पृष्ठ ५० तथा आप अघारि और वृजिनारि हो स्वभक्तों के अघ (पाप) उस के अरि (शत्रु) हो अर्थात् सर्वपाप नाशक हो पृष्ठ ५१ शुन्ध्युरसिमार्ज्जालीयः शुद्ध स्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन (निवारण) करनेवाले आपही हो पृष्ठ ५० देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्य कृतस्यैन सोऽवयजनमसि। पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि। आत्मकृतस्यैनसोऽवयजन मसि। एनसएनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनोविद्वांश्चकारयच्चा विद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि। यजुः ८। १३ व्याख्यान है सर्व पाप प्रणाशक देवकृत इन्द्रिय विद्वान किंवा दिव्यगुणयुक्तजन कृत पापों के नाशक आप एकही हो अन्य कोई नहीं एवं मनुष्य (मध्यस्थजन) पितृ० (परमविद्या युक्त जन. आत्मकृत० जीव के पापों का) एनस० पापों से भी बड़े पापों का आपही अवयजन हो अर्थात् सर्वपाप रहित हो और हम सब मनुष्यों के भी पापदूर करनेवाले एक आपही दयामय पिता हो. हे महानन्तविद्य जो जो मैंने विद्वान वा अविद्वान हो के पाप किया होय उस सब पापों का छुड़ानेवाला आप के बिना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है—

यद्यपि उक्त श्रुति के अर्थ में स्वामीजी ने बहुत कुछ बनावट की है परंतु पापों का नाश होना प्रकट ही है समझनेवालों को इस एकही श्रुति से सम्यक् निर्णय हो सकता है कि परमात्मा धर्मशील स्वभक्तों के संपूर्ण पापों का अवश्य सर्वथा नाश करता है पक्षपाती और हठी दुराग्रही लाख बचनो से भी अपना हठ न छोड़ेंगे—

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ २१३ धर्म से ही मनुष्य लोग पापों को छुड़ाते हैं —

यजुर्वेद भाष्य पृष्ठ २५१ जो २ (एनः) पाप वा अधर्म करा वा करेंगे सो सब दूर करते रहें पृष्ठ २५६ मन आदि इन्द्रियों से किया वा मरण धर्म वाले शरीरों से किये हुए (एनः) पापों को दूर कर शुद्ध होना है पृष्ठ ४८३ छूट गये हैं पाप जिन के पृष्ठ ६९१ पाप के दूर

करनेवाले हो पृष्ठ १४७८ अनेकप्रकार पापों की निवृत्ति करनेहारा कर्म अ-
ध्याय २२ पृष्ठ १८७ जिस से पाप रहित कृतकृत्य होकर अध्याय ३४ पृष्ठ १०६९
पापों को शुद्ध कियाकरो अध्याय ३५ पृष्ठ १०९२ हमारे पापों को शीघ्र
सुखादेवे अध्याय ३५ पृष्ठ ११२५ हमारे (अघम्) पापको शीघ्र दूरकरे
अध्याय ३६ पृष्ठ ११४४ हे भगवन् ईश्वर पापहरनेवाले अध्याय ३९ पृष्ठ
१२५७ पाप निवृत्ति के लिये—दयानन्द संकलित संध्योपासन औ पञ्चयज्ञ
मुद्रित बनारस लाइट यंत्रालय संवत् १९३१ पृष्ठ २ अथश्वरस्यजगदुत्पादन-
द्वारास्तुत्याघमर्षणमंत्रोर्थात्पापदूरीकरणार्थः पृष्ठ ३ अनेनाघमर्षणं कुर्यात् पृष्ठ९
ओम् सूर्यश्चमामन्युश्चमन्युपतयश्चमन्युकृतेभ्यः पापेभ्योरक्षन्ताम्। यद्राव्यापापम-
कार्षम्मनसावाचा हस्ताभ्याम्पद्भ्यामुदरेणशिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतुयत्किंचि-
दुरितंमयिइदमहम्मामपृतयोनौसूर्येज्योतिषिजुहोमिस्वाहा ॥ हे जगदीश्वर!
हे सर्वान्तर्यामिन् अज्ञानादि प्रमादाद्यद्यत्पापंयेनयेनांगेनकृतं मयातत्तत्सर्वंवि-
ज्ञानादिदानेनकृपयाक्षमस्व- यहां तक दयानन्द लिखित वेदादि सत्शास्त्रानु-
सार ईश्वर भक्ति धर्म कर्म से पापों का नष्ट होना सम्यक् सिद्ध कियागया
और पाप विना भोगे कभी नहीं छूटता ऐसे मिथ्यावादियों को पूर्ण मानदि-
यागया। छन्द—मैंने लिखा जो लेख से उसके दिखादिया। अव भी न माने
जो उसे कहिये तो क्या कहूं॥ फिर भी वेदादि सत्शास्त्रों के कुछ वचन
लिखी करताहूं और अज्ञानियों का अज्ञान मूल सहित हरता हूं—सहस्रकृत्व-
स्त्वभ्यस्य वाहिरेतत्रिकंद्विजः। महतोप्येनसोमासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते १ इस
त्रिक् अर्थात् प्रणवव्याहृति और गायत्रिरूप का सहस्रवार ग्राम से बाहर एक
मास मात्र अभ्यास करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बड़े पाप से छूटजाता है जैसे
सांप अपनी केंचुली से १ मनु अध्याय २—कृत्वापापंहिसंतप्यतस्मात्पापात्प्र-
मुच्यते। नैवंकुर्यात्पुनरितिनिवृत्यापूयतेतुसः॥ १॥ यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्व-
पापापनोदनः। तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम्॥ २॥ ऋक्संहितांत्रि-
रभ्यस्ययजुषांवासमाहितः। साम्नांवासरहस्यानां सर्वपापैःप्रमुच्यते॥ ३॥
यथामहाहृदम्प्राप्यक्षिप्रं लोष्टंविनश्यति। तथादुश्चरितं सर्वं वेदेत्रिवृतिमज्जति४।
अर्थात् पाप करके संतापकरे तो उस पापसे छूटता है मैं फिर ऐसा न करूंगा
ऐसी निवृत्ति करके वह पापी पवित्र होता है॥ १॥ जिस प्रकार से सब य-
ज्ञों का राजा अश्वमेध यज्ञ सब पाप को दूरकरता है इसी प्रकार से अघमर्ष-
ण सूक्त का जप सब पाप को दूरकरता है॥ २॥ निश्चिंत होकर ऋग्वेद,
यजुर्वेद, सामवेद की संहिता में से कोई एक संहिता को अर्थ सहित तीनवार

अभ्यास करके सब पाप से छूटताहै ॥ ३ ॥ जिस प्रकार से अगाध जल में मट्टी का ढेला शीघ्र नष्ट होता है इसी प्रकार तीनो वेद के पाठसे सम्पूर्ण पाप नाश होता है ॥ ४ ॥ मनु अध्याय ११ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः क्षीयंतेचास्यकर्माणितस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥ १ ॥ यदापश्यः पश्यतेरुक्मवर्णं कर्त्तार मीशं पुरुषंब्रह्मयोनिम् । तदाविद्वान्पुण्यपापेविधूय निरंजनः परमंसाम्यमुपैति २ तरतिशोकं तरतिपाप्मानं गुहाग्रंथिभ्योविमुक्तोऽमृतोभवति ॥ ३ ॥ मुण्डके— एषआत्माऽपहतपाप्माविजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः- सत्यसङ्कल्पः ॥ ४ ॥ नजरानमृत्युर्नशोको न सुकृतं न दुष्कृतं सर्वेपाप्मानोऽ- तोनिवर्त्तन्ते ॥ ५ ॥ छांदोग्ये—अपहतपाप्माऽभयंरूपं ॥ ६ ॥ वृहदारण्यके— ज्ञात्वादेवंमुच्यते सर्वपाशैः ॥७॥ ज्ञात्वादेवं सर्वपाशापहानि ॥ ८ ॥ श्वेताश्वतरे अर्थात् उस परमात्मा के पूर्ण ज्ञानहोने पर ज्ञानी के हृदय की गांठ खुल जाती है सारे संशय निवृत्तहो जाते हैं और पाप पुण्यरूप सारे कर्म नष्ट हो- ते हैं ॥ १ ॥ जब ज्ञानी जीव प्रकाश स्वरूप जगतकर्त्ता वेद के कारण ईश्वर को देखता है तब पुण्य पाप को छोड कर निरंजन होता हुआ ईश्वर की परम समता को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ शोक और पापरूपी नदीको तरकर हृदय की गाँठों से विमुक्त होकर अमृत होता है ॥ ३ ॥ यह मुक्त जीव पाप शून्य होता हुआ जरा और मृत्यु और शोक तथा च खाने और पीने की इच्छा से रहित होता है और सत्यकाम और सत्य संकल्पवाला होताहै ।४॥ मुक्तजीव जरा और मृत्यु और शोक और सुकृत और दुष्कृत रहित होता है और उसके सारे पाप नष्ट हो- ते हैं ॥ ५ ॥ मुक्त जीव पाप शून्य और भय रहित होता है ॥ ६ ॥ ज्ञानी जीव परमात्मा को जानकर पाप पुण्यरूप सारे बंधनों से छूटता है ॥ ७ ॥ परमात्मा को जानकर ज्ञानी के पुण्य पापरूप सारे बंधनों का नाश होता है ॥ ८ ॥ श्री वेद व्यास मुनिने भी उत्तर मीमांसाके चतुर्थाध्यायके प्रथम पादमें मुक्तजीवके शुभाशुकर्मोंका नाशकहा है तथाहि तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोर श्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥ १ ॥ इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पातेतु ॥ २ ॥ अर्थात् परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति होने के अनन्तर ज्ञानी के पहिले पापों का नाश होता है और पिछले पाप उस को स्पर्श नहीं करते श्रुतियों में ऐसा प्र- तिपादन होने से ॥ १ ॥ इसीप्रकार पहिले पुण्य का नाश होता है और पिछले पुण्य उसको स्पर्श नहीं करते ॥ २ ॥ वेदके मंत्रभाग से भी पापों का नाशहोना स्पष्ट प्रकट है यथाहि यद्ग्रामेयदरण्ये यत्सभायां यदिंद्रिये । यदेनश्चकृमावय- मिदन्तदवयजामहे स्वाहा ॥ यजुः अ० ३ मं० ४५ इदमापः प्रवहतावद्यंचमलं

चयत् । यन्माभिदुद्रोहानृतंयच्चशेपेऽअभीरुणम् । आपोमातस्मादेनसः पवमानश्च मुंचतु ॥ अ० ६ मं० १७-यद्देवादेवहेडनं देवासश्च कृमावयम् । अग्निर्मातस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वंहसः ॥ यदिदिवा यदिनक्तमेनांसि च कृमावयम् । वायुर्मातस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वंहसः॥ यदिजाग्रद्यदि स्वप्नऽएनांसि च कृमावयम् । सूर्योमातस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वंहसः॥ यद्ग्रामेयदरण्येयत् सभायां यदिंद्रिये । यच्छूद्रेयदर्ये यदेनश्च कृमावयं यदेकस्याऽधिधर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ द्रुपदादिवमुमुचानः स्विन्नः स्नातोमलादिव । पूतंपवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तुमैनसः ॥ अ० २० मं० १४ । १५ । १६ । १७ । २० । प्रजापतौत्वादेवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ । अपनः शोशुचदघम् ॥ अ० ३५ मं० ६ । अपाघमपकिल्बिषमपकृत्यामपोरपः । अपामार्गत्वमस्मदपदुःष्वप्न्यः ५ सुवः ॥ अ० ३५ मं० ११ इत्यादि चारों वेदों में अनेक मंत्र पापनाशक विद्यमान हैं जो कि विद्वानों को स्वीकार और कल्याण के स्थान हैं सत्यको सत्य और असत्य को असत्य जानिये हमारा कहना न मानो तो आपके गुरु ही ने पापोंका नाश प्रत्यक्ष लिखा है उसीको मानये। छन्द-कहना मेरा न मान गुरुही का अपने मान । पापों का नाश वेद से उसने प्रकट लिखा ॥ पापों का नाश भोगे विना है नहीं कहीं । सच्चा है तो तू वेद में येही मुझे दिखा ॥ विनती यही है तुझ से कि जो चाहे सो तू कर । अज्ञों को धर्म वेदके विपरीत मत सिखा ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क ८ दयानंदमत सूची में से (वादी) वेदों की उत्पत्ति लिखी अच्छा नित्यत्व हटाया । ऋ० भा० भू० पृ० ९ । (प्रतिवादी) भूमिका में कहीं नहीं लिखा कि वेद अनित्य हैं-वरन यह स्पष्ट लिखा है कि सृष्टि की आदि में ईश्वर वेदों को प्रकट करता है इत्यादि--

(उत्तर) जितनी झूठी बातें बनाओगे उतने ही नये गुल खिलाओगे-झूठे का पक्ष करके झूटे ही कहाओगे और गुरू जी की अज्ञतापर जगत् को हंसाओगे । छंद-तुम्हारे झूटे लेखों से अवश्य इतना तो लाभ होगा । कि सत्यासत्य खुलजायगा सम्यक् बुद्धिमानों पर ॥ नाथ जी आप के गुरू ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मुद्रित संवत् १९३४ के पृष्ठ ८ में वेदों का नित्यत्व सिद्ध करने से पूर्व (अथ वेदोत्पत्ति विषयः) यह लेख किया है मानो अपनी अज्ञता का प्रकट विज्ञापन दिया है वेदों को नित्य मानते हैं और उन को उत्पत्तिवाला जानते हैं यही वदतो व्याघातहै और अज्ञता की बातहै यह भी ध्यान रहे कि उसने एकही जगह वेदों की उत्पत्ति नहीं लिखी है किंतु प्रायः ईश्वर ने वेदोंको उत्पन्न किया वेदोंको रचा वेदोंको बनाया ऐसी मिथ्या

कपोलकल्पना की है संक्षेप से उसका यह लेख दिखाता हूं और कलियुगाचार्य की बुद्धि पर बुद्धिमानों को हँसाता हूं अज्ञों को कुमार्ग से बचाता हूँ और सन्मार्ग पर लाता हूँ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ४ जे आपके बनाये वेद हैं-पृ० ८ आपके बनाये वेदों के-पृ० १० वेदों की उत्पत्ति का विषय-वेद किसने उत्पन्न किये हैं-ए चारों वेद उत्पन्न हुए हैं ईश्वर से ही वेद उत्पन्न हुए हैं पृ० ११ उसी से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ए चारों उत्पन्न हुए हैं-चारों वेद जिससे उत्पन्न हुए हैं-उसीको तुम वेदोंका कर्त्ता जानो जो वेदों के कर्त्ता सर्वशक्तिमान परमेश्वर को छोड़के उससे ही ऋक्‌यजुः साम और अथर्व ए चारों वेद उत्पन्न हुए हैं ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके पृ० १२ जब ईश्वर ने प्रथम वेद रचे हैं उन को पढ़ने के पश्चात् ग्रंथ रचने का सामर्थ्य किसी मनुष्य को होसकता है पृ० १३ वेदों को ईश्वर के रचित मानने सेही कल्याण है-पृ० १४ ईश्वर ने वेदों की उत्पत्ति की है पृ० १० जो वेदोत्पत्ति का प्रयोजन है सो आपसुनें-पृ० १६ वेद ईश्वरकेही बनाये हैं (ईश्वर) ने वेदों को भी सब साधनों के बिना रचा है-पृ० २३-१९६०८५२९७६ वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में होगये हैं-पृ० २४ यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्तिके वर्षों की ठीक है-पृ० २७ वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं-पृ०३४ उसी के रचे वेदों का-पृ० ३० उनका बनाने वाला परब्रह्म है-उनको सिवाय परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं बना सकता परमेश्वर के बनाये वेदों के पढ़ने पृ० ४० इसका समाधान वेदोत्पत्तिके प्रकरण में पृ० २७३ वेद ईश्वर के रचे हुए हैं पृष्ठ ३३८ वेद का परमेश्वररचित होना पृ० ३३९ ईश्वर कृत सत्य पुस्तक वेदही है आर्याभिविनय मुद्रित संवत १९३२ का पृष्ठ ११ विद्या युक्त वेदों को भी बनाया है दयानंदकृत यजुर्वेद भाष्य पृष्ठ ७४७ वेद और संसारके पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं इत्यादि नाथजी वेदों की उत्पत्ति लिखी अच्छा निश्चय दृढ़ाया। हमारा यही आक्षेप है कि वेदों को नित्य जानते हैं और उन को उत्पन्नहुआ रचाहुआ तथा बनायाहुआ मानते हैं-सो आपके गुरु के लेखमें दिखा दिया और उसकी अज्ञताका नया गुल खिला दिया। छंद-अनादिओ सादिको भी जो न जाने। अवश्य ऐसी बुद्धि पे रोना उचित है॥ यदि आप उत्पन्न हुए रचे हुए बनाये हुए पदार्थों को भी नित्य जानते हैं और नित्य अनित्य में कुछ भेद नहीं मानते तो ईश्वर जीवप्रकृति को नित्य और पृथ्वी सूर्यादि को अनित्य क्यों मानतेहो सबको समानही क्यों नहीं जानते हे मित्र ! जो उत्पन्न हुआ है जिसको रचाहुआ लिखा

है जिसको बनाया हुआ माना है वह कदापि नित्य नहीं होसकता—यद्यत् जन्यंतत्तद नित्यं कृत्कत्वात् घटादिवत् अर्थात् जो २ उत्पत्ति वाला है वह २ अनित्य है कृतकत्व होनेसे घटादिक की सदृश यह विद्वानों का न्याय है— जीव नित्य है श्रीवेदव्यास महर्षि ने वेदान्त शास्त्रके दूसरे अध्याय के दूसरे पादमें जीवोत्पत्तिसूचक लेखके खण्डन में (उत्पत्त्यसंभवात्) यह सूत्र बनाया है और नित्य पदार्थ की उत्पत्ति कहनेवाले को शास्त्र विरोधी ठहराया है आपके गुरूने भी वेदों तथा नित्य पदार्थ की उत्पत्ति का निषेध किया है उक्त वेदभाष्यभूमिका पृष्ठ १५ वेदतो ईश्वर की नित्य विद्या है उसकी उत्पत्ति वा अनुत्पत्ति होहीनहीं सकती · पृष्ठ ४० नित्य किसको कहना जोउत्पत्ति और विनाश से पृथक् है देखये आपही यह लिखना कि वेद ईश्वरकी नित्य विद्या है उसकी उत्पत्ति होही नहीं सकती— और नित्य उसको कहते हैं जो उत्पत्ति और विनाश से पृथक् है फिर आपही वेदोंको उत्पन्न हुआ रचाहुआ तथा बनाया हुआ मानना महदज्ञता नहीं तो क्या है अन्य फिर आपका यह लेख कि भूमिका पृष्ठ २७ से ४१ तक वेदोंके नित्यत्वपर विचार कियागया है जहां प्रबलयुक्ति व प्रमाण से वेदोंको नित्य सिद्धकिया है इति महाराज आप तो युक्ति और प्रमाण को जानतेही नहीं जिस किसीने हमारे आक्षेपों के उत्तर में अयुक्त लेख करके आपके नामसे छपवाया है उसकी भी ऐसी मोटी समझ है किजो लेख हमारे खण्डन में किया है वह हमारी पुष्टि करता है अस्तु आपके गुरुही की समझ ठीकहोती तो वेदों को नित्य मानकर उनको उत्पन्नहुआ रचाहुआ तथा बनाया हुआ क्यों लिखता—वारंवार वेदों की उत्पत्ति लिखना और फिर उनको नित्य सिद्ध करना महा मूर्खता का काम है यहां सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३३२ का न्याय स्मरणीय है कि इनदोनों में से एकबात सच्ची दूसरी झूठी ऐसा होकर दोनों बात झूठी। ध्यान रहे कि भूमिका में वेदोंके नित्य होनेके निमित्त जो वचन लिखेहैं आपके गुरुने उनके अर्थ में स्वकपोल कल्पना की है और जिनको आप प्रबल युक्ति समझे हो वे सर्वथा निर्बल हैं श्रीमान् मुंशी इन्द्रमणीजी ने आर्यत्व प्रकाश के दूसरे भाग में उनका सम्यक् खण्डन किया है—फिर आपका यह लेख किरहा उत्पत्ति शब्द सो वेदोंका उत्पन्न होनातो—तस्मात् यज्ञात् इत्यादि वेद मंत्र से ही प्रकट है परन्तु उत्पत्ति के अर्थ आविर्भाव के हैं इति हम पहले कहचुके हैं कि आपतो युक्ति और प्रमाण को जानतेही नहीं ज़रा आँखे खोलकर देखो कि जैसे आपके गुरुने ' अथवेदोत्पत्तिविषयः ' इसवाक्य में वेदोंके लिये उ-

त्पत्ति शब्द लिखाहै और जिसपर हमने आक्षेप किया है वैसे उक्त श्रुति में उत्पत्तिशब्द कहां है इसश्रुति में तो क्या यदि आप किसी श्रुति में भी वेदों के लिये उत्पत्ति शब्द दिखादें तोहम आप को मनमाना भोजन जिमावें और जगह से दक्षिणा के दोपैसे ही मिलते हैं हम दो मुद्रा झुकावें फिर आपका यहलेख कि (परन्तु उत्पत्ति के अर्थ आविर्भाव के हैं) आधा झूटा है और आधा सच्चा अर्थात् उत्पत्ति शब्द आपका कपोल कल्पित है कि श्रुति में कहीं भी नहीं उक्त श्रुति में दो क्रियापद हैं एक जज्ञिरे दूसरा अजायत दोनों जनिप्रादुर्भावे धातु से बनते हैं और प्रादुर्भाव कहते हैं प्रकटहोने को और प्रकट वही पदार्थ होता है जो प्रथम से विद्यमान है निदान सृष्टि की आदि में परमात्मा श्रीब्रह्माजी के हृदय में नित्य वेदों का प्रादुर्भाव करता है वेदों का उत्पन्न करना सर्वथा अशुद्ध है कि श्रुति के विरुद्ध है सो आपको स्वीकार है कि अंतमें वेदों का प्रादुर्भावहोना आपने मानलिया हमारा भी यही सुविचार है । छन्द- करलिया तूने सत्यको स्वीकार । झूट झूटे गुरुका जानालिया ॥ ईश्वर ने प्रकट किये हैं वेद । न कि उत्पन्न ठीक मानलिया ॥ आपकी बुद्धिपर फिर अज्ञान छाया और अज्ञता पिशाची ने सर्वथा अप्रसंग आपसे यह लिखवाया कि भूमिका में तो यह दोष आही नहीं सक्ता क्योंकि उस में तो पृ० ४० में वही अर्थ लियेगये हैं वहां का लेख यह है 'उत्पत्ति क्या कहाती है कि जो अनेकद्रव्यों के संयोग विशेष से स्थूल पदार्थ का उत्पन्न होना और जब वे पृथक् २ होके उनद्रव्यों के वियोग से जो कारण में उनकी परमाणुरूप अवस्था होती है उसको नाश कहते हैं इति हम प्रथम कहचुके हैं कि आप युक्ति और प्रमाण को जानतेही नहीं भूमिका में यह उत्पत्ति और नाशकालक्षण नित्य पदार्थों के विषय में नहीं है किंतु अनित्य पदार्थों के विषय में है वहां उत्पत्ति क्या कहाती है इस से प्रथम यह लिखा है कि नित्य किसको कहना जो उत्पत्ति और विनाश से पृथक् है और अन्त में यह लेख है कि जो द्रव्य संयोग और वियोगसे उत्पन्न और नष्ट होता है उसी को कार्य और अनित्य कहते हैं और जो संयोग वियोग से अलग है उसकी न कभी उत्पत्ति और न कभी नाश होता है । आपकी आंखों में ऐसी धूलिपड़ी कि गुरुका यह लेख दृष्टि ही में न आया अथवा जानपूछकर छुपाया क्या वेद अनेक द्रव्यों के संयोग विशेष से उत्पन्न होते हैं और पुनः उन द्रव्यों के वियोग से उनकी परमाणुरूप अवस्था होती है वाहरी बुद्धि यदि ऐसा है

तो वेदनित्य कहां रहे किन्तु अनित्य ही ठहरे। प्रश्नोत्तरी में जो उत्पत्ति और नाश का लक्षण लिखा है वह भी अनित्य पदार्थों ही के विषय में है नित्य पदार्थों की उत्पत्ति या नाश कहना तो सर्वथा असंगत है वेदों के प्रकट होने को उत्पत्ति कहना सर्वथा सदोष और मूर्खता का काम है और आप के गुरुकी वाम बुद्धि का परिणाम-उत्पत्ति शब्द नित्य शब्द के विरुद्ध है अतः नित्य पदार्थ की उत्पत्ति कहना सर्वथा अशुद्ध है दयानन्द पर हमारा आक्षेप पूर्ण है और आपके गप्पकुठार का चूर्ण २। छंद-असत् को आप सत् समझे अजी सत्को मृषासमझे। पड़े पत्थर समझपर आप की समझे तो क्या समझे ॥

(शम्भु नाथ) कुतर्क ९ धर्मसंताप में से (वादी) होम का फल वायु-शुद्धि स्वामी ने तेरे लिखा। सत्य है उसका कथन तो मंत्र पढना है वृथा॥ सोच तो बलिवैश्व का ठट्ठा उड़ाया उसने क्या। लोप सत्कर्मों का बस करना उसे स्वीकारथा॥ द्वतीय स० प्र० पृष्ठ ४२ प्रथम स० प्र० पृष्ठ ४९ (प्रतिवादी) स्वामी जी महाराज ने यह नहीं लिखा कि हवन के फल केवल वृष्टि व अन्नादि की वृद्धि व जल वायु की शुद्धि ही है इत्यादि।

(उत्तर) ब्राह्मणादि सद्ग्रंथों में स्वर्ग प्राप्ति पापों का नाश आयु वृद्धि पशु धन यश ब्रह्म वर्चस बल तेज वृद्धि बंधन से छूटना और अनेक विपत्तियों का नाश इत्यादि होम के फललिखे हैं आह्निक सूत्रावलि मुद्रित निर्णय सागर यंत्रालय मुंबई शकाब्द १८११ के पृष्ठ ७३। ७४। ७५। में देखलीजिये मनु में लिखा है स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः। महायज्ञैश्चयज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियतेतनुः॥ अर्थात् वेदका पढ़ना व्रतहोम त्रैविद्य नामका व्रतदेव ऋषि पितरों का तर्पण पुत्रकी उत्पत्ति महायज्ञ यज्ञ इनसब कर्मोंसे यहशरीर मोक्ष प्राप्तिके योग्य होता है॥ अध्याय २ श्लोक २८ पंचसूनागृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः कण्डनीचोदकुम्भश्च वध्यतेयास्तुवाहयन्॥ ६८॥ तासांक्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः। पंचक्लृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहंगृहमेधिनाम्॥ ६९॥ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमोदैवोबलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥ ७०॥ पंचैतान् योमहायज्ञान्नहापयति शक्तितः सगृहेपिवसन्नित्यं सूनादोषैर्नलिप्यते॥ ७१॥ स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान्यथाविधिः पितॄन् श्राद्धैश्चनृनन्नैर्भूतानिबलिकर्मणा॥ ८१॥ वैश्वदेवस्यसिद्धस्य गृह्येऽग्नौविधिपूर्वकम्। आभ्यः कुर्यादेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥ ८४॥ एवंसम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षुप्रदक्षिणम्। इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं-

हरेत् ॥ ८७ ॥ अर्थात् गृहस्थ को चूल्हा चक्की बुहारी ओखली मूसल जलका घड़ा ये पांच सूना (अर्थात् वध का स्थान) हैं इन सबसे जन्तुओं का नाश होता है ॥ ६८ ॥ इन पांच सूना के प्रायश्चित्त के लिये गृहस्थ लोग पांच महायज्ञ को नित्य ही करें ॥ ६९ ॥ वेद का पढ़ना देव ऋषि पितरों का तर्पण करना होम करना बलि देना अतिथि का पूजन करना इन सब को क्रम से ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ कहते हैं ॥ ७० ॥ शक्तिपूर्वक जो इन पांच महायज्ञों को त्याग नहीं करता सो गृह में वास करते भी सूना दोष से लिप्त नहीं होता ॥ ७१ ॥ वेद पढ़ना होम करना श्राद्ध करना अन्न देना बलिकर्म करना इन सब से ऋषि देवता पितर मनुष्य भूत इन सबका विधिसहित क्रम से पूजन करना ॥ ८१ ॥ संस्कारसहित अवसथ्य नाम की अग्नि की जो आगे देवता कहेंगे उनको दिन २ में विधिसहित आहुति देवे ॥ ८४ ॥ अच्छेप्रकार से होम करके सब दिशाओं में प्रदक्षिण क्रमसे इन्द्र, वरुण, यम, चन्द्र, इन सबको और इन के सेवकों को बलि देवे ॥ ८७ ॥ मनुः अध्याय ३ इत्यादि शास्त्रकारों ने जो कुछ होम और फल लिखे हैं दयानन्दजीने उनको कहीं भी नहीं लिखा लिखते तो के कपोलकल्पित शास्त्रविरुद्ध झूंठ मतका सर्वथा नाशही न होजाता स्वर्ग .० पापोंका नाश और मनुष्यों से पृथक् देवताओं का होना इत्यादि सम्यक् सिद्ध न होजाता वस्तुतः होम के मुख्यफल वही हैं जो कि हम ने संक्षेपसे लिखे हैं और सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ४७ में जो होमका फल यह लिखा है और जिसे दयानन्द ने मुख्यफल माना है कि--दुर्गंधयुक्त वायु और जल से रोग रोग से प्राणियोंको दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है इति यह होमका गौण अर्थात् अवान्तर फल है जोकि कर्त्ता की इच्छाके बिना अग्निसे धूमकी समान आपसे आप होता है भूमिका के पृष्ठ ५५ में प्रश्न है कि जो यज्ञ से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि करनामात्र ही प्रयोजन है तो इसकी सिद्धि अतर और पुष्पादिके घरों में रखने से भी होसकती है फिर इतना बड़ा परिश्रम यज्ञ में क्योंकरना--उ० यह कार्य अन्य किसीप्रकार से सिद्ध नहीं होसकता इत्यादि यहां से स्पष्टसिद्ध है कि दयानन्द यज्ञसे वायु और वृष्टिजलकी शुद्धिकरनामात्रही मुख्य प्रयोजन समझता था क्योंकि--उत्तर में उसकी पुष्टि के अतिरिक्त और किसीविशेषफलका वर्णन नहींकिया पृष्ठ ५७में केवल इतना लेखहै कि इससे अन्यभी होम करने के बहुत से उत्तमफल हैं परन्तु किसी फलका वर्णन नहीं

निदान दयानंद के मतमें होम और यज्ञ से वायु और वृष्टिजलकी शुद्धिकरना मात्र ही मुख्य प्रयोजन है जो कि होमका अतिगौण फल है फिर आपने शतपथ के नाम से जो लिखा है कि—हवन के द्रव्य जो अग्नि में डालेजाते हैं इत्यादि आपकी अज्ञता और छल कपट है यह लेख भूमिका पृष्ठ ४९ का है इस का मूल पृष्ठ ४८ में यह है—अग्नेर्वैधूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिरग्नेर्वा एताजायन्ते तस्मादाहतपोजा इति आपके गुरु ने शतपथका वचन लिखकर मनमाना अर्थ लिखा है श्रुति में होमका कुछ भी वर्णन नहीं भूमिका के पृष्ठ ४९ में एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः यह श्रुति लिखकर भी अर्थ में होम से वायु जल और ओषधि आदि शुद्ध होते हैं सर्वथा अप्रसंग लिखमारा है फिर आपका ऐत्तरेय ब्राह्मणके नाम से यह लेख कि यज्ञ मनुष्यों के समूह के सुख के लिये होता है यह भी भूमिका पृष्ठ४८में सर्वथा अप्रसंग है इसमें यह कहीं नहीं कि होमसे वायु जल की शुद्धि होती है यदि और कहीं ऐसा लेख हो भी तो वह होमका एकतुच्छ फल है हमयही कहते हैं कि होमका जो मुख्यफल है दयानन्दने वह मानाही नहीं और धर्म के तत्व को जाना नहीं फिर आपने जो मनुका यह वचन लिखाहै कि-(अग्नौ प्रास्ताहुति सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायतेवृष्टि वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः)। अर्थात् अग्नि में डालीहुई आहुति सूर्य के समीप जातीहै सूर्य से वर्षा होती है वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है इति इस में सत्यार्थप्रकाश वा भूमिकाके लेखानुसार होमसे जल वायु का सुगन्धित होना वा शुद्ध होना तो कहीं नहीं है और जो कुछ लेख है सो ठीकही है परन्तु शास्त्रानुसार विधिपूर्वक होम करनेका यह फल है उक्त श्लोकही में सम्यक् पद विद्यमान है शास्त्रविधिको न मानकर स्वकपोल कल्पना युक्त होम करने से यह फल कदापि नहीं सूर्य पृथ्वी से ९३०००००० मील दूरहै तो आपके मतानुसार अग्नि में डालीहुई आहुति सूर्यके समीप कैसे पहुँचसकती है जहां होम होता है उससे आधमील भी उसकी गंध नहीं पहुंचती तो वह जल और वायु को कैसे शुद्ध और सुगंधित कर सकती है इस के अतिरिक्त पूर्व सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ ४५ में वेद के नाम से माँसादि पदार्थों से होम करना लिखा है पृष्ठ ३०३ में यज्ञ में वृषभादि नर पशुओं और वंध्यागाय का मारना लिखा है पृष्ठ ३९९ में है कि पशुओं के मारने में थोडा सा दुःख होता है परंतु यज्ञ में चराचर का अत्यन्त उपकार होता है यजुर्वेदभाष्य अध्याय १९ मंत्र २० के भावार्थ में है कि जो इस संसार में बहुत पशुवाला होम करके

हुतशेषका भोक्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसाको प्राप्त होता है इत्यादि यदि दया- नंदी लोग गुरुकी आज्ञानुसार होम और यज्ञ करेंगे तो जल वायु सुगंधित होके रोगोंको नष्ट करेंगे वा दुर्गंधयुक्त होके रोगों की वृद्धि—हां होमदेव यज्ञहै जो लोग देवताओंके उद्देश्य से शास्त्र विधिके अनुसार यथावत् होमकरके परमात्माके अर्पण करेंगे उस अग्निमें डालीहुई आहुतिको परमात्मा सूर्य के समीप क्या उससे भी अधिक दूर पहुंचा सकता है और होम करनेवाले धर्मात्माओं को शास्त्रकथित यथेष्ट फल देसकता है परंतु आप देवताओं को नहीं मानते और होम का फल शास्त्रोक्त नहीं जानते ऐसे विधि शून्य कपोल कल्पित होम से कुछ भी लाभ नहीं यदि आपके विचारानुसार होम से जल वायु की शुद्धि होतीही है तो मंत्रों का पढ़ना निः संदेह वृथा है और दूसरे सत्यार्थ प्रकाश का वह लेख कि मंत्रों में वह व्याख्यान हैं कि जिससे होम करने के लाभ विदित होजायँ सर्वथा मिथ्या—देखो वहां पृष्ठ ४२ में ओं भूरग्नये प्राणायस्वाहा इत्यादि चारमंत्र और विश्वानिदेव तथा गायत्री मंत्रसे आहुति देना लिखा है उक्त मंत्रों में होम करने के लाभ का कुछ भी वर्णन नहीं कहिये यह मिथ्याभाषण है वा गप्प धोका देना है वा अज्ञता—अंत में जो आपने भूमिका से काटफांट कर होम में मंत्रों के पढ़ने का प्रयोजन लिखा है कि हाथ से हवन करें मुख से भी उत्तमकर्म वेदपाठ होतारहै इत्यादि वह सब दयानंद का कपोल कल्पित है शास्त्र विधि नहीं इसकारण उसका विशेष उत्तर न लिखकर हम इतनाहीकहतेहैं कि गीता अध्याय १६में श्रीकृष्ण भगवान् का वचनहै। यःशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः।न ससिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्॥पहिले सत्यार्थप्रकाशकेपृष्ठ ४९में लिखाहै कि बलिवैश्वदेवका प्रयोजन तो होमके नाईं जानलेना फिर यहभी प्रयोजन है कि भोजन के समय बलिवैश्वदेव करेंगे वे भी सुगन्ध से प्रसन्न होजायँगे और वह स्थान सुगन्धयुक्त होने से मक्खी मच्छरादिक जीव सब निकलजायँगे, यह भी मिथ्या कपोलकल्पना है और वैश्वदेव कर्म का ठट्ठा— अग्निपर घृत मिष्टान्नयुक्त रोटीभात रखने से सुगन्ध कदापि नहीं होती न उस से जल वायु की शुद्धि होती है न मक्खी मच्छर निकलते हैं हां इस लेख से लिखनेवाले के मनका यह अभिप्राय निकलता है कि बलिवैश्वदेव कोई धर्म कर्म नहीं किंतु मक्खी मच्छर निकालने की एक औषधि है—सो भी मिथ्या— फिर आपके गुरु ने मार्जन का प्रयोजन आलस्य दूर होना—शिखाबंधन का प्रयोजन केश इधर उधर न गिरें—आचमनका प्रयोजन कफ पित्तकी निवृत्ति होना लिखा है और यह भी लिख दिया है कि आलस्य न हो तो

न करना—यज्ञोपवीत विद्याका चिन्हहै—शिखा रक्खै वा न रक्खै ऐसे लेखोंसे शास्त्रविहित कर्मो की निंदा तथा हास्य और उन का लोप करना स्पष्ट प्रकट है। छंद—हमारे सत्य परवातें वृथा झूटी बनाता है। भला क्या लाभ उठाता है जगत् को तू हंसाता है ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क १० धर्म संताप में से (वादी) हो असत् मिश्रित जो सत् वह सत्य है जन विष समान । तो तू अपने स्वामी का सब लेख अनादरणीयमान ॥ उस के ग्रंथों में तुझे स्वीकार है अनृत निदान । छोड़ दे अब सर्व था उन को जो है तू बुद्धिमान ॥ स० प्र० पृष्ठ ७१ (प्रतिवादी) पं० जी साहब विचार बुद्धि को हाथ से न दीजे पूर्वा पर प्रसंग देखिये पृष्ठ ७१ में तन्त्र ग्रंथ पुराणादि के लिये विषयुक्त अन्न का दृष्टान्त है न कि ऋषि प्रणीत ग्रंथों के लिये इत्यादि

(उत्तर) यदि आपको बुद्धि और विचार होता तो झूटका पक्ष क्यों स्वीकार होता देखये सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ७१ में यह लेख है कि व्याकरण में कातन्त्र सारस्वत चन्द्रिका मुग्धबोध कौमुदी शेखर मनोरमादि—सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत भाषा रामायण रुक्मिणीमङ्गलादि और सर्व भाषाग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं ।

प्रश्न—क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है परंतु इसके साथ बहुतसा असत्य भी है इससे "विषसंपृक्तान्नवत्त्याज्याः" जैसे अत्युत्तम अन्न विषसे युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं फिर पृष्ठ ७२ में ।

प्रश्न—जो त्याज्यग्रन्थों में सत्य है उसका ग्रहण क्यों नहीं करते ?

उत्तर—जो२ उन में सत्य है सो२ वेदादि सत्यशास्त्रों का है और मिथ्या उनके घरका है वेदादि सत्यशास्त्रों के स्वीकार में सब सत्यका ग्रहण होजाता है जो कोई इन मिथ्याग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लपटजावे इसलिये "असत्यमिश्रंसत्यंदूरतस्त्याज्यमिति" असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्यको भी वैसे छोड़देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को इति दयालुजी ! अब विचार कीजिये और बुद्धिसे काम लीजिये आप के गुरु ने पूर्वोक्त ग्रन्थों के सर्वथा त्याग करने में (असत्यमिश्रंसत्यंदूरतस्त्याज्यमिति असत्यसे युक्त ग्रन्थस्थ सत्यको भी वैसे छोड़देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को) यह न्याय लिखा है और न्यायसाधारण होता है अर्थात् एक

स्थानपर कहने से उसप्रकार के सब स्थानोंपर उसका ग्रहण कियाजाता है जैसा कि-किसी ने कहा कि कउओं से दही की रक्षा करो इस कथन से केवल कउओं ही से दही की रक्षा करना प्रयोजन नहीं किंतु बिल्ली आदि अन्य जो कोई दहीका हरण करना चाहें बुद्धिमान को उन से भी रक्षा करना अवश्य है इसीप्रकार किसी ने अपने शिष्य वा पुत्र से कहा कि-ईसाइयों के पास बैठना अच्छा नहीं वे हमारे धर्म की निंदा करते हैं इसकथन से केवल ईसाइयों ही के पास बैठने का निषेध नहीं किंतु मुसल्मान दयानन्दी आदि भी जो२ धर्म की निंदा करते है उनके पास बैठने का निषेध भी स्वतः सिद्ध है दयानन्दके ग्रन्थों में प्रायः असत्य और वेदादि सत्शास्त्रविरुद्धही लेख है अतएव 'असत्यमिश्रंसत्यंदूरतस्त्याज्यमिति असत्यसे युक्त ग्रन्थस्थ सत्यको भी वैसे छोड़देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को " दयानंद ही के उक्त न्यायानुसार सज्जनों को उसके ग्रन्थों का सर्वथा त्याग करना अत्यावश्यकहै फिर उसका यह लेख कि और सर्वभाषा ग्रन्थ ये सब कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं उसके बनाये सत्यार्थप्रकाशादि को भी कपोलकल्पित और मिथ्या ठहराता है क्योंकि वे भी भाषा ग्रन्थ हैं निदान हमारा आक्षेप सत्य और न्यायानुसार है संपूर्ण दयानन्दियों के शिरपर भार और आपकी हार है छन्द- कहेगा न्यायके प्रतिकूल जो वह आप हारेगा । भला झूट की हे मित्रो कहीं भी जीत होती है ॥ अब यह भी बतलाइये कि सारस्वत चंद्रिका मुग्धबोध कौमुदी शेखर मनोरमा तथा शार्ङ्गधर में मिथ्या क्या है यद्यपि पुराणो में प्रायः प्रक्षिप्तलेख है जिसको बुद्धिमान लोग नहीं मानते और धर्म नहीं जानते तथापि दयानन्दकृत वेदों के भाष्यसे उन में शतगुण अधिक धर्मोपदेश और उत्तमलेख है जो कोई दयानन्दकृत वेदभाष्यको वेद का यथार्थ अर्थ जानेगा वेदों को अपौरुषेय अनादि और ईश्वर प्रेरित तो क्या किसी धर्मज्ञ विद्वान के बनायेहुए भी न मानेगा-हमारी बनाई दयानन्दकृत यजुर्वेदभाष्य की समालोचना अवलोकन कीजिये और शक्ति हो तो पक्षपातरहित होकर सभ्यतापूर्वक उत्तर दीजिये-तंत्रग्रंथों का वृत्तान्त सब विद्वानों पर आप के गुरु की अधर्मरूप कपोल कल्पना के समान प्रकट है किसी से छुपानहीं यद्यपि दयानंद को विद्वत्ताका अभिमान था परंतु उसके हृदय में तंत्र ग्रंथों का संस्कार विद्यमानथा-सत्यार्थ प्रकाश को हाथ में लेनेसे तंत्रग्रंथों की गंध आती है ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका भी उन्हीं केसे गीत गाती है इन में सर्वथा शास्त्र विरुद्ध और ऐसी २ बुरीबातें लिखी हुई हैं कि जिन से धर्म को

ग्लानि है और लोक परलोक की हानि—हमने दयानंद जीवन चरित्र समालोचना और दयानंद पराजयादि में उसका वर्णन किया है अज्ञों को अधर्म से बचाने के लिये विज्ञापन दिया है। छंद—देखले अपने स्वामी जी का लेख तंत्रग्रंथों से कुछ भी न्यूननहीं ॥ यदि तंत्र ग्रंथों की प्रथमकक्षा से कुछ न्यून है तो दूसरीकक्षा ही का सही—वे बड़े भाई हैं ये छोटे दोनों के कर्म खोटे छन्द—नहीं तन्त्रवालों से स्वामीजी छोटे। करो न्याय हैं कर्म दोनों के खोटे॥१॥ न सत्यार्थ कह तू असत्यार्थ को। बुरा है लिखा तेरे स्वामी ने जो ॥ २ ॥ गोवधतक जिसने लिखा करो न्याय धीमान। कहैं आर्य उसको भला फिर कैसे विद्वान ॥ ३ ॥ गोवध भी लिखने जिसको न आई तनिक दया। जो कोई उसको आर्य कहे आर्य वह नहीं ॥ ४ ॥ अब उसका वैयाकरण होना भी सुनलीजिये और अपने मन ही में न्याय कीजिये उसने वाक्यप्रबोध नामक एक छोटासा पुस्तक बनाया था पण्डित अंबिकादत्तव्यास ने उसके खण्डन में अबोधनिवारण छपवाया था स्वामीजी के लेख में व्याकरणानुसार बहुत ही अशुद्धि और भूल दिखाई थी उनके पांडित्य की सम्यक्धूलि उड़ाई थी निदान दयानन्दके सभी ग्रंथ शास्त्रविरुद्ध हैं महाअशुद्ध हैं इसकारण अवश्य ही सज्जनलोग विषयुक्त अन्नकी सदृश उनका सर्वथा त्याग करें और वेदादि सत्शास्त्रों में अनुराग—यदि आप दयानन्दलिखित पूर्वोक्त न्यायको मानोगे तो अवश्य उसके ग्रंथों को विषयुक्त अन्न की सदृश सर्वथा त्यक्तव्य जानोगे हमारे आक्षेप को स्वीकार करोगे और दयानन्द की शास्त्रविरुद्ध सर्वथा अशुद्ध मिथ्या कपोलकल्पनाओं का तिरस्कार छन्द—हो असत् मिश्रित जो सत वह सत्य है जब विष समान। तो तू अपने स्वामीका सब लेख अनादरणीय मान ॥ उस के ग्रंथों में तुझे स्वीकार है अनृत निदान। छोड़ दे अब सर्वथा उनको जो है तू बुद्धिमान ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क ११ गर्मसंताप में मे शूद्र था जान श्रुति यह कैसा अनृत लिखदिया। है प्रकट छांदोग्य से तेरे गुरु की अज्ञता ॥ स० प्र० पृष्ठ ३३६

(प्रतिवादी) छांदोग्य उपनिषद् का तनिक आंख खोलकर पाठ कीजे—वहां रैक्वमुनिने जान श्रुतिको शूद्र कहकर ही संबोधन किया है इत्यादि—

(उत्तर) छन्द—झूठे का पक्ष जो करे झूठा कहायगा। पापी बनेगा अपनी प्रतिष्ठा मिटायगा ॥ मासटरसाहिब शास्त्र के अक्षरों का वास्तविकरूप बाहरी आँखों से नहीं दीखता किंतु विद्यारूपी नेत्रों से दीखता है आपका गुरु उन से सर्वथाहीन था पक्षपात और हठ दुराग्रह से उसका मन मलीन था—त-

त्वार्निर्णय में उसने सर्वत्र धोका खाया है अपनी अज्ञता और हठ दुराग्रह से जी में आया सो अन्यथा गाया है जान श्रुति को शूद्र लिखना उसकी सर्वथा अज्ञता है फिर आपका उसपर पक्ष करना पबलिक को धोका देना और निर्लज्जता है-निःसंदेह छांदोग्य में जान श्रुति के लिये शूद्रपद आया है परंतु आप को यह सुध नहीं कि उसका अर्थ वहां क्या है श्रीवेदव्यास महर्षि ने उत्तरमीमांसा के अध्याय १ पाद ३ सुगस्यतदनादर श्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते हि-इस सूत्र ३४ में छांदोग्यलिखित उक्त शूद्रपद का अभिप्राय शोक लिया है और फिर-क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्रचैत्ररथेनालिंगात् इस सूत्र ३५ में जान श्रुतिके क्षत्रिय होने का पूर्ण निर्णय किया है उक्त सूत्रोंपर भाष्यकारों ने सम्यकव्याख्या की है सो किसीसे सुनलीजिये और अपने तप्त हृदय की यथावत् शांति कीजिये-दयानन्दने उत्तरमीमांसा को कभी देखा होता तो जान श्रुतिको शूद्र कदापि न कहता आपके गुरुपर हमने यही आक्षेप किया है कि जान श्रुति को उसका शूद्रलिखना मृषाहै सो हमारा कथन अचल है और आपका झूटापक्ष निर्बल छन्द झूटा है आक्षेप को मेरे कहे जो झूट । मेरे कथन में व्यासमुनिका प्रमाण है ॥ फिर आपका यह लेख कि प्रथम तो जान श्रुतिका शूद्र होना छांदोग्य से प्रकट है ही है परंतु ऐसा न भी हो तो भी सिद्धान्तहानि तो नहीं होती और अन्यों का शूद्रत्व से ब्राह्मणत्वको प्राप्त होना सिद्ध है इति विद्वानोंपर तो जान श्रुतिका क्षत्रिय होना छांदोग्य और उत्तरमीमांसा से स्पष्ट प्रकट है अन्यों की कथा नहीं अंत में आप भी मान ही चुके कि ऐसा न भी हो तो भी सिद्धान्तहानि तो नहीं होती-यह भी अशुद्ध है सत्यार्थक स्वामी के विरुद्ध है दूसरी बारके छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३३२ में लिखा है कि इन दोनों में से एकबात सच्ची दूसरी झूटी ऐसा होकर दोनों बात झूटी--आपका शेष लेख असंगत और वृथा है हमने उस को निष्फल जानकर छोड़ दिया है । छंद झूट का पक्ष तू ने हे मित्र क्यों लिया है। उसने ही तुज को झूटा संसार में किया है ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क १२ धर्म संताप में से ।

(वादी) जो लिखी पृथिवी की परिधि उस में भारी भूल है । तेरे स्वामी का कथन सिद्धान्त के प्रतिकूल है ॥ (सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय में इस के प्रतिकूल है) स० प्र० पृष्ठ ४६०

(प्रतिवादी) सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय भुवनकोश में लिखा है कि --' प्रोक्तोयोजनसंख्ययाकुपरिधि सप्तांग नंदाब्धयः ' अर्थात् पृथिवी की

परिधि ४९६७ योजन या लगभग ५००० योजन है-इस से प्रतीत होता है कि ५००० योजन परिधि के स्थान में १५००० योजन परिधि ऐसा अशुद्ध छपगया है या कदाचित् किसी जैनी आचार्य ने १५००० योजन परिधि इस पृथिवी की मानी हो इत्यादि ।

(उत्तर) इसी योग्यतापर हमारे आक्षेपों का उत्तर लिखने और गुरु जी की अज्ञता मिटाने का साहस किया है हम फिर कहेंगे कि जादू वह जो शिर पै चढ़ के बोले यहां तो आपने हमारे आक्षेप को सत्य जानलिया और दयानन्द का पंद्रह सहस्र पृथिवी की परिधि लिखना सिद्धान्त शिरोमणि के प्रतिकूल स्वयं मान लिया, फिर भी झूटी बातें बनाने से बाज़ नहीं रहते हम को सत्यवक्ता और गुरु को मिथ्या वादी नहीं कहते-सत्यार्थ प्रकाश में पंद्रह सहस्र अक्षरों में लिखा है यह अशुद्धि प्रेस वालों की समझना मृषा है गुरुजी ही की भूल स्वीकार है तो हमारा आक्षेप उस के गले का हार और आप के शिरपर सवार है किसी जैनी आचार्य ने ऐसा लिखा होता तो आपके गुरु ने उसका अवश्य पता लिखा होता—जैनियों ने पृथिवी का परिमाण असंख्यात माना है और उस को बहुत बड़ा जाना है-आप जैनियों के ग्रंथ में पृथिवी की परिधि १५००० लिखी दिखलायेंगे तो हम आपको बेसन लड्डू और पेड़े खिलवायेंगे नहीं तो कचचने चबायेंगे। और बहुत नचायेंगे छंद-स्वामी की तेरे मैंने अशुद्धि प्रकट जो की । प्रत्यक्ष सिद्ध है वह तेरे लिखसे निदान॥करताहै फिर बनावटें झूटी जो तू वृथा॥अज्ञान तेरा होता है उन से विदित महान ॥ महाशय आप तो स्कूल मास्टर हैं धर्म से कहिये यदि आप विद्यार्थियों की परीक्षा लें और वे ४९६७ वा ५००० के स्थान में १५००० उत्तर लिखें तो आप उन को कितने नंबर देंगे अवश्य फेल ही करेंगे और मूर्ख ही समझेंगे । छंद—पांच के पंद्रह लिखे फिर भी अविद्वान नहीं । कौन कहता है दयानंद का अज्ञान नहीं ॥

(शंभुनाथ) कुतर्क १३ दयानन्द मतसूची में से ।

(वादी) वेदशास्त्र में विद्वानों को देवशब्द जो आया । विद्वज्जन ने व्यासादिक को क्यों नहीं देव लिखाया । स० प्र० पृष्ठ ५८८ ।

(प्रतिवादी) इस आक्षेप का उत्तर देने से पूर्व हम पूछना चाहते हैं कि स्वामी जी महाराज ने यह अव धारण कहां पर किया है कि केवल विद्वानों को ही देवता कहते हैं इत्यादि ।

(उत्तर) छंद—झूटी बातों से जय मनाता है । कोई कौतुक से आम-

खाता है ॥ देखो आप के गुरु ने सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ९९ में लिखा है कि जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं फिर पृष्ठ ५८८ स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश में लिखा है कि देव विद्वानों को और अविद्वानों को असुर पापियों को राक्षस अनाचारियों को पिशाच मानना हूँ इति आंखों से पक्षपात की पट्टी खोल कर और अज्ञान की धूलि धोकर सम्यक् देख लो कि पीर जी ने यहां केवल विद्वानों को ही देवता मानाहै इससे ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका आदि में देवताशब्द से जोईश्वर (यक्ष इंद्रियादि का ग्रहण किया है वह अशुद्ध है सत्यार्थप्रकाशपृष्ठ ९९ और उसके स्वमंतव्यामंतव्यसे विरुद्धहै परंतु हम को इससे कुछ प्रयोजन नहीं इसविषय में हमारा केवल इतनाही विवाद है कि संपूर्णऋषि मुनियों और समस्त विद्वानों ने स्वर्गनिवासी इन्द्रादिदेव मनुष्यों से पृथक् माने हैं और उनके अलौकिकगुण कर्म जाने हैं दयानन्द विद्वानों हीको देवता मानताहै मनुष्यों से पृथक् स्वर्ग निवासी इन्द्रादि देवताओं का होना मिथ्या जानता है उक्त देवताओं का न मानना सर्वथा अशुद्ध है वेदादि सन्शास्त्रों के विरुद्ध है—हमने इस विषय की पुष्टि में देवासिद्धि नामक पुस्तकछप वाया है मनुष्यों से पृथक् देवताओं का होना सम्यक् सिद्धकर दिखाया है— उसको देखकर सत्यका ग्रहण और असत्य का त्याग कीजिये वा यथार्थ उत्तर दीजिये झूठी बातें न बनाइये अज्ञोंको न रिझाइये श्रीवेदव्यास महर्षिने उत्तर मीमांसा के अध्याय १ पाद ३ में ' विरोधः कर्मणीतिचेन्नानेक प्रतिपत्तेर्दर्शनात् ॥ २७ ॥ यह सूत्रलिखा है भाष्यकारों ने इसका यहआशय वर्णन किया है कि देवता अनेक यज्ञोंमें अनेक शरीर धारण करके जातेहैं और किसीको दृष्टि नहींआते सूत्र ३२ तक इसी प्रकार की व्याख्या है जिस से दयानन्द का स्वर्गलोक निवासी इन्द्रादि देवताओं का न मानना और विद्वान् मनुष्यों हीको देवता जानना सर्वथा मिथ्याहै- विद्वान मनुष्यों में अनेक शरीर धारण करना और किसीको दृष्टि न आना इत्यादि सामर्थ्य किसीप्रकार नहीं है दयानंद का विचार विद्वानों के विचारानुसार नहीं—फिर ' देवादिवदपिलोके ' उत्तर मीमांसा अध्याय २ पाद १ का सूत्र २५ यह है और श्री भाष्यमें उसकी व्याख्या यह—यथा देवादयः स्वे स्वे लोके संकल्पमात्रेण स्वापेक्षितानिसृजंति तथा ऽसौ पुरुषोत्तमः कृत्स्नं जगत्संकल्पमात्रेणसृजति इति अर्थात् जैसे देवादि अपने २ लोक में संकल्पमात्रसे अपने इच्छित पदार्थों को रचते हैं वैसेही परमात्मा संपूर्ण जगत् को संकल्पमात्रसे रचता है—अब कहिये क्या विद्वान् मनुष्यों में यह शक्ति है कदापि नहीं—देवताओं के गुण

कर्मों की महिमा अपार है विद्वान मनुष्यों से देवताओं का पृथक् होना वेदादि सत्शास्त्रों के अनुसार है हम यह नहीं कहते कि विद्वानों के लिये देव शब्द आताही नहीं किंतु दयानद विद्वानों ही को देव जानता है उन के अतिरिक्त स्वर्गलोक निवासी इन्द्रादिक देवताओं का होना नहीं मानता—उसके इसीशास्त्र विरुद्ध कथन का खंडन करते हैं अर्थात् स्वर्गलोक निवासी इन्द्रादि देवता विद्वान् मनुष्यों से पृथक् अवश्य हैं सत्शास्त्रानुकूल इसबात का मण्डन करते हैं—यदि आप लोग ऐसा मानलें तो फिर झगड़ाही क्याहै सत्य के ग्रहण और असत्य के त्यागही में लोक परलोक का भलाहै छंद--शास्त्र के प्रतिकूल कहने में नतु अच्छा समझ। लोकमें अच्छा हो कुछ परलोक में अच्छा नहीं ॥ आगे जो वचन आपने अपने कथन की पुष्टि में लिखे हैं आपकी अज्ञताहै वा जान बूझकर पवलिक को धोकादिया है—क्यों कि वे हमारे ही कथन का भ्वास भरते हैं और आपका सम्यक् खण्डन करते हैं अस्तु सत्यमेव देवाअनृतं मनुष्या—इसका आशय यह है कि देवता सत्य भाषण ही करते हैं अनृत मनुष्यों में होता है आपका अर्थ मिथ्याहै गप्पाष्टक की कपोल कल्पना है—मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य देवो भव—आपने इसका अर्थ ही नहीं लिखा हमने देवसिद्धि में उक्त श्रुति शंकर भाष्य सहित लिखी है देवता मनुष्योंसे पृथक् हैं इसबातकी सम्यक् पुष्टि की है-देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वंच राजसाः तिर्यक्त्वं तामसा नित्य मित्येषा त्रिविधा गतिः मनु अध्याय १२ इसका यह अभिप्राय है कि—मरणानन्तर सत्व गुणवाले देवभाव को रजोगुण वाले मनुष्य भावको तमोगुणवाले तिर्यग्भाव अर्थात् तिरछा चलने वाले सर्पादिक योनि के भावको प्राप्त होते हैं—आप का यह समझना कि सात्विकभावसे मनुष्य इसी देह में देवता बन जाता है सर्व था मिथ्या है ऐसामानो तो तमोगुणवाले तिर्यग् भाव अर्थात् सर्पादिक योनिको इसी देह में प्राप्त हो जावें यह सर्व था असंभव है इसी से आपने तिर्यग् का अर्थ असुरत्व मन गढ़त लिखा है—राजसभाववाले (मनुष्य) मनुष्यत्व को प्राप्त होते हैं आपका यह कथन भी वृथा है जो कि प्रथमही मनुष्य है उस का पुनः मनुष्य होना बात क्या है—जो लोग मनुस्मृति में उक्त श्लोक के पूर्वापर का विचार करेंगे आप के छल कपट को सम्यक् जानलेंगे-आपके गुरु ने सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ८८ में (शूद्रोब्राह्मणतामेति—मनु अध्याय १० का यह श्लोक लिखकर ऐसा ही छल कपट किया है प्रकरण के विरुद्ध अर्थ का अनर्थ करके पवलिकको धोका दिया है छल कपट करना उसके मत की मूल है चेले का लेख गुरु के

अनुकूल है—नहीं २ आप गुरु से भी बढ़गये और अज्ञानरूपी पर्वत की चोटी पर चढ़गये दयानंद ने दूसरी बारके छपे हुए सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ २५३ तथा २५४ में (देवत्वंसात्विकायान्ति) इत्यादि ११ श्लोक मनु के लिख कर जिस २ गुणसे जिस २ गति को जीव दूसरे जन्म में प्राप्त होता है वही दर्शाया है क्योंकि वहां (जो अत्यंततमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि कृमिकीट मत्स्यसर्प कच्छप पशु और मृगके जन्मको प्राप्त होते हैं) इत्यादि लेख आया है आपने गुरु के विरुद्ध गाया है उसको स्पष्टमूर्खठहराया है हम उस के अशुद्ध लेखों को अशुद्ध बतलाते हैं आप शुद्ध को भी अशुद्ध ठहराते हैं धन्य। छंद-तूने विरुद्ध अपने गुरु के किया जो लेख। जय मेरी और तेरी पराजय प्रकट हुई ॥ फिर आपका यह कथन कि व्यास देव शुकदेव कपिलदेव इत्यादि नामों में देवपदवी लगाई जाती है-सर्वथा अशुद्ध है और हमारे आक्षेप के विरुद्ध हमारा कथन यह है कि जो विद्वानों ही का नाम देवता है तो व्यास, जैमिनि, गौतम, पतंजलि, कपिल, कणाद तथा व- शिष्ठ—भरद्वाज उद्दालक—याज्ञवल्क्य आदि जो परम विद्वान थे उनको स- त्शास्त्रों में ऋषिमुनि ही लिखा है देवता क्यों नहीं लिखा आपके गुरुने भी स- त्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ७१में व्यासमुनि गोतममुनि वात्स्यायनमुनि पतंजलिमुनि कपिलमुनि भागुरिमुनि बोधायनमुनि ऐसाही लिखा है व्यासादि के अंत में देव वा देवता नहीं लिखा प्राचीन ग्रंथों में व्यासदेव-शुकदेव ऐसा लेख भी देखनेमें नहीं आता किंतु व्यास और शुक ही लिखा पाता है यदि कुछ लोग ऐसा बो- लते हैं तो यह विवाद में सिद्धान्त नहीं होसकता इसके अतिरिक्त यदि किसी ऋषि मुनि और विद्वान का नाम देवपदान्त ही हो तो इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होसकता कि वह देवपद देवता ही का वाचक है आजकल भी हरदेव बलदेव गुरुदेव मंगलदेव आदि नाम प्रायः मनुष्योंके हैं वे सब विद्वान ही नहीं- हमारा अभिप्राय यह है कि सत्शास्त्रों में परम विद्वानों और पूर्ण धर्मा त्माओं को ऋषि मुनि लिखा है देवता नहीं लिखा यदि देवता मनुष्यों से पृ- थक् न होते और विद्वान् मनुष्यों ही को सत्शास्त्रों में देवता मानाजाता तो जिसप्रकार इन्द्र बृहस्पति वरुण कुबेर आदि को सर्वत्र देवता लिखा है उसी प्रकार संपूर्ण ऋषि मुनियों को देवता लिखा होता आप लोग दयानंद को विद्वान जानते हैं अपनी पुस्तकों में उसको महर्षि लिखते हैं देव क्यों नहीं लिखते उसके नामही के अंत में देव पद लगाइये सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ८० में नक्षत्र वृक्ष नदी आदि के नामों को कुत्सित लिखा है उसके सिर से सर-

स्वती पद को मिटाइये और समाजोंमें दयानंददेव ऐसा बोलने का प्रचार कराइये अथवा उसको अज्ञ बताइये नामके अन्तमें देवपद लगानेसे विद्वान मनुष्य देवता कदापि नहीं होसकता धनपतिराम करोरीमल्ल और धर्मसिंह नाम रखने से कोई धनवान और धर्मात्मा कदापि नहीं होसकता—शतपथमें देवताओं का निवास स्थान स्वर्ग लिखा है 'द्यौर्वै सर्वेषां देवा नामायतनम् श० १४।३। २। ८॥' और विद्वान् मनुष्य पृथ्वीही पर रहते हैं फिर आपने जो निरुक्त अध्याय ७ का यह टुकड़ा और उसका अर्थ तथा स्वसिद्धान्त लिखा है कि(देवो दाना-द्वादीपनाद्वाद्योतनाद्वाद्युस्थानो भवतीति वा, अर्थात् दान देने प्रकाश करने सत्योपदेश करने से देवनाम पड़ता है अतः विद्वान् की भी इन्हीं कारणों से देव संज्ञा होसकती है इति सर्वथा छल कपट है और आपही के लेख से हमारी जय प्रकट छंद झूठीबातों के सिवा कुछतुझे स्वीकार नहीं सत्यभाषण से गुरुही को तेरेप्यार नहीं॥ वेद और शास्त्रमे कुछभी तु खबरदार नहीं छल कपट करने में तुजसा कोई हुशयार नहीं ॥ पंडजी ! निरुक्त में वह पूर्ण लेख इस प्रकार है—अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्यदेव मृत्विजं होतारं रत्न धातमम् अग्निमीळेऽग्नियाचामीळिरध्येषणा कर्मा पूजाकर्मा वा पुरोहितो व्याख्यातो यज्ञश्च देवोदानाद्वादीपनाद्वाद्योतनाद्वाद्युस्थानो भवतीति वायोदेवः सादेवता होतारं ह्वातारं जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभो रत्नधातमं रमणीयानां धनानां दातृतमं तस्यैषा पराभवति॥ इति अग्निमीळे यह ऋग्वेद की पहिली ऋचाहै निरुक्तकार ने उसको अग्नि देवता की स्तुति में लगाकर पूर्ण व्याख्या की है यहां निरुक्तकार के मत में देव शब्द अग्नि देवता का वाचक है न कि विद्वान् मनुष्यका—आपके गुरु ने ऋग्वेद भाष्य में उक्त ऋचा को ईश्वर और भौतिक अग्निकी स्तुति पर लगाया है और देव शब्दसे परमेश्वर तथा भौतिक अग्निही का ग्रहण किया है फिर आप निरुक्तकार और गुरु के विरुद्ध देव शब्द से विद्वान मनुष्य का ग्रहण कैसे करते हो ! छंद—अपने घर की भी तुझे सुध नहीं कहना क्या है लेख झूठा है तेरा या है गुरु का तेरे झूट ॥ फिर निरुक्तकार तथा आपके लेख में द्युस्थानोभवति यहपद आया है उसका अर्थ आपके पेटही में समागया—द्युस्थान स्वर्गलोक विशेष है जो कि निरुक्तकारके मतमें देवताओं का निवास स्थानहै जब कि आपको निरुक्त प्रमाण है तो मनुष्यों से पृथक स्वर्गलोक निवासी देवताओं का न मानना सर्व था हठ धर्मी वा अज्ञान है इस के अतिरिक्त निरुक्त अध्याय ७ खंड ६ में लिखा है—अथाकार चिंतनं देवतानां पुरुष विधास्युरित्येके-यहां

यह विचारहै कि देवताओंके शरीर हैं वा नहीं तथा किस प्रकार के हैं फिर कहते हैं कि देवताओं के शरीर पुरुषाकारहैं—यदि विद्वान् मनुष्यों ही को देवता कहते तो इस विचार की क्या आवश्यकता थी—क्योंकि विद्वानोंके शरीर होने में किसी को संदेह नहीं दयानन्दियों को हो तो आश्चर्य नहीं—अंतमेंआपका यह लेख कि विद्वान् की भी इन्हीं कारणों से देवसंज्ञा होसकती है—आपने विद्वान् मनुष्योंसे पृथक् देवताओं का होना मान ही लिया और गुरु को झूठा जानही लिया क्योंकि उक्तवाक्यमें (भी) अव्यय स्पष्ट सिद्ध करताहै कि देव विद्वान् से पृथक् हैं परंतु इन कारणों से विद्वान की भी देवसंज्ञा होसकती है बस देवता विद्वानोंसे पृथक् हैं हमारा यही विचार है सो आपको स्वीकार है झूटकी हार है और सत्य की जयजयकार छन्द—सत्य की जय है सदा अनृत की निश्चय हार है। धन्य सत्यवक्ता को है फल झूट का धिक्कार है॥ करलिया शत्रु ने मेरी बात को स्वीकार आज। भूमि से स्वर्लोकतक उच्चरित जयजयकार है॥

(शम्भुनाथ) कुतर्क २४ दयानन्दमतसूची में से।

(वादी)'अङ्गादंगात्सम्भवसि' चारों वेदों में बताया। एक वेद में भी नहीं आया वृथा तुम्हें बहकाया संस्कारविधि सं० १९३३ पृष्ठ ३८)।

(प्रतिवादी) निरुक्त ३। ४ तदेतदृक्श्लोकाभ्यामभ्युक्तम् अर्थात् यह बात ऋचा और श्लोक में कही है इस के आगे'अङ्गादङ्गात्संभवसि'यह ऋचा लिखी है जो निरुक्त कि उभय पक्ष को मंतव्य है इति।

(उत्तर) हमारा आक्षेप यह था कि दयानन्द ने -अङ्गादङ्गात्सम्भवसि- इस वचन को चारों वेदों में बताया है परन्तु यह जिनको चार वेद मानताहै उन में से एक में भी नहीं आया यदि उत्तरदाता उक्त मंत्र को अपने माने हुए—चारो वेदों में दिखाता तो दयानंद यथार्थ वक्ता समझाजाता—परन्तु वह एक वेद में भी न दिखासका अपने स्वामी की अज्ञता को न मिटासका अतएव उसी के लेख से हमारी जय है और उसकी तथा उस के गुरु की अज्ञता निश्चित निश्चय। छंद—तेरे गुरु की अज्ञता सब पर विदित हुई। विश्वास झूटे लेखों पै उसके करैगा कौन॥ संमुख मेरे हुई है पराजय तेरी प्रकट। लज्जासे मुखछुपा के तू धारण कर अब तो मौन॥ आपको अपना लिखा निरुक्त का वचन स्वीकार है तो आप की और भी एक बड़ी हार है कि निरुक्तकारने उसको ऋचामाना है अर्थात् वेद वचन जाना है आपकेवल चार शाखाओं को वेद मानते हैं शतपथादि ब्राह्मण तथा अन्य शाखाओं को वेदों के व्याख्यान जानते हैं आपके माने चार वेदों में उक्त वचन नहीं

है अब ब्राह्मण वा अन्य शाखा में जहां कहीं है उस को भी वेद मानिये और दयानन्द का केवल चार शाखाओं ही को वेद मानना मिथ्या जानिये क्योंकि निरुक्त कारका यही सद्विचार है जो निरुक्त आपही के लेखानुसार उभय पक्ष को स्वीकार है। छंद हमारे आक्षेपों का तो उत्तर मानलेनाहै। बनाकर बात तुम झूठी नयेगुल क्यों खिलाते हो॥

(शंभुनाथ) कुतर्क १५ दयानन्दमतसूची में से।

(वादी) 'मातृमान' यह वचन कहीं नहीं छांदोग्य में आया। गप्पाष्टकेन विजया पीकर कैसा गप्प उड़ाया॥ संस्कारविधि स० १९३६ पृष्ठ ७१

(प्रतिवादी) मातृमान पितृमानाचार्यवान पुरुषोवेद यह वचन शतपथ ब्राह्मण में उपस्थित है—यदि छापे की अशुद्धि अथवा ग्रंथकार ही की लिखिनी से कार्य बाहुल्य के कारण भूल से शतपथ के स्थान छांदोग्य बनगया तो क्या सिद्धान्त हानि होगई--और आप को ऐसा कटु वचन भी कि विजया पीकर गप्प उड़ाया लिखना योग्य नथा सच्चा यह गप्प ही क्या है इत्यादि।

(उत्तर) शतपथ के स्थान में छांदोग्य लिखाजाना छापे की अशुद्धि कदापि नहीं होसक्ती ग्रंथकार ही की भूल स्वीकार है तो हमारा आक्षेप दयानन्द के गले का हार और आप के गप्पपुराणपर वज्रप्रहार है आपने संस्कारविधि सं० १९३३ के स्थान में सं० १९३६ अशुद्ध लिखा है यह छापे वालों की भूल है वा आपही की अज्ञता है अस्तु हम यह नहीं कहते कि दयानंद के ऐसे अशुद्ध लेखों से अमुक सिद्धान्त हानि होगई किन्तु यह कहते हैं कि दयानन्द सदान अज्ञता उस के लिखे ग्रंथों के पते तक भी सत्य नहीं हैं फिर वेदादि सत्शास्त्रों के वास्तविक अर्थ और सिद्धान्त यथार्थ हों यह कदापि सम्भव नहीं वस्तुतः जिस प्रकार उस के लिखे ग्रंथों के पते अशुद्ध हैं उसी भांति वेदादि सत्शास्त्रों के सिद्धान्त और अर्थ भी ऋषि मुनियों और समस्त विद्वानों के विरुद्ध हैं- हमारी पुस्तकों में इन का वर्णन कहीं संक्षिप्त और कहीं सविस्तार है जिस से दयानंदियों की सर्वत्र हार है- वैदिक लोगों को सब से प्रथम इस एक बात का निर्णय करना चाहिये कि वेद क्या पदार्थ है अर्थात् वेद किस को कहते हैं और संपूर्ण धर्माधर्म रूप विधि निषेध वेद में है वा नहीं—दयानंद का सिद्धान्त इस विषय में सर्वथा अशुद्ध है और समस्त ऋषि मुनि और विद्वानों के विरुद्ध--महाभाष्य में चारों वेदों की ११३१ शाखा (भाग) लिखी हैं

दयानंद ने दूसरी बार के छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ५८७ पर ११२७ वेदों की शाखा लिखकर चार वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ माना है शाखाओं को वेद नहीं माना और जिन चार पुस्तकों को वेद माना है वास्तव में वे भी चार शाखा हैं जब कि दयानंद के मत में शाखा वेद नहीं तो वे चार पुस्तक भी वेद न रहे किंतु उस के पूर्व लेखानुसार वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ ठहरे- तब दयानंद के मत में वेदों का जगत में चिन्ह भी विद्यमान नहीं-फिर उक्त सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ८३ में उस का यह लेख कि वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो इति उस का होना सर्वथा असंभव है क्योंकि वेद ही विद्यमान नहीं तो वेदों के प्रमाण से सब कामों का करना कैसे-यदि केवल उक्त चार पुस्तकों को बलात्कार आपलोग वेद मान भी लें तो उन में संपूर्ण धर्माधर्म विधि निषेध लिखा नहीं-दयानंद ने भी अपनी पुस्तकों में प्रायः जो कुछ लिखा है अपनी कपोलकल्पना वा अन्य पुस्तकों ही के नाम से लिखा है-फिर वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो आप लोग इस आज्ञा का पालन कैसे करसकते हैं कदापि नहीं दयानंद के मतानुसार मुख्य सिद्धान्त की सर्वथा हानि है तो औरों की क्या कहानी है- फिर उक्त सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ [illegible] में ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं दयानंद ने इस स्वकपोलकल्पित सिद्धान्त के निर्णयार्थ लिखा है कि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिस का हो उस के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है-वह ग्रंथ भी उस के जन्म पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं इति-महाशय ! मंत्र भाग दयानंद के माने हुए चारों वेदों में भी ऋषि महर्षि और राजादि के नाम और इतिहास स्पष्ट लिखे हैं-और हमने सनातनधर्म पताका के द्वारा प्रकट किये हैं--अब दयानंद के लेखानुसार। इतिहास जिसका हो उस के जन्म के पश्चात् लिखाजाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं किसी मनुष्यकी संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं। इस लेखसे उनके माने वेद भी वेद न रहे-फिर जब कि आप लोगोंको धर्माधर्म के निर्णय में केवल वेदही प्रमाण हैं और उनका पता नहीं तो आपके समस्तसिद्धान्तों की सर्वथा हानि है जो कुछ कहानी है मनमानी और मनजानी है यहांतक दयानन्दके मुख्य सिद्धान्त की सर्वथा हानि दि-

खाईगई और बुद्धिमानों को भङ्गके समझाईगई- अब नाथजीके उस लेख का कि (आपको ऐसा कटुवचन था कि विजया पीकर गप्प उड़ाया लिखना योग्य न था) उत्तर सुनाता हूं और आपकी को लगाता हूं नाथजी यदि आप (विजया पीकर गप्प उड़ाया) हमारे इस कथन लेख को कटुवचन जानतेहैं और अयोग्य मानते हैं तो दूसरीबारके छपे सत्यार्थप्रकाश में अपने गुरु का लेख देखलीजिये और अपने नम्रहृदयकी बलिहारी कीजिये लिखाहै किसी भंगड़ आदमीने गप्प मारा होगा पृष्ठ ३१०. भांगके कीड़े ने अपना जन्म सृष्टि विरुद्ध कथन करनेमें नष्ट किया पृष्ठ ३३१ देखिये क्याही असंभव कथा का गपोड़ा भंगकी लहरमें उड़ाया पृष्ठ ३३२ -महाशय यदि विजया पीकर गप्प उड़ाया हमारा यह लेख कटुवचन है तो आपके गुरु के वचन कटुतर हैं और बहुत बढ़कर- फिर जिन विद्वानोंके विषय में दयानन्दने उक्तवाक्य लिखे हैं उनका भांग पीना किसी के लेखसे सिद्ध नहीं अतएव उनको ऐसा लिखना अवश्य अयोग्य है और दयानन्दजी का महाभंगड़ी होना तो उनके ही लेख से प्रकट है इसकारण उनके लिये हमारा लेख कदापि अनुचित नहीं- देखो दयानन्दजीवनचरित्र दलपतराय संकलित उर्दू पृष्ठ ५८ । ५९ । ६० इस जगह मुझे भंगपीने का अभ्यास होगया कभी२ उसके कारण मैं सर्वथा बे- होश होजाया करता था एक शिवालय था जहां मैंने उस रात को व्यतीत किया -वहां जब मैं भंग के नशे से बेहोश होकर घोरनिद्रा में सोता था -प्रातः काल एक वृद्धस्त्री गुड़ और दही लेकर आई मैंने उसे खालिया दही खट्टा था भङ्गका नशा उतारने के लिये एक औषधि होगया इति अपने स्वामीका भांग पीना देखिये कि दूसरे दिन दही खाने से नशा उतरा नहीं तो न जाने कबतक बेहोश रहते -आपके गुरु ने उक्तश्रुतिको छांदोग्य की लिखा और वह छांदोग्य में नहीं है उसका वह लेख निःसंदेह गप्प है क्या हठ दुराग्रह ने किया है आपके उर में निवास। लाख समझायें हमारा आप समझेंगे नहीं ॥

(शम्भुनाथ) कुतर्क १६ दयानन्दप्रसूनोंमें से ।

(वादी) दुःख और सुख भोग जीवका जब परतन्त्र बताया । कर्मों के करने में उसको फिर स्वतन्त्र क्यों गाया ॥ स० प्र० पृष्ठ ७१ ।

(प्रतिवादी) वास्तव में जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फलभोग में जग- दीश्वर की न्यायव्यवस्था के अनुसार परतंत्रही है प्रारब्ध का फल भोगने के लिये जो कर्म हम करते हैं वह तो अवश्य ईश्वरप्रेरणा से होते हैं जैसे ने किसी को दुःख दिया और उसका फल दुःख देनेवाले को हुआ।

से यह नियत हुआ कि उसको भी इसीप्रकार दुःख दियाजावे तो जो२ कर्म (पिछले कर्मों का परिणामरूप वह दुःख भोगने के लिये इसजन्म में करेगा या यों कहो कि जो इस जन्म में उसको दुःखदेने का सामान बनेंगे वह तो अवश्य ईश्वर की ओर से समझेजासकते हैं न कि सारे कर्म इत्यादि ।

(उत्तर) महाशय प्रथम तो भूल देखिये आपने हमारे छन्दके अंत में-स० प्र० पृष्ठ ७१ अशुद्ध लिखा है दयानन्दमतमूर्छा में पृष्ठ १०२ तथा २०० छपा है जैसे गुरु वैसेही चेले आपके स्वतन्त्र परतन्त्र विषय को हमने दयानन्दमतपरीक्षा सत्यार्थप्रकाश समीक्षा में वेदादि सत्शास्त्रों के प्रमाण और युक्तियोंसे विस्तारपूर्वक लिखा है वहां जीवको कर्म करने तथा सुखदुःखरूप कर्मों का फल भोगने में सर्वथा अपने पूर्वकर्मानुकूल सम्यक् परतन्त्र (ईश्वराधीन) सिद्ध किया है वहां देखलीजिये यदि भ्रम दूर न हो तो उसका यथार्थ उत्तर दीजिये दयानन्दमतमूर्छा में हमारा इतना ही आक्षेप है कि जब सुखदुःखरूप कर्मों का फल भोगने में जीवको परतन्त्र मानते हो तो कर्मों के करने में उसको स्वतन्त्र क्यों मानते हो सो आप भी मानही चुके कि प्रारब्ध का फल भोगने के लिये जो कर्म हम करते हैं वह तो अवश्य दैवी प्रेरणा से होते हैं इत्यादि और इसपर ही क्या है हां दयानन्दियों को प्रसन्न करके कुछ लाभ उठाना है तो आप की इच्छा है आप का शेष लेख सर्वथा असंगत अयुक्त और अन्यथा है उस का कारण हठ दुराग्रह पक्षपात द्वेष और अज्ञता है आपलोग केवल चार संहिताओं को प्रमाण मानते हो और उत्तर देने के समय शुकसागर तथा कपिलके श्लोकों और अंग्रेज़ों के लेखों से अपना कल्याण जानते हो धन्य छन्द धन्य बुद्धिको तेरी और धन्य विद्या को तेरी । धन्य माताको तेरी और तुझ को प्यारे धन्य है ॥ वास्तव में संपूर्ण जीवोंको उनके पूर्वकर्मानुसार ईश्वर अपनी न्यायव्यवस्था के अनुकूल जैसे२ शरीर और इन्द्रियां देता है जीव उन२ शरीर और इन्द्रियोंके द्वारा वैसे२ ही कर्म करते हैं अन्यथा कदापि नहीं करसकते -मनुष्यों का काम पशुपक्षी और पशुपक्षियों का काम मनुष्यों से कदापि नहीं होसकता -मनुष्य अपने पूर्वकर्मानुकूल ही धनी, निर्धन, विद्वान, अविद्वान ,नीरोग रोगी आदि होते हैं धनी विद्वान और नीरोग आदि को कोई निर्धन मूर्ख और रोगी नहीं करसकते - जब कि शरीर इन्द्रियां धन, विद्या, आरोग्यतादिकी प्राप्ति जीवोंके पूर्वकर्मानुकूल ईश्वराधीन है तो जीव कर्म करने में स्वतन्त्र कहां है किंतु परतन्त्र ही है जीवों को उनके पूर्वकर्मानुकूल जो कुछ सुखदुःखरूप भोगों की प्राप्ति हो-

ती है वह प्रायः किसी न किसी कर्म ही के करने से होती है जिसके पूर्वकर्मानुकूल जो सुख दुःख भोग ईश्वरने नियत कियाहै यदि वह परतन्त्रता से है तो जिसकर्म के करने से उस सुख दुःख की प्राप्ति होगी वह भी अवश्य परतन्त्रता से है क्योंकि यदि जीव वह कर्म न करे तो उस सुख दुःख की प्राप्ति न हो जैसे किसीके पूर्वकर्मानुकूल उसको सदर आला, डिपुटी, तहसीलदार आदि उच्चपदकी प्राप्ति ईश्वरने नियत की है तो उस २ पद के योग्य विद्या पढ़ना आदि कर्मों का करना भी परमात्मा ने उसके लिये अवश्य नियत किया है क्योंकि उन कर्मों के किये विना उक्त पदों की प्राप्ति हो नहीं सकती यदि उक्त पदों की प्राप्ति परतंत्रता से है तो उक्त कर्मों का करना भी अवश्य परतंत्रता से है १ कोई लोग व्यापार और कोई नौकरी कोई शिल्पविद्या से धन प्राप्त कर के सुख भोग करते हैं यदि उनका वह सुख भोग परतंत्रता से है तो उनका व्यापार आदि कर्म करना भी अवश्य परतंत्रता से है २ किसान लोग पृथ्वी को जोतते हैं उस में अन्नादि को बोते हैं उस की वृद्धि और रक्षा के अर्थ पानीदेना आदि और भी कर्म करते हैं तब अन्नादि उत्पन्नहोतेहैं और उनकी प्राप्ति से वे सुख भोग करतेहैं यदि उन का वह सुखभोग परतंत्रतासे है तो पृथ्वी जोतना आदि कर्म भी अवश्य परतंत्रतासे है क्योंकि उक्त कर्मों के विना उनको उस सुखकी प्राप्ति कदापि न होती ३ दरज़ी सुनार लुहार बढ़ई आदि अपने २ कर्म के द्वारा धनप्राप्त करके सुख भोग करते हैं उनका वह सुख भोग उनके पूर्व कर्मानुकूल परतंत्रता से है तो उनका वह २ कर्म जो कि धन प्राप्ति का कारण है वह भी अवश्य परतंत्रतासे है ४ जो लोग चौरी आदि दुष्कर्मों के करने से बंदीगृह वा कालेपानी को जाते हैं तथा फाँसी पाने पर्यन्त दुःखोंको भोगते हैं यदि उनका वह दुःख भोग परतंत्रतासे है तो चौरी आदि दुष्कर्मों का करना भी परतंत्रतासे है क्योंकि उन कर्मोंको न करते तो उन दुःखोंको भी न भोगते सन् १८५७ में जिन लोगों ने सरकार के विरुद्ध कर्म किये उनको कठिनदंडरूप दुःख भोगना पड़ा और जिन्होंने सरकार के हितकारी कर्मोंको किया उनको सरकारने ग्रामादि पारितोपिकदिया जिससे उनको अतिसुख भोग प्राप्तहुआ यदि उनका वह दुःख और सुख भोग परतंत्रता से है तो उनका उक्त कर्म करना भी परतंत्रता से है ५ कोई अपने घर से निकलकर परदेश को चलागया और परदेश में उसको उसके पूर्व कर्मानुकूल सुख वा दुःख की प्राप्तिहुई यदि वह परतंत्रता से है तो उसका निकलजाना आदि कर्म भी अवश्य परतंत्रता से है—दयानंदजी ने अपने घरसे निकलकर

चिरकाल पर्यन्त नाना प्रकार के दुःख भोग जो कि उनके जीवन चरित्र से प्रकट हैं यदि वह अपने घर से न निकलते और वन पर्वतों में न फिरते तो उन दुःखों को कदापि न भोगते फिर जब उन्होंने वन से आकर गंगाजी के निकट २ फिरना प्रारंभ किया केवल लंगोटी और एकगाढ़े की चादर पास थी भीखमाँगकर रोटीखाते थे फिर नगर २ फिरकर अपने मतका उपदेश करने लगे तो ऐसा ऐश्वर्य बढ़ा कि चादर और दुशाले ओढ़नेलगे निवार के पलंगपर पौढ़नेलगे—रसोइया उत्तमोत्तम भोजन बनानेलगा कहार हाथ पाँव धुलवाने लगा-कोठी और बंगलों में निवास हुआ हुक्का और चाय पीने का अभ्यास हुआ—पान चबाने लगे मुस्कराने लगे शरद ऋतु में पुष्टि कारक पाकादि बनवाये दुग्ध और घृतमय भोजन भोग लगाये सहस्रों रुपया भेट पूजा में आनेलगा-और सहस्रों छापेखाना कमाने लगा निदान उनका यह सुख भोग परतंत्रता से है तो नगर २ में जाकर अपने मतका उपदेश करना पुस्तक बनाना आदि समस्त कर्म भी अवश्य परतंत्रता से है यदि वे वनही में रहते तो इन सुखों का भोग कदापि संभव नथा उन के उपदेशों से जोकुछ धर्म की हानिहुई कभी नहोती जोकुछ अधर्म और रागद्वेष बढ़े कदापि न बढ़ते ६ कोई किसीप्रकार के क्लेशों से विष खाकर कोई कूपादि में डूबकर मरण पर्यन्त दुःखों को भोगता है यदि उसका वह दुःख भोग परतंत्रता से है तो विषपानादि कर्म भी अवश्य परतंत्रता सेहै ७ कोई वृक्ष वा घोड़े आदिपर से गिरकर महान दुःख को भोगता है यदि उसका वह दुःख भोग परतंत्रता से है तो वृक्षादि पर चढ़ना आदि कर्म भी अवश्य परतंत्रता हीसे है ८ प्रायः रेलके टकराने वा नावके डूबने से मनुष्यादि को नानाप्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं यदि उनका वह दुःखभोग परतंत्रता से है तो उनका उसरेल वा नाव में बैठना और रेलके टकराने वा नाव डूबने के कारणों का होना भी अवश्य परतंत्रता हीसे है ९ जिसके प्रारब्ध में परमात्मा ने पुत्रोत्पत्ति का सुख नियत किया है यदि वह स्वतंत्रता का अभिमानी यह कहै कि मैं विवाह और स्त्री प्रसङ्ग कदापि न करूंगा मरण पर्यन्त ब्रह्मचर्यही से रहूंगा तो उसका कथन निष्फल होगा परमात्माही का नियत करना प्रबल होगा सो जबकि उसको पुत्रोत्पत्ति का सुख परतंत्रता से स्वीकार है तो उसको विवाह और स्त्री प्रसङ्ग आदि कर्म करना भी परतंत्रता से आवश्यक और बलात्कार है यदि आप कहैं कि हमारे मत में ११ पुरुषों तकसे संतानोत्पत्ति कराने की आज्ञा है हम किसी से नियोग

करायँगे और पुत्रवान होजायँगे हमारी स्वतंत्रता से ब्रह्मचर्य अचल होगा—और परतंत्रता से पुत्रोत्पत्ति सुखरूप फल सफल तो हमारा कथन औरस-पुत्रके विषय है आप नियोग से पुत्रोत्पन्न करायँगे तो वे औरस न कहायँगे परतंत्रताही प्रबल रहेगी और आपकी स्वतंत्रता सर्वथा निष्फल १० जिस कन्या के प्रारब्ध में उसके पूर्व कर्मानुकूल ईश्वर ने बाल्यावस्था में विधवा होना नियत किया है यदि उसका पति मरणरूप दुःख भोग परतंत्रता से है तो उसके माता पिता आदि का उसका उस काल में विवाह करना भी अवश्य परतंत्रता से है ११ पांडवों का तेरह वर्ष पर्यन्त व-नादि में रहकर महान दुःख भोगना परतंत्रता से है तो श्री महाराज युधिष्ठिर का द्यूत आदि कर्म करना भी अवश्य परतंत्रता से है-भारत के घोर संग्राम में सहस्रों को पुत्र पौत्रादि के मरण का दुःख हुआ. सहस्रों विधवा हुई सहस्रों के प्राण गये यदि वह सब परतंत्रता से है तो दुर्योधन का पांडवों से द्वेष करना और श्रीकृष्ण महाराज के समझाने पर भी संधि को न मानना अवश्य परतं-त्रता से है-यदि कौरव और पांडव स्वतंत्र होते और परस्पर प्रीति से रहते तो इस प्रकार भारत का सत्यानाश कदापि न होता-परन्तु ईश्वर के न्यायानुकूल जैसा होना था वैसाही हुआ भीष्म पितामहादि परम विद्वानों की भी कुछ न चली किसी ने भी इस महा उपद्रव की शांति कराने में स्वतंत्रताका अभिमान न किया सबने यही कहा कि अवश्य नाश होनाहै परतन्त्रप्रधानं न च कामकारी यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि इत्यादि हमने अनेक वचन महाभारत से पूर्ण परतंत्रता द्योतक दयानंद मत परीक्षा सत्यार्थप्रकाश समीक्षा में लिखे हैं शास्त्र के वचनों को मानना वा विपरीत जानना इस में भी कोई स्वतंत्र नहीं किंतु संपूर्ण जीव कर्म करने तथा सुख दुःख भोगने में अपने पूर्व कर्मानुकूल सर्वथा परतंत्रही हैं १२ मुसल्मानों के राज्य में प्रजा को नाना प्रकार के दुःखों का भोग हुआ और अंग्रेजों के राज्य में शांति - के सुखों की प्राप्तिहुई यदि उक्त दुःख और सुख भोग उक्त प्रजाके पूर्वकर्मानुसार परतंत्रता से है तो मु-सल्मानों का अन्याय करना और अंग्रेजों का न्यायकारी दयालु तथा प्रजा पालक शुभगुणों वाला होनाभी अवश्य परतंत्रता से है क्योंकि ऐसा न होतातो जिन २ के प्रारब्ध में ईश्वर ने दुःख वा सुख भोग नियत किया उनको उसकी प्राप्ति कैसे होती १३ पथिक लोग जबमार्ग में चलते २ क्षुधा पिपासा गर्मी आदि से अति पीड़ित होजाते हैं तब जहां कहीं जलाशय और छाया आदि को सुखदेखतेहैं ठहर जातेहैं उनको वहां शीतलवायु लगने स्नान भोजन शयनादि

करनेसे अतिसुख प्राप्त होताहै यदि वे वहां न ठहरें और निरंतर चलेही जायँ तो उक्त सुखकी प्राप्ति तो क्या किंतु और अधिक दुःखकी प्राप्ति हो यदि उन को उस सुख की प्राप्ति परतंत्रता से अवश्य है तो उनका वहां ठहरना आदि सब कर्म भी परतंत्रता से अवश्य है-धनी लोग सायंकाल को जंगल में हवा खाने वा बागों की सैर करने को जाते हैं-कोई २ ग्रीष्मकाल में नैनी ताल आदि शरद देशों में जा निवास करते है उनको वहां अतिसुख प्राप्त होता है यदि वे वहां न जायँ तो उस सुख की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती यदि उन का वह सुख भोग परतंत्रतासे है तो उनका उक्त स्थानोंमें जाना आदि कर्म भी अवश्य परतंत्रतासे है १४ कहांतक कहें उठना बैठना खाना पीना सोना जागना आदि जितने कर्म होते हैं सब अपने पूर्व कर्मानुसार ईश्वराधीन परतंत्रताहीसे होते हैं क्योंकि प्रत्येक कर्म से कुछ न कुछ सुख वा दुःख की प्राप्ति अवश्य होती है प्रायः देखा जाता है कि हम अपने स्थान में बैठे हैं लघुशंका वा और किसी कार्य को उठे दीवार वा किवाड़ चौखट आदि से हाथ पाँव में कुछ चोट लगगई वा पांव में काँटा ककड़ी आदि लगकर कुछ दुःख हुआ यदि न उठते तो वह दुःख कदापि न होता-अपने अनुकूल उत्तम भोजन से सुख और प्रतिकूल निकृष्ट भोजनसे दुःख होना ही है—ग्रीष्मकाल में शरद जलपान करने से कैसा आनंद होता है इत्यादि यहांतक संक्षेप से युक्ति पूर्वक यहबात सिद्ध कीगई कि जीव सुख दुःख भोग में परतन्त्र है तो कर्म करने में भी अवश्य परतन्त्र है अतएव दुःख और सुख भोग जीवका जब परतन्त्र बताया कर्मोंके करने में उसको फिर स्वतंत्र क्यों गाया॥ दयानन्द पर हमारा यह आक्षेप सर्वथा बलवान है और जीवों को कर्म करने में स्वतंत्र मानना पूर्ण नास्तिकता और अज्ञान-कौशीतकि उपनिषत् में लिखा है-एषह्येव साधु कर्म कारयति तंयमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषतएषउएवा साधुकर्म कारयति तंयमधोनिनीषते। अर्थात् वही (परमात्मा अच्छे कर्म कराता है उसको कि जिसको इन लोकों से ऊपर लेजानेकी इच्छा करताहै और वही बुरेकर्म कराताहै उसको कि जिसको नीचेलेजानेकी इच्छा करताहै॥ सनातनधर्मावलम्बी धर्म जिज्ञासु सत्पुरुषोंको उपनिषत् का एकही वचन परम प्रमाण है सत्यके ग्रहण और असत्यकेत्याग ही में कल्याण है—श्रीवेदव्यास महर्षि ने भी जीवको सर्वथा परतंत्र ही माना है कर्मों के करने में स्वतंत्र कहने को अशुद्ध और युक्ति विरुद्ध जाना है तथाहि-परात्तुतच्छ्रुतेः-कृतप्रयत्नापेक्षस्तु- उत्तरमीमांसा अ० २ पाद ३ सू० ४१। ४२ उक्त सूत्रोंपर भाष्यकारों ने सम्यक् व्याख्या की है हमने विस्तार भय

से नहीं लिखीहै सत्यके निर्णय की इच्छा होतो वहां देखलीजिये और अपने नास्तिकता रूप अज्ञान को शीघ्र दूर कीजिये अब दयानन्द ही के पुस्तकों से जीवका कर्म करने में सर्वथा परतंत्र होना सिद्ध कियाजाता है और दयानन्दियों को मातपर मात दियाजाता है देखो सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४ (ईश्वर) सर्वान्तर्यामी–सर्व नियंता पृष्ठ १८१–हेदयानिधे ! आप की कृपा से मेरा मन जगत् में दूर २ जाता दिव्यगुण युक्त रहता है और वही सोतेहुए मेरामन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर २ जानेके समान व्यवहार करता सब प्रकाशकों का प्रकाशक एक वह मेरा मन शिवसंकल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का संकल्प करने हारा होवे किसीकी हानि करने की इच्छा युक्त कभी नहोवे ॥ ३ ॥ हे सर्वान्तर्यामी ! जिससे कर्म करनेहारे धैर्ययुक्त विद्वान लोग यज्ञ और युद्धादि में कर्म करते हैं जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त पूजनीय और प्रजा के भीतर रहने वाला है वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़देवे ॥ ४ ॥ जो उत्कृष्ट ज्ञान और दूसरे को चितानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है और जो प्रजाओं के भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है जिसके विना कोई कुछभी कर्म नहीं करसकता वह मेरा मन शुद्धगुणों की इच्छा करके दुष्टगुणों से पृथक्रहे ॥ ५ ॥ हे जगदीश्वर जिससे सब योगीलोग इन सब भूत भविष्यत् वर्त्तमान व्यवहारों को जानते जो नाशरहित जीवात्माको परमात्मा के साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है. जिस में ज्ञान क्रिया है पांच ज्ञानेंद्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है उस योगरूप यज्ञको जिस से बढ़ाते हैं वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर विद्यादि क्लेशों से पृथक् रहै ॥ ६ ॥ हे परमविद्वन् परमेश्वर ! आप की कृपासे मेरे मन में जैसे रथ के मध्य धुरा में आरा लगेरहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और जिस में अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सर्वज्ञ सर्वव्यापक प्रजा का साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्याका अभावकर विद्याप्रिय सदा रहै ॥ ७ ॥ हे सर्वनियन्ता ईश्वर ! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथी के तुल्य मनुष्यों को अत्यन्त इधर उधर डुलाता है जो हृदय में प्रतिष्ठित गतिमान और अत्यन्तवेगवाला है वह सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकके धर्मपथ में सदा चलाया करै ऐसी कृपा मुझपर कीजिये ॥७॥ पृष्ठ १८४।१८५। हे परमात्मन् ।

आप हम को श्रेष्ठमार्ग से संपूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हम मे कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है उससे पृथक् कीजिये–आप हमारे छोटे बड़े जिनगर्भ माता पिता और प्रियबन्धुवर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये ऐसे मार्ग से हम को चलाइये जिससे हम आपके दण्डनीय न हों ॥ १ ॥ आप हम को असन्मार्ग से पृथक्कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये अविद्यान्धकार को छुड़ाके विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये पृष्ठ १८५ । १८६ । (परमेश्वर) जीवों को नियम में रखता है । पृष्ठ १९६ संस्कारविधि मुद्रित संवत् १९३३ परमेश्वर बृहस्पति जो सबसे बड़ा सो मेरे पास तुझ को नियुक्त करदे पृष्ठ ५६ हमारा इष्ट उपास्यदेव हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करै सद्विद्या, सत्कर्म, सत्संग, सद्धर्म, सद्वस्तु परमात्मा इत्यादि उत्तम कामों में सब दुष्टता से छुड़ा के स्थिर करै पृष्ठ ६५ परमात्मन् । ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन तथा पूर्त्ति करानेवाले आप ही हो पृष्ठ ६९. हे इन्द्रपरमात्मन् ! इन स्त्री पुरुष दोनों को प्रेरणाकर पृष्ठ ११३ सब इष्टकर्म हम से करावै सब कामों की सिद्धि और वृद्धि करै पृष्ठ ११८ जो परमात्मा सब को व्यवस्था में रखनेवाला–हमारे मन को भद्र व्यवहार में चला पृष्ठ १४७ परमेश्वर ! जो हमारे शत्रु उत्पन्न होयँ उनको तू प्रेरणा कर जिससे वे वैर छोड़दें तथा हम भी पृष्ठ १४८ आर्याभिविनय मुद्रित संवत् १९१२ उत्तम कामों में प्रेरक दुष्ट कामों से निरोधक आप हमारे होयँ पृष्ठ १२ हे ईश्वर हमको सब दुष्टकामों से सदा पृथक् रख हम को अधर्म करने की इच्छा भी न होय पृष्ठ ३० हेसहनशीलेश्वर ! आप की कृपा से हमलोग सदैव आप की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना करें आप को ही पितामाता वन्धु राजा स्वामी सहायक सुखद सुहृद परमगुर्वादि जानें आपको भूल के क्षणमात्र भी न रहें–आपके अनुग्रहसे सब हमलोग परस्पर प्रीतिमान् रक्षक सहायकारक होयँ एक दूसरे को दुःख न देखसकें स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान् पाखण्डरहित करें हमलोग नाना पाखण्ड असत्य वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्य सनातनमतस्थ होयँ–हे विश्वगुरो ! मुझ को असत् (मिथ्या) और अनित्यपदार्थ तथा असत् कामसे छुड़ा के सत्‌तथानित्य पदार्थ और सद्व्यवहारमें स्थिर कर–ज्ञान पूर्वक पाप करनेसे भी मुझको रोकदे–हेन्यायाधीश ! कुकाम कुलोभ कुमोह भयशोकालस्येर्ष्याद्वेषमद विषयतृष्णानैष्ठूर्याभिमान दुष्टभावा विद्याभ्यो निवारय एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषुगुणेषु संस्थापयतुमां हेईश्वर ! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को स्वकृपा से छुड़ाके

श्रेष्ठकामादि में यथावत् मुझ को स्थिर कर पृष्ठ ३६। ३७। ३८। सब के मनका दमन करनेवाला है पृष्ठ ३९ हे दुष्टस्वभावनाशक विदीर्ण कर्म में विज्ञानादि शुभ गुणों का नाश करनेवाले में मुझको मत रख किंतु उससे मेरे आत्मादि को उठाके विद्या सत्य धर्मादि शुभ गुणों में सदैव स्वकृपा सामर्थ्य से ही स्थिर कर ॥ पृष्ठ ४० ॥ हे दुष्टानामुपरिक्रोधकृत् मुझ में भी दुष्टोंपर क्रोध धारण करा मुझमें भी आप सहन सामर्थ्य धारण कर पृष्ठ ४४ सर्वोत्तम बुद्धि हम को आप दीजिये पृष्ठ ४५ परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी २ चालपर चलारहा है—सो आत्मा का भी आत्मा है पृष्ठ ४६ हम लोगोंको भी कृपा से धर्मात्मा कर—निर्वैर कर पृष्ठ ५६ मेरा मन सदा धर्म कल्याण संकल्पकारी हो आपकी कृपा से हो कभी अधर्मकारी न हो वह मन—आपके वशमें ही है सो उसको आप हमारे वश में यथावत् करें जिस से कुकर्म में कभी न फसे सदैव विद्या धर्म और आपकी सेवामें ही रहै पृष्ठ ६७ दयानन्द कृत यजुर्वेदभाष्य वही ईश्वर उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये कर्म करने और करानेवालों को नियुक्त करता है पृष्ठ १९ अच्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा करानेवाला जगदीश्वर है पृष्ठ २२८ जो अन्तर्यामी सब सुखों का देनेवाला है वह अपनी करुणा करके हम लोगों की बुद्धियोंको उत्तम २ गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे पृष्ठ २३५ परमेश्वर जीवोंको दुष्ट मार्गों से अलग और धर्ममार्ग में स्थापन करके इस लोक के सुखों को उनके कर्मानुसार देता है—पृष्ठ ४५३ मेंसर्वप्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये—पृष्ठ ५५६ हे सुखके देनेहारे सत्यकर्मों में प्रेरक जगदीश्वर पृष्ठ २०८३ (परमेश्वर) हम को शुभ गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे। हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हम को प्रेरणा करता है कि जिसके सहाय से ही हम लोग धर्म अर्थ काम और मोक्षों के सिद्ध करने को समर्थ होसकते हैं अध्याय ३६ पृष्ठ ११२३—आप हम लोगों से कुटिलतारूप पापाचरण को पृथक् कीजिये—ईश्वर पापाचरण मार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चलाके विज्ञान देके धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिये समर्थ करता है—अध्याय ३६ पृष्ठ १२८७ दयानंद ही का इत्यादि लेख जो कि वेदमंत्रों का उलथा है जीवों को कर्म करने में सर्वथा परतंत्र अर्थात् अपने पूर्वकर्मानुसार ईश्वराधीन सिद्ध करता है अतएव उन्होंने जो दूसरीबार के छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १०२ तथा ५९० में यह लिखाहै

कि जीव अपने कामों में स्वतन्त्र उनका वह लेख उनही के विरुद्ध है और वेदादि सत्शास्त्रों तथा समस्त विद्वानोंके प्रतिकूल होने से सर्वथा त्याज्य और अशुद्ध है फिर उक्त सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १६२ में लिखा है।

प्रश्न—स्वतन्त्र किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिस के आधीन शरीर प्राण इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों इति कहिये शरीर प्राण इन्द्रियादि जीव के आधीनहैं वा जीव के पूर्व-कर्मानुसार ईश्वराधीन—यदि शरीर प्राणइन्द्रियादि जीव के आधीन हों तो कोई कभी रोगग्रस्त न हो और न कभी मरे छन्द—दयानन्दका लेख निर्मूल है। कहां शिष्टपुरुषोंके अनुकूल है ॥ दयानन्दकी सर्वथा भूलहै। असङ्गत है और वेद प्रतिकूल है ॥ असत्को आप सत् समझे अजी सत्को मृषा समझे। बुरा समझे बुरा समझे जो कुछ समझे बुरा समझे ॥ मेरे कथन की पुष्टि शत्रुने आप की है। लाखोंमें आज बाज़ी हमने रिपुसे लीहै ॥ अब हम को इसविषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहींहै कि जीवों को कर्म करने में स्वतन्त्र मानना दयानन्दहीके लेखों से सच्चा नही है आप अपने स्वामी से लड़िये और दिल खोलकर झगड़िये कि तूने हम को झूटा बनाया है और असन्मार्गपर चलाया है जगन्नाथदास के साक्षी वेदमंत्र हैं कि—जीव सर्वथा परतंत्र हैं सत्यको शिरपर धारिये अनृतपर लात मारिये सत्य से जय है और अनृत से भय सत्यमेवजयतेनानृतम् ॥ छंद—झूट का पक्ष करके झूटा ही तू कहाया। सच तो बता कि तूने लाभ इस से क्या उठाया ॥ तू जानता है मन में गप्पाष्टक की माया। फिर बुद्धिपर ये तेरी अज्ञान कैसा छाया ॥ पुस्तक पै नाम तेरा किसने मृषा छपाया। दोष अपनी अज्ञता का तुजपर वृथा लगाया ॥ कर सत्य ग्रहण अब भी सत्शास्त्र में जो गाया। होकर हितैषी तुज को मैंने यह कह सुनाया ॥ परमात्मा के अनुग्रहसे यह ग्रंथ समाप्त हुआ मिथ्या भाषियों को दुःख और सत्याभिलाषियों को सुख प्राप्त हुआ छन्द—काटने को मत दयानन्दी के है यह इन्द्रवज्र। टुकड़े २ होगया है देखलो शंभुकुठार ॥ लोक और परलोक में सुख सत्यभाषण ही से है। सत्य की जय है सदा अनृतकी है सर्वत्र हार ॥

दोहा—सिद्धि प्राणनिधि चन्द्रमा, विक्रमाब्द पहिचान।
शुक्लपक्ष आषाढ ऋषि, पूर्ति ग्रंथ की जान ॥

रेमूर्ख भजनकर भगवत् का यह काल भलाही पाया है॥ था उदय तेरेशुभ कर्मों का जो मिली मनुजकी काया है ॥ १ ॥ अबहुआ विमुख क्यों कर्त्तासे किसने तुझको बहकाया है॥ हैं काम तेरे सब उलटेही क्या भांगधतूरा खाया है ॥ २ ॥ क्यों अन्यदेवका भक्तबना क्यादिल में तेरे समाया है ॥ निर्भय होगया निरंजन से जिसने यह जगत् बनाया है ॥ ३ ॥ क्या धर्म लोप जी ने अपनी माया का जाल बिछाया है ॥ धनहरण हेतु बहुकपट किये सत् पथका चिन्ह मिटाया है ॥ ४ ॥ एक स्त्रीको दशपुरुषों से जिसने नियोग बतलाया है ॥ करदिया धर्मका नाश हाय व्यभिचार कर्म फहलाया है ॥ ५ ॥ पहले मुरदों का श्राद्ध आप विस्तार सहित छपवाया है ॥ फिर वेद विरुद्ध कहा उसको अज्ञान है यह या माया है ॥ ६ ॥ खाकरकेमांसपराये को जिसने निज मांस बढ़ाया है ॥ परलोक विगाड़लिया उसने पापों का पुंज कमाया है॥ ७॥ जिह्वाका स्वादमनाने को जीवों को वृथा सताया है ॥ कलपायाजायेगा तूभी जो दीनोंको कलपाया है ॥ ८ ॥ पीकरके मद्यभला प्यारे कह किसने लाभ उठाया है ॥ सबनेही जिसै कहानिंदित तू क्यों उसपर ललचायाहै ॥९॥ जिसने परधन परनारी में मनको क्षणमात्र चलाया है ॥ रौरव में अपने रहनेको घर उसने आप बसाया है ॥ १० ॥ श्री ब्रह्मादिक सत्पुरुषोंको क्यों मिथ्या दोष लगाया है । करके निन्दा निज शिष्टोंकी अपना ही हास्य कराया है ॥ ११ ॥ उपनयन कर्मको त्यागदिया कंठीसे गला बंधाया है ॥ होगयाबाह्य द्विज कर्मोंसे हा वृथा व्रात्य कहलाया है ॥ १२ ॥ ब्रह्मा के द्वारा वेदों को जिसने हम तक पहुंचाया है ॥ है एक उपास्य वही सबका इत उत क्यों मन भटकाया है ॥ १३ ॥ ले जगन्नाथ जगदीश शरण जो सकल विश्व में छाया है ॥ गुरु इन्द्रमणी ने बार २ तुज को यही मंत्र सुनाया है ॥ १४ ॥

फंसा है जाल में पक्षी ख़ुशी तू क्या मनाता है ॥ पड़ेंगी बेड़ियां भारी अभी (निकट) वह काल आता है ॥ १ ॥ हुआ है काम के वश में बढ़ी है क्रोध की ज्वाला ॥ नदी में लोभ और मोह की तू क्यों मन को बहाता है ॥ २॥ जगत्में प्रीति कर बैठा विमुख होकर निरंजन से ॥ सुधा को छोड़ कर प्यारे वृथा (भला) क्यों विष को खाता है ॥ ३ ॥ करे क्या दर्प परिजन का बने हैं सुख के सब साथी ॥ पृथक् जब प्राण हों तन से न कोई साथ जाता है ॥ ४ ॥ लगा मन ब्रह्म से निश दिन जो भव सागर तरा चाहे ॥ नहीं परलोक में रक्षक पिता सुत बंधु भ्राता है ॥ ५ ॥ धनी को धन नहीं देना न देना क्रूर कर्मी को ॥ दरिद्री और सत्पुरुषों को धन

देना वढ़ाता है ॥ ६ ॥ प्रथम सम सृष्टि के जिसने दिये हैं वेद ब्रह्मा को ॥ वही अव्यय स्वभक्तों को चतुष्फल का प्रदाता है ॥ ७ ॥ किसी प्राणी को तन मन से कभी मत दुःख दो किंचित् ॥ न पावैगा कभी सुख वह जो औरों को सताता है ॥ ८ ॥ वृथा क्यों दोष देता है किसी को दुःख में अपने ॥ समझ ले कर्म का अपने ही तू सुख दुःख पाता है ॥ ९ ॥ प्रणव का ध्यानकर मन से जगन्नाथ अपने तू सम्यक् ॥ वही है मुक्ति का दाता कि जो सब का विधाता है ॥ १० ॥

अरे मन काल खड़ा ललकारै शिर पर ॥ ध्रु ॥ उत्तम अधम कोई नहीं रहता जब आ मृत्यु पुकारै ॥ रहे कहां वे नृप थीं जिन कै अक्षौहिणी अठारै ॥ १ ॥ जिस दिन बजे कूच का बाजा आपही आप सिधारै ॥ केवल धर्म मित्र हो तेरा तू उस को क्यों मारै ॥ २ ॥ परधन हरण करै जो कोई पर अप्रिय विचारै ॥ निज परलोक विगाड़ैं तीनों जो परदार निहारै ॥३॥ वेद विरुद्ध मिथ्या जालों में काहें को शिर मारै ॥ परब्रह्म की शरणागत हो वहि भवपार उतारै ॥ ४ ॥ जगन्नाथ जगदीश हेतु जो निजतनमन सववारै ॥ मृत्यु पाश कटजां सब उस के सदा रहै पौ बारै ॥ ५ ॥

दिल रँगा जिसने नहीं कपड़े रँगाये क्या हुआ ॥ सत् असत् जाना नहीं पंडित कहाये क्या हुआ ॥१॥ है जगत् का ईश जो उसपर न दृढ़ विश्वास है ॥ आर्यों में नाम की गणना कराये क्या हुआ ॥ २ ॥ वेद के अनुकूल जो करते नहीं आचार आप ॥ ऋग् यजुः और साम के लेक्चर सुनाये क्या हुआ ॥ ३ ॥ है जगत् का एक स्वामी रूप से वह है रहित ॥ और को उस के सिवा मस्तक निवाये क्या हुआ ॥ ४ ॥ वेद के अनुकूल जो कुछ शास्त्र हैं सो सत्य हैं ॥ तद्विरुद्ध और वाह्यमत लाखों चलाये क्या हुआ ॥ ५ ॥ वश किया दश को नहीं एक क्रोध की अग्नि है तीव्र ॥ भस्म को धारण किये और कच वढ़ाये क्या हुआ ॥ ६ ॥ मांस को छोड़ा नहीं और मद्य के मद में हैं मग्न ॥ लेकै माला हाथ में दाने फिराये क्या हुआ ॥ ७ ॥ अन्न को त्यागा जिन्होंने बन में खांय कन्दमूल ॥ जाना न ब्रह्मानंद को तो तन सुखाये क्या हुआ ॥ ८ ॥ तीन वर्णों के लिये उपनीत का उपदेश है ॥ छोड़कर सद्धर्म को कंठी बंधाये क्या हुआ ॥ ९ ॥ लोभ वा भय से करैं मिथ्या कथन जो रात दिन ॥ लोक दर्शन के लिये आसन विछाये क्या हुआ ॥ १० ॥ हो जिसे शक्ति करैं दुष्टों का मर्दन क्यों नहीं॥

जो कि निर्बल आप हैं उन के सताये क्या हुआ ॥ ११ ॥ जिसने मा और बाप का आदर किया सम्यक् नहीं ॥ दूसरों को धन दिया लड्डू खिलाये क्या हुआ ॥ १२ ॥ दान दो विद्वान् को या दीनजन हो जो कोई ॥ मूर्ख और धनवान को धन के झुकाये क्या हुआ ॥ १३ ॥ सृष्टि की आदि में ईश्वर ने दिये ब्रह्मा को वेद ॥ अग्निवायु की कथा झूटी सुनाये क्या हुआ ॥ १४ ॥ व्यास ने वेदों से लिक्खा मुक्त को बंधन नहीं ॥ तुमने झूटे और मिथ्या गीत गाये क्या हुआ ॥ १५ ॥ शोक है विद्वान् को जामातु की सदृश कहो ॥ नष्ट बुद्धि ने नये नाते सुझाये क्या हुआ ॥ १६ जैनियों ने विष दिया शङ्कर को यह भी झूट है ॥ दोष यूं निर्दोषको झूटे लगाये क्या हुआ ॥ १७ ॥ वेद की व्याख्या में बकरे का लिखें जो दूध घी ॥ ऐसे अज्ञानी भी अवज्ञानी कहाये क्या हुआ ॥१८॥ वृद्धि सांपों की जो चाहो खोई है बुद्धि कहां ॥ स्वामीजी ने काम सब उलटे कराये क्या हुआ ॥१९॥ हूं जगत् के नाथ का मैं दास तनमन से सदा ॥ दास जो उसका नहीं तो जन्म पाये क्या हुआ ॥ २० ॥ इन्द्रमणि गुरु की कृपा से जिसने पाया सत्यज्ञान ॥ मूर्खों ने तीर यदि उसपर चलाये क्या हुआ ॥ २१ ॥

शुद्धि पत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२४	दयालु	कृपालु
३	२६	दयालु	कृपालु
१३	१	जात	जाते
१६	१३	मनवाले	मतवाले
२९	२९	भटिति	झटिति
२९	१८	सहस्त	सहस्र
३०	२४	शुभाशु	शुभाशुभ
३०	२६	प्राप्ति	प्राप्ति
३१	१०	दुःष्वप्न्यः५	दुःष्वप्न्यं५
३८	९	याद	यदि
४५	५	विरुद्ध	विरुद्ध

यह शुद्धिपत्र संक्षेपसे लिखागया शेष अशुद्धियों को बुद्धिमान् लोग आप समझलेंगे ।

विज्ञापन ।

मुरादाबाद निवासी जिन महाशयों ने दयानन्दखण्डन की पुस्तकों के छपवाने और विक्रय करके फहलाने को स्वधर्म रक्षार्थ चन्दालिखा और देदिया उनके नाम धन्यवाद सहित प्रकाशकरते हैं और जिन महाशयों ने लिखदिया है परन्तु उन से अभी लिया नहीं गया जिस समय लेलियाजायगा उनके नाम तब प्रकट करेंगे तथा और भी जो स्वधर्म रक्षा के उत्साही इस धर्म कार्य में चंदादेंगे उनके नामभी धन्यवाद सहित प्रकट किये जायँगे सम्पूर्ण सनातनधर्मावलंबियों से निवेदन है कि वे अपने २ नगर में सौ २ पचास २ रुपया चंदे से एकत्र करके हमारी दयानन्द खण्डन की छोटी २ पुस्तकें नागरी और उरदूकी आप छपवावें और अनुमान लागतपर विक्रय करके सर्वत्र फहलावें यदि विना मूल्य बांटें तो और भी उत्तम है जो महाशय हम से दश २ पांच २ रुपये की पुस्तकें मँगाकर धर्मार्थ बाँटेंगे वे भी धर्म के सहायक समझे जायँगे इससमय दयानंदीलोग धर्म को सर्वथा नष्ट भ्रष्ट कररहे हैं अतः उनके खण्डन की पुस्तकों का सर्वत्र फहलाना अति पुण्यजनक लाभदायक और आवश्यक है जिस से सम्पूर्ण को सत्यासत्यका सम्यक् निर्णय होजाय और कोई शास्त्रविरुद्ध बातों में फँसकर अपने धर्म से पतित नहो इत्यलम् ।

जिन से चन्दा आगया उनके नाम ये हैं—

लाला सांवलदास खत्री २०, रुपया
लाला गणेशीलाल अग्रवाल १०, रुपया
बाबू जगमोहनलाल रईस १०, रुपया
लाला ललिताप्रसाद कसेरे ५, रुपया
लाला गनेशीलाल रस्तोगी खण्डशाली ५, रुपया
लाला हीरालाल रस्तोगी खण्डशाली ५, रुपया
लाला रतनलाल खत्री आढ़ती ५, रुपया
लाला ताराचन्द तमोली ५, रुपया
लाला मिसरीलाल कसेरे ५, रुपया
जगन्नाथदास रस्तोगी १०, रुपया

जगन्नाथदास
दीनदारपुरा मुरादाबाद

ओम्

॥ परमात्माजयति ॥

दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य की समीक्षा ।

मुरादाबाद निवासी

जगन्नाथदास सङ्कलित

श्रीयुत शिवलाल गणेशीलाल के
"लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय में
छपवाकर प्रकाशित किया.

मुरादाबाद

सब सज्जन धर्मात्मा पुरुष इसको छपवावें
और देश देशान्तर में फैलावें

ओम्

॥ परमात्माजयति ॥

दयानन्द के यजुर्वेदभाष्यकी

समीक्षा ।

दयानन्द सरस्वतीने अपने यजुर्वेद भाष्यके प्रारम्भही में मंगलाचरणरूप दो श्लोक ईश्वर स्तुति तथा भाष्य प्रारम्भ कालके वर्णन और यह भाष्य शतपथ निरुक्तादिके प्रमाणों से युक्त होगा इस अभिप्राय के लिखे हैं फिर विश्वानिदेव० यह श्रुति और पृष्ठ २ में चार दोहे लिखे हैं इसके उपरान्त प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भ में विश्वानिदेव० यह श्रुति लिखी है और दूसरीवारके छपे सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ २६ में मंगला चरणका खण्डन किया है धन्य प्रथमही अपने मतके विरुद्ध आचरण ॥

पृष्ठ २ विक्रमके संवत् १९३४ पौष सुदी १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेदके भाष्य बनाने का आरम्भ किया ॥

पृष्ठ ३ ऋग्वेद के भाष्य करनेके पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्र भाष्यका आरम्भ कियाजाता है—दयानन्दजीका यह लेख (कि ऋग्वेद के भाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेदके मन्त्रभाष्य का आरम्भ कियाजाता है) सर्वथा मिथ्या है क्योंकि उन्होंने अपने ऋग्वेद भाष्यके पृष्ठ ६ में लिखा है कि संवत् १९३४ मार्ग शुक्ल ६ भौमवारके दिन संपूर्ण ज्ञानके देनेवाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करताहूं इति—अब बुद्धिमान्लोग वि-

चार करें कि ऋग्वेद भाष्यका प्रारंभ संवत् १९३४ मार्गशुक्ल ६ को और यजुर्वेद भाष्यका आरंभ संवत् १९३४ पौष सुदी १३ को हुआ अर्थात् दयानंदजीने जिस दिन ऋग्वेद भाष्य का आरंभ किया उससे सवामहीनेके उपरान्त यजुर्वेद भाष्य का प्रारंभ करदिया क्या कोई बुद्धिमान् स्वीकार करसक्ता है कि स्वामीजीने सवा महीने में सम्पूर्ण ऋग्वेद का भाष्य लिखलिया और उसके पश्चात्ही यजुर्वेद भाष्यका आरम्भ किया कदापि नहीं यह बात मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है असंभव है सर्वथा गप्प है जिन्होंने भाष्यके आरम्भहीमें ऐसा झूट लिखा उनसे आगे सत्यकी क्या आशा है ॥

पृष्ठ १७ सब प्राणियोंको सुख पहुंचानेवालेहों ऐसी इच्छा सब मनुष्योंको करनी चाहिये ॥

पृष्ठ ६२ सब प्राणियोंपर नित्य कृपा करनी चाहिये ॥

पृष्ठ २८६ प्राणीमात्रको कभी मतमार ॥

अध्याय २५ पृष्ठ ४३६ किसीके भी ऊपर वज्र न छोड़ें ॥

अध्याय २९ पृष्ठ ६७९ अहिंसारूप धर्मको सेवें ॥

पृष्ठ ४७३ जैसे मैं दुष्टकामकरनेवाले जीवोंके गले काटता हूं वैसे तू भी काट ॥

पृष्ठ ८०४ पशुओंको नष्ट करने के लिये ॥

पृष्ठ १२६४ दुष्ट प्राणियों के लिये वज्र चलाओ ॥

पृष्ठ १३५८ जिन जंगली पशुओं से ग्रामके पशु खेती और मनुष्योंकी हानि हो उनको राजपुरुष मारें ।

पृष्ठ १३६० जो हानिकारक पशु हों उनकोमारे ॥

पृष्ठ १३६३ जो जंगल में रहनेवाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥

पृष्ठ १६३१ सोतेहुओंके लिये वज्र ॥

पृष्ठ २०५० जो इस संसार में बहुत पशुवाला होम करके हुत शेष का भोक्ता वेदवित् और सत्य क्रियाकाकर्त्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसाको प्राप्त होता है ॥

दयानन्दजीके इस परस्पर विरुद्ध अधर्मरूप दयाशून्य आनन्दनाशक लेखको देखना चाहिये कि आपही सब प्राणियोंको सुख पहुंचाना उनपर नित्यकृपा करनी प्राणीमात्र को कभी न मारना किसीकेभी ऊपर वज्र न छोड़ना अहिंसा रूप धर्म का सेवन करना लिखा और आपही जीवोंके गले काटना कटवाना पशुओंको नष्ट करना प्राणियोंके लिये वज्र चलाना, हानिकारक पशुओंको मारना, नीलगायकोभी मारना, सोतेहुओंके लिये वज्र, और बहुत पशुवाला होमकरके हुत शेषका खाना लिखदिया वेदमें तो ऐसी परस्पर विरुद्ध आज्ञा होनहींसक्ती यह स्वामीजीहीने दयाशून्य होकर पशुओंका हनन करना लिखा है पूर्व सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३०३में वंध्या गायका वध लिखा था यद्यपि उस समय सज्जनों के धिक्कार करनेसे लज्जित होकर दूसरीवारके सत्यार्थप्रकाश में वह लेख न छापा परंतु हृदय में कुसंस्कार तो बनाही था वेद भाष्यमें वंध्यागाय नहीं तो नीलगाय का वध लिख दिया इसके अतिरिक्त बहुत पशुवाला होम करके हुत शेषकाखाना लिखा है न जाने उनके शिष्यवर्ग बहुतपशु से किसरका होम करके हुत शेषके भोक्ता बनेंगे क्या आश्चर्य है कि पूर्व सत्यार्थ प्रकाश लिखित वंध्यागायकाभी ग्रहण करेंक्योंकि वह स्वामीजीका लेख नष्ट तो होही नहींगया पूर्व सत्यार्थ प्रकाशही के

लेखानुसार समाजका एकदलमांस भक्षणकी पुष्टि कररहाहै यहसब कलिकाल का प्रभाव है धर्मका अभाव है सज्जनोंको उचित है कि अपने सत्य सनातन वेदादि सत्शास्त्र विहित धर्मपर आरूढ़ रहें दूसरोंको धर्मका उपदेश करें और अधर्म को निःशेष पृष्ठ १७ जो झूटका आचरण करनेवाले हैं वे असुर राक्षसआदि नामोंके अधिकारी होते हैं इति--इस लेख से स्वामीजी असुर राक्षस आदि नामोंके अधिकारी ठहरते हैं क्योंकि उन्होंने अपने ग्रंथों में प्रायः वेदादि सत्यशास्त्र विरुद्ध झूट लेख किये हैं और बहुधा प्रत्यक्ष झूटका आचरणकिया है जोकि हम सम्यक् सिद्ध करचुके हैं यदि कोई उनका पक्ष-पाती इस विषयमें हमसे अब वार्त्तालापकरना चाहै तो उनके अनेक झूट सिद्ध करनेको अब उद्यत हैं स्वामीजीने अनेक विषय प्रथम जिसप्रकार लिखे दूसरीवार उसके विरुद्ध लिखे दोनोंमें एक लेख अवश्य झूट होगा स्वामीजी प्रथम अद्वैत वादी रहे उसी संप्रदायमें शिक्षा पाई यज्ञोपवीत तुड़वाया और शिखा कटवाई फिर उस मतको आप झूटा जाना और उसका खंडन किया दोनों मेंसे स्वामीजीका एक आचरण अवश्य झूटा है ऐसे अनेक प्रमाण हैं विस्तार भयसे नहीं लिखते निदान स्वामीजी अपने लेखानुसार असुर राक्षस आदि नामोंके अधिकारी हुये ॥

पृष्ठ १९ वही ईश्वर उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये कर्म क-रने और कराने वालों को नियुक्त करता है। पृष्ठ २२८ अ-च्छे कामों में जल्दी प्रवेश करने वा कराने वाला जगदीश्वर है। पृष्ठ २३५ जो अंतर्यामी सब सुखों का देनेवाला है वह

अपनी करुणा करके हम लोगों की बुद्धियों को उत्तम २ गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे । पृष्ठ ४५३ जैसे सत्य प्रेम से उपासना किया हुआ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गों से अलग और धर्म मार्ग में स्थापन करके इस लोक के सुखों को उनके कर्मानुसार देता है । पृष्ठ ५५६ में सर्व प्रेरक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये । पृष्ठ २०८३ हे सुख के देनेहारे सत्य कर्मों में प्रेरक जगदीश्वर । अध्याय ३६ पृष्ठ ११२३ (परमेश्वर) हमको शुभ गुण कर्म स्वभाओंमें प्रेरणा करे । हम लोग इस बातको यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हमको प्रेरणा करता है कि जिसके सहाय सेही हम लोग धर्म अर्थ काम और मोक्षों के सिद्ध करने को समर्थ होसकते हैं । अध्याय ३६ पृष्ठ १२८७ आप हम लोगों से कुटिलता रूप पापाचरण को पृथक् कीजिये— ईश्वर पापाचरण मार्ग से पृथक् कर धर्म युक्त मार्ग में चलाके विज्ञान देके धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिये समर्थ करता है । स्वामीजी का इत्यादि लेख जीवों को कर्म करने में सर्वथा परतंत्र अर्थात् अपने पूर्व कर्मानुसार ईश्वराधीन सिद्ध करताहै उन्होंने दूसरीबारके छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ५९० में जो लिखाहै कि जीव अपने कामोंमें स्वतंत्र वह लेख वेद विरुद्ध और महा अशुद्धहै हमने दयानंदमतपरीक्षा में स्वामीजीके अनेक लेखों और सत्शास्त्रके वचनोंसे जीवको शुभाशुभ कर्म करने और सुख दुःख रूप पुण्य पापके फल भोगनेमें सर्वथा परतंत्र सिद्धकरदियाहै ।

पृष्ठ २१ अपार सुखको प्राप्त होऊं पृष्ठ २७६ जैसे खर्बूजा फल

पककर (बंधनात्) लताके संबन्ध से छूटकर अमृतके तुल्य होताहै वैसे हमलोगभी (मृत्योः) प्राण वा शरीरके वियोग से मुक्षीय छूटजावें। और मोक्षरूप सुखसे श्रद्धारहित कभी न होवें ॥ श्रुतिका तात्पर्य यहीहै कि जैसे खर्बूज़ा लताके संबंधसे छूटकर फिरकभीलताके साथ बंधनको प्राप्तनहीं होता इसी प्रकार हमलोगभी (मृत्योः) मौत अर्थात् संसारके बंधन से छूटजावें और मोक्षरूप सुखसे श्रद्धारहित कभी न होवें ॥

पृष्ठ ३३९ नाशरहित विज्ञानसे मोक्षसुखको ग्रहणकरताहूं ॥

पृष्ठ ८४१ जीवन मरणसे छूटे मोक्षसुखको अच्छे प्रकार प्राप्तहोवें ॥

पृष्ठ ११८८ बंधके छेदक मोक्षप्राप्तिके हेतु इत्यादि।

पृष्ठ १२२९ अनित्य साधनोंसे नित्य मोक्षके सुखको प्राप्तहोवें॥

पृष्ठ १८१४ अविनाशी सुखको प्राप्त होते हैं ॥

पृष्ठ १९३८ जन्म मरणके दुःखसे रहितहुए मोक्ष सुखको प्राप्त हों ॥

पृष्ठ २१३१ वे मृत्युके दुःखको छोड़कर मोक्ष सुखको ग्रहण करते हैं ॥

पृष्ठ २१४३ मृत्यु धर्म रहित विज्ञानको प्राप्त होवें ॥

अध्याय २१ पृष्ठ ३९ वे अक्षय सुखको प्राप्त होतेहैं ॥

अध्याय ३१ पृष्ठ ८१० (नाकम्) सब दुःखरहित मुक्ति सुखको प्राप्त होते हैं ॥

अध्याय ३१ पृष्ठ ८१४ उसीको जानके आप (मृत्युं) दुःखदाई मरणको उल्लंघन करजातेहो ॥ परमात्माको जानके ही मरणादि अथाह दुःख सागरसे पृथक् होसक्तेहैं ॥

अध्याय ३२ पृष्ठ ८३१ जिसने (नाकः) सब दुःखोंसे रहित मोक्ष धारण किया ॥

अध्याय ३२ पृष्ठ ८३७ (अमृतम्) नाशरहित मुक्तिकेस्थान ॥

अध्याय ३८ पृष्ठ १२३० नाशरहित सामर्थ्यको मैं अपने में ग्रहण करता हूं अक्षय सुखको प्राप्त होवें ॥ अध्याय ४० पृष्ठ १२७० वह विद्वान् तिस पीछे नहीं संशयको प्राप्त होता ॥ अध्याय ४० पृष्ठ १२९० ईश्वर उपदेश करताहै जो मेरा प्रेम और सत्याचरण भावसे शरणलेता उसकी अंतर्यामीरूपसे मैं अविद्याका विनाशकर उसके आत्माका प्रकाश करके शुभगुण कर्म स्वभाव वाला कर सत्यस्वरूप का आचरण स्थिर कर योगसे हुए विज्ञानको दे और सब दुःखोंसे अलग करके मोक्ष सुखको प्राप्त कराताहूं ॥ इति

स्वामीजीने पहिले अपने सब ग्रंथों में मुक्तिको बड़ी पुष्टि के साथ सदाहीको लिखाथा बीचमें एक अन्यमतावलंबी के एक तुच्छ प्रश्नका उत्तर न देसकेतब मुक्तिसे पुनरावृत्ति मान बैठे हमने उनके उस कपोल कल्पित शास्त्र विरुद्ध लेखके खंडनमें मुक्तिप्रकाशनामक पुस्तक मुद्रित करायाथा जिसमें स्वामीजीके अनेक लेखों और वेदादि सत्शास्त्रके वचनों तथा युक्तियोंसे मुक्तिको सदाकेलिये सिद्ध करदियाहै अब परमात्मा का कोटि २ धन्यवादहै कि स्वामीजी आप अपने उस मिथ्या लेखसे लज्जितहुए और अंतमें मुक्तिको सदाहीके लिये लिखदिया परंतु शोकहै कि उनके अनुयायी लोग अबभी मुक्तिसे पुनरावृत्तिही मानते हैं अपने गुरुके केवल उसकथनको जो उन्होंने बीचमें एक अन्यमतावलंबीसे पराजयको प्राप्तहोकर

मिथ्या कपोलकल्पनाकीथी सत्य जानतेहैं और संपूर्ण सच्छा-स्त्रों तथा च—अपने गुरुहीके लिखेहुए आदि अन्त के अनेक वचनोंपर कुछभी ध्यान नहीं करते हो ? ॥ जेड़ मामा

पृष्ठ५५वेदके शाखा शाखान्तरद्वारा विभाग ॥ इति—यहां स्वामीजी ने वेद के शाखा शाखान्तर द्वारा विभाग स्वीकार किये और दूसरीवारके छपे सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ५८७ में लिखा कि ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं ॥ इति ॥ कहिये परस्पर विरोधहै वा नहीं अस्तु। वस्तुतः ११३१ शाखा वेदहीहैं उन में से ११२७ को वेदों के व्याख्यान कहना और चार को मूल वेद मानना बाबाजी की अज्ञता है क्यों कि उन्हों ने जिन चार संहिताओं को मूल वेद माना है इस समय उनके अतिरिक्त जितनी शाखा मिलती हैं वे उक्त संहिताओं के व्याख्यान रूप नहीं हैं किन्तु उनमें पूर्वोक्त चार संहिताओं ही के समान मंत्र हैं जिनको दयानंदजी ने मूल वेदमाना है वे ऋगादिसंहिता शाकल—माध्यन्दिन कौथुमी और शौनकीय नामक शाखाहैं यदि दयानंदी लोग शाखाओं को वेद न मानें तो उक्त चार संहिताओं को भी वेद न जानें किंतु उनको भी ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये वेदोंके व्याख्यान रूप बतलायें और अन्य चार वेदों का पता लगायें ॥ हैं मानें

पृष्ठ ७८ द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम् ॥ श० ।१४।३।२।८।

पृष्ठ २०८८ द्वेसृतीऽअशृणवंपितृणामहंदेवानामुतमर्त्यानाम् ।

पृष्ठ २२४७ देवाऽअमृतामादयन्ताम् ॥ पृष्ठ २२४८ (अमृताः) आत्मस्वरूप से मृत्यु धर्म रहित (देवाः) विद्वान्लोग

अध्याय ३० पृष्ठ ७३१ देवलोकाय पेशितारं मनुष्य लोकाय प्रकरितार ॥ अध्याय ३४ पृष्ठ १०७० सदेवेषु कृणुतेदीर्घमायुः समनुष्येषुकृणुते दीर्घमायुः ॥ स्वामीजी विद्वानोंही को देवता मानतेहैं परन्तु उनके ऊपर लिखेहुए बचनोंसे स्पष्ट प्रकट है कि देवता मनुष्यों से पृथक् हैं ॥ पृष्ठ १२७ ईश्वर ने सृष्टि की आदिमें दिव्यगुण वाले अग्नि वायु रवि और अंगिरा ऋषियों के द्वारा चारों वेदके उपदेश से सब मनुष्योंके लिये इत्यादि, स्वामीजी अपनी अज्ञताके कारण सृष्टिकी आदिमें अग्नि वायु आदिके द्वारा वेदोंका प्रकाशमानबैठे थे वही कपोल कल्पना यहां सर्वथा अप्रसंग और असमंजस प्रकट कीहै सम्पूर्ण सत्शास्त्रों और समस्त विद्वानों का यह मतहै कि सृष्टिकी आदिमें सबसे प्रथम परमात्माने श्री ब्रह्माजी को उत्पन्नकिया और उनहीके हृदयमें वेदों का प्रकाश किया उनके द्वारा दूसरों को वेदों की प्राप्तिहुई ऐसा किसीने भी नहीं माना कि सृष्टिकी आदि में सबसे प्रथम अग्निवायु आदि उत्पन्न हुए और परमात्मा ने उनके हृदयमें वेदों का प्रकाश किया इस विषय में श्रीमत् मुंशीइन्द्रमणी जीने वेद द्वार प्रकाश पुस्तक मुद्रित करायाथा उसमें स्वामीजी की इस झूटी कपोल कल्पना का सम्यक् खण्डन कियागयाहै अतएव यहां विशेष नहीं लिखते ॥ ([illegible])

पृष्ठ १७७ फूलों की माला धारण किये हुए ब्रह्मचारी को अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये—यहां तो स्वामीजी ब्रह्मचारी को पुष्पमाला धारण कराते हैं और दूसरी बारके छपे सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ५१ में ब्रह्मचारी को माला का निषेध

लिखते हैं कहिये दोनों में कौन सा लेख सत्य और कौनसा झूट यहां उक्त सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ३३२ का न्याय स्मरणीय है कि इन दोनों में से एक बात सच्ची दूसरी झूटी ऐसा होकर दोनों बात झूटी ॥

पृष्ठ २५१ जो २ (एनः) पाप वा अधर्मकरा वा करेंगे सो सब दूरकरते रहैं—पृष्ठ २५६ मनआदि इंद्रियोंसे किया वा मरण धर्म वाले शरीरोंसे किये हुए (एनः) पापोंको दूरकर शुद्ध होताहूं— पृष्ठ २८३ पापों से निवृत्त होना—पृष्ठ ४८३ छूटगये हैं पाप जिन के- पृष्ठ ६६१ पापके दूरकरनेवालेहो—पृष्ठ १४७८ अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति करने हारा कर्म—अध्याय २२ पृष्ठ १८७ जिससे पाप रहित कृत कृत्य होकर—अध्याय ३४ पृष्ठ १०६५ पापों को शुद्ध कियाकरो—अध्याय ३५ पृष्ठ १०६२ हमारे पाप को शीघ्रसुखादेवे—अध्याय ३५ पृष्ठ ११०० हमारे निकटसे पाप को दूरकीजिये—अध्याय ३५ पृष्ठ १११५ हमारे (अघम्) पाप को शीघ्र दूरकरे—अध्याय ३६ पृष्ठ ११४४ हे भगवन् ईश्वर पाप हरने वाले—अध्याय ३६ पृष्ठ १२५७ पाप निवृत्ति के लिये—

दयानंदानुयायियों का सिद्धान्त है कि पाप विना भोगे किसी प्रकार कभी नहीं छूटता दूसरीबार के छपे सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ ३२२ में लिखाहै पाप कभी नहीं कहीं छूटसकता विनाभोगे अथवा नहीं कटते—उसी का पृष्ठ ३७८ जो वेदों को सुनते तो विना भोग के पाप पुण्य की निवृत्ति नहोने से पापों से डरते—

अब बुद्धिमान् लोग ध्यानकरें कि स्वामीजीने यजुर्वेद के

भाष्य में कितनी जगह पापों का नाश होना आपलिखा है वेदादि सत्शास्त्रों में ईश्वर भक्ति और पुण्य कर्म करनेसे पापों का नाश होना प्रायः स्पष्टहै यदि ऐसा न मानें तो जीव को मुक्ति कभी प्राप्त नहीं होसकती अब दयानंदी लोग अपने गुरुके सत्यार्थ प्रकाश लिखित सिद्धान्तको झूटाजानें वा यजुर्वेदका भाष्य अशुद्ध मानें स्वामी जी की अज्ञता किसी प्रकार दूर नहीं होसकती—

पृष्ठ २५३ यज्ञकरने वाला यजमानहै वह आपकी आज्ञा से जिन उत्तम २ यवआदि अन्नों को अग्नि में होम करताहै इति ॥ सनातन धर्मा वलम्बी लोग यव तिलादि पदार्थोंहीसे होम करते हैं परन्तु स्वामीजीने इस का निषेध किया और पूर्व सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ट ४५ पर वेद ब्राह्मण के नाम से कस्तूरी केशर और मांसादि पदार्थों से होमकरना लिखा जो कि सर्वथा अयुक्तहै ईश्वर का धन्यवाद है कि यजुर्वेद के भाष्य में उनसे वह सत्यवात लिखी गई परन्तु समाजी लोग अबभी यवादि अन्नों से होमनहीं करते यह पक्षपात नहीं तो और क्या है ॥

पृष्ठ३८०हे जगदीश्वर मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीतिके साथ वर्त्तकर विद्वान् धार्मिक हों कि जिससे दोनों की विद्या वृद्धि सदा होवे इति-स्वामीजीके विचार में ईश्वर पूर्ण विद्वान् और धार्मिक नहीं है धन्य ॥ ५—६

पृष्ठ३८३ चिकित्साशास्त्रके अनुसार सवआनन्दोंकोभोगें॥

पृष्ठ १०२१ श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य होकर निदान आदिके द्वारा सब प्राणियोंको रोग रहित रक्खें इति-स्वामीजी दूसरीवार

के छपे सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ ५८७ में ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथों में वेद विरुद्ध वचन बतलाते हैं और पृष्ठ ७२ में कहते हैं कि असत्य मिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति असत्य से युक्त ग्रंथस्थ सत्यकोभी वैसे छोड़देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्नको,फिर किस चिकित्सा शास्त्रके अनुसार सब आनन्दों को भोगें, और किन ग्रंथोंको पढ़कर वैद्यहोवें तथा किन निदान ग्रंथोंके द्वारा सब प्राणियोंको रोग रहित रक्खें ॥

पृष्ठ ८७६ जो आयुर्वेदको जाननेहारे हैं उनसे अमृतरूपी ओषधि विद्याका सेवन कीजिये पृष्ठ १०३६ इस आयुर्वेदविद्या में स्थित होके हम लोगोंकी दुष्टबुद्धिको सबप्रकार दूर कीजिये दूसरीबार के छपे सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २०५ में लिखाहै कि इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखाजाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्मे पश्चात् होताहै वेदों में किसीका इतिहास नहीं स्वामीजीके इस लेखसे सिद्ध होता है कि आयुर्वेदका निर्माण यजुर्वेदके प्रकाशसे प्रथमहुआ क्योंकि यजुर्वेद में आयुर्वेद का वर्णन है इस आयुर्वेद विद्या में ऐसा कहने से स्पष्ट सिद्ध है कि जिस समय यजुर्वेद का प्रकाश हुआ उस समय आयुर्वेद विद्यमान् था और यह प्रत्यक्ष अशुद्ध है ॥

पृष्ठ ४४५ हे जगदीश्वर ! जिसकारण आप–सुख दुःखको सहन करने और करानेवाले हैं इति दयानन्दकी बुद्धिको देखिये कि ईश्वरको सुख दुःख का सहन करनेवाला भी ठहरा दिया धन्य ॥

पृष्ठ ५०० हे शिष्य ! मैं तेरे जिससे मूत्रोत्सर्गादि किये जाते

हैं उस लिंगको पवित्र करता हूं तेरे जिससे रक्षा कीजाती है उस गुदेंद्रियको पवित्र करता हूं इति इस लेखका तात्पर्य कुछ समझमें नहीं आता हमारे विचारमें तो स्वामीजीने ऐसेलेखों से वेदोंको कलंकित किया है ॥ हा ? ॥

पृष्ठ ५१९ और (स्वाहा) विजली आग्नेयास्त्रादि तारवरखी तथा प्रसिद्ध सब कला यंत्रोंको प्रकाशित करनेवाली विद्यासे विद्युतरूप अग्निको अच्छी प्रकार जान ॥ इति ॥ स्वामीजी कहाकरतेथे कि वेदमें सव विद्याहैं इस कारण तारवरखी (तारवरकी) भी लिखमारा यह तो कोई देखताही नहीं कि वेदमें है वा स्वामीजी की कपोलकल्पनाहीहै अंगरेज़ी विद्याके नव शिक्षित उनके परमभक्त तो गुरुजीका गुणानुवादही गावेंगे कि स्वामीजीके अतिरिक्त किसीने वेदका अर्थही नहीं जाना परंतु कोई न्यायाधीश उन अज्ञोंसे कहे कि यदि वेदमें तारवरकी की विद्याहै तो तुम समाजके मुख्य पंडितोंसे जिन्होंने सरकारी रीतिसे इस विद्याको न सीखाहो कहींको तार के द्वारा खबर भिजवाओ और उत्तरमंगाओ अथवा तारमें कोई दोष आजाये तो उसे सुधरवाओ तारका बनाना तो कठिन रहा कोई एक छोटीसी खबरभी न भेजसकेगा फिर ऐसी झूटी बातें बनानेसे क्या लाभ-वास्तव में स्वामीजीने वेदके वास्तविक आशयको नष्टभ्रष्ट करादिया और अपने भाष्यमेंसर्वथा मनमानी झूटी कपोलकल्पनायें भरदीं पृष्ठ ५३३ पदार्थ हे वैश्यजन तू (कार्षिः) हलजोतने योग्य है इसके भावार्थ में लिखतेहैं कि इस कारण विद्वान् लोग निर्बुद्धि जनों को खेती बारीही के कामों में रखते हैं क्यों कि वे विद्याका अ-

भ्यास करने को समर्थही नहीं होतेहैं यहां स्वामीजीने वैश्य को हलजोतने योग्य लिखा और उसके लिये यह सिद्ध किया कि विद्वान् लोग निर्बुद्धिजनों को खेती वारीही के कामों में रखतेहैं क्योंकि वे विद्या का अभ्यास करने को समर्थ ही नहीं होतेहैं ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के पृष्ठ १०६ में लिखाहै किखेती व्यापार और सबदेशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणों से वैश्य वर्ण सिद्धहोताहै दूसरीबार के छपे सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ६१ में गायआदि पशुओं का पालन वर्द्धन करना विद्याधर्मकी वृद्धिकरने कराने के लिये धनादि का व्यय करना अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना वेदादि शास्त्रों का पढ़ना वैश्य का गुण कर्म लिखाहै ऐसे परस्पर विरुद्ध लेखों से बुद्धिमानों को स्वामीजी की बुद्धिका सम्यक् परिचय होसकताहै ॥

पृष्ठ ६०३ धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग उस धनुर्वेदकी शिक्षा से इत्यादि—जैसे सत्पुरुष धनुर्वेदके जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओंसे इत्यादि—यहांभी स्वामीजी के पूर्वोक्त मतानुसार वही बात सिद्धहै कि धनुर्वेद यजुर्वेद के प्रकाशसे प्रथम विद्यमानथा॥

पृष्ठ ६०५ हे परमेश्वर (ध्रुवक्षितिः) जिन आपमें भूमि स्थिर होरही है ॥ इति ॥ देखिये यहां श्रुति में (ध्रुवक्षितिः) पद स्पष्ट विद्यमान् है जिस के अर्थ में स्वामीजीने भी पृथ्वीको स्थिरलिखा फिर दूसरीबारके छपे सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २२८ में जो उन्होंने पृथ्वीका घूमना लिखाहै वह वेद विरुद्ध [illegible]

और यजुर्वेद अध्याय ३ (आयंगौः) इस मंत्र ६ के भाष्य में तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाके पृष्ठ १३६ पर उसी मंत्र की व्याख्यामें जो स्वामीजीने पृथ्वी का चलना और घूमना लिखाहै वह पूर्वलिखित (ध्रुवक्षितिः) इस श्रुतिपद तथा स्वामीजीहीकी लिखी व्याख्याके विरुद्धहै अयं पद पुल्लिंगहै उसके साथ गौः पदसे पृथ्वीका ग्रहण करना स्वामीजी की अविद्याका द्योतकहै कि उनको लिंगज्ञानभी न हुआ वस्तुतः वहां गौः पदसे सूर्यका ग्रहण होनाचाहिये अथर्ववेदमें ध्रुवाद्यौ ध्रुवा पृथिवी ऐसी श्रुतिहै सिद्धांत शिरोमणी गोलाध्याय में भूरचलास्वभावत ऐसा लिखाहै स्वामीजीका यह सिद्धांत कि पृथ्वी चलतीहै वेदादि सत्शास्त्रों और समस्त विद्वानों के विरुद्धहै परंतु ऐसा न मानते तो अंगरेज़ीवाले उनको परम विद्वान् कैसे जानते और समाजोंकी उन्नति कैसेहोती ॥

पृष्ठ ६३५ ईश्वर कहताहै कि हे (इन्द्र) सब सुखों के धारण करने हारे (शूर) हम लोगों को सब जगहसे भय रहितकर इति—यहां स्वामीजी की बुद्धिने ईश्वरको भी भयमान करदिया धन्य ॥ तिमिरा—

पृष्ठ ६६७ विवाह की कामना करने वाली स्त्रीको चाहिये कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित प्रकाश करने और एकही स्त्री को चाहनेवाला जितेंद्रिय सब प्रकार का उद्योगी धार्मिक और विद्वान् पुरुष हो उसके साथ विवाह करके आनंद में रहै—पृष्ठ ६६९ जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़ परस्त्री का सेवन करताहै वह इस लोक और पर लोक में दुर्भागी होताहै और जो संयमी अपनीही स्त्री का

चाहने वाला दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता वह दोनों लोक में परम सुखको क्यों न भोगे इस से सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पतिका सेवनकरें अन्यका नहीं—पृष्ठ ६८४ विना विवाहके स्त्री पुरुष वा पुरुष स्त्रीके समागम की इच्छा मनसेभी नकरें पृष्ठ ७६३ हे धर्ममें न चित्तदेनेवाले पते—जो पराई पत्नियांहैं उनमें व्यभिचार से वर्त्तमान तुमको में वहांसे अच्छे प्रकार डिगातीहूं अधर्ममें चित्तदेने वाले पते—औरोंकी पत्नियोंके समीप मूर्खपनसे जानेवाले तुझको में वहांसे अच्छे प्रकार छुड़ातीहूं हेकुचालमें चित्तदेनेवाले पते—परपत्नियोंके समीप अधर्मसे जानेवाले तुझको वहांसे में अच्छे प्रकार पृथक् करतीहूं हेचंचल चित्तवाले पते—परपत्नियोंके समीप उनको दुःखदेतेहुए तुमको में वहांसे वार २ कँपातीहूं हेकठोर चित्तपते मीठी २ बोलियां बोलनेवाली परपत्नियों के निकट कुचालसे जातेहुए तुमकोमें अच्छे प्रकार हटातीहूं पृष्ठ ८१० जो पुरुष अपनी २ ही स्त्रीके साथ क्रीड़ा करतेहैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य को संचित कर राज्यके योग्यहोते हैं

पृष्ठ १०३९ विवाह समय में स्त्री पुरुष को चाहिये कि व्यभिचार छोड़ने की प्रतिज्ञाकर व्यभिचारिणी स्त्री और लंपट पुरुषों का संग सर्वथा छोड़ आपसमें भी अति विषया सक्तिको छोड़ और ऋतुगामी होके परस्पर प्रीतिके साथ पराक्रम वाले संतानों को उत्पन्न करें—

पृष्ठ १०७१ ये दोनों आपस में भेद वा व्यभिचार कभी न करें किंतु अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री होकर मिलके चलें—

पृष्ठ १०९२ राज पुरुषों को चाहिये कि जो व्यभिचारी मनुष्य होवें उनको अग्निमें जलाने आदि भयंकर दंडों से शीघ्र ताड़ना देकर वशमें करें—

पृष्ठ १२०८ जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्रीको छोड़ अन्य स्त्रीके निकटजावे वा स्त्री दूसरे पुरुषकी इच्छाकरे तो वे दोनों चोरके समान पापी होते हैं—

पृष्ठ १३१३ अपनी स्त्रीको छोड़ अन्य स्त्रीकी इच्छा न पुरुष और न अपने पतिकोछोड़ दूसरे पुरुषकासंग स्त्रीकरे—

अध्याय २३ पृष्ठ २२६ हे राजन ! जो स्त्रियोंके बीच प्राणियोंका मांस खानेवाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषोंके बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो उस पुरुष और स्त्रीको बांधकर ऊपरको पग और नीचेको शिर करके ताड़नाकर हे राजन ! जो विषय सेवामें रमतेहुए जन वा वैसी स्त्री व्यभिचारको बढ़ावें उन २ को प्रबल दंडसे शिक्षा देनी चाहिये ॥ इति ॥ स्वामीजी के यजुर्वेदभाष्य में इस प्रकारके और भी वचन हैं जो विस्तार भयसे नहीं लिखे अब बुद्धिमानों को पक्षपात रहित होकर विचार करना चाहिये कि उन्होने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा नवीन सत्यार्थप्रकाशमें जो एकस्त्रीको ग्यारह पुरुषों तथा एक पुरुष को ग्यारह स्त्रियोंतकसे नियोग करने की आज्ञा लिखी है उसी सत्यार्थ प्रकाश में पति के परदेश जानेपर स्त्री को दूसरे पुरुष से संतानोत्पत्ति करने का उपदेश किया है—जो पुरुष अत्यंतदुःख दायकहोतो स्त्रीको उचितहै कि उसको छोड़के दूसरे पुरुषसे नियोगकर संतानोत्पत्ति करके उसी

विवाहित पतिके दायभागी संतानोत्पत्ति करलेवे यह शि-
क्षाकीहै गर्भवती स्त्रीसे एक वर्ष समागम नकरनेके समयमें
पुरुष वा स्त्रीसे नरहाजायतो किसीसे नियोग करके उसके
लिये पुत्रोत्पत्ति करदे यह असमंजस लेख लिखाहै जबपति
सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवैतब अपनी स्त्री को आज्ञादेवे
कि हे सुभगे ! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री तू मुझ
से दूसरे पतिकी इच्छाकर क्योंकि अब मुझसे संतानोत्पत्ति
की आशा मतकर यहांतक लज्जाको तिलांजली दीहै इत्या-
दि संपूर्ण नियोग नामक लेख विषयासक्ति और व्यभिचार
को बढ़ानेवाला तथा यजुर्वेद भाष्यके विरुद्ध नहीं तो और
क्या है आर्योद्देश्य रत्नमालाके पृष्ठ २० पर दयानंदजीहीका
लिखा व्यभिचारका लक्षण अपनी स्त्रीके विना दूसरी स्त्री के
साथ गमन करना इत्यादि है

पृष्ठ ६७५ गृहस्थ जनोंको चाहिये कि इस प्रकारका प्रय-
त्न करें कि जिससे तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमा-
न कालमें अत्यंत सुखीहों ॥ इति ॥ कोई प्रयत्न ऐसा नहीं
होसकता जिससे भूतकालमें सुखहो यह लेख स्वामीजी की
महान् अज्ञताका द्योतकहै—

पृष्ठ ७७० पुत्र अपनी माताका दूधपीवै संस्कारविधि मु-
द्रित संवत् १९३३ के पृष्ठ ३६ तथा दूसरीबारके छपे स-
त्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २६ में लिखाहै कि माता पुत्रको दूध न पि-
लावे किंतु धायी पिलावे. स्वामीजीका यह लेख यजुर्वेद भा-
ष्यके विरुद्धहै यजुर्वेद भाष्यहीके पृष्ठ ९०७में लिखाहै कि
राजा सब स्त्रियोंको विद्वान् और उनसे जो उत्पन्नहुए बालक

विद्यायुक्त धाइयोंके अधीन करे जिससे बालक शिक्षाके बिना न रहें और स्त्रीभी निर्बल न हों कहिये ऐसा विरोध विद्वानों के लेख में होताहै वा अज्ञोंके—

पृष्ठ ८१० जो एक समिष्टवायु, प्राण, अपान, व्यान, उदान समान, नाग, कूर्म,कृकल,देवदत्त, और धनंजय, (दश) बारहवां मन तथा इसके साथ श्रोत्र आदि दश इन्द्रिय और पांच सूक्ष्मभूत ये सब २७ सत्ताइस पदार्थ ॥ इति ॥ यहां एककी भूलहै स्वामीजी की बुद्धि प्रतिकूलहै ॥

पृष्ठ८१७ वेदवेदांगो पांगोके पारदर्शी पृष्ठ८५१ सांगोपांग चारों वेदोंको पढ़नेवाले पृष्ठ ८६८ चारवेद चार उपवेद अर्थात् आयुर्वेद धनुर्वेद गांधर्ववेद तथा अर्थवेद छः अंग शिक्षाकल्प व्याकरण निरुक्त छंद और ज्योतिष पृष्ठ १०१३ जो पुरुष वा स्त्री सांगोपांग सार्थक वेदोंको पढ़के पृष्ठ १०५६ अंग उपांगों के सहित वेद पढ़ानेहारे अध्यापक इत्यादि यहां वही पूर्वोक्त आक्षेपहै कि स्वामीजीके मतानुसार यजुर्वेद के प्रादुर्भावसे प्रथम आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, तथा अर्थवेद और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, और ज्योतिष विद्यमानथे वा स्वामीजीका वेदभाष्य उनकी असमंजस कपोल कल्पनासे भराहै अस्तु ॥

पृष्ठ ८४१ में ईश्वर सब मनुष्योंको आज्ञा देता हूं कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाववाले पुरुषही की प्रजाहोओ यह लेख सर्वथा असंभवहै जगत्में कोई मनुष्य कभी ईश्वरके तुल्य धर्मयुक्त गुणकर्म और स्वभाववाला नहींहोसकता कूसरीकारके छपे सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४१

में लिखाहै कि जीव मुक्त होकरभी शुद्धस्वरूप अल्पज्ञ और परिमित गुणकर्म स्वभाववाला रहताहै परमेश्वर के सदृश कभी नहींहोता ॥

पृष्ठ ८६२ (पंच) पूर्वादि चार और एक ऊपर नीचेकी दिशाओंको ॥ इति ॥ पृष्ठ ९४६ (पंच) पूर्व आदि चार और ऊपर नीचे एक पांचदिशा॥ इति॥ स्वामीजीकी गणित विद्याभी विचित्रहै ऊपरनीचे दोदिशाको एकही गिनतेहैं धन्य-पृष्ठ८६२ हे सभाजनो वायुके समान आप जैसे गाय, घोड़ा, भैंस, ऊंट बकरी, भेड़, और गधा इन सात गांव के पशुओं को बढ़ातेहो वैसे उनको मैं भी बढ़ाऊं ॥ इति ॥ हे समाजस्थ पुरुषो तुम को अपने स्वामीकी आज्ञानुसार भेड़ बकरी और गधोंका बढ़ानाभी आवश्यकहुआ अतएव प्रत्येक समाजी दो २ चार २ भेड़ बकरी और गधी पालो जिससे भेड़ बकरी और गधों की वृद्धि हो ॥

पृष्ठ ६२६ जो राज पुरुष और प्रजा पुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्तहोवें तो इनकी उन्नतिका विनाश क्यों नहो—पृष्ठ ९३५ वेद और ईश्वर की आज्ञाका सेवन करतेहुए सबलोग एक सवारी एक बिछौने परबैठें ॥ इति ॥ स्वामीजी के इस लेखसे जानागया कि वेद और पदार्थहै और ईश्वराज्ञा और अब समाजी लोग बतलावें कि वह ईश्वरकी आज्ञा वेदों के अतिरिक्त किस ग्रन्थ द्वारा प्रकट होती है ।

पृष्ठ ६३१ हे प्रजाके स्वामी ईश्वर जो जीव प्रकृति आदि वस्तु सब इच्छा रूप आदिगुणों से युक्त हैं ॥ इति ॥ प्रकृति

में इच्छा गुणहोना सर्वथा असम्भवहै क्योंकि इच्छा चेतन का धर्म है और प्रकृति जड़ है—

पृष्ठ ९३१ हे रुद्र दुष्टों के रुलानेहारे परमेश्वर आपका जो दुःखों से छुड़ाने का हेतु उत्तमनाम है ॥ इति ॥ दूसरीवारके छपे सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ३०६ में जो लिखा है कि नाम स्मरण से कुछभी फल नहीं होता वह यजुर्वेदभाष्यके विरुद्धहै ।

पृष्ठ ९७८ हे कारीगर पुरुष जोतेरे साथ एक स्थानमें वर्त्तमान हमलोग जो भूमिखोदने और विवाहित उत्तम स्त्री के समान कार्यों को सिद्धकरने हारी लोहे आदिकी कसी है जिस से कारीगर लोग भूगर्भ विद्याको जानसकें उसको ग्रहण करके जगती मंत्र से विधान किये सुखदायक स्वतंत्र साधन से प्राणों के तुल्य विद्युत आदि अग्नि को खोदने के लिये सब प्रकार समर्थ हो उसको तू बना ॥

मनुष्योंको उचितहै कि अच्छे खोदने के साधनोंसे पृथ्वी को खोद और अग्निकेसाथ संयुक्त करके सुवर्णआदि पदार्थों को बनावें ॥

हे दयानन्दियो किसी लुहारके पास जाओ और स्वामी जीके लेखानुसार उससे प्रार्थनाकरो कि वह तुमकोभूमिखोदनेकेलिये लोहे आदिकी कसीबनादे देखिये कैसा वेदमंत्रका अनर्थ किया है जोकि सर्वथा अनुचित और उन्मत्त कीसी बड है और अज्ञनाको जड़ कहीं भूमि खोदनेके लिये कहतेहैं और कहीं विद्युत आदि अग्निको खोदने के लिये फिर यह कथन कि पृथ्वीको खोद और अग्निके साथ संयुक्त कर के सुवर्ण आदि पदार्थोंको बनावें इसकी स्पष्ट विधि क्यों न

लिखी कि इस रीति से सुवर्ण आदि पदार्थोंको बनावें यदि स्वामीजीको सुवर्ण आदि पदार्थों के बनानेकी क्रिया प्रकट थी तो नित्य चेलों से चंदा क्यों मांगते रहे दो चार मन सुवर्ण बनाकर सारे कार्य सिद्ध क्यों न करलिये ध्यान रहै कि यह वेदमंत्रका अर्थ नहीं है किन्तु स्वामीजी का अनर्थहै जो कि सर्वथा वृथा है और जिससे वेदकी स्पष्ट निंदा है ॥

पृष्ठ १०५१ वैद्यकशास्त्रकी रीति से बड़ी २ ओषधियों से पाक बनाके और विधि पूर्वक गर्भाधान करके पीछे पथ्य से रहैं इति वेदके प्रकाश से प्रथम जो कोई वैद्यक का ग्रन्थ विद्यमानथा ईश्वरने उसका नाम क्यों न प्रकट किया अथवा बड़ी २ ओषधियों के नाम तथा पाक बनाने की क्रियाआदि ही क्यों न कहदी वेद के इतने से उपदेश से क्या लाभ हुआ ॥ (ऐरन्हाते)

पृष्ठ ११०९ वामदेवऋषिने जाने वा पढ़ाये पृष्ठ २१३२ अंगिरा विद्वान् इति यहां से दूसरीवारके छपे सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २०५ का वहलेख झूठा हुआ कि किसीमनुष्यकी संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदोंमें नहीं स्वामीजीको अपना लेख भी स्मरण न रहा ॥

पृष्ठ ११२६ जो पुरुष ईश्वर के समान प्रजाओंको पालने और सुख देनेको समर्थ हो वही राजा होने के योग्य होता है इति यह महा असंभव है कोई पुरुष ईश्वर के समान गुण वाला जगत् में नहीं होसक्ता ॥

पृष्ठ १२१४ खेतों में विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नहीं डालने चाहियें इति संवत् १९३३ की छपी संस्कार विधि के

पृष्ठ १५० पर लिखा है कि मृतक का भस्म और अस्थिको भूमिमें गाड़ देवें अथवा बाग वा खेत में डाल देवें क्या वह मलीन पदार्थ नहीं वेद कहताहै कि खेतोंमें मलीन पदार्थ न डालना चाहिये और स्वामीजी बाग और खेतोंमें मलीन पदार्थ के डालने की आज्ञा देते हैं यह उनकी मलीन बुद्धिका दोष है वा और कुछ ॥

पृष्ठ १२३१ श्रेष्ठ वैद्यसे शिक्षाको प्राप्तहुए तुमलोग ओषधियोंकीविद्याको प्राप्त हो-पृष्ठ १२३५ ओषधियोंको जानने-वाले होओ पृष्ठ १२३८ जिनसे जीवके ग्राहकव्याधि और क्षयी राज रोग का नष्ट होजाता है उन ओषधियोंको श्रेष्ठयुक्तियोंसे उपयोग में लाओ पृष्ठ १२३९ जो मनुष्य लोग शास्त्र के अनुसार ओषधियों का सेवन करें तो सब अवयवों से रोगों को निकाल के सुखी रहते हैं पृष्ठ १२४० ओषधियुक्त पदार्थों के साथ राज रोग हटजाता है ओषधियों का सेवन योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्टकर सुख से वर्त्तें—पृष्ठ १२४२ अनुकूलता से मिलाई हुई ओषधि सब रोगों से रक्षाकरती है हे स्त्रियो तुम लोग ओषधि विद्या के लिये परस्पर सम्बाद करो पृष्ठ १२४३ मनुष्यों को चाहिये कि जोईश्वरने सब प्राणियों की अधिक अवस्था और रोगों की निवृत्ति के लिये ओषधि रची है उनसे वैद्यक शास्त्र में कही हुई रीतियों से सब रोगों को निवृत्तकर—पृष्ठ १२४६ विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिये दिव्य ओषधि विद्या को देवें जिससे सब लोग पूरीअवस्था को प्राप्त होवें—पृष्ठ१२४७ स्त्रियों को चाहिये कि ओषधि विद्या का ग्रहण अवश्य करें

क्योंकि इस के बिनापूर्ण कामना सुख प्राप्ति और रोगों की निवृत्ति कभी नहीं होसकती पृष्ठ १२४८ स्त्री पुरुषों को उचित है कि बड़ी २ ओषधियोंका सेवन करके सुंदर नियमों के साथ गर्भ धारणकरें और ओषधियोंका विज्ञान विद्वानों से सीखें पृष्ठ १२५० हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ओषधियां दूर वा समीप में रोगोंको हरने और बल करनेहारी सुनी जातीहैं उनको उपकारमें लाके रोगरहित होओ—

पृष्ठ १२५२ वैद्य लोगोंको योग्यहै कि आपसमें प्रश्नोत्तर पूर्वक निरंतर ओषधियोंके ठीक २ ज्ञानसे रोगोंसे रोगी पुरुषोंको पारकर निरंतर सुखीकरें और जो इनमें उत्तम विद्वान्हों वह सब मनुष्योंको वैद्यक शास्त्र पढ़ावें—

पृष्ठ १२५४ हे वैद्यलोगो ! जो प्रसिद्धहुए कफकी गुदेन्द्रियकी व्याधि वा अन्य बढ़हुए रोगोंकी नाश करनेहारी ओषधिहैं और जो असंख्यात राज रोगों अर्थात् भगंदरादि और मुख रोगों और मर्मोंका छेदन करनेहारे शूलको निवारण करनेहारी हैं उन ओषधियोंको तुम लोग जानो

पृष्ठ १२५५ जो कोई ओषधि जड़ोंसे कोई शाखा आदि से कोई पुष्पों कोई फलों और कोई सब अवयवों करके रोगोंको बचातीहैं उन ओषधियों का सेवन मनुष्योंको यथावत् करना चाहिये पृष्ठ १२५८ हे मनुष्यो ! तुम लोग ओषधियों के सेवनसे अधिक अवस्था वालेहो और धर्मका आचरण करनेहारे होकर सब मनुष्यों को ओषधियोंके सेवनसे दीर्घ अवस्थावाले करो—

पृष्ठ १२३१ से १२६१ तक स्वामीजीने केवल ओषधियों

का गीत गायाहै और भी अनेक जगह ऐसाही लिखा है परंतु कहीं किसी छोटेसे रोगकी भी ओषधि नहीं लिखी फिर ऐसे निरर्थक कथनसे क्या लाभहुआ वेद किस वैद्यक शास्त्रमें कहीहुई रीतियों से रोगोंको निवृत्त करने का उपदेश करता है विद्वान् लोग मनुष्यों के लिये किस ग्रंथके अनुसार दिव्य ओषधि विद्याको देवें स्त्रियें किस पुस्तकके द्वारा ओषधि विद्याका ग्रहणकरें शोक ? कि जिसके विना पूर्ण कामना सुख प्राप्ति और रोगोंकी निवृत्ति कभी नहीं होसकती ईश्वरने वेदमें उसको कहींभी स्पष्ट वर्णन न किया जबकि वेदमें किसी रोगकी ओषधिका पूर्ण वर्णनही नहीं तो विद्वान् लोग किसीको ओषधियोंका विज्ञान कैसे सिखावें— कफकी गुर्दान्द्रियकी व्याधि वा अन्य बढ़हुए रोगोंकी नाश करनेहारीकोनसी ओषधिहैं असंख्यातराजरोगों अर्थात्भगंदरादिको निवारण करनेहारी ओषधियोंको हमलोग कहांसे जानें कौन ओषधि जड़ोंसे कौन शाखा आदिसे कौन पुष्पों कौन फलों और कौन सब अवयवों करके रोगोंको बचाती हैं इसका तो वेदमें कहीं संकेतभी नहीं, फिर उन ओषधियों का सेवन मनुष्य यथावत् कैसेकरें किसओषधिके सेवनसे अधिक अवस्थावाले होसक्तेहैं वेदमें कहीं उस ओषधिका स्पष्ट वर्णन होता तो विचारे दयानंदही ५८ वर्षकी अवस्थामें क्यों मरजाते निदान वास्तव बात यहीहै कि स्वामीजीका सब लेख उनकी कपोल कल्पनासे परिपूर्णहै जिससे वेदकी प्रशंसा तो नहीं किंतु निन्दा प्रकट होतीहै ॥

पृष्ठ १३१५ इ भा. तु जैसे असंख्यात् और बहुत प्रकार के

साथ सब अवयवों और गांठ २ से सब ओरसे अत्यंत बढ़ती हुई दूर्वा घास होतीहै वैसेही हमको पुत्र पौत्र और ऐश्वर्य से विस्तृतकर पृष्ठ १३१६ हे ईंटके समान दृढ़ अवयवोंसे युक्त शुभ गुणों से शोभायमान प्रकाशयुक्त स्त्री जैसे ईंट सैंकड़ों संख्यासे मकान आदिका विस्तार और हजारहसे बहुत बढ़ादेतीहै वैसे जो तू हमलोगोंको सैंकड़ों पुत्र पौत्रादि संपत्ति से विस्तार युक्त करती और हजारह प्रकारके पदार्थोंसे विविध प्रकार बढ़ातीहै उस तेरी देनेयोग्य पदार्थों से हमलोग सेवाकरें पृष्ठ १३२६ हे पत्नी ! जो तू शत्रुके असहने योग्यहै तू पति आदिको सहन करतीहुई अपनके उपदेशको सहनकर जो तू असंख्यात प्रकारके पराक्रमों से युक्तहै सो तू अपने आप सेनासे युद्धकी इच्छाकरतेहुए शत्रुओंको सहनकर और जैसेमैं तुझको प्रसन्न रखता हूं वैसे मुझपतिको तृप्तकियाकर

पृष्ठ १४०८ हेपते ! वा स्त्री तू बहुत प्रकारकी उत्तम क्रियासे मेरे नाभिसे ऊपर को चलनेवाले प्राणवायुकी रक्षाकर मेरे नाभिके नीचे गुह्येन्द्रिय मार्ग से निकलनेवाले अपानवायुकी रक्षाकर मेरे विविध प्रकारकी शरीरकी संधियों में रहनेवाले व्यानवायुकी रक्षाकर मेरे नेत्रोंको प्रकाशितकर मेरे कानों को शास्त्रोंके श्रवणसे संयुक्तकर प्राणोंको पुष्टकर इत्यादि ॥

पृष्ठ १४२१ हे स्त्री ! जो तू पूर्वदिशाके तुल्य प्रकाशमान है दक्षिणदिशाके समान अनेकप्रकारका विनय और विद्याके प्रकाशसे युक्तहै पश्चिमदिशाके सदृश चक्रवर्त्ती राजाके सदृश अच्छे सुखयुक्त पृथिवीपर प्रकाशमानहै उत्तर दिशाके तुल्य स्वयं प्रकाशमानहै बड़ी ऊपर नीचेकी दिशाकेतुल्य घर

में अधिकारको प्राप्तहुईहै सो तू सब पति आदिको तृप्तकर—

पृष्ठ१४३० हे स्त्री वा पुरुष ! तू शरदऋतुमें मेरी अवस्थाकी रक्षाकर मेरे प्राणकी रक्षाकर मेरे अपानवायुकी रक्षाकर मेरे व्यानकी रक्षाकर मेरे नेत्रोंकी रक्षाकर मेरे कानों की रक्षाकर वाणीको अच्छी शिक्षासे युक्तकर मेरे मनको तृप्तकर इत्यादि ऐसे२वृथा लापसे स्वामीजीने वेदका वास्तविक अर्थ नष्ट भ्रष्ट कियाहै कोई बुद्धिमान् ऐसे लेखको प्रसन्न नहीं करसक्ता जो कोई ऐसेलेखोंको वैदिक जानेंगे वेदसे श्रद्धारहित होजायँगे स्वामीजीके शिष्योंको चाहिये कि इसप्रकार के समस्तलेखों को एकत्र करलें और प्रातःकाल अपनी २ स्त्रियों के सन्मुख खड़े होकर पाठ किया करें ॥

पृष्ठ १३६६ जो स्त्री अविनाशी सुख देनेहारी इति-स्वामी जीके मत और मतिको वारंवार धन्य है कि मुक्ति सुखको तो विनाशी मान बैठे और स्त्रीको अविनाशी सुखकी देनेहारी स्वीकार किया किसी वाममार्गी से तो शिक्षा नहीं पाई ॥

पृष्ठ १४१२ पीठ से बोझ उठानेवाले ऊंट आदि के सदृश वैश्य तू इत्यादि, स्वामीजीने सदा वैश्योंही के पदार्थ खाये उनही के धनसे चैन उड़ाये और उनको ऊंट आदिके सदृश पीठ से बोझ उठानेवाला लिखा जो प्रत्यक्ष के विरुद्ध है ईश्वर का कथन ऐसा कदापि नहीं होसक्ता हमको उन वैश्यों की बुद्धिपर महाशोक है जो कि दयानन्दी समाजों में नाम लिखाते हैं और ऊंट आदि के सदृश पीठ से बोझ उठानेवालेकी पदवी पाते हैं स्वामीजीने वैश्योंको केवल ऊंट हीके समान नहीं लिखा किन्तु उसके आगे आदिपद लगाया है जिसका आशय घोड़ा वा गधा है ॥

पृष्ठ १४५६ जिसने यह सकल विद्यायुक्त वेदको रचा है इति-वेद को ईश्वर ने रचा है तो उसे अनादि क्यों कहते हो और अनादि मानो तो स्वामीजीको झूटा जानो केवल चार संहिताओंहींको पूर्ण वेद मानकर सकल विद्या युक्त कहना भी स्वामीजीका सर्वथा मिथ्यालाप है उन्होंने अपने ग्रंथों में जो कुछ धर्माधर्मरूप विधि निषेध लिखा है चार संहिताओं में तो वह भी नहीं मिलता सकल विद्याओंकी तो कथाही क्या है हां जो लोग ११३१ शाखा और ब्राह्मण ग्रंथोंको वेद मानते हैं वे वेदको सकल विद्या युक्त कहें तो आश्चर्य नहीं ॥

पृष्ठ १५७० पूर्ण युवावस्थाकी प्राप्ति में कन्याओंकी पुरुष और पुरुषोंकी कन्या परीक्षाकर अत्यन्त प्रीतिके साथ चित्तसे परस्पर आकर्षित होके अपनी इच्छासे विवाहकर धर्मानुकूल संतानोंको उत्पन्न करके आप्त विद्वानों के मार्ग से निरन्तर चलें ॥ इति ॥ आप्त विद्वानोंके मार्गसे निरन्तर चलना बहुतठीकहै परंतु इसप्रकार विवाहकी आज्ञा किसी आप्त विद्वान्‌ने नहीं लिखी यह तो ईसाइयोंका अनुसरण है मन्वादि आप्त विद्वानों के विरुद्धहै अतएव सर्वथा अशुद्धहै अब दयानंदियोंसे यह भी निवेदनहै कि आप्त विद्वानोंके मार्गसे निरंतर चलना हमको और अपने गुरु के लेखानुसार आपको स्वीकार है परन्तु हम प्रतिज्ञा करके कहतेहैं कि दयानंद जी आप्तविद्वान् नहींथे इस कारण उनकी कपोलकल्पनाओं पर चलना बुद्धिमानों का काम नहीं यदि समाजी लोग उनको आप्तविद्वान् जानतेहों तो हम इस विषयपर शास्त्रार्थ

करने को उद्यतहैं वे स्वामी जी को आप्तविद्वान् सिद्ध करें नहीं तो उनके लेखों को सर्वथा त्याज्य समझें समस्त बुद्धिमानों को स्मरण रखना चाहिये कि जबतक समाजीलोग स्वामीजी को आप्तविद्वान् सिद्ध न करदें तबतक उनसे और किसी विषयपर वार्त्तालाप न करें शास्त्रार्थ के लिये यही एक विषय सर्वोत्तम है यदि स्वामीजी आप्तविद्वान् सिद्ध होजायँ तो उनका समस्तलेख स्वीकार है नहीं तो तिरस्कार ।

पृष्ठ १६१८ आम्रादि वृक्षों को काटने के लिये वज्रादि शस्त्रों को ग्रहण कर ॥ इति ॥ कहिये आम्रादि वृक्षोंको काटने की आज्ञादेना बुद्धिमानों का काम है वा अज्ञों का और इस आज्ञाका प्रचार होगा तो जगत् का उपकार होगा वा अपकार वस्तुतः श्रुति में आम्रपद भी नहीं न आम्रवृक्ष से मनुष्यों को किसी प्रकार का दुःख होताहै किन्तु सुखही होताहै बाबाजी ने ऐसी कपोलकल्पनाओं से प्रत्यक्ष वेदकी निन्दा की है और मनुष्यों को लोक परलोक में हानि पहुँचाने के लिये कमर बांधी है ॥

पृष्ठ १७७७ सभापति आदिको योग्यहै कि शूरवीर स्त्रियों की भी सेना स्वीकार करें और सेना में अव्यभिचारिणी स्त्री रहें ॥ इति ॥ यदि समाजी लोग अपने गुरुकी इस आज्ञा को स्वीकार करेंगे सेना में स्त्रियों की भरती करानेका प्रचार करेंगे तो अवश्य शत्रुओं परविजय पायँगे और लाभ उठायँगे क्योंकि धर्मवित् शूरवीर स्त्रियों पर हाथ न छोड़ेंगे उनपर शस्त्रप्रहार करने से अवश्य मुखमोड़ेंगे परन्तु जिनके यहां एक स्त्री को ग्यारह पुरुषों तकसे नियोग करने की आज्ञा है

वे इतनी अव्यभिचारिणी स्त्रियां कहां से लायँगे जोकि उन की सेना बनायँगे स्वामीजी की एक आज्ञाका प्रचार करेंगे तो दूसरी का अवश्य तिरस्कार करेंगे वास्तव में स्वामीजी के दोनों लेख अशुद्ध हैं शास्त्र विरुद्ध हैं कोई बुद्धिमान् उनको कदापि न मानेगा अनर्थही जानेगा—

पृष्ठ २१३८ यहां बाबाजी ने अतीव अश्लील लेख लिखा है हमको उस के लिखने से घृणा है पृष्ठ २१८८ में भी ऐसी ही लीला है ॥

पृष्ठ २१६१ स्त्री पुरुष गर्भाधान के समयमें परस्पर मिल कर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख आंख के साथ आंख मनके साथ मन शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ का धारण करें ॥ इति ॥ यह लेख भी कोका पं० का अनुसरण है ऐसे उपदेशों में बुद्धिमानों को श्रद्धा नहीं होती किंतु घृणा होती है, अध्याय २१ पृष्ठ ७४ (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के बीचसे लेने योग्य पदार्थ का चिक-ना भाग अर्थात् घीदूध आदि ॥ इति ॥ बकरे आदि का घीदूध सर्वथा असंभव है यदि कोई स्वामीजी का पक्षी कहे कि उन्हों ने बकरी लिखा होगा यंत्रालय में भूलसे बकरे आदि लिखगया तो यह कथन अशुद्ध है क्योंकि (छागस्य) पदकी व्याख्या है छाग पद बकरे ही का वाचक है बकरी का नहीं यहां दूसरीबार के छपे सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३३१ कालेख स्मरणीयहै कि इसका अर्थ न जानके भांगके लोटे चढ़ा अपना जन्म सृष्टि विरुद्ध कथन करने में नष्ट किया तथा पृष्ठ ३३२ देखिये क्याही असंभव कथाका गपोड़ा भंग की लहरी में उड़ाया जिसका ठौर न ठिकाना—

अध्याय२१पृष्ठ८६ वटआदि वृक्षोंके तृप्तिकराने वाले फलों कोप्राप्तहो॥इति।स्यात् स्वामीजी कभी एक दो दिनके भूखे होंगे खानेको और कोई पदार्थ प्राप्त न हुआहोगा दैवात् वट वृक्षके नीचे जापहुंचेहों वहां भूखमें उसके फल खायेहों तब से उन्हें तृप्तिकारक और उत्तम मानाहो परंतु और कोई मनुष्य वटवृक्षके फलोंको तृप्ति करानेवाले और उनकी प्राप्तिको उत्तम न मानेगा क्षुधासे पीड़ित होकरभी खाने योग्य न जानेगा ॥

अध्याय २१ पृष्ठ ९८ शरीरमें स्तनोंकी जो ग्रहण करने योग्य क्रियाहें उनको धारण करो ॥ इति ॥ विषयासक्तिके भेर गीतगातेहो कामदेवको जगातेहो यह ईश्वरकी आज्ञा नहीं है और वेदकी व्याख्या नहीं आपही की कपोल कल्पनाहै जो सर्वथा वृथा है ॥

अध्याय २१ पृष्ठ १०५ सुंदर फलों वाला पीपल आदिवृक्ष इति॥ पीपलको भी सुन्दर फलोंवाला कहना जंगली मनुष्यों का काम है वास्तव में (सुपिप्पलः) पदकी व्याख्यामें सुन्दर फलोंवाला पीपल आदिवृक्ष लिखना स्वामीजीकी अज्ञता का परिणाम है ॥

अध्याय २१ पृष्ठ १११ जीवके चिन्ह कान आदि इन्द्रियां इति कर्णादि इन्द्रियोंको जीवके चिन्ह कहना मूर्खता की बात है क्योंकि मृत पुरुषके शरीर में कर्णादि इन्द्रियां तो विद्यामान होती हैं और उस शरीर में जीव नहीं होता ॥

अध्याय २१ पृष्ठ ११३ (छागम्) छेरी ॥इति॥ छाग शब्द पुलिंग है स्वामीजीको लिंगज्ञान भी नहीं पंडितायते बनबैठ

(छागम्) पदका अर्थ छेरी महाअशुद्ध है किंतु बकरेको ऐसा होना चाहिये ॥ भोगनेकी करे

अध्याय २१ पृष्ठ ११५ जिस २ प्राण और अपानके लिये (छागेन) दुःख विनाशकरने वाले छेरी आदि पशुसे वाणी के लिये मेढ़ासे परमऐश्वर्य के लिये बैलसे भोगकरे उनसुंदर चिकने पशुओंके प्रति पचाने योग्य वस्तुओं का ग्रहणकरे इति छाग शब्द पुल्लिंगहै उसका अर्थ छेरी आदि सर्वथा अशुद्ध है स्वामी जी की शेष व्याख्या अकथनीयहै जिसका पाठ करने से भी सज्जनों को लज्जाआती है स्वामीजी अपनी झूटी बनावटों से वेदकी अतीव निंदाकर रहे हैं स्यात् उनके अन्तःकरण का यही अभिप्रायहो कि लोग वेद से घृणा करें और दुष्कर्मों में प्रवृत्त हों।

अध्याय २१ पृष्ठ ११८ वेदादि शास्त्रोंकी विद्याको पढ़कर महर्षि होवे—अध्याय २५ पृष्ठ ४४३ वेदादि शास्त्रोंके ज्ञाता अध्यापक उपदेशक विद्वानोंका सदैव सत्कारकरें ॥ इति ॥ स्वामीजी दूसरी वारके छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ५८७ में ब्रह्मादि महर्षियोंके बनाये ग्रंथोंमें वेद विरुद्ध वचन बतला चुके हैं और पृष्ठ ७२ में लिखचुके हैं कि "अनृतमिश्रंसत्यं दूरतस्त्याज्यमिति" असत्यसे युक्त ग्रंथस्थ सत्यको भी वैसे छोड़देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्नको फिर यहां वेदादि शास्त्रोंकी विद्याको पढ़कर महर्षि होवें इस कथन में वेदके अतिरिक्त आदि शब्द से किन शास्त्रोंकी विद्या पढ़ने का उपदेश है ॥

अध्याय २२ पृष्ठ १५५ सरस्वती नामवाली नदीके लिये

इति। वेद में सरस्वती नामवाली नदी यह लेख होने से दू-
सरीवार के छपे सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २०५ का वह सिद्धान्त
अशुद्ध ठहरता है कि इतिहास जिसका हो उसके जन्म के
पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्म पश्चात् होता
है वेदों में किसी का इतिहास नहीं अस्तु ॥

अध्याय२३ पृष्ठ २४८ जो पंडितों की पंडितानी होके मिलाप
की क्रियाओं से दिशाओं के समान शुद्ध पाक विद्या पढ़ी
हुई हैं इति। दूसरीवार के छपे सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २६३
में प्रश्न है कि द्विज अपने हाथ से रसोई बनाके खावें वा शूद्र
के हाथकी बनाई खावें इसके उत्तर में लिखा है कि शूद्र के
हाथकी बनाईखावें क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यवर्णस्थ
स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने राज्यपालन और पशुपालन खेती और
व्यापार के काममें तत्पर रहें पृष्ठ २६४ आर्यों के घर में शूद्र
अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें इत्यादि अब पंडि-
तानियोंको पाक विद्या पढ़ाने लगे यह क्या ? सत्यार्थप्रकाश
का खण्डन अध्याय २४ पृष्ठ ३३१ तथा ३३२ हे मनुष्यो !
जैसे पक्षियों के गुण जाननेवाला जन मुर्गों उल्लू पक्षियों
नीलकंठ पक्षियों मयूरों तथा कबूतरोंको अच्छे प्रकार प्राप्त
होताहै वैसे इनको तुमभी प्राप्त होओ-जो मुर्गा आदि पक्षियों
के गुणोंको जानते हैं वे सदा इनको बढ़ाते हैं इति। हे दया-
नंदानुयायियों ! जो स्वामीजीने वेदका अर्थ यथार्थ कियाहै
और तुमने मुर्गों और उल्लू तथा नीलकठके गुणोंको जानाहै
तो तुम इनकी वृद्धिमें प्रयत्न क्यों नहीं करते मुर्गोंके गुणों
को तो स्यात् मुसल्मान लोग जानते होंगे क्योंकि वे प्रायः

उनको पालते हैं कबूतरों के गुणोंको हिंदू और मुसलमान दोनों जानते होंगे क्योंकि उनको दोनों पालते और बढ़ाते हैं परंतु उल्लू और नीलकंठ पक्षियों के गुणोंको कोई भी नहीं जानता क्योंकि उनको कोई नहीं पालता और बढ़ाता किंतु दोनों के अपगुण जानते हैं और उल्लू का स्थान पर बैठना भी बुरा मानते हैं इन दोनों के गुण यदि स्वामीजी की कृपा से आपलोगों को विदित होगये हों तो अपने स्थानों में शुक सारिकाकी समान उल्लू और नीलकंठ पक्षियों को अवश्य पालिये और उनकी वृद्धि में प्रयत्न कीजिये स्वामीजी के वेदभाष्य से वेद महिमाकी सर्वथा हानि है और धर्मको ग्लानि बुद्धिमानोंका उनके लेखपर विश्वास नहींहै क्योंकि यथार्थ अर्थका प्रकाश नहीं है ॥

अध्याय २४ पृष्ठ ३३२ हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों का काम जाननेवाला जन ऐश्वर्य के लिये बटेरों प्रकाश के लिये कौलीक नामके पखियों विद्वानोंकी स्त्रियों के लिये जो गौओंको मारती हैं उन पखेरियों बिद्वानोंकी बहिनियों के लिये कुलीक नामक पखेरियों और जो अग्नि के समान बर्त्तमान् गृहपालन करनेवाला उसके लिये पारुष्ण पक्षियोंको प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ इति । यह वेदका अर्थ है या गप्पाष्टक स्वामीकी गप्प ! कोई समाजी स्वामीजीकेइस लेखका अभिप्राय वर्णनकरै और उसके फलको समझै धन्य आगे भी अध्याय २४ में प्रायः ऐसीही असमंजस लीला है विस्तार भय से नहीं लिखते जिसको देखना हो वहां देखले फिर अध्याय २५ मंत्र १।३१।३२।३४।३८।३९।४०।४१।

और अध्याय २८ मंत्र १८ तथा अध्याय ३३ मंत्र ७२ अध्याय ३४ मंत्र २२ अध्याय ३८ मंत्र ५ की व्याख्या सर्वथा निरर्थक है कोई विद्वान् कभी भी ऐसा वृथा लेख न करेगा जो वेदमें ऐसा निष्फल आदेश कैसे संभव है ॥

अध्याय २५ पृष्ठ ३७६ अपूत गुदेन्द्रिय के साथ अंधे सर्पोंको इत्यादि सर्वथा अशुद्ध और असमंजस लेख स्वामीजीका कपोल कल्पना है जो कोई ऐसे लेखोंको वस्तुतः वेदका अर्थ जानेगा निःसंदेह वेदसे श्रद्धारहित होजायगा

अध्याय २६ पृष्ठ ४८३ स्त्री पुरुष उत्कंठा पूर्वक संयोग करके जिन संतानोंको उत्पन्न करें वे उत्तम गुणवाले होते हैं इति--सम्पूर्ण सज्जन लोग विषयासक्तिकी निवृत्तिहीका उपदेश करते हैं परंतु श्रीस्वामी कलियुगाचार्य महाराज दयानंद सन्यासीजी निज शिष्योंको विषयासक्तिकी प्रवृत्ति में आरूढ़ करते हैं वेद का अभिप्राय ऐसा कदापि नहीं है ॥

अध्याय २७ पृष्ठ ५०६ जैसे परमेश्वर बड़ा देव सबमें व्यापक और सबको सुख करनेहाराहै वैसा वायुभीहै ॥ इति ॥ वायु को ईश्वरकी समान बड़ा देव आदि कहना दयानंदजी की विक्षिप्त बुद्धिका फलहै कोई बुद्धिमान् कदापि ऐसा न कहेगा अध्याय २७ पृष्ठ ५३४ हे सत्यके रक्षक जमाई के तुल्य वर्त्तमान् आश्चर्यरूप कर्मकरनेवाले बहुत बलयुक्त विद्वान् ॥ इति ॥ क्यों भाई दयानंदियो तुमही धर्मसे कहो स्वामीजीका यह लेख युक्तहै वा अयुक्त फिर इसीके भावार्थ में लिखतेहैं कि जैसे जमाई उत्तम आश्चर्य गुणोंवाला सत्य ईश्वरका सेवक हुआ स्वीकारके योग्य होताहै वैसे वायुभी

स्वीकार करने योग्य है सत्य कहना यह पदार्थके विरुद्ध और अयुक्त है वा नहीं ॥

अध्याय २७ पृष्ठ ५३५ हे शूर निर्भय सभापते विना दूध की गौओंके समान हमलोग इस चर तथा अचर संसार के नियंता सुखपूर्वक देखने योग्य ईश्वरके तुल्य समर्थ आपको संमुखसे सत्कार वा प्रशंसा करें ॥ इति ॥ किसीको ईश्वर की तुल्य कहना पूर्ण नास्तिकताहै ईश्वरकी तुल्य कोई हुआ, न है, न होगा देखो दूसरीवारके छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २१९ में आप स्वामीजीने लिखाहै कि जीवका परम अवधितक ज्ञानबढ़े तोभी परिमितज्ञान और सामर्थ्यवाला होताहै अनंतज्ञान और सामर्थ्यवाला कभी नहीं होसक्ता—आर्याभिविनयमें (यस्मान्न जातः) इस मंत्रकी व्याख्यामें लिखाहै कि जिससे बड़ा तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, न है, और न कोई कभीहोगा श्वेताश्वतरोपनिषत्‌मेंहै न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते इसके अनेक प्रमाणहैं निदान ईश्वरकी समान किसीको कहना महा नास्तिकताहै स्वामीजीने जिसदिनसे धनादि पदार्थोंमें स्नेह किया रमा बाईको अपनेपास बुलाया सर्वथा बुद्धि नष्ट होगई उलटीही सूझनेलगी अध्याय२८पृष्ठ६१२हे मनुष्यो जैसे बैल गौओंको गाभिन करके पशुओंको बढ़ाताहै वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियोंको गर्भवतीकर प्रजाको बढ़ावें ॥ इति ॥ जैसे बैल गौओंको गाभिन करके इस दृष्टांतसे क्या अभिप्राय है यही न—कि जैसे एक बैल अनेक गौओंको सम्बन्ध विचार के विना गाभिन करता है उसी पशु व्यवहार का प्रचार करके स्त्रियों को गर्भवती करो दूसरी बार के छपे सत्यार्थ

प्रकाश के पृष्ठ ६७ पर यह तो लिखही दिया कि उत्तम स्त्री सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करे यदि कुछ काल और जीतेरहते तो स्पष्ट कहदेते कि वेद में गोत्र आदिका भी निषेध नहीं जिससे चाहे विवाह करले एक स्त्रीको ग्यारह पुरुषों और एक पुरुषको ग्यारह स्त्रियोंतकसे नियोग करने की आज्ञा तो अनेक झूटे प्रमाण और अयुक्तियोंसे गर्ज २ करही चुकेथे वेदभाष्यमें पशु व्यवहार की भी विधि करदिखाई शास्त्र और विद्वानोंका काम मनुष्योंको विषयासक्ति में प्रवृत्तकरनेका नहीं किंतु निवृत्त करनेकाहै परंतु दयानंदजीने अपने अनुयायियोंपर दयाकरके उनको विषयासक्तिहीमें प्रवृत्त किया और शास्त्र विहित धर्म कर्मों से निवृत्त ॥

अध्याय २६ पृष्ठ ७०१ माता के तुल्य सुखदेनेवाली पत्नी और विजयसुखको प्राप्तहो ॥ इति ॥ पत्नीको माताके तुल्य सुखदेनेवाली कहना बुद्धिमानोका काम नहीं किंतु महा अज्ञोंका है ॥

अध्याय ३० पृष्ठ ७७२ हे जगदीश्वर आप मच्छियोंसे जीवनेवालेको उत्पन्न कीजिये ॥ इति ॥ मच्छियोंसे जीवनेवाले या तो जो लोग मछलियें मारकर बेचतेहैं और उनके आयसे अपना जीवन करतेहैं वेहैं अथवा जो लोग मत्स्य मांस अधिक खातेहैं वे होसक्तेहैं निदान दोनों हिंसा कर्मके अपराधी हैं यजुर्वेदभाष्य अध्याय २६ पृष्ठ ६७९ में स्वामीजीने लिखा है कि अहिंसारूप धर्मको सेवें फिर क्यों बुद्धि नष्ट होगई जो हिंसकोंकी उत्पत्तिके निमित्त ईश्वरसे प्रार्थना करनेलगे विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥

अध्याय ३० पृष्ठ ७८१ गाने बजाने नाचने आदि की शिक्षा को प्राप्तहोके आनंदितहोवें ॥ इति ॥ क्यों भाई समाजियो तुम स्वामीजी की इस आज्ञाको उचित जानतेहो वा अनुचित यदि प्रथमपक्ष स्वीकारहै तो स्वीकार करो द्वितीय पक्षका ग्रहण करो तो स्वामीजी का वेदभाष्य झूटा कपोलकल्पित अग्राह्य समझो यदि इसमें कहीं२सत्यभीहै तो "असत्यमिश्रं सत्यंदूरतस्त्याज्यमिति" असत्यसे युक्त ग्रंथस्थ सत्यकोभी वैसे छोड़देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्नको स्वामीजी ही के लिखे इस न्यायसे सर्वथा त्याज्यजानो यह भी ध्यानरहै कि स्वामीजीने सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ १४५पर गाने बजाने नाचने आदि को कामोत्पन्न व्यसन लिखाहै वेदभाष्यमें उसीकी आज्ञा देतेहैं यह उनकी प्रगट अज्ञता है विद्वानोंके लेख ऐसे कदापि नहीं होते ॥

अध्याय ३० पृष्ठ ७८३ हे परमेश्वर सांप आदिको उत्पन्न कीजिये ॥ इति ॥ ऐसा मूर्ख जगत्में कोई न होगा जो सांपों की उत्पत्तिके लिये परमेश्वर से प्रार्थना करै ॥

अध्याय ३० पृष्ठ ७८६ सब लोगोंको चाहिये कि प्रजाके रक्षक ईश्वर और राजाकी आज्ञा सेवन तथा उपासना नित्य किया करें ॥ इति ॥ एक परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्माके अतिरिक्त किसी देव वा मनुष्यकी उपासना करना कदापि उचित नहीं देखो अध्याय ३१ पृष्ठ ७८९ में स्वामीजी भी लिखतेहैं कि परमेश्वरको छोड़के अन्यकी उपासना तुम कभी न करो देखिये जिनको अपनेही पूर्वापर लेखमें परस्पर विरोध न सूझा उनसे सत्यासत्यके निर्णयकी क्या आशा—अध्याय

३३ पृष्ठ ६६६ हे बहुत पदार्थोंमें वासकरनेहारे परमात्मन् जो ये मेरी वाणी आपको निश्चयकर बढ़ावें ॥ इति ॥ बड़ेलोग छोटोंको ऐश्वर्यादि वृद्धिका आशीर्वाद दियाकरतेहैं छोटे बड़ोंको नहीं स्वामीजी ईश्वर के भी बड़े बनगये जो परमात्मा को वृद्धिका आशीर्वाद देनेलगे यह भी ध्यान करना चाहिये कि परमात्मामें किसवातकी न्यूनताहै जो स्वामीजी अपने आशीर्वादसे उसकी वृद्धि करना चाहतेहैं धन्य ईश्वरको न माननेवाले नास्तिकलोग तो बहुत सुनेगये परंतु ईश्वर को छोटा और अपने को बड़ा माननेवाला तथा ईश्वरको आशीर्वाद देनेवाला आजतक कोई न सुनाथा सो कलियुगमें स्वामी दयानंदजीने अपनेको प्रकटकिया ऐसे पुरुषको नास्तिक शिरोमणी कहाजाय तो अनुचित नहीं ॥

अध्याय ३३ पृष्ठ ६७२, हे मनुष्यो तुम लोग जैसे सुंदर चालोंसे युक्त शीतकारी चन्द्रमा शीघ्र शब्दकरते हींसतेहुए घोड़ोंके तुल्य सूर्यके प्रकाशमें अंतरिक्षके बीच अच्छे प्रकार शीघ्र चलताहै इत्यादि—ऐसे लखोंसे वेदकी स्तुति होती है वा निंदा ? निंदा ॥

अध्याय ३४ पृष्ठ१०३० हे मनुष्यो जैसे सूर्यसे पृथिवी तक १२ कोश पर्यंत ॥ इति ॥ यह स्वामीजीकी खगोल विद्या है जो सूर्य से पृथिवीतक १२ कोश लिखते हैं धन्य अध्याय ३५ पृष्ठ ११०६ हे मनुष्यो जो लोग परमेश्वरने नियत किया कि धर्मका आचरण करना और अधर्मका आचरण छोड़ना चाहिये इस मर्यादाको उल्लंघन नहीं करते अन्यायसे दूसरे के पदार्थोंको नहीं लेते वे नीरोग होकर सौवर्षतक जीसक्ते हैं

और ईश्वराज्ञा विरोधी नहीं जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के धर्मका आचरण करतेहैं उनको मृत्यु मध्यमें नहीं दबाता ॥ इति ॥ यहां से सम्यक् सिद्ध होगया कि स्वामीजी ने धर्मका आचरण नहीं किया अधर्मका आचरण नहींछोड़ा अन्यायसे दूसरेके पदार्थों को लिया पूर्ण ब्रह्मचर्यसे विद्या नहीं पढ़ी यदि ऐसा करते तो वे नीरोग होकर सौ वर्ष तक अवश्य जीते उनको मृत्यु मध्यमें कदापि न दबाता परन्तु वे प्रायः रोग ग्रसित रहे और ५६ वर्ष की अवस्था में मरगये—

अध्याय ३६ पृष्ठ ११४४ हे परमेश्वर हम लोग आपके शुभ गुण कर्म स्वभाओं के तुल्य अपने गुण कर्म स्वभाव करने के लिये आपको नमस्कार करते है ॥ इति ॥ जब कि स्वामीजी दूसरी बारके छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २१९ म आप लिख चुकेहैं कि जीवका परम अवधितक ज्ञान बढ़े तोभी परिमित ज्ञान और सामर्थ्य वाला होता है अनंत ज्ञान और सामर्थ्य वाला कभी नहीं होसकता फिर वेद भाष्यमें ईश्वरके गुण कर्म स्वभाओं के तुल्य अपने गुण कर्म स्वभाव करने के लिये परस्पर विरुद्ध लख क्यों कर बैठे क्या ईश्वरको भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्य वाला समझा है वाहरी बुद्धि !

अध्याय ३९ पृष्ठ १२३७ जब कोई मनुष्य मरे तब शरीर की बराबर तोल घी लेके उसमें प्रत्येक सेरमें एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केसर और चंदन आदि काष्ठों को यथा योग्य सम्हाल के जितना ऊर्ध्वबाहु पुरुष होवे उतनी लंबी साढ़े

तीन हाथ चौड़ी और इतनी ही गहरी एक बिलांद नीचे तले में वेदी बनाके उसमें नीचे से अधवर तक समिधा भर के उसपर मुरदे को धरके फिर मुर्दे के इधर उधर और ऊपर से अच्छे प्रकार समिधा गरिके वक्षःस्थल आदि में कपूर धर कपूर से अग्नि को जलाके चितामें प्रवेश कर जब अग्नि जलने लगे तब इस अध्याय के इन स्वाहान्त मंत्रों की बार २ आवृत्तिसे घीका होम कर मुर्दे को सम्यक् जलावें इस प्रकार करने में दाहकरने वालों को यज्ञ कर्म के फलकी प्राप्तिहोवे। और मुर्देको न कभी भूमिमें गाडें न वन में छोड़ें न जलमें डुबावें विनादाह किये संबंधी लोग महापापको प्राप्त होवें क्योंकि मुर्दे के विगड़े शरीरसे अधिक दुर्गंध बढ़ने के कारण चराचर जगत् में असंख्यरोगोंकी उत्पत्ति होतीहै इति। संवत् १९३३ की छपी संस्कार विधि के पृष्ठ १४१ और दूसरीवारके छपे सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ ४७७ में स्वामीजी ने मुरदेको शरीर समानघीसे फूँकनालिखाथा वही स्व कपोल कल्पनायहां प्रकटकीहै जिससे चेलेलोग जानजायँ किगुरुजी ने संस्कारविधि और सत्यार्थप्रकाश में मृतकको शरीर प्रमाण घृतसे दाहकरना वेदानुकूलही लिखा है परंतु वेद में स्वामी जीके लेखकी गन्धभी नहीं उन्होंने जिस मंत्रके भावार्थ में पूर्वोक्त इतना लम्बा चौड़ा लेखकियाहै वह मंत्र यहहै यथाहि स्वाहाप्राणेभ्यः स्वाधिपतिकेभ्यः पृथिव्यैस्वाहाऽग्नये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहादिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा अध्याय ३९ मन्त्र १। विद्वज्जन ध्यान करें कि बाबाजीने वेदमंत्र के किसपदसे मृतकशरीर की बराबर घी और प्रत्येक सेर में

एकरत्ती कस्तूरी एकमाशा केसर और चंदनादिकाष्ठ लिखाहै
…था स ढ़ेतीन हाथ चौड़ी और इतनीही गहरी एक बिलांद
नीचे तलेमें वेदी बनाना आदि किस२पदका आशय समझा
हैवस्तुतः यह संपूर्ण उनकी कपोल कल्पनाहै जो कोई स्वामी
जीको वेदज्ञ जाने और सत्यवक्तामाने उनके इसीलेखको वेद
मंत्रसेयथावत् सिद्धकरे नहीं तो उनको मिथ्यावादी समझले
फिर स्वामी जी का यहलेख कि मुरदेको न कभी बनमें छोड़ें
विनादाहकिये संबधी लोग महापापको प्राप्तहोवें संवत्१९३३
की छपी संस्कार विधि के विरुद्ध है क्योंकि वहां पृष्ठ १४१
में यह लिखा है कि मृतक शरीरप्रमाण बराबरघी और कर्पूर
चन्दनादि सुगंध साथलले न्यूनसे न्यून वीससेर घी अवश्य
होनाचाहिये यादि इतनाभी घृतादि नहोयतो न गाड़े न जलमें
छोड़े और न दाह करे किंतु दूरजाके जंगलमें छोड़आवे कहिये
कैसा परस्परविरुद्धलखहै?अब संस्कारविधिको झूटाजानें वा
वेदभाष्यको? अध्याय४० पृष्ठ१२६५ वेही मनुष्य असुर, दैत्य,
राक्षस,तथापिशाचआदिहैं जो आत्मामें और जानते वाणीसे
और बोलते और करते कुछऔरहीहैं इति। प्रायःसमाजीलोग
स्वामीजीके अनेक लखोंको आत्मामें तो मिथ्याही जानते हैं
परंतुपक्षपात् और हठदुराग्रहके कारण वाणीसे उनकोसत्यही
कहते हैं और करते कुछ औरही हैं यदि कोई दयानंदी हमारे
इससत्यलेखपर विश्वास न करे तो इसके निर्णयार्थ एकसभा
नियतकरके दशवीस उत्तम वर्णस्थ प्रतिष्ठित बुद्धिमान् समा-
जियोंको बुलावें हम सम्पूर्णके समक्ष उन महाशयोंके मुखसे
अपने कथनकी सत्यता सिद्ध करादेंगे ॥ इति ।

भजन।

तेरे दया धर्म नहीं मनमें मुखका क्या देखे दर्पनमें ॥ ॥ ध्रु० ॥ है यह देह तेरा क्षणभंगुर जैसे दामिनी घनमें ॥ क्या अभिमान करै तू इसपर होगा भस्म दहन में ॥ १ ॥ काम क्रोध और लोभ मोह यह तस्कर तेरे सदन में ॥ महा विभवको निशदिन लूटें करकेछिद्र भवनमें॥२॥परनारी अहि विष समान है मत फँस फंद मदन में ॥ परधनसे कर घृणा सर्वदा जैसी घृणा वमनमें ॥ ३ ॥ रे मतिमंद नहीं भय तुझ को क्यों पशु यूथ हनन में ॥ पर पीड़ा सम पाप नहीं है नहि जय अनृत कथन में ॥ ४ ॥ हों इंद्रिय कव तृप्त भोगसे है आनंद दमन में ॥ क्या जिह्वाका स्वाद मनाये क्या वहुमूल्य वसनमें ॥ ५ ॥ सुत नारीसे स्नेह वढ़ाया दर्पित है अति धन में ॥ वालकुमार युवा सब खोई कर कुछ चौथेपन में ॥ ६ ॥ जिस जिह्वाने वेद पढ़ा नहीं सोहै वृथा वदन में ॥ जो नहिं करै मधुर संभाषण गणिये न तिसै रसनमें ॥ ७ ॥ विधि निषेध वही सत्य जानियेहै जो वेद वचनमें ॥ तद्विरुद्ध औरवाह्यजीव को डाले अतुल गहनमें ॥ ८ ॥ हैं प्रमाण प्रत्यक्ष ईशके रवि शशि आदि गगन में ॥ क्यों नहीं प्रेमकरै उस प्रभुसे नहीं सुख अन्य व्यसनमें ॥ ६ ॥ जगन्नाथकर निजमन अर्पण श्री जगदीश भजन में ॥ होकर सेवक परब्रह्मका किसके फिरै यजन में ॥ १० ॥

हे प्रभु हमें बचाओ ॥ ध्रु० ॥ चारों ओर शत्रुदलगरजैं इन से शीघ्र छुड़ाओ । आयफँसे हमदावानलमें तुमही इसे बुझा-

ओ ॥१॥ कामक्रोध और लोभ मोहकी बाधासकल मिटाओ। वेद विरुद्ध और बाह्यकर्म से मनका वेगहटाओ ॥ २ ॥ पड़ी भवरमें नाव हमारी तिसको पारलगाओ । निज स्वरूप का ज्ञान हमेंदो भवके फंदकटाओ ॥ ३ ॥ जगन्नाथ जगदीश श-रणले केवल ब्रह्म मनाओ । प्रणव वाच्यअतिरिक्त किसी को कभी न शीस निवाओ ॥ ४ ॥

अरेमन क्यों तू करै अभिमान ॥ ध्रु० ॥ सुतदारा सुखकेहैं साथी यह निश्चय करजान । प्राणगये सबविमुख होयँगे पहुँ-चावैं स्मशान ॥ १ ॥ रावण और शिशुपाल कहांहैं कहां कंस के स्थान । दुर्योधनने क्याफल पाया करकै दर्प निदान ॥ २ ॥ परब्रह्मजो अखिलेश्वरहै धरउसका उरध्यान । कटैं बंध भव के सबजिससेहो सुखअतुल महान ॥ ३ ॥ सत्यशास्त्र (तीर्थ) वेदादिकमें कर विधि अनुसार स्नान । सकल जन्मका मल छुटजावै पावै पदनिर्वान ॥ ४ ॥ सुख और दुःख सकल प्राणी में निजवपुसम पहिचान । दयादृष्टि है सबपर जिसकी सो पावै कल्यान ॥ ५ ॥ कामक्रोध और लोभमोहको अतिदा-रुण रिपुजान । रागद्वेष रहितकर सबकायथायोग्य सन्मान६॥ नहीं मुक्तिसे पुनरावृत्तिगावैं वेदपुरान । व्यासादिक ने यही लिखाहै है विरुद्ध अज्ञान ॥ ७ ॥ जगन्नाथ सच्चिदानंद का प्रेम सहित करगान । जो नर अन्य देव को पूजैं वे हैं पशु समान ॥ ८ ॥

अरे मन भजभगवतका नाम ॥ ध्रु० ॥ जिस दिनहो प्रस्था न यहांसे कोई न आवै काम । तृणभी साथ जाय नहीं उनके जिनके लाखों ग्राम ॥ १ ॥ नहीं शुक्तिहो रजत कदापि होय

सर्प नहीं दाम। असत्यार्थको सत्यकहै तू हुई बुद्धि क्यों वाम॥२॥ परब्रह्मके भजन बिना नहीं कहीं मनको उपराम। जो शरणागत हो उस प्रभुकी सो पावै निज धाम॥ ३॥ अज अकाय अव्यक्त अगोचर नहीं रक्त नहीं श्याम। ध्यान धरें उरमें मुनि जिसका सो भज आठों याम॥ ४॥ क्या अभिमान करे तू तनका सोच मूर्ख परिणाम। क्षणमें होय भस्मकी ढेरी काम न आवै चाम॥ ५॥ लोभ मोहसे चित्त हटाकर त्याग काम और भाम। परपीड़ामें जान मरण निज कीजे सबसैसाम॥६॥ इधर उधर क्यों फिरै भटकता सहै शीत और घाम। कृपा कटाक्ष विन पुरुषोत्तमके कहां पावै विश्राम॥ ७॥ जगन्नाथ कर परब्रह्मको वारं वार प्रणाम। शरणागति से जिसकी पावै सब प्रकार बल क्षाम॥ ८॥

वृथा अभिमान करताहै अरे मतिमंद तू बलका। स्पष्ट आंखोंसे दीखैहै लगाहै तार चल चलका॥ १॥ जो करनाहै सो अब करले भरोसाहै नहीं कलका। जिसे कहते हैं क्षण भंगुर बबूला जानले जलका॥ २॥ गया रावण कहां मित्रो हुई गति कंसकी कैसी। रहा नहीं चिन्हभी कोई जगत्में कौरवी दलका॥ ३॥ करो तुम यत्न कुछ ऐसा कि जिससे बंध कट जावै। है संचित् जो तुम्हाराही अनेकों जन्मके मलका॥४॥ हुएहैं विष्णु शिव ब्रह्मा उपासक जिस निरंजनके। नहीं तू किसलिये करताहै ध्यान उस भक्त वत्सलका॥ ५॥ हटाकर चित्त विषयोंसे लगा मन ब्रह्ममें सम्यक्। नहीं उसके सिवा दाता कहीं कोई अभय फलका॥ ६॥ अहिंसा धर्मको वर्तो वचन मन कायसे प्यारे। निकालो चित्तसे अपने उपद्रव द्वेष

मद छलका ॥ ७ ॥ मिटा सक्ता नहीं कोई जो है प्रारब्धका मेरे। प्रकट दृष्टांतहै इसमें युधिष्ठिर राम और नलका ॥ ८ ॥ जगन्नाथ आज्ञा पालन करो तन मन से स्वामीकी। शुभाशुभ कर्म सब तेरा प्रकटहै उसपै पल पलका ॥ ९ ॥

कुछ सोच समझकर कामकरो एकदिन यहांसे उठजाना है। जो चित्तदुखावैं दीनोंका उनको अति दुःख उठानाहै॥१॥ वेदोक्त कर्म में प्रीतिकरो जो आवागमन छुड़ानाहै। अब कर प्रबंध तू आगेका बीतीका क्या पछतानाहै ॥ २ ॥ सद्धर्म कोषका संचयकर सुख अक्षय जिससे पानाहै। मरनेपर काम न आयेगा घरमें जो तेरे खज़ानाहै ॥ ३ ॥ हैं कामक्रोध अति प्रबल शत्रु क्यों इनका बना निशानाहै। बच लोभ मोह के बाणोंसे जो मर्म स्थान बचानाहै॥ ४ ॥ क्यों मद्य मांस के भोजनमें तुमने अपना सुख मानाहै। जो औरोंको कल पायेगा उसकोभी तो कलपानाहै ॥ ५ ॥ धन दे दीन और विद्वानोंको जो तुझको धर्मकमाना है। अज्ञोंको देना द्रव्य आदि धन अपना वृथा लुटानाहै ॥ ६ ॥ ग्यारह पतिका उपदेश करें यह कलिका बुरा ज़मानाहै। सबबातें उलटीगातेहैं जिनको मत नया चलानाहै ॥ ७॥ सच्चिदानंद से विमुख हुआ और विषयोंमें फलजानाहै। रेमूर्ख गई कहां बुद्धि तेरी क्या हुआ कहीं दीवानाहै ॥ ८ ॥ है मुक्ति उसीकी जगन्नाथ जिसने प्रभुको पहिचानाहै। कर परब्रह्मका ध्यान सदा सबको यही मंत्र सुनानाहै ॥ ९ ॥

ईश्वर विषय
उपासना पूजा
१ कर्मकांड- ३ स्त्री निर्णय - नियोग प्रकरण
२ देव निर्णय
मुक्ति निर्णय

॥ श्री ॥

भारत धर्म महामण्डलके महामंत्री

पं० दीनदयालुजी की अनुमोदित और अनुज्ञात

भारत धर्म महामण्डलके महोपदेशकों श्री प्रभावशाली

वक्तृता माला

प्रथम भाग

जिसको

सनातनधर्मावलम्बियों के उपकारार्थ

पं० श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठीने

"लक्ष्मीनारायण" प्रेस मुरादाबाद में

छपाकर प्रकाशित किया।

रामनाम तवनामामृतपानं;
सोमपानशतकोटिसमानम् ।
सोमपान शतकोटिभिरेति,
जन्म नैव रघुनायकनाम्ना ॥

भूमिका.

इस समय भारतवर्ष में संस्कृत की पठनपाठन शैली उठजाने से सनातन धर्म को जो कुछ आघात लगा है वह किसीसे छिपा नहीं है, दूसरी भाषाओंके ज्ञाता संस्कृत का मर्म न जानकर वेद शास्त्र प्रतिपाद्य सनातन धर्ममें अनेक प्रकार की आशंकाकरने लगेहैं केवल आशंका ही नहीं सनातन धर्म के उन्मूलन करने में एक समूह तो कटिबद्ध होरहाहै बिचारे भोले भाले पुरुष उनकी भडकीली बातोंमें आय अपने सनातन धर्मको तिलांजलि दे बैठते हैं इन सनातन धर्म से विद्वेष करने वालोंका प्रभाव इतना फैला है कि प्रायः कुछ स्थानों को छोडकर एक दो तो सर्वत्र ही दिखाई देते हैं क्यों नहो जब विद्याका प्रकाश जातारहताहै तब अंधकार में खद्योत भी अपना प्रकाश करतेहैं गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

दोहा--कलिमल ग्रसेउ धर्मसब ※ लुप्त भये सद्ग्रन्थ ॥

दंभिन निजमत कल्पि कर ※ प्रगट कीन्ह बहुपंथ ॥

ठीक इस दोहेके अनुसारही इससमय वर्त्ताव होरहा है समाज सोसाइटियोंकी कमी नहीं है सबका लक्ष्य एक सनातन धर्म परहीहै इसीके समूलोन्मूलनमें कटिबद्ध होरहे हैं इन समूहों में से एक दयानंदानुयायी आर्य्यसमाज है जो नाममात्रको वेदकीआड़में खडा होकर पूर्णतया सनातन धर्म का द्वेष कर रहा है जिस भारत वर्ष में अवतार भगवत अर्चन पतिव्रतधर्म देवर्षि पितृ पूजन परमभक्ति से होताथा आज उसी भारत वर्षकी सन्तान कहती है कि ईश्वरपूजन अवतार श्राद्धादि वेदमें कुछभी नहीं है ईश्वर का नाम जप तप सब कुछ मेटकर नियोग तथा एक नारीके एकादश पति कराने की आज्ञा इस शिक्षित दयानंदी समाजसे जारी हुई है, जिधर तिधर उदर परायण गांवर में उपदेश देते फिरते हैं कि अवतार श्राद्धादिमें कुछभी सारनहीं है यह छोडना चाहिये. इसप्रकार सर्व साधारण की धर्मच्युति देखकर सनातन धर्म का प्रभाव अटल अचल रखनेके निमित्त भारतधर्म महामण्डल पवित्र भूमि हरिद्वार में गंगा तट पर स्थापित हुआ यह महामण्डल ऐसी शुभ घडी में स्थापित हुआ कि बहुत थोडे काल में ही सैकडों सनातन धर्म सभाएँ संस्कृत अंग्रेजी स्कूल हिन्दू कालिज आदि इसीके कारण स्थापित होकर आज पर्यंत बडे समारोह से अपना प्रभाव दिखारहे हैं भारतधर्म महामण्डलके महोपदेशकों ने अपने शास्त्रीय परिश्रमसे जहां तहां दयानंदियों को पूर्णतया परास्त किया है यह महोपदेशक तथा जनरल सेक्रेटरी सनातनधर्मकी उन्नति में प्राण पण से चेष्टा करते शास्त्रों के मर्म खोलते हुए दयानंदी मतकी पोल खोलरहे हैं इतनाही नहीं इन महानुभावोंने राजा महाराजाओंसे बडी२ प्रतिष्ठायें प्राप्त की हैं महामंत्री पण्डित दीनदयालु शर्माही इसके नेताहैं, बिहारमें पण्डित अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य. बम्बई

विद्वद्वर श्रीकृष्ण जी शास्त्री पण्डित गोपीनाथजी, गो स्वामी रघुवरदयालजी, पण्डित बुलाकीरामजी शास्त्री विद्यानिधि पण्डित भानुदत्तजी, पण्डित बनमालीदत्तजी पण्डित नन्दकिशोर देव शर्माजी राजाराम गोस्वामी आदि, पश्चिमोत्तर में महामहोपाध्याय पं० शिव कुमारजी शास्त्री, महामहोपा० पण्डित राममिश्रजी शास्त्री, पण्डित गोविन्दरामजी शास्त्री पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्र पण्डित गोकुलप्रसाद सप्तभाषाज्ञ, पं० रामचन्द्रजी वेदांती, पण्डित दुर्गादत्तजी पन्त श्री स्वामी ईश्वरानंदजी गिरि स्वामी आत्मारामजी सागर सन्यासी तथा स्वामी हंसस्वरूप पं० गणेशप्रसादजी आदि अनेक विद्वानोंकी वक्तृताओंसे सनातनधर्मका महत्व फिर प्रकाशित हो उठाहै, पर तथापि इतने बड़े देशमें कतिपय विद्वानोंकी वक्तृताएँ सर्वत्र सुलभ नहीं तथा जो नये सीखनेवाले हैं उन को अभीतक कोई ऐसा सुलभ उपाय प्राप्त नहीं हुआ है जिससे वह शीघ्रही व्याख्यान सीखकर अपने २ प्रान्तोंमें विचरण कर सनातनधर्मका प्रभाव सर्वत्र प्रगट करदें हमारा यह विचार था कि महोपदेशकों के अविकल व्याख्यान छापकर सर्व साधारणकी भेंट करैं परन्तु यह कार्य आयास साध्य और दीर्घ काल में पूर्ण होनेवाला है इस कारण हमने प्रथम उन्हीं विषयों को लेकर कि जिन विषयोंमें दयानंदीय समाज का आक्षेप होता है पहिले लिखना उचित समझा है, बड़े २ महोपदेशकों के व्याख्यानोंके सारको ग्रहण कर वेद मंत्रों के प्रमाण सहित यह वक्तृतामाला का प्रथमभाग हमने तयार किया है, इस पुस्तक को कण्ठ करके जिनको व्याख्यान देनेकी इच्छाहो उनको व्याख्यान आसक्ताहै, तथा दूसरे मनुष्यभी सनातन धर्म के विषयोंको वेद मूलक जानकर उन से अनेक लाभ उठासकेहैं यद्यपि इस में व्याख्यानों का बड़ा विस्तार नहीं किया है परंतु विद्वान इस को स्मरण कर अपनी बुद्धिसे इसका बड़ा विस्तार करसक्ते हैं भारतधर्म महामण्डल के महोपदेशकोंसे निवेदनहै कि यदि वे महानुभाव अपने स्वतंत्र व्याख्यान लिखकर हमारे पास भेजैंगे तो दूसरे भागमें उनको अविकल छपादेंगे सब सनातनधर्मसभाओं और सनातनधर्मावलम्बियों से प्रार्थना है कि इस पुस्तक का सर्वत्र प्रचार होजाय इस प्रकार का उद्योग कर हमारे परिश्रमको सफल करैं।

जो महाशय इस कार्य में हमें सहायता देंगे, धन्यवाद पूर्वक उनका पवित्रनाम इसी वक्तृतामाला के दूसरे भाग में सन्निवेश करदियेजायँगे हमारी यहभी इच्छाहै कि यदि धर्मसभाओंकी सम्मतिहो तो एक ग्रंथ पुराणों के संदेहोंके समाधान में निर्माण कियाजाय चारसौ ग्राहकों के पत्र आनेपर ग्रंथ छापना प्रारंभ कियाजायगा सब सज्जन धर्मानुरागियों से प्रार्थना है कि इस ग्रंथको ग्रहण कर हमारे उत्साहको बढ़ावैं।

निवेदक—श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी—मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

साकारोपासना ।

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ॥
तस्मैकृष्णायनमः संसारमहीरुहस्यबीजाय ॥ १ ॥

आजकल जैसा हिन्दूधर्म पर संकट पड़ा है वैसा और किसी समाजपर नहीं प्रथमतो कलियुग में वैसेही धर्मका एक चरण शेष रहा है, तिसपर फिर इनदिनों के नवीन सभ्याभिमानियों ने ऐसा भयंकर उपद्रव मचारक्खा है, कि जिससे प्राणों को बचाना भी कठिन है, ब्राह्मण से लेकर म्लेच्छादि निकृष्टजातियों के सब मनुष्य धर्माचारी होने का दावारखते हैं, जिनके बापदादों ने संस्कृत का अक्षर तक भी न पढा होगा, जिनको काला अक्षर भैंसकी बराबर है वहभी आज चौदह विद्यानिधान होकर धर्मकी धूलउडा रहे हैं, और यह हिन्दु संतान भेड़िये की समान आंखे बंद करके उनके पीछे २ चलेजाते हैं, जिन्हों ने जन्मभर तक अंग्रेजी बूकी और पचास वर्ष तक फारसी छानी, वह भी 'मुह्यन्तियत्सूरयः' वेदके तत्व प्रकाशकररहे हैं क्या समय है? आजकल वही धर्म है, जो हमैं पसंद है, वही शास्त्र है जो हम पढ़ें, वही संसार से उद्धार होने का उपाय है, जो हम लेक्चरदें--वाह क्या धर्म भी 'नानी जी का मीरास' है, हम जानते हैं कि परमेश्वर ने अपना सम्पूर्ण धर्म राज्य इन्हीं वितंडावादी वाक्शूर अदूरदर्शी कूप मंडूक अव्यवस्थित चित्तों के हाथ में सौंपदिया है कि तुम जैसा चाहो वैसाकरो कदाचित् दिल्ली की वहिश्तीकी तरह तीनदिनकी बादशाही इन्हैं मिलगई है किखूब कागज के घोडे दौडालो, हमें इस बातका बड़ा दुःख है कि जिस धर्म की गति युधिष्ठिर की समान धर्मराज और व्यास, वशिष्ठादि धर्म प्रचारकों ने भी ठीक २ नहीं जानी, उसे कलियुग के जीव खिलौना समझ रहे हैं। दिन भरमें तीन २ बार धर्म बदलता है, फिर धर्म क्या कुछभी नहीं जबानी जमाखरच यहकरो वहकरो पर करते कुछभी नहीं, न आप न उनके आचार्य घड़ीभरभी शुद्ध चित्त से धर्मका आचरण नहीं करते हैं ईर्षा, द्वेष, मत्सर, लोभ, मोह, मद, कामक्रोध सबके एका--धार चलाजाता

है, जो आज कल के धर्म प्रचारक ऋषि मुनि सन्यासी योगी यती पंडित बन रहे हैं। हा ? किसी ने सच कहा है ॥ श्लोकः—

गतागीतानाशं निगमपदवी दूरमगमत् ।
विनष्टाः श्रुत्यर्थाः क्वचिदपिपुराणं न सरति ॥
इदानींरैदास प्रभृति वचसा मोक्षपदवी
न जाने को हेतुः शिव २ कलेरपमहिमा ॥ १ ॥

गीता का ज्ञान नष्ट होगया. वेद का मार्ग दूर चला गया श्रुतियों के अर्थ उलट पुलट किये गये, पुराणों से श्रद्धा उठगई अबरैदासी इत्यादि शब्दों से अर्थात नौकरों सेही लोगों ने मोक्ष समझ रक्खा है। यह नहीं विदित होता कि इसका क्या कारण है, शिव२ यहसब कलिकी महिमा है, इस कारण कलियुगकी महिमा को देखकर विचार करना पड़ा है कि ऐसा कौनसा धर्म है कि जिसके करने से वर्तमान समय में मनुष्य अपने आप को मनुष्य कहलासकता है. सो बड़े भारी गूढ़ विचार के करने से यह निश्चय हुआ कि 'उपासना' के विनाकुछभी नहीं है, केवल उपासना के करने सेही मनुष्य लोक और परलोक का सुख भोग सकता है इसकारण मनुष्यमात्रको अवश्यही ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये, विना उपासना के जन्म निष्फल है, उपासना के करनेसेही हजारों जन्मों के पाप दूर होजाते हैं, यथा—

कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्त्तिप्रदं नृणाम् ।
प्रयाति विलमसद्यः सकृद्यत्रानुसंभृते ॥

कलियुगके अति उग्र पाप पुरुषोंको महानरककी पीडा देते हैं, परंतु वह सम्पूर्ण पाप विष्णुके स्मरण करते ही नाश होजाते हैं ॥ १ ॥

अपिचेत्सु दुराचारो भजतेमामनन्यभाक् ।
साधुरेव समन्तव्यःसम्यग्व्यवसितोहिसः ॥
भ० गी० अ० ९ श्लो ३० ॥ १

श्रीकृष्णजी कहते हैं जो दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरी उपासना करता है, उसे साधु (उत्तम) ही समझना चाहिये कारण कि वोह सत्मार्ग में प्रवृत्त होरहाहै। और वही सच्चो भावनावाला है ॥

अब सर्वसाधारण के ज्ञान के लिये उपासना का अर्थ किया जाताहै ।

'परब्रह्मपरमात्माके स्वरूपमें लीनहोनेका नामहीउपासनाहै'

वह सगुण और निर्गुण भेद से दो प्रकारकी होतीहै सगुण उपासना वह है कि जिसमें ईश्वरको शुद्ध बुद्ध नित्य सर्वज्ञ सर्वव्यापक कर्ता हर्ता दयालु सत्य पवित्र सर्वशक्तिमान मंगलमय सर्वान्तरयामी गुणों से युक्त मानकर आराधन कियाजाता है निर्गुण उपासना वह है कि जिसमें ईश्वर जन्म मरण से रहित निर्विकार निराधार संयोग वियोग में अतीत जानकर आराधन कियाजाताहै, परंतु आजकल नई रोशनी के वाक्शूर 'मम मुखे जिह्वा नास्ति' की भांति ईश्वरको सर्वव्यापक मानकर भी साकारोपासनामें घृणा उठाकर निराकारोपासनाका दावा बांधकर उभयतः भ्रष्ट होरहे हैं, अतः उनको सचेतन करने के लिये प्रथम वेदादि शास्त्रों से साकारोपासना कथनकर पीछे निराकार उपासना का वर्णन कियाजायगा और जो यह मंत्र पढ़ते हैं कि—

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषीपरिभूःस्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः । यजु० अ० ४० मं० ८

अर्थ (सः) सो परमेश्वर (पर्य्यगात्) अर्थात् आकाशवत् सर्वव्यापी है [शुद्धं शुक्रम्] अर्थात् शुद्धस्वरूप है, भौतिक प्रकाश विलक्षणज्ञानस्वरूप अथवा अलौकिक दीप्तिमान् परमात्मा है, (अकायम्) सूक्ष्म भूत कार्य लिंग शरीर वर्जित है (अव्रणम् अस्नाविरम्) स्थूल शरीर में वर्त्तमान व्रण और स्नाविर अर्थात् नाड़ी समूहकर वर्जित है इन दोनों विशेषणोंसे भौतिक स्थूल शरीर से विलक्षण कहा (अपापविद्धम्) अर्थात् धर्माधर्म रहित है इस विशेषण से जीवाभिन्न होने से प्रसक्त जो जीवोपाधि लिंग शरीरधर्म धर्म्माधर्मादि तीनों का निषेध किया है (कवि) अर्थात् सर्वज्ञ है (मनीषी) मनका प्रेरक है (परिभूः) सर्वोपरि वर्त्तमानहै, पूर्व उक्त अकायादि विशेषणसे भौतिक प्राकृत शरीरका निषेध किया है, इस अभिप्रायको स्वयंही यह मंत्र प्रकट करताहै (स्वयंभूः) इस विशेषण से (स्वयमेव ब्रह्म रुद्र विष्ण्वादि रूपेण भवति प्रादुर्भवतीति स्वयंभूः) आपही वोह परमात्मा अपनी विचित्र शक्ति से ब्रह्मादि रूप से होता है इस से स्वयंभूहै यही अर्थ गीता में स्पष्ट है ॥

* अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन् ।
प्रकृतिंस्वामधिष्ठाय संभवांयात्ममायया॥ भ.गी.अ.४श्लो.६

श्रीकृष्णजी कहते हैं हे अर्जुन ! मैं अज और अव्ययात्मा और सब भूतोंका ईश्वर भी हूं, तथापि अपनी प्रकृति स्वाभाविक सामर्थ्यको आश्रय कर (आत्ममायया) अर्थात् अपने संकल्प से होता हूं इससे अवतार सिद्ध है और जब परमात्मा ब्रह्मादिभावको प्राप्त हुआ तब (याथातथ्यतः) अर्थात् यथावत् (अर्थान्) कर्तव्य पदार्थोंको (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) दीर्घ वर्ष उपलक्षित प्रजापति मनुआदि हेतुओं से (व्यदधात्) विभागकर्त्ता हुआ । इसमें ईश्वरको अकाय लिखा तो इसमें भौतिक शरीर का निषेध है कारण कि इस मंत्र में ' अकाय ' पढने से फिर ' अव्रण ' व्रण रहित (अस्नाविरम्) स्नायु रहित इन दो विशेषणों की आवश्यकता नहीं थी जब शरीरही नहीं तो, व्रणादिका निषेध क्यों? इस मंत्रसेही स्फुट विदित होता है कि व्रण स्नायु आदि के शरीर से रहित होकर दिव्यमूर्त्तिहै कारण कि आगे यह पद पडा है कि वह (स्वयंभु) स्वयं प्रकट होनेवाला है, और स्वयं आगे भी वेद उसका आकार प्रकट करता है ॥

+ ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः ।
ऊरूतदस्ययद्वैश्यःपद्भ्यांशूद्रोऽजायत॥यजु०अ०३१मं०११

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रम से उसके मुख, बाहु, जंघा और चरणों से प्रकट हुए हैं, इससे भी ईश्वरकी साकारता प्रकट होतीहै इत्यादि प्रमाणों से उसकी साकारता सिद्धहै। वेद में ऐसे बहुतसे प्रमाण मिलते हैं कि जिससे ईश्वरका मूर्तिमान होना और उसका पूजनकरना साबित होता है ॥

✓ अन्धं तमः प्रविशन्तियेऽसम्भूति मुपासते। ३२६
ततोभूयइवते तमोयउसम्भूत्यांरता । यजु०अ४०मं० ९

जो पुरुष असंभूति अर्थात् विनाप्राण प्रतिष्ठाकीहुई प्रतिमाकापूजन करतेहैं वे अंधे हैं और नरक में जाकर पडते हैं, उसीप्रकार जो अन्तर्गत नारायण के स्वरूपको नहीं जानते बिना जानेही उपासना करते हैं वह भी नरक में जाकर पडते हैं ॥

यो देवेभ्य आतपतियो देवानां पुरोहितः ।

पूर्वोयोदेवेभ्योजातोनमोरुचायब्राह्मये । यजु० अ० ३१ मं० २०

जो ब्रह्मरूप परमेश्वर सूर्य चंद्र इत्यादि देवताओंको अपना प्रकाश देता है, जो ब्रह्मा आदि देवताओं का हितैषी और पूज्य है, जो ब्रह्माआदि देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुआ है उस ब्रह्मरूप परमेश्वरको नमस्कार है ॥

नमोहिरण्यबाहवेसेनान्येदिशांचपतयेनमोनमः य. अ. १६ मं. १७

हे परमेश्वर ! आपकी भुजा स्वयं प्रकाशमान् हैं और सम्पूर्ण संसारको धर्ममार्ग में चलानेवाले दिग्दिशाओंके पति जो आपहैं सो आपको नमस्कार है

उक्त मंत्रमें बाहु शब्द से प्रत्यक्ष ईश्वरका साकार होना सिद्ध है ॥

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय ।
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपं ईयतेयुक्ता ह्यस्य हरयःशतादश॥
१५३ **ऋग्वेद मं० ६ अ० ४ सूक्त ४७ मं० १८ ॥**

परमात्मा अपनी मायाको आकाररूप करके अनन्तावताराादिरूप अपने प्रगट करता है और अपने रूपकी बोधन (पहिचान) के लिये रूपकेप्रति अपनी सामर्थ सहित विद्यमान होकर उन रूपों के सदृश अपनारूप प्रकट करते हैं, वे अवतार संसार के दुःख हरनेको हरिनाम हैं. सो अनन्तहैं जिस में से दश अवतार अधिक प्रसिद्धहैं उपरोक्त मंत्रकी व्याख्यारूप बृहदारण्य उपनिषत् अ० ४ ब्रा० ५ से भी दर्शित है ॥

अयंवैहरयोऽयंवैदशचसहस्राणिबहूनिचानंतानिच ॥

यह हरिनाम परमात्माही अवतार रूप हैं—वे अवतार दश हैं, शतशब्द बहुत्व का बोधक है, इससे सहस्र तथा बहुत और अनन्त अवतार हैं—

विचारना चाहिये कि उक्त मंत्रोंसे ईश्वरका साकार स्वरूप तथा मत्स्यादि दशावतार तथा चतुर्विंशत्यवतारोंका होना भलीप्रकार से प्रकट हुआ, और इन्द्रादि तैंतीस किरोड देवताओं का होना और उनमें ईश्वर का तेज व्याप्त होने से सम्पूर्ण सामर्थ का होना भी भलीप्रकार से दिखाई देता है इस कारण साकारोपासना वेदके अनुकूल है ॥

और युक्ति से भी सिद्ध है यह युक्ति केवल उन पुरुषोंके युक्तिको खंडन के लिये और आस्तिक पुरुषों की भावनाको दृढ करने के लिये प्रकाश कीजाती है ॥

जिनकी यह मथमहीहटहै कि ईश्वर निराकारहै उसका साकार होना युक्ति से बाहर है, वह जरा नीचे लिखेहुए लेखको सबंदिकसे पढ़ें ॥

ईश्वर निराकार है, परन्तु जैसे निराकार क-ख आदि शब्दों में सुभीते के लिये आकार कल्पित कियाजाता है, जैसे देश भेद से एकही ककार में पृथक् २ आकार मानगये हैं, वैसे उपासकों के भेद से एकही परमेश्वर में हिरण्यगर्भ चतुर्भुज, नीलकंठ और अष्टभुजी आदि आकार कल्पना कियेजाते हैं

यद्यपि ईश्वर में चतुर्भुज आदि आकार कल्पित हैं परंतु वह ऐसे कल्पित नहीं हैं कि जैसे कोई अपनी भ्रांति से आकाश में पुष्पोंकी कल्पना करै, और ऐसे भी कल्पित नहीं है कि जैसे ककार आदि वर्णों का आकार कल्पित है, वह ऐसे कल्पित कियाजाता है कि जैसे स्वच्छ पत्थरमें गौ आदि की मूर्त्तियें कल्पित हैं. वह इसप्रकार कल्पित है ॥

देखिये जरा विचारने का स्थान है कि एक साफ बड़ेभारी पत्थरको जब कोई अपने आगे रखता है उस समय उसमें कुछ भी आकार उसको नहीं दीखता, अब यदि कोई वैज्ञानिक शिष्टजन उसको कहै कि 'इस पत्थर में' अत्यन्त सुन्दर दो गौ तीन हाथी एक घोड़ा और सुन्दर २ बेल बूटे विद्यमान हैं तो वह उसका कहना कभी सत्यनहीं मानेगा, वैसेही समझकर और भी हजारों आदमी देखें तो वहभी उस पत्थरको सफाही कहैंगे, कारण कि उस पत्थर में कुछभी चिन्ह नहीं दीखता है जबतक उसकी वही दृष्टि बनी है तबतक वह किसी के कहने पर विश्वास नहीं करैगा ।

जबतक आप संग तराशी के काम में चतुर नहीं होता वा वैसे चतुर का संग नहीं करता तबतकही यह दशा है, फिर जब उस कार्य में चतुर हुआ तो दश बीस अधिक रंगकी तस्वीरैं उस पत्थर के भीतर से स्वयं निकाल सकैगा, यदि कम चतुर हुआ तो उस पत्थर में से उक्त मूर्त्तियों का तो निकालना दूररहा, वरन उनका अनुमान होना भी महा कठिन है, तात्पर्य यह है कि उस विद्या में बिलकुल अज्ञान होने के कारण एक मूर्त्ति का भी दर्शन वा आविर्भाव नहीं करसकता ॥

अच्छा अब दूसरा जो उस कार्य में नियुक्त है, जिसनें कई बार अनन्त पत्थरों में से सहस्रों मूर्त्तियें निकाली हैं और प्रत्यक्ष साफ पत्थर में से निकालरहा है उससे पूछाजाय कि आपनें उक्त तस्वीरें जो इस पत्थर में से प्रगट की हैं वह कहां से आईं ।

यदि संगतराश कहै कि हमनें अपने हाथ से निकाली हैं तो हाथ से तो केवल उसके ऊपरका हिस्सा कुछ २ अलग किया है परन्तु मूर्त्तियें

कहां से आई ? यहां पर अंत में यही कहना पड़ेगा कि मूर्त्तियें तो पत्थर के भीतरही वर्तमान थीं, परन्तु मैंने अपने ज्ञान विचारसे उन्हें कुछ प्रगट किया है तो अब उसी कारीगर की जिह्वा से सिद्ध होगया कि पत्थरके भीतरे सेही वर्तमान मूर्त्तियां बुद्धि विचार के बलसे उत्पन्न हुई, लीजिये अब सूक्ष्म दृष्टि से विचारकर देखिये तो सही कि उन विद्यमान मूर्त्तियों के प्रगट हाने के प्रथम कारीगरकी मानसिक कल्पना अवश्यथी अर्थात् प्रथम उस पुरुषनें उन २ मूर्त्तियों का चिन्तवन किया तो फिर उनको पत्थर से निकाला, यदि वह एकाग्रचित्तसे चिन्तवन न करे तो मूर्त्तिका प्रादुर्भाव होना दुस्साध्य है ।

अब यह विचारना चाहिये कि जब कारीगर गौआदि मूर्त्ति को प्रादुर्भाव करसकता है तो क्या उपासक जिस प्रकार से चिन्तवन करेगा उसी प्रकार सेही चतुर्भुजी आदि मूर्त्ति के प्रगट होने में कोई संदेह रहेंगे ? नहीं नहीं कदापि नहीं ।

अब यहांपर यह भी साबित होगया कि साकारोपासना वेदानुकूल और युक्ति सिद्धहै, परंतु हे सरळ, बहुत समयतक साकारोपासना करके पुरुष निराकारोपासना का अधिकारी होसक्ता है, जबतक साकारोपासना में तत्पर न हो, तबतक निराकारोपासना का दावा बांधना महा अनर्थ का कारण है, परंतु साकारोपासनाको करते२ अंतिम निराकारोपासना में प्रवृत्त होना योग्य है इसकारण निराकारोपासनाका वर्णन कियाजाता है निराकार में मनका लगाना योगकी रीतिसे योग्यहै, सो शुद्ध और पवित्र होकर स्वच्छ एकान्त स्थान में स्थिरतासे बैठ फिर सत्‌चित् आनंद लक्षण वाले अन्तर्यामी सर्वव्यापी परमात्माकी ओर अपने मन इन्द्रिय और आत्माको जोड़े, जब धीरे२ यह ध्यान कुछ बढ़जाय, अर्थात् दूसरे चिन्तवन को छोड़कर घड़ी आधी घड़ी इसी चिन्तवन में स्थिर रहनेलगे तो स्तुति प्रार्थना समर्पण के मंत्रों को मन में पढ़े और साथही उनके अर्थ में मन को लगावे ॥

इसी चिंतवनको पतञ्जलिमुनि कृत योगशास्त्र के अ० १ पा १ सू २ में योग कहाहै है 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'

उपासना के समय चित्तवृत्तिको रोकनेका नाम योगहै, इस उपासनाको बढाने और मनको स्थिर करने के लिये गीतामें दो उपाय कहेहैं । १ अभ्यास दूसरा वैराग्य ।

जब मन ईश्वरके चिन्तवनको तज के बाह्य विषयोंकी ओर जानेलगे तो उसे बलात्कार से ईश्वरमें लगानेका नाम अभ्यासहै ॥

असद्वासना वा स्त्री, पुत्र, धन, धाम, पान, स्थानमानादि बासनाओं को उपासना के समय मन में न आने देना बैराग्य है ॥

पहले सुनेहुए मंत्रों और नामों को मन से चिन्तवन करते२ तन, मन, धन, ईश्वर में अर्पित करदेना बस यही उपासना है।

यदि कोई शंका करे कि तन, मन, धन के बिना अर्पण किये क्या उसना नहीं होसक्ती है तो अवश्य कहना पड़ताहै कि जबतक असद्वासना का त्याग और तन, मन, धन से मोह न दूर कियाजाय तबतक मनुष्य उपासक श्रेणी में नहीं गिनाजाता, क्योंकि तन अर्पित करने में अपने हाथों से सेवा तथा साधु जनोंको नमस्कार करने में लज्जा नहीं आती इस लज्जा के दूर होने से जाति, विद्या, कुल, बल, धर्म, धन इत्यादि पदार्थोंका अभिमान नहीं प्रवेश करेगा जो अत्यन्त अनर्थका हेतु और मोक्षका प्रतिबन्धक है मन अर्पित करने से एक तो धर्मके मार्ग में यदि कोई विपत्ति आजाय तो सहन करीजाती है, और दूसरा लोकलाज कुललाज, धर्ममार्ग से पीछे नहीं हटने देती, धन अर्पित करने से एक तो धन में अत्यन्त प्रीति नहीं रहती कि जो लोभ और तृष्णाको बढ़ाकर अनेक प्रकारके पापोंको प्रगट करदेती है ॥

और दूसरा धर्मके उत्सवों और सामाजिक उत्साहोंपर द्रव्य देना कुछ कठिन नहीं प्रतीत होता, इसमें धर्मकी वृद्धि और धर्मकी वृद्धि से पुण्य की प्राप्ति, पुण्यकी प्राप्ति से अंतःकरण की शुद्धि होती है, और वह शुद्धिमोक्ष के साधनों में से एक मुख्य साधन है, सो इसप्रकारसे प्रत्यक्ष फलोंकीओर मुख्यदृष्टि देकर तन, मन, धन ईश्वर में अर्पित करके मनुष्य उपासक नाम का अधिकारी होसकता है, जब उपासक उपासना करनेको स्थिर चित्त होकर बैठे तब जिस मंत्र वा जिस नाम का स्मरण करे तब उसी का जप और उसीकी भावना करनी चाहिये। यथा—

तज्जपस्तदर्थभावनम्॥ यो० अ० १ पा० १ सू० २८

इसीका जप करो और अर्थ विचारो उपासनाके समय जप करने और अर्थ के विचारने सेही उपासक उपास्यता को प्राप्त होता है और सम्पूर्ण क्लेशों से छूटजाता है ॥

ततःप्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यंतरायाभावाश्च यो.अ.१पा.१सू.२८

परमात्माकी प्राप्ति और उसके अविद्यादि क्लेशों तथा व्याधि आदिक विघ्नोंकी निवृत्ति होतीजाती है, व्याधि आदिक ९ विघ्न उपासनाके मार्गमें शत्रुहैं

व्याधिस्त्या न संशय प्रमादालस्या विरति भ्रांति दर्शना लब्ध भूमिकत्वा नवस्थितत्वानिचित्तविक्षेपास्तेन्तरायः । यो० अ० १ पा० १ सू० ३

१ व्याधि (ज्वरादिरोग) २ स्त्यान (सत्कर्मोंमें अप्रीति) ३ संशय ४ प्रमाद (समाधि साधनेमें प्रीति तो है परंतु ग्रहण न होसके) ५ आलस्य ६ अविरति (विषय सेवा में तृष्णाका होना । ७ भ्रांति दर्शन [उलटा ज्ञान] ८ अलब्ध भूमिकत्व [समाधिका न जुड़ना] ९ अस्थि तत्व [समाधि प्राप्त होजानेपर भी उसमें चित्तका स्थिर न होना यह नौ विघ्न उपासना के मार्ग में शत्रु हैं ॥

उपासक पुरुषका सांसारिक लोगों के साथ रहना इसप्रकार लिखाहै कि--

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावना तश्चित्प्रसादनम् । यो०अ० १ पा० १ सू०३३

सर्वसाधारणके साथ मित्रता करना दुखियोंपर दया रखना पुण्यात्माओं के साथ प्रसन्नता पापियों के साथ उपेक्षा रखना अर्थात् न उनके साथ वैर न प्रीति इस रीतिसे उपासकका मन सदा स्थिर और शांत रहता है ॥

उपासना के समय प्राणायामकी परमावश्यकता है, विना प्राणायाम के उपासना का होना दुःसाध्यहै, इस कारण प्राणायामरूपी उपासना का वर्णन करते हैं, भीतर से जब प्राणायाम बाहरको आवे तो उच्चारित मंत्र के साथ कुछ २ उसको बाहररोकै और जब भीतरजावै तो उसी मंत्र के साथ कुछ कालतक भीतररोके इसको प्राणायाम कहते हैं, इसरीतिके बारंबार करने से प्राण वश में होजाता है, प्राण वशमें हुआ तो मन स्थिरताको प्राप्त करता है और फिर उसमें आत्मा स्वयं स्थिर होजाता है, इन तीनों की स्थिरता हुए अपनी आत्मा में जो अन्तर्यामी परमेश्वर वर्तमान है उस के स्वरूप में मग्न होजाना चाहिये वह परमानंद का स्थान है ऐसा होजाने पर उपासक कहसकता है कि मैं उपासना में तत्पर हूं ।

इस उपासना योगके आठअंगहैं कि जिनके ग्रहण करनेसे अज्ञानकीहानि और ज्ञानकी वृद्धि होजातीहै फिर उसमें मोक्षरूपी सुखकी प्राप्ति होतीहै ।

यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यान समाधि योऽष्टांवंगानि । यो० अ० १ पा० २ सूत्र २६ ।

१ यम २ नियम ३ आसन ४ प्राणायाम ५ प्रत्याहार ६ धारणा ७ ध्यान ८ समाधि यह योग के आठ अंग हैं ।

(१) यम पांच प्रकार का है अर्थात् अहिंसा सत्य अस्तेय (चोरी न करना ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।

(२) नियम यह भी पांच प्रकार का है अर्थात् शौच (पवित्रता) संतोष, तप, स्वाध्याय (वेद पढना) और ईश्वर प्रणिधान (परमात्मा में प्रीति करना)

(३) आसन न ऊँचाहो न नीचा स्थिर शुद्ध आसन होना चाहिये कि जिस में शीत उष्णभी बाधा न करें और दृढ होना चाहिये ।

(४) प्राणायाम सो पहलेही कहचुके हैं ।

(५) प्रत्याहार मन और इन्द्रियों का जीतना ।

(६) धारणा मनको चंचलता से छुड़ाकर नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जिह्वा के अग्रभाग आदिक स्थानों मे स्थिर करके मनमें मंत्रको जपै और उसके अर्थ को विचारै ।

(७) ध्यान पूर्वोक्तस्थानों में व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा के आनंद स्वरूप को पूर्ण देखना ।

(८) समाधि आत्माकी प्रकाश स्वरूप परमात्मा के आनंद और ज्ञान से परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं ।

बस पूर्वोक्त रीतिसे उपासना करता हुआ अविद्या और अधर्माचरण से छूटकर शुद्धज्ञान और धर्म के अनुष्ठानसे मुक्तिपदको प्राप्त होता है ॥

मय्यावेश्यमनोयेमानित्ययुक्ताउपासते । श्रद्धयापरयोपेता स्तेमेयुक्तमामतः । भ० गी० अ० १२ श्लो० २

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन जो मनुष्य सर्वदाही मेरे संयोगी की रक्षाकरते हैं, वह मेरे को अत्यन्त प्रियजानकर मुझ में अपने मनको लगाये हुए मेरी उपासना करते हैं अर्थात् सर्व लौकिक और वैदिक कर्म मुझमेंही अर्पण करते हैं वे उत्तम उपासक हैं । फिरभी भगवद्गीताके १२ अध्याय के दूसरे और चौथे श्लोक में कहा है कि—

येत्वक्षरमनिर्देश्य मव्यक्तं पुर्युपासते ।
सर्वत्रगंचिन्त्यञ्चाकूटस्थंमचलंध्रुवम् ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
तेप्राप्नुवन्तिमामेव सर्वभूत हितेरताः ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को स्वाधीन करके सबको अभेद दृष्टि से देखने वाले और सम्पूर्ण प्राणियों के हितकरने में निरत होकर जो पुरुष विनाश रहित अनिर्देश्य (अर्थात् देव मनुष्यादि शब्द के निर्देश करने के अयोग्य) अव्यक्त (चक्षु--आदि इन्द्रियों से अग्राह्य) सर्वव्यापक चिन्तवन करने को अशक्य, कूटस्थ (अर्थात् सब काल में एकही रूप से स्थित) निश्चल और सदा एकरस ऐसे मेरे रूपकी उपासना करते हैं वे उपासक भी मुझको प्राप्त होते हैं, यह भगवान का वाक्यहै, इत्यादि वाक्यों से निःसन्देह सिद्ध होगया कि मनुष्य को ईश्वरकी उपासना अवश्य करनी चाहिये हैं कारण कि प्राचीन उपासकों ने यह सिद्धांत किया है कि मनुष्य के अन्तःकरण में जो एक विक्षेप दोष है उपासना के बिना उसका नाश नहीं होता अर्थात् उपासना का फल विक्षेप दोषको नाशकरता है । 'ईश्वरोपासना' के जितने ग्रंथ हैं, सबमेंही उपासना मार्ग दो प्रकार से प्रकाशित हैं इस कारण यहांभी दो प्रकारकी उपासना कही गई है, परन्तु फिर भी सम्प्रदायों और महर्षियों की इस बात में यह सम्मति है । कि पुरुषको प्रथम साकारोपासना करनी मुख्य कर्तव्य है चिरकाल तक साकारोपासना में मनकी वृत्तिको लगावे तभी निराकारोपासना का अधिकारी होसकता है ।

जो पुरुष साकारोपासना को पाखंड कहकर निराकारोपासना का झंडा झुकारहा है आशा है कि वह मोह मायाकी हवा में उड़ा हुआ अवश्य उन्मत्त ब्रह्मंडली का आचार्य बनादिखाई देगा, हे प्रियपाठकगण ! यदि तुम्हारा ईश्वर में सच्चा प्रेम है यदि तुम उस जगदीश्वर को सच्चे प्रेम से भजतेहो तो यह सत्यमानना कि बिना साकारोपासनाके निराकारोपासना करने के लिये जोलोग तैयारहोतेहैं, वह ऐसे थोथे रहजातेहैं जैसे कोई बिना बाजक फलको नहीं पासकता, जैसे वर्ण बोधके बिनापुस्तक नहीं पढ़ सकता है मूर्ख से भी मूर्ख समझसकता है कि पहले अक्षरों की पहचान होगी तब पुस्तक पढ़ने की भी व्याकल होगी जो कहै कि मैं वर्णमाला को

चाहता समझता हूं अक्षरों का सीखना टक्करमारना है मैं झटपट किताबको पढ़ना चाहता हूं सो अब जराकहिये कि उसको क्या कहनाचाहिये इसका उत्तर हमारे पाठक स्वयं समझगये होंगे, अब हमारी अपने पाठकोंसे यही प्रार्थना है कि सम्पूर्ण मनुष्यों कोही साकारोपासना करनी कर्तव्य है अर्थात् प्रथम साकारोपासनाही करनी चाहिये क्योंकि वेदादि सच्छास्त्रों द्वारा सर्व सम्मत उपासना का लक्षण यह कियागयाहै कि—

"तस्मिन्प्रीतिस्तत्प्रियकार्यसाधनं तदुपासना"

इस का अर्थ यह है कि ईश्वरमेंही प्रीति और उसके प्रियकार्य करने का नाम उपासना है इस उपासना के लक्षण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस सच्चिदानंद आनन्दघन परमेश्वर में प्रेम बँधाने के लिये ईश्वरकी प्रसन्नता के अर्थ कामकरते रहना. उस परमात्मा को प्रसन्न करने के काम यही हैं कि पूजन करना हरि मंदिरोंमें जाना, उत्सवों का देखना ईश्वर के चरित्रों का देखना उसके गुणानुवादकरना ईश्वर के नामार्थ दानों का देना उसके स्वरूप को देखनेके लिये लीलाओंका देखना इत्यादि बातोंओं के देखते २ ईश्वर के सच्चे आनंदरूप में लीनहोने काही नाम उपासना है ॥

अवतार।

मत्स्यादिभिरवतारै अवतारवतासदावसुधाम्।
परमेश्वरपरिपाल्यो भवताभवतापभीतोऽहम् ॥ १ ॥

इस समय जैसे और विषयों परअनेक प्रकार के तर्क वितर्क होरहेहैं इसी प्रकार अवतार विषयमें भी नानाप्रकार के संदेह उठनेलगे हैं, आजहम उन संदेहों को क्रमसे दूरकरते हुए अवतार विषयमें कुछ लिखेंगे ॥

ईश्वर के अवतार लेने में प्रथम उसका जन्म होता है वा नहीं इस विषय में विचार करते हैं, तो पहले यह विचार कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार ईश्वर को अज पढ़ा है इसी प्रकार जीव को भी अज पढ़ा है जैसे—

नजायतेम्रियतेवाविपश्चिन्नायं भूत्वाभविताबानभूयः।
अजोनित्यःशाश्वतोयंपुराणो नहन्यतेहन्यमानेशरीरे।
कठवल्लीउपनिषद्० ॥"

अर्थात् यह जीव मरता जन्मता नहीं न हुआहै न होगा, यह अजन्मा

शाश्वत पुरातन है शरीरके नष्ट होने में नष्ट नहीं होता, जबकि जीव भी अजन्मा होकर जगत् में प्रादुर्भाव तिरोभावको प्राप्त होता है तब ईश्वर जो सर्व शक्तिमान है उसके आविर्भाव तिरोभाव में क्या दोष आसकता है जो लोग ईश्वर के अवतार में शंकाकरते हैं उनका प्रथम प्रश्न यह है कि 'सर्व शक्तिमान ईश्वर को अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता है ?' अब यहां यह देखना चाहिये कि सर्वथा पूर्ण काम सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मा का क्या अटकाथा जो उसने सृष्टिरची और किस आवश्यकता के पराधीन हो उसने इतनाजालरच इसके नियमका भार अपने सिरपर लिया। इसप्रकरण में जितने ईश्वर वादी हैं सब आवश्यकता बतलाने के लिये चुप हैं और यदि बोलते हैं तो सब मिलके एकही उत्तर देते हैं कि यह भगवल्लीला है। देखिये सर्व प्रमाण शिरोभूत उपनिषद में रमणेच्छा अर्थात् लीलाही कही है। बृहदारण्यक चतुर्थ ब्राह्मण श्रुति ३ में लिखा है॥

+ **सवैनैवरेमे तस्मादेकाकीनरमते स द्वितीयमैच्छत्॥**

अर्थात् वह रमणनहीं करते थे, अकेले रमण न किया, दूसरे की इच्छाकी तो जिस पूर्णकाम षडैश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वरने कोटि २ ब्रह्माण्डोंकी रचना केवल लीला के लिये करडाली है उसने यदि उसलीला मात्रके लिये अवतारभी धारण कियेहों तो क्या असम्भव है। अतएव पूर्वाचार्य्य भी यही अवतार का कारण स्थिर करते आये हैं जैसे श्री मद्भागवत के गर्भ स्तुति में देवताओं ने कहा है।

+ **नतेभवस्येशभवस्यकारणंविनाविनोदं बततर्कयामहे।**

भा०स्कं० १० अ० २ श्लो० ३९॥

आपके प्रादुर्भावकाका कारण हमलोग विनोदके सिवाय और कुछ नहीं सोच सकते और,—

"क्रीड़नेनेहदेहभाक्। भा०स्क० १०अ० ४०श्लो० १६।"

"यानियानीहरूपाणिक्रीड़नार्थं विभर्षिहि"।

अर्थात् आप जो २ रूप क्रीडाके लिये धारण करते हैं। इस प्रकार अवतारों में लीलामूल कारण रहते भी अवतारों के प्रायःतीन उद्देश्य और भी देखेजाते हैं (१) दुष्टोंका दमनपूर्वक सत्पुरुषोंकी रक्षा, तथा (२) धर्म की रक्षा पूर्वक जगत् का मंगल, और (३) सगुण लीला द्वारा उस

समयके प्रत्यक्ष उपासक तथा भविष्यत् कालके उपासकोंका सौकार्य साधन।

परित्राणायसाधूनांविनाशायचदुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थायसम्भवामियुगेयुगे। गी. अ. ४ श्लो. ८
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपिचेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्तेधर्मस्यार्थस्यचैवहि। भा. स्कं. ८ अ. २४ श्लो. ५
बिभर्षिरूपाण्यवबोधआत्माक्षेमायलोकस्यचराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानिसुखावहानिसतामभद्राणिमुहुःखलानाम्।
भा० स्कं० १ अ० २॥

इन सब वचनों से जीवों का उद्धार करना अवतार का उद्देश्य प्रगट होताहै, यों अवतार के समकाल जीवों के उद्धार में तो समस्त अवतार चरितही प्रमाण हैं।

दूसरा प्रश्नयह है 'सर्वव्यापक' का अल्पपरिमाण में परिच्छिन्न होंना कैसे सम्भव है ?।

(२) ऐसे संशयपर परमात्मा के विषय में भी ऐसा पूर्वपक्ष करना बहुतही आश्चर्य है। जब उदाहरण स्वरूप आकाश से पंचभूतकी उत्पत्ति नहीं और भगवान् सर्व सृष्टि कर्त्ता सर्व शक्तिमान हैं और मनवाणी से अगोचर हैं, जैसे कि—

"जानन्तएवजानन्तुकिंबहूक्त्यानमेप्रभो।
मनसोवचसोवाचोवैभवंतवगोचरः" भा. स्कं. १० अ. १४ श्लो. ३८
"यतोवाचोनिवर्त्तन्तेअप्राप्यमनसासह" इत्यादि—

श्रुति भी प्रसिद्ध है, तब उन पूर्ण पुरुषोत्तम के विषय में यह प्रश्न कैसे होसकता है। और योंतो आकाश कालआदि में व्यापकत्व सहचरित चेतनत्वाभाव देखके कदाचित् ईश्वर में चेतनत्वाभाव का भी अनुमान कोई करदाले। परन्तु यह सब निरर्थकहै। क्योंकि जब परमात्मा सर्व शक्तिमान और जगत् विलक्षण हैं तो आकाशादि पदार्थ की समान उनका स्वभाव नहीं समझाजासकता वास्तव में तो सर्वव्यापक सच्चिदानंद परमात्मा कहीं अपने आकार को प्रगट करदेतेहैं। और सर्व व्यापकही रहते हैं और एक देश में आकार रहता है इस में बाधक क्या है ?।

अवतार रूपमें प्रधान आकार एक देशमें रहतेभी भगवान ने अन्यत्र अपने अनेक रूपदिखलाए हैं जैसे अक्रूर को जलमें दिव्य रूपदिखलाया (भा० स्कं० १० अ० ३९) गोपियों को रासलीला में अनेक रूप दिखलाये (भा० स्कं० १० अ० ३३ श्लो० ३ और २०) और ब्रह्मा को नानाप्रकार के भिन्न २ आकार तथा रूप दिखलाये (भा० स्कं० १० अ० १३) फलितार्थ यह हुआ कि आकार मात्र अवछिन्न होतेहैं कुछ ब्रह्मका अवछिन्नत्व नहीं होता किन्तु परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापकही हैं । कभी एक स्थान में एक दिव्याकार प्रगटकरते हैं कभी अनेक दिव्याकार प्रगटकरते हैं कभी उस दिव्याकार को भी अन्तर्हित करते हैं (भा० स्कं० १० अ० ३०)

अन्तर्हितेभगवतिसहसैवव्रजांगनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाःकरिण्यइवयूथपम् ॥

और कभी फिर प्रकट करते हैं (भा० स्कं० १० अ० ३२)

तासामाविरभूच्छौरिःस्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वीसाक्षान्मन्मथमन्मथः ॥"

और यजुर्वेद संहिता अ० १६ मंत्र ३० में लिखा है—

नमोह्रस्वायचवामनायच नमोबृहतेचवर्षीयसेच । ३०

इत्यादि प्रमाणों से जबकि परमात्मा में ह्रस्वत्वभी सिद्धही है तो विवाद क्या ? ।

(३) तीसरा प्रश्न यह है कि अलौकिक लीला विशिष्ट परमेश्वर को मानव लीला शोभित नहीं ।

१ परमेश्वर को मानव लीलाका अशोभित होनाही इस प्रश्न तथा संशय का मूलहै सो पहले इसको तो निर्णय कियाजाय कि परमेश्वर को कौन सी लीला सजती है और कौनसी नहीं । परमेश्वर के लिये यह कौनसी अच्छी बात है कि बारबार सृष्टि करें और बार २ प्रलय करें । पूर्ण काम के लिये सृष्टि लीलाही किसयुक्ति से सजती है ? और सृष्टि लीला सजी तो लीलान्तर्गत दूसरी अवतार लीला क्यों नहीं सजती ? इस से यहसिद्ध हुआ कि जब परमात्मा लीलाही करने लगे तो उनको सबलीलाही शोभित हैं, इसकारण मनुष्य लीला भी ईश्वरके अवतारों के विरोध में नहीं है ।

२ जो सर्व शक्तिमान हैं उनको मानवलीला धारण की शक्तिहै और इस लिये भगवान् क्रीड़ा करने के अर्थ उसी शक्तिका उद्भवकरैं तो आश्चर्य क्याहै?

३ भगवान का यह स्वभावही है कि जो सच्चे प्रेम से जैसी उपासना करते हैं उनके लिये वैसाही रूपधारण करके उनका उद्धार करना जैसा कि मण्डूक० ब्रा० और गी० में लिखा है—

'यथायथोपासतेतदेवभवतितद्धैनान्भूत्वाभवति ।.

'येयथामांप्रपद्यन्तेतांस्तथैवभजाम्यहम् ॥,

इत्यादि, तो जिन नन्द यशोदा वसुदेव देवकी आदि ने तपकर यही वर मांगाथा कि आप हमारे पुत्रहों, उन्हीं के अनुसार आपको मानवरूप लेना पड़ा है, और उस स्वरूपादि की प्रकृति के अनुसार और २ लीला भी हैं।

इसी स्थान में यहभी समझने की बात है कि अवतार लीला के प्रयोजक तीन हैं १ प्रार्थना २ प्रकृति और ३ इच्छा ।

प्रार्थनानुसार । जैसे नन्दादिकी प्रार्थना के अनुसार आपने अवतार ग्रहण किया । और गोपी आदि की जन्म जन्मांतर की प्रार्थनानुसार अनेक लीलाकरीं । और ऋतुग्रामादि की प्रकृति के अनुसार भी विविध लीला करीं तथा केवल जगत् के उद्धार की इच्छा से भी विविधलीलाकरीं अर्थात् कोई लीला भक्तों की प्रार्थनानुसार और कोई अपनी प्रकृति के अनुसार होती हैं । जिससमय चारों ओर जलहीजल भरा है वह प्रकृति किरीट कुंडलादि सुशोभितरूप नहीं चाहती किन्तु मत्स्यरूपही उसके अनुकूलहै । जबजलमें निमग्न मंदरको धारण करताहै तबकाठिन पृष्ठवाला कच्छपावतारही प्रकृतिकेनुसार है, कीचड़ में घुसकर पृथ्वी निकालनेके लिये शूकरावतारही प्रकृति के अनुकूल है । इस प्रकार प्रकृति आदिके अनुकूल भगवान को पशुलीला पर्यन्त शोभित होती है, फिर मानवलीला में क्या संदेह ? यह भी जानना अवश्य है कि भगवदवतार की लीला लौकिक और अलौकिक भावसे भरीहोती है । अलौकिक भाव अद्भुत रससे भराहोता है और अलौकिक भावके प्रगट होने से देखने सुननेवालों के हृदयमें अवतार स्वरूप का साक्षात् ईश्वर होना जमजाता है । फिर जब भगवान लौकिक लीला का प्रादुर्भाव करते हैं तब कुछ ईश्वर भावकी प्रभारहते लौकिक भाव मिलने से एक अपूर्व माधुर्य होता है । उलूखल बंधन मुखमें त्रिलोकी दर्शन आदिका आनन्द वेही लोग जानते हैं जो अधिकारी हैं । इन लीलाओं का माधुर्य लोकोपकारार्थ होजाता है क्योंकि सुनते कहते लोग करते हैं जैसा कि भा० स्कं० १० अ० २ श्लो० १७ में लिखा है ।

शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानिरूपाणि च मंगलानिते।

क्रियासुयस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचित्तोनभवायकल्पते।

और इससे निर्लेप सच्चिदानन्द की कोई हानि नहीं है जैसा कि भा० स्कं० ८ अ० २४ श्लो० ६। में लिखाहै कि—

उच्चावचेषुभूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः।

नोच्चावचत्वंभजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः॥

इस रीति से अधिक माधुर्य्य सम्पादक मनुष्य लीला परमेश्वर को सदा शोभित है।

(४) प्रश्न यह है, कि 'अवतारों में जीव से अधिक प्रताप क्या है?'

१ यदि विचार के देखो तो जीवों से बहुतही विलक्षणता अवतारों में है। पहले तो प्रगटता के समयही से अद्भुत रस उमग उठता है। जैसे श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म समयही में किरीट कुंडलादि से भूषित चतुर्भुजी मूर्त्ति दिखाई। जैसाकि भा० स्कं० १० अ० ३ में लिखा है—

तमद्भुतंबालकमम्बुजेक्षणंचतुर्भुजंशंखगदाद्युदायुधम्।

श्रीवत्सलक्ष्मंगलशोभिकौस्तुभंपीतांबरंसांद्रपयोदसौभगम्॥

महार्हवैदूर्य्यकिरीटकुंडलत्विषापरिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।

उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानंवसुदेवऐक्षत॥

इत्यादि। और फिर प्रायः ऐसा कोई भी अवतार नहीं है जिसकी आदि से अन्त तक सबलीलाओंका अद्भुतरस नहो। जैसे मत्स्यका बढ़ना, कच्छका मंदर धारण, बाराहका पृथ्वीका उद्धार, नृसिंहका स्तम्भ से प्रगट होना, वामनका बढ़ना इत्यादि। और श्रीकृष्णावतारतो अद्भुत लीलाओं का भांडारही है।

और दूसरे चित्ताकर्षणरूप माधुर्य्य की पराकाष्ठा अवतारों में परम विलक्षण है। यह बात जीवों में होही नहीं सकती कि जहां खड़ेहों वहां के तिर्य्यक् पर्य्यन्त चेतन तथा जड़ लता वृक्षांकुरादि परवश सेही स्तम्भित हो जांय। और साक्षात् होतेही सबके अन्तःकरण तद्रूप होजांय। यह अपूर्व

माधुर्य्य और वशीकरण आकर्षण केवल प्रभुही में है । श्री० भा० स्कं० १० अ० २१ देखो ।

(५) प्रश्न यहहै कि पूर्णावतार और अंशावतार में क्या भेद है ?

वास्तव में तो ब्रह्मताकी दृष्टि में सभी पूर्णावतार हैं, परन्तु जो अवतार एकही उद्देश्य से हुआ और एकही अथवा थोड़ेही उद्देश्यों का साधनकर तिरोहित हुआ वह मत्स्य कच्छादि रूप वाला अंशावतार कहलाता है और जो अवतार अनेकानेक उद्देश्यों से हुआ है तथा असंख्यात नाना लीला कर अन्तर्हित होता है वह पूर्णावतार कहलाता है जैसे रामावतार कृष्णावतार,

श्रीकृष्णावतार में तो चारों ओर से पूर्णतावरसी पड़ती है । इधर बाल लीला पूर्ण, कौमारपूर्ण, वीरता पूर्ण, दयापूर्ण, योंही अद्भुत शृंगारादि रसों की भी पूर्णता भगवान के पूर्णावतार होने को प्रगट करती है । विरुद्ध धर्माश्रयत्वभी परब्रह्मका स्वभाव है ऐसा शुद्धाद्वैत का सिद्धान्त है, और अलौकिकता के कारण विरुद्ध धर्माश्रयत्वहो होसकता है यह सभी भक्ति कांडवालों का आग्रह सिद्धान्त है सोही श्रुति सम्मत भीहै जैसे कि श्रुति-

"अणोरणीयान्महतोमहीयान्" ।

"नमोह्रस्वायच वामनायचबृहतेच" ॥

"नमोज्येष्ठायच कनिष्ठाय च" । "तदेजतितन्नैजति" ॥

इत्यादि । विरुद्ध धर्म भी कृष्णावतार में भगवान ने पद २ में दिखलाये हैं । जैसे अशक्ति और अंगकी कोमलता इतनी कि बच्चे की पूंछ पकड़ते तो बच्चा खेंचलेजाता । शक्तिमत्ता इतनी की कि गोवर्द्धन धारण किया शैशवता इतनी कि अपनी क्रीड़ा में समस्त ब्रजको फँसाया । और प्रमाणिकता इतनी कि केवल अपने उपदेश के बलसे इन्द्र पूजा फेर के गोवर्द्धन पूजा करादी । एक समय ऐसे हलके कि यशोदा खिला रही हैं और एक समय ऐसे भारी कि तृणावर्त्तको भी लेपड़े । और ब्रह्मा को उसीक्षण एकत्व तथा अनेकत्व भी अपने स्वरूपही में दिखलाया और द्विभुजत्व तथा चतुर्भुजत्व दिखलाया इत्यादि विरुद्ध धर्म्माश्रयत्व परब्रह्मही के चिह्न हैं सो श्रीकृष्णकी पूर्णता के सूचक हैं ॥

(एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय) यह ब्रह्मकी इच्छा है और भगवान् ने भी रास में ब्रह्मा के आगे, तथा श्रीद्वारका रनवास में एकसे अनेक होना दि-

खलाया । यह भी पूर्णता के सूचक हैं । परमात्मा अपनी इच्छासे अपनेही में प्रपञ्चका प्रादुर्भाव करते हैं यह ब्रह्मकी पूर्णशक्ति है सो भगवान् कृष्ण ने भी दोबार तो यशोदाको मुखारविन्द में त्रिभुवन दिखाया था ॥

(९)प्रश्नयहहैकि(अवतारों के शरीर पांच भौतिक हैं अथवा अलौकिक)?

अवतारों के लीला प्रकरण देखने से पांच भौतिक की अपेक्षा अपांच भौतिक अलौकिक धर्म्मही अधिक मिलते हैं । जैसे कृष्णावतार के जन्मके समय चतुर्भुज रूपसे दर्शनदेना, पुनः द्विभुज होना, इच्छामात्रसे सबको निद्रित करना, पूतना तृणावर्त्तादि वध, कालीय मर्दन, गोवर्द्धनोद्धारण, रास में तथा ब्रह्मा के सन्मुख नानारूप धारण, अन्तर्धान प्राकट्यादि, कुवलयापीड़ नाशन, सभा सहित मथुरावासियों का द्वारका में प्राप्त करना, अर्जुनको विश्वरूप दर्शन इत्यादि सहस्रशः ऐसे अलौकिक धर्म मिलते हैं, तो अब निष्पक्षपात होके परीक्षा करनी चाहिये कि यह दोनों प्रकारके धर्म्म पांच भौतिक में सम्भव हैं कि अलौकि दिव्य में । पांच भौतिक पाषाण वनस्पति आदि पदार्थों में तो जो गुण नियत हैं सो हैं वोह न बढ़ते हैं न घटते हैं । इन पदार्थों में नियत गुण युक्तत्वही एक प्रकार का लौकिकत्व है । और एक पाषाण खंडभी यदि गुरुत्व श्यामत्व कठोरत्वादि यावत् पांच भौतिक गुण विशिष्ट हो परन्तु देखते २ अन्तर्हित होजाय फिर नाना रूपसे प्रगट हो फिर सूक्ष्म बृहत् आदि नाना आकार धारण करै फिर ज्यों का त्यों होजाय तो पूर्वोक्त लौकिक गुण रहने भी वह अलौकिकही मानाजायगा अर्थात् लौकिक धर्म अलौकिक धर्म के बाधक नहीं होते किंतु एकभी अलौकिक धर्म हो तो लौकिकताका बाधक होजाता है । अलौकिक धर्मका लौकिक धर्म बाधक होना ऐसा पामर लोगों में प्रसिद्ध है कि कोई मराहुआ पुरुष फिर कहीं देखपड़े तो उसका रंगरूप आकार स्वभाव बोल चाल सब पूर्ववत् हो तोभी दग्ध होने के पश्चात् फिर आना यह एकही ऐसा प्रबल अलौकिक धर्म मानाजाता है कि उसको प्रेत भूत देव कहबैठते हैं । यह नहीं बिचारते कि नाना धर्म तो बेही पूर्ववाले हैं एक नया हुआ तो क्या । अर्थात् लौकिकत्व का बाधक अलौकिकत्व है । सो कृष्णावतार में लौकिक धर्म रहते भी अलौकिकताके प्रधान होने से उन दोनों का अलौकिकत्वही सिद्ध होता है । कतिपय लौकिक धर्म भी दिखलाना उस अलौकिकता का भूषणही है दूषण नहीं । फिर लौकिकता पूर्वपक्षीने जैसी

समझी है वैसी नहीं हैं जैसा श्री० भा० स्क० १० 'ततोजगन्मङ्गलमच्युतांशम्' इस श्लोक में स्पष्टही कहा है कि 'मनस्तःदधार' अर्थात् जैसे और स्त्रियें उदर में गर्भधारण करती हैं वैसे देवकी ने धारण नहीं किया किन्तु देवकीने मन में धारण किया। ऐसेही जन्मसमय में भी श्रीशुकाचार्य्य ने स्पष्ट कहा है कि 'आविरासीत्' अर्थात् भगवान् प्रकट हुए। इसीसे जाना जाता है कि भगवान ने और बालकोंकी तरह जन्म नहींलिया किन्तु जैसे खम्भे से प्रकट हो नृसिंहावतार धारण किया वैसही कौशिल्या और देवकी के गर्भ से प्रकट हो राम कृष्णावतार धारण किये। और गौर होना श्याम होना बड़ होना यों सबही धर्म न होते तो अवतारही क्या हुआ तब तो निर्गुण स्वरूपही रहा सो भेद यही है कि परब्रह्म महानारायण पुरुषोत्तम को तो यह महिमा है कि अपनी अवगाहन शक्ति स्वरूप इच्छासे सृष्टिस्थिति संहारलीला करते रहते हैं और वही भगवान् वैकुंठनाथ तथा शेषशायी स्वरूप से भक्तोंका उद्धार तथा जगत् का पालन करते हैं। इनका मानव लीलापर आग्रह नहीं है किन्तु दिव्यविभूति तथा दिव्य लीलामें विराजमान रहते हैं और अवतार तो प्रधानतः मर्त्य लोकमें मानव लीला के अनुकरणमेंही है। सो कौमार पौगंडादिवयोभेद से रूपभेद दिखलाना और हर्ष शोकादि तथा युद्धोंमें रुधिर क्षतादि दिखलाना मानवलीला हैं ऐसेही क्षुधा पिपासा निद्रा आलस्य क्रोधादि भी मानवलीला के ही अङ्ग हैं। प्रभु जब चाहते हैं तभी अपने दिव्य शरीर को अदिव्य पांच भौतिकवत् दिखलाते हैं यह उन लौकिक शरीरोंकी अधिक अलौकिकता है।

(७) प्रश्न यह है कि ईश्वर अवतार लेते हैं इसमें प्रमाण क्या?

प्रतद्विष्णुःस्तवते वीर्य्येण मृगोनभीमःकुचरोगिरिष्ठः।
यस्योरुषुत्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षयन्तिभुवनानि विश्वा।

२९५ **ऋ० मं० १ अ० २१ सू० १५४ मं० २**

मृगवत् नृसिंहरूपधारी परमेश्वर अपने पराक्रम से स्तुति को प्राप्त होता है, पृथ्वी में विचरता है नृसिंहादि रूपसे और कैलासमें शिवरूप से निवास करताहुआ त्रिविक्रम अवतार में तीनपद न्याससे चतुर्दश भुवनों को कंपायमान करता है॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् समूढमस्यपांसुरे

२९ **ऋ० मं० ३ प्र० १ अ० मं० ६।**

अथवा त्रिविक्रमावतारी वामनजी इस विश्वको उल्लंघन करते हैं तीन पगधरते हैं एक भूमि दूसरा अन्तरिक्ष तीसरा स्वर्ग में इन के चरण में चतुर्दश भुवन ब्रह्माण्ड सम्यक् अन्तर्भूत होता है ।

१ त्वंस्त्री त्वंपुमानसि त्वं कुमारो उतवाकुमारी । ४८
त्वंजीर्णो दंडेन वंचासि त्वंजातो भवति विश्वतोमुखः ॥

अथर्व कां० १० अ० ४ मं० २७

हे भगवन् ! आपही भारती भवानी श्रीरूप वा होहनीरूप अवतारों से स्त्री रूप हैं तथा परशुरामादि अवतारों से पुमान् हैं वामन अवतार से कुमार हैं वा सनत्कुमारादि रूपसे, और वैष्णवी दुर्गादि रूपसे कुमारी हैं और आपही वृद्ध ब्राह्मण रूप होकर दंड करके [वंचसि] गमन करते हो आपही कृष्णावतार में विश्वरूप होके प्रतीत होते हो ॥

इस मंत्र में सवही इतिहास पुराण प्रतिपाद्य अवतारों की सूचनाकी है इस कारण यह मंत्रही सबका मूल है । अब रामावतार को सुनिये ।

भद्रोभद्रया सचमान आगात् स्वसारञ्जारो अभ्येतिपश्चात्
सुप्रकेतैर्द्युभि रग्निर्वितिष्ठन्न शद्भिर्वर्णै रभिराम मस्थात् ॥

२८ सामवेदे उत्तरार्चिके १५ अ०२ खं० १ सू० ३

भद्रराम भद्रासीताजी के साथ प्रगट हुए, तब जार रावण ने ऋषियों के रुधिर से उत्पन्न होनेके कारण अपनी भगिनी की समान जानकी को हरण किया पीछे अन्त काल में क्रोध से प्रज्वलित रावण ने सन्मुख होकर कुम्भकरण आदि के जीवात्माओं के साथ श्री रामकी समीपता को पाया ।

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोतावेदिषद तिथिर्दुरोणसत्
नृषद्वर सदृतसत् व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा
ऋतं बृहत् यजु० अ० १० मं० २४ । १२- २४

वह भगवान् (हंसः) अहंकार हारी (शुचिषत) आदित्य रूप से दीप्ति में रहने वाले (वसु) मनुष्यों के प्रवर्त्तक (अन्तरिक्षसत्) वायु रूप से आकाश में रहने वाले (होता) देवताओं के आह्वान करने वाले (वेदिषत) अग्नि रूप से वेदी में बैठने वाले (अतिथिः) अतिथि रूप से सब के पूजनीय (दुरोणसत्) आहवनीय से यज्ञ में बैठनेवाले (नृषत्) राम

कृष्ण वा प्राण रूप से मनुष्यों में होने वाले (वरसत्) उत्कृष्ट स्थान लेखादि में बैठने वाले (ऋतसत्) यज्ञ वा सत्य में स्थित होने वाले (व्योमसत्) मंडलरूप से आकाश में स्थित होने वाले (अब्जाः) मत्स्यादि रूपसे जल में होनेवाले(गोजाः) पृथ्वीमें चतुर्विध भूत ग्रामरूपसे होनेवाले (ऋतजाः) सत्य में होनेवाले (अद्रिजाः) पाषाण में मूर्त्ति और अग्निरूप से होनेवाले वा मेघ जलरूप से होनेवाले (बृहत्) महान् परब्रह्म हो ॥

इस एकही मंत्र में अवतार और मूर्त्ति में भगवदाराधन सबकुछ सिद्ध होता है, तथा और भी बहुत से मंत्र हैं जिनसे राम कृष्णादि के चरित्र स्पष्ट विदित होते हैं, विस्तार के भयसे केवल थोरेही लिखे हैं ॥

इस विषयमें हम अपने पाठकोंको एक दृष्टांत भी सुनाते हैं—

एकराजा ने अप ने मंत्री से यह प्रश्न किया कि ईश्वर स्वयं अवतार क्यों लेताहै, भक्तों के कार्य के निमित्त दूसरे देवताओं को आज्ञा देदेनी चाहिये उनके द्वाराही कार्य्य होजायगा। मंत्रीने कहा इसका उत्तर मैं कुछ दिनों में दूंगा, राजा ने कहा अच्छी बात है, तब मंत्री ने राजा के छोटे पुत्र की सूरत की समान एक मोमकी मूर्त्ति बनवाई, और राजकुमारको कुछदेर पहले राजा ने जो पोशाक पहरे देखाथा, वही पोशाक उस मोम के बालकको पहराकर धायसे कहा कि जिस समय हम और राजा दोनों नावपर जल विहार करने को बैठें, उस समय तुम इस बालकको लाना। ठीक उसी समयपर जब कि सरोवरमें राजा और मंत्री नाव में बैठे विहार कररहे थे, धाय उस कृत्रिम बालकको लेकर आई। राजा ने मंत्री से कहा हमारे पुत्रको लेलो, मंत्रीने नाव किनारे करके धाय से बालकको लेलिया, और चतुराई से राजाको देते समय उसको जल में छोड़दिया। ज्योंही बालक जलमें गिरा कि राजा साथमेंही उसको निकालनेको कूदे। तब साथमें मल्लाहभी कूदे, और राजा तथा बालक दोनों को निकाला। तब राजा कृत्रिम बालक को देखकर लज्जित और क्रोधित होकर मंत्रीसे बोले कि यह क्या ? तब मंत्री ने कहा महाराज ! इतने मल्लाह पैरैये आदिकों के होते भी आप स्वयं क्यों कूदपड़े। राजाने कहा पुत्र स्नेह के कारण मैं किसीको पुकार न सका स्वयंही कूदपड़ा। तब मंत्रीने कहा इसी प्रकार ईश्वरभी भक्तोंके स्नेह के कारण स्वयंही आता है, उसे और से कहने का अवकाश कहां ? यह उसी प्रश्नका उत्तर है जो आप ने पूंछाथा कि ईश्वर स्वयं अवतार क्यों लेता है, राजा यह सुनकर मौनहुए।,

अब इस विषयमें हम अधिक लिखना नहीं चाहते कारण कि बुद्धिमान को इशाराही काफी है।

मूर्ति पूजा।

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्। पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्॥ पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात्परंकिमपितत्त्वमहं न जाने॥

इस समय भारतवर्ष में एक बड़ी कठिन समस्या उठ खड़ी हुई है जहां देखो वहां इस बात का चर्चा रहता है कि प्रतीक उपासना नहीं है निराकार का प्रतीक में पूजन नहीं होसकता आजतक ईसाई मुसलमानादि कई एक विधर्मियों के इस धर्मपर इसी विषयके आक्रमण होते रहते थे यद्यपि मुसलमान भी मक्के में संग अस्वत को बोसा देते, ईसाई रोमन कैथलिक ईसा की मूर्त्ति पूजते दूसरे सलीबका चिह्न लगाते बाइबिल चूमते ग्रंथों के आगे शिर नवाते इत्यादि सबकुछ करके भी वैदिकधर्मावलम्बियों को प्रतीक उपासना में कटाक्ष करके पुकारते थे, पश्चिमकी ओर मुख करकेही निमाज़ पढ़ना क्या एक देशी उपासना नहीं है? । अस्तु इन बातों से कुछ भी हमारी हानि नहीं थी, कारण कि जिनका हमारा व्योहार देश धर्म एक नहीं उन की बातों से हमारी कुछ भी क्षति नहीं थी, परन्तु अब थोड़े समयसे एक दयानन्दी पंथचला है, उसकी भी यही घोषणा है कि प्रतिमा में भगवत्का अर्चन वैदिक सिद्धान्त नहीं है कारण कि ईश्वर का कोई आकार नहीं है, यद्यपि उपासना बिना साकार के नहीं होसक्ती है, यह सिद्धान्त है, कारण कि वेदान्त दर्शन में लिखा है कि (ब्रह्मदृष्टि रुत्कर्षात्, व्या० सू०) अर्थात् प्रतीक में ब्रह्मदृष्टि करनी, बिना इसके उपासक किसके समीप होकर उपासना करे, और सम्पूर्ण यह मूर्त्तिमान जगत् अमूर्त्तको किसप्रकार जानसक्ता है कारण कि वह मन वाणीका विषय नहीं है, यदि केवल हम यह कहें कि वह सर्वथा निराकार है अनीह है तो इस निराकार से साकार जगत् किस प्रकार हुआ है कारण कि जो सर्वथा कुछ नहीं है उससे कभी कुछ नहीं होता है परन्तु ईश्वर ऐसा नहीं वह तो—

अणोरणीयान् महतोमहीयान् उपनि० । नमः ह्रस्वाय च वामनायच ॥ यजु०

अर्थात् अणुसे अणु और महान् से महान् है । क्या उस बड़े छोटेके निमित्त नमस्कार है और दूसरे उपनिषद् भी कहते हैं कि (द्वावेव ईश्वरस्य रूपे मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्चेति) ईश्वर के मूर्त्त अमूर्त्त दो रूप हैं और उपासना में (सपर्य्यगात् के मंत्र में उसको अकाय कहकर भी वेद स्वयम्भू कहता है, तथा दूसरे स्थान में भी वेदही कहता है कि--

प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽन्तरजायमानोबहुधाविजायते । यजुः

अर्थात् प्रजापति गर्भ के अन्तर विचरण करता हुआ अजायमान होकर भी अनेक प्रकार से प्रकट होता है। और अवतार प्रकरण में उसके अनेक अवतार प्रतिपादन करचुके हैं, तो इस समय जो प्रतिमा निर्माण कीजाती है वह सगुणब्रह्म की है उपासनाके फल प्रदान कोही वह स्वयम्भू है, और संसारी पुरुषों से विलक्षण रूप होकर वह दिव्य शरीर से प्रकट हो भक्ति रसको पूर्ण करता और उपासकों की परलोक गति सुधारताहै, ध्यान रहै ? कोई निराकार वस्तु बिना साकार हुए कार्य नहीं करसकती जैसे अग्नि काष्ठादि सब स्थानों में व्याप्त भी है परन्तु बिना प्रकट हुए जलानेको समर्थ नहीं है, जगत् में वेद मर्य्यादा स्थापन को प्रभुने प्रकट होकर अनेक लीला करीं, भक्तजन उसी अवतार की प्रतिमाको बनाकर भक्ति भाव से अर्चन करतेहैं, पत्थरकीपूजाकोई सनातनधर्मी नहीं करता यदि पत्थरकीपूजा करता तो पत्थर की स्तुति भी करता कि,हे पत्थर ! पहाड़ से तुम आये कारीगरने तुमको गढ़ाहै इत्यादि परन्तु हम लोग तो मूर्ति में उसको "नमोस्त्वनंतायसहस्रमूर्तये" आदि स्तोत्र पाठकर ईश्वर का अर्चन करते हैं, मूर्ति कभी बनाये से नहीं बनती तोड़े से नहीं टूटती, वह नित्य सिद्धहै । एक छोटे पत्थर के खंड में कारीगर क्या नहीं निकालसकता? सभी कुछ निकालसक्ता है परन्तु जो आवरण मूर्ति को घेरेहुए है केवल उनकोही अलग करता है मूर्तिपर तो हाथभी नहीं लगाता और यदि कहो कि मूर्ति तोड़ीजाती है, टूटजाओ उसके खण्डित होनेसे उपास्य देव तो नहीं टूटता, हम दूसरी आकृति में उपासना करेंगे कारण कि वह सर्वव्यापक है, यदि कहो माता पिता चैतन्यादि में क्यों नहीं पूजते तो इन चैतन्य शरीरों में ईश्वर के सिवाय काम क्रोधादि भी व्याप्त है और मूर्ति में तो केवल ब्रह्मही व्याप्त है, इस कारण

यह निर्विकार उपासना है, जैसे क, ख, ए, बी, सी, डी, अलिफ, बे, ते, से इत्यादि जो शब्द हमने एक आकार में करलिये हैं तब कोई कहे कि असली क बताओ तो क्या कोई बतासक्ता है कभी नहीं और (क) ऐसा लिखने से क्या कभी कोई विद्वान यों कहेगा कि कागजके ऊपर क्या ही का कुछ चीत मकोड़ा है कभी नहीं बल्कि देखतेही कह उठेगा कि क अब कहिये कल्पित अक्षरों से लिखीहुई चिट्ठी मनका सब भाव प्रगट कर सक्ती है या नहीं जब करसक्ती है तो ब्रह्म जो सर्वव्यापक है उसकी मूर्ति में उपासना क्यों न हमारे मनोरथ पूरा करेगी, जैसे विद्वानको यह अक्षर 'क' दीखता है इसीप्रकार भक्त उपासक को मूर्ति ब्रह्मरूप दीखती है, जैसे मूर्ख को अक्षर चीत मकोड़ा दीखता है इसीप्रकार अज्ञानियों को पत्थर दीखता है, निराकार कहतेहुए आजकल के असभ्य पाखण्डी सिद्धांत में रत रहते हैं और साकार उपासक मन्दिर के दर्शन करतेही 'जयराम-नारायण' आदि नाम उच्चारण करते और वहां ईश्वरकी विशेष सन्निधि आदि मानकर दुष्कर्म से बचते हैं। तथा अवतारादि की प्रतिमा देखकर उनके चरित्र स्मरणकर गद्गद होजाते हैं, जो भगवदाराधन मूर्ति में नहीं करते उन से पूछो कि तुम अपने मा बापका फोटो देखकर क्यों उनका स्मरण करते हो और क्यों आपके नेत्र आंसुओं से डबडबाजाते हैं, साफ कहना चाहिये कि वह कागज और स्याही है तथा दयानन्दसरस्वती जो एक साधारण पंडित हुआ है उसकी तसबीर समाजी क्यों बँटवाते हैं क्यों नहीं उसे कागज और स्याही समझते पर यह तो सब कुछ किया परंतु जहां कहीं ईश्वरका अर्चन आवे वहां शिर हिलाउठैं धन्य है नाम उच्चारणभी तो वाणीका विषयहै ॐकार भी एकप्रकार से लिखाजाता और उससे ओंकारहीका बोध होताहै, अब यह तो युक्ति संगत होगया कि मूर्तिसे ईश्वरहीका बोध है, अब यह देखनाहै कि वेदमें कहीं ईश्वरकी सावयव मानकर स्तुति की है वा नहीं तथा उसको प्रतिमारूप लिखाहै वा नहीं सब प्रथम ऋग्वेद—

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानं नमाज्यंकिमासीत्परधिः।
कआसीच्छन्दः किमासीत् प्रउगंकिमुकथंयद्देवादेवमय
जन्तविश्वे। ऋ० अ० ८ अ० ७ मं० १८०

उसकी यथार्थ ज्ञान बुद्धि कौन है और प्रतिमामूर्ति कौन है और जगत् का कारण कौन है और घृत के समान सार जानने योग्य कौन है, और सब

दुःखों का निवृत्त कारक और आनन्द युक्त प्रीति का माम परिधि (सीमा) कौन है और इस जगत्का पृष्ठावरण कौन है और स्वतंत्र वस्तु और स्तुति करने योग्य कौन है यहांतक तो इसमें प्रश्न हैं, अन्त में सबका उत्तर इसमें है कि जिस परमेश्वर मूर्तिकी इन्द्रादिकोंने पूजाकी है पूजते हैं और पूजेंगे वोह परमेश्वर प्रतिमारूप से जगत् में स्थित है और वोही सारभूत घृतवत् स्तुति करने के योग्य है तो अब कोई नहीं कहसकता कि मूर्तिपूजन वेदमें नहीं है क्योंकि यह ऋग्वेद का मंत्रही कहता है कि वोह प्रतिमारूप है बस यही अर्थ है कि उस परमेश्वरकी समान कोईनहीं है और देखो—

१८ अरंदासो नमीढुषेकराण्यहं देवायभूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितोदेवोऽअर्य्यो गृत्सरायेकवितरोजुनाति ॥
ऋ० म० ७ अनु० ५ सूक्त ८६ मं० ७

मंत्रार्थः—अनागा अहंभूर्णये मीढुषे देवाय अरं कराणि दासौन दासइव निषिद्धा चरण वर्जित मैं दासवत् देवके अर्थ अलंकार करता हूं (भूर्णये मीढुष) वो देव बहुतसी धनकी वृद्धि करनेवाले है जैसे स्वामी का सेवक स्रक् चंदन वस्त्रादि से अलंकार करता है तद्वत् मैं भी बहुत धन देनेवाले देवको अलंकार करता हूं इस मंत्र में दासकी उपमा अहं शब्दार्थ करताको दीगई है, और दास शब्द से परे नकार है तिससे उपमार्थ में है इस मंत्र में देवको अलंकार करना लिखाहै, और विना समीप हुए अलंकार नहीं होसक्ता समीपस्थ होना उपासना से युक्त है और निराकार में अलंकारादि करना असंभव है, इससे प्रतिमारूप आधार में ही देव परमात्माके अलंकारादि हैं और उपासना भी तभी होसक्ती है (प्रश्न) इस मंत्र में तो आचार्यादि देवता मानकर उनका अलंकार कहाहै कुछ प्रतिमा में अलंकार नहीं कहा (उत्तर) इसका उत्तर यह श्रुतिही देती है (अचेत यदचितो देवो अर्य्य) स्वामी देव अचेतनों को चेतन करता है अपने जीव रूपसे प्रवेश करके (रायेगृत्सं कवितरे जुनाति) इस प्रकार धनकी प्राप्ति के अर्थ प्राण के भी प्राणरूप देवको अत्यन्त बुद्धिमान (जुनाति) आश्रय करता है इस मंत्र में प्रतिमा में परमेश्वर पूजन की काम्य कर्मता प्रतीत होती है। इन वेद के प्रमाणों से यह सिद्धहुआ कि वह शृंगार कियाजाता और जगतकी प्रतिमा है, शतपथ में भी लिखा है कि—

अथैतदात्मनःप्रतिमामसृजत्यज्ञम्। श० प० ११। १।८।३॥

यज्ञोवै विष्णुः इति श्रुतेः।

उस ने अपनी प्रतिमा प्रगटकी जिसको यज्ञ कहते हैं (सहस्रस्य प्रतिमासि (यजु०) हे ईश्वर ! आप सहस्रों की प्रतिमा हो तथा " याते रुद्र शिवा तनुः यजु० " और " बाहुभ्यामुतते नमः " हे रुद्र ! जो आपका कल्याणकारी शरीर है तथा आपकी भुजाओंको प्रणाम है, रुद्राध्याय में और भी अनेक मंत्र ऐसे हैं जो शिवका पूजन करते हैं (विल्मिने गिरिशन्त) इन दो पदों से बेलपत्रके धारण करनेवाले पर्वतपर शयन करनेवाले यह स्पष्टही है, इत्यादि इन्हीं प्रमाणों से मूर्ति में भगवतका आराधन स्पष्ट है परंतु और भी कहते हैं पाणिनीका सूत्र है ' जीविकार्थे चापण्ये' ॥ ५ । ३ । ९९ कनोलुक् स्यात् अर्थात् जो प्रतिमा जीविकाके निमित्त हो पुजारियों की जीविका जिससे चलती हो और वह बेची न जाय वहां कन प्रत्ययका लोप हो इसपर भाष्यकारने शिवः,स्कंधः, आदि उदाहरण दिये हैं इस से स्पष्ट है कि शिवके कहने से शिवकी पूजनीय मूर्ति होगई, यही बात यहांभी लगती है । 'नमः शिवाय च शिवतराय च,यजु०' पूजनीय शिवके निमित्त प्रणाम है जब कि उसकी प्रतिमा है, उस ने अपनी प्रतिमा प्रगट की इत्यादि प्रमाण विद्यमानहैं तब फिर किसी प्रकारभी मूर्ति में आराधन अनुचित् नहीं । इस समय प्रसंग अज्ञाता एक मंत्र उच्चारण करते फिरते हैं जिसमें वह कहते हैं कि प्रतिमा पूजनका निषेध है—

नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाममहद्यशः यजुः । ३२।३

उसकी प्रतिमा नहीं जिसका नाम बड़े यशवाला है, इस मंत्र में प्रतिमा शब्दका अर्थ मूर्तिका नहीं है कारण कि ऊपर से ईश्वरकी अनंतताका प्रसंग चला आता है यहां उपासनाका प्रकरणही नहीं है यदि उपासना प्रकरण में आता तो कथञ्चित् मूर्तिका अर्थ आभी जाता, पर उपासना में तो अग्नि चन्द्र सूर्यादि भी उसीको लिखा है जैसे (देवाग्निस्तदादित्यः तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः) अग्नि आदित्य वायु चंद्रमा वहीहै फिर प्रतिमामें क्या रहा यहां तो उसका यह अर्थ है कि उसका उपमान कोई नहीं प्रतिमा में अर्चनका निषेध नहीं है कारण कि इसी मंत्र में आगे 'हिरण्यगर्भइत्येषः' ऐसा पाठ है अर्थात् वह हिरण्यगर्भ जब हिरण्यगर्भ ब्रह्मारूप वही है, फिर आकार में संदेह क्या है, इस से इस मंत्रसे निषेध नहीं आता यदि प्रतिमाका

निषेधहोगा तो 'ब्राह्मणाक्स्य मुखमासीत' और 'सम्वत्सरस्य प्रतिमासि'। और ब्राह्मण वाक्य शब्दमें विरोध आवैगा इससे वहां अर्थ उपमान का है कारण कि उपासनाका प्रसंग नहीं है यदि प्रतिमाका अर्थ यहां मूर्तिका करोगे तो यह निषेध किस प्रकारकाहै क्या उसकी प्रतिमा थी जिसका ईश्वरने निषेध किया इससे यहां उपमानका अर्थ है। उसको धूप,दीप, चंदन पुष्प चढ़ाय हम अपने हृदयका भाव प्रगट करते हैं जैसे अभी महारानी की जुबली में सर्वत्र रोशनी कीगई निछावर हाकिम महारानीके स्थानमें सत्कृत कियेगये नजरें दिखाई गई महारानी को इसमें से किसी बातकी भी आवश्यकता नहीं थी कारण कि सब उसीका है. परन्तु अपनी भक्ति दिखाने को सब ने भेटादि दे अपने हृदयका उत्साह पूर्ण किया, इसी प्रकार हरि पूजन में हम सब अपने हृदयका भाव प्रगट करते हैं वही स्वरूप हृदय में प्राप्त होकर पाप दूर करता है यह बहुतही संक्षेपसे लिखा है इतिहास पुराण में तो उपासना की कमी नहीं है और (तमितिहासश्च पुराणञ्च इति अथर्व०) अथर्ववेदमें भी इतिहास और पुराणका प्रमाण मिलता है. तब भगवतकी पूजा वेद विहित होने में संदेह नहीं विशेष विस्तार दयानंद तिमिरभास्कर में देखना चाहिये, वाल्मीकिमें लिखा है कि -

एतत्तु दृश्य ते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतुबंध इतिख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥
एतत्पवित्रं परमं महा पातक नाशनम् ।
अत्रपूर्वं महादेवाः प्रसाद् मकरोद्विभुः ॥

अर्थात् हे जानकी ! महात्मा सागर का यह सेतु बन्ध तीर्थ दीखता है जो त्रिलोकी में पूजित होगा, यह परम पवित्र और महा पाप दूर करने वाला है पूर्व कालमें इसी तीर्थ पर (मेरे स्थापन करने से) विभु महादेवजी ने मुझपर कृपा की थी। आगे उत्तर काण्ड में भी लिखा है कि-

यत्रयत्र सयातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनद मयंलिङ्गं तत्रतत्रस्म नीयते ॥
वालुका वेदि मध्येतु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चा मृतगन्धिभिः ॥

अर्थात् रावण राक्षसेश्वर जहां जहां जाता था वहां वहां जाम्बूनद मय

लिङ्ग साथ जाता था ॥ १ ॥ रावण उस लिङ्ग को बालुकी वेदी के मध्य में स्थापन करके अमृत गन्ध वाले पुष्पों से पूजन करता था ॥ २ ॥ इत्यादि बहुत स्थानों में मूर्तिपूजन विद्यमान है, केवल दिग्दर्शन मात्रयहां लिखदिया है

श्राद्ध ।

ज्ञातंकाणभुजं मतं परिचितैवान्वीक्षिकीशिक्षिता ।
मीमांसाविदितैव सांख्यसरणिर्योग वितीर्णामतिः ॥
वेदान्तःपरिशीलितःसरभसं किन्तुस्फुरन्माधुरी ।
धाराकाचननन्द सुनुमुरली मच्चित्तमाकर्षति ॥ १ ॥

जबतक इस भारतवर्ष में वैदिक कर्म काण्ड का यथावत् प्रचार था तबतक किसी प्रकारकी वैदिक कर्म में शंका नहीं थी, परजबसे वह क्रियायें छूटगई तबसे भिन्न२प्रकार के सन्देह होनेलगे, उनमें से आजकल एक यह भी प्रश्न उठनेलगा कि श्राद्ध कर्म वैदिक है या अवैदिक और वह किस कर्मका नाम है, और पितरों के उद्देश्य से जो कियाजाता है तो वह जीतोंके निमित्त कियाजाता है या मरों के निमित्त कियाजाता है और किस प्रकार पहुँचता है आज इन्हीं कितनी एक बातों की मीमांसा करनी है जिस समय हम श्राद्धको विचारने बैठें तो पहले हमको यही सोचना चाहिये कि श्राद्धका उद्देश्य क्या है तो यही कहना होगा कि 'श्रद्धयाक्रियतेतच्छ्राद्धम्' अर्थात् पितरों के उद्देश्य से जो श्रद्धापूर्वक कियाजाय उस को श्राद्ध कहते हैं जब पितरों के उद्देश्य से करनेका नाम श्राद्धहै तब यह वैदिक कर्म है या नहीं इस का निर्णय करते हैं ।

मातृदेवोभव पितृदेवोभव आचार्यदेवोभव तै० ॥
देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् तैत्तरी० ॥

अर्थात् मातापिता आचार्य की उपासना करनी चाहिये देवता और पितृ कर्म में प्रमाद नहीं करना चाहिये ।

कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा
पयोमूलफलैर्वापिपितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥ मनु०अ.३श्लो.८२
एकमप्याशयेद्विप्रांपित्रर्थे पांचयज्ञिके

पितरों से प्रीति चाहने वाला तिल यव इन करके और पय मूल फल जल इन से श्राद्धकरै, पितर के अर्थ एक ब्राह्मणको भोजन करावै ।

आयन्तुनःपितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देव यानैः यजुः १६ । ५८ ॥

अग्नि कर्म को प्राप्त हुए हमारे पितर देव यान मार्ग से आवैं यजुर्वेद ।

इन मंत्रोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होगया कि पितृ कर्म वैदिक है, इसी के विस्तार में और भी बहुतसे मंत्र हैं, । अब इस बात का विचार करना चाहिये कि यह जीतों के निमित्त है वा मरों के इस में नीचे लिखे वेद के मंत्र प्रमाण दिये जाते हैं ।

येसमानाःसमनसःपितरोयमराज्येतेषांल्लोकःस्वधानमोयज्ञोदेवेषुकल्पताम् । अ० १६ मं० ४५ ॥

जो सपिंड मनस्वी पितर यमलोक में हैं स्वधानामक अन्न उनके दृष्टि गोचरहो पितृयज्ञ वसु रुद्र आदित्य देवताओं में वासकरो ।

येसमानाःसमनसोजीवाजीवेषुमामकाः ।
तेषांश्रीर्मयिकल्पतामस्मिंल्लोकेशतंसमाः ॥ ४६ ॥

जो प्राणियों के मध्य समदर्शी मनस्वी हमारे सपिंड पितर हैं उन की धन सम्पत्ति सौ वर्ष तक हमारे पास निवास करो ॥ ४६ ॥

द्वेसृतीअश्रृणवम्पितॄणामहन्देवानामुतमर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदंविश्वमेजत्समेतियदन्तरापितरम्मातरञ्च ४७॥
प्रजापतिर्ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दःदेवयानपितृयानमार्गौदेवते

मैने मनुष्यों देवताओं और पितरों के दो मार्गको सुना जो कि स्वर्ग और पृथिवी के मध्य वर्तमान हैं यह क्रियावान विश्व उन देवयान पितृयान मार्गोंसे जाता है उन मार्गोंके लिये श्रेष्ठ होम हो ॥ ४७ ॥

उदीरतामवरउत्परास उन्मध्यमाः पितरःसोम्यासः असुंयईयुरवृकाऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरोहवेषु ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० १ ।

जो पितर अवर अर्थात् पृथ्वीमें स्थितहैं वे ऊपर गमनकरो और जो स्वर्ग

लोकमें स्थित हैं वे प्रच्युति रहित होवें, अथवा अधिकार की क्षीणता से मुक्त होवें, और जो मध्यस्थान में स्थित हैं वे उत्तम लोकका आश्रय करें वे पितर सौम्य हैं, अर्थात् कर्ममें अङ्गभावको प्राप्त होकर सोमको सम्पादन करते हैं और स्थूल शरीरको त्यागकर प्राणमात्र मूर्तिवाले हैं (अवृकः) अर्थात् शत्रुभाव रहित यथावत् सत्य वा यज्ञके ज्ञाता हैं वे पितर आवाहन स्थानमें आगमन करो, माध्यमिक यम है इस कारण पितरोंको माध्यमिक ही मानते हैं क्योंकि यमराज मध्यस्थान में स्थित हैं और तदनुवर्ती पितर भी मध्यस्थान में स्थितहैं, यम को पितृराज्य होने में नीचे लिखा मंत्र प्रमाणहै

वैवश्वतंसंगमनं जनानां यमं राजानं हविषादुवस्य॰

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १४ मं० १

प्राणीमात्रका यमके प्रति गमन होताहै तिस यमराजको हवि से परिचरणकर

येअग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्येदिवःस्वधयामादयन्ते।
तेभ्यःस्वराडसुनीतिमेतां यथावशन्तन्वङ्कल्पयाति ॥

यजु० अ० १९ मं० ६०

जो पितर अग्निसे दग्धहुए और्ध्वदेहिक कर्म को प्राप्तहैं और जो पितर अग्नि में दग्ध नहीं हुए अर्थात् श्मशान कर्म को प्राप्त नहीं किया और स्वर्ग में अपने कर्मोपार्जित अन्न से तृप्तरहते हैं जिसकारण ईश्वर उन पितरों के लिये इच्छानुसार इस प्राणयुक्त शरीरको देता है ॥ ६० ॥

पुनन्तुमापितरः सोम्यासः पुनन्तुमापितामहाःपुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेणशतायुषापुनन्तु मापितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाःपवित्रेणशतायुषाविश्वकर्मायुर्व्यश्नवै। य.अ.१९मं.३७

सोम के योग्य पितर पूर्णायुके दाता पवित्रा से मुझको शुद्धकरो पितामह मुझको पवित्र करो, प्रपितामह पवित्र करो, पितामह पूर्णायुके दाता पवित्रताते मुझको शुद्धकरो, प्रपितामह शुद्धकरो, पूर्ण आयु को प्राप्तकरूं ॥

येनिखातायेपरोप्तायेदग्धाये चोद्धृताः।

सर्वांस्तानग्नआवहपितॄन्हविषेअत्तवे अथर्वका.१८।२मं३४

हे अग्ने जो पितर गाड़ेगये जो पड़े रहे जो अग्निसे जलायेगये जो उद्धृत (फेंकेगये) हैं उनसबको हवि भक्षण करने को सम्यक् प्रकार से लेजा।

यास्तेधानाअनुकिरामितिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्तेसन्तुविभ्वीःप्रभ्वीस्तास्तेयमोराजानुमन्यताम् ॥
अ० कां० १८ अ० । ३ मं० ६९ ॥

जो मैं तिलमिश्रित धान यह जल सहित देताहूं वह इस मृतकको सुख कारकहो और राजा यम इसको माने ।

अब यह बात तो ठीक होगई कि मृतकोंके निमित्त जो काम कियाजाय उसका नाम श्राद्ध है, अब यह विचार है कि वे पितर किसर स्थान में स्थित हैं तब यही निर्णय वेदके अनुसार करते हैं ।

अथत्रयोयावल्लोका मनुष्य लोकःपितृलोको देवलोकइति
श० १४ । ३ । २४

तीन भोगभूमियें हैं मनुष्यलोक पितृलोक देवलोक इनमें जीव कर्म्म के अनुसार प्राप्त होता है । और केवल निषिद्ध कर्म्मका कर्त्ता जवि नरकको ही प्राप्त होता है (विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति सिद्धांत शिरोमणौ) अर्थात् चन्द्रमाके उर्ध्वभाग में पितरों का निवास है, जब कि यह वार्त्ता स्फुट हुई तो संदेह नहीं रहा, किन्तु और भी प्रमाण लिखते है ।

स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यःस्वधापितृभ्योन्तरिक्षषद्भ्यः
स्वधापितृभ्योदिविषद्भ्यःअथर्व

इन प्रमाणोसे पृथिवी अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोक में भी पितरों की स्थिति लिखी है, अब यह विचार करना चाहिये कि पितरोंको हमारा दिया पहुंचता है या नहीं, या सब कोई अपना दियाही प्राप्त करते हैं और पहुंचता है तो कैसे (श० १४ । ७ । २ । ७ । में लिखा है कि यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते) जो यह पुरुष कर्म्म करता है उससे अपूर्व उत्पन्न होताहै और वह अपूर्वही कर्त्ताको फल प्राप्त कराता है और उस अपूर्व के साथही यह जीव परलोकको गमन करता है और सायं प्रातः जो हवनमें आहुति दीजाती हैं उनका सूक्ष्म भूत परिणाम अन्तःकरण में हर्ष उत्पन्न करता है, और सूक्ष्मभूत मात्राओं से सूक्ष्मरूप होकर अदृष्टफलके हेतु फलपर्यंत अवस्थायी रहताहै और यह अपने फल के साथ जीवका संबन्ध करनेवाला होता है यथा—

तेवाएत आहुतीहुते उत्क्रामतस्तेअन्तरिक्षमाविशतस्ते

अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वीतेत्यादि श० ११ । ६ । २ । ६ ।

मरण समय में इस प्राणीकी तीन गति होती हैं, देवलोक पितृलोक अधोलोक उस में पितृलोकका गमन कहते हैं कि---

अथयेयज्ञेनदानेन तपसालोकंजयन्तितेधूममभिसमर्चन्ति धूमाद्रात्रिंरात्रेरपक्षीयमाण पक्षमपरपक्षान्यान्षण्मासा नदक्षिणादित्यएतिमासेभ्यःपितृलोकमित्यादि श०

यज्ञ दानादि कर्म करनेवाले धूम से रात्रि में कृष्णपक्ष उससे दक्षिणायन और वहां से पितृलोक को गमन करते हैं, और जो सत्कर्मा नहीं वे कीटादि योनिको प्राप्त होते हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि जो मनुष्य कर्म करता है उससे कोई अदृष्ट उत्पन्न होता है जो परलोक में साथजाता है, अब यह देखना है कि और का किया और प्राप्त करसक्ता है वा नहीं तो इसका यही उत्तर है कि अवश्य मिलता है जैसे बन्धन में पड़े हुए के निमित्त उस के कुटुम्बी उसके मुक्तकरने का उपाय कर उसे छुड़ाते हैं इसी प्रकार पुत्र पिताको परलोक के दुःख से छुड़ाता है, पुत्रके पिताके निमित्त किये कर्म का अदृष्टही परलोक में प्राप्त होता है । मा० ब्रा० में लिखा है कि—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे ।
आत्मासि पुत्रमामृथाः सजीव शरदां शतम् ॥

अर्थात् हे पुत्र तू मेरे अंग २ और हृदय से उत्पन्न होता है, आत्मा रूप है, सौ वर्ष जी ।

पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । यजुः ॥
मानो वधीः पितरम् मातरम् । ऋ० ॥

दादा परदादा मुझे पवित्र करें, हे ईश्वर हमारे पिता माता को मत मार इत्यादि प्रमाणसे एककी प्रार्थना दूसरे को लाभ पहुँचाती है, और ऊपरकी श्रुति से पुत्र पिता का रूपही है और उस पुत्रका धनका जो द्रव्य है वहभी उसीका है इस से जो कुछ क्रिया करता है वह पिताके उद्देश्य होने से उसीको प्राप्त होती है, इसी प्रकार पोता पुत्रका रूप है यह तीन पीढ़ी का विशेष संबंध होने से इनका भाग पितरों को विशेष प्राप्त होताहै जैसे चम्पाके फूलों का पात्र चंपाके फूल चले जाने पर भी सुगंधित रहता

है इसी प्रकार जीवके निर्गत होजाने परभी यत्किंचित् सम्बन्ध शेष रहताहै पंचाग्नि विद्या के द्वारा जैसे अग्निकी गति ऊर्ध्वगामी होकर चन्द्रलोक मेघ सूर्यकी किरण भूमि में होती है और उसका पुण्यरूप अदृष्ट उसके साथ रहता है, वही उसे ऊपर नीचे लेजाता है और जो उसीका सम्बन्धी आ-त्मारूप पुत्र उसके निमित्त कुछ करताहै उसका पुण्य अदृष्टरूपसे पितरको प्राप्त होताहै, कारण कि वह उसीका धर्म है और जो अपने हाथोंके किये कर्मसे नीचे गिरताहै वह बेटे पोते परपोतेके द्वारा श्राद्धोंके किये सत्कृत से निरन्तर पितृलोकमें सुख भोगताहै जैसे मनुष्यलोकमें मानवी शक्तिहै ऐसेही देव और पितृलोकमें उनकी पृथक् शक्तिहै वह प्राप्त होनेसे अनेक रूप धारण कर सकते हैं, आत्माही इनका रथ आदि होताहै बुलाने पर प्राप्त होते हैं जिस प्रकार शहद की मक्खी पुष्प में से मधु ले जाती है और पुष्प में कोई विकार नहीं आता इसी प्रकार ब्राह्मणों के निमित्त जो दिया हुआ अन्न है उसका सार भाग दिव्य पितर लेजाते हैं बहुतसे शुद्धचित्त वालोंको दर्शनभीहोता है, भीष्मजीको पितामहशन्तनुका और जानकी महारानीको मुनियों के मध्य में राजा दशरथ का दर्शन हुआ था, पिण्डदान जो कियाजाता है वही मानो पितरों के आकर्षण पूजनका मुख्य हेतु है, यदि कहीं किसीका जन्मभी हुआ है तो दिव्य पितर उनको पथ में स्वयं ले जाते हैं वह पितरों के उद्देश्यसे दिया हुआ दिव्य पितरोंके पास उपस्थित होता है वे अपनी सर्वज्ञतासे उस पुण्यके फलको उस जीव के निमित्त प्राप्त करते हैं और वह जीव को सुख देने के निमित्त प्राप्त होता है इसी कारण अथर्व वेद में तीन स्थान भूमि अन्तरिक्ष और दिव्य इन तीन लोकों में पितरोंका निवास कहकर तीनों स्थानमें अन्नको स्वधारूप लिखा है, इस फलसे दिव्यलोकके पितर दीर्घकालतक निवास करें अन्तरिक्षके ऊर्ध्वलोकको जायँ और भूमिके सुख पावैं इसमें वेदही प्रमाण है कारण कि परोक्षका ज्ञान वेदसे होताहै जिसप्रकार दियाहुआ तार वहीं रहताहै और खटका उसस्थानके तारघरमें पहुँचताहै जहांको तार दियाजाय वहांसे मजमून कोई चपरासी वहां पहुँचाताहै जहां पानेवाला स्थितहै इसी प्रकार वैदिक धर्मका तार सब लोकोंमें प्राप्तहै यह श्रद्धा-त्मक सङ्कल्प होतेही उसका फल पितृ लोक में उपस्थित है कागज की भांति यह अन्नादि यहीं है पर फल वहां उपस्थित होजाता है उस फल को उस जीव के निमित्त दिव्य पितर प्रदान करते हैं प्रथम तो शास्त्र की विधि के अनुसार जिस का और्ध्व दैहिक कर्म हुआ है उसकी कभी दुर्गति नहीं

होती, दशगात्र क्रिया से उसका शरीर सम्पादन होता है और यदि दैवा त् किसी के अतिशय कुत्सित कर्म हुए तौभी वह यदि कहीं कुत्सित योनि में जन्म पावे तथापि उसको अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं, एक पशु दिनभर दुख पाते और एक सौ प्रकार के सुखों से पूर्ण हैं, इत्यादि, परंतु वेद की आज्ञा से जो दिया जाता है, हवन किया जाता है, वह सब पितरों को प्राप्त होता है, यदि कोई कहै ब्राह्मणों को जिमाये हुए अन्नका कौनसा भाग प्राप्त होताहै तौ यही उत्तर है कि हमारे यहां तो पुण्यका फल प्राप्त होता है. पर तुम जो किसी भूख को खिलाते हो इस में तुमको कौन सा भाग प्राप्त होता है इत्यादि अब श्राद्ध विधायक वेद मंत्र लिखे जाते हैं।

यौतेश्वानौ यमरक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ॥
ताभ्यामेनंपरिधेहिराजन्त्स्वस्तिचास्मा अनमीवंचधेहि ॥

५९ **ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० ११**

हेराजा यम जो तुम्हारे दोनों कुत्ते हैं उनको इस प्रेतकी रक्षा करने को भेजो वे श्वान कैसे हैं कि यमराजके गृह के रक्षक हैं चार आंखियोंसे युक्त है मार्गके रक्षा करनेवाले हैं मनुष्य जिनकी बड़ाई करते हैं सो इन कुत्तों को भाग देते हैं इस प्रेतका कल्याण और रोगाभाव सम्पादन करो।

येचेहपितरो येचनेह यांश्चविद्मयांउचनप्रविद्म ।
त्वंवेत्थयतितेजातवेदः स्वधाभिर्यज्ञंसुकृतञ्जुषस्व ॥

६० **यजुः अ० १९ मं० ६७**

(च) और (ये) जो (पितरः) पितर (इह) इस लोकमें देह को धारण करके वर्त्तमान हैं (चये) और जो (इह) इस लोकमें (न) नहीं हैं अर्थात् स्वर्गमें हैं (च) और (यान) जिन पितरों को (विद्म) हम जानते हैं (च) और (यान) जिन पितरों को (न) नहीं (प्रविद्म) जानतेहैं स्मरण न होने से (जात वेदः) हे सर्वज्ञअग्न ! (ते) ते वे पितर (यति) जितने हैं (त्वम्) तुम (उ) ही (वेत्थ) उनको जानते हो (स्वधाभिः) पितरों के अन्नोंसे (सुकृतं) शुभ यज्ञको (जुषस्व) सेवनकर ६७। यहां इह शब्दसे जीते पितरों का ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्हों ने कर्म वश इस लोक में देह धारण कियाहै अन्यथा न प्रविद्म इसका शब्दार्थ नहीं घटसक्ता विद्मका अर्थ यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता हूं

परन्तु कहां है यह नहीं जानता हूं अथवा जिनको जानता हूं बाप दादे पर-दादे जिनको नहीं जानता इक्कीस पीढ़ी तक यह तात्पर्य है।

यमाय सोमःपवते यमाय क्रियते हविः।

यमंह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः। अथ० १८। २। १

यमके अर्थ सोम निचोडाजाता यमके वास्ते हवि कियाजाता और मंत्रद्वारा अग्नि दूत हो यज्ञमें यम के प्रति हवि लेजाता है।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि श्राद्ध मृतक पितरोंका होताहै और उनके निमित्त ब्राह्मणादि को सत्कार पूर्वक दियाजाता है यह दक्षिण मुख से कियाजाता है देव कार्य्य से भिन्न है. यह संक्षेपसे कहा है बुद्धिमान इस का विस्तार कर सकते हैं।

पातिव्रत धर्म्म।

दोर्भ्यां दोर्भ्यां व्रजन्तं व्रजसदन जना ह्वानतः प्रोल्लसन्तम् मन्दं मन्दं हसन्तं मधु मधुर वचो मेति मेति ब्रुवन्तम्॥ गोपाली पाणि ताली तरलित वलय ध्वान मुग्धान्तरालम् वन्देतं देव मिन्दी वरविमलदल श्यामलं नन्द बालम् १॥

प्यारे सभासद् वृन्द ? यह श्रेष्ठ जाति जिस प्रकार अनेक सद्गुणों और सुन्दर धर्मोंसे परिपूर्ण है, इसीप्रकार इस जातिमें स्त्रियोंको पति व्रत धर्मका पालन करना भी सर्वोत्तम धर्महै, पति परायण पतिकी सेवामें दक्ष पतिकी इच्छानुसार कार्य करने वाली धर्म निष्ठ लक्षों महिलाओं की कीर्तिसे आज तक भारत वर्षकी प्रजासम्पूर्ण देशोंमें जगमगारहीहै, पतिव्रतपालन वहधर्महै कि स्त्रीको इसके अतिरिक्त दूसरा कर्तव्यही नहींहै, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव जोकुछहै स्त्रीके निमित्त सबपतिहीहै, पति की सेवाही देवाराधनाहै, जिस स्त्री पर स्वामी प्रसन्नहै, मानों उसपर सब देवता प्रसन्नहैं तपस्विनी अरुन्धती पति व्रत धर्मके कारणही, सप्तऋषि मंडलमें महर्षि वशिष्ठके समीप वर्तमान है, अबतक विवाह के मध्यमें उन श्रेष्ठ अरुन्धती का दर्शन कराया जाता है, पतिव्रता स्त्रीका अलौकिक प्रभाव होता है, चंद्र, सूर्यही क्या सम्पूर्ण ब्र-

धांडके धारणमें पतिव्रता समर्थहोतीहै, भारतमेंलिखाहैकि एकमहर्षि तपकर तेथे, उनके ऊपर चिड़ियाने बीटकरदी, ज्योंहीउन्होंनें क्रोधकर उसकी ओर को देखा कि वह वैसेही जलकरमरगईहोगई, तब यह अपने मनमेंविचारनेलग गे कि अबहमसिद्धहोगये, ऐसाविचार तपसेविरतहो विचरतेहुए एकनगरमें आये और किसी गृहस्थीके द्वारपर कुछ याचना की, ज्योंही वह स्त्री भिक्षा लेकर आई कि वैसेही उसके स्वामी ने उसको पुकारा जिससे वह बीच में से ही लौट गई और स्वामी के कार्य से निवृत्त होकर पश्चात् वहां आई तब यह उससे पूछनें लगे कि हे अबले ? तू किस कारण से लौट गई, इस स्त्री नें उत्तर दिया कि महाराज ! स्वामी का कार्य करने चली गई थी तब यह ऋषि क्रोध कर बोले कि अतिथिका इतना निरादर किया तब वह इनकी क्रोध भरी दृष्टि को देख कर बोली कि महाराज मैं ब नकी चिड़िया नहीं हूं जो दर्शन मात्र सेही भय भीत हो जाऊं, महर्षि बड़े आश्चर्य में हुए और उस से पूछ ने लगे कि तुमको यह ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ, इस पर वह स्त्री कहने लगी कि यह सब पति के चरण कमल सेवन काही प्रताप है, मैं स्वामी की सेवाही परम धर्म जननी हूं इस प्रकार कहकर उस स्त्रीनें उस ब्राह्मण को बहुत सा धर्म सिखाया, पतिव्रत धर्म के पालन सेही स्त्री सर्वोत्तम गुणों को प्राप्तहोती है अधिक क्या भूत भविष्य वर्तमानका ज्ञान पतिरक्षा कल्याण कुटम्ब सन्तानादि की प्राप्ति यह सब इस एकही धर्म से होती हैं अनुशासन पर्व के १२३ अध्यायमें कथा आतीहै कि सुमना नामक केकय राजकी पुत्रीने देवलोक में सर्वज्ञा शाण्डली से पूछा कि तुम किस चरित्र और आचरण से इसलोक में आईहो और किसपुण्यके प्रभाव से तुमने सम्पूर्ण ऐश्वर्य पाया है इसपर शाण्डिली ने कहाथा कि मैं गेरुआ बस्त्रधारण करने वाली नहीं हूं, मैंने शिर मुंडान वा जटा धारण करने से स्वर्ग लोक नहीं पाया है, परन्तु मैंने सावधान रहकर कभी भी अपने पति से कठोर वचन नहीं कहा है, देवता पितर ब्राह्मणों की पूजा में सावधान रहकर अप्रमत्त चित्त से सास श्वसुर की सेवा की थी, कभी किसी की चुगली नहीं की, घर से बाहर कभी निवास नहीं किया, न बहुत समय तक किसी के साथ वार्ताही की, किसी असत् कर्म अथवा हास्य कार्य से अहित गुप्त प्रगट किसी बात के जानने मेंभी मैं व्यग्र नहीं हुई, कार्य को बाहर जाकर जब हमारे स्वामी घर आते तब उन्हें बैठाय सावधान हो उनकी

पूजा करतीथी हमारेपति जिस अन्नको उत्तमनही जानते या जिस्से प्रसन्न नहोते ऐसी भोज्य वस्तुओं को त्यागन करतीथी, कुटम्ब के निमित्त जोवस्तु लाई जाती थी तथा जोकुछ घरका कामकाजथा प्रातः कालही उसको करलेतीथी तथा दूसरे से कराती थी, किसी कार्य से यदि मेरे पति परदेश जाते थे तब उस समय मैं मंगलसूत्रधारणकर व्रतसे रहती थी, पतिके विदेश जानेपर उत्तम व्यंजन माला धारण महावरकी रचना उबटन शृंगारादि नहीं करती थी पतिके सुखसे शयन करनेपर मैं दूसरे कार्य रहने पर भी उन्हें छोड़ उठकर नहीं जाती थी, उनसेही मेरा मन संतुष्ट रहता था, कुटम्ब के कार्य के निमित्त स्वामीको सदा क्लेश नहीं देती थी, छिपाने योग्य बातोंको सर्वदा छिपाकर प्रसन्न रहती थी, जो स्त्री सावधान होकर इस धर्म पद्धतिका पालन करती है वह स्त्रियों के बीच अरुंधती की समान सदा स्वर्ग में निवास करती है।

हा ऐसे २ रत्न उपदेश और आख्याने रहते भी आज नये २ समाजों में इस पतिव्रत धर्म का मार्ग नष्ट किया जारहा है, एक २ स्त्री के ग्यारह २ पति सुनाकर भारत को रसातल में पहुंचाने का प्रयत्न कियाजाता है, यही कारण है कि अकाल मृत्यु आदि के कठिन उपद्रवों ने भारत वर्ष को सब ओरसे घेर लिया है इस कुकटाचार से कितना पापका प्रचार होगा, इसको विचारवानही जान सकते हैं अथर्ववेद पुकार कर के कहता है कि

इयं नारीपतिलोकम्वृणाना धर्मपुराणमनुपालयंती ।

पुरातनधर्म पतिव्रत के पालन करने से ही यह स्त्री पति लोकमें गमन करतीहै, पतिव्रताओं की महिमा से अबतक भारतका शिर ऊँचा होरहाहै, आज भी उन के समयकाही इतिहास है कि एकसमय एक स्त्री अपने पति की सेवामें तत्परथी, पति उसकी जंघापर शिर धरकर सोगये थे उस समय उसका छोटा लड़का खेलतार अग्निहोत्रके प्रज्वलित कुंडमें जापड़ा स्त्री पतिकी निद्रा भंग होजाने के भयसे बालकको उठाने न गई परन्तु अग्निमें क्या सामर्थथी कि जो पतिव्रताके पुत्रको भस्म करती उसी समय चंदनकी समान शीतल होगई, राजाकी समस्या देनेपर पंडित प्रवर कालिदास ने इस की समस्या इस प्रकार पढ़ीथी।

सुतंपतन्तंप्रसमीक्ष्यपावके न बोधयामासपतिंपतिव्रता ।
पतिव्रताशापभयेनपीड़ितो हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः ।

इस एक बातसेही प्रगट होताहै कि पतिव्रत धर्मका कैसा चमत्कृत प्रभाव है, स्त्रियों के निमित्त इससे अधिक और क्या होसक्ताहै, एकबार परम तपस्विनी अनुसूयाजीने महारानी जानकीसे इस प्रकार पतिव्रत धर्मका उपदेश कियाथा कि हे जानकी जो गति जप, तप, में भी किसीको प्राप्त नहीं होसक्ती,वहगति केवल पतिके चरणारविन्दों की सेवासे प्राप्त होतीहै

मात पिता भ्राताहितकारी । मितसुखप्रद सुनराजकुमारी ॥
अमितदान भर्त्ता वैदेही । अधम नारि जो सेव न तेही ॥
वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना । अन्ध बधिर क्रोधीअतिदीना ॥
ऐसेहुपतिकरकियेअपमाना । नारिपाव यमपुर दुखनाना ॥

अर्थात् माता पिता भ्राता यह सब परिमित सुख देनेवाले हैं परन्तु हे जानकी ! स्वामी अपरिमित सुख देता है वह स्त्री अधम है जो स्वामी की सेवा नहीं करती है, स्वामी चाहैं बूढा, रोगी, मूर्ख, धनहीन, अंधा, बहरा, क्रोधी, दीन, कैसाभी हो ऐसे पति का अपमानकरके भी स्त्री यमपुर में अनेक दुःख पाती है ॥

एकै धर्म एक व्रत नेमा । कायवचन मन पतिपद प्रेमा ॥
जगपतिव्रता चारविधिअहहीं । वेद पुराण सन्तसब कहहीं ॥

एकही धर्म और एकही व्रत नियम स्त्रियोंके निमित्त कहागया है कि मन वचन कर्म से पतिके चरणों में प्रेम करैं, संसार में उत्तम मध्यम नीच लघु यह चार प्रकारकी पतिव्रता वेद पुराणों में कही हैं । यथा—

उत्तमके अस बस मनमाहीं । सपनेहु आनपुरुष जगनाहीं ॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
विनु अवसर भवतैं रह जोई । जानहु अधमनारि जगसोई ॥
पति वंचक परपतिरतिकरहीं । रौरव नर्क कल्पशत परहीं ॥
क्षणसुखलागिजन्मशतकोटी । दुखनसमुझतेहिसमकोखोटी ॥
विनुश्रमनारि परमगतिलहई । पतिव्रत धर्म छांड़िछलगहई ॥
पतिप्रतिकूल जन्मजहाँ जाई । विधवा होय पाय तरुणाई ॥

अर्थात् उत्तम पतिव्रता जानती है कि मेरे पति के अतिरिक्त दूसरा कोई

पुरुषही संसार में नहीं है और मध्यम पतिव्रता दूसरे पतियों की बड़ाई छु- टाई के कारण भ्राता पिता पुत्र की समान देखती हैं, जिनका चित्त चल- जाता है परन्तु अपने कुल और धर्मको बिचार कर स्थित रहती हैं वे स्त्रियें निकृष्ट हैं, जो बिना अवसर भयसे चकितरहती हैं उसे अधम स्त्री जानों जो अपने पतिको वंचितकर पर पतिसे रतीकरती है वह रौरवनरकमें जाकर पड़ती है जो क्षण सुखके निमित्त अनेक जन्मों का सुखनहीं समझती उस की समान और खोटा कौन है, यदि छल छोड़कर स्त्री अपने पति के च- रणों की सेवाकरै तो बिनाही आश्रय के उसकी परमगति होती है और पति से प्रतिकूल जहां जाकर जन्मेगी, वह तरुणाई में बिधवाहोगी, कैसी भी अपवित्र स्त्री हो पतिके चरणोंके पूजन से परमगति होती है महाराणी जानकी ने पतिव्रत धर्म की मानो शिक्षा सर्व साधारण को करदी है उन्हों ने अंतिम परीक्षा के समय कहाथा ।

वाङ्मनःकर्मभिःपत्यौ व्यभिचारोयथानमे ।
तथामेमाधवीदेवीविवरंधातुमर्हसि । वाल्मीकीयरामायण

यदि मेरा मन वचन कर्मसे पति में व्यभिचार नहीं है तोयह भूमि फटजाय और मैं उसमें समाऊं कैसे धर्म की महिमा है कि महारानी का प्रेम ऐसे बन- बासमें उनसे पृथक् नहींथा, वह कहउठीथीं कि-यदि मेरा जन्म फिर हो तो रघुनाथ रामचन्द्रही मेरे पति हों ।

इस ऐसे उज्वल धर्म को नष्टकरने को आजदिन श्रुति स्मृति के अर्थ ब- दले जाते हैं, पतियों से प्रेम छुड़ाने का प्रबन्ध कियाजाता है कलियुग की बिचित्र महिमा है जिसको अग्निकी साक्षी करग्रहण कियागया है, जो वेदमंत्रों की सामर्थसे दूधपानीकी समान एकरूप और शिवगौरी की समान अर्द्धांगी होचुकी हैं वे किसी प्रकार भी पतिका त्याग नहीं करसकतीं । न शास्त्र में वे अन्यपुरुषगामिनी होसकती हैं, मन में अन्यपुरुष का भाव प्राप्त होतेही पतिव्रतधर्म नष्ट होजाता है सहवासकी तो कौन कहे पति के परलोक गमन में भी उन्हीं के निमित्त सत्कर्म करती हुई अपना समय बि- तावें, कारण कि जाया (स्त्री) पति के अर्द्धांग रूपसे वर्तमानहैं, मनुभी कहतेहैं

कामंतुक्षपयेद्देहं कन्दमूलफलैःशुभैः
नतुनामापिगृह्णीयात्भर्तुःप्रेतेपरस्यतु—

चाहैं कन्दमूल फल खाकर अपने शरीरको पात करदे परन्तु स्वामि के

परलोक गमन में दूसरेका तो नाम तकभी न लेना चाहिये, यहां अप्रसंग होनें से इस बातको विस्तार नहीं करते कारण कि यहां केवल पतिव्रतकी ही महिमापर थोड़ासा कुछ कहना है, पुरातन रीति है तथा शास्त्रोंमें भी लेख है कि रजो स्नानपर स्त्री प्रथम स्वामीकाही दर्शन करै यदि वह न हो तो देवता सूर्य वा अपना मुखही दर्पणमें देखले बस संतानमें विगुणता नहीं आती, पतिव्रता स्त्री जिस घरमें विद्यमान है वह घर देवरूप जानना चाहिये वह स्त्री सम्पूर्ण कुटम्बके तारने में समर्थ है, मनुजी कहते हैं कि—

पतिंयानाभिचरतिमनोवाग्देहसंयता ।
सभर्तृलोकानाप्नोतिसाद्भिसाध्वीतिचोच्यते ॥ मनुस्मृति ॥

जो मन वाणी देहको नियममें रखती है कभी पतिके प्रतिकूल आचरण नहीं करती वह धर्म परायणा स्त्री स्वामी के लोकोंको प्राप्त हो ॥
और भी लिखा है कि -

कुरूपोवाकुवृत्तोवा सुस्वभावोथवैपतिः ।
रोगान्वितः पिशाचोवा क्रोधिनोवाथमद्यपः ॥ १ ॥
वृद्धोवाप्यविदग्धोवा मूकोंधोवाबधिरोऽपिवा ।
रौद्रोवाथदरिद्रोवा कदर्य्यःकुत्सितोऽपिवा ॥ २ ॥
कातरःकितवोवाऽपि ललनालंपटोऽपिवा ।
सततंदेववत्पूज्यः साध्व्यावाक्कायकर्म्मभिः ॥ ३ ॥

अर्थात् पति कुरूप, दुराचारी, उत्तम स्वभाव का, रोगी, पिशाच, क्रोधी मद्यप, वृद्ध, बुद्धिहीन, गूंगा, अंधा बहिरा, विकराल दरिद्री, कदर्य निन्दित डरपोक, कपटी, अथवा पर स्त्री लंपट हो, तथापि पतिव्रता स्त्री मन वचन कर्म से उसका देव के समान ! पूजन करै ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

पुरुषंसेवतेनान्यं मनोवाक्कायकर्म्मभिः ।
लोभिताऽपिपरेणार्थैः सासतीलोकभूषणा ॥ ४ ॥

पर पुरुष के द्रव्यका लोभ देने परभी मन वचन और कार्य से जो पर पुरुष का सेवन नहीं करती वह स्त्री इस लोककी शोभा देनेवाली सती जाननी चाहिये ॥

देवोमनुष्योगन्धर्वासतीनां नापरः प्रियः ।

अप्रियं नैवकर्त्तव्यं पत्युःपत्न्याकदाचन ॥ ५ ॥

सती स्त्री को अपने पतिके सिवाय पर पुरुष देव गन्धर्व के सदृश हो तो भी प्रिय नहीं लगता । इस कारण स्त्री को किसी प्रकार भी पति का अप्रिय नहीं करना चाहिये ॥

भुङ्क्तेभुक्तेतथापत्यौ दुःखितेदुःखिताचया ।
मुदिते मुदितात्यर्थं प्रोषिते मलिनाम्बरा ॥ ६ ॥
नान्यं कामयते चित्ते साविज्ञेयापतिव्रता ।
भक्तिंश्वशुरयोः कुर्य्यात्पत्युश्चापि विशेषतः ॥ ७ ॥

पति जो भोजन करै वह उसे करे । पतिके दुःखको दुःख और उसके सुखको सुखमाने, पति विदेशगया हो तो उत्तम वस्त्रको न पहरै, मनमें पर पुरुषकी कामना न करै, सास श्वशुर की भक्ति करै, और स्वामीकी भक्ति विशेष करके करै, उसे पतिव्रता जाननी चाहिये ॥

मित्र ! शोक है कि ऐसे २ रत्न उपदेश रहते भी आज पतिव्रताओं का मार्ग नष्ट कियाजारहाहै । कलिकाल के प्रभाव से आज उनसती स्त्रियों को पर पुरुष में नियुक्त करते हैं, विस्तारके भयसे हम अब अधिक लिखना नहीं चाहते कारण कि बुद्धिमानको इशाराही बहुत है ॥

तीर्थ ।

मातःशैल सुतःसपत्नि वसुधा शृङ्गार हारावलि
स्वर्गारोहण वैजयन्ति भवतीं भागीरथीप्रार्थये ।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषुप्रेंखत-
स्त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यानमे शरीरव्ययः ॥ १ ॥

प्रिय पाठकगण ! आजकाल कराल कलिकाल की विशाल महिमासे कै से २ कपोल कल्पित कुतर्क वागजालरचकर बहुधा आधुनिक लोग हमारे सच्चे सनातनधर्म्मके प्रत्येक मर्म्म स्थानमें कठोर प्रहारकररहे हैं, उन्हेंदेख कौन ऐसा सत्य धर्म्मानुरागीहै कि जिसको रोमाञ्च और कम्पके साथ २ मनो वेदना न होतीहो । महाशय ! आप जानतेही हैं कि इससमयमें सतयुगके समान

तपश्चर्या नहीं होसकती ! और न त्रेतायुगकी तुल्य ज्ञान कीआशाहै ? और न द्वापर के समान राजसूय आदि यज्ञोंकी सम्भावना है ? केवलकलिकाल में भगवद् भजन पाठ पूजन, श्राद्धतर्पण और तीर्थ सेवनादि धर्माचरणही इस असार संसारसे पारहोनेका उपाय शेष रहाहै ।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखाजायतो उक्त कार्यों में भी तीर्थ सेवाही सबकी मूल भूतप्रतीत होती है। क्योंकि प्रायः गृहस्थी लोग घरमें रातदिन लौकिक कार्यों में लगेरहते हैं और स्त्री पुत्रादि के निमित्त मिथ्या महा मोह में निमग्नहो हाहाकार करते रहते हैं और अपने वास्तविक कर्त्तव्य से सर्वथा भ्रष्ट होकर अपने उद्धार का स्मरण मात्र भी नहीं करते । यदि करें भी तो अनेक लौकिक गृह सम्बन्धि कार्य कलापकी निकटतासे स्वल्पही करसकते हैं । और उतने में चित्त एकाग्र नहीं होता है ।

इस कारण जब मनुष्य तीर्थयात्रा आदि को जाता है तब "मैं इनकार्यों को फिर आकर करूंगा" इस आशासे कुछ काल तक लौकिक कार्य व्यवहार आदि से मनहटा लेता है, और केवल धर्माचरण मेंतत्परहोकर बहुत कर्त्तव्य को थोड़े समय में ही करलेता है क्योंकि वहां (तीर्थ आदि में) इस (जीव) को बिना धर्मानुष्ठान के और कुछभी कर्त्तव्य नहीं होता । इस कारण जितना समय धर्माचरण के लिये तीर्थयात्रा में मिलसकता है, घर में उसका दशांश निकालनाभी कठिन होता है। और प्रायः पवित्रक्षेत्र में महात्मा धर्मात्मा विद्वान और साधुजनों के सत्संग से समस्तकाल स्नान, दान, भगवद्भजन पाठ पूजन आदि सत्कर्मों में ही व्यतीतकरना होता है। अतएव इस समय में तीर्थ सेवाही सनातनधर्म का मूल कारण है ।

परन्तु शोक की बात है कि किसी प्रकार से बची बचाई "तीर्थ सेवा" परभी कलिके प्रभाव स आधुनिक कल्पित कुतर्क वाग्जाल लगचला है । और कई भोले भाले हमारेही भाइयोंने सहसा उसजाल में फँसकर निज धर्म कर्म को तिलांजलिदे वैदिक धर्मी और आर्य धर्मी होने की शुष्क आशासे मनमाने लड्डू खाने के लोभ में दृष्टपड़कर समस्तभूमण्डल के शिरोमणि पवित्रक्षेत्र भारतवर्ष के मध्य शुद्ध चातुर्वर्ण्य कुल में अतिदुर्लभ अमूल्य रत्न मनुष्य जन्मको विनादाम खोदेनाही परमलाभ समझ लिया है ।

वास्तवमें उनलोगोंका भी दोष नहीं किन्तु यह कलिकाल राजाका तेज, और अविद्यामहारानीका प्रताप है, तथा कपोल कल्पित कुतर्क वाग्जालका फल है ।

इसीसे उस आधुनिक मिथ्या कपोलकल्पित कुतर्क वागूजाल लेखका पोल दिखाना और नदियों तथा तीर्थोंकी सनातनताको वेदादि सच्छास्त्रोंके प्रमाणों से सिद्धकरनाही अपेक्षितहै । इसकारण मैं भी अपनी बुद्धिके अनुसार 'तीर्थनिरूपण' विषयक एक व्याख्यान आपलोगोंकी सेवामें समर्पण करता हूं, और आशा करताहूं कि सज्जन धार्मिक यथार्थभावसे सत्य स्वीकार और असत्य परित्यागकी दृढ प्रतिज्ञा से सत्य मार्गका ग्रहणकर मुझे भी अनुग्रहीत करेंगे और आपभी शुद्ध सनातन धर्ममें कभी विचलित न होंगे प्रत्युत यथासाध्य मुग्ध और वंचित पुरुषोंको भी प्रेरणा करके सत्य मार्ग में प्रवृत्त करायेंगे ।

प्रथम आपकी सेवामें सर्व शिरोमाणिर्य वेदके मंत्र निवेदन कियेजाते हैं ।

इमंमेगङ्गेयमुने सरस्वतिशुतुद्रिस्तोमंसचतापरुष्ण्या ।
असिक्न्यामरुद्वृधेवितस्तयार्जीकीयेशृणुह्यासुषोमया ॥

ऋ० ८० । ३० । ६० । ५० ।

अर्थात् हे गङ्गे ! यमुने ! सरस्वति ! शुतुद्रि ! (सतलुज) परुष्णी (ऐरावती=रावी) और असिक्नी नदीके साथ हे मरुद्वृधे ! (चन्द्रभागा=चिनाव) वितस्ता (झेलम) के साथ और सुषोमा (सिन्धु=सिन्ध) के साथ हे आर्जीकीय ! (विपाशा=व्यास) इस मेरे यज्ञको आकर सेवन करो और स्तुतिको सुनो । 'इसीप्रकार यजुर्वेदका भी एक मंत्रहै जिसमें पांच नदियोंको सरस्वती के नामसे लिखा है ।

पञ्चनद्यःसरस्वतीमपियन्तिसस्रोतसः ।
सरस्वतीतुपञ्चधासोदेशेऽभवत्सरित् ॥

य० वा० सं० अ० ३४ । मं० ११

अर्थात् जो दृषद्वती (घघरा) से आदि समान प्रवाहवाली नदियें सरस्वतीमें मिलती हैं वे पांचों सरस्वतीही बनजाती हैं ।

सरस्वतीसरयुःसिन्धुरूर्मिभिर्महोमहीरवसायंतुवक्षणीः ।
देवीरापोमातरःसूदयित्न्वो घृतवत्पयोमधुमन्नोअर्चत ॥

ऋ० सं० १० । ६४ । ६ । ९ ।

अर्थात् लहरोंसे युक्त बड़ीसे बड़ी सरस्वती सरयु और सिन्धु नदियें र-

सा करने के कारण आवें और प्रकाशमान, माताकी समान पालनेवाले तथा पापों के नाशकरनेवाले उनके जल हमें घृत और मधुयुक्त जल देवें। और देखिये—

महोअर्णःसरस्वतीप्रचेतयतिकेतुनाधियोविश्वाविराजति।

ऋ० सं० मं० १ अ० १ सू० १४ मं० १२

अर्थात् सारस्वती दो प्रकारकी है एक देवतारूप दूसरी नदीस्वरूप। उन में से पहिली दो ऋचाओं से देवतारूप सरस्वतीका प्रतिपादन किया है अब इस ऋचासे नदीरूपा सरस्वतीका प्रतिपादन करते हैं।

वैसी (नदीरूपा) सरस्वती अपने प्रवाह से बहुत जलको जतलाती है, और अपने देवता रूपसे अनुष्ठाताओं की बुद्धियों को प्रकाश करती है॥

इसी प्रकार निरुक्तमें भी सरस्वती के दोनों स्वरूप दिखलाए हैं—

सरस्वतीत्येतस्यनदीवद्देवतावच्चनिगमाभवन्ति॥

नि० अ० २ पा० ७ खं० १

अर्थात् सरस्वती के निगम न नदीवत और देवतावत होते हैं, अर्थात् दोनों स्वरूप होने से दोनों प्रकार के निगम होते हैं। फिर देखो—

इयंशुष्मेभिर्विसखाइवारुजत्सानुगिरीणान्तविषेभिरूर्मिभिः
पारावतघ्नीमवसेसुवृक्तिभिःसरस्वतीमाविवासेमधीतिभिः॥

ऋ० सं० अ० ५० ऋ० २ सू० ६१

अर्थात् सरस्वती देवतारूपा और नदीरूपा है। देवता रूपकी स्तुति की अब नदी रूपकी स्तुति करता है। यह सरस्वती नदी अपने सुखाने वाले वर्कों और बड़ी २ लहरों से तीरवर्त्ती पर्वतोंक सानुओं को विसखानक (बि-स=में उखाड़ने वाले) की समान तोड़ती है। उस पार उरार (दोनों कि-नारोंको) तोड़ने वाली सरस्वती नदीको हम स्तुति और कर्म (यज्ञ आदि) से रक्षा करने के निमित्त परिचर्या करते हैं।

और देखिये कि ऋ० सं० के ३ मं० ३ अ० १३ मंत्रोंका ३३ वाँ सूक्त है जिस में कथा है कि कुशिक राजर्षिका पुत्र विश्वामित्र ऋषि जब पैजवन सौदास राजाका पुरोहित बनकर उससे बहुतसा धन लाया तब आतेहुए

मार्ग में शतद्रुज और व्यास दोनों नदियों के संगम में आया और वहां से तैरने की इच्छा से विश्वामित्र ने उन [दोनों नदियों] की स्तुति कर के कहा कि तुम एक मुहूर्त भर अपने प्रवाह को रोकलो तो मैं तरजाऊँ तब नदियों ने कुछ सम्वाद और इन्द्र की स्तुति कर के ऋषि को मार्ग दिया और ऋषि ने पार होकर फिर उन [नदियों] की स्तुति की और फिर वैसाही पूर्ववत् उन (नदियों) का प्रवाह होगया इत्यादि वर्णन मंत्रों में हो है जिन का प्रथम मंत्र यह है कि-

प्रपर्वतानामुशतीउपस्था दश्वेइवविषितेहासमाने ।
गावेवशुभ्रेमातरारिहाणे विपाट्छुतुद्रीपयसाजवेते ॥
ऋ० सं० मं० ३ अ० ३ सू० ३३ मं० १

अर्थात् विश्वामित्र कहता है कि जैसे अश्वाशाला [तवेले] से निकल कर दो घोड़ियें जिद से दौड़ती हैं वा जैसे शोभायमान दो गौएँ अपने बच्चे को चाट ने की इच्छा से दौड़ती है वैसेही पहाड़ों की गोद से निकल कर विपाशा और शुतुद्री अर्थात् व्यासा और शतुलुज दौड़कर समुद्र को जाती हैं ।

महाशय ? अब आपही कहिये कि इन सब वेद मंत्रों में कैसा साफ २ नदियों का वर्णन है, और किस प्रकार नदियों की सनातनता में परम मान्य श्री वेद पुरुष के मंत्रोंही का प्रमाण विद्यमान है । अब आप की सेवा में और भी प्रमाण समर्पण किये जाते हैं जिन से तीर्थों में जाकर स्नान और दान का करना तथा उन से धन और सन्तान की प्रार्थना करनी और त्रिविध [अर्थात्] मानसिक, वाचिक, और कायिक पापों की निवृत्ति और मोक्ष तककी प्राप्ति सिद्ध होती है ।

समुद्रंवाएतेप्रतरंतिये संवत्सरायदीक्षन्ते तस्यतीर्थमेव-प्रापणीयो । त्रिरात्रस्तीर्थेनहि प्रस्नांतितस्यप्रापणीयमति रात्रमुपयन्तियथा तीर्थेन समुद्रंप्रस्नायुस्तादृकतत् ॥ श० का० १२ अ० २ ब्रा० १ कं० १

और भी ब्राह्मण में लिखा है —

वेत्राहवैसत्रंनिषेदुः अग्निरिंद्रःसोमोमखोविष्णुर्विश्वेदेवाविनेवा

ह्विभ्याम् १ तेषां कुरुक्षेत्रं देवयजनमास तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं हि देवानां देवयजनमिति तस्माद्यत्र क्व च कुरुक्षेत्रस्य निगच्छति तदेव मन्यत इदं देवयजनमिति तद्धि देवानां देवयजनम्। श० का० १४ अ० १ ब्रा० १ कं० १

और भी—

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत ते कवषमैलूषं सोमादनयन् दास्याःपुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्टेति, तं बहिर्धन्वोदवहन्नत्रैनं पिपासा हंतु सरस्वत्या उदकं मा पिबदिति, स बहिर्धन्वोदूढः पिपासया वित्त एतदपोन प्त्रीयमपश्यत्, प्रदेवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्विति, तेनापां प्रियं धामोपागच्छत् तमापोऽनूदायंस्त-सरस्वती समंतं पर्यधावत्तस्माद्धाप्ये तर्हि परिसारकमित्याचक्षते ॥ ऐ. ब्रा. २ पं. ३ अ. १९ कं. पुनरपि ब्राह्मणम्—

अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु ।
गङ्गायां वृत्रघ्ने बध्नात् पञ्च पञ्चाशतं हयान्

ऐ०ब्रा० ८ पं० ४ अ० २३ कं०

अन्यच्च ब्राह्मणम्—

अथैतन्नोम देवयजनं यत्रापस्तिष्ठति यत्र स्पन्दंति प्रतद्धंस्युद्वहन्ति तद्देवयजनम् ॥ गो०ब्रा०पू० १३ भा० प्र २ कं.

अर्थात् जो सम्वत्सर की दीक्षा लेते हैं वे समुद्र को तरते हैं और उनका अतिरात्र यज्ञ ही तीर्थ होता है जैसे तीर्थ में स्नान है वैसे ही वह (यज्ञदीक्षा) है ।

देवताओं ने यज्ञ किया था जिसमें अग्नि, इन्द्र, सोम, मख (यज्ञपुरुष) और विष्णु थे परन्तु विश्वेदेवा नहीं थे उनका देवयजन (स्थान) कुरुक्षेत्र था इसलिये कुरुक्षेत्र को देवयजन कहते हैं और जहां कहीं कुरुक्षेत्र का निगमन आता है वहीं मानते हैं कि यह देवयजन है । ऐतरेय ब्राह्मण में भी लिखा है कि ऋषियों ने सरस्वती पर यज्ञ रचा और उन्हों ने कवष ऐलूष को सोम से बाहिर किया कि यह क्यों

हमारे में दीक्षित हुआ इसे यहीं प्यासलगे और यह सरस्वतीका जल न पीवे, तब वह बाहर गयाहुआप्याससे खिन्न होकर जलानयनको (प्रदवत्राह्मणे गानुरे तु०)

इसमंत्रकोदेखताहुआ और उसीसे जलोंके परमधामको पहुंचा और सब जल उसे आनमिले, सरस्वती उसके चारोंओरसे सरकी उसीसे अबतक भी उस (स्थान] को परि सारककहते हैं।

ऐसेही और भी है कि "दुष्यन्तराजा के पुत्र भरथराजाने यमुना के किनारे १८ अट्ठाइस और गंगापर ५५ पचपन घोड़ों को बांधा अर्थात् वहां (गंगा यमुना) पर यज्ञ किया। और भी ब्राह्मण कहता है कि इसी पृथ्वीपर देवयजन [यज्ञस्थान] है जहां जलठहरते हैं बहते हैं स्रवते और उछलते हैं अर्थात् ऐसे स्थानों में देवताओं का पूजन करना चाहिये॥

पाठक महाशय ! इस शतपथ, ऐतरेय और गोपथ ब्राह्मण की श्रुतियों से भी तीर्थ कुरुक्षेत्र की कैसी प्राचीनता सिद्ध है। अब संहिता के कुछ मंत्र लिखते हैं जिन से तीर्थों पर जाकर स्नान दान आदि की सिद्धि होती है देखिये -

आदान्मेपौरुकुत्स्यःपञ्चाशत्तत्रसदस्पूर्वधूनाम् । मंहिष्ठोअर्यःसत्पतिः। ऋ० सं० ६ १, ३५, ६ और—

उत्तम प्रियियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधितुग्वनि । तिस्रृणांसप्ततीनां श्यावः प्रणेताभुवद्वसुर्दियानाम्पतिः॥

ऋ० सं० ६, १, ३५. ५।

अर्थात् कण्व वंशीय, सोभरि ऋषि कहता है कि शत्रुओं को डराने वाले बड़े पूज्य, भगवान, सत्पालक पुरु, कुत्सराजाके पुत्र ने सुवास्तु नदी के तीर्थपर पचासकन्या, दोसौदस गौएं और श्यामवर्ण बैल तथा बहुत घोड़े और वस्त्रादि मुझे दान दिया है। इन मंत्रों से तीर्थोंपर दान देने की सनातनता सिद्ध होती है। और भी मंत्र लिखते हैं जिनसे धन और संतान की प्राप्तिके लिये सरस्वतीसे प्रार्थना है।

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्ति मम्बिनस्कृधि ऋ. सं. १।८।१०।२।४।१।१६

अर्थात् माताओंमें. नदियोंमें. देवियोंमें श्रेष्ठ हे सरस्वति ! हमधनके न होनेसे असमृद्ध हैं हे माता सरस्वति ! हमारीधन समृद्धि को करं अर्थात् हमे धन दे। इस अगके मंत्र में अन्न और सन्तान के लिये सरस्वतीसे प्रार्थना है॥

त्वेविश्वासरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्। शनहोत्रेषु मत्स्वप्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥ ऋ०सं. २।८।१०।२।४।१७।

अर्थात् हेसरस्वती देवि। तेरे दीप्त होनेपर ही सब अन्न आश्रित होतेहैं और वह तूहमारे विषय में अमृत पान से तृप्ति हो और देवि सरस्वति हमें प्रजा (पुत्रों) को दीजिये॥ १७॥

अब पाप निवृत्ति के लिये प्रार्थना सुनिये

इदमापः प्रवहत यत्किंचदुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्॥ ऋ० सं० अ० १ अ० २ व० १२ मं० १ अ० ५ सू० २३ मं० २२

अर्थात् मुझ यजमान में जो पाप अज्ञान से हुआ है वा जो कुछ मैंने जानकर सब से द्रोह किया है वा जो किसी साधु को मैंने श्राप दिया है वा जो मैंने झूठ बोला है इन सब पापों को हे आपः [जलों] मुझ से दूर करो॥ २२॥ और भी देखिये—

इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणाम्॥ अ० वे० सं० कां० ७ प्र० १७ अ० ८

अर्थात् हे जलों! जो निन्दित मल मेरे शरीर में है और जो मैंने द्रोह किया है और जो मैंने झूठ कहाहै और जो मैंने अपराधीको शापदिया है, इन सब पापोंको मुझ से दूरकरो। और भी देखिये —ऋग्वेदका परिशिष्ट भाग।

यत्र गङ्गा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती।
यत्र सोमेश्वरो देवो तत्र माममृतं कृधि॥

अर्थात्-हे सोम! जहां गङ्गा है जहां यमुना है जहां सरस्वतीहै औ जहां सोमनाथ हैं वहीं मुझे अमृत (अमर) कर॥ और भी देखिये—

सितासिते सरिते यत्र संगथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥

अर्थात् जहां श्वेत और कृष्ण (गङ्गा यमुना) नदियें मिलती हैं उस स्थान में (प्रयागराज में) स्नानकरनेवाले पुरुष स्वर्गको जाते हैं, और जो लोग वहां शरीर छोड़ते हैं वे अमर होते हैं, ॥ और भी—

इदंते अन्याभिरसमानमद्भिर्याःकाश्चसिन्धुंप्रवहन्तिनद्यः ।
सर्पोजीर्णामिव त्वचं जहाति पापंस शिरस्कोभ्युपेत्य ॥

अर्थात् हे सिन्धो ! यह तेरा जल उन नदियोंके समान नहीं है जो कि तेरे में गिरती हैं किन्तु उन से उत्तम है, इस में सिर समेत गोता लगाने से पुरुष पापको ऐसे छोड़देता है जैसे सांप जीर्ण त्वचाको छोड़ता है ॥ फिर मनुजी ने भी तीर्थों से पाप दूर होना लिखा है कि—

यमो वैवस्वतोदेवो यस्तवैषहृदिस्थितः ।
तेनचेदविवादस्ते मागङ्गां माकुरून्गमः ॥

मनु० अ० ८ श्लो० ९२

यम वैवस्वत देव जो तेरे हृदय में स्थित है यदि उसके साथ तेरा विवाद नहीं है, अर्थात् अधर्म करने के कारण भय नहीं है तो गङ्गा और कुरुक्षेत्र के जाने की आवश्यकता नहीं । परन्तु तीर्थोंपर जाकर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये सो सुनिये ।

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेरण्येवनेपिवा ।
नदीनांवापिसंभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥

मनु० अ० ८ श्लो० ३५६

अर्थात् जो पुरुष तीर्थ, वन, और नदी सङ्गम में पराई स्त्रीको बुलावे सो संग्रहण (सहस्र पण दंड) को पावे ॥ महाशय ! यदि आप यथार्थ दृष्टिसे विचारें तो निःसंदेहही मनुजी के वाक्यों में भी गंगा, कुरुक्षेत्र तीर्थ और नदी संगम आदि पदों से प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि यह सब तीर्थ स्थल मनुजीके समयसे भी प्राचीन हैं ॥

इन सम्पूर्ण प्रमाणों से निःसंदेह हमारे प्राचीन तीर्थों में त्रिविध (मानसिक, वाचिक और कायिक) पापोंकी निवारक शक्तिका प्रमाण मिलता है, और प्राचीनता स्पष्ट सिद्ध होरही है, अब आप लोग सरल स्वभाव और सत्य प्रभाव से निष्पक्षपात होकर विचारें कि केवल कपोल कल्पित कुतर्क वाग्जाल के बिना हमारे शुद्ध सनातन वेदानुकूल तीर्थ विषयकी कि

तनी गूढ़ता है भतएव अब सनातन धर्मानुरागियोंको उचित है कि अपने परमधर्म्म तीर्थ सेवन पुण्यकर्म्मसे कदापि विरत न हों। न किसीकी बक सावट में भाकर अपने धर्म्म से वंचितहो लोक परलोक से निराशहो अमूल्यरत्न शुद्ध चातुर्वर्ण्य जन्मको खोकर हाथ धोते रहजायँ। तीर्थों का फल ऐसे पुरुषोंको मिलता है—

यस्य हस्तौच पादौच मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्यातपश्चकीर्त्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ १ ॥
प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टोयेनकेनचित्।
अहङ्कारनिवृत्तश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ २ ॥
अकल्कोनिरारम्भो लघ्वाहारोजितेन्द्रियः।
विमुक्तःसर्वपापेभ्यःसतीर्थफलमश्नुते ॥ ३ ॥
अक्रोधनश्चराजेन्द्र सत्यशीलोदृढ़व्रतः।
आत्मोपमश्चभूतेषु सतीर्थफलमश्नुते ॥ ४ ॥

अर्थात् जिसके हाथ पैर और मन भली प्रकार से नियम में स्थितहैं, और जिस में विद्या तप और कीर्त्ति है, वही तीर्थों के फलको प्राप्त होता है १॥ प्रतिग्रहको छोड़कर थोड़े में संतुष्ट रहनेवाला, और जो अहङ्कार रहित है, वही तीर्थ के फलको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ कलङ्क रहित, कर्त्तव्यहीन, स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय, तथा जो मनुष्य पापरहित है, वही तीर्थ के फल को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ क्रोधहीन, सत्यशील, दृढ़ प्रतिज्ञावाला तथा सम्पूर्ण प्राणियों में जो अपनी समान देखताहै, वही तीर्थ के फलको प्राप्त होताहै ४॥

प्रियवर! कैसे शोक की बात है, कि आजकल के असंस्कृत मूर्ख सभ्याभिमानी उन हमारे प्राचीन तीर्थों के माहात्म्यको अपनी प्रमाण शून्य युक्तियों से उड़ाना चाहते हैं; परन्तु मित्र ध्यानरहै पींजरे में पड़े हुए त्रिकाल सिंह को यदि कोई खिजावै तो ऐसा करने से क्या सिंह का अपमान हो सकता है। हमारा सनातनधर्म मलीनावस्थामें होने परभी कभी नष्ट नहीं होसकता। अन्त में हमारी सहृदय सज्जन पुरुषों से प्रार्थना है कि आलस्य को त्यागकर अपने सनातनधर्म में तत्पर होजाओ। और अपने वर्ण के अनुसार कर्म्मों को करो।

माया और ममता ।

यस्यादाम्बुजवैभवं कथयितुंपञ्चाननःशंकरः
ब्रह्माभूच्चतुराननो हरिहरोजातःसहस्राननाः ।
एतेवापिनस्वप्रभावमतुलं वक्तुंसमर्थाःनते
सादुर्गाभवतःकरोतुकुशलं श्रीराजराजेश्वरी ॥ १ ॥

इस दुःख पूर्ण संसार में इतनी रमणीकता क्यों दिखाई देती है ? ज्वाला की यंत्रणामय संसार को इतनामधुर क्यों कहाजाता है ? निराशा के उष्ण श्वास जिसकी नस २ में घुस रहे हैं ऐसे भयङ्कर विषधर को अमृत पूर्ण कहकर क्यों मग्न होते हो ?

इन सबका कारण माया ममता है। माया ममता के कारण संसार की चिताभस्म को सुवर्ण रेणु कहाजाता है। माया ममता के कारणही इस प्रेत भूमि में शृगाल की हुंकार कोकिलकी मधुर झंकार बोध होती है। माया ममता के कारणही यह घोर वन विलास पूर्ण क्रीड़ा कानन बोध होता है। माया ममता के कारणही यह कठोर दुर्भेद्य वज्र कोमल कहा जाता है। संसार वृक्ष में माया ममताही विकसित फूल है। संसार मरुभूमि में माया ममताही अमृतकी निर्झरिणी है। संसार काल रात्रि के कराल अन्धकार में माया ममताही निर्मल चांदनी है। माया ममता के कारणही मनुष्य इतने परिश्रम और कष्टमय जीवन संग्राम को सहनकरताहै। ममताकी शान्तमयी गोद में निद्रित होकर मनुष्य संसार के सब कष्ट भूलजाता है, ममता रूपी अमृत के लगने से मनुष्य का मर्मस्थल धुलजाता है। कर्म क्षेत्र के श्रमसे उत्पन्न हुआ दुःख ममता की मदिराके पान में काटकर मनुष्य नवीन उत्साह से फूल जाता है। मनुष्यकी शिथिल मर्म ग्रंथि ममता से अभिषिक्त होकर फिर सतेज और सबल होजाती है। इस कारण ममता की शक्ति मर्म स्पर्शनी है।

माया ममता कहने से साधारणतः हमजानते हैं कि धन जन परिवारादि के प्रति आन्तरिक आशक्ति दार्शनिक भाषामें समझना चाहिये कि जो वृत्ति परको अपना करने की इच्छासे चले, विभक्तको संयोजित करनाचाहे, उसीका नामआसक्ति वा माया ममताहै। साधारणतः प्रचलित अर्थमें माया ममता की गांठ सङ्कीर्ण होगई है। दार्शनिक अर्थ में माया ममताकी व्याप्ति

व्यापक होकर दौड़रही है। दार्शनिक अर्थ यदि ठीक है तो माया ममता के हाथसे रक्षा करने की किसी में शक्ति नहींहै, माया ममताके विछाकजाल में अनन्त प्रजावृन्द डूबरहे हैं। भिखारी से लेकर चक्रवर्ती पर्य्यंत, गृहस्थ सेवनवासी उदासीन पर्यन्त तथा मनुष्य से देवलोकतक ममता के सबही दासहैं। दूसरेको अपना करनेके निमित्त अप्राप्तको प्राप्त करनेके निमित्तऔर प्यारी वस्तुको हस्तगत करनेके निमित्त संसारमें सभी चेष्टा करतेहैं गृहस्थीधन, जन,परिवार प्राप्त करनेके निमित्त व्याकुलहैं,विद्यार्थी विद्या पानेके लियेव्यग्रहै सन्मानार्थ सन्मान पानेके लिये उत्सुकहै,ज्ञानार्थी ज्ञानपानेके निमित्तव्याकुल है। देवता अमृत पानेकेलिये व्याकुल हैं। भिखारी एकजीर्ण वस्त्र पाने के निमित्तही चेष्टा करताहै प्रिय पदार्थके साथ मिलने की आन्तरिक इच्छाहीतो ममता है। इस ममताका उपासक जगत् में कौन नहीं है ? प्रियतम वस्तु पानेकी पिपासा जगत् में सबकोही समान है। इस अंश में किसीके भी साथ किसी की पृथक्ता नहीं है। पृथक्ता केवल प्रियताका चित्र लेकर सुखका आदर्श लेकरहै। धनार्थी जीव धनकोही समस्त सुखका आदर्श समझता है इसीकारण उसकी धनकी तरफ माया ममता है। झुंझने तथा खिलौने को देखकर बालकका मन भूलजाता है, खिलौना पाकर वह मातापिताको भूल जाता है, आहार निद्राको भूलजाता है, इसीकारण बालककी खिलौने के प्रतिमाया ममताहै। युवतीका हास्ययुक्त मुखदेखकर युवक सुखकासार सर्वस्व समझता है इसकारण युवती के निमित्त युवककी माया ममता वा आसक्तिहै और बड़े२दार्शनिक पुरुष अपनी उच्च चिन्ताकोही सांसारिक समस्त सुखोंसे अधिक मानते हैं इसकारण वह गंभीर चिन्ताके प्रेममें सराबोर हैं, उस चिन्ताके प्रति उनकीमाया ममता वा आसक्तिहै। इससमय एकसत्यघटना पूर्णदृष्टान्तवत् आताहै कि नवद्वीपमें जिस समय न्यायशास्त्रकी विशेष चर्चाथी। उससमय के एकनैय्यायक की बात कहते हैं। वह एकदिन अपनी कुटीमेंबैठाहुआ शास्त्र की चिन्ता में मग्नथा। उससमय एक धनी जमीदार उसके दर्शन करनेको आया। धनीको घरमें उपस्थितहुआ देखकर नैयायककी स्त्री बड़ीप्रसन्नहुई आज कुछ लाभ होगा यह विचारकर उसका मन आनन्दमें मग्नहोगया। जमीदार नैय्यायकके सन्मुख उपस्थित हुआ। नैय्यायक उससमयएकाग्रचित्तसे न्यायकी पुस्तकविचाररहेथे,वहशास्त्रकी गंभीर चिंतामें ऐसेमग्नथे कि बाह्यजगतकी तरफ उनकाध्यानभी नहींथा। इसकारण जमीदारकी तरफ उन्होंने दृष्टिभी नहींकी। गुणग्राही जमीदार किसीप्रकारका आदरसत्कार न पाकरभी क्रुद्ध नहींहुआ।

कुछदेर ठहरकर जानेके समय हाथ जोड़कर नैय्यायकसेबोला महाशय! मैं जमी-दार हूं, आप ब्राह्मण पंडित हैं। आपके गृह में आकर बिना कुछ दान किये मुझको जाना उचित नहीं। आपकी जो इच्छाहो मैं उसके पूर्ण करने को प्रस्तुत हूं। जमीदार की बात सुनकर नैय्यायकने उसीसमय पुस्तक का एक पत्रा जमीदार के हाथमें देकर कहा, पुस्तकके इस स्थलको मैं अच्छी तरह नहीं समझसका। अनेक विचार करके भी इसका अर्थ नहीं लगासका। इसी के जाननेकी मेरी इच्छा है। यदि दयालुताके कारण मेरा कष्ट छुड़ाने की इच्छा है, तो यह स्थल मुझे समझादो। नैय्यायककी बातसुनकर ज-मीदार स्तम्भित होगया। और आदरपूर्वक कहने लगा। महात्मन् इस अभावके पूराकरनेकी मुझ में सामर्थ्य नहीं। नैय्यायिक ने कहा मेरी जो इच्छाथी सो आपसे निवेदन करदी, इसको छोड़ और किसी वस्तुका अ-भाव नहीं है। ब्राह्मणी के गुणों से सांसारिक कोई कष्ट मुझे नहीं है। वह बड़े यत्नके साथ शाकान्न प्रतिदिन बनाकर प्रस्तुत करतीहै, मैं उसको परमा-नंदसे भोजन करता हूं। इसीकारण आपके निकट से और किसी वस्तु के लेनेकी मेरी इच्छा नहीं है। ब्राह्मणी कुछ दूर से स्वामीकी यह बातें सुनक-र बड़ी प्रसन्नहुई। महाशय जमीदार जाते समय ब्राह्मणीको बहुतसा द्रव्य देगया। हम तुम धनको जिसप्रकार प्रियपदार्थ समझते हैं, बालक खिलौनेको जिसप्रकार प्यारा समझते है। नैय्यायिक शास्त्रकी चिन्ताको उसी प्रकार प्रियपदार्थ समझताथा, खिलौने में आसक्त होकर बालक माता पिता गृह आदिक सभी पदार्थ को भूलजाता है, इसीप्रकार गम्भीर चिन्ता में मग्न होकर नैय्यायिक बाह्य समस्त पदार्थों को भूलगयाथा। और जो धार्मिक भक्त हैं वह ईश्वरके प्रेममें मग्न होकर समस्त विश्वके राज्यको भूलजाते हैं हमारे तुम्हारे पक्षमें रुपये जिसप्रकार सुखकी सामिग्री हैं युवकके पक्षमें यु-वती जिसप्रकार सुख की सामिग्री है, भक्त धार्मिक के पक्ष में भगवत्प्रसङ्ग उसी प्रकार आनन्दवर्द्धक है। धन ऐश्वर्य पुत्र स्त्री में जो मधु हम आ-स्वाद करते हैं, विचार और भगवत् प्रसङ्ग में दार्शनिक—और भक्त वही मधु पान करते हैं। उस के स्वरूप में कुछ न्यूनाधिक नहींहै, केवल श्रेणीगत भेद होसकता है। हम तुम सौ चेष्टा करके भी नहीं जानसकते, चिन्ता शीलकी चिन्तामें क्या सुख है, भक्तके भगवद्गुणानु-वादमें क्या सुखहै। विष्ठाका कीट सौ चेष्टा करने परभी क्या जानसकता है। मिसरीके खानें में क्या सुखहै? यह केवल भक्षण करनेसेही ज्ञात होता

है ? विकार शील विकार में सुख न पानेपर क्यों आसक्त होगा ? भक्त सुख न पानेपर भगवत् रसमें क्यों डूबेगा, क्यों नहीं ? आसक्ति वा लालसा सुख के निमित्त नहीं होती है। जिस ममता वा आसक्ति ने हमें तुम्हें संसार का दास किया, धन के निमित्त पिशाच करदिया है, उस ममता नेही गँभीर ज्ञानी के हृदयस्थ होकर उसको ज्ञान राज्यका सेवक बनाया है। जिसममताने कामीको कामिनीके चरणोदकका पिपासु कियाहै उसी ममताने प्रेमिक भक्तको भगवच्चरण पंकजका कङ्गाल किया है। जिस वृष्टि के जलकी बूँदें नीमके फलमें गिरकर कड़वी होगई हैं वहीबूँदें पके आमके फल में गिरकर स्वादिष्ट बनगई है। जो सुन्दर फूल विलासी के हाथमें पड़कर स्त्री का शिरो भूषण होताहै वही पुष्प साधु उपासकके हाथमें पड़कर देवताके चरणतलमें चढ़ाया जाताहै। जो गंगा का जल कलालके हाथमें पड़कर मद्य में मिलजाताहै, भगवद्भक्त के हाथमें पड़कर वही गंगा का जल देवताका चरणामृत होजाता है। माया ममता स्वभावसे वास्तविकही गंगाका जलहै। संसार कीटके विलास भान्डार में पड़कर वह मादकतामें मिलजाताहै, और साधुके कमण्डलुमें पड़कर वह देवताओंके चरणोंमें निवेदित होताहै। नारियल का जल कांसीके बर्त्तनमें रखदेनेसे मदहोजाता है, उसकी मधुरतामें विकार आजाता है, इसी प्रकार माया ममता संसार रुपीपात्र में रखनेसे मोह मयी मदिरा होगई है। वही शास्त्रमें भी कहाहै कि—

"पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरामुन्मत्त भूतंजगत्"

फिर वही भगवान्‌के चरणोंमें डालदेने से अमृत (भक्ति) बनजाती है। हमने ममताको अमृतके बदलेमें हलाहल कर लियाहै, चन्दनके बदले विष्ठा बनालिया है, अमरावती की मधुर सामिग्रीको नरक कुंडमें डालदिया है, व्यवहार दोषसे हमने मणि को धूलमें मिलादिया है। निर्म्मल शरद् ऋतुके आकाश में गाढ़ कलङ्ककी कालिमाक्षेप करदिया है, स्वर्गीय सौदामिनी की जलती हुई कान्ति को अमावस्या का घोर अंधकार करदिया है। क्या और कहना न जाननेके कारणही ममता आसक्ति हमारे बंधनका कारण हुई है पुष्पमाला हमको नागपाश होगई है, इसमें हमारीही दृष्टिका दोषहै !!!

जीव सृष्टि।

वसुदेव सुतं देवं कंस चाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानंदं कृष्णं वन्देजगद्गुरुम् ॥ १ ॥

ईश्वर ने जिसकी सृष्टिकी है,उसकानाम "ईश्वर द्वैत" है, और जीव अप नी सामर्थ्य के बलसे जो सृष्टि क्षेत्रमें पहुंचा है, वह 'जीव द्वैत' है। बाहर का द्वैतजगत् परमात्मा की सृष्टि है, और भीतर का भोग्य जगत् जीव की मानसिक सृष्टि है। यदि केवल बाहर का संसार साजमें सजाकर परमात्मा जीवको मन रहित करके कार्य्य क्षेत्रमें भेजता तो सब झगड़ाही समाप्त हो-जाता। बाहर के पदार्थ यदि भीतर प्रविष्ट होकर स्थिति न करते, तो जीव को मस्तकपर हाथ धरकर रोना नहीं होता। बाहरकी मन मोहनी सुन्दर छवि यदि भीतर अङ्कित न होकर बाहरही रहती, तो अन्तमें यह निराशा जीवको नहीं घेरती। बाहर का बहता हुआ जल सरोवर में प्रविष्ट होकर सरोवर के पुत्र स्वरूप मत्स्यादिको जिस प्रकार बहा लेजाता है उसके खि-लेहुए कमल दलको तरङ्गाघातसे जिस प्रकार छिन्न भिन्नकरके चलाजाताहै, उसी प्रकार बाहर की तरङ्गों में पड़कर बहुतदिनोंका सञ्चित् धन खोकरजीव अनाथ होकर लोटताहै। बहतहुए जलके दूसरे स्थानसे मत्स्य आकर प्रवेश तो करसक्ताहै, किन्तु वहतो उसका निजस्वनहींहै। इसीप्रकार बाहरका जो कुछ भीतर आकर जमगया है, उसकी उन्नति से भीतरे के निजस्वकी उन्नति कब होसक्ती है? उसका निजका जो कुछ था, वह यदि होता, तो उसको दूसरेका मुख देखना नहीं पड़ता।

ईश्वरके संसार में आकर उसकेही दियेहुए घर आदि में रहकर उसीके धनको हमने अपना समझलिया है। उन्हींकी उत्पन्न कीहुई वस्तु के ऊपर हमने माय्यतामय आवरणढक दिया है। यही आज हम अच्छीतरह सम-झेंगे और समझावेंगे।

पञ्चेन्द्रियके सामने जो कुछ पदार्थ आजाता है, मन उसी की तरफ दौड़ने लगता है। जिस प्रकार पुष्करणी नदी से जलका स्रोत जल निका लनेकी क्रियाद्वारा निकलकर क्षेत्रमें पतित होकार क्षेत्राकार होजाताहै,इसीप्र-कार अन्तःकरण इन्द्रियोंके द्वारसे बाहर जाकर विषयकी तरफ जानेसे विष याकार होजाता है, अन्तः करण की इस विषयाकारताका नामही वृत्ति है इस वृत्यवच्छिन्न चैतन्यका नाम प्रमाण चैतन्य है।

वेदांत मत में जगत्ब्रह्माण्ड सीपी में रजतकी समान चैतन्यस्वरूप ब्रह्म में आरोपित है। जो कुछ देखते हो सुनते हो, जानते हो, यह समस्त ही ब्रह्मकी छाया, ब्रह्मका विकाश, ब्रह्मरूप आधारका आधेयहै, सीपीका अस्तित्व छोड़कर रजतका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होसक्ता, इसकारण सीपी

रजतका अधिष्ठान है, उसी प्रकार ब्रह्मभी जगत् का अधिष्ठान है, इस कारण ब्रह्म सत् और जगत् असत् है, क्या ब्रह्मका स्वरूप नहीं है सत्+चित= आनंद, इन तीनों अंशोंको छोड़कर और जो कुछ दिखाई देता है वह सम्पूर्णही असत् है, और जिन को ज्ञान का व्यभिचार (अभाव) न हो वही सत् यही इस सद सत्वके पूछनेकी रीतिहै, (इस प्रकारका एकदृष्टांत है वह यहां देते हैं) सन्मुख एक देवताका मंदिर है, उस में दो अंश हैं, एक जडांश, दूसरा ब्रह्मांश, 'रहाहै' यह जो देव मंदिर के सत्वांश का टुकड़ा है सो वही ब्रह्मस्वरूप है, यही सत् है कारण कि इन विषयों में ज्ञानका अभाव नहीं होता, यह घटरहाहै- यह पटरहा है, यह मटरहा है इन सबको भी देखकर सद्बुद्धिका अभाव नहीं होता सद्बुद्धि के अनुसारही रहनाचाहिये परन्तु इन सम्पूर्ण देवालय विषयक बुद्धिका अभाव नहीं दृष्टि आता इस कारण देवालय असत् सत्वांश स्वरूप जो ब्रह्म है वही सत् है यदि सत्तामात्र ब्रह्मही स्थिरीकृतहो तब घट पटादि में सत्ताकी व्यवस्था होती है, जैसे बूराको लेकर पेड़ के मीठेका व्यवहार होता है, इससमय हम यह पूछते हैं कि यह जो घट पटादि सम्पूर्णही ब्रह्म चैतन्य से ढकेहुए हैं। सो इन घट पटादि का अधिष्ठान स्वरूप चैतन्य, घटावच्छिन्न चैतन्य, पटावच्छिन्न चैतन्य इसनामके शास्त्र से कहाजाता है, इसीप्रकार से अंतःकरण की वृत्तियोंको अधिष्ठान भूत चैतन्यको वृत्तावच्छिन्न कहते हैं इस बात को हम पहलेही कहचुके हैं इस वृत्तावच्छिन्न चैतन्य के साथ विषयावच्छिन्न चैतन्य अर्थात् घट पटावच्छिन्न चैतन्य का जब अभेद होता है तभी वह घट पटादि के प्रत्यक्ष होता है, इस बातको यहांपर हम एकदृष्टांत द्वारा समझाते हैं कि तुम यह विचारको कि तुम्हारे सामने एक घड़ा रक्खा है इस घडे के साथ तुम्हारी चक्षुरिन्द्रियोंका संयोग हुआ है, संयोग के होतेही अन्तःकरण की वृत्तियों में जाकर यह घटरूप विषयसे और उसके आकार से परिणत होता है, उसका यही परिणाम है, वह जब वृत्ति और घड़े एक स्थानमें दोनों एकत्रित हुए, इन दोनोंकी एकस्थानमें स्थिति होने से अधिष्ठानभूत चैतन्य दोनोंकी अभिन्नता सम्पादितहुई। यदि चैतन्य एक है, तो उसके अतिरिक्त विभिन्नता नहीं है, परन्तु तो भी उपाधिके भेदसे उसका भेद प्रकाशित होता है जैसे आकाश में एकके अभिन्न होतेही घट गृहादुपाधिके भेदों से घटाकाश और गृहाकाश इत्यादि भिन्न २ नाम भिन्नरूप से प्रतीत होते हैं उसीप्रकार से चैतन्य और घटावच्छिन्न चैतन्य

वृत्तावच्छिन्न चैतन्य इत्यादि भिन्न२ रूपसे सिद्ध होते हैं, परन्तु हमारी यह उपाधि दोनोंकी यदि एक स्थानमें स्थित होतो ऐसा होने से उपाधि में इन दोनोंका अभेद होगा, जैसे गृहाकाश और घटाकाशको आपस में भिन्न होतेही उस घटको यदि घरके बीचमें स्थितकरो, तो ऐसा होने में उस घट और घर की एकस्थानमें स्थिति होने के कारण घटाकाश और गृहाकाश की अभिन्नता सर्वदा सिद्ध होती है। इसीप्रकार से वृत्तावच्छिन्न चैतन्य के साथ घटावच्छिन्न चैतन्य का अभेद समझना चाहिये, इस अभिन्नता के होनेसेही जानाजाता है कि इसका प्रत्यक्षकरनेवाला कौन है, जीव साक्षी है, यही प्रपंच संसारका देखनेवाला और भोगकरनेवाला है, भोग दो प्रकार के हैं गौण और मुख्य सुख दुख प्रत्यक्षमेंही मुख्य भोग है, बाह्य पदार्थका प्रत्यक्षही गौण भोग है, बाह्यपदार्थ ही सुख दुखका कारणहै, इस कारण आपस में बाह्यपदार्थका साक्षात्कार गौण भोग कहकर उल्लिखित हुआहै इस भोगका जो विषयहै, वही अन्तरजगत् वही अंतःकरण का परिणाम वही जीवके कर्माधीन की निज सृष्टि और वही जीव द्वैत कहाकर कहा गया है।

जैसे स्त्रीजाति पिता कर्तृक जनित हो पिताकी आदर क्यी पुत्री और पति के द्वारा भोगीजाकर पति की सौहाग मयी पत्नीहै, इसी प्रकार से ईश्वर कर्तृक सृष्टजगत् ईश्वर द्वैत और जीवकर्तृक भोगहोने से वह जीव द्वैत है, ईश्वर का संकल्प अविद्याका वृत्ति स्वरूप है, वह संकल्प ही जगत की सृष्टि का साधकहै, और जो जीवके संकल्प की मनोवृत्तिहै वही जीव का भोग साधक है अब यहां यह शंकाहोतीहै कि बाह्य पदार्थ ईश्वर के निर्मित स्वरूप से अतिरिक्त है, यहजो एक भोग्यताकार स्वरूप को स्वीकार करते हैं इस विषय में विशेष युक्ति क्याहै इसका उत्तर संक्षेप से दियाजाता है, अपने मनमें यह विचारको कि एकरूपवती स्त्री अपने स्वामी के पक्षमें आनंदको देनेवाली है, और वही सौतके पक्ष में प्रज्वलित अंगारा है और परपुरुषकेपक्षमें दुःखकेविषयका भांडारहैइसस्थानमें वस्तुकीस्वरूपता एक होनेपरभी उसको तीनव्यक्ति तीन प्रकारसे अनुभव क्योंकरतेहैं किस कारण वह तीनों उसको एक भावसे नहीं देखते?ज्ञानका विषय जिस प्रकारहै ज्ञान भी उसके अनुयायी होजाताहै,विषयकी विचित्रताके कारणही ज्ञानकी भी विचित्रताहोती है, इस कारण यहां भी ज्ञानकी विचित्रता सिद्धीके निमित्त विषय की भी विचित्रता तुमको माननी होगी, तभी तुम कहने में बाध्य

होंगे कि जिस स्त्री की बाह्य स्वरूपता एक होने परभी उसका जो दूसरा उसके अतिरिक्त मनोमय भोग्यताकार स्वरूप है, वह क्या विचित्र नहीं है, वह क्या प्रत्येक मनुष्य के पक्षमें भिन्न २ नहीं है, इसी से उनतीनों जनों को उक्त स्त्री विषयक तीनों प्रकार के ज्ञान का उदयहोता है उक्त भोग्यतामय स्वरूप किस कारण से भिन्न २ हुआ, क्योंकि वह मनकी सृष्टि है, मन (अंतःकरण) क्या प्रत्येक मनुष्यका भिन्न २ नहीं है, इसी से उनकी सृष्टि भी भिन्न २ है, जिस मनुष्य के मन में उक्त स्त्री को न पाने के कारण रजोगुण के उदय से दुःखका उदय होता है उसी के मन में उक्त स्त्री के स्वामी के अधिक प्यार करने से तमोगुण के कारण द्वेषका उदय होजाता है। जो स्वामी रूपवती स्त्री को अपना कहकर सत्वोद्रेक के कारण उसके मनमे सुख का उदय होताहै, मन में स्थित सत्व रज और तमोगुण के भेद के अनुसार मानसिक सृष्टि की भी विभिन्नता होगई है, इस कारण वह तीनों व्यक्ति एक स्त्री को तीन भाव से देखते हैं स्त्रियोंका स्वरूप ईश्वरद्वैतहै,और उनका सुखमय दुखमय तथा द्वेषमय यह तीनों स्वरूप जीव द्वैत है, यदि कहो कि विषयक ज्ञानकी विभिन्नता होती है, जो हो परन्तु ऐसा कहनें से उस ज्ञानके विषय स्त्री आकार का भेद क्यों मानेंगे, क्या ज्ञानकी पृथक्तासे स्त्री के स्वरूप की कोई भिन्नता (विलक्षणता) दिखाई नहीं देती, तुम्हारी इस बातका उत्तर पहलेही देचुके हैं, परन्तु तौ भी कुछ और कहते हैं, स्त्री का स्वरूप दो प्रकार का है, एक मांसमय और दूसरा मनोमय है मांसमय शरीर की पृथक्ता के नहोंनें परभी मनोमय शरीर की पृथक्ता होती है, मनुष्य की स्वप्नावस्था में जैसे बाह्य पदार्थ न होने परभी एक मनोमय जगत् की सृष्टि होती है, उसी प्रकार से जाग्रत अवस्था में भी स्त्री को देखने के समय तुम्हारे अन्तर में ही एक मनोमयी स्त्री उत्पन्न होती है तो स्वप्नावस्था मे और जाग्रता वस्थामें यही पृथक्ता है कि स्वप्नकी सृष्टि वासनामय और जाग्रत अवस्था की सृष्टि वृत्तिमय है यह पहिलेही कहआये हैं कि यह मनोमय सृष्टिही जीवके बन्धन का कारण है, क्योंकि यही सुख दुःख भोगने का हेतु है, पहिलेही कहचुके हैं कि वृत्ति के होनें से फिर जीव साक्षी के प्रत्यक्षहोता है, वह प्रत्यक्षही भोगपद वाच्य है, इस वृत्तिका यदि निरोध हो? इस मनोमय जगत्का यदि विनाशहो ? तो जीव को सुख दुःख का भोगना नहीं होता, ज्वाला यं-

त्रणा की अग्निमयी ज्वाला माला में फिर जलना नहीं होता । यह मनो मय जगत्ही समस्त आपदाओं का मूल है । इस काही भयकरना होता है बाह्य जगत् के भयकरने का कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि वह बंधनका कारण नहीं है, जिस कार्य के प्रति जिसकी कारणता है उसी कार्य के साथ उस कारण के अन्वय के व्यतिरिक्त रहना चाहता है, यहां पर एक दृष्टान्त देते हैं । घट के प्रति दण्ड की कारणताहै, दंड के होनेसे फिर घट की उत्पत्ति होती है, दंडके न होने से घटकी उत्पत्ति नहीं होती इसकाही नाम अन्वय व्यतिरेक है जो यदि इस प्रकार से समझो कि बाह्य पदार्थ के न होने से बंधन नहीं होता, तो बंधनके प्रति उसकी कारणताको स्वीकार करसक्ते हैं परन्तु ऐसे स्थल में दिखासक्ते हैं कि जिस स्थान में बाह्यपदार्थ बिन्दुमात्रभी नहीं और फिर भी बंधन होता है, देखो जिस प्रकार स्वप्ना-वस्था में । इस अवस्था में बाह्यपदार्थ के न होनेपर भी जीवको सुख दुःख भोगरूप बंधन भोगने होते हैं, इस कारण समझाजाता है कि मनोमय जगत् ही बंधनका कारण है ।

बहुत दिन हुए कि पिताको छोड़कर पुत्र परदेशको चलागया है यद्यपि पिताने आजतक उसका कोई समाचार नहीं पायाथा परन्तु तो भी ऐसा विश्वास है कि वह जीवित है इसी अवस्था में किसी जालसाजने पिता से आकर कहा कि तुम्हारा बेटा मरगया, इस भयंकर वार्त्ता को सुनतेही उ-सका पिता रोनेलगा, वास्तव में पुत्र की मृत्यु नहीं हुई है परन्तु धोखेबाज की बात से ही यह जानलिया कि मेरा बेटा मरगया इसी से पिता रोने लगा और फिर पुत्रकी मृत्युके वृत्तांत को सुनने से प्रथम पिता नहीं रोया था, कारण कि मनोमय पुत्र उसके मन के भीतर उस समय निवास करता था तब यह कहना होगा कि मनोमय जगत्ही बंधन का कारण है, यहां एक दृष्टांत देते हैं कि एक वृद्धा स्त्री गङ्गा स्नान करनेको गईथी वहां जाकर उसने देखा कि रुई से भरीहुई बहुतसी नौकायें किनारे पर बँधरही हैं, उस रुई कोही स्त्रियें तूंबकर यज्ञोपवीत इत्यादि बनाकर अपनी जीविका निर्वाह करती हैं, इस को देख उस के मन में बड़े २ विचार होने लगे, इस इतनी ढेर के ढेर रुई को कौन तूंबेगा, कहां यह जायगी, क्या होगा वह इसका कुछ भी ठीक नहीं करसकी अन्त में वह इसको विचारते २ पागल हो गई बहुतसे डाक्टरोंनें देखा परन्तु कोई भी उसे आराम नहीं करसका अन्त में एक बुद्धिमान मनुष्य कृपाकरके उसे अपने स्थान पर लेगया उस

ने उससे यह झूंठी मूंठी बात बनाकर कहा कि देखो बूढ़ी तुम उस दिन गङ्गा जी स्नान करने कोगई थी और वह जो बहुतसी रुई से भरी हुई नौकायें देखी थी, सो उन सब नौकाओं में आगलग गई, इसबात को सुनतेही वृद्धाने दीर्घस्वांस लेकर कहा कि हे जगदीश्वर रक्षा करो ! रक्षा करो !! यह बात कहतेही उसके शरीर पर प्रफुल्लता दिखाई देने लगी, उसके मनके भीतर धीरे २ जो रुई का ढेर जमगयाथा सो सब एकबारही नष्ट होगया, उसका विचार जातारहा, पागलपना भी आराम होगया, सो इसी से कहते हैं कि मनोमय सृष्टिही जितनी आपदा का कारण है, बाहरे की रुई बाहरही रहगई, उस में से एक कण मात्रभी खराब न हुई यह बात ठीक है परन्तु वृद्धा के मनके भीतर जो इस रुई का विषम चित्र अंकित हो गयाथा वह सब जातारहा इसी से वृद्धा शान्त होगई, यह प्रतिबिम्ब अथवा वेदांतिक भाषा इस रुई रूपी विषयके साथ मनके अभिन्नरूप का परिणाम है, यही जीव की निज सृष्टि है ॥

योगाभ्यास ।

पातंजल दर्शन में लिखा है 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' मानसिकवृत्तिराशिके निरोधकारी नाम योग है । काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि वृत्तिराशिका मन शरीरकी विशेष प्रक्रियाओं से बँधा है, मन की प्रक्रियाओं का विशेष फल शरीर में और शरीरकी प्रक्रियाओंका विशेष फल मन में दिखाई देता है यदि मनःशक्तिका शरीरके किसी विकृत भागसे प्रत्याहार करलियाजाय । और यदि शरीर में कोई दुर्बल अंगमें अपने मन के वेगको संचारित करते पायाजाय तो वह अंग निश्चयही बलवान होजायगा, इस प्रकार हमारी इच्छा शक्तिके बलकी इच्छानुरूप शरीरका आकार प्रकार सहज भलीभांति होसकैगा, और शरीरका आकारभाव भंगीके अनुसार हमारे मन को कभी उद्भावित नहीं करसकैगा, यदि किसीसमय मन खेद युक्त अवस्था में हो, उससमय शरीर के प्रफुल्लभाव प्रगट अवस्था में करने लगे, तब उसका मनभी उससमय प्रफुल्लभावको धारण करसकैगा, इस कारण शरीरकी क्रियाके विषयमें मन परिवर्तित होता है हमारे मनकी क्रियाके विषयमें शरीरही परिवर्तित है ।

श्वास प्रश्वास की भिन्न२ गतियोंसे मस्तक को विशेष२ गतियुक्त होना होता है, और इसकी विशेष२ गतियों से मनोवृत्तिकी राशिका उदय होता है। श्वास की क्रियाके विशेष से गुह्यदेश के ऊर्द्धभाग में स्थितवायु को ऊपर की ओर से सम्पूर्णरूप से आकर्षण करसकेंगे अर्थात् समस्त उदर के ऊर्द्धभाग में स्थितपेशी बन्ध और फुस फुसे के पेशी समूहको यथोचित कार्य शील करनेपर मनकी चुरणाता वा संकुचतावृत्ति सभी दूर होजायगी शून्य मनोवृत्तियोंकी प्रबलता में बन्ध संलग्न मांसपेशी सभी शिथिल होजायँगी, और इनके द्वारा उदरिकभावका यंत्रभी अपने २ स्थान से च्युत होजायगा, परन्तु मूलाधार से श्वासको आकर्षण करने से पेशीबंधका मांसपेशी राशिसे पुष्ट होगा, और अन्यान्य यंत्रभी अपने२ स्थान से आवेंगे और संकुचित मनोवृत्ति की राशि तिरोहित होजायगी। मन की किसी मलीन वृत्तिके दूर होजाने से उसके विरुद्ध निश्वासकी गति का परिवर्तन करनाही एकमात्रहै। इस कारण योगशास्त्रमें प्राणायाम अर्थात् वायु संयमकी व्यवस्था विख्यात होती है, हठदीपिका में लिखाहै कि जो श्वास की गति दोनों से मनोवृत्तिकी क्रिया करते हैं। निश्वासकी गति के बंद होने से मनोवृत्ति निष्क्रिय होजाती हैं, परन्तु वायु को भली भांति से रोककर। चित्तकी वृत्तिको रोकने के लिये चेष्टा करके और दूसरी प्रकार से क्रियाका विशेष अभ्यास करना आवश्यक है।

योग क्रम।

बराबर शीत और उष्णता से पूर्ण स्थानमें युवा पुरुष के प्रति सौभाग का साढ़े चारभाग अंगुल वायुके श्वांससे निर्गत होते हैं, एवं योगाभ्यास से वायुको परिपाक करना प्रथम प्रधान उद्योग है, और इसी लिये योगाभ्यास करनेवाला इस प्रकारसे गुहामें निवास करे, जिस स्थानमें मनुष्यके शरीरकी स्वाभाविक उत्ताप के समान उष्णता सर्वदा विद्यमान है, योगके अभ्यासीको शारीरिक परिश्रम नहीं करना चाहिये, ताड़ित शक्तिके प्रवाह को अर्थात् परिचालक धातु पदार्थका स्पर्श नहीं करना होगा, अपरिचालक वस्तु, यथा, चर्म, रोम कुशादिके ऊपर स्थिर होकर, उपवेश न करै अर्थात् बैठे, मौनरहे, रात्रिमें एकबार केवल बहुत थोड़ा दूधहुए चावलोंका भोजन करै, थोड़ा भोजन करने से पवित्र जलके पान करने से अल्पही निद्रा होगी,

ऐसा अभ्यास होने से इन्द्रियें, भोग्य विषय, चौर्य लोभ और मिथ्या भाषण परित्याग का अभ्यास क्रम २ से करे, अर्थात् अहिंसा ब्रह्मचर्य, आस्तेय परिग्रह और सत्यका अवलम्बन करे, जिस समय इस प्रकारसे सम्पूर्ण अभ्यास होजाय, तब अपनी चित्तकी वृत्तियों की मलीनताको दूर करने के निमित्त तपस्या वा उपवास शौच अर्थात् शरीरके भीतरका भाग वायुद्वारा बहिर्भाग जलसे धोवै, संतोष स्वाध्याय अर्थात् अध्यात्म विद्याके अभ्यास से एवं ईश्वर के प्रणिधान अर्थात् अपने कर्म के फलोंकी राशियोंको ईश्वर के अर्पण करे, इन पांचों नियमोंका अभ्यास क्रम २ से करना चाहिये ।

आसन ।

जब इन पांचो प्रकारका कुछ२ अभ्यास होजाय, तब आसनका अभ्यास करना चाहिये । गोरक्षनाथकी प्रधानतः ८४ प्रकार के आसन में उल्लेख की है परन्तु उस अवसर के बीचमें स्वस्तिकासन और सिद्धासनका अभ्यास सुगम और अधिकतर फलकादेनेवाला है स्वस्तिकासन जैसे बांया चरण दक्षिण जंघाके नीचे और दक्षिण चरणको बांई जंघाके नीचे रखकर मेरु दंडको सीधा रखकरके बैठे सिद्धासन जैसे बांये चरणको गुल्फ से गुह्यस्थान अर्थात् मलद्वार और अंडकोशके मध्यस्थलको आपीड़न और दक्षिण गुल्फ के लिंगमूल में रक्षापूर्वक मेरु दंडको सरलभाव से इत्यादि किसी असीम पदार्थ के अचिन्तन से आसन दृढ होजाय । जब योगाभ्यासी स्वस्तिकासन वा सिद्धासनपर एकघंटेतक सुखपूर्वक स्थिर होकर बैठसके, तब भ्रू के बीचमें अपनी दृष्टि की रक्षाके लिये अभ्यास करे, फिर अश्रुपातको न करके और पलकको न फेरकर एकघंटेतक दृष्टिको स्थिर रख सके, तब जलधर बंध बंधनका अभ्यास करे । जलधर बन्ध जैसे ठोड़ीको वक्षस्थल के ऊपर कंठ स्थिर दोनोंके बीचमें संलग्न और कंठ को संकुचित करे, और संकुचित कंठनाल द्वारा धीरे२ निश्वासको ऊर्द्धकी ओरको आकर्षण करे । और निश्वास में जितना समयलगे उससे दुगना समय उस वायु को मेरु दंडके भीतर देकर निम्न नाभि से नवाकर आवे ।

अजपा साधन ।

और निद्रा अर्थात् सुषुप्ति के समय एकबार निश्वास और प्रश्वास को

चार सेकण्ड तक अविवाहित होती है इस गणनाके प्रति मिनट में हमारे १६ बार प्रति घंटे में ९०० बार २४ घंटे वा दिन रात्रि में २१६०० श्वास प्रश्वास को लेना और बाहर करना होता है योगाभ्यास के समय प्रति श्वास में 'हं' और प्रति प्रश्वास में 'सः' इस प्रकार से शब्द का अनुभवकरे निश्वास के ग्रहण के समय 'हं' और वायु को त्यागन करने के समय'सः' इस कल्पित शब्द दोनों के प्रति विशेषध्यान रखनाहोगा। अभ्यास और शीघ्रता के वश से 'हं' सः यह दोनों शब्द प्रतिलोमित होकर 'सः–हं' वा 'सोऽहं' इस प्रकार से अनुभूत हैं। तब मन के प्रतिश्वास में'सो' एवं प्रति श्वास में 'हं' इन दोनों कल्पित शब्दों के प्रति अभिनिवेशकरे अधिकतर अभ्यास और अधिकतर शीघ्रता के वश से 'सोहं' एवं 'स' एवं 'ह' यह व्यंजन विलुप्तहोजायंगे, तब केवल उ+अम्। अर्थात् 'ओं ह, इस आकार का बोध होगा, योग का अभ्यास करने वाला उस समय प्रति निश्वास में और प्रति प्रश्वास में ' ओं , इस शब्द के प्रति विशेष अभिनिविष्टहो इस प्रकारसे मानसिक जपको अजपा कहते हैं, यदि किसी को इस में किसी प्रकार से भी संदेह हो तो जो हम दिन रातके बीच में २१६०० बार निश्वासको ग्रहण करते हैं, परन्तु सुषुप्ति के समय जब हम घोर निद्रित और अचेतन होते हैं, तब किस प्रकार से प्रतिश्वास प्रश्वास में 'ओं' शब्द का ध्यान होना संभव है ? हे तो यह सत्यहै, सुषुप्ति के समय मन अपने कार्य में लीन होजाता है, परन्तु जाग्रत अवस्था की वासनासे निद्रा के समय भी कार्य करता है नहीं तो जाग्रत होने से निद्राके पहले सम्पूर्ण बातें हमारी विस्मृत होजातीं—

षट्चक्र ।

जिससमय योगके अभ्यास करने वालेको "अजपा" के साधनेमें पूर्णता से अभ्यास होजाय, तब इस चरबीके तत्वमय शरीरके बीचमें स्थान२में कोई विचित्र चक्र स्थितहै,उनका जानना अत्यन्त आवश्यकहै। साधक अभ्याससे और आभ्यन्तरिक दृष्टिकी सहायता से देखें कि जो मस्तकके बीचमें कपूर वर्णका एक सहस्र दलका कमल है । वह सहस्र बिन्दुवाला ब्रह्मरंध्र नामका चक्र है, यह परम गुप्त स्थान है। भौंओंके बीचमें जो बिजली की समान वर्णवाला दो दलका एक कमल है, वही आत्मा का स्थान है, यह आज्ञा

चक्र नाम से कहागया है। कंठके बीच में धूम्रवर्ण का एक सोलहदलका कमल है, यही प्राणका स्थान है, विशुद्ध चक्रनामसे कहागया है, हृदय के बीचमें पीले वर्णका बारहदलका कमल है, यही शिवका स्थानहै अनाहत चक्र नाम से प्रसिद्ध है। नाभिके बीचमें नीले वर्ण का दशदलका कमल है, यही विष्णुका स्थान है, मणिपूरचक्र नाम से प्रचलित है लिंगमूल में लालवर्णका सोलहदलका कमल है वही ब्रह्माका स्थान है, यह स्वाधिष्ठान चक्र कहाजाता है। लिंग और गुह्यदेश के बीचमें सुवर्ण के वर्ण का चार दलका कमल है, यह विघ्न विनाशन गणेशजीका स्थान है यह आधार चक्र नाम से कहाजाता है। जिस समय साधक अपनी अन्तर दृष्टि से इन समस्त चक्रोंको देखसके, तब वह पीठके बांसको सीधा रखकर कंठ को सकोड़कर ठोड़ीको वक्षस्थलपर स्थापितकर स्वस्तिक आसनपर बैठकर श्वास वायुको आधार चक्र से खैंचकर प्रत्येक चक्र को भेदन करतेर ऊपर के ब्रह्मरन्ध्र चक्र को उठावै और उसे दुगने समय में मेरु के बीचमें देकर आधार चक्र के नाम से लावै, और श्वास आने जाने के समय 'ॐ' इस शब्दको विशेष करके प्रयोग करे, इसके पीछे फिर श्वासको उठाने के समय उस चक्र को बाईं ओर को टकेर लेजाय, और पहलेकी समान मेरु दंडसे आधार चक्र नाम से लावै, इसका भलीप्रकार से अभ्यास होजाने से, श्वास ऊपरको जाने के समय प्रतिचक्र में थोड़ीदेर नियमित समयतक विश्राम करना होता है। श्वास दिन रात्रि में २१६०० चलता है और बाहर जाता है। इसी गिनती से योगका अभ्यास करनेवाला आधार चक्रको बाईं ओर को लौटालने के समय १०० वार अर्थात् एकर दल में १६० वार श्वास प्रश्वास निमित समयतक विश्राम करे। स्वाधिष्ठान, मणिपुर और अनाहत चक्र इन प्रत्येकको बाईं ओर को लौटालने के समय ६००० बार अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र के प्रति दलको १०००बार मणिपुर चक्रके प्रति दलको ४००० बार और अनाहत चक्र के प्रतिदल को ६०० बार श्वास आने जाने के समय विश्राम करावै, इसके उपरांत विशुद्ध चक्र और ब्रह्मरन्ध्र चक्र प्रत्येक को बाईं ओर देकर परिक्रमा के समय १००० बार अर्थात् विशुद्धचक्र के प्रतिदलको ५१ ॥० आज्ञा चक्र के प्रतिदलको ६०० और ब्रह्मरन्ध्र चक्र के प्रतिदल को एकबार श्वास के आने जाने के समय विश्राम कराना चाहिये। प्रत्येक चक्र को प्रत्येक दलका चिन्ह, प्रत्ये-

क दलमें प्राणवायुको स्थित करने का फल, षट्चक्र ग्रंथमें विस्तारपूर्वक वर्णन है, उसके चित्रको देखतेही उसका स्वरूप जानसकते हो इसका साधन बड़ा गुप्त है और अभ्यास भी बहुत कालतक कियाजाता है।

नाद।

इस कारण समस्त चक्र कोटालनेकी सामर्थ होने से पहले साधक अपनी इच्छा करने से नाद साधनका अभ्यास करसक्ता है, अर्थात् पीठ के बांसको सीधा रखकर सिद्धासनपर बैठकर दहिने हाथ के अंगूठे से दहिने कानकों और बांये हाथ के अंगूठे से बांये कानके सूराखों को बंद करे। दहिने हाथ की तर्जनीसे दहिना नेत्र, और बांये हाथ की तर्जनी से बांया नेत्र, दहिने हाथ की मध्यमासे दहिनी नासिका का सुर, और बांये हाथ की मध्यमासे बाईं नासिका का सुर, और दहिनी अनामिका और कनिष्ठा से दहिना अधर, और बांये हाथकी अनामिका और कनिष्ठा से बांया अधर बंद करे, इस प्रकार करने से जो ध्वनि अनुभूत होगी, शब्द हीन होने के समय निर्जन स्थानमें जाकर उसमें गाढ़ अभिनिवेश करना होता है, अभ्यास करते२ क्रमशः दश प्रकार के भिन्न२ शब्द अर्थात् नाद श्रुत होंगे। पहले चिनिनाद इस से क्रांति का अनुभव होगा, दूसरा किंकिनी नादसे शरीर कांपैगा,तीसरा घंटानाद, इससे दुर्बलता, चौथा शंखनाद, इस से शिर कांपैगा, पांचवां तंत्री नाद इस से अमृतके सोतेका अनुभव होगा। छटे ताल नाद से अमृतपान सातवें वेणुनादसे विज्ञान अर्थात् विशिष्ट सूक्ष्म ज्ञानका प्रकाश, आठवें मृदंगके नाद से वाक् सिद्धि नौ में भेरी नाद से अदृश्य देह और दिव्य दृष्टि होती है, और दसमें मेघनादसे अनादि ब्रह्मस्वरूप होजायगा, इन सभों के साधन करनेंको अवश्यही बहुतसा समय चाहिये, बहुत परिश्रम और यथेष्ट धैर्य की आवश्यकता है।

मुद्रा।

इस लिये इन छः नादों का अभ्यास होने से पहले साधक को खेचरी मुद्राका अभ्यास करना उचित है। खेचरी मुद्रा-जैसे-जिह्वा को अपने हाथ से गौके दूहने की रीति के अनुसार मलकर उसको विपरीत गामिनी करनें की चेष्टा करै और जिसरीतिसेजिह्वा बढ़जाय उसी रीतिसे खेचकर

तालूमें लगावे, इस कार्य के सिद्ध करने को अत्यन्त थोड़े समयकी आव श्यकता नहीं है । इस कारण साधकको जिह्वा को तालुये में लगाकर, ऐसा करने सेही प्राणायामके करने का अधिकार प्राप्त होता है ।

प्राणायाम ।

प्राणायाम को अभ्यास करने के समय एक गुहा में वासकरना होता है उसस्थान में गरमी मनुष्य की स्वाभाविक और शरीर की बराबर कमती बढ़ती नहो । मौनावलम्बन, यम, नियम, सुखासन, जलन्धरबन्ध, खेचरी मुद्रा, दृढ़दृष्टि, और चक्रभेद प्राणायाम के उपयोगी हैं । प्राणायाममें तीन क्रिया करनी होती हैं । पहिली में स्वास का त्यागना अर्थात् रेचक दूसरी में स्वास का ग्रहणकरना अर्थात् पूरक, तीसरी में स्वासका रोकना अर्थात् कुम्भक, स्वास ग्रहणकरने का समय सबोंकी अपेक्षा थोड़ा है । स्वास के रोकने का समय सबसे अधिक है, स्वास त्यागकरने के समय स्वास का ग्रहण करना दुगना है, प्राणायाम के अभ्यास के लिये स्वस्तिका सन पर बैठना होता है । मेरु दण्ड को सीधाकर, गरदनको सकोड ठोढ़ीको कंठ की दोनों हड्डियों के बीच में स्थापित कर विपरीत गामी जिह्वा को तालु ये में प्रविष्ट, दृष्टि को भौंहों के बीच में गाढ़रूप से रक्षित, और बांयें हाथ से बांयें अधर को दबाना होता है, बांई नासिका के छुरको दहिने हाथकी अनामिका से बंद करकै दहिनी नासिकाके छुरसे स्वास को मेरु दण्ड में देकर धीरे २ आधार चक्र को नवावे । फिर दहिने नासिका के पुटको दहिने अंगूठे से बंद करके बांई नासिका के पुट से स्वास आधार के चक्र से षट्चक्र को भेदकर ऊपरको आकर्षण करे, इसके पीछे दहिने और बांये दोनोंही नासिका के छुरों को दहिने अंगूठे और अनामिका से स्वास की गतिको सम्पूर्ण रोकदे यही पहिली प्रक्रिया है, दूसरी प्रक्रिया में पूर्वोक्त प्रथाको प्रतिलोम, तीसरी प्रक्रिया में पहिले प्रणाली का पुनर्वार अवलंबन करे और सम्पूर्ण क्रियायेंही 'ॐ' शब्द के प्रति मनको विशेष अभि निवेश करे, प्राणायाम शिक्षाके अर्थ पहिले ६ वा १० वा १६ सेकंडतक मेरुदण्ड से धीरे २ वायुको आधार चक्र में लावे उसके पीछे कुंचित कण्ठनाल से मिलाकर वा पांच या साढे सात सेकण्ड तक स्वास को आकर्षण करे, दस वा बीस अथवा तीस सेकण्ड तक रोकना चाहिये, इस सामान्य मा·

णायाम से शरीर में रोमांच अङ्ग प्रत्यंग दुर्बल और शक्तिहीन होजायगे, किन्तु मुख्य प्राणायाम से पहिले रेचक २४ सेकेण्ड पूरक १२ सेकेण्ड और कुम्भक १२४ सेकेण्ड करना होता है इस प्रकार प्राणायाम करीर से क्रमशः घर्म निर्गम और शरीर का कांपना एवं शरीर छोटा होजायगा। प्राणायाम के (स्वास संयम) अभ्यास से प्रत्याहार अर्थात् इन्द्रियों के वशमें करनें की सामर्थ होगी ५४६ सेकेण्ड तक स्वास को रोकने से प्रत्याहार सिद्ध होजायगा। प्रत्याहार के अभ्यास से धारणा अर्थात् चित्त निवेशकी शक्ति की वृद्धि होगी। धारणा के समय ११९९ सेकेण्ड तक स्वास को रोकना होगा, इस अवस्था में शरीर और मनकी इच्छानुसार गति रोके तब यह देह कठिन होजायगा, धारणा का ध्यान उपयोगी है, ध्यानके समय २१९२ सेकेण्ड तक स्वास को रोकना होगा, ध्यान शील पुरुषका समस्त शरीर बिजली की ज्योतिःकी समान बोधहोंने लगेगा। चित्तसे सम्पूर्ण पदार्थोंको दूरकर,केवल एकमात्र पदार्थ ग्रहणकरनेंका नामही ध्यान है। जब केवल 'ॐ' शब्दार्थ अथवा कुछ तमोगुण मिश्रित सांख्य शास्त्र के शेषपंचतत्त्व के किसी एक तत्वका ध्यान करें उसी का नाम सानन्द ध्यान है और जब शुद्ध तत्व गुण वा योगीश्वर को 'अहं' के साथ ध्यान करें इसी का नाम 'सामिता ध्यान' इस प्रकार ध्यान करनें से अपने शरीर में अस्तित्व का अनुभव नहीं होगा अर्थात् पुरुष विदेह हुआ जानेंगा। किन्तु जब 'अहं'का बोध होजायगा तबमन अपने सूक्ष्मकारण में लीन होगा। इस प्रकार के ध्यानका नाम 'प्रकृतिलय' ध्यान है, इस अवस्था में समस्त पदार्थही आत्मा में लय होजाते हैं। पहिले तीन प्रकार के ध्यान में 'अहं' भावका कुछ २ बोध होजायगा; किन्तु जब अहं बुद्धि सम्पूर्णतासे विनष्ट होगी तभी समाधि से मुक्त होजायगा। ६१९४ सेकेण्ड वा इस से अधिक समय तक स्वास को रोकनें से समाधि सिद्ध होगी, गर्भ में स्थित बालक की समान समाधि में स्थित हुआ मनुष्य हृदय के कोषों से बंद होजायगा और कुछ दिनोंतक भोजन पान वा स्वास लेने की भी कुछ आवश्यकता नहीं है। समाधि बीजवान और निर्बीज भेदों से दो प्रकार की है। सबीज समाधि में पहिले सब संस्कार लुप्त होजाते हैं किन्तु विनष्टनहीं होते,इस लिये सबीज समाधिवान पुरुषकी पहिले संस्कार की राशियें पुनर्बार जाग्रत अवस्था में आजायँगी और उस समाधि से अपने आप भंग होजायगा। किन्तु निर्बीज समाधि में पहिले संस्कार सभी

नष्ट होजांयगे, इस कारण निर्बीज समाधिवान पुरुषकी समाधि कभी भंग नहीं होसकती इस निर्बीज समाधिके समय में मनका सम्पूर्ण विनाश होता है तब आत्मा के अतिरिक्त और किसी वस्तुका प्रकाश नहीं होता।

कामना और वैराग्य।

अग्नि और जल में, प्रकाश और अन्धकारमें जिस प्रकार एक विरोधता का सम्बन्ध है, कामना और वैराग्य में भी ठीक उसी प्रकार एक विजातीय सम्बन्ध है। कामना जीव को जिस मार्ग में लेजाती है, वैराग्य उस पंथ से लौटाकर उसको दूसरे मार्ग में चलाता है। कामना जीवको राग और भोग, आसक्ति और अनुरक्ति, विहार और संसार के मार्ग में लेजाती है, वैराग्य जीव को त्याग और योग, विरक्ति और अनासक्ति, अनाहार और संहार की तरफ लेजाता है। कामना कमनीय कामिनी की समान पूर्णिमा के निर्मल किरण जाल से जड़ित नदी के तीर पर निवास करके जीवको भोग विलास का परामर्श देती है, और वैराग्य ज्ञान गंभीर उदासीन की समान जगत् प्रत्येक अणु परमाणु में श्मशान का विकट चित्र अंकित करके जीवको संसारकी अनित्यता समझा देता है। कामना प्रवृत्ति के मार्ग में वैराग्य निवृत्ति के मार्ग में अपना राज्य विस्तार करता है। यह प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग, यह राग और त्याग मार्ग दोनों हमारे सन्मुख हैं। कलियुग के जीव हम किस मार्ग में चलें यही इस समय पहला प्रश्न है।

अभाव बुद्धि जीवको जितने दिन घेरे रहेगी, कामना उतने दिन निश्चय ही जीव प्रकृति के साथ २ घूमेगी, जिस दिन जगत् का समस्त अभाव मिटेगा, उस दिन ही जीव पूर्ण काम होसकेगा। जब तक वह नहीं होगा तब तक कामना प्यारी सखी की समान जीव को जगत् के कितने ही मनोहर कुञ्ज कानन दिखाकर घुमावेगी। इस कारण जागतिक अवस्था में कामना जीव की स्वतः सिद्ध संगी है। कामना का हाथ हटाकर कोई भी एक पद नहीं चल सकता। कामना के जाल में प्रत्येक जीवही अन्धीभूत है। कामना रज्जु (रस्सी) के आकर्षण में नथे हुए वृषभ (बैल) की समान यह जगत् निरन्तर घूमता है, कामना की मोहिनी मूर्त्ति को संसार ने इतना प्यार करना अभ्यास किया है कि निष्कामना की मूर्त्ति कल्पना में अंकित करते हुए भयभीत होता है। इस कारण स्वभावतः जो कामना की तरफ जीवकी गति है, उस गतिके स्रोतको उल्टाकर वैराग्य के

जलते हुए कुण्ड में कूदकर वर्त्तमान कलियुग में जीव के पक्ष में कितना असम्भव है उसीका विचार करना चाहिये।

जगत् में शिक्षा दो प्रकार की है। एक प्रकृति और अनुराग के अनुकूल शिक्षा, दूसरी उसके प्रतिकूल। विद्या शिक्षाही कहो, चाहे धर्म्म शिक्षाही कहो, सब शिक्षाही इन दो श्रेणी में हैं। शिक्षाभेदसे शिक्षक भी दो प्रकार के हैं और शिक्षार्थी अधिकारी भी दो प्रकार के हैं, अधम और उत्तम। मध्यम की बात इस समय छोड़दो। जो शिक्षक शिक्षार्थी की प्रकृति और अनुराग तत्व के स्थान २ में प्रवेश करके उसके अनुकूल शिक्षाका विधान करता है, वही प्रकृत शिक्षक है वायुकी अनुकूल गति जानकर जो मल्लाह नौका चलाता है, उसकी चतुराई को सबही प्रशंसा करते हैं, इसी प्रकार छात्रकी प्रवृत्तिरूप वायु की अनुकूलता देखकर जो शिक्षक शिक्षारूप नौका को संसार सागर में चलाता है वही भविष्यत में शिक्षार्थी के प्राणकी कृतज्ञता ग्रहण कर सकता है। जो शिक्षक छात्रकी प्रवृत्ति और अनुराग के प्रतिकूल में शिक्षा विधान करता है, उसको श्रेष्ठ शिक्षक नहीं कहा जासकता। समय समय पर उसकी दीहुई शिक्षा निष्फल भी होसकती है। पांच वर्ष छोटा बालक केवल क्रीड़ा करने की ही इच्छा करता है। उसके खेलकी प्रवृत्ति ने पढ़ने सुनने की इच्छा को पराजित कर दिया है। उस की इस क्रीड़ामयी प्रवृत्ति को दमित करके तिसको पढ़ने सुनने के राज्य में लेजाना होगा जो मूर्ख शिक्षक है वह बल पूर्वक बालक क्रीड़ा प्रवृत्तिको रोककर तिसका मन पढ़ने लिखने की तरफ लगाने की चेष्टा करैगा। किंतु जो चतुर शिक्षक है वह उस क्रीड़ा प्रवृत्ति के द्वाराही बालक के शिक्षा देनेकी चेष्टा करैगा। इन दो प्रकार की चेष्टाओं में अन्त की चेष्टाही निःसंदेह फलवती है। इस समय एक दृष्टान्त याद आया है।

किसी धनी के एकपुत्रथा। एकही पुत्र होने के कारण धनीका उसपर अत्यन्त प्यारथा। जब वह कुछ बड़ा होगया तो धनी ने उसके लिखने पढ़ने के निमित्त एकशिक्षक नियुक्त किया। किन्तु कोई शिक्षकभी उसका मन पढ़ने लिखने की तरफ न लगासका। वह सदा कबूतर लेकर खेलाकरता था, उसको मारकर बलपूर्वक पढ़ाने के कारण धनीने शिक्षकको छुटादिया कई शिक्षक विफल मनोरथ होकर चलेगये। अनन्तर पिताकी बहुत चेष्टा के पश्चात् एक चतुर शिक्षक उस के अध्यापन कार्य्य में नियुक्तहुआ। शिक्षक प्रथम आकर छात्रसे पढने लिखने की कुछ बात न कही। केवल उस

का आदर करके तिसका मन प्रसन्न करने की चेष्टा करनेलगा। उसके साथ खेलने भी लगा। एक दिन उसने कहा देखो तुम्हारे कबूतरों की संख्या बहुत अल्प है, इतने अल्प कबूतरों से कुछ काम नहीं चलेगा, और दोसौ कबूतर मंगाओ। शिक्षक की बात सुनकर छात्र बड़ा प्रसन्नहुआ। क्योंकि वह जो चाहताहै गुरु उसीके अनुकूल है। इस कारण उसने आनन्द से दो सौ कबूतर मँगालिये। गुरु ने एक दिन कहा, देखो इन सब कबूतरों के नाम और चिह्न रखने चाहिये। नहीं तो एकको भी नहीं पहचान सकोगे यह कहकर गुरुने लक्ष्मा मुक्खिल आदि नामों के बदले 'क' 'ख' इन एक२ अक्षरके ऊपर प्रत्येक कबूतर का नाम रक्खा गुरु ने इस प्रकार समस्त व्यञ्जन वर्ण और स्वरवर्ण एक२ टुकड़े कागजपर लिखकर छात्र को प्रत्येक कबूतर के पंख में चिपका देने को कहकर कहा जब जिसका नाम लेकर पुकारूं तुम उसी समय उस कबूतर को हमारे निकट लाओ ऐसा करने से कभी कबूतर के पहचानने में भूल न होगी। शिष्य आनन्दपूर्वक ऐसाही करनेलगा। पक्षी बड़े चञ्चल होते हैं, शिष्य ने एक एक कबूतर के पर में एक२ अक्षर चिपका दिया, कबूतरों ने उड़कर उन को गिरादिया। इस प्रकार एक२ अक्षर दश२ बारह२ बार लगाने से शिष्यको अक्षरों की पहिचान होगई। जब शिष्यको अक्षरों की पहिचान होगई तब चतुर शिक्षकने अन्यान्य पक्षियों की कहानियों की एक पुस्तक पढ़ानी आरंभ करदी। उन कहानियों के पढने में शिष्यका मन ऐसा लगा कि वह कबूतरों के खेलको बुरा समझ ने लगा। इस प्रकार गुरु ने खेलने के बहानेही लिखना पढना सिखाकर उसको मनुष्य करदिया।

इसी का नाम अनुरागानुकूल शिक्षा है। इस श्रेणी की शिक्षाके जगत् में न होने से पूर्वोक्त छात्र की समान मन्द अधिकारियोंको विद्या प्राप्ति का उपाय नहीं था। जो छात्र अपनी क्रीड़ामयी वासनाको शिक्षक के ताड़न से दूर करके पढ़ने लिखनेमें मन लगासक्ताहै,वह उत्तम अधिकारी है। उसके निमित्त अनुरागानुकूल शिक्षाका प्रयोजन नहीं उत्तम शिक्षककी आवश्यकता भी नहीं है। किन्तु जो मन्द अधिकारी हैं उन के निमित्त अनुरागानुकूल उत्तम शिक्षाका प्रयोजन है। अधम छात्र के साथ उत्तम शिक्षक और उत्तम शिक्षकके साथ अधमछात्र, इन दोनों के मिलन को श्रेष्ठ नहीं कहा जासक्ता, किन्तु कुत्सित मिलन भी नहीं कहसक्ते। उत्तम अधिकारी अपनी सामर्थ्य के बल से अधम शिक्षक के निकट से फल प्राप्त करसक्ता है

किन्तु इस से शिक्षककी कोई चतुराई नहीं है । जो शिक्षक अपनी सामर्थ्य के बल से अधमको उत्तम करसक्ता है वही धन्यवाद देने के योग्य है । सरोवर में कमल खिलाना सहज बात है, किन्तु जो मरु भूमि में कमल को प्रफुल्लित करसक्ता है वही जगत् में चरण कमल रखना जानताहै इस कारण कहते हैं कि जो शिक्षा मानवीय प्रकृति और अनुराग के भीतर क्रियाकर सकती है, वह शिक्षाही श्रेष्ठ कार्य करी है, उस से फल शीघ्र मिलता है । विद्या शिक्षा के राज्य में जैसी विधि है, धर्म राज्यमें भी वही है । इस में भी मन्द अधिकारी के निमित्त अनुरागानुकूल शिक्षा विशेष प्रयोजनीय है । हम लोग कलियुग के मन्द अधिकारी हैं । हम कामना के और अनुराग के अनुकूल धर्म शिक्षाही चाहते हैं । यदि कोई उत्तम अधिकारी है तो उसके निमित्त नहीं कहाजाता है । हम अपनी श्रेणी की बातही कहते हैं । हम वैराग्य की विकट मूर्त्ति देखकर डरजाते हैं । धर्म शिक्षा के निमित्त कामना छोड़कर हम वैराग्य में नहीं जासकते । लिखने पढने की शिक्षाके निमित्त कामना छोड़कर हमलोग क्रीड़ासक्त बालक की समान खेल छोड़कर पुस्तक में मन नहीं लगासकते । तो जो लिखने पढने की शिक्षा खेलकूदके भीतर २ होसकती है, जो शिक्षा विशाल नदी की समान कामना की गोद में होकर बहसकती है, हम उसी शिक्षाको चाहतेहैं हम कामनाकी मृदुमधुर पवन में प्राणमन लगाना नहीं चाहते । हम कामना कल्पलतिका माता अन्न पूर्णा के सुन्दर चरणों की शीतल जल धारा में स्नान करना चाहते हैं । ज्ञान वैराग्य से जलती हुई शिवकी संहारिणी मूर्त्ति के कराल कवल (ग्रास) में भस्मी भूतहोना चाहते हैं । वैराग्यकी तप्त वायुसे आत्माको क्लेशित करना नहीं चाहते हम कामना की कलित पुष्पांजलि माता के चरणों में समर्पण करना चाहते हैं वैराग्य के अग्निकण लेकर निकट ताण्डव में अग्नि लीला करना नहीं चाहते । हम लोग राग मार्ग के भिखारी हैं त्यागमार्ग को दूरसेही नमस्कार करते हैं ॥

हम कामनाका ध्वंस नहीं चाहते, किन्तु कामनाका पूरण चाहते हैं हम कामनाकी निवृत्ति चाहते हैं यह ठीक है किन्तु तुम्हारी समान कामना का ध्वंस नहीं चाहते । तुम गला पकड़कर कामनाको रोकना चाहतेहो । हम कामनाको बर्द्धितकर उसकी चरितार्थता सिद्ध करके निवृत्तकरना चाहते हैं । कामनाके रोकने से अनिष्ट होनेकी सम्भावना है । जैसे एक दृष्टांत देखो ।

किसीके शरीरमें एक फोड़ा निकल रहाहै, फोड़े का रक्त स्वभावसे ही

फूटकर बाहरहो नाचाहता है । ऐसे समय अनाडी चिकित्सक किसी औ-षध विशेष से फोड़े को बैठाकर आराम करना चाहेगा । किन्तु जो बुद्धि-मान वैद्यराज हैं वह किसी लेपसे फोड़े को पकाकर उसका दूषित रक्त निकलनेका सुविधा करदेंगे । फोड़े को बैठादेने से कुछ समय के निमित्त यद्यपि कुछ शांति होसक्ती है, किन्तु कुछ दिनोंके पश्चात् वह दूषित रक्त जमकर उस स्थान के रक्तको दूषित करके फिर घाव करदेगा । और यदि फोड़े को पकाकर उसका दूषित रक्त पहिलेही बाहर करादियाजायँ तो प-हिले कुछ कष्ट होगा, किन्तु फिर बहुत समयतक उसकी शांति रहेगी । इसी प्रकार कामनाको दबाकर फैंकना उचित नहीं । उसको पकाकर उस का दूषित रक्त निकालदेना चाहिये । पंख हीन वैराग्य के कठगरे में काम नाको बंद रक्खाजासक्ता है, किन्तु वह अपूर्ण कामना फिर फूट फूटकर बाहर निकलसक्ती है । इसी कारण परम विरागियों की भी अप्सराके रूप मे मुग्ध होने की बात शास्त्र में लिखी है । अतएव वासना को न रोककर उसका पूर्ण करनाही उचित है । वासना का दूषित रक्तमय मुख जितना फूटैगा, उतनीही अतृप्तिकर ज्वाला यंत्रणा सहसकेगा, घृतकी आहुति में जलतीहुई अग्निकी समान वासना की सहस्र जिह्वा उतनीही धक् धक् करके जलेंगी, किसी प्रकार से इस अल्प कष्ट को काटकर इस सांसारि-क जगत् की गलीको छुडाकर इस अनन्त आकाश के विशाल वक्षमें वास-नाको छोड़देने से फिर अतृप्ति नहीं रहैगी उस समय वासना आत्महारादि शाहारा होकर किनारे को खोकर अगाध सागर में कहीं लीन होजायगी । उस समय उसका पता लगाना भी कठिन होगा । तुम्हारी अतृप्त वा-सना वैराग्य के चरणतल में दलित—मर्दित—पिष्ट पेषित होकर मरम की अभिशाप वाणी से कितनी ही बार घोषणा करैगी, हमारी कोमल कामना विभुके श्रेष्ठ चरण चुम्बन में चरितार्थ होकर इस रासरसिक रसे श्वरकी रसमय तरंगों में बहकर कहीं चली जायगी । तुम्हारी कामना सूखी हुई कङ्कालमयी मूर्त्ति लेकर प्रेत भूमि में शवराशि के पैरों में लोटैगी हमारी वासना उस राज राजेश्वर के दरबार में प्रवेश करके तिनके चरण कल्पवृक्षकी शीतलछाया में बसकर तिनके गुणों की गाथा गान करै गी । तुम्हारा ज्ञान वैराग्य घातक की समान कराल वेश में सजकर कामना का कोमल कण्ठ फांसी काष्ठ में झुलादेगा, हमारी प्रेम भक्ति कामना को सङ्ग में करके तिसको प्रेममय प्राणके प्राण प्राणनाथ की पार्श्व चारिणी कर

देगी। तुम्हारा ज्ञान वैराग्य कामना को कलङ्कितकरके उस ज्ञानमय निर्म-ल धाम के द्वार से भी भगादेगा, हमारी प्रेम भक्ति कामना बालिका को निर्मल कर माता अन्नपूर्णा के क्रोड़ देश में (गोद में) उसको बसादेगी स्नेह की सोहाग मयी दुहिता जिस प्रकार कहीं से भयपाकर माताकी गोद में छिपजाती है, इसी प्रकार हमारी कामना संसार की दुरभिसंधिमय मूर्त्ति से डरकर जिससमय जगज्जननी की गोदमें जाकर गिरेगी, उसके आंचल से मुखढक के स्थिरहोगी उस दिनही हमारी कामना सार्थक होगी। किन्तु इस समय हम कामना को छोड नहीं सकते। उसके मधुरहास्य को हम बहुतचाहते हैं। संसार में रखकर कितनेही दिनतक उसको प्यार करेंगे। उसके पश्चात् माताके अंचलकी निधि माताके अंचल में बांध देंगे। उसमें घरकी ममता घरचली जायगी। शक्ति की कणिका शक्तिसागर में डूबजायगी अनुकृति प्रकृति में मिलजायगी आसक्ति प्रेममयी की लीलान्तराल में अन्तर्हित होजायगी।

मन्त्रब्राह्मण।

स्थाणुरयंभारहारःकिलाभूदधीत्यवेदंनविजानातियोऽर्थम्।
योऽर्थज्ञइत्सकलंभद्रमश्नुतेनाकमेतिज्ञानविधूतपाप्मा॥

इस समय एक नयाविवाद कालक्रम से उपस्थित हुआ है कि मंत्र भाग काही नाम वेद है ब्राह्मण भाग वेद नहींहै इस कारण यह बहुतही उचित समझते हैं कि पहिले उनका पूर्वपक्ष लिखकर फिर भली प्रकारसे प्राचीन ऋषियों का सिद्धान्त सबके सन्मुख उपस्थित किया जाय देखिये—

पूर्वपक्ष स० प्र० पृ० १०५ पं० ६

संहिता पुस्तक के आरम्भ अध्यायकी समाप्तिमें वेद यह सनातनसे शब्द लिखा आताहै और ब्राह्मण पुस्तक के आरम्भ वा अध्यायकी समाप्ति में कहीं नहीं लिखा और निरुक्त में—

इत्यपिनिगमोभवति इति ब्राह्मणम्
छन्दोब्राह्मणानिचतद्विषयाणि

यह पाणिनीय सूत्र है इस से भी स्पष्ट विदित होताहै कि, वेद मंत्रभाग और ब्राह्मण व्याख्या भाग हैं इस में जो विशेष देखना चाहैं वे ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में देखलें अनेक प्रमाणों से विरोध होने से॥

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् का० सू०

यह कात्यायनका वचन नहीं होसक्ता जो ऐसा माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो सक्ते क्योंकि ब्राह्मण ग्रंथों में ऋषिमुनि राजादिकोंके इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसकाहो उसके जन्मके पश्चात् लिखाजाता है किसी मनुष्यकी संज्ञा वेद में नहीं है स० पृ० २०६ पं० १७ जो किसी से कोई पूछे तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि, हमारा मत वेद है जो कुछ वेदों में कहा है हम उसको मानते हैं ॥

उत्तर पक्ष—स्वामी जी ने यहां भी अपनीही धुनि निकाली भला मंत्र और ब्राह्मणको आप वेद नहीं मानते और कहते हो कि, अनेक प्रमाणों से विरोध होने से यह कात्यायन वचन नहीं होसक्ता अबहम यहां प्रमाण दिखावेंगे कि, सबही आचार्योंने यह बात मानी है कि, मंत्र और ब्राह्मण मिलकर वेदकहाता है प्रथम तो आपही ने उपनिषदों कोभी वेद मानाहै स०पृ०११ पं० २ देखिये वेदों में ऐसे२ प्रकरणों में ओम् आदि परमेश्वर के नाम हैं ओमित्येतदक्षरमिदꣳ उपासीत् छान्दोग्य० ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वमित्यादि मांडूक्य, यहां उपनिषदोंके प्रमाण दिये और सब वेदके नाम से उच्चारण किये पुनः पृष्ठ १९० पं० १० श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य सांख्यसू० इसके अर्थ में स्वामीजी लिखते हैं उपनिषद् भी प्रधानहीको जगत् का उपादान कारण कहता है यहां श्रुतिशब्द देखिये उपनिषदोंतकका नाम सिद्ध होता है और यदि वेद शब्द से व्यवहार्य्य वाक्यकलापके दूसरे पदों से अर्थ करने को व्याख्यान कहते हैं तो स्वामीजी इसे क्या कहेंगे ।

प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वारूपाणिपरिताबभूव
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नोअस्तुवयꣳस्यामपतयोरयीणाम्

यजु० अ० २३ मं० ६५

और—प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वाजातानिपरिताबभूव
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नो अस्तु वयंस्यामपतयोरयीणाम्

ऋ० मं० १० सू० १२२ मं० ४

और—नवोनवोभवसिजायमानोऽह्नांकेतुरुषसामेष्यग्रम्
भागंदेवेभ्योविदधास्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरतेदीर्घमायुःअथर्व.

नवोनवोभवतिजायमानोऽह्नांकेतुरुषसामेत्यग्रम्
भागन्देवेभ्योविदधात्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरतेदीर्घमायुः
ऋकु० मं० १० सू० ८५ मं० १९

इन में पहले मंत्र में (विश्वारूपाणि) ऐसा पद है और दूसरे में (वि श्वाजातानि) ऐसा पद है तीसरे में (भवतिजायमान उषसामेत्यग्रम् विदधात्यायन) ऐसे विलक्षण पद हैं तो इन भिन्न२ मंत्रों में वेद पदों के पदान्तर से अर्थ कथनरूप स्वामीजी का पूर्वोक्त (ऋग्वेद भा० भूमिका) वेद व्याख्यानत्व तो स्पष्टतासे प्रतिपन्न होता है तो फिर वेदभी व्याख्यान कहलावैगा ॥

(प्रश्न) भरद्वाज अँगिरा वसिष्ठादि ऋषियों के संवाद देखने से ऋषि प्रणीतत्व ब्राह्मण है (उत्तर) अच्छे भ्रममें पड़ेहो वेदोंका वेदत्व तो इतनाही है कि, भूत भविष्य वर्तमान सन्निकृष्ट विप्रकृष्ट सर्ववस्तु साधारणसे सबोंको जानते हैं और दूसरोंको जानते हैं (लौकिकानामर्थपूर्वकत्वात्)ऐसा कात्यायन ऋषिने प्रातिशाख्यमें कहाहै इसका अर्थ यह है कि, लौकिकानां अर्थात्"गामानयशुक्लांदंडेन" इत्यादि लौकिक वाक्योंका प्रयोग अर्थ पूर्वक होता है अर्थात् प्रयोग करने वाले लोग उन उन वक्तव्य अर्थोंका लाभ करके वा अनुसन्धान करके लौकिक वाक्योंका प्रयोग करते हैं और वैदिक नित्य वाक्यों का अर्थपूर्वक प्रयोग नहीं घटसक्ता क्योंकि, वैदिक वाक्यों के अर्थ सृष्टि प्रलयादिक नित्य नहीं हैं इससे वस्तुसत्ताकी अपेक्षा न करके लोकवृत्त को जानते हुए वेद यदि याज्ञवल्क्यादि जनकादि के संवाद का कथन भी करें तो क्या हानि होती है अन्यथा तो (सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्) अर्थात् सूर्य चन्द्र परमेश्वर ने जैसे पहले बनाये थे ऐसेही इस सृष्टि में बनाये इत्यादि इस संहिता भागकी भी अवेदत्वापत्ति होजायगी जैसे जनकादि संवादों के ब्राह्मण ग्रंथों में देखने से जनकादिक के उत्पत्तिकाल के पश्चात् काल में उत्पन्न होना ब्राह्मण भाग में उत्प्रेक्षित करते हो वैसे (सूर्याचन्द्रमसौ०) और (त्रितंकू०) इस पूर्व लिखित श्रुतिको भी सूर्य चन्द्रकी सृष्टि कहने और त्रितऋषि के उत्पत्तिकाल के पश्चात् काल में मंत्र का भी उत्पन्न होना प्रतीत होनेके कारण अनित्यत्वापत्ति होजायगी तब तो वही हुई कि, आप ब्याजको मरते थे मूलभी गँवाबैठे इस आपत्ति के निवारणार्थ आपको यही कहना पड़ैगा कि सूर्य चन्द्रमादिक की उत्पत्तिको

कहनेवाले भी वेद कुछ सूर्यादिकी सृष्टि के पश्चात् कालमें उत्पन्न नहीं हुए हैं क्योंकि वेदवाक्यका प्रयोग अर्थपूर्वक नहीं होता किन्तु उस में जो कथन है वह अवश्य होगा तो फिर ब्राह्मणभागने क्या बिगाड़ा है जो इससे आप चिढते हो ब्राह्मण वेद द्वेष अच्छा नहीं अब आगे देखिये कि मीमांसाके प्रथम अध्याय १ पादका ३२ सूत्र मंत्रके लक्षण में इसप्रकार है ॥

तच्चोदकेषुमंत्राख्या ३२

शेषेब्राह्मणशब्दः ३३

यहां ऐसा आचार्य शेषे ब्राह्मणशब्दः इस द्वितीय सूत्रोक्तिसे (शेषे) मंत्रभागसे अवशिष्ट मंत्रैकदेशमें (ब्राह्मणशब्दः ब्राह्मण शब्द से व्यवहार होता है ऐसा कहते हैं इस कथनसे यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि वेदके मंत्र और ब्राह्मण दो भेद हैं यदि आचार्य ब्राह्मण को वेदका एकभाग नहीं मानते तो शेषे ब्राह्मणशब्दःऐसा कैसे कहते प्रकृतिस्थ जन रामायण महाभारतका शेष है ऐसा कोई नहीं कहेगा तब शेष शब्द के कथनसे ब्राह्मणको वेदत्व अवश्य अभिमत है ऐसा प्रतीत होताहै अतएव ब्राह्मणनिर्वचनाधिकरण में आचार्य शबरस्वामी ऐसी व्याख्या करते हैं ।

(प्र०) ब्राह्मणका क्या लक्षण है ?

उत्तर–मंत्र और ब्राह्मण दो भाग वेद हैं उस में मंत्रभागके लक्षण कहने हीसे परिशेषतः ब्राह्मणका लक्षण सिद्ध होगया फिर कहनेकी क्या आवश्यकताहै और यही समझकर भगवान् जैमिनिने भी पूर्व लिखित दो सूत्रों से मंत्र ब्राह्मणात्मक समस्त वेदका लक्षण कहकर वेदके एकदेश ऋक्का ॥

तेषामृग्यत्रार्थवशेनपादव्यवस्था ३५

गीतिषुसामाख्या ३६

शेषयजुःशब्दः ३७

(ऋक् यजुसामका लक्षण कहाहै और यजुषके भी एकदेशका)

निगदोवाचतुर्थस्याद्धर्मविशेषात् ३८

इस सूत्रसे यजुर्विशेष निगदकाभी लक्षण कहा है यदि आचार्य ब्राह्मणको वेद नहीं मानते तब तो (तच्चोदकेषु-मंत्राख्या) इस से मंत्र लक्षण कहने के उपरान्तही ऋगादिकाभी लक्षण कहते पर यह तो मंत्र लक्षण के अनन्तर (शेषे ब्राह्मणशब्दः) इस सूत्र से ब्राह्मणका लक्षण कहते हैं इस से जैमिनि मंत्र

और ब्राह्मण दोनोंही को वेद मानते हैं अब लीजिये श्रीकणादाचार्य ६ अध्यायकी आदि में लिखते हैं कि—

बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे—क०

अर्थ यह है कि—(वेदे) वेद नामक वाक्यकलाप में वाक्यकृतिः) वाक्यरचना (बुद्धिपूर्वा) वक्ताका यथार्थ जो वाक्यार्थ ज्ञान तत्पूर्वक है अर्थात् वेद में जो जो वाक्य लिखे हैं उन वाक्यों के अभिमेत अर्थों को यथार्थ जानकरके वक्ताने प्रयोग किया है वाक्यरचनाका यह नियमही है कि, जबतक जिस अर्थ को नहीं जानते तबतक उस अर्थ के वाक्यकी रचना नहीं करसक्ते (यथा नृपतिः सेव्यः) 'काञ्ची नगरी में त्रिभुवनतिलक राजा हुआहै' इत्यादि अस्मदादिककी रचना ज्ञानपूर्वक होती है इससे विधि निषेध वाक्य अनाप्तया अपनी उपपत्तिके लिये वक्ताका यथार्थ जो वाक्यार्थ ज्ञान तत्पूर्वकत्वका अनुमान करता है हम लोगोंका जो ज्ञान तत्पूर्वकत्वेन अन्यथा सिद्धि तो नहीं होसक्ती क्योंकि 'स्वर्गकामो यजेत''स्वर्गकी कामना हो तो यज्ञ करे उसीसे हमारा अभीष्ट साधन होसकेगा और इस को करना चाहिये इत्यादि ज्ञान हम लोगोंके ज्ञान से बाहर है अर्थात् यज्ञ करने से स्वर्ग होताहै ऐसी बात हम लोगोंकी क्षुद्रबुद्धि में नहीं बैठसक्ती अतःऐसा ज्ञानवान कोई स्वतंत्र पुरुष अवश्य पूर्वमें था जो कि इस विधि निषेधका रचनेवालाहै और ऐसा स्वतंत्र एकवेदपुरुषहीहै इससे संहिता आदिकाभ्रम प्रमादादि दोषसे शून्य जोस्वतंत्र पुरुष वोही रचनेवालाहै यह सिद्धहुआ और प्रकारान्तरसे भी वेद वाक्यों का बुद्धिपूर्वकत्व यही कहतेहैं कि, 'ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिर्लिङ्गम्' अर्थात् ब्राह्मणनामक वेदभागमें नामकरण (सिद्धि अर्थात् बुद्धिपूर्वकत्वका अनुमापक है जैसे लोकमें चैत्र मैत्र आदि नाम रखनेवालोंकी बुद्धिका आक्षेप करता है ब्राह्मण में 'उद्भिदायजेत' 'बलिभिदायजेत' 'अभिजितायजेत' 'विश्वजितायजेत, इत्यादि नामकरण हैं इनमें 'उद्भिदा इत्यादि नाम किसी स्वतंत्र पुरुषकी बुद्धिका आक्षेप करता है अर्थात् अलौकिक अर्थ तो हम लोगोंकी बुद्धिगोचर हुआ नहीं है कि'उद्भिद'इत्यादि नाम जो हम लोग रखसकें इससे ऐसे नामहीसे किसी एक स्वतंत्र पुरुषका बोध होताहै और वैसा एक वेदपुरुष भगवान्है और ऐसेही'बुद्धिपूर्वाददाति' यहांभी 'स्वर्गकामोगांदद्यात्' अर्थात् स्वर्गकी इच्छासे गोदान करना ऐसा कहने से वक्ताका यथार्थ ज्ञान जानपड़ता है गोदान करने से स्वर्ग होता है

ऐसा निःसंशय ज्ञान हम लोगों को प्रत्यक्ष नहीं है इससे यहांभी वैसाही ज्ञानवान् स्वतंत्र पुरुष सिद्ध होता है ऐसेही—

तथा प्रतिग्रहः-क० सू०

इस चौथे कणादिसूत्रकाभी ऐसाही अर्थ जानना चाहिये पृथ्वीदान लेनेसे स्वर्ग होता है और कृष्णचर्मादि दान लेनेसे नरक होता है ऐसा हम नहीं निश्चय करसके इत्यादि रीति से वेदोंके आप्तोक्तत्व साधन द्वारा उन का प्रमाण्य साधन करतेहुए कणादाचार्य मन्त्र ब्राह्मण दोनोंको वेद स्पष्ट मानते हैं यदि केवल मंत्र भागहीको वेद मानते तो पूर्वोक्त सूत्रों में दोनोंके उदाहरण दानपूर्वक लेख नहीं करते इससे कणादाचार्य भी ब्राह्मणभाग को वेद मानते हैं इस से स्वामीजीका यह कहना कि कात्यायन के बिना और किसीने मंत्र ब्राह्मण को वेद नहीं कहा असत्य प्रतीत होगया अब ब्राह्मण के वेद होने में और प्रमाण सुनिये कि, गौतमजीने वेदप्रमाणनिरूपणावसर स्थूणानिखननन्यायसे वेदके प्रमाणहीको दृढ कराने के लिये आशंका की है ॥

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः न्याय०

अर्थात् (तदप्रामाण्यम्) उस वेदका प्रमाण नहीं होसक्ता क्योंकि (अनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः उसके वाक्यों में असत् पूर्वापरविरोध दोबार कहना इत्यादि दोष हैं असत्यका उदाहरण यथा 'पुत्रकामः पुत्रेष्ट्यायजेत' जिसे पुत्र की इच्छा हो पुत्रेष्टी यज्ञ करै परन्तु कहीं पुत्रेष्टी करने से भी पुत्र नहीं होता जब कि, इस प्रत्यक्ष वाक्यका प्रमाण नहीं तो 'अग्निहोत्रम् जुहुयात् स्वर्गकामः' स्वर्गकी कामनासे अग्निहोत्र करे ऐसा जो वेदमें अदृष्टार्थ वाक्य है उसके (प्रामाण्यं) सत्यतामें कैसे विश्वास होवै यहां (तदप्रामाण्यम्) इस सूत्र में तत्पद से वेदहीका परामर्श है इस रीति से वेद अप्रमाण की आशंका करके (अग्निहोत्र) इस ब्राह्मणवाक्यका अप्रमाण गौतमजी दिखलाते हैं यदि ब्राह्मणको वेद न मानते होते तो वेदके अप्रमाण दिखलानेके समय ब्राह्मणका अप्रमाण दिखाना तो कान छूने के समय कंबलचर्वण के समान अति हास्यकारक होता इस कारण गौतमजी ब्राह्मणको वेद अवश्य मानते हैं क्योंकि दृष्टांत उन्होंने मंत्र और ब्राह्मण दोनोंही के दिये हैं सो भाष्यकार ने खोलके लिखदिये हैं आगे इस शंकाका समाधान किया है और देखिये —

वाक्यविभागस्यचार्थग्रहणात् अ० २ सू० ६०
बुद्ध्यर्थवादानुवादवचनाविनियोगात् ६१ न्या०

इसपर वात्स्यायनजी लिखते हैं 'त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि विधिवचनानि अर्थवादवचनानि अनुवादवचनानीति तत्र विधिर्नियामकः यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः विधिस्तु विनियोगो अनुज्ञा वा यथा (अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः)॥

यहां ब्राह्मणवाक्यों के विभागावसर में वात्स्यायनजी के 'अग्निहोत्रं, इस वाक्यके लिखने से इनकी व्याख्याप्रणाली से (अग्नि) इस ब्राह्मणवाक्य सूत्रस्थ (तत्) पदसे संग्रह करना अवश्य गौतमजी को अभिमत है इस रीति से ब्राह्मणको वेद सभी ऋषि मानते हैं॥

जैसे सृष्टि की उत्पत्ति आदि क्रम वेदों में वारम्वार कहा है पर उनसे वेद पौरुषेय नहीं हो सक्ते, इसी प्रकार लौकिक इतिहासोंको भी समझिये वेद सभी विद्याओं का मूल है इससे लौकिक जनों की सुगमताके लिये भगवान परमेश्वरने याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, जनक इत्यादिके नामोल्लेख पूर्वक ब्रह्मविद्यादि विद्याओं का उपदेश किया है जैसे कि, सृष्टिको कहने वाला वेद सृष्टि के पीछे बना है (यह नहीं) किन्तु सृष्टिही अनादि प्रवाहसिद्ध वेदोंके पश्चात् हुईहै इससे सृष्टिको वर्णन करनेवालेभीवेदकुछसृष्टि के अनन्तरबनेनही कहलाते ऐसेही ब्राह्मणमें लौकिक इतिहास वर्णनकरने परभी ऐतिहासिक अर्थोंकी उत्पत्तिके पश्चात् काल में उत्पन्न वा बने ब्राह्मण नहीं कहलासकते और'तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च, इस अथर्व वेदमें इतिहास पुराण के आने से क्या वेद इतिहास पुराण के पीछे बना है कभी नहीं इस प्रकार वेदमें इतिहास होनेसे भी सादित्व नहीं आता और व्याख्यान वा भाष्य करता अलग अलग हों यह कोई नियम नहीं है क्योंकि शंकर भाष्य में 'पश्वादिभिश्चाविशेषात्' इस अपने भाष्यकी आपही व्याख्या शंकराचार्यजीनेकीहै और पातंजल भाष्य में भी 'अथ शब्दानुशासनम्' इसका 'अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः' इत्यादि व्याख्यान स्वयं भाष्यकारने किया है फिर जब भाष्यका व्याख्यान भाष्य कहलाता है तो वेद के व्याख्यानको भी वेद कहलाने में क्या संदेह है प्रश्न—

द्वितीया ब्राह्मणे २। ३। ६० अष्टा०

चतुर्थ्यर्थे बहुलंछन्दसि २ । ३ । ६२ ।
पुराणप्रोक्तेषुब्राह्मणकल्पेषु ४ । ३ । १०५
छन्दोब्राह्मणानिचतद्विषयाणि ४ । २ । ६२

यहां पाणिनि आचार्य वेद और ब्राह्मणको पृथक्२ कहते हैं पुराण अर्थात् प्राचीन ब्रह्मा आदि ऋषियोंसे प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प वेद व्याख्या न हैं इससे इनकी पुराणेतिहास संज्ञा कीगई है यदि यहां छन्द और ब्राह्मण दोनोंकी वेदसंज्ञा सूत्रकारको अभिमत होती तो (चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि) इस सूत्र में छन्दग्रहण न करते 'द्वितीया ब्राह्मणे' इस सूत्र में 'ब्राह्मणे' इस पद की अनुवृत्ति प्रकरणतः प्राप्त है इससे जानते हैं कि, ब्राह्मण ग्रंथकी वेद संज्ञा नहीं और यदि छन्द पद से ब्राह्मणकाभी ग्रंथ पाणिनिको अभिमत होता तो 'छन्दोब्रा०, इस सूत्र में ब्राह्मणग्रहण क्यों करते केवल छन्दसि कहदेते क्योंकि ब्राह्मण भी छन्दही है (उत्तर) वाह व्याकरण में भी आप की बहुत पहुंच है यह कहना सर्वथा आपका अनुचित है देखिये [द्वितीया ब्राह्मणे] इस सूत्रसे ब्राह्मणविषयक प्रयोगमें अव पूर्व कह और पण धातु के समानार्थक दिव धातु के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है यथा 'गामस्यतदहः सभायां दीव्येयुः' यहां यतस्य दीव्यति इत्यादिमेंकीनाई 'दिवस्तदर्थस्य' । २ । ३ । ५८ । इस सूत्र से गोरस्य ऐसी षष्ठी प्राप्त थी सो यहां 'गामस्य' ऐसी द्वितीया की जाति है यहां ब्राह्मणरूप वेदैकदेशमेंही में द्वितीया इष्ट है न कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक श्रुति छन्दः आम्नाय निगम वेद इत्यादि पद से व्यवहार्य समस्त वेदमात्रमें और [चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि] २।३।६२ इस उत्तर सूत्रसे मंत्रब्राह्मणरूप छन्दोमात्रके विषयमें चतुर्थीकेअर्थमें षष्ठीका विधान कियाजाता है [पुरुषमृगश्चंद्रमसः] [पुरुषमृगश्चंद्रमसे] इत्यादि इस सूत्रसे छन्दसि इस पद से मंत्र ब्राह्मणरूप समस्त वेदमात्रका संग्रह पाणिनि आचार्यको अभिमत है, अतएव इसके उदाहरण में (या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वोजायते तिस्रोरात्रीरिति तस्या इति प्राप्ते, या मलवद्वासः संभवन्ति यस्ततो जायते सोभिशस्तो यामरण्ये तस्यै स्तेनो या पराचीं तस्यै हीतमुख्य प्रगल्भा या स्नाति तस्या अप्सु मारुका याऽभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा या प्रलिखते तस्यै खलतिरपस्मारी याऽङ्क्ते तस्यै काणो या दतो धावते तस्यै श्यावदन् या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी या कृणत्ति तस्यै क्लीबो यारज्जुं सृ

जाया मनाय्यै तन्तुः) इत्यादि बहुतसे ब्राह्मणोंही को प्रमाणमें भाष्यकारने दिया है यदि इस सूत्र में छन्दोग्रहण न रहैगा तो पूर्व सूत्रसे 'ब्राह्मणे' इस पदकी अनुवृत्ति लानेपर भी केवल ब्राह्मणहीमें षष्ठी होगी वेदमात्रसे नहीं इस कारण इस सूत्रसे (छन्दसि) ग्रहण का विशिष्ट फल हुई है और ब्राह्मणकी भी छन्दोरूपता में भाष्यकार सम्मति देतेही हैं फिर इस सूत्रमें छन्दोग्रहण को व्यर्थ कहतेहुए आप निरे स्वच्छन्द नहीहैं तो और कौनहै और नहीं तो (मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशोण्विन ३ । २ । ७१ अवेयजः ३ । २ । ७२ विजुपेश्छन्दसि ३ । २ । ७३) ऐसे क्रमिक सूत्रमें पाठ से अन्तिम सूत्र में [छन्दसि] ऐसा कहने से मंत्रभागमें भी छन्दोरूपता न सिद्ध होने पावेगी देखिये जैसे (ब्राह्मणे) ऐसा कहकर (छन्दसि) ऐसा कहनेसे ब्राह्मण का छन्दपदमें व्यवहार पाणिनी को अभिमत नहीं है ऐसी उत्प्रेक्षा आप करते हैं वैसेही पूर्व सूत्रमें मंत्र ऐसा कहकर [विजुपेश्छन्दसि] ऐसा कहने वाले पाणिनीको मंत्रभागमें भी छन्दपद से व्यवहार अभिमत नहीं है ऐसा कहना पड़ैगा तब तो ब्राह्मणद्वेषी आप के शिरपर भी महा अनिष्ट आपड़ैगा और भी [अम्नरूधरवीरित्युभयथाछन्दसि ८ । २ । ७०] इस सूत्रमें पाणिनि (छन्दसि) ऐसा कहकर (भुवश्च महाव्याहृतेः ८ । २ । ७१) इस उत्तर सूत्रमें महाव्याहृतेः ऐसा कहते हैं इससे महाव्याहृतिकी भी छन्दोभावच्युति अवश्य होजायगी क्योंकि (ब्राह्मणे) ऐसा कहकर छन्दसि) ऐसा कहनाही ब्राह्मणका छन्दोभावका अभाव साधन करैगा और (छंदसि) ऐसा कहकर (महाव्याहृतेः) ऐसा विशिष्ट व्याहृतिका कहना महाव्याहृतिका छंदोभावका नाशक न होगा ऐसी आंख में धूल तो आप नहीं डालसकते इस हेतु से पाणिनि आचार्य प्रयोगसाधुत्व के अप्रसंग और अतिप्रसंग निवारण करने की इच्छा से कहीं सामान्यसे (छंदसि) ऐसा कहकर विशेषसे (महाव्याहृते) ऐसा कहते हैं और कहीं तो विशेषसे [ब्राह्मणे] [मंत्रे] ऐसा कहकर सामान्यसे [छंदसि] ऐसा कहते हैं इससे यदि यहां छंद और ब्राह्मण दोनों की वेदसंज्ञा सूत्रकारको इष्ट न होती तो [चतुर्थ्यर्थे बहुलं छंदसि] इस सूत्रमें छंदोग्रहण वो क्यों करते क्योंकि-[द्वितीया ब्राह्मणे] इस सूत्रसे ब्राह्मणे इस पदकी अनुवृत्ति प्रकरणतःसिद्ध थी इससे जानते हैं कि, मंत्र ब्राह्मणका नाम वेद है और आपका कहना सब मिथ्या है और [छंदोब्राह्मणानीति] ब्राह्मणों और मंत्रोंका छंदोभाव समान होने से पृथक् ब्राह्मण व्यर्थहै ऐसा भासता तथापि ब्राह्मण ग्रहण यहां [अधिकमधिका

र्थम्] इस न्यायसे ब्राह्मण विशेष के परिग्रहार्थ है इससे [याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्क्यानि सौलभानि] इस प्रयोगसे पूर्वोक्त नियम नहीं हुआ व्याकरण भाष्यकारभी (याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधोवक्तव्यः) ऐसा कहते हुए इस सूत्रमें ब्राह्मण ग्रहणका प्रयोजन यही सूचित करते हैं और "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४ । ३ । १०५" इस सूत्रमें ब्राह्मणका पुराणप्रोक्त ऐसा विशेषण कहते हुए पाणिनिको यही अर्थ अभिमत है अन्यथा यदि ब्राह्मण विशेषके परिग्रह करनेकी इच्छा न होती तो (पुराण प्रोक्तेषु०) इसके कहने से आचार्यकी प्रवृत्ति व्यर्थ होजाती चाहै स्वामीजी आप कुछ समझैं परन्तु भाष्यके श्रम करनेवाले विद्वानों को यह बात कुछ परोक्ष नहीं है इस हेतु हम इसमें कुछ और नहीं कहा चाहते और मंत्रभाग की नाईं ब्राह्मण भागकाभी प्रामाण्य बारम्बार सिद्धकर आये हैं अतएव पुराण प्रामाण्य व्यवस्थापनके प्रसंगसे (प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणानां प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते) ऐसा वात्स्यायन महर्षिने कहाहै यदि ब्राह्मणों का स्वतःप्रामाण्य नहो तो दूसरेकी प्रामाण्य बोधकता कैसे उनमें संभावित होसक्ती है क्योंकि ब्राह्मणभाग स्वयं जबतक प्रमाण पदवीपर व्यवस्थित न होवैगा तबतक इतिहास पुराण के प्रामाण्यका व्यवस्थापन करने में कैसे समर्थ होसकेगा यह कहावत प्रसिद्ध है कि (स्वयमसिद्धः कथंपरान् साधयिष्यति) इससे श्रुति वेद शब्द आम्नाय निगम इत्यादि पद मंत्रभागसे लेकर उपनिषद् पर्यन्त वेदोंका बोधक है यह शास्त्र मार्मिक विद्वानों का परामर्श है अतएव (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः) श्रुतिको वेद कहते हैं धर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं ऐसा आस्तिक जनोंके जीवनौषध भगवान् मनुजीने भी माना है अतएव वेदान्त चतुरध्यायी में भगवान् व्यास मुनि उपनिषदों के कहने के इच्छुक होकर ॥

श्रुतेस्तुशब्दमूलत्वात् अ० २ पा० १ सू० २७

परात्तुतच्छ्रुतेः अ० २ पा० ३ सू० ४१

भेदश्रुतेः अ० २ पा० ४ सू० १८

सूचकश्चहिश्रुतेराचक्षतेचतद्विदः अ० ३ पा० २ सू० ४

तदभावोनाडीषुतच्छ्रुतेः अ० ३ पा० २ सू० ७

वैद्युतेनैवततस्तच्छ्रुतेः अ० ४ पा० ३ सू० ६

इत्यादि सूत्रों में बारम्बार श्रुतिपद शब्दपदका उपादान करते हैं श्रुति

से उपनिषदों कोही ग्रहण किया है और श्रीकणादाचार्य ने भी दशाध्यायी के अन्त में (तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्) ऐसा आम्नायपदसे वेद के प्रामाण्यका उपसंहार किया है यहां आम्नाय पद संहितासे लेकर उपनिषद् पर्य्यन्त समस्त वेदका बोधक है क्योंकि इसके समान तत्प्रमोतमीय न्याय दर्शन के (मन्त्रायुर्वेदवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्) इस सूत्र में तत्पद से उपादेय उपनिषदों के संहित वाक्य कलापहीके प्रामाण्यका अवधारण किया है और यहां के तत्पदकी मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदमात्रकी बोधकता पूर्वमें निश्चित करही चुकेहैं और मन्वादि स्मृतियां इसी अर्थके अनुकूल हैं इसिये-

+ एताश्चान्याश्चसेवेतदीक्षाविप्रोवनेवसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धयेश्रुतीः अ०६श्लो०२९

दीक्षायुक्त ब्राह्मण वन में वास करता हुआ आत्मज्ञान के अर्थ अनेक उपनिषदों की श्रुति विचारे यहां (औपनिषदीः श्रुतीः) ऐसा कहनेसे उपनिषदोंका श्रुतिपदवाच्यत्व स्पष्ट सिद्ध होताहै और स्वामी जीकी लीलादेखो पूर्वपक्ष—सौवर पृ० ७ पं० ७

नसुब्रह्मण्यायांस्वरितस्यतूदात्तः १ । २ । ३७

जो सुब्रह्मण्या ऋचामें यज्ञ कर्ममें पूर्व सूत्रसे एकश्रुतिस्वर प्राप्त है सो नहो किन्तु जो उनमें स्वरित वर्णहो उनके स्थान में उदात्त होजाय सुब्रह्मण्या एक ऋचाका नाम है उसका व्याख्यान शतप० ब्रा० तीसरेका०तीसरे प्रपा० के प्रथम ब्राह्मण में सत्रहवीं कण्डिका से लेकर बीसवीं कण्डिका तक किया है ।

उत्तरपक्ष—इस में स्वामीजी से पूछना है कि, आप यह तो कहैं कि,जिस ऋचाका व्याख्यान मौजूद है वह मंत्रभी अवश्य होगा यदि दयानन्द जी कहीं उस ऋचाको दिखादें तो हमभी इस बातको मानें कि, हां मंत्रब्राह्मण मिलकर वेद नहीं मंत्रही का नाम वेद है परन्तु पाणिनी जी भी मंत्र ब्राह्मण वेद मानते हैं, इसीकारण सुब्रह्मण्या शब्दवकी श्रुतिमें भी मंत्रवत् स्वरका विधान किया है पाठकवर्ग किसी दयानन्दीसे यह प्रश्न करेंतो—देखें क्या उत्तर देते हैं ॥

पूर्वपक्ष स० प्र० पृ० २०१ पं० २४

प्रथम सृष्टिकी आदिमें परमात्माने अग्नि वायु आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मामें एक एक वेदका प्रकाश किया ॥

यों तो दयानंदके मतसे वेदकी उत्पत्ति हुई अब ब्राह्मण का प्रादुर्भाव सुनिये—स० प्र० पृ० २०४ पंक्ति २१ —

वेदोंका अर्थ उन्होंने कैसे जाना (उत्तर) परमेश्वरने जनाया और धर्मात्मायोगी महर्षि लोग जब जब जिस अर्थ के जाननेकी इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूपमें समाधिस्थ हुए तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मंत्रों के अर्थ जनाये जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थका प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाये उनका नाम ब्राह्मण वेदका व्याख्यान हुआ ॥

उत्तर पक्ष—अब इसपर यह विचार करना है कि, जब ईश्वर के प्रकाश किये मंत्र ईश्वरप्रोक्त कहे जांय तो परमात्मा के प्रकाश किये मंत्रार्थ ईश्वरप्रोक्त क्यों न कहे जांय स्वामी जी की अच्छी बुद्धि है जिन दो वस्तुओं का एकही कर्ता है उनमें एक उसके द्वारा निर्गत तो उसका वचन माना जाय दूसरा न माना जाय इसमें क्या प्रमाण दोनोंकी उत्पत्ति भी एकही प्रकार है इससे ईश्वरप्रोक्त दोनोंही होसके हैं, जैसे अग्नि वायु रवि मंत्रों में अनेक स्थान में आये हैं, इसीप्रकार व्याख्यान जिसका तुमकहते हो ब्राह्मणों में उन २ महर्षियों के नाम आये हैं, इत्यादि जब दोनों में एकही बात है तो दोनों एकही क्यों न कहे जांय और यहां स्वामीजी ने साक्षात् ईश्वरका स्वरूप भी मान लिया अब आकार में क्या सन्देह रहा, कहां तक कहैं सत्यार्थप्रकाश का जो पत्र उठाकर देखो वहां ही अशुद्धि है यह दिग्दर्शन मात्र है ।

और श्रुतिशब्द वेदका आम्नाय पदका पर्याय शब्द है जैसे कि, मनुजी ने कहा है [श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः] इत्यादि पूर्व लिख आये हैं जब मनुजी ने उपनिषदों को श्रुति माना और व्यवहारभी वैसाही किया तब ब्राह्मणों का वेद भाव अवश्य हुआ क्योंकि ब्राह्मणोंही के शेषभूत तो उपनिषद् हैं इसी कारण वेदान्त नामसे विख्यात है अतः यह कात्यायनवाक्य कि, 'मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' कि, मंत्र ब्राह्मण दोनों का वेद नाम है यह अपेल सिद्धान्त है नहीं तो दिखाया होता यह वाक्य कि, वेद ब्राह्मण नहीं है और ब्राह्मणके आदि अन्तमें वेद ऐसा जो नहीं लिखा यह केवल भाग जाननेकी इच्छासे नहीं लिखा जिससे यह विदित होता रहे कि, यह मंत्रभाग है यह ब्राह्मण यदि दोनोंहीको एक पद दियाजाता तो मंत्र ब्राह्मण ऐसे मिश्रित

होजाते जिससे यह निर्धारण करना कठिन होजाता कि, यह श्रुति मंत्र की है या ब्राह्मण की कुछ ब्राह्मण भागके अन्तमें पुराण शब्द तो लिखाही नहीं है लिखा तो यही है कि, ब्राह्मण भी यह नाम निर्धारण करनेको लिखा है, इस से मंत्र ब्राह्मण का नाम वेद है यह सिद्धांत निश्चित है ।

और सन १८८७ के छपेहुए सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लासकी समाप्ति में शुक्रनीति को भी दयानंदजी ने इष्ट माना है, परन्तु ज्ञात होता है कि हजरत ने शुक्रनीति का विचारभी नहीं किया, यदि ऐसा न होता तो ऋग्वादि भाष्य भूमिका में उक्त वेदमंत्रका अनर्थ न करते देखिये ।

देशादिधर्म्माद्द्वात्रिंशदेता विद्याभिसंज्ञिताः । मंत्र ब्राह्मण योर्वेदनाम प्रोक्तमृगादिषु ॥ शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक २७१

इसका अभिप्राय ये है कि बत्तीस देशादि के धर्मों का नाम विद्या है और ऋक् आदिकों में मंत्र और ब्राह्मणकाभी नाम वेद कहा है ।

जपहोमार्चनंयस्य देवताप्रीतिदंभवेत् ।
उच्चारान्मंत्रसंज्ञंतद्विनियोगिचब्राह्मणम् ॥ २७२ ॥

जिसके उच्चारणसे जप होम पूजन देवताको प्रसन्न करैं उसको मंत्र कहते हैं और जिसमें विनियोग हो उसे ब्राह्मण कहते हैं ।

ऋग्रूपायत्रयेमंत्राः पादशोर्धर्चशोपिवा ।
येषांहौत्रसमाम्नागः समाख्यानस्यचवा ॥ २७३ ॥

ऋग्वेद रूप जो मंत्रहैं वोह पादहों वा आधी ऋचाके हों जिन होता के करनेका कर्महो अथवा जिसमें इतिहासहो बोह ऋग्वेदका भाग है ।

अश्लिष्टपठितामंत्रा वृत्तगीतविवर्जिताः ।
आध्वर्य्यवंयत्रकर्म त्रिगुणंयत्रपाठनं ॥ २७४ ॥

जो मंत्र भिन्न २ पढे हैं और जिनमें वृत्तान्त और गीतनहो, और जिसमें अध्वर्युका कर्महो और जो तिगना पढाजाय ।

मंत्रब्राह्मणयोरेव यजुर्वेदःसउच्यते ।
उद्गीथंसस्यशत्राद्यंर्ज्ञेतत्सामसंज्ञकम् ॥ २७५ ॥

उसमंत्रको ब्राह्मण रूप यजुर्वेद कहतेहैं, जिसमें यज्ञ गीत उपगानादिका ऊँचे स्वरसे गानाहो उसेसामवेद कहतेहैं ॥

अथर्वाङ्गि रसोनाम ह्युपास्यो पासनात्मकः ।
इतिवेद चतुष्कन्तु ह्युद्दिष्टंच समासतः ॥ २७६ ॥

जिसमें उपासना (पूजा) और उपास्य (पूजाके योग्य) वर्णन हो उस को अथर्व और आङ्गिरा कहतेहैं ये संक्षेप से चारोंवेद कहेगये इनप्रमाणोंसे ब्राह्मण ग्रंथभी वेदसिद्ध होचुके ॥

इति समाप्त.

ओ३म्

शास्त्रार्थ फ़ीरोजाबाद

जोकि

आर्य्यसमाज फ़ीरोजाबाद और जैन-

धर्मवालों से

श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर

और अवधदेश की

आज्ञानुसार हुआ

वैदिकयन्त्रालय

अजमेर

में

मुद्रित हुआ

संवत् १९५५ सन् १८९८ ई०

छपी १०००

मूल्य प्रति पुस्तक ।)

ओ३म्

भूमिका

उस परब्रह्म परमात्मा को अनेकशः धन्यवाद देना चाहिये जिस की प्रेरणा और परमकृपा से सब मनुष्य अपने २ कर्त्तव्य धर्मों में प्रवृत्त होते हैं उस परमात्मा ने अपनी परमदयालुता से सब प्राणियों के हितार्थ उस सर्वोत्तम विद्या का उपदेश किया कि जिस से संसार और परमार्थ का सुख सिद्ध हो। और परमेश्वर वही हो सकता है जिस के ऊपर कोई न हो और उस की आज्ञा भी सब के लिये एक सी होनी चाहिये यदि किसी समुदाय को अन्य उपदेश दे तथा किसी को भिन्न आज्ञा देवे तो समझिये कि उन दो समुदायों में विरोध कराने वाला ईश्वर ही हो जावे फिर ऐसे को ईश्वर मानना सिद्ध न हो सकेगा इस लिये ईश्वर वही है जो सब के लिये एक हो और उस का उपदेश वा आज्ञा भी सब के लिये एकसी होवे। प्रयोजन यह है कि संसार में परस्पर विरुद्ध अनेक मत जो प्रवृत्त हैं उन सब का मूल ईश्वर नहीं है किन्तु मनुष्य लोगों की ओर से है। उन मतों में जो २ बातें सब की एक सी मिलती हैं वे सब ईश्वरीय विद्या वेद से बहा २ गई हैं। जैसे ईश्वर को प्रायः मानते हैं और बहुधा ईश्वर के गुण कर्मस्वभावों को भी एक प्रकार से मानते हैं वे सब ठीक हैं और जो २ ईश्वर विषय में भी परस्पर विरुद्ध गुणादि मानते हैं वे सब बीच के बनावटी हैं। जो लोग नास्तिक समझे जाते हैं वे भी किसी सिद्ध पुरुष को सर्वज्ञादिगुणविशिष्ट अपना इष्टदेव मानते हैं पर उस को अनादि सनातन सिद्ध सर्वशक्तिमान् सृष्टिकर्त्ता नहीं मानते। इस मन्तव्य में यह विरोध आता है कि जो अनादि न होगा और बीच में सिद्ध हो जाय गा तो वह अपने उत्पन्न होने से पहिले का हाल नहीं जान सकता क्योंकि पिता के जन्म का दर्शन पुत्र को होना कदापि सम्भव नहीं है। जब ऐसा है तो उस को सर्वज्ञ मानना कदापि ठीक नहीं है। इस अनेक प्रकार के मतान्तर का फैलना मनुष्यों की अविद्या से होता है पर इस सृष्टि में जो २ सर्वज्ञहितकारी विद्वान् होते हैं वे प्रायः यही यत्न करते हैं कि ईश्वरीय व्यवस्थानुसार सब का मन्तव्य ठीक २ हो जावे परस्पर का वैरविरोध मिट कर शुद्ध वैदिकधर्म की सर्वत्र प्रवृत्ति होवे। इसी के अनुसार श्रीमत् दयानन्दसरस्वती जी महाराज ने भी प्रय-

त्न किया कि सब मतों का वैर विरोध मिटा के एक वैदिकमत को सब मानें पर मतवादी लोग ऐसे पक्षपात में ग्रस्त हो रहे हैं कि आर्य लोग आंख से देखते हैं तो हम नाक से देखने लगें जब से श्रीमद्दुक्तस्वामी जी ने वैदिक आर्यधर्म की उत्तमता का उपदेश किया है तब से अनेक मतवादियों ने (अपनी बनावटी लीला को कटते देखकर) जहां तहां शास्त्रार्थ करने का प्रारम्भ किया परन्तु वे लोग शास्त्रार्थ करने में यदि विचारपूर्वक पक्षपात छोड़ के केवल सत्यासत्य के निर्णय के लिये प्रवृत्त हों तब तो अवश्य अच्छा फल होवे परन्तु उन लोगों की दृष्टि यह रहती है कि हमारे पक्ष की मूर्खमण्डली (जिस से हमारा सब धनादि का काम निकलता है) गड़बड़ा कर हमारे फन्दे से न निकल जावे इस लिये शास्त्रार्थ का हल्ला करके अपना विजय सब को प्रगट कर देवेंगे। आजकल अनेक स्थलों में शास्त्रार्थ होते हैं पर उन से ऐसा कोई पूर्णलाभ नहीं होता कि जो अनेक सत्पुरुषों को सत्यासत्य मालूम हो जावे तथापि बुद्धिमान् लोग उस विवाद में यथोचित बलाबल समझ ही लेते हैं इस से वैदिकधर्म की उन्नति शनैः २ होती ही जाती है॥

ज़िला आगरा में एक फ़ीरोज़ाबाद नामक कस्बा है वहां जैनियों का तीर्थ है प्रतिवर्ष चैत्र में मेला होता है यह प्रसिद्ध है कि जिन नगरों में जैनी आदि की पोपलीला के मुख्यस्थान हैं वहां आर्य्यसमाज की उन्नति वा स्थिति होना कठिन होता है इसी के अनुसार नगर फ़ीरोज़ाबाद में भी आर्य्यसमाज का आरम्भ होना जैनियों को महाअनिष्टकारी हुआ उन्हों ने समाज तोड़ने के कई एक उपाय किये दो एक वार समाज में अपना आदमी भेजा कि हम मतविषय में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं समाज से पत्रद्वारा उत्तर दिया गया कि हम भी शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध हैं इस प्रकार की बातें आर्य्यसमाज फीरोज़ाबाद और उस नगर के जैनियों में हो ही रही थीं कि इतने में सनातन आर्य्यधर्मोपदेशक श्रीस्वामिभास्करानन्दसरस्वती जी संवत् १९४४ फाल्गुन मास में इस फ़ीरोज़ाबाद नगर में पधारे और सनातनधर्म की वृद्धि पर व्याख्यान दिया। इस पर इसी उक्त नगर के रईस जैन धर्मावलम्बी सेठ फूलचन्द जी ने कहा कि मत विषय पर वार्त्ता होनी चाहिये जिस का मत ठीक और सनातन निकले द्वितीय पक्ष वाला उसी का ग्रहण करें (स्वा॰ भा॰) जी के साथ फूलचन्द ने और उक्त स्वामी जी ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि जिस का पक्ष गिर जावे वह द्वितीय पक्ष को स्वीकार करे। तब स्वा॰ भा॰ जी ने कहा कि तुम्हारी ओर से जो कोई

शास्त्रार्थ करने वाला हो उस को बुलाओ इस पर सेठ फूलचन्द जी ने पं० पन्नालाल जैनधर्मी को बुलाया वे किसी विशेष कारण से न आये तब यह बात निश्चित हुई कि प्रथम चैत्रसुदि ३ से ८ तक मतविषय पर आर्य और जैनियों का शास्त्रार्थ हो। इस बात का लेख भी समाचार पत्रों में छप गया था और यह बात सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रकट हो गई दोनों पक्ष वालों ने अपने २ पक्ष के पण्डितों को बुलाना प्रारम्भ किया। आर्य्यों की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित चैत्रसुदि द्वितीया तक आगए परन्तु जैनपक्ष के पण्डित द्वितीया को नहीं आए आर्य्यों की ओर से द्वितीया के दिन जब पण्डित लोग आ गये तब सर्व सम्मति के अनुसार पं० गंगाधर जी उपदेशक आर्य्यसमाज जसवन्त नगर ने सेठ फूलचन्द जी से जाकर कहा कि शास्त्रार्थ कल तृतीया से प्रारम्भ होना चाहिये जैसा कि सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है इस लिये (पहिले से) आज ही शास्त्रार्थ के नियम और विषय नियत हो जाने चाहियें जिस से शास्त्रार्थ होते समय कालात्यय न हो इस पर उक्त सेठ जी ने उत्तर दिया कि हमारे पण्डित लोग तृतीया को आजावेंगे उसी समय सब नियमादि हो जावेंगे। जब जैन पण्डित द्वितीया की रात को आगये तो उसी समय में समाज के मन्त्री और उक्त पं० गंगाधर जी ने फिर जाकर सेठ जी से कहा कि शास्त्रार्थ के नियम बँधजाने चाहियें तथा प्रबन्धकर्त्ता और सभापति भी नियत हो जाने चाहियें जिस से शास्त्रार्थ के समय में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो तब उन्हों ने यह कहा कि ये सब बातें सभा में इकट्ठे होकर कर लेवेंगे। इस पर बहुत कहने सुनने से दोनों पक्ष की ओर से दो २ प्रबन्धकर्त्ता नियत किये गये आर्य्यों की ओर से सभापति आर्य्यसमाज फिरोज़ाबाद श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापति जी और पण्डित गंगाधरजी और जैनियों की ओर से लाला मञ्जूलाल साहब तथा लाला प्यारेलाल साहब नियत हुए फिर एक पंचम पुरुष सरपंच सभापति के लिये कहा गया वह पुरुष सरकारी ओहदेदार वकील आदि हो वा शहर का कोई प्रतिष्ठित रईस हो वा कोई ज़मीदार हो चाहे किसी मज़हब का क्यों न हो उस को दोनों पक्ष वाले निष्पक्षपाती धर्मात्मा समझ के स्वीकार करें। वह सभापति शास्त्रार्थ के नियम और विषयों पर दोनों पक्ष के शास्त्रार्थ कर्त्ताओं के हस्ताक्षर करा अपने पास रक्खे जो कोई नियम वा विषय से चलायमान हो उस को यथोचित रोके। इस पर सेठ फूलचन्द जी ने कहा कि सभापति और नियमादि सब प्रातःकाल नियत कर लिये जावेंगे और शास्त्रार्थ का समय भी उसी समय नियत कर दिया

जायगा । मंत्री और पं० गंगाधर जी सब को धन्यवाद देकर अपने स्थान को चले आये और आये हुए आर्य पं० जनों से निवेदन किया कि उन्हों ने प्रात काल शास्त्रार्थ के नियम पंच और विषय स्थिर करने के लिये कहा है सबकी सम्मति हुई कि प्रातः काल ही सही । तब प्रातः काल सेठ जी साहब ने रात्रि की बातों पर कुछ ध्यान और प्रबन्ध न किया । अर्थात् ऐसा भुला दिया कि जानो स्वप्न हुआ था प्रातःकाल और का और ही ठाठ रचमारा कि एक पत्र संस्कृत का (जिसमें किसी के हस्ताक्षर भी नहीं थे) लिख भेजा । इस पर मंत्री ने एक पत्र उर्दू जबान में लिखा कि आप कृपाकर यह लिख भेजिये कि यह पत्र आप का ही है ? । इसपर सेठ जी साहब के अनुयायी परिडत आदि बहुत लाल ताते हुए और कहा कि हम को म्लेच्छभाषा क्यों लिख भेजी इसपर मंत्री और पं० गंगाधर जी त्रिपाठी पुनः सेठजी के पास गये और कहा कि आपने पञ्चम प्रबन्धकर्त्ता पुरुष और नियमों का कुछ प्रबन्ध अभीतक न किया तब उन्हों ने उस पत्र पर पं० छेदालाल के हस्ताक्षर करा दिये और उत्तर दिया कि नियम और पंचममनुष्य का सब निश्चय पत्रों से हो जायगा आप पत्र का उत्तर दीजिये मन्त्री ने फिर भी निवेदन किया कि ऐसी बातों के निश्चयार्थ पत्रों की लिखा पढ़ी करने की आवश्यकता नहीं किन्तु दोनों पक्ष के भद्रपुरुष मिलकर मकान नियम और जिन विषयों पर शास्त्रार्थ हो निश्चय कर लेवें उन्हों ने मेरे कथन को सुना न सुना कर यही जवाब दिया कि आप पत्र का उत्तर दीजिये मंत्री ने कहा बहुत अच्छा परन्तु यह काम इस रीति से कदापि अच्छा न होगा मंत्री ने अपनी परिडतमराडली को वह उक्त संस्कृत का पत्र हस्ताक्षर कराया हुआ उत्तर देने को दिया इस पत्र के उत्तर की शीघ्रता करने में उन का अभिप्राय यह था कि हमने जो अपनी ओर से दाम देकर परिडतों को भाड़े का टट्टू बनाया है आर्य्य लोग इस संस्कृत के पत्र का उत्तर नहीं दे सकते हैं इसलिये मिलकर प्रबन्ध करना चाहते हैं और जैनियों का मुख्य भीतरी आशय यह था कि इस प्रकार पत्र भेजने करने में ही कुछ समय व्यतीत हो जबतक कोई और कारण खड़ा हो जायगा तो शास्त्रार्थ होना बचा रहे और आर्य्यों का अभिप्राय था कि साधारण बातों के लिये पत्र व्यवहार से कालक्षेप न हो और मुख्य शास्त्रार्थ का आरम्भ शीघ्र होवे ।

वह जैनियों का प्रथम संस्कृत पत्र यह है

यथा (श्रीः)

श्रीमदार्य्यसमाजसभ्यैः फिरोजाबादनगरस्थजैनधर्मिकृतनत्युत्तरमदोऽवगन्तव्यम् ।

शराब्ध्यङ्केन्दुद्वितीयप्रथमचैत्रशुक्लपक्षगुर्वन्वितनृतीयायां शास्त्रार्थो भविष्यतीति तत्र २ भवद्भिर्लिखितमुद्रितं च अतस्स पाङ्क्तघण्टाध्वनितः पश्चोऽधिघण्टाध्वनितावध्य शैव कर्त्तव्यः परन्तु शास्त्रार्थपदशब्दस्य शास्त्रीयवाक्यतात्पर्य्यावबोधनिर्णायकतया शास्त्राणां संस्कृतरूपत्वेन च परस्परसंस्कृतालापपूर्वक एव शास्त्रार्थः कर्त्तव्य इत्यस्मदीयेच्छा—शास्त्रार्थानन्तरं शास्त्रार्थविषयः संस्कृते भाषायां च जगद्विदित्यवेयः । शास्त्रार्थापेक्षितजयाजयनिर्णेतृमध्यस्थविवेचनं समक्षतः परस्पराभिलाषातो वानुष्ठेयः—एतावतैवालमल्पाक्षरतोऽप्यभिप्रायावगन्तृषु ।

संवत् १९४५ प्रथम चैत्रशुक्ल ३ गुरुवारे

भवत्स्नेहिनः फीरोजाबाद
स्था जैनधर्मावलम्बिनः
नियतसमयात्पूर्वं पत्रोत्तरा
भिलाषिणश्च—ह: छेदालालजैन

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यसमाज के सभ्यों को फीरोजाबाद नगरस्थजैनधर्मवालों ने किये नमस्कार के पश्चात् यह जानना चाहिये कि संवत् १९४५ के प्रथमचैत्र शुक्लपक्ष तृतीया बृहस्पतिवार को शास्त्रार्थ होगा। इस प्रकार उन २ शहर आदि में आप लोगों ने कहा और छपाया है इस से वह शास्त्रार्थ १० बजे से ४ बजे तक आज ही कर लेना चाहिये परन्तु शास्त्रार्थपद का जो अभिप्राय है वह शास्त्रसम्बन्धी वाक्यों से निकले तात्पर्य्य के बोध का निश्चय कराने वाला होने और शास्त्रों के संस्कृत रूप होने से आपस में संस्कृतभाषण पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहिये यह हमारी इच्छा है शास्त्रार्थ के पश्चात् उस का विषय संस्कृत में और भाषा में अनुवाद करा के जगत् को विदित करना चाहिये जय पराजय का निश्चय करने वाला एक मध्यस्थ विद्वान् शास्त्रार्थ में अपेक्षित है उस का विवेचन सामने मिलकर वा परस्पर की इच्छा से होना चाहिये। इस थोड़े ही लेख से भी अभिप्राय जान ने वालों में उत्तम ज्ञाताओं में समाप्ति है।

समीक्षा—सब महाशयों को ध्यान रखना चाहिये कि पूर्वोक्त जैन भाइयों का संस्कृत पत्र कैसा है इस में शब्द अर्थ और सम्बन्ध की कहां २ अशुद्धि हैं सो यह पत्र हमारे भ्रातृवर्गस्थ पं० जियालाल तथा पं० मिहिरचन्द्र जी की सहायता से लिखा हुआ है क्योंकि इस का पूर्ण अनुमान इस से हुआ कि जैनों के पं० छेदालालादि ने जो पत्र सभा में सब के समक्ष लिखे (जिन में मिहरचन्द्रादि की सहायता नहीं ले सके) हैं उन में इस से बहुत अधिक अशुद्धियां हैं। अर्थरूप अशुद्धियां तो

उन के भाषार्थ से ज्ञात हो जावेंगी (शराब्ध्यङ्के द्वन्दीय) यहां (द्विन्द्र) ऐसा चाहिये अस्तु छोटी २ बातों पर ध्यान न दे कर बड़ी अशुद्धि देखिये (मध्यस्थ विवेचनं ० ० ० वा नुष्ठेयः) विवेचनं नपुंसक लिङ्ग का विशेषण अनुष्ठेयः पुंलिङ्ग के साथ किया है संस्कृतज्ञ लोगों के सामने यह अशुद्धि छोटी नहीं है । इस से यह अनुमान होता है यदि धनादि के लोभ वश होकर नास्तिक पक्ष की सहायता न करते तो पं० जियालालादि से ऐसी अशुद्धि होनी सम्भव न थी ईश्वरविमुखों को सहायता देने से इन पर अन्तर्यामी ईश्वर की अप्रसन्नता हुई जिस से उन की बुद्धि स्वस्थ न रही। आस्तिक जन अपने सब काम ईश्वर की सहायता से करते हैं ॥ इस उक्त संस्कृत पत्र के उत्तर में आर्य्यसमाज का संस्कृत पत्र ही द्वारा उत्तर—

ओ३म्

श्रीमज्जैनधर्मावलम्बिषु

भवतां पत्रं समागतं रात्रौ यन्निर्णीतं तस्मिन् विषये किमपि न लिखितं, शास्त्रार्थप्रबन्धकर्त्तारः पञ्च सज्जनाः पूर्वं नियोजनीयाः पश्चात्स्थानं निर्णेतव्यं यत्र शास्त्रार्थः स्यादिति । ततो येर्नियमैः शास्त्रार्थः स्यात्तेऽपि निश्चेतव्याः । यत्र २ विषये शास्त्रार्थेन भवितव्यं सोऽपि लेख्य एव ।

संवत् १९४५ चैत्रशु० ३ हस्ताक्षराणि गंगारामवर्म्मणः

फीरोजाबादस्थार्य्यसमाजाशास्यस्य

भाषार्थ—श्रीमान जैनधर्मावलम्बियोग्य-पत्र आपका आया रात को जो निश्चय हुआ था उस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा । पहिले शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता पांच सज्जन पुरुष नियुक्त करने चाहियें इस के पश्चात् जहां शास्त्रार्थ हो उस स्थान का निश्चय करना चाहिये इस के अनन्तर जिन नियमों के अनुकूल शास्त्रार्थ हो उनका निश्चय करना योग्य है जिस २ विषय में शास्त्रार्थ हो वह भी लिखना चाहिये ।

इस पत्र के जाने पर जैनियों का द्वितीय पत्र जो संस्कृत में आया वह यह है—

श्रीमदार्यमतानुयायिनः

भवदीरितं पत्रमुपलब्धम्

शास्त्रार्थसमयः संस्कृतएव भविष्यतीति नियमः । मध्यस्थभवनप्रकारश्च पूर्वपत्रएव लिखितः मन्नूलालप्यारेलालौ प्रबन्धकर्त्तारौ जैनपाठशालास्थानं च हस्ताक्षराणिकारयितुमागतेभ्यो गंगारामवर्म्मभ्योऽवर्णि विषयनिर्णयश्च शास्त्रार्थ-

काले भविष्यति यतो वयं यूयञ्च न दूरस्थाः परन्तु समयनियममध्यस्थानांलि-खितानामप्युत्तरं भवद्भिर्नालेखि । शास्त्रार्थलिखितसमयमतीत्यपत्रोत्तरप्रदाने किं कारणम् ।

संवत् १९४५ १२ बजे दिन के ह० छेदालालजैनधर्मिणः
प्र०चै० शु० ३ बृ०

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यमत के अनुयायियो ! आपका भेजा पत्र मिला शास्त्रार्थ का समय वही होगा जो हम पूर्व संस्कृत में लिख चुके हैं और मध्यस्थ होने का प्रकार भी पूर्व पत्र में लिख चुके हैं । हमारी ओर से मंजूलाल प्यारेलाल प्रबन्धकर्ता होंगे । शास्त्रार्थ का स्थान जैन पाठशाला होना चाहिये सो हस्ताक्षर कराने को आगे गङ्गाराम वर्मा से कह दियाथा । विषय का निर्णय शास्त्रार्थ होने के समय हो जायगा क्योंकि हम और तुम दोनों दूर नहीं हैं । परन्तु समय नियम और मध्यस्थ विषयक उत्तर आपने नहीं लिखा । शास्त्रार्थ का समय जो १० बजे का लिखा था उस के पश्चात् उत्तर देने में क्या कारण है ? ॥

इस पर आर्य्य समाज की ओर से उत्तर (संस्कृत ही में)

ओ३म्

मावन्मारलिक्क्षान्तसदसद्दृग्लालब्धगरिष्ठवरिष्ठाः

अत्रभवतां पत्रमानुद्गितम् । श्रुतार्थानेहाः पूर्वभाविनियमेनेतरेतरस्वीकृतानन्तरं वादिप्रतिवादिभ्यां मध्यस्थाननने चोरीकर्त्तव्यः जयाजयनिर्णेता कश्चिदपि भवितुं नार्हति कि कस्यचित्सार्वभौमसर्वपरीक्षकाधिगतयाथातथ्यार्थस्य पक्षद्वयविवेचनसामर्थ्याधिष्ठितत्वाभावात् । वादिप्रतिवादिनोर्लेखनद्वारास्पष्टीकृतो विषयएव जयाजयसूचको भविष्यतीति मन्यध्वम् । यच्चोक्तं शास्त्रार्थकालएव विषयो निर्णेष्यति तन्न कुतः सति कुड्ये चित्रं भवतीतिवत् पूर्वमेव विषयो निर्णेतव्यः । यच्चोलिखितं शास्त्रार्थसमयमतीत्योत्तरप्रदाने किं कारणमिति तत्त्वस्माभिरङ्गीकृतमन्तरेणात्ययनं वक्तुमशक्यम् ॥

प्र० चै० शु० ३ सं० ४५ ह० गङ्गारामस्य

भाषार्थ—श्रीमान् सहनशील सत्यासत्य को प्राप्त होने वाले महाजनों में श्रेष्ठ जैनधर्मावलम्बियो !

आप का पत्र आया—शास्त्रार्थ का समय पूर्व होने वाले नियम परस्पर स्वीकृत

हो जाने के पश्चात् दोनों पक्षवालों की सम्मति से स्वीकार करना चाहिये जय पराजय का निश्चय कर्त्ता कोई निज मनुष्य नहीं हो सकता। कोई सब पृथिवी पर सर्वोपरि शास्त्री सत्य वक्ता पक्षपात रहित यथार्थभाव का ज्ञाता दोनों पक्ष का विवेचन करने में समर्थ अधिष्ठाता हो वह मध्यस्थ हो सके सो सर्वगुणाकर पुरुष का मिलना प्रायः असम्भव होने से मध्यस्थ होना आधुनिक समय पर दुर्लभ है इस लिये वादि प्रतिवादि के लेखद्वारा स्पष्ट किया हुआ विषय ही जय पराजय का सूचक हो जायगा अर्थात् उस लेख से अपनी २ बुद्धि के अनुसार दोनों पक्ष में बलाबल समझ लेंगे। और जो आपने कहा कि शास्त्रार्थ होते समय विषय का निश्चय करलेंगे सो मेरी अल्प बुद्धि से ठीक नहीं क्योंकि जबतक भित्ति (दिवार) न बन जावे उसपर चित्र विचित्र चिन्ह धरना बन नहीं सकता इसी प्रकार पहिले विषय का निश्चय कर लिया जाय तब उस पर शास्त्रार्थ का आरम्भ हो सक्ता है। और जो लिखा कि शास्त्रार्थ का समय होजाने बाद उत्तर देने में क्या कारण है सो जब केवल अपने पक्ष की सम्मति से तुम लोगों ने नियत किया और हमलोगों की उस पर कुछ सम्मति न हुई तो (इक तर्फी डिगरी हुई) हमारा पत्रोत्तर देना काल व्यतीत कर हुआ यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है।

इस पर जैनियों का जो तृतीय पत्र आया वह यह है कि ॥

श्रीमदार्यमतानुसारिणः

द्वितीयपत्रङ् घण्टात्रयकालात्पश्चादुपलब्धम्

भवद्भिर्जयपराजयनिर्णेतृमध्यस्थासम्भवोऽभाणि—लेखद्वारा जयपराजयस्पष्टताऽङ्गीकृता शास्त्रार्थसमयात्पूर्वम्विषयनिर्णयश्चापेक्ष्यते शास्त्रार्थस्थानसमयसंस्कृतभाषाशास्त्रार्थविषयेकिञ्चिदपि नाऽभाणि—यदि विषयनिर्णयोत्तरमेव शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरा मुद्रापणाङ्किंविचार्य्याकारि मध्यस्थासम्भवेशास्त्रार्थासम्भवः। लेखतः शास्त्रार्थस्य वादिप्रतिवादिनोर्विदेशस्थत्वेऽपि सम्भवेऽत्र तत्तत्समाजमण्डपादीनां सङ्गमकृतेः किं प्रयोजनम्। तथापि यदि शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि सप्तघण्टाध्वनिमारभ्यदशघण्टाध्वनिपर्यन्तं जैनपाठशालास्थान आगत्य कर्त्तव्यः विषयोऽप्येतत्पत्रोत्तरे भवद्भिरेव लेख्यः—नोचेद्लब्धा समयात्ययेन—

सं० १९४५ प्र० चै० शु० ३ व ४ बजे   ह० छेदालालजैनधर्मिणः।

भावार्थ—श्रीमान् आर्य्य मतानुयायियो ! आप का दूसरा पत्र तीन घण्टा में मिला आपने जयपराजय के निश्चयकर्त्ता मध्यस्थ का होना असम्भव कहा और लेखद्वारा जयपराजयस्पष्टता स्वीकार की, और शास्त्रार्थ होने से पहिले विषय का निर्णय चाहते हो ! शास्त्रार्थ का स्थान समय तथा संस्कृत वा भाषा में होने के विषय में कुछ नहीं कहा जो विषय का निश्चय होने पश्चात् ही शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो समाचार पत्रों में विषय का निर्णय किये विना क्या विचार के छपाया था (हमारा विचार है कि) मध्यस्थ का होना असम्भव है तो शास्त्रार्थ होना भी असम्भव है लेखद्वारा शास्त्रार्थ तो वादिप्रतिवादी के विदेशस्थ होने में भी हो जाना सम्भव है । फिर उस २ समाज के मन्त्री आदि के यहां एकत्र करने का क्या प्रयोजन था तथापि यदि शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो ७ बजे से १० बजे तक जैनपाठशाला स्थान में आकर करना चाहिये । शास्त्रार्थ का विषय भी इस पत्र के उत्तर में आप ही लिखिये और यह न हो तो व्यर्थ समय न खोना चाहिये अर्थात् शास्त्रार्थ का नाम भी न लेना चाहिये ॥

विशेष—सब महाशयों को ध्यान देना चाहिये कि हमारे लेख में और इस के लेख में क्या भेद है । हमने लिखा था कि दोनों पक्ष की सम्मति से पहिले नियम स्थिर हो जावें फिर शास्त्रार्थ के समयादि का विचार किया जावे सो नियमों के लिये तो कुछ उत्तर न दिया इस का कारण एक तो यह है कि जैनी लोग उस पत्र के अभिप्राय को यथावत् समझे ही नहीं और कदाचित् कुछ समझे भी हों तो शास्त्रार्थ करने से डरते हैं और बखेड़ा करके पीछा छुड़ाया चाहते हैं । शास्त्रार्थ का विषय समाचार पत्रों में छपाया तो उस का अभिप्राय यह कोई सिद्ध नहीं कर सकता कि विना ही नियम और विषय के शास्त्रार्थ हो जायगा । ऐसा हो तब तो विना कारण के भी कार्य्य हो जाया करे जब कोई कहे कि मैं अमुक समय भोजन बनाऊंगा तो उस पर ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते कि भोजन बनाने की प्रतिज्ञा के समय यह क्यों नहीं कहा कि मैं आटा से भोजन बनाऊंगा । इस जैनियों के पत्र में कई अशुद्धि हैं जैसे अमाणि अभापि आदि अस्थान में प्रयुक्त हैं (पूर्वम्विषय) (किम्विचार्य) (दलम्वृथा) इत्यादि में परसवर्ण अनुस्वार को मकार लिखना सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि ओष्ठ्य बकार के परे परसवर्ण हो सकता है दन्त्योष्ठ्य के परे नहीं होता । इत्यादि अनेक २ अशुद्धियां हैं ॥

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से चतुर्थ उत्तर ॥

ओ३म्

श्रीमज्जैनमतावलम्बिषु

भवत्कपत्रमागतमालोच्येदमुत्तरमाविष्क्रियते शास्त्रार्थस्थानसमय-संस्कृतभाषाविषयकमुत्तरं प्राकृतभाषानिर्मितनियमेष्वाविष्कृतमस्माभिः । समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरेणैव शास्त्रार्थो भवितुमशक्य इत्यत्र किं बाधकं मन्यते भवद्भिः । शास्त्रार्थः सम्मुख एव स्यात्तस्य लेखनं तु सर्वसाधारणोपकारार्थं परिणामनिष्कर्षणार्थं च कर्त्तव्यमेव । समयश्च भवद्भिर्लिखित एव स्वीक्रियतेऽस्माभिरपि । यदि तत्र भवन्तो वास्तवेन शास्त्रार्थं चिकीर्षन्ति तर्हि मुहुर्मुहुः पत्रगमनागमनेन किमपि प्रयोजनं नास्ति किन्त्वस्मल्लिखितशास्त्रार्थविषयान्प्राकृतभाषानिर्मितनियमांश्च स्वीकुर्वन्तु यदि काचिद्विप्रतिपत्तिः स्यात्तदाभिमतविषयनियमांल्लिखित्वा प्रेरयन्तु । अद्य तु भवन्नियमितकाले शास्त्रार्थो भवितुमशक्यः । यतः कालादारभ्य सायं प्रातर्वा श्वो भविता स लेख्यो भवद्भिर्यतः पूर्वं वयमपि जानीयामेति शम् ॥

ह० गंगारामस्य ८॥ बजे

भाषार्थ-श्रीमान् जैनधर्मियों के समीप निवेदन---

आप का पत्र आया उस का उत्तर दिया जाता है-शास्त्रार्थ का स्थान समय और संस्कृत वा भाषा में होने के विषयक उत्तर भाषा में बनाये नियमों में हैं सो आप के पास भेजे जाते हैं । समाचार पत्रों में हम लोगों ने ऐसा कहां छपाया है कि विषय निश्चय किये विना शास्त्रार्थ होगा विषय का निश्चय हुए विना शास्त्रार्थ होना ही अशक्य है इस में क्या आप कुछ बाधक समझते हो ? । शास्त्रार्थ सम्मुख ही होना चाहिये उस का लिखा जाना सर्वसाधारण के उपकारार्थ और परिणाम निकालने के लिये है । आपने जो ७ बजे से १० बजे तक समय लिखा उस को हम लोग भी स्वीकार करते हैं ॥

यदि आप लोग वस्तुतः शास्त्रार्थ किया चाहते हो तो बार२ पत्रों के आने जाने से क्या प्रयोजन है ? । किन्तु हमारे लिखे शास्त्रार्थ के विषय और भाषा में बनाये नियमों को स्वीकार कीजिये यदि कुछ विरुद्ध समझो तो अपने अभिमत विषय और नियमों को लिख कर भेजो । आज तो आप के नियत किये समय में शास्त्रार्थ होना अशक्य है पर कल प्रातःकाल वा सायंकाल जब से जब तक होना चाहिये सो आप

लिखिये जिस से हम लोग भी पहिले से जान लें और उद्यत रहैं ।

इस उक्त पत्र के साथ शास्त्रार्थ के निम्न लिखत नियम और विषय जैनियों के पास भेजे गये थे

१—शास्त्रार्थ में पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता होने चाहियें दो २ उभय पक्ष की ओर से रहें जिन को अपने २ पक्ष वाले नियत करें एक प्रबन्धकर्त्ता सभापति मध्यस्थ हो जिस को दोनों पक्ष वाले सम्मति कर नियत करें ॥

२—शास्त्रार्थ किसी मध्यस्थ के स्थान में वा सरकारी स्थान में होवे अथवा अन्यत्र जिस को उभय पक्ष स्वीकार करें ॥

३—शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष के बराबर मनुष्य होवें किन्तु सर्वसाधारण मनुष्य न आने पावें ॥

४—दोनों पक्ष वाले शास्त्रार्थ का विषय आरम्भ से पहिले अपनी २ ओर से लिख के एक दूसरे के हस्ताक्षर कराकर सभापति के पास रक्खें ॥

५—सभा में एक बार में एक ही वादी वा प्रतिवादी बोले अन्य कोई किसी के बीच में न बोलने पावे ॥

६—प्रश्न के लिये जितना समय रहे उस से चौगुना समय उत्तर दाता को मिले

७—अपनी २ पक्ष की ओर से अधिक से अधिक पांच २ मनुष्य शास्त्रार्थ के लिये नियत करें

८—जो २ विषय शास्त्रार्थ के लिये नियत हो उस के विरुद्ध पक्ष पर कुछ भी विषय बीच में न छेड़ा जावे ॥

९—यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रति में लिखा जावे दो प्रति दोनों पक्ष की ओर से और एक सभापति की ओर से लिखी जावे । उन सब प्रतियों पर प्रश्न वा उत्तर दाता के तथा सभापति के हस्ताक्षर बीच २ होते जावें ॥

१०—शास्त्रार्थ दोनों पक्ष वालों की सम्मत्यनुसार संस्कृत में ही हो पर प्रश्न वा उत्तर लिखाने पश्चात् उस का आशय नागरी भाषा में अनुवाद कर सभा के सब मनुष्यों को सुना दिया जाया करे ॥

११—एक साथ में एक प्रश्न ही हो सकेगा उस पर उत्तर प्रत्युत्तर पांच बार वा दश बार से अधिक न होना चाहिये ॥

१२—संस्कृत की अशुद्धि शुद्धि पर कुछ विचार आपड़े तो जिस शास्त्र के अनुसार निश्चय किया जावे उस को प्रथम नियत कर लेव ॥

१३–शास्त्रार्थ जैन धर्मियों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो पर चार घण्टे बाद उठने पर किसी पक्ष का पराजय न समझा जावेगा अर्थात् प्रतिदिन चार घंटा से अधिक न होना चाहिये ॥

१४–उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डित लोग अपने २ मत को मानते अवश्य हों अर्थात् अन्यमतावलम्बिपुरुष अन्य की ओर से नियत न हो सकेगा ॥

१५–दोनों पक्ष वाले वादी प्रतिवादी प्रश्न वा उत्तर करने के लिये १० मिनट तक परस्पर सम्मति कर सकेंगे ॥

१६–यदि कोई अपने पक्ष के वादी प्रतिवादी को बदला चाहे तो सभापति की आज्ञा से बदल सकेगा। सभापति की आज्ञा बिना सभा में कोई अन्य मनुष्य बीच में न बोल सकेगा ॥

शास्त्रार्थविषयाः ॥

१—अनन्यकर्तृकायाः सृष्टेः कर्त्ता सनातन ईश्वरः कश्चिदस्ति न वा ॥

२—जीवः कोऽस्ति तस्य चेश्वरेण कः संबन्धः ॥

३—चतुर्विंशतिस्तीर्थंकराः केऽभूवन् किं च तेषां सामर्थ्यम् । कियत्परिमाणानि च तच्छरीराणि ॥

४—जीवरक्षा च क पर्यन्तं भवितुं शक्या ॥

५—रथयात्रा काऽस्ति किमर्थं च कर्त्तव्या ॥

६—अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं तत्त्वज्ञानं वेति ? ॥

१—भाषार्थ—जिस का एक सर्वोपरि से भिन्न कर्त्ता नहीं हो सकता ऐसी सृष्टि का कर्त्ता सनातन ईश्वर कोई है वा नहीं ? ॥

२—जीव कौन है और उसका ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है ? ॥

३—चौवीश तीर्थंकर कौन हुए, उन का क्या २ सामर्थ्य था ? । और कितने २ बड़े उन के शरीर थे ?

४—जीव रक्षा कहां तक हो सकती है ?

५—रथयात्रा क्या है और किस लिये करनी चाहिये ? ।

६—और को और समझना मिथ्या ज्ञान है वा तत्त्वज्ञान ?

इस पर जैनियों का जो पत्र आया वह यह है ॥

श्रीमदार्य्यमतानुयायिनः !

समक्षतो लेखनेन च प्रबन्धकर्त्रादिनिर्णयेऽपि युष्माभिरागताः शास्त्रार्थनियत-

समयद्वयात्ययनञ्च कृतम्-इदानीं दशघण्टा ध्वनिता अतो यूयं शास्त्रार्थङ्कर्तुम-समर्था इत्यनुमितमित्यलम्

संवत् १९४५ प्र० चै० शु० ३ वृ १० बजे   ह० छेदालालजैनधर्मिणः

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यमतानुयायियो ! सामने और लिखने द्वारा भी प्रबन्धकर्त्ता आदि का निश्चय हो जाने पर भी तुम नहीं आये शास्त्रार्थ के नियम किये दो समय भी टाल दिये अब दश बज गये इस से तुम लोग शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो यह अनुमान है ॥

विशेष—इस से पहिले जो पत्र भेजा उस के साथ शास्त्रार्थ के नियम और विषय लेकर मंत्री और श्रीचतुर्वेदी कमलापति जी सभापति सेठ फूलचन्द जी के पास इस अभिप्राय से गये कि पत्रों द्वारा नियमादि शीघ्र निश्चय होने कठिन हैं और ऐसा ही झगड़ा रहा तो कल ता० १६ को भी शास्त्रार्थ न हो सकेगा इस लिये सामने नियमों का निश्चय शीघ्र होकर कल से शास्त्रार्थ होने लगे। मंत्री ने सेठ जी से कहा कि आप इन नियमों और विषयों को देख सुन कर सम्मति कर लीजिये इस पर भी उन के सहकारी लोगों ने यही उत्तर दिया कि सब बातों का निश्चय पत्र द्वारा कीजिये। इस पर मंत्री आदि ने बहुत कुछ कहा पर उन्हों ने सिवाय लवड़धोंधों २ के प्रबन्ध की बात एक भी नहीं मानी इस के पश्चात्, मंत्री आदि चले आये और नियम जो ले गये थे उन को पत्र द्वारा भेजे उस का उन्हों ने कुछ उत्तर न दिया और एक पत्र (पूर्वोक्त) फिर लिख मारा जिस का हमारे पत्र से कुछ सम्बन्ध नहीं हमने लिखा उन्हों ने उत्तर कुछ और ही दिया (आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे) इस उक्त पत्र में लिखते हैं कि " प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय हो चुका तो तुम नहीं आये „ क्या हम लोग इन के नौकर हैं जो इन के बुलाने मात्र से इन के घर पर शास्त्रार्थ के लिये चले जाते और प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय कहां हो चुका था ? क्या मिथ्या लिखते लज्जा नहीं आई ? शास्त्रार्थ के मूल कारण नियमों पर तो अभी झगड़ा ही हो रहा है। बिना ही नियमों के शास्त्रार्थ का समय अपने मन माना लिख भेजा क्या तुम्हारा लिखा समय राजाज्ञा के तुल्य था जिस को हम निर्विवाद मान लेते (जो महाशय इस पर ध्यान देंगे उनको यथावत् ज्ञात हो जायगा कि जैन लोग बिना नियमों के शीघ्र हल्ला गुल्ला कर के अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे) इस के पश्चात् इस उक्त पत्र का आर्य्यों की ओर से उत्तर दिया गया—

श्रीमज्जैनमतानुयायिनः

पूर्वमप्यस्माभिर्लेखि नियमनिर्णयमन्तरा नैकान्ततस्तत्रभवन्तो वक्तुमर्हन्ति यन्नियतसमयद्वयमतिक्रान्तमिति यदि नियमपत्रं स्वीकृत्य तत्र हस्ताक्षराणि कृत्वा ब्रूयुस्तदा तु प्रमाणीकृतं स्यात्। यदि भवन्तः शास्त्रार्थं कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि सद्यो नियमान् स्वीकृत्य हस्ताक्षराणि कृत्वा प्रेरयन्तु वयं चेदानीमेव शास्त्रार्थं कर्त्तुं सन्नद्धाः। यदि नियमानन्तरेण कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि ज्ञायते न शास्त्रार्थं चिकीर्षन्तीति। अस्माभिश्च यत्पत्रं प्रेरितं तस्योत्तरं किमपि न दत्तं तदिदानीं सद्योदातव्यमिति।

हस्ताक्षराणि

प्र० चै० शु० ३ सं० १९४५ गङ्गाप्रसादवर्म्मणः फिरोज़ाबादस्थार्य्यसमाजामात्यस्य

भाषार्थ-पहिले भी हम ने लिखा था (कि सब से पहिले नियम स्थिर करना चाहिये तब समय नियत किया जावे) नियमों का निश्चय किये विना एक अपनी ओर से आप नहीं कह सकते कि तुमने दो समय टाल दिये ऐसे तो हम भी कह सकते है कि तुमने हमारे लिखे नियमों को टाला कुछ उत्तर नहीं दिया इस से तुम्हारा पराजय हुआ। यदि आप नियम पत्रों को स्वीकार कर हस्ताक्षर करके भेज देते तो हमारे न आने का उलहाना मान भी लिया जाता। यदि आप शास्त्रार्थ करना वस्तुतः अन्तःकरण से चाहते हैं तो शीघ्र नियमों को स्वीकार करके हस्ताक्षर कर भेजिये और हम लोग इसी समय शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। यदि आप नियमों के विना ही हल्ला गुल्ला किया चाहते हो तो ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ करने की इच्छा भीतर से नहीं है। हम लोगों ने जो पत्र भेजा था उस का उत्तर आप ने कुछ नहीं दिया सो उत्तर शीघ्र दीजिये।

यह उक्त पत्र जब भेजा गया तब इस पर जैनियों ने कुछ उत्तर नहीं दिया उन की ऐसी लीला देख कर सामाजिक पुरुषों ने वस्ती के भद्र पुरुषों को बुला कर सेठजी के पास भेजा कि यदि आप लोगों को शास्त्रार्थ करना है तो नियमों को स्वीकार कर लीजिये प्रयोजन यह था कि हम लोग जो नियम पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं उन को मध्यस्थ होकर देख लीजिये कि वे नियम दोनों पक्ष की ओर एकसा सम्बन्ध रखते हैं वा हमारा कुछ स्वार्थ है ? इस पर नागरिक मध्यस्थ लोगों ने हमारी उन की बातें सुनके और नियमादि देखकर सेठ फूलचन्द जी और अन्य जैनियों के पास जाकर कहा कि

आर्य्य लोग निष्पक्षपात होके नियम पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं आप लोग स्वीकार क्यों नहीं करते, इस पर जैन लोगों ने अनेक जगड्वाल की बातें कहीं जिस्से शास्त्रार्थ के होने की कोई आशा न जान पड़ी और उन नागरिक भद्र जनों को विश्वास हो गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हटते हैं। ऐसा हाल देख के उन लोगों ने आर्य्यसमाज की उपस्थित सभा में आके स्वयमेव उच्चस्वर से कहा कि हम को ठीक निश्चय हो गया कि आर्य्यों के सामने जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं कर सकते किन्तु टालाटूली करते हैं हम सब के सामने लिख सकते हैं कि आर्यों का जय और जैनों का पराजय हुआ। इस पर आर्य्यसमाज के लोगों ने उन सत्पुरुषों से एक पत्र लिखा के हस्ताक्षर करा लिये वह पत्र यह है:—

हम सत्य परमात्मा को जान कर कहते हैं कि मैं आर्यों की तरफ से जैनियों के पास गया मैने शास्त्रार्थ करने में जैनियों का इनकार पाया हस्ताक्षर लक्ष्मीचन्द गुप्त॥

ह० गुलजारी लाल

ह० रघुवर दयाल

और जितने आर्य्यजन एकत्रित हुए थे सब को विश्वास हो गयाकि अब शास्त्रार्थ नहीं होगा कल अपने २ घर चलेंगे! यह सब समाचार ता० १५ मार्च को हुआ इसी रात्रि के १२ बजे तक समाप्त हुआ सब लोग सो गये।

ता० १६ मार्च ८८ ई० को प्रातःकाल आर्य्य लोग नित्य कृत्य शौच संध्यादि करके आये तब तक शहर में हल्ला मच गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हट गये बहुतेरे लोगों ने तो जैन सेठ जी से जा २ कर कहा भी कि यह तो सहज में ही तुम पराजय करा बैठे तब तो सेठ जी को बड़ा विचार पड़ा इधर आर्य्य समाज की ओर से भी दो एक पुरुष गये और सेठ जी से कहा कि अब भी शास्त्रार्थ करावें तो ठीक २ निश्चय कीजिये नहीं तो हमारे पं० आज अपने २ स्थान को जावेंगे। इस पर सेठ जी ने कहा कि हमारे अनुमतिकर्त्ता मंजूलाल प्यारेलाल जी आ जावें तब सलाह करके उत्तर देवें पश्चात् सामाजिक जन चले आये इस के पश्चात् सेठ जी ने अपना उपहास जान शहर के दो एक मध्यस्थ पुरुष समाज में भेजे और उन्होंने कहा कि जैनी लोग शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और विशेष कर मध्यस्थ नागरिक लोगों की सम्मति हुई कि जैनियों की ओर से सेठ फूलचंद जी और आर्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्मा जी दोनों महाशय जैन पाठशाला में बैठ कर नियमोंको निश्चयकर लेवें और उन को दोनों पक्ष वाले स्वीकार करें जैन लोगों ने भी यह स्वीकार कर

लिया। सब की सम्मति से पं० भीमसेन शर्म्मा और चतुर्वेदी कमलापति जी सभापति जैन पाठशाला में गये और सेठ फूलचन्द जी वहां इसी लिये जाकर बैठे थे। वहां पहुंच कर दोनों की सम्मति से विशेष कर सेठ फूलचन्द जी की सम्मति से नियम जो पहिले लिखे हुए थे उन्हों को काट बढ़ा के ठीक किया और यह ठहरा कि इन नियमों की शुद्धप्रति कराली जावे सभा के आरम्भ में पांचो प्रबन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर भी हो जावें इस प्रकार बातें चीतें होते २ दश बज गये थे और बारह बजे से चार बजे तक शास्त्रार्थ ठहरा था इस लिये उसी समय नकल हो कर हस्ताक्षर नहीं हो सकते थे और शास्त्रार्थकर्त्ताओं को भोजन भी करने थे। पश्चात् उन नियमों की शुद्ध नकल कराई गई और सब ने भोजन किये तब तक शास्त्रार्थ का समय आ गया॥ मनुष्यों को शा० में जाने के लिये टिकट बँट गये थे टिकट सेठ जी की ओर से बांटे गये थे उन नियमों को लेकर ठीक बारह बजे दिन को आर्य्य लोग जैन पाठशाला में पहुंचे और जैन लोग भी आये कोतवाल साहब कितने ही यम दूतों के साथ प्रबन्धार्थ आये जब सब लोग यथावस्थित बैठ गये तब यह प्रस्ताव आर्य्यों की ओर से हुआ कि जो नियम पं० भीमसेन शर्मा और सेठ फूलचन्द जी ने नियत किये हैं वे सभा में सुना दिये जावें तब इन नियमों के अनुसार कार्य होवे इसपर सभा की आज्ञा हुई कि नियम सुना दिये जावें—वे नियम ये हैं।

(१) सभाप्रबन्ध के लिये पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता नियत हुए आर्य्यों की ओर से चौबे कमलापति जी और पं० गंगाधर त्रिपाठी जी जैनों की ओर से लाला मंजूलाल जी और लाला प्यारेलाल जी और उभय पक्ष की ओर से एक चौबे ज्वालाप्रसाद जी सभापति, इन पांचो महाशयों को निम्न लिखित नियमानुसार सभा का प्रबन्ध करना होगा।

(२) सभा में वे महाशय जांय गे कि जिन के पास टिकट होगा पर वे सभास्थ पुरुष दो सौ से अधिक न होंगे।

(३) प्रश्नोत्तर दोनों ओर से बराबर ही होने चाहियें प्रश्न के लिये पांच मिनट और उत्तर देने के लिये २० मिनट समय नियत किया है और जब तक एक प्रश्न पर पूरी वार्त्ता न हो जाय तब तक दूसरा विषय न छेड़ा जाय।

(४) उभय पक्ष की ओर से दो २ पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित हो कर वार्त्ता करें अर्थात् आर्य्यों की ओर से पं०देवदत्त जी और पं०भीमसेन जी और जैनों की ओर

से पं० छेदालाल जी और पं० पन्नालाल जी इन से भिन्न कोई न बोल सकेगा।

(५) यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जायगा दो प्रति उभय पक्ष की ओर से तीसरी सभापति की ओर से और इन तीनों प्रतियों पर उभय पक्ष के पं० और सभापति के हस्ताक्षर होने चाहियें।

(६) शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की सम्मत्यनुसार संस्कृत ही में होगा परन्तु उसी जगह संस्कृत का अनुवाद करके नागरी भाषा में सब को सुना देना चाहिये।

(७) शब्द की शुद्धाऽशुद्धि पर कुछ विशेष वार्त्ता वा विचार न किया जायगा सज्जन लोग छप जाने पर अपने आप ही जान लेंगे।

(८) उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता अपने २ ही मत के मानने वाले हों अर्थात् अन्य-मतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से न बोलें गे।

(९) उभय पक्ष वाले अपने२ वर्ग में १० मिनट से अधिक सम्मति न कर सकेंगे।

(१०) शास्त्रार्थ जैनों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो पर चार घंटे से अधिक प्रतिदिन न होगा समय की पूर्त्ति पर उठने में जयाजय न समझना चाहिये।

(११) ता० २० मार्च को शास्त्रार्थ बन्द रहेगा कदापि साहब कलेक्टर बहादुर आज्ञा दें तो हो सकेगा।

ये सब नियम सुनाये गये इस पर जैन लोगों ने अनेक शंका पैदा की और कहा कि ये नियम हमारे साथ नहीं नियत हुए इस प्रकार परस्पर बहुत से झगड़े होते२ छठे नियम पर अधिक विवाद हुआ इस का कारण यह था कि आर्य लोग कहते थे शास्त्रार्थ संस्कृत में हो और जैन लोग भाषा में होने का हठ करते थे। आर्यलोग संस्कृत में होने पर इस लिये बल देते थे कि जैन लोगों ने प्रथम ही पत्र में संस्कृत में होने की प्रतिज्ञा की थी उस समय जैनों ने समझा था कि हम अपनी ओर से पं० मिहिरचन्द और जियालाल (जिन को कुछ धन देकर लाये थे) से शास्त्रार्थ करावेंगे वस्तुतः जैनियों में कुछ भी संस्कृत विद्या का बल नहीं था परन्तु उन में (निरस्तपादपे देशे एरण्डोपि द्रुमायते) जैसे वृक्ष रहित देश में एरण्ड का वृक्ष भी बड़ा वृक्ष मालूम होता है वैसे छेदालाल पन्नालाल साधारण विद्यार्थियों के तुल्य कुछ २ संस्कृत जानते थे सो सेठ फूलचंद जी ने भी इन के ऊपर शास्त्रार्थ का आरम्भ नहीं किया था किन्तु पं० मिहिरचन्द और जियालाल (भाड़े के टट्टुओं) के भरोसे शास्त्रार्थ का बल बांधा था और इसी बल से संस्कृत में करने की प्रतिज्ञा लिखाई थी पर जब

नियम स्थिर किये गये तब यह निश्चय हो गया कि अन्य पक्ष का पं० अन्य की ओर से मुख्त्यार बन के शास्त्रार्थ न कर सकेगा अर्थात् जो २ पं० जिस २ की ओर से नियत हो वह उस मत को यथावत् मानता हो इस नियम से भाड़े के पण्डित तो निकल गये जब जैनियों का भाड़े का बल टूट गया तब संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इनकार करते थे और ऊपर से प्रसिद्ध करते थे कि सब लोग कुछ नहीं समझें गे इस से भाषा में होवे। इस का उत्तर आर्य लोग देते थे कि संस्कृत की भाषा करके सभा में समझा दी जाया करेगी और यह भी बल देते थे कि तुम लोगों ने प्रथम प्रतिज्ञा की थी इस लिये संस्कृत में ही होना चाहिये इस प्रकार नियमों पर झगड़ा होते२ जैनियों ने एक मध्यस्थ का झगड़ा छेड़ दिया इस पर दोनों ओर से बहुत विवाद होता रहा। जैनियों की ओर से पं० छेदालाल ने कहा कि स्वामी विशुद्धानन्द जी श्रीधर जी तथा जो २ पं० आर्य्य समाजी और जैनियों के मत में नहीं उन में से चाहे जो पं० मध्यस्थ कर लिये जावें जो शास्त्रार्थ लिखापढ़ी द्वारा हो सो उस के पास भेज दिया जावे जिस के पक्ष को वे अच्छा बतलावें उस का पक्ष ठीक समझा जावे। आर्य्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्मा ने कहा कि प्रथम ऐसा पुरुष मिलना ही दुर्लभ है कि जो सर्वथा निष्पक्ष और निर्लोभ हो कर सत्य कहे बहुधा पं० लोग थोड़े २ धन के लोभ से ईसाइयों तक को अपने मत के खण्डनविषयक पुस्तक बना देते हैं (जैसे पं० मिहिरचन्द्रादि यद्यपि जैन मत को मानते नहीं तथापि धनलोभ से नास्तिकों की ओर से वेद का खण्डन करने आये हैं) तो किस का विश्वास किया जावे ? और कदाचित् कोई निष्पक्ष पुरुष मिल भी जावे और वह धर्म पूर्वक किसी एक पक्ष का पराजय कह देवे तो क्या उस समुदाय के लोग सब उस पक्ष को छोड़ देवेंगे ? मेरी समझ में जैन लोग तो ऐसे हठीले हैं कि उन के तीर्थंकर पार्श्वनाथ साक्षात् आकर जैन पक्ष को पराजित कहें तो भी न मानें गे। अर्थात् इस मध्यस्थ के झगडे से यही प्रयोजन होगा कि हजार पांच सौ रुपये खर्च करके अपने पक्ष के विजय का डंका पं० रूप बाजीगरों से बजवा देंगे। इस पर बहुत काल तक विवाद होता रहा और शास्त्रार्थ का आरम्भ न हुआ। आर्य लोग कहते थे कि पहिले नियम भलेही मत मानों किन्तु अब पंचों की सम्मति से और नये नियम बना लिये जावें तथा मध्यस्थ कोई नहीं करना चाहिये तथा विना नियमों के हम शास्त्रार्थ न करें गे।

जैन लोगों का कथन था कि हम नियम एक भी न मानेंगे और मध्यस्थ कोई

अवश्य होवे । ऐसे होते २॥ अढाई घंटे बीत गये सभा के सब लोग व्याकुल हो गये और मालूम हुआ कि सभा उठना चाहती है तब कोतवाल साहब ने कहा कि आज जिस पक्ष के लोग (चाहे किसी कारण से) शास्त्रार्थ न करें गे उन्हीं का पराजय समझा जायगा । यद्यपि आर्य्यसामाजिक लोगों का विचार नहीं था कि बिना नियमों के ऊटपटांग शास्त्रार्थ किया जावे । (अनुमान से ज्ञात होता है कि जैनी लोगों ने यह सम्मति करली थी कि आर्य लोग बिना नियमों के शास्त्रार्थ नहीं करेंगे इस लिये हम नियमों को तोड़ देवें और कह देवें गे कि आर्य्य लोगों ने शास्त्रार्थ नहीं किया इससे उन का पराजय हो गया) तो भी अनिष्ट परिणाम देखकर विचार किया कि हम अब बिना ही नियमों के शास्त्रार्थ करेंगे । परन्तु कोतवाल साहब ने उर्दू में शास्त्रार्थकर्ता दोनों पक्ष के पण्डितों के नाम लिख लिये थे । इस के पश्चात् दोनों पक्ष वालों का विचार हुआ कि शास्त्रार्थ होना चाहिये तब (अहमहमिका) का झगड़ा हुआ कि पहिले कौन प्रश्न करे सभा सम्मति से यह निश्चय हो गया कि दोनों पक्ष वाले साथ ही अपना २ प्रश्न लिख के अपने २ प्रतिपक्षियों को देवें इस के अनुसार शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ ।

शास्त्रार्थ का प्रारम्भ प्रथम दिन ता० १६ मार्च सन् १८८८ ई० प्रथम पत्र जैनियों का ॥

प्रथम प्रश्न । भोविद्वज्जनवर्य्याः जगद्वृत्तिपदार्थानां प्रमेयत्वं सर्वसाधारणं ॥ प्रमेयसिद्धेः प्रमाणाधीनत्वेन ॥ प्रथमं प्रमाणनिर्णयोऽपेक्षितः अतः तत्स्वरूपं किं ॥ कति च भेदाः कश्च तद्विषयः किञ्च तत्फलं तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वेत्यस्माकम्प्रश्नः ॥

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

ह० पन्नालाल जैन मतानुयायिनः ।

भाषानुवाद—भो विद्वानों में श्रेष्ठ जनो ! जगत् में वर्त्तमान पदार्थों का प्रमेय होना सर्वसाधारण (मिहिरचन्दकृत भाषानुवाद "पदार्थों को प्रमेय मानते हैं" ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान विषयक कोई क्रिया संस्कृत में नहीं है पदार्थ शब्द षष्ठ्यन्त है उस को द्वितीयान्त करना ठीक नहीं केवल—अस्ति—सामान्य क्रिया का अध्याहार हो सकता है) और उस प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन होने से पहिले प्रमाण का निश्चय अपेक्षित है । इस लिये उस का स्वरूप क्या है । उस के भेद कितने हैं उस का विषय क्या है और उस प्रमाण का फल क्या है । उस का स्वतः प्रामाण्य वा परतः प्रामाण्य है यह हमारा प्रश्न है ॥

इस के साथ ही आर्यों की ओर से प्रथम विचारणीय प्रश्न दिये गये।

प्रथम पत्र आर्यों का

सुखमार्गान्वेषणार्थो सर्वस्य प्राणभृतः प्रवृत्तिस्तत्प्राप्तिर्जैनसम्प्रदायात्कथं संभवति। जिनशब्दस्य कः पदार्थो जैनशब्दस्य चानयोश्च कः सम्बन्धः। जिनशब्दवाच्यो यः कश्चिदभिमतोऽस्ति स नित्य आहोस्विदनित्यः। जिनजैनपदार्थयोर्लक्षणं स्वरूपं च वक्तव्यमिति। तत्पूजनं सफलं विपरीतं वा यदि सफलं तर्हि किं फलकम्॥

ह० भीमसेनशर्म्मणः

ह० देवदत्तशर्म्मणः

भाषानुवाद—सुख का मार्ग खोजने के लिये सब प्राणी प्रवृत्त हो रहे हैं उस सुख के मार्ग की प्राप्ति जैन संप्रदाय से कैसे हो सकती है। जिन और जैन शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है अर्थात् जिन जैन का वाच्यार्थ क्या है और जिन तथा जैन का परस्पर (पितापुत्रादि) क्या सम्बन्ध है। जिनशब्द वाच्य जो कोई पदार्थ माना है वह नित्य है वा अनित्य ? जिनजैन इन दोनों पदों और इन के वाच्य अर्थों के लक्षण और स्वरूप कहो। उस जिन का पूजन सफल है वा निष्फल ? यदि सफल है तो उस का क्या फल है ?।

विशेष—यह पत्र लिख कर जैनियों को दिया गया और इस से पहिला जैनियों का पत्र आर्यों के पास आया। सब महाशयों को विचारना चाहिये कि आर्य्यों के पत्र का जो उत्तर जैनियों ने दिया है वह आर्य्यों के प्रश्न से क्या सम्बन्ध रखता है ? और साथ ही इस पर भी ध्यान रक्खें कि जैनियों के पत्र का जो आर्य्यों ने उत्तर दिया है वह प्रश्न से कितना सम्बन्ध रखता है ?॥

आर्य्यों के प्रथम प्रश्न के उत्तर में जैनियों का दूसरा पत्र॥

मानाधीनामेयसिद्धिरिति न्यायेन युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्प्रथमं प्रमाणनिर्णयः आवश्यकः। तन्निर्णयाभावे मेयानां निर्णयो दुर्घटः अतएव ममोक्तपूर्वपक्षस्य आदौ परामर्शो युक्तः॥

ह० छेदालाल

ह० पंनालाल

भाषानुवाद—प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन है इस न्याय से तुम्हारे कहे (जिनजैनादि) पदार्थों के प्रमेयरूप होने से पहिले प्रमाण का निर्णय होना आवश्यक है क्योंकि प्रमाण निश्चय के विना प्रमेय का निश्चय होना दुर्घट है इस से हमारे कहे पूर्वपक्ष का पहिले विचार करना चाहिये। इस पत्र में (ममोक्तपूर्वपक्षस्य) यह बड़ी भारी अशुद्धि है विद्वानों को इन का पाण्डित्य अच्छे प्रकार ज्ञात हो जाय गा। इन पहिले दो पत्रों में बड़ी २ अशुद्धि कम हैं क्योंकि यह संस्कृत पण्डितों (मिहिरचन्द्रादि) ने पहिले ही लिखा दिया था कि तुम यह प्रश्न करना सो छेदालाल जैन ने सभा के बीच वह पर्चा निकाल के नकल कर दिया था और कुछ भूले तब मिहिरचन्द्र को पूछने लगे तब आर्य्यों ने कहा कि यह शास्त्रार्थ आर्य्यों और जैनियों का है यदि अन्य कोई पण्डित जैनियों को सहायता देवे तो उचित होगा कि प्रथम यज्ञोपवीत उतार के जैनी बन जावे। इस पर मिहिरचन्द्र चिड़ कर बोले कि मैं जैनियों की ओर नहीं किन्तु दोनों को पतित समझता हूं। परन्तु यह विचार न किया कि धर्मशास्त्र के अनुसार (संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्) वैदिकधर्म से पतित जैनियों के साथ वर्षों से आचरण करने वा उन का धान्य खाने से मैं भी पतित हो गया हूं। यदि धर्मशास्त्रों को विचारने और अपने को पतित समझ लेते तो क्यों दूसरों को पतित कहते?। एक चोर दूसरे चोरको चोर नहीं कह सकता। चोर चोर मौसियाते भाई होते हैं। इस से मिहिरचन्द्र का अभिप्राय यह था कि मैं किसी की ओर नहीं दोनों को पतित समझता हूं परन्तु रुपये की ओर हूं क्योंकि रुपया पतित नहीं है उसी से प्रयोजन है। अब आर्य्यों ने जैनियों के प्रथम पत्र का जोउत्तर दिया है उस को ध्यान देकर प्रश्न के अक्षरों से मिलाइये।

जैनियों के प्रथम पत्र के उत्तर में आर्य्यों का दूसरा पत्र ॥

अपदं न प्रयुञ्जीत इति शब्दशास्त्रनियमात्, अपदत्वं च विभक्तिरहितत्वं सुप्तिङन्तं पदमिति शासनात् प्रथमप्रश्न इति लेखोऽपभाषणम्। यदि जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासः। अस्य च प्रमाणविषयकप्रश्नस्य जगद्वृत्तिपदार्थान्तर्गतत्वाज्ज्ञेयत्वसिद्धिरिति ज्ञातत्वादङ्गीकृतमेव प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात्। अतश्च तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमे-

पत्ते सिद्धे व्यर्थएव । तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः, तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्त शर्मणः

भाषानुवाद— व्याकरण शास्त्र का यह नियम है कि जिस में विभक्ति नहीं ऐसे अपद शब्द का प्रयोग न करे पद उस को कहते हैं जिस के अन्त में सुप् और तिङ् हो इस कारण प्रथम प्रश्न, यह शब्द व्याकरण से विरुद्ध होने से "प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" के तुल्य लिखा गया है क्या इसी पाण्डित्य के आश्रय से जैनी लोग संस्कृत में शास्त्रार्थ करना चाहते थे ? । इस पर पं० मिहिरचन्द्र लिखते हैं "एक विसर्ग मात्र की अशुद्धि है" क्या व्याकरण में विसर्ग मात्र की अशुद्धि कम होती है ? । कोई पण्डित किसी विद्यार्थी से बोले कि हम तुम्हारी परीच्छा करें गे विद्यार्थी ने कहा—महाराज मेरी परीक्षा तो आप करें ही गे पर आप की परीक्षा परीच्छा शब्द से पहिले ही होगई वही वृत्तान्त पं० मिहिरचन्द्र का हुआ कि जिन को विसर्ग, व्यवहार, विषय आदि शब्दों में यह भी नहीं मालूम कि इन में कौन वकार लिखना चाहिये इस से इन की भी परीक्षा हो गई और सब को ज्ञात हो जावे गी । क्या इसी पाण्डित्य के भरोसे अपने को अर्थशास्त्रज्ञ होने का दम्भ करते हैं (अस्तु) यदि जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों को प्रमेयत्व है तो क्या जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों में प्रमाण नहीं समझा जावे गा ? जब जगत् के सब पदार्थों में प्रमाण भी एक पदार्थ होने से पदार्थत्व सामान्य से प्रमाण भी प्रमेय रूप में आगया तो उस के भी प्रमेय हो जाने से प्रमाण रहा ही नहीं फिर उस का प्रश्न करना कभी ठीक नहीं है । जब प्रमाण को साध्य पक्ष में लेकर उस को निर्णय किया चाहते हो तो उस के निर्णय करने में जो कुछ प्रमाण कहो गे वह सब साध्य पक्ष में आजाने से प्रमेय हो जायगा क्योंकि तुम सर्वसाधारण पदार्थों को प्रमेय कह चुके हो तो तुम्हारा प्रमाण विषयक प्रश्न भी सब पदार्थों के अन्तर्गत होने से जानने योग्य है । इस से तुम्हारा-प्रश्न जाना हुआ नहीं रहा अर्थात् तुम्हारे प्रश्न को यदि तुम सब पदार्थों में मानते हो तो विचारणीय पक्ष में आगया! यदि कहो कि हम को अपने प्रमाण विषयक प्रश्न में सन्देह नहीं तो अपने प्रश्न को प्रमाणरूप मान लेने से तुमने प्रमाण को निश्चित समझ लिया फिर प्रमाण में सन्देह न रहने से प्रमाण विषयक प्रश्न नहीं बनता । यदि तुम को प्रश्न में भी सन्देह होता तो प्रश्न ही न कर सकते अर्थात् संसार में जो कुछ व्यवहार होता

है वह सब प्रमाणपूर्वक है जब भोजन करते हैं तब भी नेत्रादि से निश्चय कर लेते हैं कि यह अन्न है इससे क्षुधा की निवृत्ति होकर सुख होगा इस लिये भोजन करें यदि सन्देह हो कि यह हमारे भोजन योग्य अन्न है वा नहीं तो भोजन करना भी न बने। मनुष्य जिस को नेत्रादि प्रमाणों से अपने सुख का साधन समझ लेता है उस को ग्रहण करता और जिस को दुःख का हेतु जानता है उस से सदा बचा करता है। इत्यादि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक होता है तो तुम्हारा प्रश्न भी प्रमाण पूर्वक होने से तुम ने प्रमाण को जान लिया फिर प्रमाण विषयक प्रश्न नहीं बन सकता। यद्यपि प्रश्न नहीं बनता तथापि उत्तर देते हैं कि पृथक् २ शास्त्रकारों की शैली के अनुसार प्रमाण के भेद दो, तीन, चार और आठ हैं। प्रमाण फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि है उस प्रमाण का निश्चय स्वतः उसी से और परतः अन्य से भी होता है॥

इस आर्य्यों के द्वितीय पत्र के उत्तर में

जैनियों का तीसरा पत्र

जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्। प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासरिति भवद्भिरपरामर्शत्वेनोल्लेखोयं कृतः कुतः प्रमाणस्य तु विषयीरूपत्वात् प्रमेयाणां विषयरूपत्वाच्च प्रमाणरूपत्वेन प्रमाणस्य न प्रमेयत्वं अन्यथा लक्षणस्यापि लक्ष्याक्रान्तत्वेन दूषणगणबाणप्रहारपातात् किञ्च प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् तद्विषयकःप्रश्नः सर्व साधारणप्रमेयत्वे सिद्धे व्यर्थएव। एतदप्ययुक्तं कुतः यदि अस्मत्स्वीकृतं मतं प्रमाणं तर्हि भवन्तोऽप्यङ्गीकुर्वन्तु नोचेत्समापातो विचारः सोपि प्रमाणाधीनः अतः प्रमाणविषयकः प्रश्नः सार्थिकः किञ्च तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा इदमप्यविशेषेण लेखनं कस्मिन्शास्त्रे इमे भेदाः केन प्रकारेण संहृताः अपि च प्रमाणविषयोनोक्तः किं तर्हि अस्ति वा नवेति स्पष्टतयोल्लेखनीयं। प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः इत्यनेनापि प्राप्तः प्रमाणनिर्णयः तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च इत्यनेनानैकांतको हेत्वाभासः निर्पेक्षतयोक्तत्वात्॥

ह० ठेकालालजैनधर्मिणः

ह० पंनालाल जैनमतानुयायिनः

भाषानुवाद—आप ने यह कहा कि जगत् में वर्त्तमान पदार्थों को साधारण रीति से प्रमेयत्व है तो प्रमाण भी सब में आगया इस से प्रमेय हुआ तो प्रमाण विषयक प्र-

श्न प्रमेयान्तर्गत होने से साध्यसमहेत्वाभास हुआ यह आप का लिखना विना विचारे है क्योंकि प्रमाण विषयिरूप और प्रमेय विषयरूप हैं प्रमाणरूप से प्रमाण को प्रमेयत्व नहीं अन्यथा लक्षण को भी लक्ष्यत्व होने से अनेक दूषण आजांयगे और यह भी आप का कहना अयुक्त है कि प्रमाण पूर्वक व्यवहार के करने से प्रमाण विषयक प्रश्न सर्व साधारण प्रमेय होने से व्यर्थ है क्योंकि जो हमारे स्वीकृत मत को प्रमाण मानते हो तो अङ्गीकार करो जो नहीं मानते हो तो विचार करने का अवसर आया इस से प्रमाणविषयक हमारा प्रश्न सार्थक है और उस के भेद शास्त्र के अनुसार दो २ तीन ३ चार ४ वा आठ हैं यह लेख भी विशेषरहित संदेह रूप है क्योंकि यह नहीं लिखा कि किन शास्त्रों में यह भेद हैं और किस प्रकार से कहे हैं और प्रमाण विषय नहीं कहा वह है या नहीं स्पष्ट कहो और प्रमाण का फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि कहा सो इस आप के कथन से भी प्रमाण का निर्णय प्राप्त हुआ और उस का प्रामाण्य स्वतः परतः होता है इस आप की उक्ति को निरपेक्ष होने से अनैकान्तिक अर्थात् व्यभिचारी हेत्वाभास की नाईं स्वतः परतः की साधकता नहीं हो सकती ।

विशेष—जैनियों के इस पत्र में कई अशुद्धियां हैं जैसे—१—हेत्वाभासरिति । २—विषयीरूपत्वात् ।३—लक्षाक्रान्तत्वेन। ४—सार्थिकः। ५—उद्दिष्ठाः।६—नैकान्तकः । ७—भवंतोऽप्यंगीकुर्वंतु । इन तीन शब्दों में तीन अशुद्धियां हैं । यदि कोई लिखने में अक्षर छूट जाता है तो उस से पण्डिताई में हानि नहीं समझी जाती सो ऐसी अशुद्धि यहां नहीं गिनाई हैं । इन उक्त अशुद्धियों के अनन्तर इन के पत्र में अन्य भी अशुद्धियां हैं जिन से जैन पण्डितों की पण्डिताई प्रकाशित हो जावेगी ॥

इस के आगे जैनियों के द्वितीय पत्र के उत्तर में

आर्यों का तृतीय पत्र

सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा । यदि प्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यापि सर्वव्यवहारान्तर्गतत्वात्संशयाभावेनानर्थकः प्रश्नः । यदि चाप्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यायोग्यत्वम् । यच्चास्मदुक्तपदार्थानां मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्यतो भवदनुमतौ सर्वस्य साध्यत्वात् प्रामाण्याभावेन प्रमेयाभावः ।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्त शर्मणः

भाषानुवाद–सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक होते हैं वा अप्रमाण पूर्वक? अर्थात् शोच समझ के मनुष्य कार्य्य करने में प्रवृत्त होते हैं वा अन्धाधुन्ध उन्मत्त के समान। यदि कहो कि प्रमाण से व्यवहार होते हैं तो आप का प्रश्न भी सब व्यवहारों में होने से प्रमाण पूर्वक हुआ अर्थात् आपने अपने प्रश्न को प्रामाणिक माना तो तुम को प्रमाण का बोध हो गया अर्थात् प्रमाण का बोध था तब ही तुम प्रश्न कर सके तो प्रमाण में संदेह न होने से तुम्हारा प्रमाण विषय प्रश्न करना सर्वथा व्यर्थ हुआ। यदि कहो कि बिना प्रमाण के व्यवहार होते हैं तो तुम्हारा प्रश्न भी अप्रमाणिक होने से अयोग्य है। और यदि हमारे प्रथम पत्र में लिखे जिनजैनादि पदार्थों को तुम प्रमेय अर्थात् विचार पक्ष में लाने योग्य मानते हो तो जिन पद और उस के वाच्यार्थ के साध्य होने से तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारे मत का मूल साध्य हो गया किन्तु सिद्ध नहीं रहा इस से यह आया कि तुम को अपने जैनमत पर विश्वास नहीं यदि विश्वास होता तो उस को प्रामाणिक मानते जब प्रामाणिक मान लेते तो प्रमाणविषय में सन्देह न होने से प्रश्न क्यों करते जब तुम को अपने मत के प्रामाणिक होने का विश्वास नहीं तो अन्य मत पर कैसे विश्वास हो सकता है?। इसलिये तुम्हारे मत में सभी साध्य होने से प्रमाण कोई वस्तु न रहा क्योंकि प्रमाण वही कहाता है कि जिस से विषय का निश्चय हो और जिस विषय को उस प्रमाण से निश्चय करें वह प्रमेय कहाता है सो जब प्रमाण ही न रहा तो प्रमेय का ठहरना भी दुस्तर है।

यह पहिले दिन ता० ११ मार्च का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ सब अपने २ घर को चले गये। उसी दिन आर्य्यों को चिन्ता रही कि अब कल कब शास्त्रार्थ होगा उस का समय पहिले से नियत होना चाहिये परन्तु जैन लोगों को कुछ भी फिकिर न थी और पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों को तथा अन्य श्रोता जनों को बलाबल भी ज्ञात हो गया था इस से जैनियों की भीतरी इच्छा नहीं थी कि दूसरे दिन शास्त्रार्थ हो पर अपनी ओर से बन्द करने में भी प्रसिद्ध पराजय हुआ जाता था क्योंकि जैनियों के प्रतिपक्षी आठों प्रहर कटिबद्ध हो रहे थे इस कारण आर्य्यों की ओर से कई बार संदेशा जाने से जैनी लोगों को ता० १७ को शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा और ता० १७ को भी उसी समय से शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। पर ता० १६ को आर्य्यों ने जो तीसरा पत्र अन्त में दिया था उस का उत्तर जैनियों को देना था और जैनियों के तृतीय पत्र का उत्तर आर्य्यों को देना था आर्य्यों का पत्र जैन ले गये थे और जैनियों का

पत्र आर्य्य ले गये थे और अपने २ घर विचार पूर्वक उत्तर लिख कर लाये जैनियों को उत्तर लिखने के लिये घर पर अन्यमतावलम्बी पं० लोगों की सहायता मिल गई जिस से अच्छे प्रकार लिखा ॥

द्वितीय दिन ता० १७ मार्च आर्य्यों के तृतीय पत्र के उत्तर में जैनियों का चौथा पत्र ॥

श्रीमद्भिः यदुक्तं सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तं । नायं नियमः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा कस्मात् व्यवहाराणां वैलक्षण्यात् । प्रश्नस्यानर्थक्यन्तु वक्तुमशक्यं । येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यात् ॥ नास्माकं प्रमाणस्वरूपादौ संशयः । यूयं जानीथ नवेति पृच्छ्यते । अस्मत्प्रश्नविषयस्य सर्वशास्त्रसंमतत्वेन नायोग्यत्वं । अस्मन्मतविषये भवज्जिज्ञासितपदार्थानां यथा मेयत्वं तथा सर्वेषां पदार्थमात्राणां मेयत्वमस्माभिरंगीक्रियते परन्तु यन्मेयं तत्साध्यमिति न व्याप्तेरभावात् इत्यनेन यदस्मदुक्तपदार्थानाम्मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाज्जिनमतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्युक्तं तदपि निर्मूलं ॥ अपि च मेयं च किं प्रमाणाधीनमिति प्रश्नावकाशः ॥ अन्ततो गत्वा भवद्भिरपि प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः इतिलेखकद्भिः प्रमाणं त्वंगीकृतं परन्तु पृष्टसविशेषप्रमाणस्वरूपादिकम् वक्तुमसमर्थाः इत्यस्माभिरवगतम् ।

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

ह० पन्नालाल जैनधर्मिणः

भाषानुवाद—आप ने जो कहा कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक है या अप्रमाण पूर्वक यह आप का कहना अयोग्य है क्योंकि यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक ही होते हैं या अप्रमाण पूर्वक क्योंकि व्यवहार विलक्षण हैं अर्थात् कोई प्रमाण पूर्वक कोई अप्रमाण पूर्वक होते हैं तो और हमारे प्रश्न को तो अनर्थक आप नहीं कह सकते क्योंकि जिस व्यवहार को प्रमाण पूर्वकता है वह प्रमाण क्या, इस से हमारा प्रश्न सार्थक है और हम को तो प्रमाण के स्वरूपादि में संशय नहीं है, पूछते इस लिये हैं कि आप भी उस को जानते हैं या नहीं हमारे प्रश्न का विषय सम्पूर्ण शास्त्रों को सम्मत इस से अयोग्य नहीं है हमारे मत के विषय में जिन पदार्थों के जानने की आप की इच्छा है वे जैसे प्रमेय हैं उसी रीति से हम सम्पूर्ण पदार्थों को प्र-

मेय मानते हैं परन्तु जो मेय है वह साध्य अवश्य होता है यह नहीं कह सके क्यों-कि व्याप्ति का अभाव है इसी लेख से आप ने कहा कि जो हमारे कहे हुए पदार्थों को तुम प्रमेय मानते हो तो जिन पद और उस का अर्थ भी साध्य हुआ इस से तुम्हारे मत का मूल साध्य हैं सिद्ध नहीं यह आप का कहना भी निर्बल है और मेय किस प्रमाण के आधीन है इस से हमारे प्रश्न का अवकाश है और अन्त में आप ने भी प्रमाण के विना प्रमेय का अभाव होता है यह लिख कर उस प्रमेय की सिद्धि का कारण तो प्रमाण को माना परन्तु हमारे पूछे हुए प्रमाण के पृथक् २ स्वरूप आदि को आप कहने को समर्थ नहीं यह हमने जान लिया ।

विशेष—यह पत्र लिख कर लाये और जैनियों ने सभा के आरम्भ होते ही सब की सम्मति से सभा में सुनाया और कितनी हीं बातें अपनी इच्छानुसार ऊपर से कहीं पीछे आर्य्यों की ओर से पण्डित देवदत्त शास्त्री जी ने भी अपना लिखा उत्तर सुनाया और कुछ उस पत्र के सम्बन्ध में कहा इस पर छेदालाल जैन ने फिर खड़े हो कर कहा इस पर भीमसेन शर्म्मा ने कहा । जैनियों को सभा के आरम्भ में कहने के लिये समय दिया गया इस पर तो जैनी प्रसन्न थे पर जब आर्य्य पण्डित बोल चुकें तब फिर भी पीछे बोलना चाहें तब आर्य्य पण्डितों ने कहा कि तुम जितनी बार बोलो गे—उतनी बार हम तुम्हारे पीछे अवश्य बोलें गे । अन्त में यह हुआ कि दूसरे दिन अन्त में आर्य्य पण्डितों ने उन के उत्तर दे कर जैन मत की पोल खोलने का प्रारम्भ किया (जिस को प्रमाण प्रमेय का झगड़ा डाल के अपने मत की गोलमाल पोलपाल को दबाते थे कि हमारे मत पर विचार न चल ने पावे) तब तो जैनियों के मुख पर सफेदी आने लगी इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ को जैन पण्डितों ने इस विचार से बोल चाल अर्थात् लिखा पढ़ी न हो कर भाषा में बोलने में टाला था कि हमारे संस्कृत की अशुद्धियां सभा में प्रकट हो चुकीं फिर लिखेंगे तो और भी अशुद्धियां निकलने से विशेष धूर होगी इस लिये भाषा में बोल कर समय पूरा करें परन्तु आर्य्यों की इस में भी चढ़ बनी अर्थात् प्रमाण विषय में यथावत् वर्णन किये पीछे जैन मत की अच्छे प्रकार सभा को पोल दिखाई । पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों ने अपने मत की हानि देख कर शास्त्रार्थ के स्वीकार कर्त्ता जैन पक्षी सेठ फूलचन्द जी को अनेक जैनों ने जा २ कर धमकाया और कहा कि तुम ने यह रोग हमारे और अपने पीछे क्यों लगा दिया ? हमारा मत जैसा है वैसा मानते हैं इस

प्रकार अनेक जैनियों ने फूलचन्द जी को लज्जित किया इस से सेठ फूलचन्द जी दूसरे ही दिन से बीमार होकर घर में पड़ रहे और दूसरे दिन से सभा में नहीं आये थे। इस बात का अनेक सज्जनों को पूरा अनुभव हो चुका है कि जैन लोग अपने मत की चर्चा से ऐसे डरते हैं कि जैसे कोई काल से डरे। इस से प्रकट है कि जैनियों के मत में अत्यन्त पोल है। इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में प्रथम जैनियों ने अपना पत्र सुनाया तत्पश्चात् आर्यों ने चौथा पत्र सुनाया।

आर्यों का चौथा पत्र जैनियों के तृतीय पत्र के उत्तर में

ओ३म्—तृतीयसङ्ख्याके पत्रे नवाशुद्धयः प्रतीयन्ते ताश्च शब्दशास्त्रबोधाभावेन जाता इति निश्चितमेव। इदञ्च तृतीयपत्रं पूर्वमेव दत्तोत्तरम्। पुनश्चतदुपरि लेखः पिष्टपेषणवत्प्रतिभाति। तथापीदं ब्रूमः। यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादृचाऽऽचत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरङ्गीक्रियते ?। यदि विषयिरूपत्वमङ्गीक्रियते तन्न युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्, इति पूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वात् भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिः। अस्मन्मते तु प्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति मत्वा न कश्चिद्दोष इति। इदानीं च प्रमाणविषयको विचारः समाप्त इति भवत्प्रश्नस्यात्रकाशाभावः।

अस्माभिश्चादौ यः प्रश्नः कृतोऽस्ति तस्योत्तरं भवद्भिः किमपि नो दत्तं तस्योपरि विचारः सर्वस्मात् पूर्वं कर्तुं युक्तस्तस्य प्रयोजनरूपेण निमित्तीभूतत्वात्। जैनमतमूलं सप्रमाणकमप्रमाणकं वेत्यादिविचारे प्रवृत्ते जैनमतसमीक्षणं प्रमाणेनैव भविष्यतीति प्रमेयरूपाज्जैनसम्प्रदायात्पूर्वं प्रमाणं सेत्स्यत्येवेति। तत्रेदं विचार्यते—यदि जिनपदार्थः कश्चित्सनातनः सर्वज्ञो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो नित्यैश्वर्यसम्पन्नस्तर्हि तस्यैव सनातनसर्वनियन्त्रीश्वरस्य सिद्धावनीश्वरवादो निरस्तः। यदि च कश्चित्कालविशेषोत्पन्नो जिनपदार्थोऽभिधेयस्तर्हि तस्याधुनिकस्यानित्यत्वात्सर्वज्ञत्वादिगुणासम्भवेन तदुपासनमश्रेयस्करमित्यादयो दोषाः।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्तस्य

भाषानुवाद—तीसरे पत्र में नव अशुद्धि निश्चित हुई हैं सो जैनियों के तीसरे पत्र

के नीचे दिखा चुके हैं। वे अशुद्धियां व्याकरण का बोध न होने से हैं यह निश्चित ही है। यद्यपि इस तृतीय पत्र में जो विषय है उस का उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं कि प्रमाण उस वस्तु का नाम है जिस से विषय को जाने यदि वह जानने योग्य विषय हो जाय गा तो उस को प्रमेय कहेंगे प्रमाण नहीं कह सकते फिर प्रमाण का निश्चय करना चाहिये यह कथन नहीं बन सकता। क्योंकि जो स्वयं प्रकाश स्वरूप हो और अन्य पदार्थ उस के प्रकाश से देखे जावें वह प्रमाण कहाता है जैसे एक दीपक से अन्य पदार्थ देखे जाते हैं परन्तु उसी दीपक के देखने के लिये द्वितीय दीपक की अपेक्षा नहीं होती ऐसे ही प्रमाण वही है जिस को सिद्ध करने की अपेक्षा नहीं किन्तु वह स्वयंसिद्ध है। कहीं २ किसी प्रमाण का निश्चय करने पड़ता है तब उस को प्रमेय कहते हैं किन्तु वह प्रमाण कोटि में नहीं कहाता। जब कोई मनुष्य किसी विषय को बिचारना वा देखना चाहता है तब वह पहिले अपने नेत्र को निश्चय नहीं करने बैठता कि मेरे कै नेत्र हैं कैसे हैं मैं देख सकता हूं वा नहीं तथा न्यायाधीश जब न्यायालय में न्याय करने को उद्यत होता है तब वह यह नहीं विचारता कि जिस क़ानून से मैं न्याय करूं गा उसी को पहिले निश्चय करलूं कि वह क़ानून ठीक है वा नहीं किन्तु क़ानून के अनुसार न्याय करने लगता है ऐसे ही मत विषय पर विचार होना चाहिये प्रमाण के निर्णय की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशय पूर्व ही प्रकाशित किया गया था। इस लिये इस पर बार २ लिखना पिसे को पीसना है तथापि यह कहते हैं कि—यदि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता तो जिनजैनादि-पदार्थों को आपने विषयरूप माना वा विषयिरूप माना है इन दोनों में आप क्या ठीक समझते हो ?। यदि कहो कि जिनजैनादि कों को बिषयिरूपप्रमाण मानते हैं तो ठीक नहीं क्योंकि आप पहिले लिख चुके हो कि तुम्हारे कहे जिनजैनादि पदार्थ प्रमेयरूप विषय हैं इस से पूर्वापर वदतोव्याघात हो जायगा। यदि बिषयरूप प्रमेय मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से तुम्हारे मत के मूल को तुमने ही अप्रमाण मान लिया इस से तुम्हारा पक्ष पराजय स्थान में पहुंच गया। हमारे मत में तो प्रमाण निश्चय स्वतः और परतः दोनों प्रकार होता है इस से कोई दोष नहीं आता। अब इस पूर्वोक्त सब कथन से प्रमाण विषयक विचार समाप्त हो गया क्योंकि तुमने पूछा था सो सब समझा दिया गया यदि इतने पर भी न समझो तो कुछ दिन विद्वानों की सेवा करो और पढ़ो तब प्रमाणविषय को पूछना। परन्तु तुमने

जैन मत को ग्रहण किया तो उस को कुछ अच्छा समझ लिया होगा इसलिये हम को जो तुम्हारे जैन मत में शङ्का हैं उन प्रश्नों का उत्तर दीजिये । हमारे पहिले प्रश्न का उत्तर तुमने अब तक नहीं दिया और हम आप के प्रमाण विषयक उत्तर बराबर देते आते हैं । ऐसे कहां तक टालोगे । हमारे किये प्रश्न पर सब से पहिले उत्तर होना चाहिये क्योंकि सब प्राणिमात्र तथा विशेष मनुष्यों का यही प्रयोजन है कि हम को सुख मिले और दुःखों से छूटें । किसी मनुष्य को पूछिये सभी कहेंगे कि यदि कोई कल्याण का मार्ग ठीक २ समझा देवे तो सर्वोत्तम है क्योंकि सुख की प्राप्ति ही मुख्य प्रयोजन है । सुख की प्राप्ति अर्थात् मनुष्य का कल्याणकारी कौन मत है यही हमारा प्रश्न है । इस का उत्तर अब तक जैनियों ने नहीं दिया । जैन मत पर जब परीक्षा चलेगी कि जैन मत प्रमाणयुक्त वा अप्रमाण है इत्यादि विचार होने में जैन मत की समीक्षा प्रमाण से होगी तो प्रमेयरूप जैन सम्प्रदाय से प्रमाण पहिले स्वयमेव सिद्ध हो जाय गा इसलिये प्रथम जैनमत पर विचार होना चाहिये । उस जैनमत पर इस प्रकार विचार चलना चाहिये कि-यदि जिन पदार्थ कोई सनातन, सर्वज्ञ, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव और अविनाशी ऐश्वर्य वाला है तो वही सनातन सर्वनियन्ता ईश्वर सिद्ध हो जायगा ऐसा होने से अनीश्वरवाद स्वयमेव कट जायगा यदि कोई काल विशेष में सर्वज्ञ होने से उत्पन्न जिन पद का वाच्यार्थ होगा तो उस आधुनिक जिन के अनित्यत्वादि गुणों का आरम्भ है क्योंकि जो किसी समय विशेष में उत्पन्न होता है वह अपनी उत्पत्ति से पहिले होगये समाचारों को नहीं जान सकता ऐसा हो तो तब पिता के जन्म के समाचार को पुत्र भी प्रत्यक्ष कर लेवे सो असम्भव है इसलिये किसी समय विशेष में उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता फिर ऐसे अल्पज्ञ जिन की उपासना कदापि कल्याण कारिणी नहीं हो सकती इसलिये यह जैन संप्रदाय अनेक दोषों से ग्रस्त होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता । इस प्रकार द्वितीय दिन आर्यों ने अपना पत्र सुना कर जैनों को दिया और जैनियों ने पूर्वोक्त अपना पत्र सुनाकर आर्यों को दिया तथा कुछ भाषा में अपने २ पक्ष की ओर से दोनों पक्ष के पण्डितों ने कहा पश्चात् द्वितीय दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ । इस दिन भी शास्त्रार्थ होने बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य लोग कब मानते थे उन्हों ने ता० १७ को सन्ध्या से बार २ संदेशा भेज कर फिर जैनियों को खटखटाया कि कल ता० १८ को

किस समय से शास्त्रार्थ होगा। और आर्यों की ओर पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्री जी आगरे से आगये थे इस पर कई लोगों का विचार ठहरा कि पं० ठाकुरप्रसाद जी आर्यों की ओर से बोलें और विशेष कर श्रीमान् लाला सोहनलाल जी रईस फीरोजाबाद की इच्छा थी कि पं० ठाकुरप्रसाद जी भी बोलें तो ठीक हो अगले दिन ता० १८ को १ बजे से शास्त्रार्थ होना नियत हुआ सब लोग नियत समय पर सभा में पहुंचे। प्रथम पं० ठाकुरप्रसाद जी शास्त्री को नियत करने का विचार चला इस पर जैनियों ने बहुत वाद विवाद चलाया उन की इच्छा थी कि वादविवाद में समय कट जावे तो ऐसे ही फंद से छूटें वा आर्य्य लोग यह कह देवें गे कि पं० ठाकुरप्रसाद जी को न बोलने देओ गे तो हम शास्त्रार्थ नहीं करें गे तो भी हमारा कार्य सिद्ध हो जावे सो आर्यसमाजस्थ उन को कब छोड़ते थे। अन्त में अनेक वादविवाद एक घण्टा तक होने पश्चात् दो बजे शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ।

आर्यों के चौथे पत्र के उत्तर में जैनियों का पांचवां पत्र

यच्च पूर्वपत्रेभवद्भिरुटङ्कितं न लिखितप्रश्नानामुत्तरन्तु ज्ञातं भूयपिष्टपेषणावद्भ्रम-इति तन्न सम्यक् प्रमाणस्वरूपनिश्चितसङ्ख्ययोरभिमतप्रमाणलक्षणानां कस्मिंश्चिदपि पत्रे लेखनाभावान्नहि तुलामन्तरेण वस्तुपरिमाणमुपलभ्यते तत् प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेत्यधिरस्कवचनं ब्रुवाणैर्युष्माभिः क्रोडीकृतः प्रमाणविषयको विचारश्चरमवर्णध्वंसगत इति ॥ तदपि चित्रंखपुष्पमिनिवत्प्रतीयमानत्वात् नहि किञ्चित्पदार्थापेक्षया स्वतः परतस्त्वमङ्कितं युष्माभिरतोविरहादनिसाहसमात्रमेतत्कथनमिति पश्यामः किं पुनर्बहुविडम्बनेन यच्च (यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादृत्वाऽन्यत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वंविषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरंगीक्रियते यदि विषयिरूपत्वमुरीक्रियते तन्न युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् इत्यपूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वाऽवश्यम्भावंयुष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिरिति) तदपिवाऽऽलभाषितंआम्राणां प्रश्ने कोविदारमाचष्ट इतिवत् प्रमाणनिरूपणावसरे भिन्नजिनजैनादीनां विषयविषयिव्यवस्थानात् नहि साध्यो विषयो भवितुं नार्हतीति यत्र २ साध्यत्वं २ विषयोनेति व्याप्तेरभावात् किञ्च जिनमतंप्रमाणमस्माकं परन्तु जिनमतंयुष्माकमप्रमाणं वेति विकल्पे प्रमाणपदस्य कः पदार्थो येन जिनमतं युष्माभिः

इदं कारयिष्यामः नित्यत्वानित्यत्वादिकं च प्रमाणाधीनमिति भवद्भिः सविशेषप्रमाणादिः पूर्वं कथनीयः ॥

ह० पन्नालाल जैनधर्मिणः

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

भाषानुवाद—जो पहिले पत्र में आप ने कहा कि आप के लिखे प्रश्नों का उत्तर दे चुके फिर पिष्टपेषण के समान कहैं सो आप का कहना ठीक नहीं प्रमाण का स्वरूप और निश्चित संख्या और शास्त्रकारों के माने हुए लक्षणों को किसी पत्र में भी आपने नहीं लिखा तुला के विना वस्तु का परिमाण नहीं जाना जाता और उस प्रमाण की प्रमाणता स्वतः परतः इस विना शिर के वचन को कहने वाले आपने स्वीकार किया कि प्रमाणविषयक विचार पूरा हुआ यह भी अत्यन्त आश्चर्य है क्योंकि यह कहना आकाश के फूलों के समान है काहेते कि आपने यह नहीं कहा किस पदार्थ की अपेक्षा से स्वतः और किस की अपेक्षा से परतः इस युक्ति के विना इस आप के कथन को अतिसाहस पूर्वक समझते हैं बहुत विडम्बना से क्या है और आपने यह कहा कि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चंचल नहीं तो जिनजैनादि पदार्थों को तुम विषयिरूप मानते हो कि विषयरूप, जो विषयिरूप मानते हो सो ठीक नहीं क्यों कि आप के कहे पदार्थों को प्रमेयरूप होने से इस पूर्व लेख के संग विरोध है और जो विषयरूप मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से अपने मत का मूल आपने ही अप्रमाण स्वीकार किया यह निग्रह स्थान की प्राप्ति है यह आप का कहना भी बालक अर्थात् अज्ञानी कासा है क्यों कि पूछे आम बताये अमरूद इस के समान प्रमाण निरूपण समय में जिनजैनादि का विषयविषयित्व वर्णन करते हो और यह नियम नहीं कि साध्य विषय न होसके क्योंकि जहां २ साध्य वहां २ विषय नहीं यह व्याप्ति नहीं और हम को तो जैनमत प्रमाण सिद्ध है परन्तु जिनमत प्रमाण है या अप्रमाण है इस आप के विकल्प में प्रमाण पद का क्या अर्थ है जिस से आप को जिन मत की इष्टिता करावें और नित्य अनित्य का ज्ञान भी प्रमाण के आधीन है इस से तुम पहिले प्रमाण के स्वरूपादि कहो ।

आर्यों का पाचवां पत्र जैनियों के चौथे पत्र के उत्तर में

जैनानां पूर्वपत्रे व्याकरणानुसारतो दिगशुद्धयः श्रीमद्भिः । सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वंचेत्ययुक्तमिति प्रतिज्ञातम् । एतद्वाक्यान्तर्गतमयुक्त-

मिति सिषाधयिषितम् । व्यवहाराणां वैलक्षण्यादिति हेतुना । अत्रायं प्रश्नः व्यवहा-
रवैलक्षण्यरूपहेतोः प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति वाक्यघटितायुक्त-
त्वरूपसाध्यस्य च क्व व्याप्तिरस्ति, किं पुरुषोऽयुक्तत्वरूपसाध्याभावविशिष्टविल-
क्षणव्यवहारे न प्रवर्त्तते दृश्यते च सर्वेषाम्पुरुषाणां निश्शङ्का सर्वत्र प्रवृत्तिस्तत्रा-
युक्तत्वरूपसाध्याभावेन व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोश्च सत्त्वेनायुक्तोयं हेतुः । निरवच्छि-
न्नमूलधूमसत्त्ववह्नेरवश्यं भावनियमात् किन्त्व व्याकरणशास्त्रोक्तदिशानेकाशुद्धिग्र-
स्तत्वेन पूर्वापरविरोधसद्भावेन चात्यन्तउपेक्ष्यो भवतां लेखः । अशुद्धीनामनेकत्वात्
ताश्च समयान्तरे प्रदर्शयिष्यामः । विरोधश्चायं येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं त-
त्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यादिति वाक्ये तत् प्रमाणं किमिति वाक्येन प्र-
श्नः कृतः, लिख्यते चाग्रे नास्माकम्प्रमाणस्वरूपादौ संशय इति रात्रिन्दिवयोरिवा-
त्यन्तविरोधाक्रान्तत्वात् । अपि च सर्वे व्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृत्वैव प्रवर्त्तन्ते
नायं नियमः । प्रमाणानि च शास्त्रज्ञानवतां प्रमाणत्वेनज्ञातानि शास्त्राज्ञानवताञ्च
प्रमाणत्वेनाज्ञातान्यपि व्यवहारप्रतिबन्धकानि भवन्तीति सम्मतम् । प्रमाणनिर्णय
मनधिगम्यापि प्रवर्त्तन्ते च विद्वांसः प्राकृताश्च जना हट्टादिषु क्रयविक्रयव्यवहारे,
भवद्भिरपि कतिप्रमाणानि कानि च तेषां लक्षणानीति निर्णयमकृत्वैव पत्रलेखनं
कृतं ततश्च सिद्धमेतत् पद्वादिनोः सभायां मतप्राबल्यदौर्बल्याभ्यां जयपराजयौ नि-
श्चीयेते । अथ तत्रैव चेदाग्रहः सभायामागत्य तद्विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्तामित्य-
लं भुत्सु ॥

ह० भीमसेनशर्मणः

ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—आपने यह प्रतिज्ञा की कि यह बात अयुक्त है कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक या अप्रमाणपूर्वक होते हैं इस में अयुक्त साध्य है और व्यवहारों में वैलक्षण्य हेतु है इस में यह प्रश्न है कि व्यवहारवैलक्षण्य हेतु की और अयुक्तत्वरूप साध्य की कहां व्याप्ति है क्या मनुष्य अयुक्तत्वरूप साध्य से विलक्षण व्यवहार में नहीं प्रवृत्त होता? सब मनुष्यों की सब जगह निःशंक प्रवृत्ति देखते हैं वहां अयुक्तत्वरूप साध्य नहीं और व्यवहारवैलक्षण्यरूप हेतु है इस से हेतु अयुक्त है, जहां पर्वत के मूल से आकाश तक धूम हो वहां वह्नि के अवश्य होने का नियम है और व्याकरण की रीति से अनेक अशुद्धि और पूर्वापर विरोध होने से आप का लेख अत्यन्त उ-

पेक्षा करने योग्य है वे अशुद्धि कालान्तर में दिखावें गे और विरोध यह है कि जिस से व्यवहारों को प्रमाणपूर्वकत्व है वह प्रमाण क्या इस से प्रश्न सार्थक है इस में वह प्रमाण क्या इस वाक्य से प्रश्न किया और आगे जाकर लिखा कि हम को प्रमाण स्वरूपादि में संशय नहीं सो यह रात्रि दिन के समान अत्यन्त विरुद्ध है और यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय के बिना किये ही प्रवृत्त हों और शास्त्रज्ञान वालों को प्रमाण रूप से नहीं जाने हुए और शास्त्र के अज्ञानियों को प्रमाण रूप से नहीं जाने हुए भी प्रमाण व्यवहार के प्रतिबन्धक नहीं होते यह सम्मत है और प्रमाण निर्णय के बिना किये भी विद्वान् और हट्ट आदि के लेने देने में प्राकृत जन प्रवृत होते हैं तुमने भी कितने प्रमाण और उन के क्या लक्षण यह निर्णय किये विना ही पत्र लिखा इस से यह बात सिद्ध हुई कि वादियों के मत की प्रबलता और दुर्बलता से ही जयपराजय का निश्चय होता है जो तुम्हें प्रमाण निर्णय में आग्रह है तो सभा में आन कर उस विषयक प्रश्न करो विद्वानों में इतना बहुत है ।

विशेष—यह उक्त पत्र सभा में सुनाया गया और जैन मत पर कुछ विशेष कहा गया तब पं० छेदालाल जैनी ने श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी कृत सत्यार्थप्रकाश को ले कर कोई २ दोष दिखाये और कहा कि हमारे मत विषय में सब मिथ्या लिखा है सर्वदर्शनसंग्रह के पुस्तक में कुछ दिखाया कि यह जैन मत नहीं है इत्यादि कहा उस का यथोचित उत्तर दिया गया । जो २ वार्त्ता बिना लिखी हुई है उन सब को यथावत् कोई नहीं कह सकता इस लिये सब का लिखना उचित नहीं है । यदि एक वचन वा प्रमाण का स्मरण हुआ और उस के सम्बन्ध की सब युक्ति वा प्रमाण लिखे जावें तो बहुत लेख बढ़ जावे और ऐसा लेख करना उचित भी नहीं जान पड़ता है इस लिये विशेष बढ़ाना ठीक नहीं (इस दिन भी शास्त्रार्थ होने वाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य्य लोग कब मानते थे) इस प्रकार अठारह तारीख को ४ बजे में ५ मिनट शेष रहे उस समय में शास्त्रार्थ का सारांश और जैन पण्डितों की कुटिलता पर और जैनमत की समीक्षा पर आर्य पण्डित कह रहे थे उस को सुन कर जैन बहुत लज्जित हुए और उच्चस्वर से कहने लगे कि समय हो गया इस पर श्रीमान् चतुर्वेदी राधामोहन जी और श्रीमान् राय सोहनलाल जी ने कहा कि अभी समय बाकी है हल्ला न करो श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापति जी ने सम्पूर्ण शास्त्रार्थ द्रष्टा और विशेष कर राय सोहनलाल जी की पूर्ण इच्छानुसार श्रीमान् पण्डित

ठाकुरप्रसाद जी के व्याख्यान होने के लिये सभा से निवेदन किया इन जैन लोगों ने किसी की एक न सुनी और एक साथ सभा से उठ कर चल दिये। (इस से शहर के प्रतिष्ठित रईसों को भी इन की योग्यता अच्छे प्रकार प्रकट हो गई सभा में कोलाहल मचजाने से वहां व्याख्यान न हुआ तात्पर्य्य यह था कि इस दिन इन की पोल अच्छे प्रकार खोली गई कुछ शेष रही थी यदि बैठे रहते तो सभी इन की पोपलीला प्रकट हो जाती) आर्य लोग भी अपने २ घर आये सर्वसम्मत्यनुसार श्रीमान् राय साहब सोहनलाल जी के स्थान पर ता० १८ को सन्ध्या के ७ बजे पं० ठाकुरप्रसाद जी शास्त्री का व्याख्यान जैनमत विषय पर ठहरा तदनुसार सब नगर में विज्ञापन दिये गये नियत समय व्याख्यान हुआ नगर के सभ्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई पं० जी ने न्याय आदि शास्त्रों से जैन मत की अच्छे प्रकार समीक्षा की सभा की समाप्ति में पं० सीताराम चतुर्वेदी मैनपुरी निवासी ने आर्य्यों की प्रशंसा कविताई में पढ़ी।

ओम्

(दोहा)—सत्यासत्य विचारहित। भये विज्ञ एकत्र ॥
वाक्यामृत की वृष्टिकरि। सन्तोषे जन तत्र ॥

कवित्त

ईश अवराधक शुभसत्यता प्रकाशक अवगुणादिनाशक सुशासक विज्ञान के
देशगतिसुधारैं वेदसम्मतप्रचारैं वाक्य उचित उचारैं नहिं ग्राहक धनदान के
विद्यानुरागी असत्य मत त्यागी ऐसे वड़भागी हितचिन्तक प्रजान के
सीताराम पुलकितह्वै पुनि२धन्यवाद देत कहां लगि गाऊं गुण आर्य्यमहान् के ॥

आप का शुभचिन्तक
सीताराम चतुर्वेदी
मैनपुरी

और उसी दिन अनेक आर्य लोगों ने नगर में जहां तहां व्याख्यान देना प्रारम्भ किया इस व्याख्यान के पश्चात् आर्य लोगों को फिर वही चिन्ता लगी कि ता० १९ को कब से शास्त्रार्थ होगा। इस लिये एक पत्र सेठफूलचन्द जी के नाम भेजा।

ओ३म्

सेठ फूलचन्द जी योग्य—आप कृपा करके बहुत शीघ्र उत्तर दीजिये कि कल

शास्त्रार्थ का आरम्भ किस समय से होगा । प्रभात समय शास्त्रार्थ का निश्चय होने में बड़ी हानि होती है इस से अभी शास्त्रार्थ का समय निश्चय करके सूचित कीजिये ॥

१८-३-८८

द० गङ्गाराम

रात्रि के ८ बजे प्र० चैत्र सुदी ६ रवौ मन्त्री आर्य्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का उत्तर सेठ जी ने कुछ नहीं दिया और अनेक लोगों से जैनों की अन्तरङ्ग चर्चा सुनी गई कि अब जैन शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते । तब ता० १६ को प्रातःकाल एक पत्र जैनियों के पास और भेजा गया कि :—

ओ३म्

श्रीयुत लाला मंजूलाल, प्यारेलाल, फूलचन्द जी जैन धर्मावलम्बियों को विदित हो कि हमारा आप का शास्त्रार्थ इसीसमय आरम्भ हो जावे इस में क्षण भर भी विलम्ब नहीं होना चाहिये क्योंकि हमारे महाशय लोग बड़े २ कार्य को छोड़ कर बहुत दूर से केवल इसी कार्य के लिये आये हैं यदि आप कहें कि हमारे मेले में हानि होती है और समय थोड़ा है तो हम को पहिले ही विज्ञापन क्यों नहीं दिया कि हम मेले के दिनों में शास्त्रार्थ न करें गे यदि आप को किसी विषय में प्रश्न करना हो तो सभा में ही आकर कीजिये यदि आप आज दश बजे से शास्त्रार्थ न करें गे तो आप का पराजय समझा जावे गा हम लोग अधिक प्रतीक्षा न करेंगे इस पत्र का उत्तर तत्काल न देने से भी पूर्वोक्त व्यवस्था सिद्ध होगी ।

आप का कृपाकांक्षी

१६ । ३ । ८८ ई० सोमवार — गङ्गाराम वर्मा, मन्त्री आर्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का भी कुछ उत्तर नहीं दिया और न पत्र लिया ता० १६ से पत्र लेना भी बन्द करदिया तब ता० १८ के संस्कृत के ५ वें पत्र का उत्तर संस्कृत में लिख कर भेजा गया सो भी नहीं लिया पीछे समाज के दो चार आदमी सज्जन लोग ले गये तब भी सेठ जी ने पत्र न लिया तब यह कहा गया कि आप पत्र नहीं लेते तो यह लिखादीजिये कि हम पत्र नहीं लेते सो यह भी नहीं लिखा तब आर्य लोगों ने शहर के दो चार लोगों को (जो आर्यसमाज में वा जैन मत में नहीं थे) कहा कि आप इस पत्र को सेठ जी के समीप ले जाइये । वे लोग लेगये तब भी पत्र नहीं लिया परन्तु आर्य

लोगों ने उन को साक्षी कर लिया वह आर्य्यों ने भेजा छठा पत्र यह था कि:—

जैनियों के पांचवें पत्र के उत्तर में आर्यों का छठा पत्र

पूर्वप्रहितभवत्कपत्रे केवलं प्रमाणस्वरूपभेदविषयाणां प्रश्नो जातः। इतश्च ते प्रदर्शिताः। अधुनाप्रतिभाति चैतद्यद्भवत्कैरेषां लक्षणानभिज्ञैर्भूयते। अतश्च तानि प्रकारान्तरेण देवानां प्रियावगमाय पुनः प्रतिपाद्यन्ते प्रत्यक्षानुमानोपमान-शब्दाः प्रमाणानीति संख्याचतुष्टयविशिष्टंतार्किकसंमतं प्रमाणस्वरूपम्। वैशेषिकसिद्धान्ते प्रत्यक्षं चानुमानंचेति प्रमाणद्वयम्। साङ्ख्ययोगयोश्चसिद्धान्ते-प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानीति प्रमाणत्रयम्।(पूर्वमीमांसकमतानुसारिणस्तु प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावा अष्टौप्रमाणानि मन्यन्ते)। उत्तरमीमांसकास्तुव्यवहारदशायांह्यष्टौ प्रमाणान्युररीकुर्वन्ति। लक्षणानि च प्रात्यक्षानुमानिकयौपमानिकीशाब्दीप्रमाणां करणं तत्तत्प्रमाणम्। यथाचप्रात्यक्षप्रमायाः करणं प्रत्यक्षं प्रमाणमित्यादिधेयेलिमम्। अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं पारम्पर्यक्रमागतज्ञान-करणमैतिह्यम्। अर्थादापत्तिरर्थापत्तिः। यत्राभिधीयमानेर्थे योऽन्योऽर्थः प्रसज्यते सा-ऽर्थापत्तिः। सम्भवोनामाविनाभाविनोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणम्।अभाव विरोध्यभूतं भूतस्येति। प्रदर्शितप्रमाणस्वरूपसंख्यालक्षणेषु सत्यां विप्रतिपत्तौ अर्द्धघटिकापरिमितसमयेन सप्रमाणं प्रदर्शनीया। तुलामन्तरेणेत्यारभ्य कथनीयेत्यन्तं पूर्वापरविरोधादनेकपराभूतिविशिष्टत्वात् सर्वथोपेक्ष्यः श्रिकुलेखइत्यलमतिपल्लविनेन।

ह० भीमसेनशर्मणः

ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—आप के पहिले पत्र में प्रमाण के स्वरूप, भेद, और विषय का प्रश्न था इस से स्वरूपादि विषयों का उत्तर दिया गया। अब जान पड़ता है कि आप उन के लक्षणज्ञान से सर्वथा शून्य हैं इस लिये वे प्रमाण स्वरूपादि प्रकारान्तर से तुम को बोध होने के लिये दिखाये जाते हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ये चार प्रमाण नैयायिक सम्मत हैं। वैशेषिक शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, दो प्रमाण माने हैं। साङ्ख्य और योगशास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम, तीन प्रमाण माने हैं। पूर्व मीमांसा में चार न्याय वाले, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, और अभाव आठ प्रमाण माने हैं। उत्तर मीमांसा में भी व्यवहार दशा में उक्त आठ प्रमाण माने हैं। प्रमाणों के लक्षण

प्रत्यक्षादि बुद्धियों का तत्तद्विषय में यथावत् होना प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं इत्यादि प्रत्येक के लक्षण भी संस्कृत में लिखे हैं। यदि इन लिखित प्रमाण के स्वरूपादि में कुछ सन्देह रहे तो प्रमाण सहित आध घड़ी में उत्तर दीजिये आगे जो तुम्हारे पञ्चम पत्र में तुलामन्तरेण० इत्यादि लेख है वह पूर्वापर विरुद्ध होने से अनेक प्रकार से तुम्हारा पराजय प्रकट करता है इस लिये उपेक्षणीय है इतिशम्। यह पत्र न लिया और जैनियों के ओर के प्रबन्धकर्त्ताओं ने सभापति ज्वालाप्रसादजी से यह निश्चय किया कि अब शास्त्रार्थ करना बन्दकर दिया जावे और जैनियों की ओर से यह न मालूम हो कि जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते किन्तु उपद्रव के भय से प्रबन्धकर्त्ताओं ने शास्त्रार्थ होना बन्द कर दिया इस प्रकार का एक पत्र जैन प्रबन्धकर्त्ताओं ने बना कर सभापति के हस्ताक्षर करा लिये पर आर्य्य प्रबन्धकर्त्ताओं के पास लाये तो इन्हों ने हस्ताक्षर न किये और कहा कि जैनी लोग यदि शास्त्रार्थ करना चाहें तो जैनी और आर्य्यों की ओर से दश २ आदमी एक स्थान में दश २ हाथ पर बैठे रहें बीच में पुलिस बैठी रहे कोई किसी से बोले नहीं वा कोई प्रतिष्ठित रईस प्रश्न करे उस का उत्तर अपनी २ विद्या वा मतानुसार दोनों पक्ष वाले उस रईस के प्रति देवें इत्यादि अनेक प्रकार निकल सकते हैं कि जिस से उपद्रव कदापि न होवे। परन्तु जैनों ने किसी की न सुनी शास्त्रार्थ करने से सर्वथा हट गये। इस के पश्चात् आर्य्य लोगों ने ता० २० को एक विज्ञापन शहर में दिया कि:-

ओ३म्

सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि किसी कारण से न करने शास्त्रार्थ जैन भाइयों के हमारे विद्वान् पुरुष स्वस्थान को आज पधारेंगे इस से हम फिर भी १ घंटे का अवकाश जैनमतावलम्बियों को देते हैं कि शंका निवारण या शास्त्रार्थ करना चाहें तो आकर करें बाद चले जाने विद्वानों के कहना उन का माननीय न होगा।

प्र० चैत्र शु० ८ भौम दिन—२०—३—८८ ई०

गङ्गाराम वर्म्मा
मन्त्री आर्य्यसमाज
फीरोजाबाद

इस के पश्चात् सब लोग अपने २ नगरों को पधारे जो बाहर से आये थे। इस प्रकार शास्त्रार्थ समाप्त हुआ॥

ओ३म् तत्सत्

जैनियों का प्रमाद

—३✱६—

विदित हो कि जो शास्त्रार्थ वेदमतानुयायी और जैनमतावलम्बियों से नगर फ़ीरोज़ाबाद में हुआ था उस का ठीक २ वृत्तान्त वोही महाशय कि जिन की शास्त्रार्थ समय उपस्थिति हुई थी जानते होंगे और होने का कारण भी उन्हीं महाशयों पर प्रगट है कि जो यहां के रहने वाले हैं ये दोनों बातें सत्य २ तभी सम्पूर्ण महाशयों पर विदित हो सकती हैं जब पक्षपात रहित द्रष्टा पुरुष लिखें या कहें शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद का सारांश जो मुंशी जगनकिशोर साहब ने छपवाया है वह बहुत ही सही यानी सत्य है जैसे मैंने अपनी अल्पबुद्धि से उस को सत्य समझा है ऐसे और भी महाशयों ने जो पक्षपात रहित होंगे समझा होगा क्योंकि सत्य के कारण से किन्तु जैनी महाशयों के शिर से अभी तक पक्षपात का भूत नहीं उतरा कहीं तो ऐसे गपोड़े हांकने लगे कि हम से आर्य्य हार गये और हमारे प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सके इस से भी अधिक प्रत्येक जैन मिथ्याभाषण करने लगे इन की प्रपंचमय बार्ताओं को सुन आर्य्य पुरुषों ने बहुत सहन किया तो भी पराजयभूषण जैनी अपना पराजय छिद्र दबाने के लिये ठौर २ और भी अधिक मिथ्याभाषण करने लगे इस पर मंत्री आगरासमाज ने प्रसिद्धिपत्र इस आशय का दिया कि यदि अब भी जैनी कुछ पुरुषार्थ रखते हों तो हम सर्वत्र जैनियों को सूचित करते हैं कि एक हफ्ते के अन्दर हम से फिर शास्त्रार्थ करें सज्जनो ! ध्यान की जगह है ग़ौर का मुक़ाम है ख्याल की बात है बुद्धि की परीक्षा है यदि ये ऐसे ही सभाजीत थे तो क्यों न शास्त्रार्थ किया इन की शास्त्रज्ञता तो भले प्रकार ३ दिवस के शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद ही में प्रगट हो गई थी कि पराजयदल में ऐसा दबाव डाला कि पत्र और विज्ञापनों से भी शास्त्रार्थ करने को समर्थ न हुए फिर ये किस बल से शास्त्रार्थ करते जैनमतावलम्बियों ने शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद जो छपवाया है उस को शास्त्रार्थद्रष्टा सज्जन लोग तो अवश्य २ ही सत् असत् को जान गये होंगे किन्तु मैं अपनी अल्पबुद्ध्यनुसार सर्व के ज्ञातार्थ प्रमाद से जो उन्हों ने विपर्य्यय छपवाया है उस को प्रगट करता हूं क्योंकि—

चौपाई ॥

अति संघर्षण करे जो कोई । अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥

जैनियों का प्रमाद प्रमाद प्रमाद

प्रथम प्रमाद

श्री स्वामी भास्करानन्द जी के विषय में जो छपवाया है यह उन का अति ही प्रमाद है स्वामी भास्करानन्द यहां से जब पधारे तब पं० पन्नालाल का पत्र इस आशय का आगया कि मैं इस समय नहीं आ सकता मेरे पैर में फोड़ा है जब पन्नालाल ने फोड़े का मिस किया तब सेठ साहब ने चतुर्वेदी कमलापति साहब और उक्त स्वामी जी से यह कहा कि अब हमारा तुम्हारा शास्त्रार्थ मत विषय का मेले पर यानी ता० १५ मार्च सन् १८८८ ई० से अवश्य होगा इस को सर्व सज्जन भले प्रकार जानते हैं कि जब पन्नालाल न आये तो भी स्वामी भास्करानन्द जी ने १७ फरवरी को अपने व्याख्यान में यह कहा कि यदि अब भी कोई प्रतिष्ठित जैनी यह कहे कि हम कल या ता० १८ फर्वरी सन् १८८८ ई० को पं० पन्नालाल को अवश्य २ बुला लेंगे तो मैं कदापि बांकीपुर के शास्त्रार्थ में नहीं जाऊं गा चाहे मेरे पहुंचने के लिये वहां से तार आही गया है इस को किसी जैनी ने कल के लिये यानी ता० १८ फर्वरी को स्वीकृत नहीं किया और सेठ फूलचंद साहब ने यही कहा कि मेलेपर हमारे पं०लोग अवश्य आवेंगे सज्जनो ! जब सेठ साहब ने किसी तरह से उस समय शास्त्रार्थ करनास्वीकृत न किया तब स्वामिभास्करानंद सरस्वती जी बांकीपुर को पधारे।

२–प्रमाद

इन के पत्रों के उत्तर ठीक २ समय पर पहुंचते रहे यह लिखना भी प्रमाद से असत्य है बल्कि आर्य्य पुरुषों के दो पत्रों का तो जैनी महाशयों ने उत्तर भी नहीं दिया और जैनियों ने किसी पत्र का उत्तर भी ठीक २ भले प्रकार नहीं दिया कुछका कुछ उत्तर देते रहे यह बात भी सर्व सज्जनों को विदित है॥

३–प्रमाद

पंडित भीमसेन शर्म्मा जी और सेठ फूलचंद साहब में जो नियम नियत हो गये थे उन के सिवाय कुछ भी न्यूनाधिक नहीं हुए यह लिखना जैनियों का सर्वथा व्यर्थ है इन के लेख ही से इन का झूठ यानी मिथ्याभाषण सिद्ध होता है क्योंकि जब ये लिखते हैं कि न्यूनाधिक कर दिये थे सज्जनो ध्यान से देखिये कि यह इन की कैसी प्रपंचयुक्त वार्त्ता है मानो जो न्यून हो गये थे उन को बढ़ा के और जो अधि-

क हो गये थे उन को दूर करके नियम क्यों न माने और यह लिखा है कि पं० भीमसेन शर्म्मा अपने धर्म से कह देवें येही नियम ठहरे थे यह लिखना और भी जो उक्त पं० जी के विषय में लिखा है बिलकुल असत्य ही है इस को सम्पूर्ण द्रष्टा शास्त्रार्थ सज्जन लोग भले प्रकार जानते हैं भो विद्वज्जनो ! इन का पूर्ण सिद्धान्त नियमों का न मानना ही इन के लेख से सिद्ध होता है जब अनियम कार्य करना ही जैनी महाशयों को प्रिय लगता है तो इन के बीच में शास्त्रज्ञता का गंध मेरी भी अल्पबुद्धि के अनुसार कोई विद्वान् नहीं कह सकता देखो नियम ही से सम्पूर्ण कार्य संसार के होते हैं अनियम से कोई भी नहीं होता है फिर अनियम कार्य कैसे हो सकता है जब जैनी पं० शास्त्रार्थ के साधारण नियमों का होना मुख्य नहीं समझते तो शास्त्रार्थ करने की योग्यता इन में कोई विद्वज्जन कब अनुमान कर सकता है जब जैनियों की इच्छानुसार आर्य्य पुरुषों ने पंच और सरपंच स्थान स्वीकार किया फिर किस प्रकार से आर्य पुरुषों का हठ इच्छानुसार नियम नियत होने का सिद्ध हो सकता है ? ॥

४–प्रमाद

मध्यस्थ के विषय में हम जैनियों का अत्यन्त ही प्रमाद प्रगट करते हैं कि जिन में शास्त्रार्थ और सभ्यता का व्यवहार किंचित् भी प्रगट नहीं जान पड़ता है आधुनिक आर्य और जैनियों के विद्वानों से भिन्न मतावलम्बी मध्यस्थ हो इस लेख से और भी अल्पज्ञता जैनी महाशयों की प्रगट होती है कि शास्त्रार्थ के प्रकार से होता है और उस के विशेष २ नियम सर्वोत्तम क्या हैं पं० भीमसेन जी शर्म्मा ने यह कदापि नहीं कहा कि हमारे सर्व विरोधी हैं और सत् असत् का निर्णय करने वाला कोई नहीं है ऐसा अनर्थरूप लेख लिखना जैनी महाशयों की ही योग्यता है क्या आज आर्य, जैन, मुसलमान, ईसाइयों के अनेक सम्प्रदाय हैं इन में एक महाशय से पूछा जाय या सर्व से पूछ के जो सिद्धान्त निश्चय किया जाय तो कौन श्रेष्ठ होगा देखो श्रीमती महारानी विक्टोरिया आज कमैटी यानी बहुसम्मति पर ही सर्वकार्य करती हैं ऐसे ही पं० भीमसेन शर्म्मा का यह कथन था कि हमारे तुम्हारे लेखों को देख कर सर्व जगत् और सर्व विद्वान् जयाजय जान सकते हैं ऐसे मध्यस्थ की कुछ इस शास्त्रार्थ में आवश्यकता नहीं है ऐसे मध्यस्थ की आवश्यकता जैनी महाशय समझते हैं तो मेरी अल्पबुद्धि के अनुसार शास्त्रार्थ करना वृथा था उसी मध्यस्थ से ही

पूछ लिया जाता कि किन का सिद्धान्त ठीक और मत प्राचीन है विद्याहीन जैनियों का अपने दुराग्रह और अपना कपोल कल्पित जाल कटने के भय से यही आशय इन के लेख से सिद्ध होता है कि शास्त्रार्थ न हो जैनियों की मंदता देखिये कि ये आधुनिक (दयानन्दमतावलम्बी लिखना) क्या इन को लज्जा नहीं आती है यदि ऐसे ही पं० थे तो इन शब्दों को सभा में क्यों नहीं सिद्ध किया जब पं० भीमसेन जी शर्म्मा ने यह कहा था के अगर तुम वेद को कपोलकल्पित आधुनिक आर्य्य और दयानन्दमतीय सिद्ध करदो तो हमारा तुम्हारा इसी पर शास्त्रार्थ सही इस कहने पर इन के मुखबन्द होगये कुछ उत्तर न दे सके) प्रियवरो ! इन जैनी पं० को सिवाय मिथ्या-प्रलाप के कुछ विशेष नहीं आता सज्जनों ! शास्त्रार्थ दो प्रकार से होता है एक तो मुखद्वारा दूसरा लेखद्वारा लिखित शास्त्रार्थ के जयाजय के ज्ञाता सर्वविद्वान् और सर्वजगत् होता है और मुखद्वारा के शास्त्रार्थ के द्रष्टा वे ही लोग होते हैं जो तत्काल उपस्थित हों मध्यस्थ प्रबन्धकर्त्ताओं का होना अवश्य चाहिये क्योंकि जिस से शास्त्रार्थ समय कोई पक्ष नियमविरुद्ध प्रतिकूल कार्य न करे ।

५-प्रमाद

सज्जन पुरुषो ! इन का, धर्म से ज्यों का त्यों इस पुस्तक के लिखने में प्रमाद और मिथ्याभाषण प्रगट करता हूं एक लघु बात यह है कि पं० पन्नालाल ने शास्त्रार्थ के पत्रों में अपना नाम अनुस्वार लगा कर कई पत्रों पर लिखा था इस को सर्व सज्जन शास्त्रार्थ द्रष्टा भले प्रकार जानते हैं यदि किसी महाशय को प्रतीत न हो तो मैं पं० पन्नालाल के लेखों को दृष्टिगोचर करा सकता हूं फिर ज्यों के त्यों धर्मपूर्वक लेख कोई भी जैनी और जैन पं० सिद्ध कर सकता हैं क्या मिथ्याभाषण को ही जैनी पंडितों ने धर्म समझ लिया है इन का इस विषय में सम्पूर्ण लेख मिथ्याभाषण और पक्षपात की अनेक व्याधियों से अभिग्रस्त है ।

६-प्रमाद

जैनी पंडितों को व्याकरण का पूर्णबोध न होने से उन्हों ने अपने पत्रों में विशेष अशुद्धियां कीं और आर्य पं० ने अपने प्रत्येक पत्र में इन की अशुद्धियों की गणना प्रगट की और सभा में पं० भीमसेन जी शर्म्मा ने यह भी कहा कि जैनी पं० यह कहें कि ये अशुद्धियां हैं या पीछे शुद्धि बना लें तो इसी समय हम अशुद्धियों को जैनी पं० के संमुख व्याकरण शास्त्र से सिद्ध कर सकते हैं इस पर व्याकरण

शून्य जैनी पं० ने कुछ उत्तर न दिया और शास्त्रार्थ जो छपवाया है उस में लिखते हैं कि आर्यों के पत्रों में भी अधिक अशुद्धियां हैं यह लिखना कैसा अज्ञानता से निर्मूल है जैनियों के सम्पूर्ण पत्रों को देख कर सर्व को इन का झूठ और भी अधिक प्रतीत होगा कि जैनी महाशयों ने पत्रों में तो कहीं अशुद्धियों की चर्चा भी नहीं लिखी और न इन के लेख से जो पत्रों में है यह सिद्ध हो कि कोई अशुद्धि है फिर अशुद्धियों के विषय में लिखना सर्वथा व्यर्थ ही है जैनी महाशयों के लेख से यह बात सर्व सज्जनों को विदित हो जाय गी कि अपनी अशुद्धियों को बना लेना और आर्यों के पत्रों में मिथ्या अशुद्धियां प्रगट करना इस एक ही लघु बात से सिद्ध है जो मैं पं० पन्नालाल सा० के हस्ताक्षरों के विषय में पूर्व लिख चुका हूं और छठा पत्र तो जैनी महाशयों ने अपने अत्यन्त प्रमाद की प्रबलता से मन माना लिखदिया है सभा में तो इस पत्र को नहीं दिया और न आर्य्य समाज में भी किसी के हस्तगत होके भेजा यह बात इन की मिथ्या प्रपंच की नहीं है ? जब यह नियम था कि एक२ पत्र दोनों पक्ष वाले एक दूसरे को देदें फिर छठा पत्र किस प्रकार से जैनियों का अधिक आना कोई विद्वान् कब अनुमानप्रमाण कर सकता है ? ।

७—प्रमाद

मैं अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार जैनियों के प्रत्येक विषय के लेख का स्थूल बातों में ही प्रमाद प्रगट करता हूं जब इन के लेख से यह सिद्ध है कि हमारे और इन के परस्पर यह बात ठहरी थी कि संस्कृत के लेखानुसार भाषानुवाद करके सभा को सुना दिया करें गे सज्जनो ! ध्यान कीजिये इन लेखों के भाषानुवाद को कि यह संस्कृत का ही अनुवाद है ? उस पर भी यह अधिकता कि प्रमाद से परामर्श का पीछा तो पांच २ या छः २ पृष्ठ तक न छोड़ा कहीं की ईंट कहीं के रोड़े का उदाहरण पूरा दरसाने लगे और अपने लेखों में विरोधाविरोध का भी ध्यान न रहा सज्जनो ! इन के संस्कृत लेखों पर अच्छेप्रकार ध्यान देना चाहिये कि परामर्श सत्यार्थप्रकाश और सर्वदर्शनसंग्रहादि के पृष्ठ और पंक्तियों का लिखना इन के पत्रों के कौन से शब्द के अर्थ से प्रगट होता है यदि यही भाषानुवाद संस्कृत का हो तो अपने सम्पूर्ण ग्रन्थ और सप्तभंगी न्याय का जैनियों ने पूरा उलथा क्यों न लिख दिया प्रियवर जैनियों ? तुम्हारे इन झूठ मूठ के लड्डुओं के खाने से क्षुधा न दूर होगी कहीं सत् के संमुख असत् और आधुनिक जो जैनमत है वह ठहर सकता है शंकराचार्यादि आचार्यों की

सहस्रों फटकारों के लजाये हुए जैन यानी बौद्धमतावलम्बी हठ और दुराग्रह को अभी तक नहीं छोड़ते पक्षपात की पगड़ी को सिर पर और खींच २ के बांधते ही जाते हैं यह आधुनिक मत तुम्हारा पीछा तभी छोड़े गा जब सत् सनातन वेदधर्म का ग्रहण कर पक्षपात की पगड़ी को खूंटी पर रख सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् का शरण लोगे तभी तुम सच्चे तत्त्वज्ञानी होगे प्रियवर ! इस आधुनिक जैन मत के असत्य ज्ञान को कल्याणकारी समझ क्यों अपना जीवन व्यर्थ गमाते हो ।

८—प्रमाद

जैनियों का पं० ठाकुरप्रसाद जी के विषय में लिखना अति ही असत्य यानी मिथ्याभाषण है ऐसे असत्य लेखों के लिखने में जैन यानी बौद्धमतावलम्बियों को लज्जा भी नहीं आती यह न ध्यान दिया कि हमारे मिथ्यालेखों को शास्त्रार्थ द्रष्टा लोग देख कर कितना पश्चात्ताप करेंगे और हम को झूठे का दादा ठहरावें गे जो पुरुष एक बात झूठ बोलता है और उस के छिपाने के लिये १०० बात झूठ यानी असत्य भाषण करता है परन्तु असत्य के कारण से अन्त में असत्य ही रहता है इस को अच्छी तरह शास्त्रार्थ द्रष्टा लोग जानते हैं कि इन बातों में से एक भी बात शास्त्रार्थ के समय में जैनी पं० ने नहीं की यदि जैनी पं० यह कहें कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं हैं इस बात को सब सज्जन पुरुष जानते हैं कि पं० ठाकुरप्रसाद जी ने अपने व्याख्यानों में यह कहा था कि जो आर्य न होगा वह तो गैर आर्य होगा मैं सोने के पत्र पर रजिस्टरी करा सकता हूं कि मैं आर्य हूं सज्जनो ! देखो यदि आर्य न होते तो आर्यसिद्धान्त के सभासद् क्यों होते बड़े पश्चात्ताप का विषय है कि जब समान संख्या दोनों पक्ष के पंडितों की हैं तो भी पं० ठाकुरप्रसाद जी से क्यों न शास्त्रार्थ किया जब समान समय तक दोनों पक्षों को लिखने और कहने का अधिकार है फिर जैनी महाशयों को क्या भय था यह पं० ठाकुरप्रसाद जी का कथन इस बात पर अपने व्याख्यानों में सर्व के ज्ञातार्थ हुआ जब शास्त्रार्थ करके जैनी पं० पेचमें पहुंचे तब बहुत पुरुषों ने यह कहा कि तुम्हारा बड़ा भारी अपवाद इस बात से हुआ जो तुम ने पं० ठाकुरप्रसाद से शास्त्रार्थ करना स्वीकृत नहीं किया तब जैन पण्डितों ने उन पुरुषों को यह उत्तर दिया कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं है इस से हम ने उन से शास्त्रार्थ नहीं किया उन पुरुषों ने आकर समाज में कहा जैनियों का संपूर्ण लेख इस विषय का अनेक मिथ्याभाषण की व्याधियों से अभिग्रस्त है और जैन यानी बौद्धम-

तावलम्बियों ने असत्य भाषण ही अपना धर्म समझ रक्खा है इन के धर्म ग्रन्थों का भी यही आशय है कि जैसे कोई वस्तु है और नहीं है और कह भी नहीं सकते कि है या नहीं ऐसे ही असत्य ग्रन्थों के संस्कार प्रबल होने से जैनी महाशयों को मिथ्या भाषण और हठ करने का असाध्य रोग ही होगया है इन के ग्रन्थों में ऐसा असत्य भाषण लिखा है कि विद्वानों को अत्यन्त ही पश्चात्ताप इन के विद्याहीन आचार्यों पर आता है कि कोई प्रमाण किसी वस्तु का अनुमान करके नहीं लिखा जो मन में आया अप्रमाण लिख मारा जैसे ४८ कोस का जूंआ और ८ कोस का बिच्छू १६ कोस का कलसा ४० अक्षरों में एक एक पुरुष का आयु जो सहस्रों वर्षों का एक वर्ष ऐसे ही अनेक मिथ्याभाषण इन के ग्रन्थों में हैं कि जिन को देख कर बुद्धिमानों को अति ही ग्लानि इस आधुनिक मत से होती है।)

९—प्रमाद

जैनियों ने जो चतुर्वेदी कमलापति जी के विषय में लिखा है वह सर्व प्रकार असत्य ही है इस को समस्त शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुष अच्छे प्रकार जानते हैं कि सभापति जी का कदापि यह कहना नहीं था कि हमारा जयपराजय पं० ठाकुरप्रसाद जी ही पर है पं० ठाकुरप्रसाद जी के व्याख्यानार्थ कहा था कि पांच मिनट शास्त्रार्थ समय में ही से चाहे आर्य पंडितों के ही समय में से ले कर दिया जाय क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुषों की आकांक्षा उक्त पं० जी के व्याख्यान सुनने की है इस को सुन कर पराजय मूर्त्ति जैनी बहुत घबराये क्योंकि अन्तिम समय ३० मिनट आर्य्य पंडितों ही का था कि जिस में इन की सारी पोलें इनहीं के ग्रन्थों से सुनाई थीं कि जिस से बहुत लज्जित हुए और यों कह कर कि हमारी तोहीन होती है सभा से भाग गये फिर पत्र और विज्ञापनों के देने से भी शास्त्रार्थ करने को उपस्थित न हुए सज्जनों! इस में किस का पराजय विदित होता है।

१०—प्रमाद

महाशयो! जैनी पंडितों के प्रमादकी प्रबलता और मिथ्याभाषण का मकरजाल देखिये गाकि पं० छेदालाल के लेख से विदित है कि मैंने पं० भीमसेन से यह कहा कि यह श्लोक हस्ताक्षर करके हम को दे दो क्योंकि इस से हमारे मत पर मिथ्या आक्षेप किया है बड़े पश्चात्ताप का समय है कि आज दीर्घ यानी बहुत समय सत्यार्थप्रकाश को बने हो गया है किसी पं० जैनी ने मिथ्या आक्षेप का स्वामी जी महाराज पर दावा न किया

क्या पं० छेदालाल साहिब उत्तरायण और दक्षिणायन ध्रुव की यात्रा को चले गये थे? जो अब गाढ़ निद्रा से जगे और एक श्लोक पर नाक उठा कर देखने और कहने लगे (प्यारे जैनियो! तुम्हारे आधुनिक मत का तो खण्डन श्री १०८ स्वामी दयानन्दसरस्वती जी ने अपने सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास में खूब प्रगट कर दिखाया यदि ये पोलें जो उक्त समुल्लास में लिखी हैं सत्य नहीं हैं तो दावा तोहीन का क्यों न किया क्या सर्वत्र जैनियों को मोतियाविन्द का रोग हो गया था कि जिस से आज तक न सूझा और बेठिकाने की बेसुरी दो चार बातों को कह कर इन भोले भाले जैनी महाशयों को क्यों ठगते हो और अपने को पंडितों की गणना में कहते हो क्यों इस पंडित शब्द को भी अपने नाम में लगा कर लज्जित करते हो) अजी लाला जी आप अपने यथा नाम तथा गुण ही पर संतोष करो दुराग्रह और मिथ्याभाषण के व्यवहार को छोड़ो सदैव सत्यसनातन बातों को ग्रहण करो कि जिस से व्यवहार और परमार्थ सिद्ध होना चारित्र कहाता है अर्थात् जिन मत से भिन्न आचार्य सब सर्वथा अवद्य (निन्दनीय) और उन के निन्दित मतों का त्यागना चारित्र कहाता है। और जिनोक्त तत्त्वों में रुचि वाली वाणी प्रिय पथ्य और तथ्य कहाती है यह वाणी चारित्र से सम्बन्ध रखती है। यही बात इन के सूत्रों से भी सिद्ध होती है कि जिन भिन्न कुगुरु का संग करने से विषैले सर्प का काटना भला है। क्या ही आश्चर्य है कि पं० छेदालाल जी ने ऐसे २ सूत्रों को छिपा कर और पूर्वापर अपने मत का विचार न करके केवल वितण्डा किया है। स्वामी जी महाराज ने अवद्य शब्द का अर्थ सब प्रकार निन्दनीय किया है सो जैनमत को पूर्वापर देख के किया है इस से बहुत ठीक है यदि स्वामी जी अनवद्य पाठ समझते तो उस का अर्थ भी वैसा ही करते जब पाठ अनवद्य लिखा और अर्थ अवद्य का किया तो निश्चय है कि यह भूल लेखक की वा छापे की है। क्योंकि इसी पुस्तक में (यान्यनवद्यानि कर्माणि) यहां अनवद्य का अर्थ अनिन्दनीय किया है इस से स्पष्ट हुआ कि चारित्र प्रकरण में अवद्य ही पाठ है जैसे जैनियों की प्रियतथ्य वाणी के विषय में जैन देवगुरुतत्त्व ज्ञान उपदेशक में लिखा है कि:—

कर्त्ताऽस्ति नित्यो जगतः स चैकः स सर्वगः सन् स्ववशः स सत्यः।
इमाः कुहेवाः कुविडम्बनाः स्युर्येषां न तासामनुशासकस्त्वम्॥

इस जगत् का कर्त्ता नित्यव्यापक अपने सामर्थ्य में आच्छादन करने वाला वह सत्य है यह कुविडम्बना (नीचबुद्धि) त्यागने योग्य हैं उन का मानने वा कहने वाला तू

(जैनी) नहीं है। अर्थात् नित्यव्यापक जगत्कर्त्ता ईश्वर को मानना जैनों का काम नहीं।

जैन पण्डितों की द्वितीय शङ्का यह है कि स्वामी (दयानन्द सरस्वती) जी ने जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि "लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्। जिस से लक्ष्य जाना जाय उस को लक्षण कहते हैं जैसे आंख से रूप जाना जाता है" सो ठीक नहीं क्योंकि लक्षण का स्वरूप नेत्र को नहीं कह सकते। इस का उत्तर यह है कि नैयायिकी पारिपाटी यह है कि :—

अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवदोषाग्रस्तत्वे सति लक्ष्यस्वरूपबोधकत्वं लक्षणत्वम्।

जिस में अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव दोष न हो और लक्ष्य पदार्थ का स्वरूप जताने वाला हो उस को लक्षण कहते हैं। यहां जैसे नेत्र से रूप का बोध होता है इस में नेत्ररूप लक्षण में अव्याप्ति दोष इस लिये नहीं कि नेत्र रूप के साथ व्याप्त है अतिव्याप्ति इस लिये नहीं कि नेत्र से रूप भिन्न लक्ष्यमात्र का बोध नहीं होता। नेत्र से रूप का ग्रहण असम्भव भी नहीं और लक्ष्यरूप का बोध नेत्र से होता है। इस कारण रूप का लक्षण नेत्र को कहना असङ्गत नहीं है। लक्षण के सामान्य स्वरूप में शब्द वाक्य सूत्र आदि लक्षण कहे जाते हैं। जैसे प्रमाण शब्द का व्याकरणानुसार यही अर्थ है कि जिस से प्रमेय को जानें निश्चय करें वैसे लक्ष धातु के दर्शन (ज्ञान) अर्थ से गन्धादि विषय ज्ञान के साधन होने से ज्ञानेन्द्रिय लक्षण हो सकते हैं इस में कोई बाधा नहीं। इस को न समझ के लिखा है तीसरे दिन के शास्त्रार्थ में पं० छेदालाल जैनी ने सत्यार्थप्रकाश पर तीन शङ्का बलपूर्वक की थीं। यद्यपि दूसरे दिनके शास्त्रार्थ में आर्यों के पण्डितों ने कह दिया था (श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वतीजी हमारे मत के प्रवर्त्तक नहीं हैं (किन्तु हमारा सनातन वैदिक मत है) स्वामी जी के लेख पर जो कोई आक्षेप होगा वह वैदिक मत पर नहीं समझा जावेगा किन्तु स्वामी जी भी एक आप्त सनातन धर्मोपदेशक थे इसलिये हम लोग उन को वेदोक्त धर्मोपदेशक मानते हैं तुम लोग आर्यों के मत पर जो शंका करना चाहो वेद पर करना) इस पर जैनियों ने कुछ न ध्यान दिया और इस विचार से कि वेद पर कहने की कुछ सामर्थ्य नहीं तथा स्वा० द० जी के सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करें जिस से अन्य आर्य (हिन्दू) लोग भी आर्यसमाज से तथा सत्यार्थप्रकाशादि से घृणा करेंगे और हमारी प्रशंसा करेंगे तथा बहुत जैन लोग भी सत्यार्थप्रकाशादि से जैन मत के गपोड़े देख २ आर्यसमाजस्थ हो गये हैं सो सत्यार्थप्रकाशका खण्डन करेंगे तो जैनी लोग सत्यार्थप्र-

काश को देखने से घृणा करेंगे और हमारी प्रशंसा होगी कि हमारे पं० ने सत्यार्थप्रकाश का खण्डन कर दिया, इन तीनों शंकाओं का उत्तर भी उसी दिन की सभा में यथोचित दे दिया गया था तथापि जैनियों ने अपनी शंका और बढ़ा कर छपवाई कि जितना तत्काल नहीं कहा था और हमारी ओर से जो २ कहा गया था सो कुछ नहीं छपाया यह पक्षपात नहीं तो क्या है ? ।

उचित तो यही था कि शास्त्रार्थ में जो लेखबद्ध विषय हुआ था उतना ही शास्त्रार्थ के नाम से छपाते और विशेष छपाना होता सो अलग पीछे से छपा देते । पर यह काम धर्मात्माओं का है । सब का नहीं । अब सुनिये—सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी तीन शंकाओं में पहिली यह है कि " पृष्ठ ४२९ पं०—३ सर्वथानवद्य योगानां" इस में स्वामीजी ने अवद्य को अनवद्य लिखा है इस पर पं० छेदालाल तथा अन्य जैनियों ने बड़ा कोलाहल मचाया है कि स्वामी जी ने अज्ञान से वा कपट से शंका कोटि से उठाके तौतातिती को सिद्धान्त कोटि में रख दिया है । इस पर विचार यह है कि वास्तव में (सर्वथावद्ययोगानां) ऐसा ही पाठ ठीक है क्योंकि (वदितुमयोग्यमवद्यम्) (अवद्यपण्य०) इस सूत्र से पूर्वोक्त अर्थ सिद्ध होता है जो कहने योग्य नहीं हो उस को अवद्य कहते हैं तो उक्त श्लोक का अर्थ यह होगा कि (जो कहने योग्य न हो उस का त्यागचारित्र कहाता है वह अहिंसादि भेद से पांच प्रकार का है) अब प्रश्न यह है कि अवद्य नाम अयोग्य का क्या अर्थ हुआ तो जैन मत के सब पुस्तकों अर्थात् मुख्य सिद्धान्तों से यही निश्चित है कि जिन मत से भिन्न तत्त्वों का अनुसन्धान करना और जिन मत से भिन्न आचार्य सब कुगुरु हैं उन का त्याग, यह विद्वान् का दोष नहीं है किन्तु समझने वाले का दोष है पाठ का यह काम है कि जब उन की समझ में न आवे तो दूसरे स्थलों में देखते हैं जैसे स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ६६ में (लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः) इस का अर्थ बहुत सरल किया है कि जैसे गन्धवतीपृथिवी । जो गन्धवाली है वह पृथिवी है अर्थात् गन्ध पृथिवी का लक्षण है ॥

जैनियों का तृतीय उपालम्भ यह है कि तौतातितियों के पूर्वपक्ष को लेकर स्वामी जी ने जैन मत का खण्डन किया है सो ठीक नहीं क्योंकि वह जैन मत नहीं ।

सर्वज्ञो वीतरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन्परमेश्वरः ॥
सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं वो यानुमापयेत् ॥

इन दोनों वचनों को स्वामी जी ने जैन मत के वर्णन में लिखा है । इन में से पहिला श्लोक छेदालाल जैन ने शास्त्रार्थ में पढ़ा था और कहा कि हम सर्वज्ञ ईश्वर को मानते हैं (और द्वितीय श्लोक तौतातिती नास्तिकशिरोमणि का है)। इस को छेदालाल ने अपना प्रतिपक्षी कहा है । सो यह ठीक नहीं क्योंकि [तौतातिती यद्यपि किसी अंश में अर्हन्त देव का भी खण्डन करता है इसी लिये माधवाचार्य्य ने सर्वदर्शनसंग्रहस्थ जैनमत में तौतातिती को पूर्वपक्ष में लिया है) परन्तु मुख्य कर तौतातिती वैदिकमतानुयायियों का प्रतिपक्षी है अर्थात् नित्य सर्वज्ञ ईश्वर को वेद मतानुयायी लोग मानते हैं उसी का (न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः) इत्यादि वचनों से खण्डन किया है जैनी लोग जिस अर्हन्देव को सर्वज्ञ मानते हैं उस को वे नित्य नहीं कह सकते क्योंकि उन का मुख्य सिद्धान्त यही है कि अनादि सिद्ध सनातन ईश्वर कोई नहीं किन्तु अर्हन्देव वा आदिदेव जब उत्पन्न हुए तब सम्यग्ज्ञानादि से सिद्ध हो गये उन्हीं को सर्वज्ञ ईश्वर मानते हैं सो बीच में उत्पन्न होने वाला सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता क्योंकि उस की उत्पत्ति से पहिले अपने पिता पितामहादि का हाल नहीं जान सकता और सिद्ध होने पहिले बाल्यावस्था का अपना ही चरित्र नहीं जान सकता और सर्वज्ञ उसी को कह सकते हैं जो अतीतानागत वर्तमान सब समय में एकरस कूटस्थ व्याप्त हो के सब को जाने सो ऐसा ईश्वर आर्यों का मन्तव्य है जैनादि का नहीं लोगों को बहकाने के लिये जैसे ईसाई लोग ईश्वर का अनेकप्रकार वर्णन करते २ अन्त में ईसामसीह पर तान तोड़ते हैं ऐसी ही कुछ चाल जैनियों की है मानते तो एक बीच के उत्पन्न हुए शरीरधारी को हैं उस के विशेषण सर्वज्ञादि हों । यह असम्भव है (इसी लिये तौतातिती ने बीच में हुए भी किसी को ईश्वर नहीं माना इस से वह नास्तिकशिरोमणि और जैनियों का बड़ा भाता है) अर्थात् अनादिसिद्ध सनातन सृष्टिकर्त्ता ईश्वर के न मानने में जैनी और तौतातिती दोनों एक ही हैं) इसी अभिप्राय से स्वामी जी ने दोनों को साथ ही लिखा है इस से जैनों का आक्षेप ठीक नहीं है ॥

११ प्रमाद

सज्जनों इन जैनियों के मिथ्याभाषण की अधिकता देखिये गा कि जिस के लिखने से ये प्रमाद की गठरी ही जचते हैं जैनी पं० लिखते हैं कि आर्यों की असमर्थता तो पहले से ही शास्त्रार्थ विषय में थी आज शास्त्रार्थ के प्रारम्भ समय से तो

ज्ञात ही हो गईकि पं० देवदत्त जी की जगह पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्रार्थ करें न्यायशील सज्जनो ! इस को क्या असमर्थता का कारण कोई विद्वान् अनुमान प्रम से समझ सकता है देखिये जब कोई पुरुष किसी विशेषकारण या रोगादि या समान संख्या की गणना से किसी कार्य को न करे तो क्या असमर्थ समझा जाय गा कदापि नहीं ख्याल कीजिये जब समान संख्या दोनों पक्ष के पण्डितों की है और समान ही समय तक उभय पक्ष को कहने का अधिकार है फिर इस से तो असमर्थता आर्यों की कोई न्यायशील नहीं कह सकता यदि जैनियों की असमर्थता नहीं थी तो आर्यों के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया और मतविषयक शास्त्रार्थ क्यों न किया इस से जैनी महाशयो तुम्हारा पराजय तो सर्वजगत् तथा सर्व विद्वानों को तुम्हारे लेख ही से विदित हो गया कि न तो साधारण नियम जो शास्त्रार्थ समय अवश्य माननीय हैं उन को और न मतविषयक शास्त्रार्थ करना अब तुम्हारे इन असंगत लेखों को कोई विद्वान् प्रमाण न करे गा ।

१२—प्रमाद

शास्त्रार्थ बन्द होने में जैनियों की असमर्थता ही प्रगट होती है यदि ये असमर्थ न होते तो क्या पत्र और विज्ञापनों से शास्त्रार्थ न करते और उपद्रव का मिस करके शास्त्रार्थ बन्द करना यह जैनियों की कातरता नहीं है ? यह इन के लेख ही से विदित है कि धन्य है ऐसे न्याय मार्गी सभापति को कि जिन्हों ने दोनों पक्ष को समदृष्टिसे देखा और न्याय मार्ग पर आरूढ़ हो कर न्याय किया जब सर्वोत्तम न्यायकर्त्ता श्रीमान् चतुर्वेदी ज्वालाप्रसाद जी और प्रबन्धकर्त्ताओं को कहा और प्रबन्ध की उत्तमता यहां तक लिखी कि नियत प्रबन्ध से इधर उधर न चलने दिया बड़े पश्चात्ताप का समय है इन जैनी महाशयों की बुद्धि पर कि ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के न्याय में भी उपद्रव होने को दोष आरोपण करने लगे तो जो प्रबन्धकर्त्ता अपने न्याय से किसी पक्ष को इधर उधर नहीं चलने देते थे फिर ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के संमुख अन्याय और उपद्रव का होना किस प्रकार से सम्भवित है इस से जैनियों की पूर्ण असमर्थता सिद्ध होती है और प्रमाद की प्रबलता देखिये गा कि श्रीयुत चतुर्वेदी राधामोहनादि और भी प्रतिष्ठित रईसों ने उपद्रव होता जान शास्त्रार्थ होना बन्द किया इन असंगत लेखों के लिखने में जैनी महाशयों को लज्जा नहीं आती जब यह ठीक यानी सत्य ही था तो सर्व प्रकार रईसों के हस्ताक्षर क्यों न करा लिये जो पत्र शास्त्रार्थ बन्द होने के विषय में छापा है वह तो जैनी महाशयों के लेखही से अप्रमाण सिद्ध होता है जब पत्र पांच की राय से और हस्ताक्षर केवल सभापति ही के हैं कब सम्पूर्ण प्रबन्धकर्त्ताओं